सूचना.

नीचे माफक यह पुस्तक तीन तरहसे प्रसिद्ध किया गया है

(१) मूलग्रंथ, प्रस्तावना, उपोद्घात जन्मचरित्र, छबीओं, वंशवृक्षमाला संपूर्ण ग्रंथ (पृष्ठ संख्या–८८०)

(२) मात्र मूलग्रंथ और ग्रंथकर्त्ताकी तस्वीर (पृष्ठ संख्या–७४४)

(३) प्रस्तावना, चरित्र, छबीओं, वंशवृक्ष वगैरहका न्यारा पुस्तक (पृष्ठ संख्या–११६)

ग्रंथ मिलनेका पत्ता —अमरचंद पी परमार, प्रसिद्धकर्त्ता, पाय धुणी–मुंबई शा भीमशी माणेक मांडवी–मुंबई, मांगरोल जैनसभा, पाय धुणी,–मुंबई श्री आत्मानंद जैनसभा, लाहोर, जैनधर्म प्रसारक सभा, भावनगर, और तमाम पुस्तक बेचनवालोंके पास, जैन पाठशाला ऑफिस वगैरह

अनुक्रमणिका.

2043

पृष्ठ

॥ ॐ ॥

प्रसिद्धकर्त्ताकी प्रस्तावना.

इस सृष्टिमें प्राणीमात्रको धर्मका शरण है. जैसे सृष्टिमें हरेक प्रकारकी क्रियाका बंधन स्वभाव है, वैसे जन्मसें मरण पर्यंत धर्म प्राणीमात्रका संबंधी है. परंतु धर्मके दर्शन, धर्मकी शाखायें इतनी सारी हो गई है, कि सत्य धर्मसें दूसरेको पिछानना एक कठिन सवाल है. सब अपने २ धर्मकी तारीफ कर रहे है. कोई पुनर्जन्मको मानता है, कोई नहीं मानता, कोई पाप पुण्य कबूल करता है, कोई प्रकृतिके शिवाय सब वातोंका निषेध करता है. ऐसें अनेक प्रकारके धर्मको देखके जिज्ञासुको विभ्रमता होती है, कि किसको सच्चा और किसको जूठा माने.

सर्व दर्शनके स्वरूपको विस्तारपूर्वक देखा जाय तो जिसका तत्त्वज्ञान, निष्कलंक शंका रहित और सर्वथा मानने योग्य है, वैसा दर्शन केवल एक जिनदर्शन है. जैनमतके लिये कितनेक इंग्रेजी शिक्षण पाये हुये (नई चमकवाले) आदमीने वहोत गोता खाया है. प्रायः अंग्रेजी ऐतिहासीकोने और आधुनिक पंडिताभासोंने कई कल्पना करके जैनधर्मको बौद्धकी शाखा बताई है, और एक नवाही धर्म बताया है और अजितनाथ धर्मनाथ आदि तीर्थंकरोंके नाम भर्तृहरिके समयके मच्छंदरनाथ, गोरखनाथ जैसें नाथकुलके वतलाकर भर्तृहरिके समयसे जैनधर्म चला भी कह देते हैं परंतु कितनेक बडे पाश्चात्य विद्वानोंने परिश्रम करके ऐतिहासिक पुरावे इकठे करके जैनधर्मको बहुत पुराना धर्म सबूत किया है. (देखो इस ग्रंथका पृष्ठ ५३५–५४०).

डा० मॅक्स् मुलर इस जमानेमे आर्यविद्याके एक बडे पंडित गिने जाते हैं. उन्होंने कहा है कि सारी दुनियाके पुस्तकोंमे सात पुस्तक श्रेष्ठ हैं. उसमे दूसरे नंबरमें जैनोका कल्पसूत्र पुस्तक रखा है, और पहेले नबरमे बाईबलको रखा है. धर्मांधपणाके वश होकर बाई-बलको प्रथम पक्तिमें रखा होगा. धर्मकी परीक्षा, न्यायदृष्टीसें होनी चाहिये; अगर इस दृष्टिसें भट्ट मॅक्स् मुलर देखते तो कल्पसूत्रको अवश्य प्रथम पंक्तिमें रखते. यह कल्पसूत्र जैनोंका एक पुराना ग्रथ है. पहिले यह रीवाज था कि सूत्र मुखपाठ रखते थे. श्री महावीर स्वामिके पाटधारी श्री भद्रबाहुस्वामी चतुर्दशपूर्वके पाठी वगैरहने नियमोंका अनुक्रम किया. बाद देवर्द्धीगणिक्षमाश्रमणने पुस्तकके आकारमे लिखे. परंतु जैनधर्मका इतिहास नही जानने-वाले जैनपुस्तकको श्रीभद्रबाहुस्वामी वा देवर्द्धीगणिक्षमाश्रमणका बनाया हुवा लिखकर जैनधर्म थोडे कालसें चला है, ऐसी विभ्रमता करे उसमें क्या आश्चर्य है? धर्मके नियम अनादि हैं; सूत्रोंकी रचना तीर्थंकरोके वखतमें हुई है.

आधुनिक समयके कितनेक पाश्चिमात्य विद्वानोंने यह जाहिर किया है कि वेदधर्म प्राचीन याने ई. स. पूर्वो ३००० सें लेके ७००० पर्यंतकका है. बाद कहते हैं कि बौद्धधर्म ई. स.

पूर्वी ५०० सें १००० वर्षतकका पुराना है बाद जैन धर्मकी उत्पत्ति इ स पूर्वी ७०० सें ४०० वर्षकी मानते हैं अभी प्रायः धर्मशिक्षणके अभावसें भट एसा मान देते है कि किसी यूरोपियनने लिखा मानु परमेश्वरने कहा

जैनधर्मके प्राचीनपणेके असंख्य पुरावे पुस्तकोंद्वारा मिल सकते हैं इतनाही नहीं परंतु इस धर्मके अर्वाचीनपणेके विरुद्धमें बहुत बातें प्रसिद्धीमें आने लगी है इस ग्रंथके स्तंभ १२ में ग्रंथकर्त्ताने बहुतसी सबूतें जैनधर्म प्राचीन होनेकी दि है इ० स० १८०१ में मद्रास प्रेसिडेन्सी कालेजके संस्कृत और कंपेरेटीव फाईलोलोजी (भाषाशास्त्र) के प्रोफेसर मि० गुस्ताव ओपर्ट पी एच डी ने शाकटायन व्याकरण प्रसिद्ध किया है जिसपरसें जैनधर्मकी प्राचीनताकी सिद्धिमें बहुतसी ऐसी बातें जाहिरमें आइ हैं कि, जैनधर्मको अर्वाचीन बतानेवाले बहुतसें पंडित चकित हो गये हैं क्योंकि यह शाकटायन व्याकरणके कर्ता जैनधर्मानुयायी भये हैं और उसका अनिवार्य कारण प्रो० मि० ओपर्टकी नीचे लिखी प्रीफेस * (उपोद्घात) देखनेसें मालुम पडेगा

१ शाकटायन व्याकरणका प्रथम मंगलाचरण यह है

नमः श्रीवर्धमानाय प्रबुद्धाशेषवस्तवे ॥

येन शब्दार्थसंबंधास्सार्वेण सुनिरूपिता ॥ १ ॥

अर्थ—जिस सर्वज्ञ प्रभुने शब्द और अर्थका संबंध निरुपण किया है, जो सब वस्तुके स्वरूपके जानकार है, ऐसे श्री वर्धमान प्रभु (जैनोंके चोवीसवे तीर्थंकर श्री महावीरस्वामि) को नमस्कार हो

२ शाकटायनाचार्य अपने व्याकरणके प्रत्येक पर्वांतमें

"॥ महाश्रमणसंघाधिपते श्रुतकेवलिदेशीयाचार्यस्य शाकटायनस्य ॥"

ऐसा लिखते हैं उसमें श्रमणसंघाधिपति और श्रुतकेवली शब्द ऐसें हैं, जो केवल जैनधर्मके सांकेतिक शब्द है; यह शब्द दूसरे धर्मपुस्तकमें नहीं मिलते हैं

---

* PROFESSOR GUSTAV OPPERT PH. D WRITES —

Panini refers to Sákatayana as a previous Grammarian and this supplies a reason why the latter makes no mention of the former Sákatayana's name occurs also in the Pratisakhyas of the Rigveda and Sukla-Yajurveda and in Yàskà's Nirukta.

The Colophon at the end of each Pàda of the Sábdanusasana names this Grammar as the work of Sáktayana Srutakevalidesiyacharya the president of the great Jain assembly महाश्रमणसंघाधिपते श्रुतकेवलिदेशीयाचार्यस्य शाकटायनस्य

Panini repeatedly mentions Sáktayana and the places thus alluded to are also found in the Sábdanusasana. Panini III. 4 111 VIII 3 18 and VIII 4 50 correspond respectively to S'akatayana's लङः शाकटायनस्यैव (pp. 35 9 & 220 290) व्योर्लघुप्रयत्नतरः (pp. 8 12 and 14 65) and न संयोगे (pp 8 18 and 9 31)

३. इस व्याकरणकी वहोतसी टीकायें हाथ लगी है. उन टीकाकारोंने भी शाकटायनाचार्यको परम जैनी कहा है. उसका मात्र एक दृष्टांत यह है कि टीकाकार यक्षवर्मन कहते हैं किः—

स्वस्तिश्रीसकलज्ञानसाम्राज्यपदमाप्तवान् ॥
महाश्रमणसंघाधिपतिर्यश्शाकटायनः ॥

अर्थः—सव ज्ञान प्राप्त करके जिनोने विद्वानोंमें चक्रवर्त्ती पद प्राप्त किया है, ऐसे महान साधुओंके संघका अधिपति (जैनाचार्य) शाकटायनाचार्य भये हैं.

४. शाकटायनाचार्य जैनी सिद्ध हुये, अव मूल वातपर आके जैनधर्मका प्राचीनपणा मुजको प्रसिद्ध करना चाहीये

प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनी ऋषिके पहिले शाकटायनाचार्य हुवे हैं, यह वात सिद्ध है, क्योंकि—

त्रिप्रभृतिषु शाकटायनस्य ॥ लङः शाकटायनस्यैव ॥ व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य ॥

इत्यादि सूत्र पाणिनी ऋषिने अपने व्याकरणमें दाखल किया है. परंतु शाकटायन व्याकरणमे पाणिनिका नाम भी नजर नही आता, इससें सिद्ध है कि शाकटायनाचार्य पाणिनि ऋषिके पहिले हुए हैं.

पाणिनि ऋषिने शाकटायनके कितनेही सूत्र कुछ भी फेरफार किये विना अपने व्याकरणमें दाखल किये हैं. जैसेकि—

त्वाहौ सौ ॥ यूयवयौ जसि ॥ तुभ्यमह्यौ ङयि ॥ इत्यादि.

पाणिनिव्याकरणके महाभाष्यका कर्त्ता पतजली ऋपि भी शाकटायनको याद करते हैं कि—

नामचधातुजमाह व्याकरणे शकटस्यचतोकम् ।
वैयाकरणानां च शाकटायन आह धातुजं नामेति ॥

Patanjali in his Mahabhashya refers also to Sákatayana when he comments on Panini III 4, 111 and III 3, 1 (उणादयो वहुलम्) In the latter place he remarks —

नामचधातुजमाह व्याकरणे शकटस्यचतोकम् । वैयाकरणानां च शाकटायन आह धातुजं नामेति ॥

In fact the Unadisutras of Sáktayana have found general admission among Grammarians and have been annotated by various commentators such as Ujjvaladatta, Mádhava and others.

पूर्वी ५०० से १००० वर्षतकका पुराना है याद जैन धर्मकी उत्पत्ति ई स पूर्वी २०० से ४०० वर्षकी मानते हैं अभी भाया धर्मशिक्षणके अभावसें झट एसा मान देते हैं कि किसी यूरोपियनने लिखा मानु परमेश्वरने कहा

जैनधर्मके प्राचीनपणेके असंख्य पुरावे पुस्तकोंद्वारा मिल सकते हैं इतनाही नहीं परंतु इस धर्मके अर्वाचीनपणेके विरुद्धमें बहुत बातें प्रसिद्धीमें आने लगी है इस ग्रंथके स्तंभ १२ में ग्रंथकर्त्ताने बहुतसी सबूतें जैनधर्म प्राचीन होनेकी दि है ई० स० १८०१ में मद्रास प्रेसिडेन्सी कालेजके सस्कृत और कंपेरेटीव फाईलोलोजी (भाषाशास्त्र) के प्रोफेसर मि० गुस्ताव ओपर्ट पी एच डी ने शाकटायन व्याकरण प्रसिद्ध किया है जिसपरसें जैनधर्मकी प्राचीनताकी सिद्धिमें बहुतसी ऐसी बातें जाहिरमें आई हैं कि, जैनधर्मको अर्वाचीन बतानेवाले बहुतसें पंडित चकित हो गये हैं क्योंकि यह शाकटायन व्याकरणके कर्त्ता जैनधर्मानुयायी भये हैं और उसका अनिवार्य कारण प्रो० मि० ओपर्टकी नीचे लिखी प्रीफेस * (उपोद्‌घात) देखनेसें मालुम पडेगा

१ शाकटायन व्याकरणका प्रथम मंगलाचरण यह है

नम श्रीवर्धमानाय प्रबुद्धाशेषवस्तवे ॥
येन शब्दार्थसंबंधास्सार्वेण सुनिरूपिता ॥ १ ॥

अर्थ—जिस सर्वज्ञ प्रभुने शब्द और अर्थका संबंध निरुपण किया है, जो सब वस्तुके स्वरूपके जानकार है, ऐसे श्री वर्धमान प्रभु (जैनोंके चोवीसमे तीर्थंकर श्री महावीरस्वामि) को नमस्कार हो

२ शाकटायनाचार्य अपने व्याकरणके प्रत्येक पदांतमें

"॥ महाश्रमणसंघाधिपतेः श्रुतकेवलिदेशीयाचार्यस्य शाकटायनस्य ॥"

ऐसा लिखते हैं उसमें श्रमणसंघाधिपति और श्रुतकेवली शब्द ऐसें हैं, जो केवल जैनधर्मके सांकेतिक शब्द है; यह शब्द दूसरे धर्मपुस्तकमें नहीं मिलते हैं

---

* PROFESSOR GUSTAV OPPERT PH. D WRITES —

Panini refers to Sákatayana as a previous Grammarian and this supplies a reason why the latter makes no mention of the former Sákatayana's name occurs also in the Pratisákhyas of the Rigveda and Sukla-Yajurveda, and in Yàskà's Nirukta.

The Colophon at the end of each Pàda of the Sábdanusasana names this Grammar as the work of Sáktayana Srutakevalideśiyacharya the president of the great Jain assembly महाश्रमणसंघाधिपते श्रुतकेवलिदेशीयाचार्यस्य शाकटायनस्य

Panini repeatedly mentions Sáktayana and the places thus alluded to are also found in the Sábdanusasana. Panini III 4 111 VIII 3 18 and VIII 4 50 correspond respectively to Sakatayana's व्यात् छियो लेर्नुस्वा (pp. 35 9 & 220 290) वानुन्यात् (pp. 8 12 and 14 65) and व संयोगे (pp 6 18 and 9 31).

३. इस व्याकरणकी वहोतसी टीकायें हाथ लगी है. उन टीकाकारोंने भी शाकटायनाचार्यको परम जैनी कहा है. उसका मात्र एक दृष्टांत यह है कि टीकाकार यक्षवर्मन कहते हैं किः—

स्वस्तिश्रीसकलज्ञानसाम्राज्यपदमाप्तवान् ॥
महाश्रमणसंघाधिपतिर्यश्शाकटायनः ॥

अर्थः—सब ज्ञान प्राप्त करके जिनोने विद्वानोंमें चक्रवर्त्ती पद प्राप्त किया है, ऐसे महान साधुओंके संघका अधिपति (जैनाचार्य) शाकटायनाचार्य भये हैं.

४. शाकटायनाचार्य जैनी सिद्ध हुये, अब मूल वातपर आके जैनधर्मका प्राचीनपणा मुजको प्रसिद्ध करना चाहीये.

प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनी ऋषिके पहिले शाकटायनाचार्य हुवे हैं, यह बात सिद्ध है, क्योंकि—

त्रिप्रभृतिषु शाकटायनस्य ॥ लङः शाकटायनस्यैव ॥ व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य ॥

इत्यादि सूत्र पाणिनी ऋषिने अपने व्याकरणमें दाखल किया है. परंतु शाकटायन व्याकरणमे पाणिनिका नाम भी नजर नही आता, इससें सिद्ध है कि शाकटायनाचार्य पाणिनि ऋषिके पहिले हुए हैं.

पाणिनि ऋषिने शाकटायनके कितनेही सूत्र कुछ भी फेरफार किये विना अपने व्याकरणमे दाखल किये हैं. जैसेकि—

त्वाहौ सौ ॥ यूयवयौ जसि ॥ तुभ्यमह्यौ ङयि ॥ इत्यादि.

पाणिनिव्याकरणके महाभाष्यका कर्त्ता पतजली ऋषि भी शाकटायनको याद करते हैं कि—

नामचधातुजमाह व्याकरणे शकटस्यचतोकम् ।
वैयाकरणानां च शाकटायन आह धातुजं नामेति ॥

Patanjali in his Mahabhashya refers also to Sákatayana when he comments on Panini III 4, 111 and III 3, 1 (उणादयो बहुलम्) In the latter place he remarks —
नामचधातुजमाह व्याकरणे शकटस्यचतोकम् । वैयाकरणानां च शाकटायन आह धातुजं नामेति ॥

In fact the Unadisutras of Sáktayana have found general admission among Grammarians and have been annotated by various commentators such as Ujjvaladatta, Mádhava and others.

कवि कल्पद्रुमका कर्त्ता बोपदेव भी शाकटायनको प्राचीन वैयाकरण गीनते है

इन्द्रश्चन्द्रकाशकृत्स्नापिशली शाकटायन ।
पाणिन्यमरजैनेन्द्रा जयन्त्यष्टादिशाब्दिका ॥

अर्थ-इन्द्र, चन्द्र, काशकृत्स्न, आपिशली, शाकटायन, पाणिनि, अमर और जैनेंद्र यह आठही वैयाकरण प्राचीन है

उक्त प्राचीनाचार्य शाकटायनका नाम ऋग्वेद और शुक्ल यजुर्वेदकी प्रतिशाखा और यस्कराकी निरुक्तिमें भी आता है, इत्यादि लिखना प्रो० आपटका है विस्तारपूर्वक देखना होवे तो उक्त व्याकरणमें देख लेवें

यह जैनधर्म कि जिसकी प्राचीनता महान विद्वानोंने पुरा खोज करनेके बाद कबूल किई है, उसका रहस्य क्या है ? जैनी ईश्वरको कर्त्ता नही मानते है, जिस बातका खुलासा इस पुस्तकमें आयेगा यह जैनधर्म कितना बडा विस्वाला है कि केवल एक धर्म, एक बाती, एक प्रजा गिनता है देशात्मके लिये कितनी छूट ! जैनी अनादि सदामुक्त जगत्का कर्त्ता हर्त्ता ऐसा एक ईश्वर नहीं मानते हैं परंतु प्रजासत्ताक राज्य (समानकार्य करनेवाला एक सरिखे हकके भागी) के माफिक, तीर्थंकर जिनको जैनी ईश्वर मानते हैं, व मनुष्य थे आत्माको विध्नमके समान कर्मका त्याग किया राग द्वेषरूप दुश्मनोंका क्षमारूप शस्त्रसें पराजय किया केवलज्ञान पाकर सिद्धगतिको प्राप्त भये ईसी रस्ते जानेका मार्ग उन्होंने दूसरोंको दिखाया और ऐसा मार्ग दिखाया कि दूसरोंको

Sâktayana is mentioned as one of the eight principal Grammarians in the well known Sloka found in the Kavikalpadruma of Bopadeva and elsewhere. These eight Grammarians thus named are —

Indra Chandra, Kasakrtsana Apisali Sâktayana Panini, Amara and Jainendra The Sloka runs as follows —

इन्द्रश्चन्द्रकाशकृत्स्नापिशली शाकटायन । पाणिन्यमरजैनेन्द्रा जयन्त्यष्टादिशाब्दिका ॥

Sâktayana mentions in his Sutras only Indra, pp. 11 14 and 34 9? Siddhantadin pp 17 1 and 8? 31 and Aryavajra pp 10 11 and 1 13 as previous Grammarian

× × × × × × × × × ×

A striking feature of the Sâbdanusasana is that it does not treat of the Svaravaidika while Panini pays particular attention to it. Vedic words however are otherwise much noticed by Sâktayana and in this respect his work is not different to Panini.

The omission of the Svaravaidika accounts perhaps for the neglect Sâktayana has suffered at the hand of the Brahman while it explains the favour with which it is regarded by the Jains. If Sâktayana was Jaina this omission must be regarded as intentional. &c &c &c &c &c &c

सरल रस्ता मिल सके. यदि दूसरें भी ईसी तरह वर्त्ते तो तीर्थंकर होना शक्य है. गत, वर्त्तमान और अनागत चोवीसीके सव तीर्थंकर चरित्र नीति और गुणमें श्रेष्ठ हैं. उन गुणोंके प्रकाश करनेवाले सूत्रोंको देखनेसें कोई विरुद्ध वात पाई नहीं जाती है. चक्रवर्त्तीकी याचना करनेसें वो दूसरेको समान नहीं कर सकता है; श्रीजिनदेवकी भक्ति तो जिनराजही कर देती है.

जैन धर्मका रहस्य यह है कि सव जिवोंका रक्षण करना (दया पालनी). सवको समान समजना, भ्रातृभाव रखना, विद्याशाला, औषधालय, पशुशाला स्थापना, साथ मिळकर भक्ति करना, पापका पश्चात्ताप करना, पापकर्मसें छुटनेको धर्मका ज्ञान संपादन करना, पाप नहीं करनेको दृढ निश्चय करना, किसीसें राग द्वेष नहीं करना, अगर भूलसें वा प्रमादके वशसें होगया होवे तो मनमें पश्चात्ताप करके क्षमाका चाहना, सद्धर्मको फैलाना, प्रवृत्तिमार्गको त्यागके निवृत्तिमार्ग लेना, आत्मज्ञान प्राप्त करना, पापरहित उद्यममें प्रवर्त्तना, मन, वचन, काया, (कर्म)सें पवित्र होना, सत्य वोलना, ब्रह्मचर्य पालना, क्रोध, मान, माया, लोभ, आदिका त्याग करना, संयम, मनोनिग्रह और तप करना. धर्ममार्गको पुष्टी देनेवाले येह तमाम कार्य हैं. इनको साध्य करनेको और आत्माके कल्याण करनेको निर्लोभी, निर्विकारी, शांत, दांत, संयमी विद्वान सद्गुरुके सदुपदेशकी अतीव आवश्यकता है.

जैनलोक दयाको मुख्यताकरके मानते हैं. उसका सवव यह है कि "दया" का अर्थ अंतरंग वृत्तिसें दूसरोंके हितके विषे द्रवित होना. "दया" शब्दके वाच्यार्थका अंगिकार आर्यप्रजाके सव दर्शनानुयायिको मान्य है. "दया" शब्दका लक्ष्यार्थ समजनेका दावा सव करते हैं, परंतु दयाका श्रेष्टोत्तम लक्ष्य तो जिस दर्शनशास्त्रमें सर्व आत्माको समान गिनकर स्थावर और जंगम जिवात्माओंका अनेकानेक भेद सूक्ष्मोत्तम प्रकारसें वर्णन किया हो, उस दर्शनके शिवाय कुशाग्रवुद्धिद्वारा अवलोकन करनेवालेको भी प्रायः नजर आता नही है.

नैयायिको अपनी शास्त्रीय परिभाषामें दयाका पालना सप्रेम स्वीकारता है. परंतु कौनसें कौनसें द्रव्य सचित्त है, किस प्रकारके वर्त्तनसें उनको संक्लिष्टता होगी, ऐसे भेदांतर-सह भिन्न भिन्न प्रकारका विवेचन नैयायिकदर्शनमे दृष्टिगोचर होता नहीं है; तो उस दर्शनके संप्रदायिको तो कहांसे समज शके ? सांख्यदर्शनवेत्ता सूक्ष्म पर्यालोचनापूर्वक दयाका रहस्य दिखा सकते हैं, ऐसा कहना उनके शास्त्रशैलिके अनुभव करते हुए, निष्पक्षपाति शास्त्रा-भ्यासिको मान्य नहि है. पूर्वमीमांसको यज्ञादिक कर्मोंकरके पंचेंद्रियातिर्यक प्राणिका भोग देके धर्म मानते हैं और दयाकी अभिरुचिवाले अपनेको वताते हैं. मीमांसको दया शब्दका पारमार्थिक रहस्य समजते नहि है, इतना नहि परंतु दया शब्द शुकवत् वाणी मात्र कह जानते है. वेदान्तवेत्ताओ पृथ्वी, अप, तेज, वायु, वनस्पति ये सवमें चेतनसत्ता स्विकारके इन २ तत्त्वोंके जीवात्मा सुषुप्ति अवस्थावाले हैं, ऐसा समजके उनके प्राण, व्यतिपात करते हुए, पापोद्भव मान्य करतें नहि है. याहुदी, जरतोस्ती, महम्मदीय प्रजा स्थावर जंगमात्मक सव द्रव्योंमें ईश्वरी सत्ता स्विकारके, जंगम जीवोंमें आत्मतत्त्व शास्त्रशैलिसें मान्य रखकर दयाशब्दकी प्रियता वताते हैं, तो भी भक्ष्याभक्ष्यका लक्ष रखते नहि है. क्रिश्चियन धर्मवेत्ताओ मनुष्यके शिवाय अन्य प्राणीओंमें आत्मा[illegible]स्तित्व स्विकारते नहि है. अन्य

प्राणीओंमें प्रत्यक्ष प्रमाणसें चेतनाका अनुभव होता है, तो भी कौनसें विशेष प्रबल प्रमाणसें ऐसा कहते हैं, यह समजना पक्षपातसें तटस्थ रहकर अवलोकन करनेवालेको कष्टसाध्य है. मनुष्यमें आत्मतत्त्व अंगीकार करके दया करनेका प्रेमपूर्वक स्विकारते हैं, ईसी तरह जगसमुदायके अनेकानेक सम्प्रदायिको दयाका लक्ष्य आपनी भिन्न २ शक्तिके अनुसार स्वीकारके वर्णन करते हैं दयाका वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थका भिन्न भिन्न स्वरूप सर्व दर्शनाभ्यासियोंको द्रष्टव्य होगा

यदि निरीक्षक उत्तम बुद्धिमान निष्पक्षपाती और विचारविवेकसपन्न होवेगा तो स्वाभाविक रीतिसें दयाका सर्वांशे लक्ष्यका ग्रहण करनेवाले दर्शनका विजय सिद्ध करके सर्वोपरि दयाके रसास्वादकी उत्तमोत्तम दिव्य प्रसादिका सुशील आत्मप्रणीकी प्राप्तिके उत्सुक मुमुक्षुवर्गको रसास्वाद प्राप्त करावेगा यह बात निःसंदेह है सर्वांशसें दयाका लक्ष्यार्थ प्रतिपादक दर्शन, विनय, क्षमा, ज्ञान, ध्यान, चारित्र, तप, स्वाध्याय, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, सौजन्यता सुशीलतादिके शुद्ध स्वरूपका तादात्म्य दिखा सके यह स्वाभाविक है क्योंकि दया यह धर्मरूप वृक्षका बीज है, सर्वांगपूर्णबीज बोया जावे और शास्त्रविचाररूप जल योग्य रीतिसें शुद्ध मतिज्ञानरूप भूमिमें सेचन किया होवे तो विनयादि अन्यधर्म लक्षण अनायाससें प्राप्त होवे जिसमें आश्चर्य क्या ? जैनदर्शनमें दयाका मार्गसें वर्णन करनेके अनेक प्रकार है प्रथम शास्त्राधिकारीको भी आकर्षणकारी मनोहर दयामार्ग जैनदर्शनकी मध्यतामें पूज्यता उत्पन्न कराके निरीक्षकको दया मार्गमें रसलुब्ध करनेमें सदाकाल विजयी होगा, ऐसा उत्तम शास्त्राभ्यासियोंका मानना है

जैनदर्शनमें स्थावर प्राणियोंका पृथ्वी, पाणी, अग्नि, वायु, और वनस्पति ऐसे पांच भेद है जंगमके द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचेंद्रिय, ऐसे चार प्रकार परम विशुद्ध भावनासें प्रतिपादन करके उनउन प्राणियोंके लक्षण दिखाकर स्वआत्माकी तरह सर्व प्राणीके आत्माको समजके उनके तरफ समानबुद्धिसें उनके आत्माको किसी प्रकारसें भी क्लेश न हो, ऐसा वर्णन करनेको उग्रब्रह्मचर्यवालाकी कांति श्रोताके हृदयमंदिरको प्रकाशित करके चांचश्रेणि सुस्थापित करी है कीतनेक धर्मावलम्बी किसी प्राणीको रोगादिसें पीडित देखकर उनकी अंतावस्था करनेमें दया मानते हैं, परन्तु जैनदर्शन अनेक प्रमाणोंसें ईस बातको असत्य ठहराकर कहता है कि सब प्राणिको चाहे जैसी दुःखी अवस्थामें भी जीवनकी इच्छा तीव्र होती है जीवन कष्टके असह्य प्रकारोंमें भी प्राणियोंको प्रीयतम होता है अनेक तीव्र वेदनासें पीडित अंतःकरणका लक्ष तो जीवन तक रखनेमेंही परम हर्षस्थान अनुभवता है, यह बात सब विचारशील मनुष्यको प्रत्यक्ष अनुभवसें प्रेय है यही सिद्धांत प्रबल प्रमाण पूर्वकसर्वज्ञ श्री महावीरने प्रतिपादन किया है स्थावर जीवात्माओंके सूक्ष्म प्रदेशमें असंख्य जीवोंका अस्तित्व स्वीकारते हैं वनस्पतिकायके प्रत्येक और साधारण सूक्ष्म भागमें असंख्य और अनंत जीवात्माओंका अस्तित्व अनेक प्रमाणोंसें सिद्ध करके दिखाया है

सब जीव चेतना लक्षणवंत है चेतना होवे वहां सुख दुःखका जानपणा नित्य होवे यह निर्विवाद है जंगम जीवोंका सुख दुःखका जानपणा स्थूल दृष्टिसें देखनेसें भी लक्षित होता है परंतु स्थावर जीवोंका ज्ञान सूक्ष्म दृष्टि सिवाय समजना दुर्लभ है चेतना

सिवाय वस्तुका वढना, कमी होना हो नहि सकता है. पृथ्वी आदिकी वृद्धि क्षयकी अनेक क्रियाओं अनेक नियमोसें निरंतर होती है. इस वातका सवको प्रत्यक्ष अनुभव है. यह वात देखते हैं तो चेतना सर्व द्रव्यमें व्याप्त हो रही है. यह स्वीकार करके भी चेतनको अंगसुख दुःखका वेदकपणा होना चाहिये यह समजना सामान्य बुद्धिसें मुश्किल है. स्थावर प्राणियोंमें चेतनको अंमसुखदुःखका जानपणा विद्यमान है. तीर्थंकरोंने स्थावर प्राणियोंमें चार संज्ञाका आहार, शरीर, इंद्रिय, और श्वासोश्वास ये चार पर्याप्ति अस्तित्व फरमाया है. जिनके नाम आहार, भय, मैथुन, और परिग्रह. वनस्पतिमें आहार संज्ञा है, जिससें वृद्धि होती है, भय संज्ञा है, जिससें पाषाणादि द्रव्य वीचमें आनेसें दूसरे मार्गसें वृद्धि होती है, मैथुन संज्ञा होनेसें नर जातिको फरशी हुई धूली नारी जातिके वृक्षोंको स्पर्श करनेसें नारी जातिके वृक्ष नवपल्लव होकर फलते हैं. *

परिग्रह सज्ञासें नये २ परमाणुको ग्रहणकरके वृद्धि होती है. वैसेंही पृथ्वी आदिमें आहारादि संज्ञाका अस्तित्व पदार्थ विज्ञानादि शास्त्रोंके अवलोकनसें अनुभवगम्य हो सकता है. स्थावर द्रव्योंमें संज्ञाका अस्तित्व स्वीकारनेसें चेतना स्वीकारी जाती है. और चेतना स्वीकारनेसें ज्ञानका अस्तित्व स्वीकारना पडता है. इस संकलनासें मालूम होता है कि ज्ञातापणाकी प्रेरणासेंही संज्ञाका उद्भव होता है. ज्ञातापणा सुखदुःखका वेदकस्वरूप होता है. स्थावरमें सुखदुःखका भोक्तापणा इस प्रकारसें संभवित होता है. जिसको सुखदुःखका ज्ञातापणा है, उसके ज्ञातापणेको क्लेश न हो, इस तरहसें वर्त्ताव रखना यही दयाका लक्षण है. ऐसी अनुपमेय वर्णन शैलिसेंयुक्त जैनदर्शनके सिद्धांत स्थावर जंगम प्राणियोंकी दया पालनेको अनेक रीतिसें स्पष्ट करके दिखाते है. दयामार्गके प्रतिपादक भिन्न २ लेख वैष्णवी, रामानुजी, चैतन्यमार्गी, कवीरपंथी, निमानंदी, दादुपंथी, नानकपंथी आदिके ग्रंथोंमें मीलते हैं वे लेख अनेक प्रमाणोसें पुष्ट किये हुवे है तथापि स्थावर जीवात्माओंकी अनेक जिवायोनीके सूक्ष्म विवेचनयुक्त लेख सत्यनिष्ट अंतःकरणवाले बुद्धिकौशल्य शील पुरुषको जैन तत्त्व दर्शनिक शास्त्रोंके सिवाय दृष्टिगोचर कदापि नहिं होगा. तीर्थंकरप्रणित जैन तत्त्वशास्त्रोंमें दया यही धर्मका रहस्य गिनकर ज्ञान, दर्शन, तप, संयम, वृत्तादिक निरूपण करके अरूपी आत्माका अवर्णनीय स्वरूप लक्षणोंद्वारा आत्मा अनात्मा (जीव अजीव) पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा वंध और मोक्ष. इन नव तत्त्वोंका अति स्फुट वर्णन दृष्टिगोचर कराके गुरुद्वारा, शास्त्राध्ययन करनेवालेको सम्यकवोधसें आत्मविचारश्रेणिकी अलौकिकतामें आनंदमय कर देता है सम्यक्ज्ञान, सम्यक्दर्शन, सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयि जैन

* युरोपियन तत्वज्ञानियोंने ईसी माफक शोध की है कि नर वृक्षके फूलादिकी रज उडकर नारि जातिके पुष्पमें प्रवेश करे, जब इस मैथुनसें नारि वृक्ष फलता है वध्या प्राय दाडिमादि वृक्षके फलानेको इस इलाजको काममें लगाते हैं, यह शोध पांच पचास वर्षकी वताते हैं, परतु जैनसिद्धांतमें अनादि काळसें यह वात मान्य है सर्वज्ञप्रणित धर्ममें किस वातकी न्यूनता होवे ! देखो कि मख्खनमें वहुत वारिक जीव है ऐसा एक युरोपियन विद्वानने थोडा समय हुवा शोध करके निकाला है और ईस शोधके लिये उसका दुनीयाके विद्वानवर्गमें बहुमान हो रहा है. परतु जैनीका एक लडका भी जानता और मानता है के मख्खनमें एक अतर्मुहूर्त्तमें (४८ मीनीट) असंख्य जीव पैदा होते हैं वासी रोटीमें, पाणीके एक बिंदूमें असख्य जीव आजके विद्वान सुक्ष्मदर्शकयत्र (खुर्दवीन) द्वारा देखते हैं. परंत यह सिद्धांत जैनी अनादि कालसें मानते आये हैं.

तत्त्वज्ञानसागरकी रत्नराशि है उस रत्नराशिकी कान्ति मात्र दया शब्दके रहस्यमें अंतर्भूत होती है दयाका मनमंदिरमें प्रादुर्भाव (उत्पत्ति) होतेही बुद्धि साम्यपनेको प्राप्त होती है सर्व प्राणीप्रति समान भावसे देखनेवाले जीवात्माको अंतरंगमें अपना और अन्यका ऐसा विरोधी विकारका क्षय होके सर्व प्राणीप्रति आत्मभावका अनुभव होता है सर्व प्राणीप्रति आत्मभावना होनेसे आप संसारसागरमें एक बिंदु समान है, ऐसी बुद्धिवाला सर्व प्राणीप्रति समानता अनुभवनेवाला आत्मा अपने आपको विश्व रहस्य रूप देखकर अंतमें परम आत्मस्वरूपकी वृद्धि प्राप्त करके परमानंद संपत्ति संपन्न हो सकता है जैनतत्त्वज्ञानकी अपूर्व उद्देशसे रचके अपूर्व गांभीर्यता उसके निरीक्षकको बताकर परम विशुद्ध मुक्तिमार्गका प्रतिपादन करता है जैनतत्त्वविचारके अनुयायी अनेक पुरुष पूर्वकालमें प्रगट हुए थे, उन्होंने अनेक भगवद्वचनानुसार स्वरचित ग्रंथोंसे जैनतत्त्वामृतकी प्रसादी अपनी बुद्धिबलकी प्रबलतासे उनके समयानुसारीको दीथी वैसे वर्तमान समयमें उन्होंके बोध हुए सद्ग्रंथोंके वचन सत्यशील शास्त्राभ्यासीको वचनामृतरूपकरके दिव्यता दृष्टव्य करते हैं ऐसा एक महान दर्शनके अनुयायिओंने अपने तत्त्वमार्गकी जनसमुदायके अन्य धर्म सिद्धांतके सामने महत्त्वता प्रगट करके बतानी यह उनकी बडी भारी फरज है परंतु कालबलके प्रबल प्रतापसे इस मार्गके अनुयायी स्वधर्मकी महत्त्वता जिस किसी अंशसे जानते हैं उसनीका भी उदय करनेमें अपनी उत्साहशक्तिका उपयोग नहीं कर सकते हैं इस पुस्तकका बनना इसी उपयोगकाही फल है ऐसा उत्साह रहित होना कालमहात्म्यकी अपूर्व कलाका दिग्दर्शन नजर आता है जिस दर्शनके प्रवर्तक पुरुष सर्वज्ञ थे, जिस दर्शनके मुनि (साधु) उत्तम चारित्र संपत्तिमान थे, जिस दर्शनके अनुयायी गृहस्थ त्यागयुक्त वृत्तिवाले होकर अवधि ज्ञानादि संपत्ति प्राप्त करते थे, उस दर्शनके वर्त्तमान समयानुसारी शास्त्र परिभाषाके पंडित होनेकी एवजमें शास्त्रशब्दके रहस्य समजनेमें भी प्राय: शक्तिवान नहीं है ऐसा है तो कालके महात्म्य सिवाय और क्या कल्पना करी जावे ! अर्थात कालकी कलाही ज्ञान दृष्टिके मार्गमें ले जानेके बदले पंचेंद्रियके रसानंदमें मग्न कर देती है प्रो० मेक्स मुलर आदि पाश्चात्य तत्त्ववेत्ता जो कि आर्य दर्शन शास्त्रके प्राय: निष्पक्षपाती निरीक्षक है, सो भी जैनदर्शनकी महत्त्वता सर्वथा कबूल करते हैं; वो जैनधर्मावलंबी जैन तत्त्वशास्त्रकी महत्त्वता जनमंडलमें प्रगट करनेके स्थानमें आपही शास्त्राध्ययन करके रहस्य समजनेमें प्रवृत्ति नहीं करते हैं ऐसा है तो कालरूप जादुगरकी रची हुई व्यावहारिक वैभवकी जालमें जकडे हुए हैं, ऐसाही कहना पडता है

जैनतत्त्वज्ञान संबंधी विचार व्यवहार और परमार्थकी उन्नति योजनेमें साधनभूत है तत्त्वज्ञानानुसार वर्त्तन करनेवालेको परमसुख करता है रत्नत्रयिके अनुभवसे आत्मज्ञान प्राप्तकरके मुक्तिमार्गकी परासीमा स्वीकारी है रत्नत्रयिका अनुभव, सद्देव, सद्गुरु, और सद्धर्मकी समज सिवाय प्राप्त हो नहि सकता है आत्मस्वरूपका पूर्ण ज्ञाता आत्मस्वरूप अनुभवी सर्वज्ञ वोही सद्देव, क्रोधादि कषायोंका क्षय करके अंतर सत्यनिष्ठावान वैराग्य संपन्न शास्त्राभ्यासी वोही सद्गुरु, कर्ममलसे निर्मल होनेका सदुपदेश बोधक मार्ग वोही सद्धर्म, इस त्रिपुटीको स्वरूपके अनुभवी शास्त्राध्ययन करनेवाला रत्नत्रयि संपन्न हो

सकता है. रत्नत्रयि संपादित हुआ और सर्वज्ञादि विभूति शीघ्र प्राप्त होती है. सर्वज्ञादि विभूतिकी प्राप्ति ज्ञानमार्गके उदयसे परिणाममें प्राप्त होती है. और ज्ञानमार्गका उदय अलौकिक भावनासे भीजे हुए जैनमार्गकी शैलिकी महत्वता जैनदर्शनशास्त्रके अभ्यासकी वृद्धी होनेसेही हो सकता है. उसका उमदा रस्ता यह है कि हिंदुस्थानमें मुंबई जैसे एक मध्यस्थानमें एक बडी जैन पाठशाला स्थापित होनी चाहिये कि जिसमे अंग्रेजी–देशी सांसारिक केलवणीके साथ धार्मिक केलवणी बालपणसेही दीजावे बडे बडे शहरोंमें शाखा–पाठशालाए स्थापित करनी चाहिये. सद्बोध प्राप्त हुए विना कार्यकी सिद्धी नहीं होती है. ख्रिश्चनलोक कि जिस धर्मको वे ठीक समजते है, उसकी वृद्धि करनेके वास्ते करोडो रुपैयोकी कान्तिका मोह उतारके व्यय करते हैं. धर्मके पुस्तकोंकी लाखो नकलें छपाके लागतसें भी कमदामसे बेचते हैं. मुसलमान, याहुदी, पारसी, आदि प्रथम धर्मकी केलवणी अपने बच्चोंको देकर फिर उदर पोषणकी सांसारिक विद्या पढाते हैं. धर्माभ्यासके लिये इन लोकोंने जब सेंकडों शालाए बनाई है, तो सत्यके अपूर्व कीर्त्तिस्तंभकरके सुवर्णलताकी कान्तिरूप जैनदर्शनके अनुयायी उदरनिर्वाहकी व्यवहारग्रंथीमें लिपटके परमार्थ मार्गकी स्वप्नावस्थामें कालरात्री गुजार रहे हैं. धनसंपन्नवर्ग विषयास्वादमें मग्न है, मध्यमवर्ग व्यवहारपटुतामें लुब्ध है. अधमवर्ग उदरनिर्वाहकी चिंतामें है. पंडित भावनासें शास्त्राभ्यासका कोई भी सुशील अवलोकन करनेवालेको अपूर्व जैनदर्शनकी यह स्थिति देख करके दया धर्मके प्रतिपादक जैनदर्शनपर दया करनेकाही समय आया है. विवेकी धनसंपन्न जैनधर्मीयोंको चाहिये कि अब अपने हृदयचक्षुसे धर्मकी स्थितिको देखकर जैनतत्त्वशास्त्ररूपरत्नको पहेल पढाके उसकी शुद्ध कांति प्रगट करनेको उद्युक्त होकर अपनी फरज यहि अपना कर्तव्य समजे, यही जीवनका तात्पर्य समजे, शिशुवयका बोध ज्ञानतंतुमें स्थायी रह सकता है, उसके संस्कार जीवनपर्यंत जींदगीको मधुरी निर्दोष करनेको सामर्थ्यवान् है. धर्मानुरागीको चाहीये कि ऐसी जैन पाठशाला स्थापन करानेमें उद्यमवंत हो ये अपूर्व ज्ञानामृतकी प्रसादीका लाभ अपने बालकोंको दे, इसमें अपना, अपने महान् धर्मका, अपने कुल, जाति और देशका उदय है. ऐसी एक पाठशाला स्थापन करनेको स्वर्गवासी बाबुसाहेब पन्नालालजीने अपने धनका सदुपयोग चार लाख रुपये ज्ञानमार्गमें देकर किया है. इस पाठशालाके लिये कई विद्वानोंकी सम्मति लेकर " बाबु पन्नालाल आत्म[१] जैन पाठशालाकी योजना " ऐसे नामसे मेरी तरफसे एक योजना पत्र तयार किया है.

जैनधर्म अनादि होनेकी पुष्टीमें यह सिद्ध है कि मूल आर्य वेदोंके छत्तीस उपनिषद् जो जैनशैली अनुसार जैनोंमें मौजूद है, जिसपरसे और दूसरे संजोगोंसे यह बात सबूत होती है कि आधुनिक वेद कोई नयेही वेद है जैन इतिहास कहता है कि पहेले तीर्थंकर श्रीऋषभनाथके पुत्र भरत चक्रवर्त्तीने अपने पीताके उपदेशसें गृहस्थ अर्थात् श्रावक धर्मके निरूपक चार वेद श्रावक ब्राह्मणोंके पढनेके वास्ते रचे. ये वेदोंके नाम

१ "आत्म" शब्दसे यह भावार्थ है कि स्वर्गवासी बाबुजीका यह निश्चय था कि महाराज श्री आत्माराम जीके नामसें एक पाठशाळा (जैन–कॉलेज) स्थापन करके यह परम उपकारी सद्गुरुका नाम अमर रखना.

(१) ससारादर्शन वेद (२) संस्थापन परामर्शन वेद (३) तत्त्वावबोध वेद (४) विद्या प्रबोध वेद ब्रह्मचर्य पालनेवालोंका नाम ब्राह्मण था यह आर्यवेद और सम्यग्दृष्टि ब्राह्मण ये दोनों वस्तु श्रीसुविधिनाथ पुष्पदंत नवमे तीर्थंकर तक यथार्थ चली दक्षिणमें कितनेक ऐसे वैदिक ब्राह्मण अब भी विद्यमान है, जो आधुनिक वेदोंसे कोई अन्य रीतीका वेद मत्र पढते हैं ये आर्यवेद कि जिसको तमाम जैन मानते थे विच्छेद होगये, परन्तु उनके ३६ उपनिषद् मोजूद हैं यह प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथसे कला, राजनीति, कृषी, अग्नि इत्या दिका आरम हुवाहै (मनुजी भी मनुस्मृतिमें ऐसाही लिखते हैं आगे श्लोक देखो) श्री सुविधि नाथके पीछे, जब आर्यवेद विच्छेद हो गये, तब उस वख्तके ब्राह्मणाभासोंने अनेक तरहकी श्रुतीयां रचीं उनमें इंद्र, वरुण, पूषा, नक्र, अग्नि, वायु, अश्विनी, उषा इत्यादि देवताओंकी उपासना करनी लोकोंको उपदेश किया, अनेक तरेहके यजन याजन करवाए, और कहने लगे कि हमने इशीवराह अपने हृदोंसे सुना है इस हेतुसे तिन श्लोकोंका नाम श्रुति रक्खा अपने आपको गौ, भूमी, आदि दानके पात्र ठहराये, और जगद्गुरु कहलाने लगे इन हिंसक श्रुतियोंको वेदके नामसे प्रचलित की वेदव्यासजीने श्रुतिए एकठी कीं, और जुदे जुदे कारणोंसे उनके चार नाम रक्खे जो सांप्रत कालके ब्राह्मणोंके ऋग्, यजुस् साम और अथर्ववेद हैं व्यासजीने ब्रह्मसूत्र रचा सो वेदांतमतके ये मुख्य आचार्य कहे जाते हैं यह वेदव्यासजीने ब्रह्मसूत्रके तीसरे अध्यायके दूसरा पादके तेतीसमे सूत्रमें जैनोंकी सप्तभगीका खंडन कीया है, जिसका भावत्व होता है, उसका खंडन लिखा जाता है, तो वेदव्यासजीके वख्तमें जैन धर्म विद्यमान था वेदव्यासजीके शिष्य जैमिनीने मीमांसा बनाया व्यासजीके शिष्य वैशंपायनके शिष्य याज्ञवल्क्यको गुरु और दूसरे ऋषीओंके साथ लडाइ होनेसे उनोंने यजुर्वेद छोडके शुक्ल यजुर्वेद" बनाया इत्यादि कहांतक विस्तार किया जाय पुराणादि ग्रंथोंने एक दूसरेको और वेदोंका यथेष्ट खंडन किया है यहांतकके पढनेवालोंको भी नागेवार मालूम होता है इस ग्रंथमें जैन धर्मकी प्राचीनता वेदोंसे पहेलेकी अच्छे प्रमाणोंसे सिद्ध की है फिर इन्ही वेदोंमें स्मृतिम, महाभारत, भागवत पुराणादि ग्रंथोंमें लीखे हुए जैन धर्मकी प्राचीनताका अन्य प्रमाण भी नीचे लीखा जाता है उनको पाठकगण निष्पक्षपाती होकर पढे और सत्यासत्यका विचार करे कीतनेक लोक कपोलकल्पित शंका करते हैं कि जैनधर्म बौधकी शाखा है उनको कहा जाय कि जैनमत बौद्धकी शाखा नहीं, परन्तु एक अनादि धर्म है, जो इस पुस्तकके स्तंभ ३३ में ऐतिहासिक और प्रीन्स लर्खोंके प्रमाण द्वारा और मा० जकोबीका प्रमाण देकर अच्छीतरह सिद्ध किया है फिर भी बौद्धोंके ग्रंथ "महाविनयसूत्र" और "समामफलसूत्र" में जैनोंके चोवीसमे तीर्थंकर श्री महावीर स्वामिका "ज्ञातपुत्र" त्रिनाम यहान संबंध लिखा है, बौद्धोंका "विनयपीपार्डीका" अथवा तरजुमा "लाईफ ऑफ धी बुद्ध" नामा पुस्तकमें मा० ज टवन्यु बदर्षीम रातीस्न किया है, जिसका पृष्ठ ६०, ६६, १०१, १०४ पर जैनोंके निर्ग्रंथक सबंधमें और पृष्ठ ७०, ९६, १०४, २५९ पर महावीर स्वामीके लिए जो छपा है वो पढनेसे पाठक गण संबोधित होंगे कि प्रथम बुद्धके वख्तमें जैनधर्म विद्यमान था तिसमें उस राजा बिंबिसार भी आई है वो बनाया हुवा "इति

हास तिमिरनाशक" ग्रंथका प्रमाण देकर कहते हैं कि जैनधर्म बौद्धकी शाखा है; परंतु सन १८७३ में उनोंने ऐक पत्र बनारससे पंजाबका गुजरांवाला शहरके जैन समुदायपर लिखा था उसमें लीखा है, कि "जैन, बौद्ध मत एक नही है,सनातनसें भिन्न भिन्न चले आये हैं, जर्मनी देशके एक बडे विद्वानने इसके प्रमाणमें एक ग्रंथ छापा है." वगैरेह बहोत प्रमाण हैं. कहांतक लिखा जाय ?

उपर लिखे जैनकी प्राचीनताके कितनेक वेदादि प्रमाण मोक्षमार्ग प्रकाश आदि ग्रंथानुसार लिखे जाते हैं.

॥ श्री भागवत ॥

नित्यानुभूतनिजलाभनिवृत्ततृष्णः श्रेयस्यतद्रचनयाचिरसुप्तबुद्धेः ।
लोकस्ययोकरुणयोभयमात्मलोकमाख्यान्नमोभगवतेऋषभायतस्मै ॥

अर्थः--उस ऋषभदेव (जैनोंकेप्रथम तीर्थंकर) को हमारा नमस्कार हो. सदा प्राप्त होनेवाले आत्मलाभसें जिसकी तृष्णा दूर होगई है, और जिन्होंने कल्याणके मार्गमें झूठी रचनाकरके सोते हुए जगतकी दया करके दोनों लोकके अर्थ उपदेश किया है ॥

॥ श्री ब्रह्माण्डपुराण ॥

नाभिस्तु जनयेत्पुत्रं मरुदेव्यां मनोहरम् ।
ऋषभं क्षत्रियश्रेष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूर्वकम् ॥
ऋषभाद्भारतोजज्ञे वीरपुत्रशताग्रजः ।
राज्येऽभिषिच्य भरतं महाप्राव्रज्यमाश्रितः ॥

अर्थः--नाभिराजाके यहां मरुदेवीसे ऋषभ उत्पन्न हुए जिनका बडा सुंदर रूप है, जो क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ और सब क्षत्रियोंके आदि हैं ॥ और ऋषभके पुत्र भरत पैदा हुवा जो वीर है और अपने सौ (१००) भाईयोंमें बडा है ॥ ऋषभदेव भरतको राज देकर महा दीक्षाको प्राप्त हुए अर्थात् तपस्वी होगये ॥

भावार्थः—जैन शास्त्रोंमें भी यह सब वर्णन इसही प्रकार है ॥ इससे यह भी सिद्ध हुवा कि जिस ऋषभदेवकी महिमा वेदान्तिओंके ग्रन्थोंमें वर्णन की है, जैनी भी उसही ऋषभदेवको पूजते हैं, दूसरे नहीं.

॥ श्री महाभारत ॥

युगेयुगे महापुण्यं दृश्यते द्वारिका पुरी ।
अवतीर्णो हरिर्यत्र प्रभासशशिभूषणः ॥
रेवताद्रौजिनोनेमिर्युगादिर्विमलाचले ।
ऋषीणामाश्रमादेव मुक्तिमार्गस्य कारणम् ॥

अर्थ—युग २ में द्वारिकापुरी महा क्षेत्र है, जिसमें हरिका अवतार हुवा है जो प्रभास क्षेत्रमें चन्द्रमाकी तरह शोभित है ॥ और गिरनार पर्वतपर नेमिनाथ और कैलाश (अष्टापद) पर्वतपर आदिनाथ अर्थात् ऋषभदेव हुए हैं ॥ यह क्षेत्र ऋषियोंके आश्रम होनेसें मुक्ति मार्गके कारण है ॥

भावार्थ-श्री नेमिनाथस्वामी भी जैनियोंके तीर्थंकर है और श्रीऋषभनाथको आदिनाथ भी कहते हैं, क्योंकि वह इस युगके आदि तीर्थंकर है ॥

॥ श्री नागपुराण ॥

दर्शयन् वर्त्म वीराणां सुरासुरनमस्कृतः ।
नीतित्रयस्य कर्ता यो युगादौ प्रथमो जिनः ॥
सर्वज्ञ सर्वदर्शी च सर्वदेवनमस्कृत ।
छत्रत्रयीभिरापूज्यो मुक्तिमार्गमसौ वदन् ॥
आदित्यप्रमुखा सर्वे बद्धाजलिभिरीशितुः ।
ध्यायति भावतो नित्य यदध्रियुगनीरजम् ॥
कैलासविमले रम्ये ऋषभोय जिनेश्वर ।
चकार स्वावतारं यो सर्वः सर्वगत शिव ॥

अर्थ—वीर पुरुषोंको मार्ग दिखाते हुये सुर असुर जिनको नमस्कार करते हैं जो तीन प्रकारकी नीतिके बनानेवाले हैं, वह युगके आदिमें प्रथम जिन अर्थात् आदिनाथ भगवान् हुए. सर्वज्ञ (सबका जाननेवाले,) सबको देखनेवाले, सर्व देवोंकरके पूजनीय, छत्र त्रयकरके पूज्य, मोक्षमार्गका व्याख्यान कहते हुए, सूर्यको आदि लेकर सब देवता सदा हाथ जोडकर भाव सहित जिसके चरणकमलका ध्यान करते हुए ऐसे ऋषभ जिनेश्वर निर्मल कैलास पर्वतपर अवतार धारण करते भये जो सर्वव्यापी हैं और कल्याणरूप हैं ॥

भावार्थ—जिन अर्थात् जिनेश्वर भगवानको कहते हैं जिनभाषित अर्थात् भगवानका कहा हुवा मत होनेके कारण जैनमत कहलाता है । उपरोक्त श्लोकोंमें श्रीऋषभनाथ अर्थात् आदिनाथ भगवानको जिनेश्वर कहकर महिमा की है ॥

॥ शिवपुराण ॥

अष्टषष्टिषु तीर्थेषु यात्राया यत्फल भवेत् ।
आदिनाथस्य देवस्य स्मरणेनापि तद्भवेत् ॥

अर्थः—अडसठ (६८) तीर्थोंकी यात्रा करनेका जो फल है, उतना फल भी आदिनाथके स्मरण करनेहीस होता है ।

॥ ऋग्वद ॥

ॐ त्रैलोक्यप्रीतिष्ठिताना चतुर्विंशतितीर्थंकराणां ।
ऋषभादिवर्द्धमानान्तानां सिद्धानां शरण प्रपद्ये ॥

अर्थः—तीनलोकमें प्रतिष्ठित श्री ऋषभदेवसे आदि लेकर श्री वर्द्धमानस्वामी तक चौवीस तीर्थकरों (तीर्थोंकी स्थापन करनेवाले) है, उन सिद्धोंकी शरण प्राप्त होता हूं।

॥ यजुर्वेद ॥

॥ ॐ नमोऽर्हन्तो ऋषभो ॥

अर्थः—अर्हन्त नाम वाले (वा) पूज्य ऋषभदेवको प्रमाण हो.

फिर ऐसा कहा हैः—

ॐ ऋषभंपवित्रं पुरहूतमध्वरं यज्ञेषु नग्नं परमं माहसंस्तुतं वारं शत्रुंजयंतं पशुरिंद्रमाहुरिति स्वाहा । उत्रातारमिंद्रं ऋषभंवदंति अमृतारमिन्द्रहवे सुगतं सुपार्श्वमिन्द्रंहवे शक्रमजितं तद्वर्द्धमान पुरुहूतमिंद्रमाहुरिति स्वाहा । ॐ स्वस्तिनः इन्द्रो वृद्धश्रवा स्वस्तिनः पूषा विश्ववेदाः स्वस्तिनस्तार्क्षोअरिष्टनेमिः स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु । दीर्घायुस्त्वायवलायुर्वाशुभजातायु ॐ रक्षरक्ष अरिष्टनेमि स्वाहा वामदेव सांत्यर्थ मनुविधीयते सोऽस्माकं अरिष्टनेमि स्वाहा ॥

अर्थः—ऋषभदेव पवित्रको और इन्द्ररूपी अध्वरको यज्ञोंमें नग्नको पशु वैरीके जीतनेवाले इंद्रको आहुती देता हू। रक्षा करनेवाले परम ऐश्वर्ययुक्त और अमृत और सुगत सुपार्श्व भगवान जिस एसे पुरुहुत (इन्द्र) को ऋषभदेव तथा वर्ध्धमान कहते हैं उसे हवि देता हूं। वृद्धश्रवा (वहुत धनवाला) इन्द्र कल्याण करे, और विश्ववेदा सूर्य हमें कल्याण करै, तथा अरिष्टनेमि हमें कल्याण करे और बृहस्पति हमारा कल्याण करे। (यजुर्वेद अध्याय २५ मं० १९) दीर्घायुको और वलको और शुभ मंगलको दे। और हे अरिष्टनेमि महाराज हमारी रक्षा कर (२) ॥ वामदेव शान्तिके लिये जिसे हम विधान करते हैं वह हमारा अरिष्टनेमि है उसे हवि देते हैं

भावार्थः—श्री ऋषभदेव श्री सुपार्श्व भगवान और अजितनाथ भगवान और अरिष्टनेमि आदि भगवान यह सव जैनियोंके तीर्थंकर है जिनकी मूर्त्ति जैनी लोग वनाते हैं और भक्ति करते है ।

॥ भागवत ग्रंथ ॥

एवमनुशास्यात्मजान्स्वयमनुशिष्टानपिलोकानुशासनार्थमहानुभावः परमसुहृद् भगवान् ऋषभापदेशः उपशमशीलानामुपरतकर्म्मणां महामुनीना भक्तिज्ञानवैराग्यलक्षणं पारमहंस्यधर्म्मसुपाशिक्षमाणः स्वतनयशतज्येष्ठं परमभागतं भगवज्जनपरायणं भरतं धराणिपालनायाभिषिच्य स्वयं

भवनएवोर्वरितशरीरमात्रपरिग्रह उन्मत्तइवगगनपरिधान प्रकीर्णकेश आत्मन्यारोपिताहवनीयो ब्रह्मावर्तात्प्रवव्राज ॥

अर्थः–वह ऋषभदेव भगवान् इस प्रकार अपने बेटोंको समझाकर उनके बेटे यद्यपि आपही ज्ञानवान् हैं तो भी लोकरीतिके अर्थ समझाकर महात्मा परम मित्र भगवान् ऋषभदेव शांति परिणामी नाश किया है कर्म जिन्होंनें, भक्तिवान् ज्ञानवान् वैरागी महा मुनीश्वरोंको परमहंस धर्मका उपदेश देते हुवे और सौ (१००) बेटोंमें बडे मनुष्योंमें तत्पर ऐसे भरतको पृथ्वीके पालनेके वास्ते राज्य देकर और आप केवल शरीरमात्र परिग्रह रखकर केश लोंचकर नग्न आत्मामें स्थापन किया है ब्रह्मस्वरूप जिन्होंने, उन्मत्तकी तुल्य पृथ्वीपर भ्रमण करते संते हमारी रक्षा करो ॥

॥ भर्तृहरिशतक, वैराग्य प्रकरण ॥

एको रागिषु राजते प्रियतमादेहार्द्धधारी हरो।
नीरागेषु जिनो विमुक्तललनासगो न यस्मात्पर ॥
दुर्वारस्मरबाणपन्नगविषव्यासक्तमुग्धो जन ।
शेष कामविडम्बितो हि विषयान् भोक्तु न मोक्तु क्षम ॥ *

अर्थः–यही प्यारी गौरीके आधे देहको धारण किये हुवे रागी पुरुषोंमें एक शिवही शोभता है और वीतरागियोंमें ऐसे जिनदेवसें बढकर और कोई नहिं है, जिन्होंने स्त्रियोंके सगकोही छोडदिया है। इन दोनोंसें जो भिन्न पुरुष है, जो दुर्वार कामदेवके बाणरूपी सर्पोंका विषके चढनेसें पागल हुए कामसें ठगे है, वे पुरुष न विषयोंके छोडनेको समर्थ है और न भोगनेको समर्थ है ।

भावार्थः–इसमें शिवको परम रागी और जिन भगवान अर्थात् जैनियोंके देवताको परम वीतरागी कहकर प्रशसा की है और राग अर्थात् विषयभोगकी निन्दा की है।

॥ योगवासिष्ठ प्रथम वैराग्य प्रकरण ॥

राम उवाच । नाह रामो न मे वाञ्छा भावेषु च न मे मन ।
शान्तिमास्थातुमिच्छामि चात्मन्येव जिनो यथा ॥

अर्थः—रामजी बोले कि न मैं राम हूं, न मेरी कुछ इच्छा है, और न मेरा मन पदार्थोंमें है; केवल यह चाहता हूं जिन देवकी तरह मेरी आत्मामें शान्ति हो

भावार्थः—रामजीने जिन समान होनेकी वांच्छा करी, इससें विदित है कि जिनदेव रामजीसे परम और उत्तमोत्तम है

*यदि पुराने छपे भर्तृहरिके ग्रंथोंमें यह श्लोक विद्यमान है, परंतु इसमें जिन देवकी स्तुति होनेसें नये छपे ग्रंथोंमेंसे जानके निकाला गया है.

॥ दक्षिणा मूर्त्ति सहस्रनाम ग्रन्थ ॥

शिवउवाच । जैनमार्गरतो जैनो जितक्रोधो जितामयः ॥

अर्थः—शिवजी बोले, जैनमार्गमें रति करनेवाला जैनी, क्रोधके जीतनेवाला, और रोगोंके जीतनेवाला.

भावार्थः—शिव अपने हजार नामोंमें एक नाम जैनी बताकर क्रोधको जितनेवाले कहते हैं.

॥ वैशंपायनसहस्रनाम ग्रन्थ ॥

कालनेमिनिहा वीरः शूरः शौरिर्जिनेश्वरः ।

अर्थः—भगवानके नाम इस प्रकार वर्णन किये हैं ॥ कालनेमिके मारनेवाला, वीर, बलवान्, कृष्ण और जिनेश्वर ।

॥ दुर्वासा ऋषिकृत महिम्नस्तोत्र ॥

तत्र दर्शने मुख्यशक्तिरिति च त्वं ब्रह्म कर्मेश्वरी ।
कर्त्ताऽर्हन्पुरुषोहरिश्च सविता बुद्धः शिवस्त्वं गुरुः ॥

अर्थः—वहां दर्शनमें मुख्य शक्ति आदि कारण तू है, और ब्रह्म भी तू है. माया भी तू है, कर्त्ता भी तू है और अर्हन् भी तू है, और पुरुष (जीव), हरि सूर्य, बुद्ध और महादेव गुरु वेस भी तूही है, ॥

भावार्थ—यहां अर्हन् तू है ऐसा कहकर भगवानकी स्तुति करी.

॥ हनुमन्नाटक ॥

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो ।
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्त्तेति नैयायिकाः ॥
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्म्मेति मीमांसकाः ।
सोयं वो विदधातु वांछितफलं त्रैलोक्यनाथः प्रभुः ॥

अर्थः—जिसको शैवलोग महादेव कहकर उपासना करते हैं, और जिसको वेदान्ति लोग ब्रह्म कहकर और बौद्ध लोग बुद्धदेव कहकर और युक्ति शास्त्रमें चतुर नैयायिक लोग जिसको कर्त्ता कहकर और जैनमतवाले जिसको अर्हन् कहकर मानते हैं और मीमांसक जिसको कर्मरूप वर्णन करते हैं वह तीन लोकका स्वामी तुम्हारे वांच्छित फलको देवै ॥

भावार्थ—हनुमानने समुद्र सेतू बांधते वखत छ मतोंमें जिन देवकी भी स्तुति करी है. अर्थात् रामचंद्रजीके समयमें जैनमत विद्यमान था.

॥ भवानीसहस्रनाम ग्रंथ ॥

कुण्डसना जगद्धात्री बुद्धमाता जिनेश्वरी ।
जिनमाता जिनेंद्रा च शारदा हंसवाहिनी ॥

अथ -भवानीके नाम भगी वर्णन किये हैं ॥ कुटामना, जगतकी माता, बुद्ध देवकी माता, जिनभरी, जिनदेवकी माता, निनिद्रा, सरस्वती हम, भिमरी सवारा हैं ॥

॥ नगरपुराण भवावतार रहस्यमें ॥

अकारादि हकारान्त मूर्द्धाधोरेफसंयुत। नादबिंदुकलाक्रान्त चन्द्रम दलसन्निभ ॥ एतद्देवि परतत्त्वयोनिजानातितत्त्व । संसारबन्धन छित्वा सगच्छेत्परमा गतिम्

अर्थ—आदिमें अकार और अंतमें हकार और ऊपर और नीचे रकारसे युक्त नाद और बिन्दु सहित चन्द्रमाके पत्तेके तुल्य ऐसा अर्हन (जिनदेव) जो शब्द है यह परम तत्त्व है, इसको जो कोई यथार्थ रूपमें जानता है वह संसारके बंधनसे मुक्त होकर परम गतिको पाता है

॥ नगरपुराण ॥

दशभिर्भोजितैर्विप्रै यत्फल जायते कृते।
मुनिमर्हन्तभक्तस्य तत्फल जायते कलौ ॥

अर्थ—सत्ययुगमें दश ब्राह्मणोंको भोजन देनेसे जो फल होता है वही फल कलियुगमें अर्हन्तभक्त मुनिको भोजन देनेसे होता है

॥ मनुस्मृतिमथ ॥

कुलादिबीज सर्वषा प्रथमो विमलवाहन ।
चक्षुष्माश्च यशस्वी चाभिचन्द्रोथ प्रसेनजित ॥
मरुदेवी च नाभिश्च भरत कुलसत्तम ।
अष्टमो मरुदेव्या तु नाभेर्जात उरुक्रम ॥
दर्शयन वर्त्म वीराणा सुरासुरनमस्कृत ।
नीतित्रितयकर्ता यो युगादौ प्रथमो जिन ॥

अथ —सब कुलोंका आदि कारण पहिला विमलवाहन नामा और चक्षुष्मान यशस्वी अभिचन्द्र और प्रसेनजित नामा और मरुदेवी और नाभि ये सातों और कुलमें श्रेष्ठ भरत और आठवां मरुदेवीसे नाभिके उरुक्रम उत्पन्न हुआ ॥ यह उरुक्रम वीरोंके मार्गको दिखानेवाला सुर असुरोंसे नमस्कार किया गया और तीनों नीतियोंका करनेवाला और युगके आदिमें पहिला जिन भगवान् हुआ ॥

मनुजीको होनेको अन्यमतवाले लाखों वर्ष (सत्ययुगमें) मानते हैं. तो मनुजी पहिले जैनधर्म विद्यमान था.

॥ प्रभासपुराण ॥

भवस्य पश्चिमे भागे वामनेन तपः कृतम् ।
तेनैव तपसाकृष्टः शिवः प्रत्यक्षतां गतः ॥
पद्मासनसमासीनः श्याममूर्तिर्दिगम्बरः ।
नेमिनाथः शिवोथैवं नाम चक्रेऽस्य वामनः ॥
कलिकाले महाघोरे सर्वपापप्रणाशनम् ।
दर्शनात् स्पर्शनादेव कोटियज्ञफलप्रदम् ॥

अर्थ—शिवजीके पश्चिमभागमें वामनने तप किया था उस तपके कारण शिवजी वामनको प्रत्यक्ष हुए. किस रूपमें प्रत्यक्ष हुवे? पद्मासन लगाये हुवे, श्यामबरण और नग्न. तब वामनने इनका नाम नेमिनाथ रक्खा। यह नाम इस भयंकर कलियुगमें सर्व पापोंको नाश करनेवाला है और इनके दर्शन वा स्पर्शनसें करोड यज्ञका फल होता है.

भावार्थः—श्रीनेमिनाथ भगवान् जैनियोके २२ मे तीर्थकर हैं, और जैनधर्मके ग्रंथोंमे भी उन्का वर्ण श्याम लिखा है। इसप्रभास पुराणमें उनको शिवजीका अवतार वर्णन करके प्रशंसा की है.

॥ ऋग्वेद ॥

ॐपवित्रंनग्नमुपवि (ई) प्रसामहे येषां नग्ना (नग्नये) जातिर्येषां वीरा ॥

अर्थ—हमलोग पवित्र पापसें वचानेवाले नग्न देवताओको प्रसन्न करते हैं जो नग्न रहते हैं और बलवान् हैं।

ॐनग्नं सुधीरं दिग्वाससं ब्रह्मगर्भं सनातनं उपैमि वीरं
पुरुषमर्हंतमादित्यवर्णं तमसः पुरस्तात्स्वाहा ॥

अर्थ—नग्न धीर वीर दिगम्बर ब्रह्मरूप सनातन अर्हंत आदित्यवर्ण पुरुषकी सरण प्राप्त होता हूं ॥

॥ महाभारत ग्रन्थ ॥

आरोहस्व रथं पार्थ गांडीवंच करे कुरु ।
निर्जिता मेदिनी मन्ये निर्ग्रथा यदि सन्मुखे ॥

अर्थः—हे युधिष्ठिर! रथमें सवार हो और गांडीव धनुष हाथमें ले। मै मानता हूं कि जिसके सन्मुख जैन मुनि आये उसने पृथ्वी जीतली

मृगेंद्रपुराण ।

श्रवणोनरगोराजा मयूरःकुंजरोवृषः। प्रस्थानेचप्रवेशे वा सर्वसिद्धिकरामताः।
पद्मिनी राजहंसश्च निर्ग्रथाश्च तपोधनाः। यंदेशमुपाश्रयंति तत्रदेशे सुखंभवेत्।

अर्थ—मुनीश्वर, गौ, राजा, मोर, हाथी, बैल, यह चलनेके समय तथा प्रवेशके समय सामने आवें तो शुभ हैं और कमलनी, राजहंस, जिनकल्पीमुनि जिस देशमें हों उस देशमें सुख हो।

वाराहिसंहिता, गणेशपुराणादि ग्रंथोंमें जैनके विषयमें बहोत लेख हैं कहांतक लिखा जाय

अन्यमतवाले हंसते हैं कि जैनीलोक कंदमूल नहीं खाते और रात्रीभोजन नहीं करते हैं, परंतु उनके ग्रंथोंमें भी इनही बातोंका निषेध है

॥ महाभारत ग्रन्थ ॥

मद्यमांसाशन रात्रौ भोजन कन्दभक्षण ।
ये कुर्वंति वृथा तेषा तीर्थयात्राजपस्तप ॥

अर्थः—जो कोई मदिरा पीता है मांस खाता है या रात्रीको भोजन करता है या कन्द [धरतीके नीचे जो वस्तु पैदा हुई आलू अद्रक मूली गाजरआदिक] खाता है उस पुरुषका तीर्थयात्रा जप तप सब वृथा है

॥ मार्कंडेयपुराण ॥

अस्तं गते दिवानाथे अपोरुधिरमुच्यते ।
अन्नं मांससम प्रोक्त मार्कंडेयमहर्षिणा ॥

अर्थः—सूरजके अस्त होनेके पीछे जल रुधिर समान और अन्न मांस समान कहा है।

॥ भारत ग्रन्थ ॥

चत्वारोनरकद्वार प्रथम रात्रिभोजन ।
परस्त्रीगमन चैव सधानानतकायक ॥
ये रात्रौ सर्वदाहार वर्जयते सुमेधस ।
तेषां पक्षोपवासस्य मासमेकेन जायते ।
नोदकमपि पातव्य रात्रावत्र युधिष्ठिर ।
तपस्विनोविशेषेण गृहिणांचविलोकिना ॥

अर्थ—नरकके चार द्वार हैं, प्रथम रात्रिभोजन करना, दूसरा परस्त्रीगमन, तीसरा संधाना खाना, चौथा अनंत काय अर्थात् कंद मूल आदिक ऐसी वस्तु खाना जिसमें अनंत जीव हों। जो पुरुष एक महिनेतक रात्रिभोजन न करे उसको एक पक्षके उपवासका फल होता है हे युधिष्ठिर! गृहस्थीको और विशेषकर तपस्वीको रातको पानी भी नहीं पीना चाहिये।

मृते स्वजनमात्रेपि सूतक जायते किल ।
अस्तगते दिवानाथे भोजन क्रियते कथ ।
रक्तीभवति तोयानि अन्नानि पिशितानि च ।

रात्रौ भोजनसक्तस्य ग्रासेन मांसभक्षणं ॥
नैवाहुतीर्नच स्नानं न श्राद्धं देवतार्चनं ।
दानं च विहितं रात्रौ भोजनं तु विशेषतः ॥
उदुंबरं भवेन्मांसं मांसं तोयमवस्त्रकं ।
चर्म्मंबारोभवेन्मांसं मांसं च निशिभोजनं ॥
उलूककाकमार्जारगृध्रशंबरशूकराः ।
अहिवृश्चिकगोधाद्या जायन्ते निशि भोजनात् ॥

अर्थ—जैसे स्वजनके मरण मात्रसे सूतक होता है, ऐसाही सूर्य अस्त होनेके पीछे रात्रिको सूतक होता है इस कारण रात्रिको कैसे भोजन करना उचित है ? रात्रिको जल रुधिर समान होजाता है, और अन्न मांसके भावको प्राप्त होता है, इस कारण रात्रि विषे भोजन लंपटीको एक ग्रास भी मांसभक्षण समान हो जाताहै। रात्रिभोजन करनेवाले पुरुषको आहुति देना, स्नान करना, श्राद्ध करना, देवार्चन करना, दान देना, व्यर्थ है. । उदुंबर फल अर्थात् बडका फल, पीपलका फल, पीलूका फल, गूलरका फल आदिक मांस समानही हैं।

और रात्रिको भोजन करना भी मांस है। रात्रिको भोजन करनेसें उल्लू, कव्वा, विल्ली, गिद्द, सूवर, सर्प, वीछू, गोहरा, गोह आदिकमें जन्म होता है.

॥ भारत ॥

मद्यमांसाशनं रात्रौ भोजनं कंदभक्षणं ।
भक्षणान्नरकं याति वर्ज्जनात्स्वर्गमाप्नुयात् ॥
अज्ञानेन मया देव कृतं मूलकभक्षणं ।
तत्पापं यातु गोविंदं गोविंद तव कीर्तिनात् ॥
रसोनं गृंजनं चैव पलांडुपिंडमूलकं ।
मत्स्या मांसं सुरा चैव मूलकं च विशेषतः ॥

अर्थः—शराव पीने, मांस खाने, रातको भोजन करने और कंद भक्षण करनेसें जीव नरकमें जाता है और त्यागनेसें स्वर्गमें जाताहै ॥ हे गोविन्द ! मैंने अज्ञानता करके मूल (अर्थात् मूळी रतालु आदिक) खाया है वह पाप तुम्हारी कीर्तिसे दूर हो. लहसन, गाजर, प्याज, पिंडालू, मच्छी, मांस, मदिरा और विशेषकर मूलका भक्षण नहीं करना ॥

मद्यमांसाशनं रात्रौ भोजनं कन्दभक्षणं ।
ये कुर्वन्ति वृथा तेषां तीर्थयात्रा जपस्तपः ॥ १ ॥

वृथा एकादशी प्रोक्ता वृथा जागरण हरे ।
वृथा च पौष्करी यात्रा कृत्स्न चान्द्रायण वृथा ॥ २ ॥
चातुर्म्मास्ये तु सम्प्राप्ते रात्रिभोज्य करोति य ।
तस्य शुद्धिर्न विद्येत चान्द्रायणशतैरपि ॥ ३ ॥

अर्थ—मदिरा और मांस इनको खाना और रातको भोजन तथा कन्दोंको भक्षण करना इनका जो करते हैं, तिनका तीर्थयात्रा, और ये सभी व्यर्थ हैं और उनका एकादशी व्रत और हरि निमित्त जागरण (रातको जागना, और पुष्करराजकी यात्रा और सभी चान्द्रायण व्रतविशेष) ये वृथा होते हैं चौमासेके आने पर जो रात्रिको भोजन करता है, उसकी सैकड़ों चान्द्रायण व्रतोंसे भी शुद्धि नहीं होती।

शिवपुराण।

यस्मिन्गृहे सदा नित्य मूलक पाच्यते जनै ।
स्मशानतुल्य तद्वेश्म पितृभि परिवर्जितम् ॥
मूलकेन सम चान्न यस्तु भुङ्क्ते नराधम ।
तस्य शुद्धिर्न विद्येत चान्द्रायणशतैरपि ॥
भुक्त हालाहल तेन कृत चाभक्ष्यभक्षण ।
वृन्ताकभक्षण चापि नरो याति च रौरव ॥

अर्थ--जिसके घर नित्य मूली पकाया जाता है उसका घर बिना मेत स्मशानतुल्य है ॥ जो मनुष्य मूलीके साथ भोजन खाता है उसका सैकड़ो चांद्रायण व्रत करनेमें भी पाप दूर नहीं होता है ॥ मांसतुल्य जिसने अभक्ष्य भक्षण किया उसने हालाहल जहर भक्षण किया और जिसने बैंगन खाया वह नर रौरव नरकमें जाता है ॥ वगैरह बहोत प्रमाण है अफसोस है ! इनके शास्त्रोंमें ऐसे स्पष्ट प्रमाण होते हुए भी, इसी कन्दमूलको एकादशी आदि व्रतोंमें अधिकतर उमंगसे खाते हैं ॥

जैन धर्मकी अनादिसिद्धि करनेका एक बड़ा प्रमाण है वहां तक लिखा जाय।

इस समयमें जैन श्वेताम्बरमतमें मुनि श्रीमद् विजयानंदसूरीश्वरजी (आत्मारामजी) महाराज एक बड़े विद्वान हुए हैं, इन्होंने अपनी अपूर्व विद्वत्तासे धर्मकी जाग्रति सदा हमारे वर्तमान समयमें जैनियोंमें अग्रगण्य पद प्राप्त किया है इतनाही नहीं परंतु अन्य दर्शनवालोंमें, युरोप अमेरिका आदिमें भी इन्होंने बड़ा नाम और मान पाया है धर्ममें प्रीतिवान, क्रियामें श्रद्धावान, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], सर्व [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] गुणगणसे महात्माके सदृश और समयमें बनाए हुए इस तत्त्वनिर्णयप्रासाद [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] पवित्र, और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] वह होन

यह महात्मामें कइ गुण ऐसे थे जो बडे पुरुषोंमें भी एकही साथ बहु कठिनतासें पाये जाते हैं. प्रायः आंतरीय गुणोंके अनुसार बाहिरकी आकृति होती है. दृढ विचारवाले पुरुषकी दृढता इत्यादि उनके चेहरेपर जाहिर होती है कामी पुरुषका काम उसकी आंख और गालके उपर दृष्टिगोचर होता है. हठपणा जडबासें जाहिर होता है. आकृति देखकर गुणअवगुण कहना यह प्राचीन अष्टांगगोचर होता है.

आधुनीक समयमें भी अमेरिकादि देशोंमें यत्किंचित् यह विद्या जाननेवाले हैं. इन महात्माका जिसने दर्शन नहि किया है वह उनकी तस्वीर देखकर उनकी भव्यता देख शकता है, परंतु पुण्योदयके प्रभावसें जिनोंने उनकी चरणसेवा की है वे तो पांच महाव्रत पालनेकी निशानी महाराज श्रीके शरीरपर देख शकते थे. पांच महाव्रत हरेक मुनी पाले ऐसा ख्याल करें, परंतु इन महामुनिराजके ज्ञान. दर्शन, चारित्रकी छाप उनकी चालमें, वाणीमें, वर्तावमें, व्याख्यानमें, साधारण वार्तालापमें, टुकमें हरेक प्रसंगपर जाहिर होतीथी, हजारों साधुओंके बीचमेंसे उक्त मुनिराज एकदम अनजान आदमीको भी नजर आ जाते थे ऐसी उनकी भव्य आकृति थी.

आज काल हम देखते हैं के किसी खास धर्मगुरुकेपास व्याख्यान श्रवण करनेको अन्य धर्मवाले प्रायः करके नहि जाते है. विशेष करके वेदमतानुयायी ब्राह्मणोंने जैनोंकी तरफ अपना द्वेष जगे जगे जाहिर किया है जैन यानि नास्तिक–पाखंडी. फिर उस धर्मके साधु और उपदेशक तो दूरसेंही नमस्कार करने योग्य माने उसमें क्या आश्चर्य ? परंतु मुनि श्रीआत्मारामजीके संबंधमें अन्य मतवालोंका वर्तन बहुतही प्रशंसनीय था. पंजाबमें महाराजश्रीने बहुत काल व्यतीत किया था, और उनके व्याख्यानमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सब वर्णके लोग आते थे. आते थे इतनाही नहीं परंतु उनको पूज्य गुरु समझते थे. उनमें अन्यमतावलंबीयोंको सत्य मार्ग बतानेकी शक्ति भी अद्भुत थी. किसीको बुरा नहीं मनाकर जीज्ञासुके संशयको दूर करते थे. एक समय अंबाला शहरमें एक वेदमतानुयायी गृहस्थ महाराजश्रीका नाम सुनकर आकर नम्रतासें नमस्कार करके बैठा थोडी देरके बाद उसने पूछा " महाराज ! हमने सुना है कि आप जैनी लोग ईस जगत्का कोई कर्त्ता नहीं है ऐसा मानते है यह बात सच्च है क्या ? " महाराजजीने कहा " जगत्कर्ता ईस शब्दका अर्थ समझनेमें लोगोंकी भूल होती है. जिससे जैनधर्म संबंधी खोटा अपवाद प्रचलित हुआ है. मै तुमको पूछता हूं कि तुम खुद जगत्कर्ता ईश्वरको मानते हों तो कहो यह ईश्वर कौनसी जगा रहता है ? उस गृहस्थने कहा " महाराज ! ईश्वर सबही जगापर है; सब जीवोंमें ईश्वर हैं. कोई जगा विनाईश्वरके नही है " महाराजजीने कहा, " ठीक है हम इसको आत्मतत्त्व कहते हैं, वह हरेक जीववाली वस्तुमें है यह आत्मतत्त्व कर्मानुसार शरीर रचता है, तो इस आत्मतत्वको अमुक अपेक्षासें जगत्कर्ता कहनेमे आवे तो हमको कुच्छ उजर नहि है. परंतु एक बात जाननी जरूर है के यादि ईश्वरको सामान्य लोकोके माने मुजिब जगत्कर्ता माना जायतो कामी पुरुष व्यभिचार करता है तो उनको प्रेरनेवाला

ईश्वर होना चाहिये. कभी ईश्वर जीवोंको कर्मानुसार फल देता है ऐसा माना जाय तो भी जब कामी पुरुषके व्यभिचारसें स्त्रीको पूर्वकर्मानुसार फल मिला तब वो फल ईश्वरने उसको दिया और उस कामी पुरुषको व्यभिचार द्वारा यह फल मिला इसलिये यह व्यभिचारकी इच्छा ईश्वरने पैदा की सिवाय इसके उस स्त्रीको या उस पुरुषको पूर्वोक्त फल कैसे मिल सकता?" उस गृहस्थने कहा "महाराज! ईश्वर तो साक्षी मात्र है" महाराजजीने कहा "हम भी निश्चयनयकी अपेक्षासें कहते हैं कि, आत्मा (ईश्वर) साक्षी मात्र है उस गृहस्थने कहा "महाराज! ऐसा है तब आपके और हमारे मतमें क्या तफावत है?" महाराजजीने कहा "तुम वस्तुका एक धर्म ग्रहण करके एकांतवादमें दूसरे धर्मोको स्वीकारते नहीं हो, हम वस्तुके सबही धर्म अंगीकार करते हैं परन्तु कथनमें सर्व धर्म युगपत् कथन करने अशक्य होनेसें और सबधर्म एक दूसरेके साथ ऐसे मिले हुए हैं कि एक दुसरेसें सर्वथा छुटे नहीं पड सकते हैं इस सबबसें जब हमको एक या ज्यादा धर्मके संबंधमें व्याख्यान करना पडता है तब कहते हैं कि "स्यात् अस्ति इत्यादि" अर्थात् कथंचित् (अमुक अपेक्षासें वस्तु है, कथंचित् नही है,) इत्यादि"

इस संभाषणसें यह गृहस्थ बहुतही संतुष्ट होकर महाराजजीके गुणानुवाद करता करता स्वस्थानमें गया जैसें साधारण बातचीतमें ऐसें व्याख्यानमें भी स्याद्वाद मार्गकी शैली महाराजजीके शब्द शब्दमें व्यापीहुई मालूम पडतीथी "षड्दर्शन जिन अंग भणीजे" यह आनंदघनजी महाराजका वाक्य सत्य है यह बात उनके साथ मात्र पांच मिनीट बात करनसें मालूम होतीथी

कोई अनजान गृहस्थ महाराजजी पास शंकाके पूछनेको आते तो उनकी शंकाका समाधान प्रश्न पूछनेके पहिलेही प्राय बातचितमें होजाताथा जैन समुदायके उपर महाराज जीश्रीने जो जो उपकार किये है व सर्व अवर्णनीय हैं पण सबसे ज्ञान जैनोंमें बहुत कम होगयाहै यह तो जाहिर बात है कोई युवान धर्मज्ञान प्राप्त करनेको चाहताथा तो उसको साधन मिलते नहि थे साधन प्राप्त होता तो समझनेमें मुस्केली पडतीथी यह बडा अंतराय जो जीज्ञासु पुरुषके मार्गमें था सो इन्होंने दूर किया जैन तत्त्वादर्श जैसा अमूल्य ग्रंथ हिंदी भाषामें लिखकर जैनोंको तत्त्व समझनेमें आज इसतरह लोक समक्ष रजु किया यह कुच्छ कम उपकारका काम नहीं है कितनेक अनसमजु लोकोंका मत है कि ज्ञानको भंडारमेंही रखना ज्ञान पंचमी जैसे दिनोंमें पुजामें रखना, परंतु जिनभर भगवानने पुराणे उपदेश किया है कि आत्माका ज्ञान गुण बहार आवेगा तबही सिद्धिपदकी प्राप्ति होगी ज्ञान अभ्यासके बीये है, तथापि संग्रहके लिये ज्ञानको गुप्त रखनसे लोगोंको ज्ञानके साधन प्राप्त होय भी नही देनेसें ज्ञानावर्णीय कर्म बंधाता है, यह जैन सिद्धांत है और यह सिद्धांतके अनुसार महाराजश्रीश्रीने जगा जगा पुस्तकालय बनवाके पुस्तकद्वारा और उपदेशद्वारा ज्ञानका प्रचार किया है और यह पुस्तक भी उसी ज्ञानका फल है इस सब इस भाग्यवान महा पुरुषके उपकारोंके देखेहुए

हैं. हमारे ज्ञान पर्याय इस मुनीराजके सदुपदेश और आज्ञानुसार वर्तनसें किंचित् वहार आये हैं. इनके उपकाररूप ऋणको हम कीसी तरह भी अदा नहीं कर सकते हैं. इस प्रकारका मत उनके तमाम अनुयायीयोंका है. हां एक बात है की इन महात्माके नामसें प्रतिग्राम और प्रतिनगर जैन विद्याशाला स्थापन करी जावे और जिसमें सांसारिक विद्याके साथ धार्मिक विद्याका ज्ञान दिया जावे तो पूर्वोक्त महात्माके किये उपकारका यत्किंचित् बदला उतर सकता है. एसे २ कइ उपकार यह महात्मा कर रहे थे. परंतु आः हा ! दैवकी गति न्यारी है, भारतवर्षभूषण, विद्यापारंगत, सुधारणास्थापक, धर्मविजयके आनंद, आत्मामें रमण करनहार, सुरि देवलोक प्राप्त हुए. वह भव्यमूर्ति, निडर घंटनादसम वाणी हृदय, पारंगत दृष्टि, वज्रसमान मर्मयुक्त खंडनकला, सदा सर्वथा मन वचन कर्मवाणीसें प्रकाशित केवल निःस्वार्थी धर्माभिमान यह एक क्षणमें भारतभूमिको दुर्भागि करनेको अदृश्य हो गये. मातृभूमिको भी दुष्काल महामारीरूप दुःखका वैधव्य स्वामिवियोगसें हुवा नहो !

पूज्यमहाराजजीने यह ग्रंथ अपनी अंत अवस्थाके थोडेही काल पहीले बनायाथा. अन्य मतके उपर उजाला डालनेवाली वहोतसी वाते इसमें है. मेरेपर उनका पुरा अनुग्रह होनेसें यह ग्रंथ मुझको दिया गया था. प्रसिद्ध करनेको छपवाना सुरू किया. वाद महामारी, छापखानेकी अव्यवस्था, वाद छापखानेका वीकजाना, मेरेपर स्त्रीमरणादि आफतोंका आना, तस्वीरें मिलनेमें देरी, और जाहिर करने योग्य नहि ऐसे विघ्नोसें और कुच्छ प्रमादसें भी ग्रंथका प्रसिद्ध होना ढीलमें रहा. अव यह ग्रंथ वाचकवर्गके आगे रजुकर शका हूं ; जिसका पुरा धन्यवाद मैं आचार्यजी महाराज श्रीकमलविजयजी और मुनिराज श्रीवल्लभविजयजी आदिको देताहूं कि उन्होंने औषधीरूप कटुलेख आदिसें मुझको जाग्रत करके प्रसिद्ध करवाया.

जिस जिस महाशयोंने इस ग्रंथको खास सहाय दी है, उनका पुरा धन्यवाद मानताहूं; उनकी सविस्तर हकीकत आगे आवेगी. *

आगेसें ग्राहक होकर पूरी मदद देनेवाले महाशयोंके नाम भी आगे दाखिल किये हैं.

यह पुस्तक धर्मकार्यमें उपयोग करनेवालेको, पुस्तकालय भंडारमें भेट करनेवालेको, इनामके लिये लेनेवालेको, साधारण पाठकवर्ग वगैरे सबके सुभिताके लिये सहायदाताओंकी मददसें कम मूल्यमें दिया जायगा. योग्य मुनिराजोंको यह पुस्तक भेट भेजा जायगा.

इन ज्ञानी आचार्यका अद्भुत वंशवृक्ष रंगीन वृक्षके माफिक वनाकर इस पुस्तकमें प्रसिद्ध किया है. इस ग्रंथकी तमाम तस्वीरें अमेरिका और इंग्लंडसे वहोत खरचा देकर खास कारीगरके हाथसें बनवाकर मंगाई है. कागज मोटे और सफाईदार पसंद किये है. अक्षर वडे हैं जो देखने और पढनेसें पाठकवर्ग खुश होंगे. ज्ञानका अनुमोदन करेंगे तो प्रसिद्ध कर्त्ताका परिश्रमका वदला मिला समझा जायगा.

---

* सहायदाता महाशयोंकी उमदा छवी और अल्प वृत्तात उन महाशयोंकी इच्छा नही होते हुये भी सहायताके केवल उपकारार्थ छापे गये है.

ईश्वर होना चाहिये. कभी ईश्वर जीवोंको कर्मानुसार फल देता है ऐसा माना जाय तो भी जब कामी पुरुषके व्यभिचारसें स्त्रीको पूर्वकर्मानुसार फल मिला तब वो फल ईश्वरने उसको दिया और उस कामी पुरुषको व्यभिचार द्वारा यह फल मिला इसलिये यह व्यभिचारकी इच्छा ईश्वरने पैदा की सिवाय इसके उस स्त्रीको या उस पुरुषको पूर्वोक्त फल कैसे मिल सकता?" उस गृहस्थने कहा "महाराज! ईश्वर तो साक्षी मात्र है" महाराजजीने कहा "हम भी निश्चयनयकी अपेक्षासें कहते हैं कि, आत्मा (ईश्वर) साक्षी मात्र है उस गृहस्थने कहा "महाराज! ऐसा है तब आपके और हमारे मतमें क्या तफावत है?" महाराजजीने कहा "तुम वस्तुका एक धर्म ग्रहण करके एकांतवादमें दूसरे धर्मोको स्वीकारते नहीं हो, हम वस्तुके सबही धर्म अंगीकार करते हैं परतु कथनमें सर्व धर्म युगपत् कथन करने अशक्य होनेसें और सबधर्म एक दूसरेके साथ ऐसे मिले हुए हैं कि एक दुसरेसें सर्वथा छुटे नहीं पड सकते हैं इस सबबसें जब हमको एक या ज्यादा धर्मके संबंधमें व्याख्यान करना पडताहै तब कहते हैं कि "स्यात् अस्ति इत्यादि" अर्थात् कथंचित् (अमुक अपेक्षासें वस्तु है, कथंचित् नही है,) इत्यादि"

इस संभाषणसें वह गृहस्थ बहुतही संतुष्ट होकर महाराजजीके गुणानुवाद करता करता स्वस्थानमें गया जैसें साधारण बातचीतमें ऐसें व्याख्यानमें भी स्याद्वाद मार्गकी शैली महाराजजीके शब्द शब्दमें व्यापीहुई मालूम पडतीथी "षड्दर्शन जिन अंग भणीजे" यह आनंदघनजी महाराजका वाक्य सत्य है यह बात उनके साथ मात्र पांच मिनीट बात करनेसें मालूम होतीथी

कोई अनजान गृहस्थ महाराजजी पास शंकाके पूछनेको आवे तो उनकी शंकाका समाधान प्रश्न पूछनेके पहिलेही प्राय बातचितमें होजाताथा जैन समुदायके उपर महाराज जीश्रीने जो जो उपकार किये हैं वे सर्व अवर्णनीय हैं धर्म संबंधी ज्ञान जैनोंमें बहुत कमी होगयाहै यह तो जाहिर बात है कोई युवान धर्मज्ञान प्राप्त करनेको चाहताथा तो उसको साधन मिलते नहिं थे साधन प्राप्त होते तो समझनेमें मुस्केली पडतीथी यह बडा अंतराय जो जीज्ञासु पुरुषके मार्गमें था सो इन्होंनें दूर किया जैन तत्त्वादर्श जैसा अमूल्य ग्रंथ हिंदी सरल भाषामें लिखकर जैनोंके तत्त्व समझनेमें आवे इसतरह लोक समक्ष रख दिया यह कुच्छ कम उपकारका काम नहीं है कितनेक अनसमजु लोकोंका मत है कि ज्ञानको भंडारमेंज रखना ज्ञान पंचमी जैसे दिनोंमें पुजामें रखना, परंतु जिनेश्वर भगवानने पुकारके उपदेश किया है कि आत्माका ज्ञान गुण बहार आवेगा तबही सिद्धिपदकी प्राप्ति होगी ज्ञान अभ्यासके लीये है, नहिंकि संग्रहके लिये ज्ञानका गुप्त रखनसे लोगोंका ज्ञानके साधन शक्तिक होयेभी नहीं देनेसें ज्ञानावर्णीय कर्म बंधाता है, यह जैन सिद्धांत है और यह सिद्धांतके अनुसार महाराजजीश्रीने जगा जगा पुस्तकालय बनवाके पुस्तकद्वारा और उपदेशद्वारा ज्ञानका फैलाव किया है और यह पुस्तक भी उसी ज्ञानका फल है इस सब इस भाग्यवान महा पुरुषके उपकारनीचे दबेहुए

॥ ॐ ॥

॥ श्रीपरमात्मने नमः ॥

उपोद्घात

विदित होवेकि, इस संसारसमुद्रमें सतत पर्यटन करनेवाले प्राणियोंको, जन्ममरणादिक अत्युग्र दुःखोंमेंसे मुक्त करनेवाला, केवल एक धर्मही है. अन्यमतावलंबीयोंके शास्त्रोंमें भी, ऐसेंही कहा हुआ है. ऐसा जो धर्म, उसका मूल तो सर्वांगयुक्त दयाही है; दयाकरके धर्मकी प्राप्ति होती है, और परिपूर्ण धर्मकी प्राप्ति हुए, जीव, मोक्षको प्राप्त होता है इसवास्ते दया सर्वोत्कृष्ट पदार्थ है. सर्वमतोंवाले दयाका उपयोग करते हैं, परंतु सर्वांश दयाका उपयोग करते नही है, इसीवास्ते उनको धर्मपदार्थका जैसा चाहिये, वैसा लाभ नही प्राप्त होता है. दयाका सर्वांश उपयोग तो, केवळ जैनदर्शनमेंही स्वीकार किया है, तिससेंही जैनदर्शन, धर्मधुरीसर कहा जाता है. इसवास्ते दयाका सर्वांश उपयोग करना आवश्यक है. क्योंकि, जब दया पदार्थ सर्वांगयुक्त पालनेमें आवे, तबही तिससें धर्मोपलब्धि होवे, अन्यथा कदापि नही. सर्वमतावलंबियोंको दया मान्य है, तथापि उनके समझनेमें फरक होनेसें, वे, श्रेष्ठतापूर्वक दयाका सर्वांश-उपयोग, नही करसकते हैं. यह बात, इस ग्रंथके अग्रेतनव्याख्यानसें सिद्ध हो जायगी, तथा श्रीसूत्रकृतांगादिशास्त्रोंमें भी वर्णन किया है कि,—कितनेक (अन्यधर्मी) कहते हैं, प्राणी जबतक शरीरमें सुखी होवे, तबतक उसके ऊपर दया करनी, परंतु जब वह, व्याधिग्रस्तास्थितिमें पीडित होवे, तबतो, उस प्राणीका बध करके, पीडासें मुक्त करना, सोही दया है. कितनेक कहते हैं कि, सूक्ष्म, अथवा स्थूल जे प्राणी, मनुष्योंको दुःख देते हैं, उनको मारदेना, यही दया है. कितनेक यज्ञयागादिमें प्राणियोंका नाश करनेमेंही धर्मधुरंधरता, और दया मानते हैं.

या वेदविहिता हिंसा नियतास्मिंश्चराचरे ॥

अहिंसामेव तां विद्याद्वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ ॥ इत्यादि वचनात्.

भावार्थः—इस चराचर जगत्में जो वेदोक्त हिंसा नियत की गई है उसको अहिंसाही जानना चाहिये; क्योंकि, वेदसेंही धर्मकी उत्पत्ति हुई है, इत्यादि.

और कितनेक अतिसूक्ष्मादि प्राणी, जिसका स्वरूप दृष्टिगोचर नही, उसकी किंचित्-मात्र भी चिंता नही करते हैं, किंतु केवल स्थूलप्राणियोंके ऊपरही दया करनेमें दया मानते हैं. ऐसें अनेक प्रकारसें मनःकलिपत दयाका उपयोग, प्रायः अन्यमतावलंबी करते हैं, तथापि, वे, स्वदया १, परदया २, द्रव्यदया ३, भावदया ४, निश्चयदया ५, व्यवहारदया ६, स्वरूपदया ७, अनुबंधदया ८, इत्यादि दयाके जो अनेक भेद जैनग्रंथोंमें सविस्तर वर्णन किये हैं, तदनुसार प्रवृत्त होके, दयाका स्वरूप, नयशैलीपूर्वक समझते नही हैं, यही उनकी मतिमें विभ्रम है, और ऐसी भ्रमितमतिवाले दर्शनियोंका मत, कदापि शुद्ध नहीं. किंतु,

मुद्राळयके और दृष्टि दोषके कारणसें जो भूल रहगईहै उसका सूक्ष्म शुद्धिपत्रक ग्रंथमें दाखल किया है फिर भी कोई भूल रह गई होतो सुज्ञ पाठक वर्गसें प्रार्थना है कि सुधारके वांचे

सस्ती किंमतमें ग्रंथको प्रसिद्ध करानेके वास्ते जिन महाशयोंने मदद दीहै उनकी तस्वीर वगैरेह इस ग्रंथमें प्रसिद्ध कर्त्ताने उन महाशयोंकी केवल कदर बुजनेको प्रसिद्ध साधु अग्रेसरी धर्मके जानकर जैन बधुओंकी संमति लेकर दाखल किये हैं मेरेपास ऐसी सम्मति मोजूद होते हुए भी चंद जैनबधुओंने गृहस्थोंकी तस्वीर वगैरेह दाखल करनेमें विरुद्ध उठायाथा अगर यह बात ग्रंथ प्रसिद्धकर्त्ताकी मरजीकी थी, परंतु किसीको पुस्तकका अंतराय न होवे इस लिये मैं तीन तरहके पुस्तक बंधवाये है (१) मूल ग्रंथ, प्रस्तावना, जन्म चरित्र, और तस्वीर दाखल किया हुवा, संपूर्ण ग्रंथ; (२) और ग्रंथकर्त्ताकी तस्वीर और मूल ग्रंथ (३) और प्रस्तावना, ग्रंथकर्त्ताका जन्म चरित्र, साधुकी तस्वीरें, गृहस्थोंकी तस्वीरें और ढुंक वृत्तांतका अलग ग्रंथ किंमत सबकी एकही पडेगी जानको जैसा चाहे वैसा मंगवा लेवे कितनेक ग्राहकोंका यह आग्रह है कि हमको तो संपूर्ण ग्रंथ साथही चाहिये इस लिये किसीका दील दु:खी न होवे, ऐसा रस्ता नीकालके उपर मुजिब मैंने व्यवस्था की है पुस्तक प्रसिद्ध होनेमें ढील होनेसें जो ज्ञानांतराय हुवा है उसकी मैं क्षमा चाहकर आखिर कहताहुं कि इस पुस्तककी शोधनमें, इसकी उमदा हस्ताक्षरमें नकल करनेमें, प्रस्तावना लीखनेमें और प्रूफ वगैरह सुधारनेमें जो किमती सहायता देके श्रीमद् विजयानंदसूरिश्वरके जेष्ठ शिष्य श्रीमान् पंडित श्री लक्ष्मीविजयजीके शिष्य श्रीमान् श्रीहर्षविजयजीके शिष्य मुनि श्रीवल्लभविजयजीने जो परिश्रम उठाया है उनको और पंडीतजी अमीचंदजीको मैं धन्यवाद देता हूं कि उन्होंने गुरु भक्ति और धर्मसेवा निमित्त जैनधर्म और उसके अनुयायी उपर अमूल्य उपकार किये हैं

श्रीमद् विजयानंदसूरि (आत्मारामजी) महाराजके पाटपर श्रीमद् कमलविजय सूरि महाराज विराजमान हुवे, उनकी और इस ग्रंथको उपर लिखी मदद देनेवाले मुनिश्री वल्लभ विजयजीकी तस्वीरें दाखल करानेको भी बहुत महाशयोंने जोर दिया, वे तस्वीरें भी उन्होंकी आज्ञा नहीं होते हुवे भी केवल धर्मसेवा और ग्राहकोंकी तीव्र जीज्ञासाको तृप्त करनेको दाखल की है जिसकी मैं क्षमा चहाता हुं

यह ग्रंथ कायदे माफक रजीस्टर कराया है, और सर्व हक्क प्रसिद्ध कर्त्ताने अपने स्वाधिन रखा है

सबको आनंद सुख प्राप्त हो तथास्तु ! ! !

दासानुदास,

अमरचंद पी० परमार.

वास्ते श्रुतज्ञान बडा निमित्त कारण है; श्रुतज्ञानके सुननेसें जीवको शुद्ध स्वरूप विशुद्ध श्रद्धानकी प्राप्ति होती है, और उससें शुद्धात्माका आचरण आसेवन अनुभव उत्पन्न होता है, सोही परमपद प्राप्ति जाननी. श्रुतज्ञानके श्रवण करनेसें जीव, धर्मको विशेषकरके जानता है, विवेकी होता है, दुर्मतिका त्यागी होता है, यावत् मोक्षको प्राप्त होता है. इसवास्ते श्रुतज्ञानका आदर, अवश्य करना चाहिये. श्रुतज्ञानका संयोग होना जीवको अतीव दुर्लभ है.

श्रुतज्ञानके संयोगसें श्री गौतमस्वामी, सुधर्मास्वामी, जंबूस्वामी प्रभृति वहुत जीव, संसार समुद्रको तर गये. और वर्त्तमानकालमें महाविदेहक्षेत्रमें श्री सीमंधरादिक तीर्थंकरोंकी वाणी सुनके, बहुत जीव, तर रहे हैं. और आगामिकालमें पद्मनाभादि तीर्थंकरोंकी वाणी सुनके, अनेक जीव, तरेंगे तैसेंही इस भरतादि क्षेत्रमें अद्यतनकालमें भी, जो जीव, श्रुतज्ञानको सुनेगा, पढेगा, औरोंको पढावेगा, अंतरंग रुचिसें श्रद्धा प्रतीत करेगा, करावेगा, सो, सुलभबोधि होवेगा, यावत्क्रमकरके मुक्तिको प्राप्त होवेगा. ऐसे श्रुतज्ञानका मूल, द्वादशांगी है. तिस श्रुतज्ञानकी वाचना (१) पृच्छना (२) परावर्त्तना (३) अनुप्रेक्षा (४) और धर्मकथा (५) होती है. सो धर्मकथा, श्री उववाइसूत्रमें चार प्रकारकी कही है आक्षेपिणी (१) विक्षेपिणी (२) निर्वेदिनी (३) और संवेदिनी (४). जिससें एक तत्त्व, मार्गमें प्रवृत्ति होवे, तिस कथाका नाम आक्षेपिणी कथा है । १ । जिसमे मिथ्यात्वकी निवृत्ति होवे, तिसका नाम विक्षेपिणी है. । २ । जिससें मोक्षकी अभिलाषा उत्पन्न होवे, तिसका नाम निर्वेदिनी है. । ३ । जिससें वैराग्यभावकी उत्पत्ति होवे, तिसका नाम सवेदिनी है. । ४ । ऐसी श्रुतज्ञानरूप कथा, श्री अरिहंत, देवाधिदेव, परमेश्वर, तीर्थंकर, सर्वज्ञ, जीवनमोक्ष, समवसरणमें बैठके "उपन्नेइवा विगमेइवा धुवेइवा" इस त्रिपदी उच्चारणपूर्वक, द्वादश पर्षदाके मध्यमें करते हैं. और तिससें (त्रिपदीसें) श्रीगणधर, द्वादशांगीकी रचना करते हैं, जिनको सूत्र कहते हैं. तथा तीर्थंकरके शासनमें हुए प्रत्येक बुद्ध, चतुर्दशपूर्वधर, दशपूर्वधर प्रभृति महान् पुरुष जिन जिन निबंधोंकी रचना करते हैं, तिनका भी सूत्र संज्ञा होनेसें द्वादशांगीमेंही समावेश होता है. क्योंकि, वे सूत्र भी, द्वादशागीका आश्रय लेकेही, स्थविर, रचते हैं.

यदुक्तं श्रीनंदीवृत्तौ ॥

यत्पुनः शेषैः श्रुतस्थविरैस्तदेकदेशमुपजीव्य ॥
विरचितं तदनंगप्रविष्टमित्यादि ॥

परंतु गणधरकृत सूत्रको, 'नियतसूत्र' कहते हैं, और स्थविरकृत सूत्रको, 'अनियत' कहते हैं ।

उक्तंच ॥ गणहरकयमंगकयं जंकय थेरेहिं बाहिरं तं तु ॥
नियतं चंगपविट्ठं अणिययं सुयबाहिरं भणियं ॥ १ ॥

गणधरकृतको अंगप्रविष्ट कहते हैं, और स्थविरकृतको अनंगप्रविष्ट, अर्थात् अंग बाहिर कहते हैं; तथा जो, अंग प्रविष्ट है, सो नियत है. क्योंकि, सर्व क्षेत्रोंमें सर्व काल अर्थ वा क्रमको अधिकारकरके ऐसेंही व्यवस्थित होनेसें. और शेष जो, अंगबाहिर

जिस दर्शनमें अपने आत्माका आत्मपणा जानके, पूर्णदयाको अंगीकार करी होवे, सो वो, एक, श्रीजैनदर्शनही है, जो सर्व लोकको विदित है, और इससें यह धर्म, जगत्में सर्वोत्कृष्ट कहा जाता है

इस धर्मके अपेक्षावशसें आचारधर्म, दयाधर्म, क्रियाधर्म, और वस्तुधर्म, ये चार भेद होवे हैं और दान, शील, तप, और भाव, येही चार तिसके कारण है धनके बलसें दान होता है, मनोबलसें शील पलता है, शरीरबलसें तप होता है, और सम्यग्ज्ञानबलसें भावधर्मकी वृद्धि होती है

भावधर्म, दान शील तपसें अधिक है क्योंकि, भावधर्मका कारण ज्ञानबल है, जिस करके वस्तुका स्वरूप जाना जाय सो ज्ञान है ज्ञानसें जितना आत्मधर्मकी वृद्धि, और संरक्षण होता है, उतना प्रथमके तीन दान, शील, तप, इनसें नही होता है इसका कारण यह है कि, नय, निक्षेप, प्रमाण, चार अनुयोगविचार, सप्तभंगी, पद्द्रव्यादिकका विचार, इत्यादि सब, ज्ञानबलकरकेही जीवको परिपूर्ण प्राप्त होता है श्री दशवैकालिक सूत्रमें भी प्रथम ज्ञान, और पीछे क्रिया कही है "पढमं नाणं तओ दया" इति वचनात् ज्ञान विनाकी जो क्रिया करनी है, सो भी, क्लेशरूप प्राय है, क्रिया ज्ञानकी दासी तुल्य है, ज्ञानी पुरुषकी अल्पक्रिया भी, अत्यंत श्रेष्ठ है "जं अन्नाणी कम्मं खवेइ बहुहिं वासकोडिहिं । तं नाणी तिहिं गुत्तो खवेइ ऊसासमित्तेणं" इति वचनात् श्री उत्तराध्ययन सूत्रमें कहा है कि, ज्ञानगुणसंयुक्त जो होय, उसको मुनि कहना इससें भी ज्ञानका माहात्म्य कथंचित् अत्युत्कृष्ट मालूम होता है श्री महानिशीथ सूत्रमें ज्ञानको अप्रतिपाति कहा है श्री उपदेशमालामें कहा है, ज्ञानरूप नेत्रकरके उद्यमवान्, ऐसे मुनिको वंदन करना योग्य है

श्री देवाचार्य, श्री मल्लवादी प्रमुख आचार्योंने, दिगंबर बौद्धादिकोंका पराजय किया, और यशोवाद प्राप्त किया, तथा श्रीमद्यशोविजयोपाध्यायजीने, काशीमें सर्व वादीयोंका पराजय करके 'न्यायविशारद' की पदवी पाई, सो भी, ज्ञानकाही प्रभाव जानना

ज्ञानविना सम्यक्त्व नही रह सकता है, ज्ञानविना अहिंसा मार्ग नही जाना जाता है, सिद्धांतोक्त सकल क्रियाका मूल जो श्रद्धा, उसका भी कारण ज्ञान है क्योंकि, ज्ञानविना प्रायः श्रद्धा प्राप्त होती नही है, ऐसा जो ज्ञान, उसके पांच भेद हैं मति, श्रुत अवधि, मनःपर्यव, और केवल इन पांचोंमें भी, श्रुतज्ञान सर्वसें अधिकोपयोगि है श्रुतज्ञान पदार्थ मात्रका प्रकाशक है, स्वपरतत्त्वका परिपूर्ण प्रकाश करनेवाला भी श्रुतज्ञानही है, अज्ञानरूप अंधकार पटलको दूर करनेवास्ते सूर्य समान है, और दुस्समकालरूप रात्रिमें तो दीपक समान है तथा स्वपरस्वरूपका बोध करानेको श्रुतज्ञानही समर्थ है, अन्य चारों ज्ञानसें जाने हुए पदार्थका स्वरूप भी श्रुतज्ञानसेंही कहा जाता है, इसवास्ते मत्यादि चारों ज्ञान स्थापने योग्य है, "चत्तारि नाणाइं ठप्पाइं ठवणिज्जाइं" इति श्रीअनुयोगद्वारसूत्रादिवचनात् । इसवास्ते श्रुतज्ञानही, उपकारक है क्योंकि, श्रुतज्ञानसेंही उपदेश होता है, श्रुतज्ञानसेंही शुद्धात्मिक परमपदकी प्राप्ति होती है, इस

वास्ते श्रुतज्ञान बडा निमित्त कारण है; श्रुतज्ञानके सुननेसें जीवको शुद्ध स्वरूप विशुद्ध श्रद्धानकी प्राप्ति होती है, और उससें शुद्धात्माका आचरण आसेवन अनुभव उत्पन्न होता है, सोही परमपद प्राप्ति जाननी श्रुतज्ञानके श्रवण करनेसें जीव, धर्मको विशेषकरके जानता है, विवेकी होता है, दुर्मतिका त्यागी होता है, यावत् मोक्षको प्राप्त होता है. इसवास्ते श्रुतज्ञानका आदर, अवश्य करना चाहिये. श्रुतज्ञानका संयोग होना जीवको अतीव दुर्लभ है.

श्रुतज्ञानके संयोगसें श्री गौतमस्वामी, सुधर्मास्वामी, जंबूस्वामी प्रभृति बहुत जीव, संसार समुद्रको तर गये. और वर्त्तमानकालमें महाविदेहक्षेत्रमे श्री सीमंधरादिक तीर्थंकरोकी वाणी सुनके, बहुत जीव, तर रहे हैं. और आगामिकालमें पद्मनाभादि तीर्थंकरोंकी वाणी सुनके, अनेक जीव, तरेंगे तैसेंही इस भरतादि क्षेत्रमें अद्यतनकालमें भी, जो जीव, श्रुतज्ञानको सुनेगा, पढेगा, औरोंको पढावेगा, अंतरंग रुचिसें श्रद्धा प्रतीत करेगा, करावेगा, सो, सुलभबोधि होवेगा, यावत्क्रमकरके मुक्तिको प्राप्त होवेगा. ऐसे श्रुतज्ञानका मूल, द्वादशांगी है. तिस श्रुतज्ञानकी वाचना (१) पृच्छना (२) परावर्त्तना (३) अनुप्रेक्षा (४) और धर्मकथा (५) होती है. सो धर्मकथा, श्री उववाइसूत्रमें चार प्रकारकी कही है आक्षेपिणी (१) विक्षेपिणी (२) निर्वेदिनी (३) और संवेदिनी (४). जिससें एक तत्त्व, मार्गमें प्रवृत्ति होवे, तिस कथाका नाम आक्षेपिणी कथा है । १ । जिसमे मिथ्यात्वकी निवृत्ति होवे, तिसका नाम विक्षेपिणी है. । २ । जिससें मोक्षकी अभिलाषा उत्पन्न होवे, तिसका नाम निर्वेदिनी है. । ३ । जिससें वैराग्यभावकी उत्पत्ति होवे, तिसका नाम संवेदिनी है. । ४ । ऐसी श्रुतज्ञानरूप कथा, श्री अरिहंत, देवाधिदेव, परमेश्वर, तीर्थंकर, सर्वज्ञ, जीवनमोक्ष, समवसरणमें बैठके " उपन्नेइवा विगमेइवा धुवेइवा " इस त्रिपदी उच्चारणपूर्वक, द्वादश पर्षदाके मध्यमें करते हैं. और तिससें (त्रिपदीसें) श्रीगणधर, द्वादशांगीकी रचना करते हैं, तिनको सूत्र कहते हैं. तथा तीर्थंकरके शासनमें हुए प्रत्येक बुद्ध, चतुर्दशपूर्वधर, दशपूर्वधर प्रभृति महान् पुरुष जिन जिन निबंधोंकी रचना करते हैं, तिनका भी सूत्र संज्ञा होनेसें द्वादशांगीमेंही समावेश होता है. क्योंकि, वे सूत्र भी, द्वादशांगीका आश्रय लेकेही, स्थविर, रचते हैं.

यदुक्तं श्रीनंदीवृत्तौ ॥

यत्पुनः शेषैः श्रुतस्थविरैस्तदेकदेशमुपजीव्य ॥
विरचितं तदनंगप्रविष्टमित्यादि ॥

परंतु गणधरकृत सूत्रको, 'नियतसूत्र' कहते है, और स्थविरकृत सूत्रको, 'अनियत' कहते है. ।

उक्तंच ॥ गणहरकयमंगकयं जंकय थेरेहिं बाहिरं तं तु ॥
नियतं चंगपविट्ठं अणिययं सुयबाहिरं भणियं ॥ १ ॥

गणधरकृतको अंगप्रविष्ट कहते हैं, और स्थविरकृतको अनंगप्रविष्ट, अर्थात् अंग बाहिर कहते हैं; तथा जो, अंग प्रविष्ट है, सो नियत है. क्योंकि, सर्व क्षेत्रोंमें सर्व काल अर्थ वा क्रमको अधिकारकरके ऐसेंही व्यवस्थित होनेसें. और शेष जो, अंगबाहिर

ध्रुव है, सो अनियत है। तथा उपन्नेइवा इत्यादि मातृकापदत्रयप्रभव, गणधरकृत, आचारादि, सो ध्रुवज्ञान है, तिसको ध्रुवश्रुत कहते हैं; और जो, स्थविरकृत, मातृकापदत्रयव्यतिरिक्त, प्रकरणनिबद्ध उत्तराध्ययनादि, अंगबाह्य है, उनको अध्रुवश्रुत कहते हैं।

तदुक्तं श्रीस्थानांगवृत्तौ ॥

गणहरथेराइकयं आएसा मुक्कवागरणओ वा।
धुवचलविसेसणाओ अंगाणंगेसु णाणत्ति ॥

इस श्रुतज्ञानके उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा, और अनुयोग, ये चार भेद होते हैं सामान्य प्रकारसें कथन करना, सो उद्देश यथा अमुक शास्त्र, वा अध्ययन, तू पढ। विशेष कथन करना, सो, समुद्देश, यथा इस शास्त्र, वा अध्ययनको अच्छी तरेसें याद रख, आज्ञा देनी, सो अनुज्ञा, यथा अन्यको पढाव, और सूत्रार्थ कथनरूप व्याख्यान सो अनुयोग इनका विस्तार श्री अनुयोगद्वार, व्यवहारभाष्य कल्पभाष्यादि सूत्रोंमें है इत्यादि कारणोंसें व्याख्यान करनेमें श्रुतज्ञानही उपयोगि है, अन्य नहीं, अन्य ज्ञानोंको मूक होनेसें इसवास्ते इस समयमें श्रुतज्ञानहीकी रक्षा, और वृद्धि करनी चाहिये क्यों कि, इस समयमें श्रुतज्ञानही, हम तुमको आधारभूत है यदि श्रुतज्ञान शास्त्र न होवे तो, देवगुरुधर्मका बोध होना इस कालमें कदापि न होवे इसवास्ते श्रुतज्ञानकी वृद्धि, तथा रक्षा करनी है, सो धर्मकी वृद्धि और रक्षा करनी है क्योंकि, इससें अधिक, और कोइ भी धर्मवृद्धि करनेका अत्युत्तम साधन, नही है इसवास्ते श्रुतज्ञानकी वृद्धि और रक्षा करनेके उपाय, तथा तत्संबंधी उद्योगमें, मुमुक्षुजनोंको कटिबद्ध होके, तन मन और धनसें, कदापि, पीछे नही हटना चाहिये ज्ञानकी जो वृद्धि है, सो ज्ञानीके ऊपर आधार रखती है; और ज्ञानीकी वृद्धि, ज्ञानकी अपेक्षा रखती है ज्ञान और ज्ञानीका परस्पर कार्यकारणभाव संबंध है हरएक गाममें, शहरमें, जिलेमें, अथवा देशमें, एक ज्ञानी होवे तो, उसके उपदेशसें अन्य कितनही जनोंको ज्ञान होता है; और जिनको ज्ञान होता है, वे सर्व, ज्ञानी कहाते हैं जब ज्ञानीसें ज्ञानका प्रचार होता है, तब ज्ञानी, ज्ञानका कारण, और ज्ञान, ज्ञानीका कार्य होता है और जब ज्ञानके प्रचारसें ज्ञानीकी वृद्धि होती है, तब ज्ञान, ज्ञानीका कारण, और ज्ञानी ज्ञानका कार्य होता है यद्यपि ज्ञान और ज्ञानीका, गुण गुणीभाव संबंध, असंभवी है, क्योंकि, ज्ञान और ज्ञानी, अभेद है; तिससें कार्यकारणता संभवे नही है तथापि कर्म सहित जीवको ज्ञानरूप गुण उत्पत्तिवाला है, तिससें कार्यता संभवे है, और ज्ञानीको कारणता संभवती है और ज्ञानसें ज्ञानीपणा होता है, तिससें ज्ञानी कार्य है, और ज्ञान कारण है

हरएक वस्तुकी सिद्धिमें उसके साधनोंकी अवश्यमेव अपेक्षा होती है, जब ज्ञानरूप वस्तु सिद्ध करनी होवे, तब तिसके साधन व्याकरण, कोष, काव्य, छंदोलंकार, ज्योतिष, न्याय, धर्म, और अन्य दर्शन विषयक नाना प्रकारके शास्त्र, तथा उन उन शास्त्रोंके अध्ययनका विधि तथा श्रवणमननादिककी आवश्यकता है प्राचीन कालमें विद्वानोंकी (पूर्वाचार्योंकी) स्मरणशक्ति अत्युत्कृष्ट होनेसें, वे, हरएक प्रकारकी प्रक्रिया, नृत्तलाबद्ध कंठाग्र रखते थे

अर्थात् वडे वडे सूत्र प्रमुख द्वादशांगीपर्यंत कंठाग्र रखते थे, तिस समयमें भी, यद्यपि देव नागरी आदि लिपियें विद्यमान थी, तो भी, ग्रंथोंको लिखके रखनेकी वहुत जरूरत नहीं पडती थी. क्योंकि, वो कालमानही तैसा था. पीछे, कालके प्रभावसें जैसें जैसें मनुष्योंकी स्मरणशक्ति घटती गई, तैसें तैसें ज्ञानकी न्यूनता होने लगी जिससें किसी समयमें कितनेक विद्वानोंने इकठे होके, ग्रंथ लिखने लिखवाने प्रारंभ किये.

इस रीतिके प्रचलित होनेके वाद उसउस समयके श्रेष्ठ पुरुषोंने, लिखारीयोंके पाससें अनेक ग्रंथ लिखवायके, उनके वडेवडे ज्ञानभंडार (पुस्तकालय) कराये, जो, अद्यापि प्रायः पाटनादि शहरोंमें देखनेमें आते हैं. यद्यपि पूर्वज पुरुषोने, ऐसे अनेक भंडार करके श्रुतज्ञानके मुख्य साधन पुस्तकोंकी रक्षा करी है, तथापि, कितनेही अपूर्व अपूर्वतर पुस्तक, पढने पढानेवाले, और समझने समझानेवालेके अभावसें, नष्ट होगये. और कितनेक पुस्तक तो, जैनियोंके प्रमादसें नष्ट होगये, अव जो विद्यमान हैं, उनमें भी न्यूनता होनेका संभव हो रहा है; क्योंकि, न तो, कोई जैनीयोंमें पठन पाठनका 'कालेज' (वृहज्जैनशाला) प्रमुख साधन है, और न मातापिता ध्यान देकर पढाते हैं केवल सांसारिक विद्याके ऊपरही जोर देते हैं, परंतु यह उनकी वडी भारी भूल है. यदि सांसारिक विद्याके साथही धार्मिक विद्या भी पढाई जावे तो, थोडेही प्रयाससें ज्ञानवृद्धि होवे, और धर्मकी भी वृद्धि होवे. तथा अपने संतानोका परलोक भी सुधर जावे. परंतु, मोदक खाने छोडके ऐसा काम कौन करे ? अफशोस !!! जैनियोंका उदय, कैसे होवेगा ?

हां ! आजकाल कई लोग नवीन पुस्तक लिखाके भंडार कराते हैं, परंतु वो भी, मक्षिकास्थाने मक्षिकावत् जैसा लिखारियोंने लिख दिया, वैसाही लेके स्थापन करदिया; शुद्ध कौन करे ? हाय ! जैनीयोंमें प्रमादने कैसा घर करदिया ! जो, ज्ञान पढनेकेतरफ ख्यालही नही होने देता है ! ! !

ऐसे ज्ञानके अभ्यासके न होनेसें लोगोंमें संस्कृत प्राकृतका वोध घट गया, तो अव इस समयमें संस्कृत प्राकृतके वोधरहित लोगोको वोध करानेकेवास्ते देशीयभाषामें ग्रंथ रचना करके, अपनी शक्तिके अनुसार प्रत्येक ज्ञाता पुरुषको अपना ज्ञान प्रसिद्ध करना उचित है.

इसीवास्ते पूज्यपाद श्री श्री श्री १००८ श्रीमद्विजयानंदसूरीश्वर (आत्मारामजी) महाराजजीने भव्यजीवोंके उपकारकेवास्ते, अतिशय परिश्रम करके, लोक (देश) भाषामें ग्रंथोंकी रचना करनी प्रारंभ करी जिनमें जैनतत्त्वादर्श, अज्ञानतिमिरभास्कर, जैनप्रश्नोत्तरावलि, सम्यक्त्वशल्योद्धारादि कितनेही ग्रंथ छपकरके प्रसिद्ध होगये हैं; कितनेक प्रसिद्ध करनेकेवास्ते तैयार हैं. परंतु प्रथम इस 'तत्त्वनिर्णयप्रासाद' नामक ग्रंथको प्रसिद्धिमें रखते है.

इस ग्रंथका नाम यथार्थही गुणनिष्पन्न है क्योंकि, जो कोई निष्पक्षपाती, इस ग्रंथरूप प्रासाद(मंदिर)में प्रवेश करेगा, अवश्यमेव वस्तुस्वरूपनिर्णय प्राप्त करेगा. इस ग्रंथके वनानेमें

ग्रंथकारने, कितना परिश्रम उठाया है, सो वांचनेवाले सुज्ञ जन आपही विचार लेवेंगे। इस वास्ते इस ग्रंथकी महिमा लिखनी योग्य नहीं है क्योंकि, इस ग्रंथमें ज्ञानगुण है सो, वाचक वर्ग आपही स्तुति–महिमा करेंगे क्या फूल किसीको कहता है कि, मेरे वाच सुगंध है!

जैसें राज्यमहिल आदिके नाना प्रकारकी जडतसें जडे हुए स्तंभ होते हैं, वैसें इस ग्रंथरूप प्रासादके अनेक प्रकारके ज्ञानगुणादि रत्नोंसें जडे हुए छत्तीस (३६) स्तंभ हैं जिनमें–

१ प्रथम स्तंभमें पुस्तकसमालोचना, प्राकृतभाषानिर्णय, और वेदबीजक प्रमुखका वर्णन है

२ दूसरे स्तंभमें श्रीमद्धेमचंद्राचार्यकृत महादेवस्तोत्रद्वारा ब्रह्मा विष्णु महादेवके लक्षण, और उनका स्वरूप, तथा लौकिक ब्रह्मादिदेवोंमें यथार्थ देवपणा सिद्ध नहीं होता है, तिसका पुराणादि लौकिक शास्त्रद्वारा स्वरूप वर्णन किया है

३ तीसरे स्तंभमें यथार्थ ब्रह्मा विष्णु महादेवादिरूप देवमें जो जो अयोग्य बातें हैं, उनका व्यवच्छेदरूप वर्णन श्री हेमचंद्रसूरिकृत द्वात्रिंशिकाद्वारा किया है

४ ५ चौथे और पांचवें स्तंभमें श्रीमद्धरिभद्रसूरिविरचित लोकतत्त्वनिर्णयका भावार्थसहित अपूर्व स्वरूप लिखा है जिसमें पक्षपात रहित होकर देवादिकी परीक्षा करनेका उपाय, और अनेक प्रकारका सृष्टि जे जगद्वासी जीवोंने कथन करी है, उसका वर्णन है

६ छठे स्तंभमें मनुस्मृतिका कथन किया हुआ सृष्टिक्रम, और उसकी समीक्षा है

७, ८ सातमे आठमे स्तंभमें ऋगादि वेदोंमें जैसें सृष्टिका वर्णन है, वैसें प्रतिपादन करके तिसकी समीक्षा करी है

९ नवमे स्तंभमें वेदके कथनकी परस्पर विरुद्धताका दिग्दर्शन है

१० दशमे स्तंभमें वेदोक्त वर्णनमेंही वेद ईश्वरोक्त नही है, ऐसा सिद्ध किया है

११ इग्यारहमें स्तंभमें "ॐभूर्भुव स्वस्तत्" इत्यादि गायत्री मंत्रके अनेक प्रकारके अर्थ करके, आर्हताचार्योंकी बुद्धिका वैभव दिखाया है

१२. बारमे स्तंभमें सायणाचार्य शंकराचार्यादिकोंके बनाये गायत्री मंत्रके अर्थोंका समीक्षापूर्वक वर्णन है, तथा वेदका निंदक नास्तिक नही, किंतु वेदका स्थापक नास्तिक है, ऐसा महाभारतादिकोंद्वारा सिद्ध किया है

१३ सें ३१ तेरमे स्तंभसें लेके इकतीसमे स्तंभपर्यंत गृहस्थके षोडश (१६) संस्कारोंका वर्णन, श्रीवर्धमानसूरिकृत आचारदिनकर नामा शास्त्रसें करा है

३२ बत्तीसमे स्तंभमें जैनमतकी प्राचीनताका, वेदके पाठोंमें गडबड होगई है तिसका, निष्पक्षपाती होनेका, और व्याकरणादिकी सिद्धिका, तथा पाणिनीकी उत्पत्ति प्रमुखका वर्णन है

३३ तेतीसमे स्तंभमें जैनमतकी बौद्धमतसें भिन्नताका, पाश्चात्यविद्वानोंमति हितशिक्षाका, और दिगंबरमति हितशिक्षाका वर्णन है

३४. चौतीसमे स्तंभमें जैनमतकी कितनीक बातेंपर कितनेही लोक अनेक प्रकारके वितर्क ऊठाते हैं, उनके उत्तर दिये हैं.

३५. पेंतीसमे स्तंभमें शंकरदिग्विजयानुसार, शंकरस्वामीका जीवनचरित्र है.

३६. छत्तीसमें स्तंभमें वेदव्यास, और शकरस्वामीने, जो जैनमतकी सप्तभगीका खंडन किया है, उसका वेदव्यास और शंकरस्वामीकी जैनमतानभिज्ञताका दर्शक, उत्तर दिया है. तथा जैनमतवाले सप्तभंगी जैसें मानते हैं, तैसें उसका स्वरूप, और सप्तनयादिकोंके स्वरूपका संक्षेपसें वर्णन करा है.

ऐमे विचित्र वर्णनके साथ यह ग्रंथ भरा हुआ है; इसवास्ते निष्पक्षपाती सज्जन पुरुषोंको, अथसें लेके इतिपर्यंत बराबर एकाग्रध्यान रखके इस ग्रथको वाचना, और सत्यासत्यका निर्णय करना उचित है क्योंकि, पक्षपात करना यह बुद्धिका फल नही है परंतु तत्त्वका विचार करना, यह बुद्धिका फल है. "बुद्धेःफलं तत्त्वविचारणंचेतिवचनात्"

और तत्त्वका विचार करके भी पक्षपातको छोडकर जो यथार्थ तत्त्वका भान होवे, उसको अगीकार करना चाहिये; किंतु पक्षपात करके अतत्त्वकाही आग्रह नही करना चाहिये.

यतः ॥ आगमेन च युक्त्या च योर्थः समभिगम्यते ।
परीक्ष्य हेमवद् ग्राह्यः पक्षपाताग्रहेण किम् ॥

इत्यलम्बहु पल्लवितेन विद्वद्वर्येषु ॥

भावार्थः—आगम (शास्त्र) और युक्तिकेद्वारा जो अर्थ प्राप्त होवे उसको सोनेके समान परीक्षा करके ग्रहण करना चाहिये; पक्षपातके आग्रह (हठ) से क्या है. ॥

☞ अब सर्व सज्जन पुरुषोंको, मैं, विज्ञप्ति करताहूं कि, इस ग्रंथको समाप्त करके, गुरुजी महाराज श्री श्री श्री १००८ श्रीमद्विजयानंदसूरीश्वरजी [आत्मारामजी] महाराजजीने नकल करनेवास्ते मुजको दीया. विहारादि कितनेही कार्यके विक्षेपसें, नकल पूर्ण होनेमें विलंब हुआ; तथापि, जोर देनेसें सनखतरा ग्राममें नकल पूर्ण हो गई. तदनंतर सनखतरेसें प्रतिष्ठादिसंबंधि कार्यके व्यतीत होए, श्री गुरुजीमहाराजजी इस क्षेत्रमें [गुजरांवालेमें] सं. १९५३ प्रथम ज्येष्ट सुदि द्वितीयाको पधारे. बाद थोडेही समयमें, अर्थात् संवत १९५३ प्रथम ज्येष्ट सुदि अष्टमीको स्वर्गवास होगए ! ! ! इसवास्ते सम्पूर्ण इस ग्रथको, वे, आप शुद्ध नही कर सके है ! ! किंतु, मैंने, स्वबुद्ध्यनुसार देखके, शुद्ध करा है. इसवास्ते, इस ग्रंथमें जो कोई अशुद्धतादि दोष रह गया होवे, सो, सर्व सज्जन पुरुष सुधारके वांचे, और क्षमा करें "॥ विस्मृति स्वभावोहि छद्मस्थानामतो मिथ्यादुष्कृतं मेस्त्विति ॥"

श्री वीर संवत् २४२३ ॥
विक्रम संवत् १९५४ ॥

मुनि वल्लभविजय.



न्यायांभोनिधि श्रीमद् विजयानंदसूरि (आत्मारामजी महाराज)

The Bombay Art Printing Works



न्यायांभोनिधि श्रीमद् विजयानंदसूरि (आत्मारामजी महाराज)

The Bombay Art Printing Works

। श्रीः ।

॥ ॐ नमः श्रीपरमात्मने ॥

श्रीश्रीश्री १००८ श्रीतपगच्छाचार्यश्रीमद्विजयानन्द-सूरीश्वरजी प्रसिद्धनाम आत्मारामजी महा-राजजी जैनीसाधुका जन्मचरित्र ॥

अगले पृष्ठके ऊपर जो फोटो (छवि-चित्र) विराजमान है. वह किनकी प्रतिमूर्त्ति है ? वह प्रशस्त ललाट, वह अलौकिक तेजभरे शातरूप दीर्घ नयन, किनके हैं ? शरीरमें देवभावका प्रकाश, मुखमंडलमें सर्व जीवोंको अभय करनेवाली अपूर्व शोभा-क्या यह सब स्वर्गीय संपत्, रोगशोकसें भरे हुए मनुष्योंमें पाई जासक्ती है ? पाठको ! यह छवि, ऐसे महात्माकी है, जो जैनीयोंके इस कठोर कुदिनमें डूबते हुये हिंदुधर्ममें अग्रगामी, जैनधर्मको डूबने नही देते थे; जो मनुष्य शरीर धरकरके भी, ऐसे ऊंचे आसनपर आरूढ थे कि, जिसपर साधारग मनुष्योंके चढने-की सामर्थ नहीं है. जो संपूर्ण भारत यावत् विलायत तकमें इस दुषम कालमें सत्य यथार्थ धर्मके एकही उपदेष्टा थे. जिनकी कृपाके विना षड्दर्शनकी व्याख्या इस समयमें बहुत कठिन थी, जिनके दर्शनसें राजा प्रजा धनी निर्धन ज्ञानी अज्ञानी सब अपनेको कृतार्थ मानते थे; यह प्रति-मूर्त्ति, उनही सर्व पंडितोंके शिरोमणि, सर्वशास्त्रोंके वेत्ता, परम मुनियोंके मुखी, परम ऋषियोंके अग्रेश्वरी, भारतवर्षके अलंकार, जैनधर्माधार, न्यायाभोनिधिश्रीश्रीश्री १००८ श्रीमद्विजयानंद-सूरीश्वरजी (आत्मारामजी) महाराजजीकी है. धर्मात्मन् ! जगत्में कौन ऐसा होगा, जिनका हृदय विद्वानमंडलके आदर्शस्थल, धार्मिकोंके प्रधान, दयादि गुणोंके पारावार, जैनीयोंके शिरो-भूषण, यथार्थ सत्यवक्ता महामुनि श्रीमद्विजयानंदसूरीश्वर (आत्मारामजी) महाराजजीका वि-शुद्ध चरित पढने सुननेको उत्साहित न होगा ?

मूलक पंजावके द्वाबा "सिंधसागर" में दरया "जेहलम" के किनारेपर "पींडदादनखान" नामक एक शहर वसताहै, तिसके पूर्वओर अनुमानसे दो मिलके फासलेपर एक "कलश" नामक गाम है. तहां पूर्व कालमें कलशजातिके सरदारोंका दिवान "बीब्राराम" नामक काश्यपगोत्रीय "चउधरा कपूर ब्रह्म क्षत्रिय" था. तिसका पुत्र "रोचिराम" नामसे हुआ. तिसका वडापुत्र "दीवान चंद" था. तिसकी स्त्री "महादेवी" रूपमें देवीके समान थी. तिसकी कूखसे "लक्खुमल्ल"-"गणेशचंद"-दोपुत्र, और "हुक-मदेवी" नामक एक पुत्री पैदा हुए. दीवानचंदका छोटाभाई "श्यामलाल" था. जिसके "देवीदत्ता" करके पुत्र और "राधा" नामकी पुत्री हुए. और दीवानचंदके दूसरे भाइयोंके बेटे "महेशदास" "प्रभदयाल" "मंगलसेन" हुये. जिनकी सन्तान आत्मारामजीके पितृव्य भाई (चाचेके पुत्र) "रामनारायण," "हरिनारायण," "गुरुनारायण" आदि अब विद्यमान हैं. तात्पर्य आत्मारामजीके

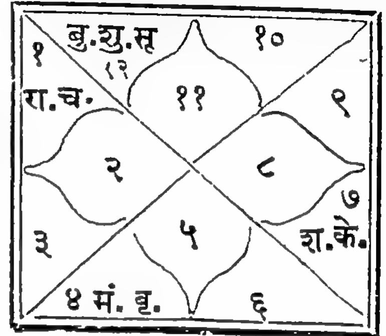
परिवारके आठ घर कलशगाममें पूर्वोक्त परंपराके अब विद्यमान हैं और "पत्याळ "गाम जो खुशाबके पास वसता है, वहां भी "आत्मारामजी" के नजदीकके साकसंबंधी कपूरक्षत्रियोंके चालीस घर बसते हैं (वंशवृक्ष देखो) " दीवानचंद " और उसकी भार्या "महादेवी" अपने दोनों पुत्रों और लडकीको छोटी उमरमें छोडकर गुजर गयेथे इस वास्ते दोनों पुत्र (रूपखुमल गणेशचंद) और पुत्री (हुकमदेवी) तीनों जने अपने पिताके भाई (चाचे) श्यामलालके घर रहतेथे परंतु " श्यामलालकी" भार्याकी तबियत सख्त होनेसे, " गणेशचंद " दुःखी होकर कितनेक दिन पीछे बिना कहे, वहांसे चलनिकला, और रामनगरके पास कसबा फालीयेमें आकर थानेदार (पोलीस ओफिसर) हुआ और वहांही " कसरसेन " नामके पूरी क्षत्रिय कुलाहीकी बेटी " रूपदेवी " के साथ विवाह होगया " गणेशचंद " शूरवीर होनेसे बहोत सीपाइयोंके साथ भाइबडु आदि नगरोंकी लडाइयोंमें शामिल रहतेथे कितनेक काल पिछे महाराज "रणजीतसिंह" के राज्यमें हरिकापत्तनपर एक हजार घोडेस्वारोंको जानेका हुक्म हुआ उनके साथ गणेशचंदकी भी बदली हुइ वहां (हरिकापत्तनपर) " गणेशचंदजी " बहुत मुद्दत तक रहे इसीवास्ते वहांके " नंदलाल" ब्राह्मण, और कितनेक ओसवालोंके साथ बहुत प्रीति होगईथी जिससे जब रिसालेकी बदली हुई, तब गणेशचंदजी नोकरी छोडकर वहांही रहगये

"नंदलाल"ब्राह्मण वडा शूरवीर और डाकू (धाडवी) था तिसकी संगतसे "गणेशचंदजी" भी डाके डालने लगगये उनके साथ,और भी आसपासके जीरेकी,लेहरा,गंडीवांड,रूडीवाला,सरहाली इत्यादि गामोंके डाकू मिलजानेसें,सब मिलके डाके डालने लगे उस समयमें सरहाली गाममें "मूला मिश्र" उसका पितामह (बाबा) रहता था उसके तीन बेटे थे उनमेंसे "बशालीराम" वो पंडित था, और अमृतसरमें रहता था, और "देवीदत्ता" मूलामिश्रका बाप, सरहालीमेंही रहता था और तीसरा "भाइराम " जीरेकी गाममें दुकान करता था, और गणेशचंदजीका मित्र, और मेहरबान था, और डाके डालनेमें भी शामिल था इसी तरह गाम रूडीवालामें " विशनसिंघ" का बाप " कहानसिंघ " गणेशचंदजीका मित्र रहता था गणेशचंदजी प्रायःकरके अपने मित्र कहानसिंघकी मुलाकातके वास्ते रूडीवालामें आते जाते थे वहां (रूडीवालामें) लेहरा गामकी एक लडकी " कर्मा " ब्याही थी, और विशनसिंघके घरकेपास रहती थी इसवास्ते कर्मा भी गणेशचंदजीको अच्छी तरांह जानती थी, और इसी सबबसे गणेशचंदजीका " लेहरा " गाममें रहना हुआ क्यों कि "राजकुंवर नामका क्षत्रिय, ढुंकावाली जिल्ला गुजरांवालका,जीरामें महाराज रणजीतसिंहजीके तरफसे ठकेदार हुआ करता था अपने वतनकी मोहब्बतसे गणेशचंदजी उससे मिलनेके लिये जीरेकेपास लहरा गाममें रहने लगे कर्माकी जान पिछान होनेसें लहरामें रहना उनको मुश्किल नहीं हुआ, अथात् थोडेही कालमें बहुत लोगोंसे मोहब्बत होगई गणेशचंदजी लेहरा गामसे प्रायः निरंतर राजकुंवरसे मिलनेकेलिये जीरेगाममें आते थे इस सबबसे जीरेका रहनेवाला "जोधामल्ल" ओसवाल, जोकि खानदानी, लायक, और बुजुर्ग था, उसकेसाथ गणेशचंदजीकी मुलाकात हुई जोधामल्लका राजकुंवर ठकेदारके साथ बहुत स्नेह था राजकुंवरका बेटा " जमीतराय " जीरेमें रहता था, जिसके घर " केदारनाथ और " बद्रीनाथ " बडे नामी आदमी अब शहर गुज

रांवालेमें विद्यमान है इस सबबसे कितनेही वर्षोंतक जमीतराय, और जोधामल्लकी संतानका* आपसमें मोहबतका बरताव रहा.

भवितव्यताके बशसें "राजकुंवर" और "जमीतराय" तो अपने वतन चलेगये. और "गणेशचंद-जी" लेहरा गाममेंही रहने लगे, और वहांही बिक्रम संवत् १८९३ चैत्रशुदि प्रतिपदा गुरुवारके रोज "श्रीआत्मारामजीका" "रूपादेवी" माताकी कूखसे जन्म हुआ. माता पिताने ब्राह्मणोंसे पूछके "आत्माराम" नाम रखा.

श्रीआत्मारामजीकी जन्म कुंडली नष्टोद्दिष्टसे ॥



इस समय (लेहरागाम) "अतरसिंघ" नामा "सोढी" (शी-खलोकोंके गुरू) के तावेमें था. इस सबबसे सोढी अतरसिंघ, और "गणेशचंदजीकी" आपसमें बहोत प्रीति थी. एक दिन सोढी अतरसिंघने श्रीआत्मारामजीको माता रूपादेवीकी गोदमें देखा, और बुद्धिके प्रभावसे ऐसा निश्चय किया कि, यह बालक बडा तेजप्रतापवाला होवेगा. पिछे अतरसिंघ सोढीने कहा कि "इस बालकके ऐसे सुंदर लक्षण हैं कि, जिससें यह लडका बडाभारी राजा होवेगा ! अथवा ऐसा साधु होवेगा कि, जिसके चरणोंके राजा महाराजा भी सेवक होवेंगे ! और यह लडका किसी तरह भी तुमारे पास नहीं रहेगा. इस लिये यह लडका तुम मुझे दे दो; और मैं इसको अपनी कुल मिल-कतका मालिक करूंगा." परंतु माता पिताने यह बातको स्वीकार नहीं किया. तथापि सोढी अतरसिंघके दिलसें यह बात दूर नही हुई, बलकि निरंतर इसही बातका ख्याल रखता रहा, और श्रीआत्मारामजीसे बहुत प्यार करता रहा. ठेकेदार राजकुवरके वतन पहुंचनेसे गणेशचंदजीके भाई लक्खुमल्ल और चाचेके पुत्र देवीदत्तामल्लको गणेशचंदजीका पता बहोत कालके पीछे मा-लूम होनेसे दिल खुश होगया. और उसी वखत अपने भाई "गणेशचंदजी" को अपने वतन ले जानेकेलिये आये. अपने भाई गणेशचंदजीको देखतेही बहुत खुश होगये.

दोहा—पाया अतिहि बियोगसे, जसतन दुःख भरपूर ॥
फिर मिलनेसे वोही तन, पावे सुख भरपूर ॥ १ ॥

गणेशचंदजीकी गोदमें छोटी उमरवाले बडे तेजवाले अपने भाईके पुत्र श्रीआत्मारामजीको दे-खके बहुतही प्रसन्न हुये. और दोनों भाइयोंने अपने भाई गणेशचंदजीको अपने वतन लेजानेके वास्ते बहुत मेहनत की; परंतु इस देशकी मोहबत, और दाना पानीने गणेशचदजीको किसी तरह भी जाने न दिया. इस वास्ते लाचार होके कितनेक दिन वहां रहके अपने वतनको चलेगये. और चलनेके समय अपने भाईके पुत्र श्रीआत्मारामजीका नाम, "दित्ता" रखगये. और कहते गये कि, "इस बालकका अच्छी तरह ख्याल रखना." "रत्नंयत्नेनरक्षयेत्" भावार्थ—रत्नकी यत्न

* विक्रम सवत् १९३७ में जब श्रीआत्मारामजी महाराजजीका चौमासा शहेर गुजरावालेमें था, तव जोधामल्लकी सतानके राधामल्ल और हरदयालमल्ल श्रीमहाराजजीके दर्शनकेवास्ते गये थे, तव पिछली मुलाकतके सववसे जमी-तराय, उनसे बहोत महोवतसे मिला था. बलकि देशाचारके अनुसार राधामल्लके बेटे ईश्वरदास और वशाखमिल्लके पुत्र हरदयालमल्ल को कपडे और मिठाई वगैरह दी थी.

पूर्वक रक्षा करना चाहिये तब मातापिताने भी "दित्ता"नाम स्वीकार कर लिया और उस दिनसे " श्रीआत्मारामजी " " दित्ता " के नामसे प्रसिद्ध हुवे

कितनेक कालपीछे लेहरा गाममें व्यवहाराभावसें गणेशचंदजी अपनी भार्या रूपदेवीको और दित्ताको लेकर आनंदपुर मालोवाल कीर्तिपुरमें, जहां सोढी अतरसिंघ रहता था जा रहे, और सोढी अतरसिंघने बडी खुशीसे गणेशचंदजीको अपने सीपाइयोंमें नौकर रखे और पशुयोंके घास चारेकी जमीन (चरागा–बीड) के रक्षक ठहराये और अतरसिंघ सोढी निरंतर दित्ता (श्री आत्मारामजी) को लेनेके ख्यालमेंही रहा इसी सबबसे कितनेक दिनोंपिछे सोढी अतरसिंघने, गणेशचंदजीको अपनी जमीनमें ब्राह्मणोंकी गौयां चरन देनेके तोहमतसे तकसीरवार ठहराकर, पैरोंमें बेडी पहनाकर कहा कि, " जो तू अपने पुत्र आत्माराम (दित्ता) को मुझे देवेगा तो, मैं तुजे छोडूंगा, अन्यथा किसी प्रकारसे भी तेरा छूटकारा न होवेगा " परंतु गणेशचंदजी जोरावर होनेके सबबसें अवसर देखके बेडीको तोडके अपनी भार्या रूपदेवी और पुत्र दित्ता(आत्माराम) को लेके रातके वखत भागगये, और कडीवाला गाममें आ रहे यहां, गणेशचंदजीकी भार्या रूपा देवीसें दूसरा पुत्र पैदाहुआ अनुमान चार वर्ष वहां रहके कितनेही आदमियोंके और खास करके जोधामल्ल वगैरहके कहनेसे फिर लेहरा गाममें चलेआये और लेहरा गाममें खेतीका काम करके अपना गुजारा करते रहे, और जोधामल्लकी मोहबतसे अमन चैन उडाते रहे

अब इस वखत पिछला जमाना (सिखेसाई जमाना) फिरगया था, और सरकार महाराणी विक्टोरीयाका अमल होगया था, जिससे हरतरहका आराम हुआ, और देशकी ठीक ठीक सारवार होती रही न्यायके सबबसे मानो बकरी और सिंह एक घाटपर पानी पीने लग, अर्थात् छोटे बडे सबको अदल इनसाफ मिलता रहा, मुसाफर निडर होके रस्तेपर चलन लगे थे, कोई नही पूछता कता था कि तेरे मुखमें कितने दांत है सोना उछालता चलाजावे,न चोरका डर,न डाकूका डर रहा था क्योंकि, सबके सिरपर अंग्रेजी राज्य प्रतापका ऐसाही डर घूम रहा था परंतुः—

दोहा—होणहार हिरदे वसे, विसर जाय सुद्ध बुद्ध ॥
जो होणी सो होत है, वैसी उपजे बुद्ध ॥ १ ॥

इस कहावत मुजब ऐसे नाजुक वखतमें गणेशचंदजी आठ आदमीयोंके साथ मिलकर फिर डाका डालना शुरु किया. परन्तु आखर उसको इस पापका फल मिला सो यह कि,पकडे गये कहावत भी है कि "सौ दिन चोरके और, एक दिन साधका "इस अपराधमें अदालतसे दश वर्षकी कैदकी सजा पाई और कैदियोंको आग्रेके किलेमें भेजनका हुकम हुआ चलते वखत गणेशचंदजीन अपने पुत्र दित्ता (आत्माराम) को जोधामल्ल ओसवालको सोंपकर कहा कि, " इसकी सार संभाल रखना क्योंकि यह तुम्हाराही पुत्र है, इसवास्ते इसको सांसारिक विद्या पढाना, जिससे यह व्यापारादि करके अपना गुजारा करता रहे, बहुत क्या कहुं मैं इसको तुमकोही सोंपताहुं, इसका नफा नुकसान तुमारेही अखतीयार है " जोधामल्लने रुदन करके कहा कि,

जुदाई तेरी किसको मंजूर है, जमीन सख्त और आसमान दूर है

परंतु कर्मोंके आगे किसीका भी जोर नहीं चलता हैः—

हरो वरो ब्रह्म विवाह कर्त्ता, वैश्वानरो आहुतिदायकश्च ॥
तथापि वंध्या गिरिराजपुत्री, न कर्मणः कोपि बली समर्थः ॥ १ ॥

भावार्थ इसका यहहै—महादेव जिसका पति, साक्षात् ब्रह्माजीने जिसका विवाह किया, जिसके विवाहमें साक्षात् अग्नि देवताने आहुति दी, ऐसी पार्वती भी वांझ रही. इसवास्ते कर्मोंसे कोई भी अधिक बलवान् समर्थ नहीं है—इसवास्ते इस बातमें हमारा कोई भी जोर नहीं चलता है और इस लडकेकी बावत जो तुम कहते हो, सो तो परमेश्वर जानते है. मुझको यह अपने दोनो लडकोंसे अधिक प्यारा है." इत्यादि कितनीक बातें करके गणेशचंदजी तो चलेगये और आग्रेके किल्लेमें ही अंग्रेजोंके साथ लडाई करते हुए, आपसमें गोली लगनेसे गणेशचंदजी स्वधामको पहुंचगये !!!

अब आत्मारामजी जोधामल्लके घरमें उनके पुत्रोंकी तरह पलने लगे, और जोधामल्लने भी अपने आपको सच्चा धर्मपिता प्रमाणित किया; और अपने वचनको पूरा कर दिखलाया. और अपने छोटे पुत्र " रलाराम " के साथ हिंदी इलम सिखलाया. इसवास्ते " आत्मारामजी " भी, जोधामल्लको अपने पिता मानते थे. और जोधामल्लका बडा पुत्र " वधावामल्ल " आत्मारामजीसे बहुत भाईओंसे भी अधिक प्यार रखता था. इसवास्ते घरकी स्त्रियां भी, अपने लडकोंवालोंसे भी ज्यादा प्यार रखती थीं; परंतु जोधामल्लके छोटे भाईका नाम, दित्तामल्ल होनेसे आत्मारामजीका दूसरा नाम दित्ता बदलके, " देवीदास " रखदिया था.

जिनदिनोंमें देवीदास (आत्मारामजी) जोधामल्लके घरमें पलतेथे, उस वखत जोधामल्ल, और तिसका परिवार, और जीरेके रहीस सब ओसवाल, ढूंढक मत* (स्थानकवासी) को मानतेथे.

---

*ढूंढकमतकी उत्पत्ति इस प्रकारसे है —गुजरात देशके अहमदावाद नगरमें एक लौंका नामका लिखारी यतिके उपाश्रयमें पुस्तक लिखके आजीविका चलाताथा एक दिन उसके मनमें ऐसी वेइमानी आई जो एक पुस्तकके सात पाने विचमेंसे लिखने छोड दिये जब पुस्तकके मालिकने पुस्तक अधूरा देखा, तब लौंके लिखारीकी बहुत निंदा की और उपाश्रयसे निकाल दिया, और सबको कह दियाकि, इस वेइमानके पास कोई भी पुस्तक न लिखावे तब लौंका आजीविका भग होनेसे बहुत दुःखी हो गया और जैनमतका बहुत द्वेषी बनगया परतु अहमदावादमें तो लौंकेका जोर चला नहीं तब वहासे (४५) कोशपर लींबडी गाम है, वहा गया वहा लौंकेका सबधी लखमसी बनिआ राज्यका कारभारी था, उसे जाके कहाकि, " भगवान्का धर्म लुप्त हो गयाहै, मैंने अहमदावादमें सच्चा उपदेश किया था परतु लोकोंने मुजको मारपीट के निकाल दिया, यदि तुम मुझे सहायता दो तो, मैं सच्चे धर्मकी प्ररूपणा करूं " तब लखमसीने कहा, " तु लींबडीके राज्यमें बेधडक तेरे सच्चे धर्मकी प्ररूपणा कर, तेरे खानपानकी खबर मैं रखूंगा " तब लौंकेने सवत् १५०८ में जैनमार्गकी निंदा करनी शुरू करी परतु २६ वर्ष तक किसने भी इसका उपदेश नहीं माना सवत् १५३४ में भूणा नामा बनिया लौंकेको मिला, उसने लौंकेका उपदेश माना, लौंकेके कहनेसे विना गुरूके दिये अपने आप वेष धारण कर लिया, और मुग्ध लोगोंको जैनमार्गसें भ्रष्ट करना शुरू किया लौंकेने ३१ शास्त्र सच्चे माने व्यवहार सूत्रको मान्य नहीं किया जिसका सबब यह है कि व्यवहार सूत्रमें लिखाहै कि, " तीन वर्ष दीक्षापर्यायवाले साधुको आचारप्रकल्प नामा अध्ययन पढाना कल्पता है, एव चार वर्ष पर्यायवाले साधुको सूयगडाग पाच वर्ष पर्यायवालेको दशाश्रुतस्कंध—कल्पसूत्र (बृहत्कल्प) व्यवहारसूत्र, विकृष्ट वर्ष पर्यायवालेको अर्थात् छ वर्षसें लेके नव वर्ष पर्यंत पर्यायवालेको ठाणाग—समवायाग, दश वर्ष पर्यायवालेको भगवतीसूत्र, एकादश वर्ष पर्यायवालेको खुड्डियाविमाण पविभत्ति—महल्लिया विमाण पविभत्ति-अगचूलिया—वगचूलिया—विवाह चूलिया, द्वादश वर्ष पर्यायवालेको अरुणोववाए-गरुलोववाए-वरुणो

इसवास्ते आत्मारामजी भी जोधामल्ल आदिके साथ ढूंढक साधुओंके पास जाने लगे और ढूंढक मतको मानने लगे "जवारमल्ल" नामक ओसवालके पाससे ढूंढकमतका सामायिक पडिक्कमणा सीखा और नवतत्त्व छवीसद्वार आदि बोल विचारोंको भी याद किये विक्रम संवत् १९१० में "गंगाराम–जीवणराम" ढूंढकमतके दो साधुओंने जीरामें चौमासा किया तब जवारमल्ल ढुंगडके, और पूर्वोक्त साधुओंके उपदेशसे "श्रीआत्मारामजी" इस असार संसारसें विरक्त हुए, और साधु होनेका निश्चय किया इस बातकी खबर इनकी माता "रूपादेवी" जो कि लेहरा गाममें रहती थी उसको हुई, तब वो अपने पुत्रके पास आके बहुत रुदन करके पुत्रको साधु होनेके वास्ते मना करने लगी, परंतु श्रीआत्मारामजीने माताजीको शांत करके मीठे वचनोंसे कहा कि, "हे माताजी! आप मुझे खुशीसे रजा दीजिये, जिससे मेरा साधुपणा आपके आशीर्वादसें पूर्ण होवे" तब माताजीने गद्गद् स्वरसे कहा कि, "हे पुत्र! तेरे पिताश्री तुजको जोधामल्लजीको सौंप गयेहैं, इसवास्ते अपन धर्मपिता जोधामल्लजीकी आज्ञा तुजको लेनी चाहिये, और जो कुछ वे फरमावे, वो तुजको करना चाहिये मेरे तरफसें वे मालिक है" माताजीका ऐसा कथन सुनके श्रीआत्मारामजीने बडी खुशीसे अपने धर्मपिता जोधामल्लसे आज्ञा मांगी तब जोधामल्लने कहा कि, "तू मेरा धर्मपुत्रहै, मैने तुजको बाल्यावस्थासे पाला है, इसवास्ते मैं अपने सारे धनका तीसरा हिस्सा तेरे नामका सरकारमें लिखादेता हूं, और तेरा विवाह भी बडी धामधूमसे मैं आप करूंगा 'किसीके बहकानेसे मत भूल' यह कहकर जोधामल्ल श्रीआत्मारामजीको प्यारसे छातीके साथ लगाकर बहुत रोया, तब श्रीआत्मारामजी अपने धर्मपिता जोधामल्लके सामने कुछ भी जवाब न दे सके, क्योंकि श्रीआत्मारामजी बहुत नरम दिलके, और विनयवान् थे

ववाए—वसमणावबाए—वेलधरोववाए, त्रयोदश वर्ष पर्यायवालेको उट्ठाणसुए–समुट्ठाणसुए–दविंदोववाए नागपरियावणियाए, चउदह वर्ष पर्यायवालेको सुमिणभावणा, पनरह वर्ष पर्यायवालेको चारणभावणा, सोले वर्ष पर्यायवालेको तेयनिसग्ग, सत्तरा वर्ष पर्यायवालेको आसीविसभावणा, अठारह वर्ष पर्यायवालेको दिट्ठीविसभावणा एकोनवीस वर्ष पर्यायवालेको दिट्ठिवाए, वीश वर्ष पर्यायवालेको सवश्रुत, पढाना कल्पताहै' यदि जो लौंका व्यवहार सूत्रको मान्य करता तो, स्ववचन व्याघातरूप दूषणसे पत्थरोपहत तुल्य होजाता क्योंकि, वो आप बिना साधु हुयेही शास्त्र पढताथा, और भूणा वगैरहको भी पढाया इसी सबबसे अद्यतनकालमें भी कितनेक जैनाभास गृहस्थीयोंको पूर्वोक्त शास्त्र पढाते हैं. परंतु यह आश्चर्य है कि, ढूंढियोने तो प्रथमसेही व्यवहार सूत्रको जलांजलि देदी थी इस वास्ते वो तो प्रथमही रहो! परतु जो लोक व्यवहारसूत्रको मानते हैं, और फिर गृहस्थीयोंको पूर्वोक्त पाठ लोपके शास्त्र पढाते हैं उनकी कितनी भारी बेसमझ है! इस बातकी परीक्षा करनी हम उनकाही सपुर्द करते हैं अफसोस!! लौंकेने जो (३१) शास्त्र मान्य रखे उनमें भी जहां जहां जिन प्रतिमाका अधिकार है, तहां तहां मन:कल्पित अर्थ करने लग गया इसी तरह कितनेही लोगोंको जैनमार्गसें भ्रष्ट किया विक्रम संवत् १५६८ में रूपजी नामा भूणेका शिष्य हुआ, उसका शिष्य संवत् १६ ६ में वरसिंह हुआ, तिसका शिष्य संवत् १६४९ में माघ सुदि त्रयोदशी गुरुवारके रोज पहर दिन चढे असवत हुआ, उसके पीछे वजरंगजी हुआ (जो संवत् १७ २में लुंपकाचार्य महात्मा) नमरमजी की दीक्षा पीछे सुरतका वासी वोहरा वीरजीकी बेटी फूलांबाइके मोदपुत्र लवजीने वाक्षा ली दीक्षा लेनेके पीछे जब दो वर्ष हुये, तब दशवैकालिक शास्त्रका टबा (भाषारूप अर्थ) पढा तब अपने गुरुको कहने लगा कि, 'तुम साधुके आचारसे भ्रष्ट हो, इत्यादि कथनेसे गुरुका साथ लडाई हुई तब लुंपकमत, और लौंकेमतके अपने गुरुको त्याग किया और थामणरिष–सखीआजीको सहायक अपने साथ लेके, अनुमान संवत् १७०९ में स्वयमेव कल्पित वेष धारण करके साधु बनगया, और मुखपर कपडा

पूर्वोक्त हकीगत गंगारामजी और जीवणमल्लजी साधुओंने सुनकर जोधामल्लके छोटे भाइ दित्तामल्लको जिसका धर्ममें बडाही राग था, कहा कि, " आप अपने बडे भाईको समझाकर आत्मारामजीको साधु होनेकी आज्ञा दिलवा देवें." दित्तामल्लके आग्रहसे, और श्रीआत्मारामजीकी वृत्ति सर्वथा संसारमें पराङ्मुख देखनेसे, अंतमें जोधामल्लने भी लाचार होकर आज्ञा दे दी. और कहा कि, "हे पुत्र ! चिरंजीव रहीयो ! और " श्रीजैनमत " का खूब उद्योत करीयो " ! वृद्धोंके वचन कैसे फलप्रदाता है ! ! कि जोधामल्लके इस आशिर्वादने थोडेही कालमें क्या असर दिखलाया ! जोकि इस वखत स्वप्नमें भी ख्याल नहीं था.

चौमासे बाद मगसर वदि एकमके दिन " मनसूरदेवा " गाममें साधुओंके साथ श्रीआत्मारामजी जा रहे. वहां जीराकी बाईयोंके साथ श्रीआत्मारामजीकी माता भी रुदन करती हुई आई. तब साधुओंने तिसको बहुत अच्छी तरांह समझाई. और पूछा कि, " माई! तेरे पुत्रका नाम "दित्ता" है ? वा " देवीदास " है ? वा "आत्माराम" है ? क्योंकि, लोक इसको कितनेही नामोंसे बुलाते हैं. हम इसका कौनसा नाम रखे ? " माताजीने कहा कि, " महाराजजी ! इसका असली नाम तो " आत्माराम " ही है, और शेष पीछेसे कल्पना करे हुये है." तब साधुओंने कहा कि, "हम तो पहिलाही नाम अर्थात् " आत्माराम " ही रखेंगे, " तबसे श्रीआत्मारामजीका यही (आत्माराम) नाम प्रसिद्ध हुआ और क्रम करके " मालेर कोटला " में पहुंचे. जहां मगसर सुदि पंचमीके रोज बडी धामधूमसे " जीवणरामजी " गुरुके पास ढूंढक मतकी दीक्षा ली.

श्रीआत्मारामजीकी बुद्धि बहुत तीव्र, और निर्मल थी, परंतु उनके गुरु अधिक पढे हुये न होनेसे

बाधलिया और लौंकेसे विलक्षणही मत निकाला लवजीके चेले सोमजी तथा कहानजी हुये तथा लुपकमति कुवरजीके चेले धर्मसी–श्रीपाल–अमीपालने भी गुरूको छोडके, स्वयमेव पूर्वोक्त आचरण किया तिनमें धर्मसीने आठकोटी पच्चख्खाणवका पथ चलाया, जो गुजरात देश प्रात काठियावाडमे प्रसिद्ध है.

लवजीके चेले कहानजीके पास एक धर्मदास नामका छीपा दीक्षा लेनेको आया, परतु कहानजीका आचार उसने भ्रष्ट जाना, इस वास्ते वह भी मुहको पट्टी बाधके, स्वयमेवही साधु बनगया इन सबका रहनेका मकान ढूढा अर्थात् फूटा हुआथा, इस वास्ते लोकोंने ढूढक नाम दिया केई ढूढक लोक कहतेहैं कि–

ढूंढत ढूंढत ढूंढ फिरे सब वेद पुरान कुरानमें जोई ॥
ज्युं दधिसेती मख्खण ढूंढत त्युं हम ढूंढियाका मत होई ॥

परतु यह बात लोकोंको भरमानेके वास्ते खडी की है, क्योंकि इन ढूढकोंकी पट्टावलीयोंमें पूर्वोक्त लेख है नहीं अस्तु तुष्यतु दुर्जना: तथापि इस पूर्वोक्त ढुढकोंके कथनसे भी यही सिद्ध होता है कि यह ढूढकमत जैनशास्त्रानुसार है नहीं तथा एक यह भी आश्चर्य है कि जो जो अनिष्टाचरण ढूढकोंमें प्रचलित है सो न तो वेदमें है, न पुरानमें है, और न कुरानमें है तो इन महाशयोंने अपना माना अनिष्टाचरण किस पातालसे निकाला होवेगा । तथा वेद पुरान कुरानके माननेवालोंने जरूर इन ढूढकोंसे पूछना चाहिये कि " महाशयों ! वेद पुरान कुरानका नाम लेके अपने मतकी सिद्धि करनी चाहते हो परतु अपना अनिष्टाचरण वेद पुरान कुरानमेंसे निकाल देवोगे ? "कदापि न निकलेगा धर्मदास छीपेका चेला धन्नाजी हुआ, उसका चेला भूदरजी हुआ, उसके चेले रघुनाथ–जयमल्लजी–गुमानजी हुये, इनका परिवार प्राय मारवाडदेशमें है रघुनाथके चेले भीषमने तेरापथी मुहबधेका पथ चलाया

लवजीका चेला सोमजी, तिसका चेला हरिदास, उसका चेला वृंदावन, उसका भवानीदास, उसका मल्लूकचद उसका महासिंह उसका खुशालराय उसका छजमल उसका रामलाल उसका चेला अमरसिंह, इनके परिवारके साधु प्राय. पजाब देशमें है.

"काशीराम" नामक एक ढूंढक श्रावकके पास "श्रीआत्मारामजी" ने "उत्तराध्ययन" सूत्रके कितनेक अध्ययनोंका पठन किया और दीक्षा लिये बाद पंदरह दिनोंमेंही व्याख्यान करने लग गये, कितनेही दिनोंबाद गुरुके साथ विचरते हुये "सरसा—राणीया" गाममें गये और संवत् १९११ का चौमासा वहांही किया वहां मालेरकोटला निवासी "सरायतीमल्ल" नामक बनिया, दीक्षा लेकर श्रीआत्मारामजीका गुरुभाई बना, जो कि इस बखत मुल्क गुजरात, जिल्ला काठीयावाडमें प्रायः विचरते हैं जिनका नाम ढूंढकमत परित्याग करके संवेगीपणा अंगीकार किया, तब सद्गुरुने "श्रीशांतिविजयजी" दिया है इन महात्माने कितनेही वर्ष हुए षष्ठ षष्ठ (बेले बेले-दो उपवास) पारणा करना शुरु किया है, जो अबतक वृद्धावस्था है, तो भी कियेही जाते हैं (छबी देखो) राणीयामें श्रीआत्मारामजीने वृद्ध पोसालीय तपगच्छके "रूपऋषिजी" के पास "उत्तराध्ययन" सूत्र पठन किया वहांसे यमुना नदीपार ' कडमल्ल " साधुकेपास पढनेके लिये गये, और उनके पास "उववाई" सूत्र पढा वहांसे दिल्ली होके "सरगथल" गाममें गये, और संवत् १९१२ का चौमासा किया वहां 'श्रीआत्मारामजी" के दादा गुरु "गंगारामजी" काल धर्मको प्राप्त हुये चौमासेबाद गुरु और गुरुभाईके साथ विचरते हुये "जयपुरमें गये वहां "अमीचंद" नाम ढूंढक, जो कि उस बखत ढूंढकोंमें श्रुतकेवली कहाता था, जिसकेपास "श्रीआत्मारामजी" ने "आचारांग" सूत्र पढना प्रारंभ किया, जयपुरके ढूंढकलोकोंने श्री आत्मारामजीको कहा कि "तुम व्याकरण मत पढना, यदि पढोगे तो तुमारी बुद्धि बिगड जायगी "(अब भी ढूंढक मतवालेका यह प्रथम प्रायः मतव्य है) सत्य है—

दोहा—रत्न परीक्षक जानीये, ज्होरी नांहि चमार।
पंडित तत्त्व पिछानीये, नांहि जट्ट गमार॥

श्रीआत्मारामजीको पूर्वोक्त शिक्षा देनेवाले ऐसे मिले कि, जिनोंने विद्या कल्पवृक्षकी जड काटडाली! विद्यालाभरूप अमृत मेघवर्षण समान जो अवस्था थी उसमें आगकी वर्षा भई! क्योंकि उस समय "श्रीआत्मारामजी" की ऐसी शक्ति थी कि, जिससे निरंतर तीनसौ श्लोक कंठाग्र कर सकते थे, परंतु यह उत्तम समय, पूर्वोक्त आभास हितकारीयोंके उपदेशसे निष्फल गया अफशोस!! ऐसे हितकारीयोंसे तो पंडित शत्रुही श्रेष्ठ है

यत ॥ पंडितोपि वरं शत्रु, र्न मूर्खो हितकारक ॥
वानरेण हतो राजा, विप्र चौरेण रक्षित ॥ १ ॥

पंडित शत्रु तो श्रेष्ठ है, परंतु हितकारी मूर्ख अच्छा नहीं है, वानरने राजाको मारा, और ब्राह्मण चोरने उसको बचा लिया *

---

* भावार्थ इसका यह है कि—किसी एक नगरमें कोसी राजाके पास कोई मदारी वानर नचाने आया उस वानरकी चपलता देखके राजा खुश होकर मदारीसे कहने लगा, "जो तेरी मरजीमें आवे सो तू मेरेपास मांग ले; परन्तु यह वानर तू मुझे दे दे" मदारीने बहुत ना कही, परन्तु राजहठ जानकर वे राजाके पास किसीका जोर नहीं चलता है लाचार होकर मदारीने वानर दे दिया राजाने उस वानरको अपना पहेरगीर बनाया और हाथमें तलवार देकर, उसको अपने पल्यंक(पलंग) के पास के साथ बांध दिया एकदिन ऐसा हुआ कि राजा सोता है वानर पहरा देता है, इतनेमें एक सर्प राजाके पल्यंकपर छतके साथ जाता है, उसकी छाया राजाके शरीर पर पडी, उस छायाको देखके मूर्खशि

श्री आत्मारामजी जयपुरसें अजमेर गये. वहा "लक्ष्मणजी" "देवकरणजी" और "जितमल्लजी" वगेरह ढूंढक साधुओंके पास कितनेक शास्त्र पढे. वहासे फिर अमीचंदके पास पढनेके लिये "जयपुरमें" आये और संवत् १९१३ का चौमासा वहांही किया. वहांसें विहार करके "नागोर" (मारवाड) शहेरमें गये, और "हंसराज" नामा श्रावकके पास "अनुयोगद्वार" शास्त्र पढे. वहांसें "जोधपुर" जाके "वैद्यनाथ" पटवा ओसवालके पास विद्याध्ययन किया. "वैद्यनाथ" व्याकरण पढना अच्छा मानतेथे, और भाष्यकार टीकाकार आदिकोंके कथनको बहुत प्रमाणिक, और सत्य गिनतेथे. इस वास्ते उन्होंने "श्रीआत्मारामजी" को कहा कि "आप व्याकरणादि पढनेके पीछे, शास्त्रोंकी भाष्य टीका वगेरह पढो तो आपकी बुद्धि सफल होवे." परंतु पूर्वोक्त असत्योपदेशके अजीर्णसें, और स्वोपार्जित ज्ञानावरण कर्मके प्रबलसें, "श्रीआत्मारामजी" को "वैद्यनाथ" के वचनामृतकी रुचि हुई नहीं. वहांसें विहार करके शहर "पाली" (मारवाड) वगैरहमें होके "नागोर" गये, और संवत् १९१४ का चौमासा वहां किया. इस चौमासेमें श्रीआत्मारामजीने ढूंढकोंके श्रीपूज्य "कचोरीमल्ल" के पास, और "नन्दराम" "फकीरचंदजी" वगैरह साधुओंके पास "सूयगडाग" "प्रश्नव्याकरण" "पन्नवणा" "जीवाभिगम" आदि शास्त्रोंका अभ्यास किया. उस समय फकीरचंदजीके पास "हर्षचंद" नामा एक शिष्य "सिध्ध हैम कौमुदी" (चंद्रप्रभा नामका जैन व्याकरण) पढताथा. जिससें फकीरचंदजीने श्रीआत्मारामजीको कहा कि, "तुमारी बुद्धि बहुत निर्मल है, इस वास्ते तुम मेरे पास चन्द्रप्रभा पढो, तुमको जलदी आजावेगी." परंतु उस वखत श्रीआत्मारामजीको पूर्वोक्त कर्म रोगसें, फकीरचंदजीका पूर्वोक्त वचनामृत भी रुचा नहीं. चौमासे बाद श्री आत्मारामजीने विहार करके "मेडता" "अजमेर" "किसनगढ" "सरवाड" वगैरह शहरोंमें थोडा थोडा काल व्यतीत किया, जिनमें "उत्तराध्ययन" "दशवैकालिक" "सूयगडांग" "अनुयोगद्वार" "नंदी" ढूंढकोंका "कल्पित आवश्यक" और "बृहत्कल्प" वगैरह शास्त्र कंठाग्र किये. अनुमान दश हजार श्लोक श्रीआत्मारामजीने कंठाग्र किये. संवत् १९१५ का चौमासा

रोमणि वानर, तल्वार लेके सर्पकी भ्रांतिसें राजाके शरीर पर घाव करने लगा उस अवसरमें उसी नगरका रहनेवाला कोइक विद्वान्, जन्मका दरिद्री, अन्य व्यवहाराभावसें अपनी स्त्रीकी प्रेरणासें चौरी करनेके वास्ते गया वह प्रथम किसी वेश्याके घरमें गया वहा देखता है कि, वेश्या किसी कुष्टीके साथ विषय सेवन कर रही है देखके विचार करने लगा कि, "हा! जिस पैसे वास्ते ऐसे कोढीके साथ भी यह रमण होती है! इस वास्ते इसका पैसा मुझको लेने योग्य नहीं है"—पीछे वहासें निकलके एक लक्षाधीशके वहा गया वहा देखता है कि, पितापुत्र हिसाब मिला रहे हैं, परतु हिसाब बहुत मेहनत करनेसें भी नहि मिला अनुमान आठ आनेका फरक रहा तब पिताने पुत्रको ऐसा मारा, कि पुत्र मूर्छित होगया, देखके पडितने विचार किया कि जो आठ आने पीछे अपने एकके एक सकुमार पुत्रके ऊपर ऐसा जुलम गुजारता है, यदि मैं इसका धन चुरा कर ले जाऊगा तो, जरूर यह छाती फटकर मर जायगा। इसवास्ते ऐसे कृपणका धन भी लेना मुझको उचित नही है इत्यादि विचारकर फिरता२ राजाके महेलपर जा चढा वहा पूर्वोक्त कार्य करते वानरको देखके, एकदम पडितने वानरके दोनों हाथ खूब जोरसें पकड लिये तब वानरने किलकिलीयारी करके शोर मचाया जिससें राजाकी निंद खुल गई राजाने पडितको पूछा, "तू कौन है? और किसवास्ते इसको तूने पकडा है"? पडितने ऊपर जाते हुए सर्पको दिखाके, अपना सारा वृत्तात सत्य सत्य सुनादिया. राजाने खुश होकर पडितकी आजीविका कर दी और वानरको निकलवा दिया यहा यद्यपि पडित चौरी करनेको आया था, और राजाका शत्रुभूत हुआ था, तो भी विद्वान् होनेसें नफा नुकसान विचार लिया इसवास्ते हित करनेवाले मूर्खसें, शत्रु पडितही अच्छा है कि, जो अवसर तो विचार लेता है।

" जयपुर " में किया चौमासे बाद "वसीराम" साधुके साथ " माधोपुर " " रणथंभोर " होके, "बुंदी" "कोटा" शहेरमें गये वहां ढुंढक साधुओंमें श्रेष्ठ "मगनजी स्वामी" थे, तिनको मिलनेकी श्रीआत्मारामजीकी उत्कंठा हुई परन्तु उस समय मगनजी स्वामी भानपुरमें थे इस वास्ते श्रीआत्मारामजी भी भानपुर जाके तिनको मिले वहां दोनोंही आपसमें चर्चा वार्चा होनेसें अत्यानन्दको प्राप्त हुए श्रीआत्मारामजी भानपुरसें विहार करके "सीताम" "उजावरा" होके "सलाना" गाममें अपने गुरुको मिलके, "रतलाम" गये वहां ढुंढकमतका जानकार "सूर्यमल्ल" कोठारी था, जो जैनमतके ३१ शास्त्र सच्चे हैं और शेष यतियोंकी कल्पनासें बने हुवे है, ऐसा मानताथा तिसको श्रीआत्मारामजीने हेतुयुक्ति देकर निरुत्तर किया, बाद वहांसें चलके " लोचरोद " " वंदावर " " बडनगर " " इंदोर " और " धारानगरीमें " होके " रतलाम " फिर आये और संवत् १९११ का चौमासा वहां किया मगनजी स्वामीने भी वहांही चौमासा किया जिससें श्रीआत्मारामजीकी इनके पास विद्याभ्यास करनेकी उत्कंठा, आनायासही सफल हुई श्रीआत्मारामजीने उनके पाससें ढुंढक मतकी जितनी पुंजीथी—ढुंढक मतवाले ३२ शास्त्र मानतेहैं—सर्व लेली अर्थात् ३२ ही शास्त्र पढ लिये और कितनेक कंठाग्र भी कर लिये

अब श्रीआत्मारामजीके मनमें पूर्वोक्त कर्मरोगके प्रायः जीर्ण होनेसें ऐसी आशंका होने लगी कि, मैंने ढुंढकमतके सर्व शास्त्र देखे और इस मतके प्रायः सर्व प्रसिद्ध पंडितोंको मैं मिला, तिन सर्वका कहना एक दूसरेसें विरुद्ध है किसी एक बाबतमें कोई कीसी तरहका अर्थ करताहै, और दूसरा दूसरी तरहका अर्थ करताहै, और जहां कोई अर्थ ठीक ठीक भान नहीं होताहै तो चार पांच जने एकत्र होकर सलाह करके मन कल्पितअर्थ कर लेतेहैं, जिसको पंचायती अर्थ कहतेहैं पंजाब देशके ढुंढकोंमें प्रायः पंचायतीही अर्थ चलताहै तो अब मुजे कौनसा मत सत्य मानना, और कौनसा असत्य मानना चाहिये ? और कितनेक लोक ४५ आगम मानतेहैं, कितनेक ३२, कितनेक ३१, और कितनेक ११ शास्त्र मानतेहैं तो इनमें सच्चे कौन और झूठे कौन ? मुजे कित ने शास्त्र सच्चे मानने चाहिये ? क्योंकि " बुंदीकोटा " वाले ढुंढक शास्त्रोंके अर्थ, अपने मुखसें मनोघटित करतेहैं मारवाडी ढुंढक भाषारूप जो टबार्थ लिखाहै उसमेंसें अपने मतके अनुयायी, अर्थको मानतेहैं, और शेष छोड देतेहैं, वा तिस पाठ पर हडताल लगाके ऊपर अपनी मति कल्पनाका अर्थ लिख देतेहैं, तथा " तपगच्छ " " खरतरगच्छ " वाले कहतेहैं, कि ढुंढक लोग शास्त्रोंका यथार्थ अर्थ नहीं जानतेहैं इत्यादि अनेक संकल्प विकल्प करके अंतमें श्रीआत्मारामजीने यह निश्चय किया कि, संस्कृत प्राकृत व्याकरण पढनेके पीछे शास्त्रोंके यथार्थ जो अर्थ होवे होवेंगे, वे, मैं मानुंगा इस वख्त श्रीआत्मारामजीको वैद्यनाथ पटवेका और फकीरचंदजीका कहना सत्य सत्य भान हुआ *

दोहा—तबलग घोवन दूध है, जबलग मिले न दूध ॥
तबलो तत्त्व अतत्त्व है, जबलो शुद्ध न बुद्ध ॥ १ ॥

* जैनमतके शास्त्रोंसें भी सिद्ध होताहै कि, व्याकरण अवश्यमेव पढना चाहिये क्योंकि, श्री प्रश्नव्याकरण सूत्रमें लिखा है कि—नाम, आख्यात, निपात, उपसर्ग, तद्धित, समास, संधिपद, हेतु, यौगिक, उणादि, क्रियाविधान, धातु स्वर, विभक्ति, वर्ण, इनों करके युक्त—तथा जनपद सत्य, सम्मत सत्य, स्थापना सत्य,

इस तरह महाराजजीश्रीने देखा कि जैन शास्त्रोंसें सिद्ध होता है कि, विना व्याकरणके पढे ठीक ठीक यथार्थ अर्थ नही भान होसक्ता. इस वास्ते मै जरुर अब व्याकरण पढुंगा. हाय-अफशोस! कैसे कुगुरोंके वश होकर अपनी अमूल्य विद्याप्राप्त्यवस्था निष्फल करी!

पूर्वोक्त कारणोंसें, तथा बहुत देशोंमें फिरनेसें, बहुत जैनमंदिर तथा वडे वडे पुस्तकोंके भंडार देखनेसें, श्रीआत्मारामजीके मनमें यह निश्चय हुआ कि "जैनमत" तो कोई अन्यही वस्तु है, और यह ढुंढकमत अन्यही वस्तु है.

जैनमतके शास्त्रोंसें ढुंढकमतके विपरीत अनिष्टाचरण देखनेसें,श्रीआत्मारामजीके मनसें ढुंढक-मतकी आस्था कम होगई और गुजरातदेशमें जाके पंडित साधुओंके साथ वातचित करके नि-र्णय करनेका इरादा श्रीआत्मारामजीने किया. तथा जैनमतके प्रसिद्ध तीर्थ "शत्रुंजय" "उज्जयंत" (गिरनार) आदिकी बहुत प्रशंसा तिनके सुननेमें आई, जिससें उनको देखनेकी उत्कंठा भी श्री-आत्मारामजीको हुई. इस वास्ते श्री आत्मारामजीने "गुजरात" देशमें जानेकी इच्छा की. परंतु जीवणरामजीने गुजरातदेशमें जानेके वास्ते कितनेक प्रकारकी दहशत दिखाई, और आज्ञा नही दी, जीससें श्रीआत्मारामजी चौमासे वाद "जावरा" "मंदसोर" "नीमच" "जावद" वगैरह शहेरों-में होके "चितोड" गये. तहा पुराने किल्लेमें जाके बहुत उज्जडे हुए थेह, (खंडेर) जैनमंदिर, फतेहके महेल, कीर्त्तिस्तंभ, जलके कुंड, कीर्त्तिधर सुकोशल मुनिकी तप करनेकी गुफा, पद्मिनी राणीकी सुरंग,सूर्यकुंड वगैरह प्राचीन वस्तुयें देखके संसारकी अनित्यता और तुच्छता इंद्रजालकी तरह क्षणमात्रका तमासा याद आया!

इत्यादि श्रीठाणाग सूत्रोक्त दश प्रकारका त्रिकाल विषयक सत्य—तथा प्राकृत, संस्कृत, मागधी, पैशाची, सौ-रसेनी, अपभ्रंश, एव षट् भाषा गद्य—पद्य रूपकरके वार प्रकारकी भाषा तथा—

"वयण तियं ३ लिंग तियं ३ कालतियं ३ तह परोक्ख १० पच्चक्खं ११
उवणीयाइ चउक्कं १५ अज्झत्थंचेव १६ सोलसमं"

एव सोलह प्रकारके वचनको जाननेवालेको अर्हदनुज्ञात बुद्धिद्वारा पर्यालोचन करके साधुको अवसरमें वोलना चाहिये, नान्यथा तथा श्रीअनुयोगद्वार सूत्रमें सक्कया पागयाचेव इत्यादि संस्कृत, और प्राकृत दो प्रकारकी भाषा स्वरमडलमें ग्रहण करके वोलनेवाले साधुकी भाषा प्रसस्थ है तथा पूर्वोक्त शास्त्रमेंही प्रमाणाधिकारमें भावप्र-माण चार प्रकारका है—सामासिक (१) तद्धितज (२) धातुज (३) निरुक्तिज (४) सामासिकके सात भेद हैं द्वंद्व (१) बहुव्रीहि (२) कर्मधारय (३) द्विगु (४) तत्पुरुष (५) अव्ययीभाव (६) और एकशेष (७) तद्धितजके आठ भेद हैं, कर्म (१) शिल्प (२) श्लाघा (३) सयोग (४) समीप (५) ग्रंथरचना (६) ऐ-श्वर्यता (७) और अपत्य (८) धातुज—भू सत्ताया परस्मै भाषा—एध वृद्धौ—स्पर्द्ध सहर्षे—निरुक्तिज—मह्यां शेते महिष.। भ्रमति रौति च भ्रमर. मुहुर्मुहुर्लसतीति मुसल इत्यादि—और भी श्रीठाणागसूत्र—द-शाश्रुत स्कंधसूत्र वगैरहसें भी व्याकरणका पढना सिद्ध होता है

* प्रायः इनका आचरण, जैनमतकेशास्त्रोंसें विपरीत हैं जैनशास्त्रोंमें ठिकाने ठिकाने जिनप्रतिमाका पाठ आता है, तिनका ढुढकलोक निषेध करते हैं, और जिन प्रतिमाकी शास्त्रोक्त रीतिसें पूजन करनेवालेको हिंसाधर्मी कहते हैं. तपगच्छ, खरतरगच्छ आदिके साधु मुहपत्ति हाथमें रखते हैं, और ढुढक साधु रातदिन मुख बंधी रखते हैं, जो कि जैनमतके शास्त्रसें विरुद्ध है तपगच्छादिके साधु दडा रखते हैं, ढुढक रखते नही हैं, और शास्त्रोंमें दडेका वर्णन आता है कितनेक ढुढकमतके श्रावक, कितनेही महीनोंतकका स्नान करनेका नियम करतेहैं, इतनाही नहीं, परतु कितनेक जगल (दिशा) फिरके हाथ, पाणीसें धोनेका भी नियम करते हैं जिस नियमका नाम "अणकी व्रत" बहुत ढुढकोमें प्रसिद्ध है तथा लवुनीतिका नाम "नयापाणी" धर रखा है, इत्यादि

चितोडसें " उदयपुर " " नाथद्वारा " " कांकरोली " " गंगापुर " " भीलाडा " " ब्यावर " " जयपुर " " भरतपुर " " मथुरा " " बिंद्रावन " होके " कोशी " के रस्ते " दिल्ली " शहरमें गये वहां चौमासा करनेकी श्रीआत्मारामजीकी इच्छा थी, परंतु जीवणरामजीके कहनेसें संवत् १९२७ का चौमासा, श्रीआत्मारामजीने ' सरगथल " गाममें किया चौमासे बाद विहार करके दिल्ली गये दिल्लीसें जमनापार " खट्टा " " लुहारा " " बिनोली " " बडोत " " सुनपत " वगेरह स्थानोंमें फिरके संवत् १९२८ का चौमासा, दिल्लीमें जा किया तिस चौमासेमें " पंजाबी ढुंढकोंके पूज्य " " अमरसिंहजी ' के चेले मुस्ताकराय और हीरालालको आठ शास्त्र श्रीआत्मारामजीने पढाये चौमासे बाद सुनपत पानीपत होके श्रीआत्मारामजी " करनाल " गाममें आये वहां अमरसिंहजीके चेले " रामबक्ष " " सुखदेव " " विश्नचंद " " चंपालाल " वगेरह मिले तब श्रीआत्मारामजीने रामबक्ष, और विश्नचंदको अनुयोगद्वारसूत्र पढाया वहांसें विहार करके श्रीआत्मारामजी "अंबाला" शहरमें आये और रामबक्षादि भी बडसटके रस्ते होकर अंबाला शहरमें आये वहांसें विहार करके श्रीआत्मारामजी "खरड" "रोपड" होके "माछीवाडा" गाममें गये यहांतक तो रामबक्ष वगेरह साधु, श्रीआत्मारामजीके साथही रहे, और पढते भी रहे जिसमें इतने समयमें श्रीआत्मारामजीने पूर्वोक्त रामबक्ष और विश्नचंदको आचारांग, जीवाभिगम, नंदीसूत्र, वगेरह शास्त्र पढाये

रोपड गाममें श्रीआत्मारामजीने पंडित "सदानंदजी"सें" सारस्वत " व्याकरण पढना शुरू किया, और थोडेही समयमें अपनी अपूर्व बुद्धिसें पट्‌लिंगतकका अभ्यास कर लिया माछीवाडेसें विहार करके श्रीआत्मारामजी मालेर कोटलामें जाके अपने गुरु जीवणरामजीसें मिले वहांसें जीवणरामजी तो "रणीया" गाममें जा चौमासा रहे, और श्रीआत्मारामजी " सुनाम " गये, जहां श्रीआत्मारामजीका एक चेला हुआ सुनामसें "समाणा" "पटीयाला " "नाभा" "मालेर कोटला" " रायका कोट " और "जीगरांवह" वगेरह होके श्रीआत्मारामजी " जीरा " गाममें गये, और संवत् १९२९ का चौमासा जीरामें किया

रामबक्ष वगेरह साधु, देश "मारवाड" के तरफ विहार कर गये क्योंकि, इनके गुरु अमरसिंहजी मारवाडको गये हुयेथे इतने दिनोंतक केवल पढनेके वास्तेही श्रीआत्मारामजीके पास रहेथे परंतु चलते समय रामबक्षने श्रीआत्मारामजीसें आधीनताके साथ प्रार्थना की कि, "आप इस मुलक पंजाबमें आगयेहैं, और मेरे गुरु मारवाडको चलेगयेहैं, इस वास्ते आपने इस पंजाबदेशसें जोर लगाकर "अजीवमतकी"* जड काटते रहेना, इससें मेरे गुरु अमरसिंहजीको परम आनंद होगा और आपका बडा उपकार होगा ' संवत् १९२९ के चौमासेमें जीराही गाममें श्रीआत्मारामजीको व्याकरणके बोधसें ज्यादाही शक पैदा हुआ कि "जो अर्थ ढुंढक लोग शास्त्रोंका करतेहैं, वह व्याकरणकी रीतिसें ठीक मालुम नही होताहै, इसका निश्चय करना चाहिये क्योंकि मैंने थोडाही व्याकरण अबतक पढाहै, तो भी मुझे कितनेही ठीक अर्थ मालुम होने लगेहैं तो, यदि जिसको पूरा पूरा व्याकरणका बोध होवे, उसका तो क्याही कहना है? इससें यही सिद्ध होताहै कि,

* पंजाब देशके ढुंढकोंमें दो फिरके (मत) है एकतो अनाजमें जीव मानते हैं और, एक नही मानते हैं जो नही मानते हैं उनको अजीवमती कहते हैं

ढुंढक लोग इसही डरके मारे व्याकरण पढने नहीं देतेहैं और यह भी सिद्ध होताहै कि इनके सब अर्थ प्रायः मनः कल्पित है, और जानबुझके अज्ञान रूप अंधे कूपमें गिरते हैं." यह समझके श्रीआत्मारामजीने निश्चय किया कि, जो कुच्छ पूर्वाचार्योंने निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीका वगैरह द्वारा अर्थ कियेहैं, वेही अर्थ यथार्थ हैं, और जो कोइ मनःकल्पित अर्थ शास्त्रोंके करतेहैं, वो बडाही अनर्थ करतेहैं.

चौमासे बाद श्रीआत्मारामजी जीरासें विहार करके "मनोहरदास"के टोलेके ढुंढक साधुओंमें वृद्ध पंडित साधु "रत्नचंदजीके" पास विद्याभ्यास करनेके वास्ते "आग्रा" शहरमें गये, और संवत् १९२० का चौमासा वहांही किया. रत्नचंदजीने बडी खुशीसें श्रीआत्मारामजीको "स्थानांग" "समवायांग" "भगवती" "पन्नवणा" "वृहत्कल्प" "व्यवहार" "निशीथ" "दशाश्रुत स्कंध" "संग्रहणी" "क्षेत्रसमास" "सिद्ध पंचाशिका" "सिद्धपाहुड" "निगोद छत्रीसी" "पुद्गल छत्रीसी" "लोकनाडीद्वात्रिंशिका" "षट्कर्म ग्रंथ" चार जातके "नयचक्र," इत्यादि कितनेही शास्त्र पढाये, जिनमें कितनेक प्रथम श्रीआत्मारामजी पढे हुएथे, तो भी अर्थ निश्चय करनेके वास्ते फिरसें पढे. श्रीआत्मारामजीको विभक्तिज्ञान होनेसें जे अर्थ मालुम होतेथे, वे अर्थ ढुंढकोंके पढाये अर्थके साथ नहीं मिलतेथे, जिससें श्रीआत्मारामजीको निश्चय होगया कि पूर्वाचार्योंके किये हुये अर्थही सत्य है, तथापि परीक्षा करने लगे तो पूर्ण करनी चाहिये. रत्नचंदजीके पढाये अर्थ प्रायः अन्य ढूंढकोंसें विपरीत, और टीका वगैरहके साथ मिलते हुये श्रीआत्मारामजीको भान हुए, इस वास्ते अधिक आनंदसें उनके पास पढे. इस चौमासेमें श्रीआत्माराजीने रत्नचंदजीके पाससें कितनाक अपूर्व ज्ञान भी प्राप्त किया. रत्नचंदजीके पास चिरकालतक श्रीआत्मारामजीकी पढनेकी मरजीथी परंतु जीवणरामजीके बुलानेसें चौमासे बाद विहार करनेकी तैयारी करके श्रीआत्मारामजी रत्नचंदजीके पास आज्ञा लेनेके वास्ते गये. तब रत्नचंदजी नाराज होके कहने लगे कि "तुमारा वियोग मै चाहता नहीं हुं. परंतु क्या करूं? तुमारे गुरूका हुकम आयाहै, सो तुमको भी मान्य करनाही चाहिये, परंतु अंतकी मेरी शिक्षा तुम अंगिकार करो. मैंने सुनाहै कि, आत्माराम श्री जिन प्रतिमाकी बहुत निंदा करताहै, परंतु यह काम करना तुजको अच्छा नहीं है हमारे कहनेसें इस तरह अमल करना. एक तो श्री जिन प्रतिमाकी कभी भी निंदा नहीं करनी (१) दूसरा पेशाब करके विना धोया हाथ कबी भी शास्त्रको नहीं लगाना (२) और तीसरा अपने पास सदा दंडा रखना (३). मैंने यह तुजको श्री जैनमतका असल सार बताया है कितनेक दिनों बाद जब तूं व्याकरण पढेगा, और शास्त्रका यथार्थ बोध होगा, सब कुच्छ तुजको मालुम हो जायगा. आगे भी इसी तरह ज्ञानाभ्यास करनेमें निरंतर उद्यम रखना और व्याकरण जरूर पढना." तब श्री आत्मारामजीने कहा कि, "महाराजजी! एक बात और भी बतावें कि, मुखपर कानोंमें डोरा डालकर मुहपत्तीका बांधना सूत्रानुसार है कि नहीं?" श्रीरत्नचंदजीने जवाब दिया कि, "सूत्रानुसार तो नही. क्योंकि, शास्त्रानुसार तो मुहपत्ती हाथमें रखनी कही है. परंतु अनुमान (१५०) देढसें वर्षसें हमारे बडोंने मुखपर मुहपत्ती बांधी है, और तेरे बडोंने अनुमान दोसौ (२००) वर्षसें बांधनी सुरू की है. यह ढुंढकमत अनुमान सवादोसौ (२२५) वर्षसें विना गुरु अपने

आप मनःकल्पित वेष धारण करके निकाला गया है "श्रीआत्मारामजीको तो, प्रथमसेंही कितनीक बातोंका शक था अबतो सर्वथा निश्चय होगया कि, निश्चयही यह ढुंढकमत बनावटी है और सनातन जैनधर्मसें उलटा है और भगवतीजी, अनुयोगद्वार, समवायांग, नयचक्र वगैरह शास्त्रोंमें "आवश्यक" "विशेषावश्यक" की साक्षी दी है और लिखा भी है कि, आवश्यकका इतना मूलपाठ है, इतनी निर्युक्ति है, इतना भाष्य है, इतनी चूर्णि है, इतनी टीका है और ढुंढकके माने आवश्यकमें कितनीक बातें जे शास्त्रोंमें है, वे नही है, और ढुंढक आवश्यक गुजराती भाषामें है, और दूसरे शास्त्र प्राकृतमें है इसवास्ते आवश्यक सूत्र भी प्राकृत भाषामें होना चाहिये इसतरह श्री आत्मारामजीकी ढुंढकमतसें अनास्था होनी शरू हुई तोभी अधिकतर निश्चय करनेके वास्ते श्रीआत्मारामजीने बहुत शास्त्रोंकी पुनरावृत्ति की तथापि अंतमें ऊंटके मेंगणेकी तरह ढुंढकमतकी पोल निकली इसवास्ते श्रीआत्मारामजीने निश्चय किया कि, "मैं अपनी शक्तिके अनुसार भव्य जीवोंके आगे सत्य सत्य बात प्रगट करूंगा, जिसको रुचेगा, वो ग्रहण कर लेवेगा" ऐसा निश्चय करके श्रीआत्मारामजी आग्रेसें विहार करके दिल्ली आये, वहां श्री विश्नचंदजी मिले और श्रीआत्मारामजीसें शास्त्र पढ़ने लगे और साथही साथ विहार करते हुए मालेर कोटलामें आये एक दिन श्रीविश्नचंदजी, पेशाव करके हाथ विनाही धोये शास्त्र पढ़ने लगगये इससें श्रीआत्मारामजीने गुस्से होकर विश्नचंदजीको कहा कि, "खबरदार! आगे पिछे कभी भी ऐसा काम नही करना अर्थात् विना धोये हाथ पेशाव करके शास्त्रको नही लगाना" प्रत्यक्षमें तो श्रीविश्नचंदजी, पूर्वोक्त श्रीआत्मारामजीका कहना मंजूर करके मौन होरहे; परंतु दिलमें विचार करने लगे कि, "रत्नचंदजीकी संगतसें इनकी श्रद्धामें फरक पड़गया है, इसी वास्ते यह ऐसे कहते हैं क्योंकि, मेरे गुरु रामबक्षजी, और उनके गुरु अमरसिंहजी पूज्यजी महाराज वगैरह सब ढुंढक साधु, पेशावसें शुद्धि करना, आहारके पात्रोंमें लेकर वस्त्रादि धोना आदि करते हैं परंतु मुजे तो इनके पास पढ़ना है इसवास्ते कितनेक दिन जिस तरह यह कहते हैं, इसी तरह करना चाहिये कोटलामें श्रीआत्मारामजीने, पंडित "अनंतरामजी" से शेष व्याकरण पढ़ना शुरू किया, और एक महीनेके बाद विहार करके रायकोट होकर जगरांवां गाममें आए वहां 'मोहनमल्ल' के मुखसें अपने उपकारी विद्यागुरु, श्रीरत्नचंदजीका संवत् १९२१ का जेठ मासमें स्वर्गवास होना सुनकर, बहुत अफसोस किया अंतमें अपने ज्ञानबलसें अफसोस दूर करके श्रीआत्मारामजी जगरांवांसें विहार करके शहर 'लुधीआना' में आये यहां श्रावक "सरमल्ल गारीमल्ल' वगैरहमें अजीवमतकी श्रद्धा छुड़वाई और मासकल्पके बाद लुधीआनासें विहार करके कोटलामें गये और संवत् १९२२ का चौमासा यहां किया. इस चौमासेमें श्रीआत्मारामजीने चंद्रिका, कोष, काव्य, अलंकार तर्कशास्त्र वगैरहका अभ्यास किया, तथा श्री विश्नचंदजी को भी, शास्त्रानुसार चर्चा करके यथार्थ सत्य मार्गका बोध कराया

चौमासे बाद श्रीआत्मारामजी, लुधीआना छोड़के "देसु" नामा गाममें गये यहां एक यतिके पुस्तकोंमेंसे "श्रीशीलांकाचार्य विरचित श्रीआचारांग सूत्र वृत्ति" (टीका) की प्रति श्रीआत्मारामजीको मिली इस प्रतिके मिलनेसे श्रीआत्मारामजीको ऐसा आनंद प्राप्त हुआ कि, जैसें मरुदेशमें प्यासेको अमृत मिलनेसे शांति होवे! यहांसे विहार करके राणीया, सांही, होकर 'सरसा'

गाममें गये; और संवत् १९२२ का चौमासा वहां किया. वहां "किशोरचंदजी" यतिके पास श्री-आत्मारामजीने दो तीन ज्योतिषके ग्रंथ पढे. तथा वडगच्छके यति "रामसुख" और खरतर गच्छके यति "मोतीचंद"के पाससें साधु श्रावकके प्रतिक्रमण और तिसके विधिके पुस्तक लाकर देखें तो, मालुम हुआ कि, ढुंढकमतका प्रतिक्रमण, और तिसका विधि, यथार्थ नही है. और भी कितनेक पुस्तक लाकर देखा, और आचाराग सूत्र वृत्तिका भी स्वाध्याय किया. जिससें श्रीआत्मारामजीको अधिकतर निश्चय हुआ कि, ढूंढकमत असल जैनमत नही है. परंतु जैनमतके नामसें जैनमतका आभास रूप, एक नया पंथ मनःकल्पित निकाला है. तथापि श्रीआत्मारामजीने विचार किया कि, "इस समय कुल पंजाब देशमें प्रायः ढुंढकमतका जोर है; और मैं अकेला शुद्ध श्रद्धान प्रकट करूंगा तो, कोई भी नहीं मानेगा. इस वास्ते अंदर शुद्ध श्रद्धान रखके बाह्य व्यवहार ढुंढकोंकाही रखके कार्यसिद्धि करनी ठीक है. अवसर पर सब अच्छा होजावेगा." ऐसा निश्चय करके श्रीआत्मारामजी चौमासे बाद सरसेंसें सुनाममें आये; वहा "कनीराम" रोहतक वाला ढुंढक साधु मिला. तिसके साथ ढुंढक साधुके भेष, और पडिक्कमणेका विधि, और ढुंढकाचारकी बाबत वार्त्तालाप हुआ. परंतु कनीरामने कुच्छ भी शास्त्रानुसार ठीकठीक जवाब न दिया, और कहा कि, "तुमारी श्रद्धा भ्रष्ट होगई है,जो तुम अपने गुरु, दादगुरुओंके कथनमें शंका करते हो?" तब श्रीआत्मारामजीने कहा कि, "मैं कोई गुरु, दादगुरुओंका बंधा हुआ नहीं हूं, मुझें तो श्रीमहावीर स्वामीके शासनके शास्त्रोंका मानना ठीक है. यदि किसीके पिता, पितामह कूपमें गिरे होवे तो, क्या उसके पुत्रको भी कूपमेंही गिरना चाहिये?" तब कनीराम क्रोध करके चला गया. और श्रीआत्मारामजी भी सुनामसें विहार करके मालेर कोटलामे आये, वहां लाला "कवरसेन" और "मंगतराय" के आगे अपने अंतरंग जो सनातन जैनधर्मका श्रद्धान बैठा था, सुनाया. उन्होंने भी अच्छी तरहसें समझके श्रीआत्मारामजीका कथन, जैनशास्त्रानुसार यथार्थ होनेसें अंगीकार किया. और श्रीआत्मारामजीकोही सद्गुरु सत्योपदेष्टा मानने लगे. पंजाबमें इस वखत पूर्वोक्त दोही श्रावक, प्रथम शुद्ध श्रद्धान वालोंकी गिनतीमें हुए. वहासें विहार करके शहर लुधीयानामें आये वहां लाला "गोपीमल्ल" पाटणी को शास्त्रानुसार समझायके श्रीआत्मारामजीने अपना तीसरा श्रावक बनाया. यहां इस समय श्रीविश्नचंदजी, और तिनके चेले चंपालालजी वगैरह भी आये हुएथे चंपालालजीके मनमें कितनेक संशय ढुंढकमत संबंधी पडे हुएथे. इसवास्ते अपने गुरु विश्नचंदजीको अवसर पाकर पूछतेही रहतेथे. परंतु श्रीविश्नचंदजी अवसरके जानकार होनेसें,यद्यपि अपने अंदर श्रीआत्मारामजीकी सोबतसें शुद्ध श्रद्धान हुआथा, और श्री सनातन जैनधर्मका शुद्ध स्वरूप जानते थे, तोभी खुलकर कथन करनेका अवसर अबतक न होनेसें पूरा पूरा जवाब नहीं देतेथे. किंतु गोलमोल जिससें पूछने वालेको ज्यादा शंका पडे, वैसे जवाब देतेथे.इसवास्ते एक दिन श्रीचंपालालजीने श्रीविश्नचंदजीको जोर देकर कहा कि, "महाराजजी साहिब! हमने जो घर, हाट, पुत्र, परिवार आदि छोडके साधुपणा लियाहै,और आपका शरणा अंगिकार कियाहै,सो कुच्छ डूबनेके वास्ते नही,किंतु तिरनेके वास्ते है.इसवास्ते आप हमको शुद्ध अंतःकरणसें यथार्थ जैनमत, जो कि महावीर स्वामीके शासन पर्यंत सनातन चला आया, सो बताओ; हम आपका बडाही उपकार मानेंगे. जैसे आपने उपदेश देकर हमको संसारसें बचा-

था, ऐसेही इस संशयसें भी बचाइये आपके विना और किसके आगे हम अपने दिलकी बातें करें"? तब श्रीविश्नचंदजीने श्रीआत्मारामजीके पास अपने चेले चंपालालजीके प्रत्यक्ष सवाल जवाब करके चंपालालजीको ठीकठीक निश्चय करा दिया उस दिनसें चंपालालजीने भी शुद्ध श्रद्धा धारण की बाद श्रीविश्नचंदजीने तो, लुधीयानासें विहार कर दिया, और रस्तेमें गुरू के पंडीआलाके श्रावक "मोहरसींघ" "घशासीमल्ल माळकोंस" और जमृवसरवाले लाला "बूटेराय" ज्वहरीको प्रतिबोध किया तथा साधु "हुकमचंदजी–हाकमरायजी" को भी श्रीविश्नचंदजीने प्रतिबोध किया, इसतरह श्रीविश्नचंदजी, और चंपालालजीकी मददसें श्रीआत्मारामजीकी श्रद्धाके आदमियोंकी गिनती बढने लगी, और ढुंढक श्रद्धान रूप अजीर्ण दूर होता चला अनुक्रमे श्रीविश्नचंदजी वगैरह पट्टी गाममें गये वहां लाला "घसीटामल्ल" जो पूज्य अमरसींहका मुख्य श्रावक था, तिसके साथ वातचीत हुई जिससें लाला घसीटामल्लके दिलमें भी कितनेही शक पेदा होगये तब घसीटामल्लने पूर्वोक्त संशयको दूर करके निर्णय करनेके वास्ते, श्रीविश्नचंदजीके कहनेसें अपने पुत्र "अमीचंदजी" को व्याकरण पढाना शुरू कराया जब वो पढकर तैयार होगया, तब घसीटामल्लने कहा कि, "पुत्र! किसीका भी पक्षपात न करना जो शास्त्रमें यथार्थ वर्णन होवे, सो तूं मुजे सुनाना" तब अमीचंदने कहा कि, "पिताजी! जो कुच्छ, श्रीमहाराज आत्मारामजी, तथा विश्नचंदजी वगैरह कहते हैं, सो सर्व ठीक ठीक है और पूज्य अमरसींहजी, तथा उनके पक्षके ढुंढक साधुओंका जो कुच्छ कथन है, सो सर्व असत्य, और जैनमतसें विपरीत है" यह सुनकर लाला घसीटामल्ल भी ढुंढकमतको छोडके शुद्ध श्रद्धानवाले होगये पूर्वोक्त अमीचंद इस समय गुजरात–मारवाड–पंजाब वगैरह देशोंमें "पंडित अमीचंदजी" के नामसें प्रसिद्ध है, और प्राय श्रीआत्मारामजीके संवेगमत अंगीकार किया पीछे, जितने नूतन शिष्य हुये, सबने थोडा बहोत जरूरही पंडितजी अमीचंदजीके पास विद्याभ्यास किया, व लकि अबतक कियेही जाते हैं

पट्टीसें विहार करके श्रीविश्नचंदजी, हुकमचंदजी, हाकमरायजी, चंपालालजी वगैरह श्रीआत्मारामजीके पास, जो लुधीयानासें विहार करके शहर "जलंधर" में आये हुये थे, पहुंचे क्योंकि, वहां श्रीआत्मारामजीकी, और अजीवपंथी "रामरतन" और "वसंतराय" की अजीवपंथ संबंधी चर्चा होनेके वास्ते निश्चय होगया था इस अवसर पर २७ शहरोंके श्रावक आये हुये थे, और पादरी तथा ब्राह्मण पंडितोंको मध्यस्थ नियत किया था जिसमें रामरतन और वसंतराय हार गये, और श्रीआत्मारामजीकी जीत हुई तथापि रामरतन वगैरहने अपना हठ छोडा नहीं सत्य है कि, जिसका जो स्वभाव पडजावे, मरणपर्यंत भी वो स्वभाव प्रायः तिसका दूर नहीं होता है

यतः ॥ यो हि यस्य स्वभावोस्ति । स तस्य दुरतिक्रमः ॥
श्वा यदि क्रियते राजा । किं न भत्ति उपानहम् ॥ १॥

भावार्थः—जो जिसका स्वभाव है, सो तिसका दूर होना मुश्किल है क्या यदि कुत्तेको राजा बनाइये, तो वो जूतीको भक्षण नही करता है? अपितु करताही है

जालंधरसें जयपताका लेकर विहार करके श्रीआत्मारामजी, तथा विश्नचंदजी वगैरह अमृतसरमें आये और श्रीआत्मारामजीने, लाला "उत्तमचंदजीकी" बैठकमें उतारा किया और

व्याख्यानमें "श्रीभगवती सूत्र" सटीक वांचना प्रारंभ किया. जो सुननेके वास्ते पूज्य अमरसींघजी भी, अपने सब चेलोंके साथ आया करते थे. श्रोताका जमाव इतना होता रहा कि, मकानमें बैठनेकी जगा भी मिलनी मुश्किल होगई. तब सबने सलाह करके व्याख्यानके वास्ते दूसरा वडा भारी मकान मंजुर किया, और वहां व्याख्यान होने लगा. श्रीआत्मारामजीका व्याख्यानामृत सुन करके भी, श्रोताजनोंको तृप्ति नहीं होतीथी; अर्थात् श्रवण करनेकी तृष्णा, वढतीही जातीथी उस समय पूज्य अमरसींघजी तो ऐसे मोहित होगये कि, एक दिन श्रीआत्मारामजीको कहने लगे कि, किसीतरह मेरे चेलोंको भी, यह ज्ञान, सिखाना चाहिये. जिससें जैनमतका वडा भारी उद्योत होवे. तब श्रीआत्मारामजीने कहा कि, "पूज्यजी साहिब! व्याकरणका अभ्यास विना किये, यह ज्ञान पाना वडाही मुश्किल है; इस लिये प्रथम इनको व्याकरण पढाना चाहिये." इससें पूज्य अमरसींघजीके प्रायः सब साधु उसवखत पंचसंधि पढने लग गये.

एक दिन श्रीआत्मारामजीने व्याख्यानमें अवसर देखकर कहा कि, "पूर्वाचार्योंके कथन करे अर्थको छोडकर, मनःकल्पित अर्थ करनेवालोंका परलोकमें खबर नहीं क्या हाल होवेगा?" यह सुनकर, पूज्य अमरसींघजीको गुस्सा आया; और सोदागरमल्ल ओसवाल, श्यालकोटका वासी, ढुंढक श्रावकोंमें मुखी और जानकार किसी कारणसें अमृतसरमें आयाथा, तिसको कहने लगे कि, "आज काल आत्मारामको वडाही अभिमान आगया है, परंतु मैं इसका अभिमान दूर करूंगा, मेरे आगे यह क्या चीज है?" सत्य है अपने चित्तका माना हुआ गर्व किसको सुखदाई नही होता है?

यतः—टिट्टिभः पादमुत्क्षिप्य, शेते भंगभयाद्भुवः॥

स्वचित्तनिर्मितो गर्वः, कस्य न स्यात् सुखप्रदः॥ १॥

भावार्थः—टिट्टिभ (टटीरी) जानवर, मेरे पैर रखनेसें पृथिवीका भंग न होजावे! इस भयसें अपने पैरोंको ऊंचे करके सोवे हैं. इसवास्ते अपने चित्तसें वनाया हुआ गर्व (अहंकार) किसको सुख देनेवाला नहीं है?

अमरसींघको पूर्वोक्त अहंकारमें आये हुऐ जानके, सोदागरमल्लने समझाये कि, "पूज्यजी साहिब! आप आत्मारामजीके साथ मत संबंधी चर्चा कदापि मत करो, यदि करोगे तो, याद रखना! तुमारे मतकी जड काटी जायगी. मैंने अच्छी तरह समझ लिया है कि, इनके (आत्मारामजीके) सामने कोई भी जवाब देनेको समर्थ नहीं है." सोदागरमल्लका पूर्वोक्त कहना सुनकर, पूज्य अमरसींघजी हैरान होगये और सुनकर चूपके हो रहे; और श्रीआत्मारामजीकी वरावरी करनेमें असमर्थ होकर, खुशामत करने लग गये सत्य है "डरती हर हर करती." श्रीआत्मारामजीको एकदिन एकांतमें ले जाकर ऐसे कहने लगे कि, "बेटा आत्मारामजी! तू हमारे मतमें लाल (रत्न) पैदा हुआ है. इस वास्ते तुजको ऐसा काम करना चाहिये कि, जिससें हमारा तुमारा आपसमें मतभेद न पडे." तब श्रीआत्मारामजीने कहा, "पूज्यजी साहिब! जो पिछले आचार्योंका लेख शास्त्रोंमें चला आयाहै, मैं उससें उलटी प्ररूपणा कदापि न करूंगा. और आपको भी यही उचित है कि, आप जरुर सत्यासत्यका निर्णय कर लेवें. क्योंकि, यह मन-

ष्यका जन्म, वारवार मिलना मुश्किल है इस जूठे हठको छोडदे ” इत्यादि अनेक प्रकारकी हित शिक्षा, श्रीआत्मारामजीने अमरसींघजीको दी परंतु अमरसिंघजीको इस हित शिक्षाने कुछ भी फायदा नही किया क्योंकि–

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः ॥
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न रंजयति ॥ १ ॥

भावार्थः–अनजानको समझाना सुखाला है, इससें भी जो सरस अच्छे बुरेको समझता है, और हठी कदाग्रही नहीं है, ऐसे पंडितको समझाना अतीव सुकर (सुखाला) है परंतु जो प्राणी, ज्ञानके दो अक्षर आनेसें दुर्विदग्ध होगया, (अर्थात् थोडासा पढके अपने आपको बृहस्पति तुल्य मानने लग गया, हठ कदाग्रहसें प्रीति करने लग गया) ऐसे सखसको तो ब्रह्मा भी रंजित नही कर सकताहै अर्थात् पूर्वोक्त लक्षणोंवाले पंडितायते (पंडिताभिमानी) को तो ब्रह्मा भी नही समझा सकताहै तो औरका तो क्याही कहना?–गुस्सा करके अमरसिंघजी पराङ्मुख होगये तब श्रीआत्मारामजीने भी विचारा कि–

उपदेशो हि मूर्खाणां, प्रकोपाय न शांतये ॥
पयःपानं भुजगानां, केवलं विषवर्द्धनम् ॥ १ ॥

भावार्थः–मूर्खोको उपदेश देना क्रोध बढानेके वास्ते है, परंतु शांतिके वास्ते नहींहै, जैसे कि, सापको दूध पिलाना, केवल विषका बढानाहै इस वास्ते इनको ज्यादा कहना, नुकसान कर्ता है, ऐसा विचारके श्रीआत्मारामजी भी अपने स्थानपर चले गये कितनेक दिन पीछे अमरसिंघजी तो पट्टीको विहार करगये, और श्रीआत्मारामजी विश्नचंदजी आदि अमृतसरसें विहार करके जालंधर शहरमें आये और “खरायतीमल्ल” (श्रीआत्मारामजीका गुरुभाई) और “गणेशीलाल” (शिष्य) येह दो साधु, कितनेक दिन पहिलेही हुशीआरपुर चले गये थे वहां इन दोनोंका आपसमें कलह हुआ, इससें गणेशीलाल मुहपत्तीका डोरा तोडकर, श्रीआत्मारामजीको विना मालुम किये, हुशीआरपुरसें विहार करके शहर गुजरांवालामें “श्रीबुद्धिविजयजी” (बूटेरायजी)* संवेगी तपगच्छके साधूके पास चला गया

---

* तसवीर देखो इन महात्माका जन्म, देशपंजाबमें लुधीआना शहरके तरफ बलोलपुरसें सात आठ कोश दक्षिणके तरफ दूलूवां गाममें टेकसिंघ नामा कुटंबकि (कुणबी–पटेल) की कर्मो नामा स्त्रीकी कूखसें विक्रम सम्वत १८६३ में हुआथा माताकी आज्ञा लेके विक्रम संवत् १८८८ में इनोंने ससार छोडके, मलूकचंदके टोलेके नागरमल्ल नामा ढुंढक साधुकेपास साधुपणा लियाथा परंतु शास्त्रोंके देखनेसें, और देशदेशा वरोंमें फिरनेसें, ठिकाने ठिकाने श्रीजिनमंदिरोंको देखनेसें, ढुंढकमत मनःकल्पित मालुम होनेसें, देश गुजरात शहर अहमदावादमें आके “ गणि श्री मणिविजयजी ’ महाराजजीके पास अनुमान विक्रम संवत् १९११–१२में तपगच्छका वासक्षेप लेके, पूर्वोक्त महात्माको गुरु धारन करके, ढुंढकमतका त्याग करा यद्यपि ढुंढकमतका अश्रद्धान तो इन महात्माके मनसें विक्रम सम्वत् १८९२ में निकल गयाथा, परतु पूर्वोक्त संवत् तक यथार्थ गुरु नही धारण करनेसें ऐसा लिखा है इन महात्माका विशेष वर्णन जिसको देखनेकी इच्छा होवेतो, इनकी बनाई “मुहपत्ती चर्चा” नाम पोथीसें देखलेवें इन महात्माके पांच शिष्य प्रायः अधिक

ये गणेशीलाल श्री "बूटेरायजी" सें संवेगी दीक्षा लेकर "विवेक विजय" नामसें विचरने लगा, और ठिकाने ठिकाने कहने लगा कि, "श्रीआत्मारामजीके अंदर शुद्ध सनातन जैनमतका श्रद्धा होगई है; और प्रत्यक्षमें ढुंढक भेष, और व्यवहार रक्खा है. परंतु ढुंढकमतकी आस्था, बिलकुल नहीं है" इसके ऐसे अनुचित समयमें इसतरहके कथनसें, और पूर्वोक्त काररवाई अंगीकार करनेसें कितनेही शहरोंके लोगोंको सनातन जैनमतकी शुद्ध श्रद्धा प्राप्त होनी बंध होगई. क्योंकि, बहुत अनजान लोकोंने विनाही समझे हठ कदाग्रह करके श्रीआत्मारामजी वगैरहके पास जाना आना बंध करदिया.*

जालंधरसें विहार करके श्रीआत्मारामजी, "हुशीआरपुर" गये. और संवत् १९२३ का चौमासा वहाही किया; जिस चौमासेमें "भक्त नथ्थुमल्ल. बिल्लामल्ल, मानामल्ल" वगैरह बहुत लोकोंने शुद्ध सनातन जैनमतका श्रद्धान अंगीकार किया. और लाला "गुज्जरमल्ल" वगैरह कितनेक अंतरग शुद्ध श्रद्धानवाले थे, उनका श्रद्धान परिपक्व होगया. चौमासे बाद हुशीआरपुरसें विहार करके दिल्लीशहर तरफ गये, और संवत् १९२४का चौमासा, दिल्लीसें विहार करके जमना नदीके पार, "विनौली" गाममें जा किया; जहां भी कितनेही लोकोंने सनातन जैनधर्मका श्रद्धान अंगीकार किया. इस चौमासेमें श्रीआत्मारामजीने "नवतत्त्व" ग्रंथ बनाना शुरु किया; चौमासे बाद विचरते विचरते "डोगर" नाम गाममें गये, जहा एक "रणजीतमल्ल" ओसवाल जो मारवाडसें पंजाब देशको रामबक्षके साथ आयाथा, श्रीआत्मारामजीको मिला; तब श्रीआत्मारामजीने तिसको पुराणा मिलापी समझके, यथार्थ तत्त्वका स्वरूप सुनाया; क्योंकि, प्रथम भी जयपुर दिल्ली वगैरहके चौमासेमें श्रीआत्मारामजी "रणजीतमल्ल" को कई प्रकारका ज्ञान पढाते रहेथे. इस बातसें रणजीतमल्लके मनमें शक पेदा होनेसें ढुंढक "चंदनलालजी" साधुको, (जो जोगराजीये ढुंढक रुडमल्लजीके चेले थे—"श्रीआत्मारामजी" भी जोगराजियेही कहातेथे) श्रीआत्मारामजीके पास ले आया. चंदनलालजीने "श्री आत्मारायजी" सें साधुके उपगरण, और प्रतिक्रमण संबंधी बातचित करी, तब "श्रीआत्मारामजी" ने शास्त्रके पाठ, चंदनलालजीको दिखलाया. देखतेही "श्रीचंदनलालजी" ने "श्रीआत्मारामजी" का कहना, सत्य सत्य अंगीकार करलिया; परंतु रणजीतमल्लने हठ नहीं छोडा, और कहने लगा कि, मेरे साथ तो ऐसा हुआ, "लेनेगई पुत, खो आई खसम" "मैं तो श्रीआत्मारामजीको समझानेके वास्ते, श्रीचंदनलाल-

---

प्रसिद्ध हुये जिनमें भी श्रीमद्विजयानंदसूरि (आत्मारामजी) अधिकतर प्रसिद्ध हुए हैं तिन पाच शिष्योंके नाम—(१) श्रीमुक्तिविजयजी गणि (मूलचदजी) (२) श्रीवृद्धिविजयजी (वृद्धिचदजी) (३) श्री नीतिविजयजी (४) श्रीखातिविजयजी (५) श्रीमद्विजयानदसूरि (आत्मारामजी) जिनमेंसें श्रीमुक्तिविजयजीकी छबी मिली नहीं, दूसरे महात्माओंकी छबी आगे देखलेवें

* इस समयमें भी ऐसेही होरहाहै सवेगी साधुके पास कोई जाना न पावे, इसवास्ते ढुढक साधु हरएक अपने श्रावक जो कि कोरे रहगये हैं, तिनको प्रतिज्ञा प्रायः कराते हैं कि सवेगी साधुके पास जाना नही, तिनका उपदेश सुनना नही, तिनको वदना करनी नही, अहार पानी देना नही, जैसे कि पिछले दिनोंमें श्रीआत्मारामजी पशरुरमें गयेथे, जहां पानीके न मिलनेसें उसही दिन पीछली पहरको विहार करना पडा, होय, ! अफसोस ! कैसी समझ!! ढुढकश्रावकोंमे भी कितनेक हठग्राही अनजानोंने ऐसा बदोबस्त प्राय कियाहै कि "संवेगी साधु आवे, उसके पास जावे, पचास दड पावे, नहो तो जात बहार थावे" ऐसा सुननेमे आता है

जीको लेआया था; परंतु यहां तो, उलटे श्रीचंदनलालजी भी, फस गये ! " श्रीआत्मारामजीने भी अयोग्य समझके उपेक्षा करली श्रीचंदनलालजीने आकर अपने गुरु "रुडमल्ल" जीको श्री-आत्मारामजीका कहना सुनाया तब रुडमल्लजीने कहा, "श्रीआत्मारामजीका कथन सत्य है, हम भी ऐसेही मानेंगे, प्रथम भी हमारे मनमें कितनेही संदेह थे, सो अब निकल गये " ऐसे श्री रुडमल्लजीने भी शुद्ध श्रद्धान अंगीकार करलिया बाद शेषकाल और और ठिकाने विचरके संवत् १९२५ का चौमासा श्री आत्मारामजीने " बडौत " गाममें किया, जहां " नवतत्त्व " ग्रंथ समाप्त किया जिस ग्रंथको देखनेसेंही, ग्रंथकर्त्ताका बुद्धिवैभव मालुम होताहै

इधर पंजाब देशमें, "श्रीआत्मारामजी" की श्रद्धावालोंकी कुच्छ वृद्धि होती देखके, ढुंढकोंके पूज्य अमरसिंघजीने, एक लेख (मेजरनामा) तैयार कराया, जिसमें लिखवाया कि, " जो कोई जिन प्रतिमाके माननेका, या पूजनेका उपदेश करे, डोरेके साथ मुखपर बंधीहुई मुहपत्तीको निंदे, (अर्थात् न माने,) और बावीस अभक्ष्य (नहीं खाने योग्य वस्तुओं) का नियम करावे, उसको, अपने समुदायसें बाहर निकाल देना " ऐसा लेख लिखवाके, सब साधुओंके प्रायः हस्ताक्षर करालिये, जिसमें श्रीआत्मारामजीके गुरु, " जीवणमल्लजी " के भी छल करके दसखत करालिये और " जीवणमल्ल, " " पन्नालाल " वगेरह चार साधुओंका लेख देकर " श्रीआत्मारामजी"के पास, दसखत करानेके वास्ते भेजे, और दिल्लीके तरफ ऐसे पत्र लिखवा भेजे कि, "आत्माराम"की श्रद्धा जिन प्रतिमा पूजनेसें मुक्ति माननेकी,बावीस अभक्ष्य वस्तु नही खानेकी और मुखोपरि डोरेसें मुहपत्ती नहीं बांधनेकी होगई है इसवास्ते हमने उसको इस देशसें निकाल दिया है, तुम भी अपने देशमें आत्मारामको रहने मत दो तथा आत्मारामकी संगत मत करो पंजाब देशमें भी गामोगाम और शहर शहर, पत्र भेजवाये कि, " आत्मारामकी श्रद्धा भ्रष्ट होगई है, इसवास्ते तुम आत्मारामकी संगत मत करो " परंतु जो लोग जानते थे कि, श्रीआत्मारामजी जैनमतके शास्त्रानुसारही, कथन करते हैं, और ढुंढक लोग अपनी मनःकल्पित बातें बतावें हैं वे लोग तो, पत्र को देखके पत्र भेजने भेजवानेवालोंकी हांसी करने लगे, और कहने लगे कि, " ढुंढक लोक फक्त दूर दूरसेंही तडाके मारते हैं परंतु श्रीआत्मारामजीके सामने, कोई भी नही हो सकता है, जिसका मूलकारण यह है कि, ढुंढकलोक " व्याकरण " को " व्याधिकरण " मानके तिसका अभ्यास नहीं करते हैं और श्रीआत्मारामजीके परिवारमें तो, प्रायः व्याकरणका प्रचार मुख्य है यह तो प्रगटही है कि " विद्वानके साथ मूर्खकी बात होही नहीं सकती है "

जीवणमल्ल, पन्नालाल वगेरह साधु, अमरसिंघजीका दिया हुवा लेख लेकर, विहार करके "कांधला" गाममें आये कि जहां "श्रीआत्मारामजी" बडौतसें विहार करके आये हुए थे और "श्रीआत्मारामजी" सें मिले तब जीवणमल्लजी तो चूपही रहे, और पन्नालालने "श्रीआत्मारामजी"सें कहा कि, "तुम भी, इस लेखपर अपने दसखत कर दो, अन्यथा समुदायसें बहार होना पडेगा " तब श्री आत्मारामजीने कहा कि, "मेरे गुरुजी तो कुच्छ भी नही कहते हैं,तो तू दसखत करानेवाला कौन है' ? सुनकर पन्नालाल तो, कांपने लग गया. और जीवणमल्लजीने कहा कि, "मैं क्या करूं ? मेरेपास, जोरावरी दसखत छल करके करा लिये हैं " तब श्रीआत्मारामजीने कहा कि, ' महाराजजी ! आप कुच्छ चिंता न करें, मैं आपही सभाल लेऊंगा. "

ऐसा कहकर अपने गुरुको धीरज देके गुरुके साथही विहार करके "श्रीआत्मारामजी" शहर दिल्लीमें गये. दिल्लीके ढुंढक श्रावकोंने, अमरसिंघजीके पत्र पहुंचनेसें इरादा किया कि, "आत्मारामजी"को चरचामें निरुत्तर करके निकाल देवें. परंतु वहांपर "श्रीआत्मारामजी"ने श्री "उत्तराध्ययन" सूत्र सटीक अध्ययन २८ मा व्याख्यानमें वांचना शुरु किया. जिसके सुननेसें दिल्लीके श्रावक बहुत खुश हुए कि, "हमने आजतक किसी भी ढुंढिये साधुका इसतरहका व्याख्यान नही सुना." व्याख्यानके सुननेसेंही लोगोंको निश्चय होगया कि, "हम यदि इनसें चरचा करेंगे तो जरूर हम हार जावेंगे. क्योंकि, यह बडे पढे हुए हैं, हमारी शक्ति इनको जवाव देनेकी नही है. और चरचाके होनेसें, यातो समग्र, नही तो आधे तो, जरूरही इनके पक्षमें होजावेंगे. इस वास्ते चरचा चुरचाको छोडके, जिसतरह भाव भक्तिके साथ विहार करजावे वैसा करना चाहिये." ऐसा निश्चय करके सव चूपके होरहे. सत्य है—

तावद्गर्जति खद्योत, स्तावद्गर्जति चंद्रमाः ॥
उदिते तु सहस्रांशौ, न खद्योतो न चंद्रमाः ॥ १ ॥

भावार्थः—तवतकही खद्योत (जुगनु-खज्जुआ-टटाणा-आगीआ) गर्जताहै,(अर्थात् अपना चांदना दिखाताहै) और तवतकही चंद्रमा भी गर्जताहै कि, जवतक सूर्यका उदय नही होता है, जव सूर्योदय होताहै तो, फिर न तो खद्योत, और न चंद्रमा,दोनोंमेंसें कोई भी नही गर्जताहै.

दिल्लीसें विहार करके, "श्रीआत्मारामजी," "लुहारा" गाममें आये, जहां रातके समय फिर जीवणमल्लजी रोकर कहने लगे कि, "आत्मारामजी! तैने कव भी मेरे हुकुमका अपमान नहीं किया है. मैं अच्छी तरांह जानताहूं कि, तूं वडाही विनयवान् है. परंतु मैं क्या करु? अमरसिंघके वहकानेसें तेरे जैसे लायक शिष्यके साथ अणवनाव (नाइतफाकी) का काम, मैंने किया, जोकि, विना विचारे लेखपर मैंने अपने दसखत करदिये. अव मैं इस वातका वडा पश्चात्ताप कर रहा हूं." तव फिर भी "श्रीआत्मारामजीने" धीरज देकर कहाकि, "स्वामीजी! आप इसवातका विलकुल फिकर न करें, अपना पुण्यतेज होवे तो, दुश्मन क्या करसकता है? यदि अमरसिंघने दसखत करालिये हैं तो, क्या हुआ? और अमरसिंघ मेरा क्या कर सकताहै?" यह सुनकर, जीवणमल्लजी चूप होगये. वाद लुहारा गामसें विहार करके "श्रीआत्मारामजी," वडौत गाममें आये, जहां श्री आत्मारामजीको मालुम हुआ कि, दिल्लीके कितनेही ढुढक श्रावकोंने, अमरसिंघजीके पत्रकी प्रेरणासें, वहुत शहरोंमें पत्र भेजेहैं, जिनमें लिखाहै कि, "आत्मारामजीकी श्रद्धा, ढुढकमतसें वदल गई है, और पूज्यजी साहिव अमरसिंघजीने, इनको पंजाव देशसें निकाल दिया है, इत्यादि"—इस वर्णनके सुननेसें, "श्रीआत्मारामजीने" अपने दिलमें पूर्ण धर्मश्रद्धा होजानेसें विचार किया कि, "जहा मैं जाऊंगा, वहांही इस तरहके पत्र प्रथमही पहुंच गये होंगे इस तरह तो किसी जगा भी रहना नहीं होसकेगा, इसवास्ते पीछे पंजावदेशमेंही जाना ठीक है. जैसा होवेगा, देखा जायगा. यद्यपि इसवखत पंजावमें, निःशंक होके, मुजे मदद देनेवाले कोई नहीं है, तथापि सच्चे धर्मके प्रतापसें,कोई न कोई,पुण्यवान्, साहायक, होजावेगा." ऐसा निश्चय करके, "श्रीआत्मारामजी" वडौतसें विहार करके शहर अंवालामें आये; और

निडर होकर, यथार्थ सत्य सनातन जैनधर्मका उपदेश, जो कि इतने समयतक प्रच्छन्नपणे किसी किसीको सुनावेथे पर्षदाके बिच सुनाने लगगये, जिससें " जमनादास " " सरस्वतीमल " " नानकचंद " " गोंदामळ. " गगाराम, " " लालचंद, " आदि बहुत श्रावकोंने जैनमतका सच्चा श्रद्धान, अंगिकार किया, जिससें " श्रीआत्मारामजी"को भी, उत्साह अधिक हुआ सत्यहै, ' साचको आंच कभी नही '

अंबालासें विहार करके "पटियाला, नाभा" होकर "मालेर कोटला"में आये और सत्यधर्म की प्ररूपणा करी, जिसका बहुत श्रावकोंने अंगिकार की, और चौमासा करनेके लिये विनती की चौमासेको देर होनेसें कोटलेसें विहार करके " श्रीआत्मारामजी " शहर " लुधिआना " में आये, और खुब सन्मार्गका प्रकाश किया यहां " घोलुमळ, खेटमळ, वधावामळ, निहालचंद, प्रभ दयाल नाजर " वगेरह श्रावकोंके दिलसें ढुंढक तिमिरका नाश किया, और एक महीने बाद विहार करके, संवत् १९२६ का चौमासा, " मालेरकोटला" में जा किया, और भव्य जीवोंको प्रतिबोध दिया चौमासे बाद कोटलासें विहार करके एक शिष्यकी लालचसें, " श्री आत्मारामजी" बिनौलीके तरफ गये और संवत् १९२७ का चौमासा, बिनौलीमें किया और अध्यात्ममय " आत्म बावनी " नाम छोटासा ग्रंथ तैयार किया इधर पंजाब देशमें ' श्री विश्नचंदजी, हुकमचंदजी " वगेरह, बडे बडे शहेरोंमें फिरकर प्रच्छन्नपणे श्रावकोंको प्रतिबोध करने लगे, जिससें " श्रीआत्मारामजी " के श्रावकोंकी वृद्धि होती रही

चौमासे बाद बिनौलीसें विहार करके " श्रीआत्मारामजी", अंबाला पटियाला, नाभा, कोटला, रायकोट होते हुए " जगरांवा " गाममें आये, और जगरांवासें विहार, " जिरा"को किया रस्तेमें "किशनपुरा" गामके पास, देवयोगसें अनायासही, कितनेही चेलोंके साथ " पूज्य अमरसिंघजी" जोकि जिरेसें विहार करके जगरांवाको आतेथे, " श्रीआत्मारामजी" को मिले "श्रीआत्मारामजी" को देखके, लाल आंखे करके, रस्ता छोडके, किनारे होके, जाने लगे तब श्रीआत्मारामजीने, जोरावरी हाथ पकडके, अमरसिंघजीको बेठा लिया वंदना करके, सुखसाता पूछके, हाथ जोडके, नम्रता करके, पूछाकि, " पूज्यजी महाराज मैंने आपका क्या गुनाह किया है? आपने मेरे ऊपर इतना गुस्सा क्या किया? " तब पूज्य अमरसिंघने लाल आंखे करके कांपते कांपते कहा कि, " तू लोगोंके आगे कहता फिरता है कि, अमर सिंघ मेरी रोटी, वंदना वगेरह बंध कराता है सो तू इस बातको सत्य करदे, नही तो अठाइ (आठ व्रत) का दंड ले " तब " श्रीआत्मारामजी" ने कहाकि " महाराजजी! " " मोहनलाल, " और " छज्जुमळ " तुमारे श्रावकोंने यह समाचार कहाहै यदि यह बात सत्य है तो, इसका दंड आपको लेना चाहिये और यदि जूठ है तो, " मोहनलाल, छज्जुमल" तुमारे श्रावकोंको यह दंड लेना चाहिये परंतु मुजे किसीतरह भी, दंड नही चाहिये यह सुनकर, अमरसिंघजी निरुत्तर होगये, और क्रोध करके पराङ्मुख होकर, अपने रस्ते चलते होगये सत्य है " जूठेको क्रोधकाही शरण है " श्रीआत्मारामजी वहांसें चलकर, जिरामें गये यहांके ओसवालोंको अमरसिंघजी धीरज देकर, बडे पक्के करके कहगयेथे कि, " तुम आत्मारामका कहना, नही मानना " परंतु जिराके लोग बडे अक्कलमंद, और इल्मवाले होनेसें, " श्रीआत्मा

रामजी " के पास आकर प्रश्नोत्तर करने लगे. प्रश्नोंका जवाव पूरा पूरा मिलनेसें कितनेही श्रावक तो, उसी वख्त शुद्ध मार्गमें आगये, और कितनेकने यह दावा किया कि, " हम ढुंढक साधुओंको पूछके, निर्णय कर लेवेंगे, पीछे जो हमको सत्य सत्य मालुम होवेगा, अंगिकार करलेवेंगे." ऐसें कहकर, पंजुराम वगैरह चार पांच श्रावक, "पटियाला" शहेरमें, " रामबक्षजी " के पास गये, और कितनेही प्रश्न किये; परंतु एक वातका भी ठीक ठीक उत्तर न मिला. अंतमें रामवक्षजीने गुस्सेमें आकर कहा कि, " तुमारे अदर अज्ञान बढगया है. यदि तुमको हमारे ऊपर निश्चय है तो, जैसें हम कहते, और करते हैं, वैसही करे जाओ, नही तो तुमारी मरजी. आवश्यक जो हमारे पास है, सोही है, तुमारे वास्ते हम कोई नया अवश्यक वनावे क्या ? " तव उन श्रावकोंने कहा कि, " महाराजजी साहिव ! आप गुस्सा न करें. क्योंकि, " श्रीआचाराग " वगैरह सूत्र प्राकृत वाणीमें है तो आवश्यक भी, प्राकृतवाणीमेंही होना चाहिये; और आपके पास जो है, सो गुजराती वगैरह भाषाओंसें मिश्रित खीचडी हुआ हुआहे. इसको सच्चा किसतरह माना जावे ? " तव रामवक्षजीने कहा, " तुम वहोत झगडा मत करो. तुमारी श्रद्धा तुमारे पास, और हमारी श्रद्धा हमारे पास. "

यह सुनकर उनको निश्चय होगया कि, जो कुच्छ श्रीआत्मारामजी वताते हैं, सव सत्य है. और ढुंढक साधुओंका कहना, असत्य है. तव रामवक्षजीके पासही ढुंढकमतको त्यागन करके जिरे चले गये; और सव वृत्तात, जिरेके लोगोंको कह सुनाया. सुनकर सवनेही श्रीआत्मारामजीका कहना सत्य मानकर, शुद्ध श्रद्धान अंगिकार करलिया. इसवख्त जीवणमल्लजी श्रीआत्मारामजीके ढुंढक अवस्थाके गुरु भी, जिरामें आपहूंचे, उनको भी सत्य धर्मका कुच्छ असर होगयाथा. परंतु " फिरोजीपुर " जानेसें वहांके ढुंढीयोंके वहकानेंसे वहक गये.

जिरेमें श्रीआत्मारामजीने कल्याणजी साधुको समझाया, और सन्मार्ग अंगिकार कराया. यह वात सुनकर पूज्य अमरसिंघने हुकुमचंदको, कल्याणजीके साथ पत्र भेजकर" भदौड" गाममें वुलाया. और गुस्से होकर कहा कि "तूं मेराही घर पुटने लगाहे ? तूं कल्याणजीको लेकर क्यौं जिरेको गयाथा ?" तब हुकुमचंदजीने शाति करके कहा कि, " स्वामीजी ? मैं भूलगया. मेरा गुन्हा माफ करें. आगेको ऐसा नकरूंगा." यह नम्रता करनेका सवव यह था कि हुकुमचंदजी अच्छी तरह जान गयेथे कि, ढुंढकमत मनःकल्पित है. परंतु अवतक हमको इस घरमें रहकर वहोत कुच्छ कार्य करनेके हैं, इसवास्ते धीरजसें जो बने सो अच्छा है--सत्य है--सहज पक्के सो मीठा हो. इसबख्त विश्वचदजी भी, वहां आये हुयेथे. उनोंने भी पूज्यजीको समझायके शांत करे और श्रीविश्वचंदजी वगैरह विहारकी तैयारी करने लगे. तव अमरसिंघजीने कहा, " रस्तेमें जिरेसें विहार करके जगरांवामें आकर आत्माराम वैठाहे, उसको मिलनेका नियम करो. " तव श्रीविश्वचंदजीने कहा, " हम नही मिलेंगे ." ऐसा कहकर विहार करके जगरांवामें आये, और श्रीआत्मारामजीको मालुम न होवे ऐसे पृथक् मकानमें जा उतरे. परंतु क्या चांद निकला छीपा रहता है ? एक ओसवालने जाके श्रीआत्मारामजीको मालुम किया.कि, " श्रीविश्वचंदजी आये हैं, और फलाने मकानमें उतरे हैं. " यह सुनतेही श्रीआत्मारामजी वडे खुश हुवे, और विश्वचंदजी जिस मकानमें उतरे थे, वहां जाकर कहने लगे कि, " मिलनेका नियम तु-

मको पूज्यजीने कराया है, परंतु मुझको तो नही कराया है? मैं तुमको मिला, तुम मुझे नही मिले, इसवास्ते तुमारा नियम भंग नही हैं "तब श्रीविश्नचंदजीने कहा कि "महाराजजी! मनसें तो हम सदाही आपके साथ मिले हुये हैं क्योंकि, आपने शुद्ध सनातन जैनमतका यथार्थ स्वरूप दिखलाके हमारे ऊपर जो उपकार किया है, हम इसका बदला भवभवमें भी नही दे सकते हैं परंतु क्या करें? अपनी मतलब सिद्ध करनेके वास्ते, ऊपर ऊपरसें जुदाई रखते हैं यदि इतनी भी जुदाई न रखें तो, पूज्यजी नाराज हो जावे हैं, और इनके नाराज होनेसें अपना कार्य, सिद्ध होना मुश्किल हैं" तब श्रीआत्मारामजीने कहा कि "खबरदार? पूज्यजीसें अलग होनेका इरादा, कदापि न करना, जबतक यह विद्यमान् है, इनको दुःख न होना चाहिये, पीछे जो तुमारी मरजी होवे, तुम करना, क्योंकि तुमारे अलग होनेसें पूज्यजीको ज्यादा दुःख होवेगा और तुम जो कार्य करना चाहते हो, वह भी पूर्ण न होवेगा" इत्यादि हित शिक्षा देकर श्रीआत्मारामजी श्रीविश्नचंदजीको हाथ पकडके अपने मकानमें जहां आप उतरेथे, लेगये, और बडे आनंदपूर्वक ज्ञानालाप किया दूसरे दिन श्रीविश्नचंदजी जगरांवासें विहार करके "लुधीआना" तरफ गये, और श्रीआत्मारामजीने भी लुधीआने जानेकेवास्ते श्रीविश्नचंदजीसें एक दिन पीछे विहार जगरांवासे किया परंतु रस्तेमें वर्षाके सबबसें दैवयोगसें अनायासही सात कोशपर "बोपारामा" गाममें, दोनोंका मिलाप होगया वहां कोई भी ओसवाल ढुंढकका उपद्रव न होनेसें, दोनोंही अपने साथके साधुओं सहित एकही मकानमें उतरे, और खूब आनंदसें ज्ञानगोष्ठी करते रहें सन्ध्याका प्रतिक्रमण भी, एकत्रही किया तब श्रीआत्मारामजीने कहा कि, "तो आज मैं तुमको श्रीमहावीर स्वामीके शासनका प्रतिक्रमण विधि सहित कराउं" प्रतिक्रमणका विधि देखके, सब साधु चकित होगये, और कहने लगे कि," महाराज हमारे नसीबमें भी कभी ऐसी विधि कहनेका दिन आवेगा और यह जैनाभास ढुंढक मन कल्पित फासी हमारे गलेसें फाटी जायगी?" तब श्रीआत्मारामजीने कहा, ' धैर्य रखो, हिम्मत मत हारो, सब अच्छा होजायगा " दूसरे दिन विश्नचंदजी वगैरह, पमाल होकर लुधीआने पहुंचगये और श्रीआत्मारामजी, एक दिन पीछे लुधीआना शहेरमें पहुंचे यहां भी जुदे जुदे मकानमें उतरे परंतु श्रीआत्मारामजीका व्याख्यान सुननेको, निरंतर श्रीविश्नचंदजी वगैरह आतेथे जिनमेंसें एक साधु धनैयालाल" नामा जिसको ऐसी उंधी पाटी पढा रखीथी कि, आत्माराम जहेरके घूंटे लगाता है साधुओंके बहुत कहनेसें एक दिन कथा सुनने गये सुनकर कहने लगे कि," यह तो सत्य सत्य कथन करते हैं इनको क्यों असत्यलापी कहते हैं? ऐसा अपने मनसें विचारके " गणेशजी" नामा अपने गुरु भाईसें पूछा कि, "तुम जो मेरे दूसरे साधुओंके पास अनिष्टाचरण कराते हो और तुम खुद भी करते हो, सो ऐसा काम करना, किस जैनमतके शास्त्रमें लिखा है? सो पाठ मुझे दिखलादो, अन्यथा आज पीछे ऐसा काम मैं कभी भी न करुंगा ' तब गणेशजी साधुने कहा कि, "भाई! साधुओका काम ऐसेही चलता है ' तब धनैयालालने कहा कि " पहले चलगया सो चलगया अब आग सो जबतक शास्त्रका पाठ नही दिखावोगे तबतक नही चलेगा. " ऐसा कहकर धनैयालालने भी श्रीआत्मारामजीका कथन सत्य सत्य अंगिकार कर लिया. यह मात्र अमर-

सिंहजीको पत्रद्वारा भरूंडमें मालुम हुई. तब चिंताके सबबसें अमरसिंहजीको ताप चढने लगा, और तापके बिच बकवाद करने लगे, और "तुलशीराम" नामक अपने चेलेसें कहने लगा कि, "उठ! लुधीआने चलके आत्मारामको सरकारमें केद करादेवें! क्यौंकि, इसने मेरे सब चेले बहका दिये हैं." तब तुलशीरामने बहुत धीरज देके शांत किया. क्यौंकि, तुलशीरामकी भी श्री आत्मारामजीकीही श्रद्धा थी, इसवास्ते जानतेथे कि, यह जूठे ढोंग करते हैं.

कितनेक दिनों पीछे अमरसिंहजीकी तरफसें पत्र ऊपर पत्र आनेसें. लाचार होकर श्री विश्वचंदजी लुधीआनेसें विहार करके, अंबाला शहेरमें जा चौमासा रहे; और श्री आत्मारामजीने संवत् १९२८ का चौमासा, "लुधीआने" मेंही किया.

चौमासे बाद श्रीआत्मारामजी, लुधीआनासे विहार करके "हुशीआरपुर" में आये. वहां श्री विश्वचंदजी वगैरह बारा (१२) साधुओंने अमरसिंहके कितनेक साधुओंका भ्रष्टाचार मालुम होनेसें असरसिंहजीको कहा कि, "इन चौथे व्रतके भ्रष्टाचारीयोंको रखना आपको योग्य नहीं" तब अमरसिंहने, उनका कहा नही माना; और कहा कि, "तुमारी श्रद्धा भ्रष्ट होगई है; तुमारा हमारा रस्ता पृथक् पृथक् है." तब श्रीविश्वचंदजीने बहुत नम्रतासें कहा कि, "पूज्यजी साहिब! आप विचार करें! अन्यथा पीछे आपको बडा पश्चात्ताप करना पडेगा." परंतु अमरसिंहजीने बिलकुल शोचा नही. तब श्रीविश्वचंदजी वगैरह अमरसिंहजीसें अलग होकर श्री-आत्मारामजीको आन मिले, जब श्रीआत्मारामजीने कहा कि, "तुमने अच्छा काम नहीं किया. विना अवसर अलग होगये! अभी अलग होनेका समय नहीं था." तब श्री-विश्वचंदजी वगैरहने कहा कि, "हम क्या करें? हमतो बहोतही समझाते रहें, परंतु पूज्यजी साहिब बिलकुल नही समझे. क्या हम भी उन भ्रष्टाचारीयोंके साथ मिलकर, अपना जन्म निष्फल करें?" तब श्रीआत्मारामजीने कहा कि, "अच्छा जो होवे सो हो. परंतु यदि तुमको इस देशमें विचरना होवे तो, जोर लगाकर शहेरोंशहेर, और गामोंगाममें फिरके शुद्ध श्रद्धानका उपदेश करके श्रावकसमुदाय बनाओ. क्योंकि, विना श्रावकसमुदायके इस पंचम कालमें, संजमका पालना कठिनहै. और यदि इस देशमें विचरना न होवे तो, चलो गुजरात देशमें चलके शुद्ध सनातन जैनधर्मके अव्यवच्छिन्न परंपरायके गुरु धारण करें; और उसी देशमें फिरें." तब कितनेक साधुओंने कहा कि, "महाराजजी साहिब! यह काम हमसें नही बनेगा. इस देशको तो हम कदापि न छोडेंगे. इसवास्ते आपकी आज्ञानुसार हम, दो दो तीन तीन साधु, अलग अलग विचरके क्षेत्रोंमें श्रावक समुदाय बनावेंगे यह कोई बडी बात नही है. क्यौंकि, प्रायः सबही क्षेत्रोंमें पैर रखने जितना ठिकाना तो, आपने, और आपकी मददसें हमने भी कर रखा है." ऐसा कहकर श्रीविश्वचंदजी वगैरह बारासाधु अमरसिंहजीको छोडके आये थे वे, और आठ साधु जोगराजके, श्रीआत्मारामजी वगैरह, कुल वीस साधु, चारों तरफ जूदे जूदे शहरोंमें अपने पक्षके श्रावक समुदाय बनानेके वास्ते, विचरने लगे. वे सर्वक्षेत्रोंमें प्रायः सत्योपदेशद्वारा अपना बिछौना बिछाते चले, और ढुंढकोंका बिछौना उठाते चले. ऐसे करते करते श्रीआत्मारामजी, तथा श्रीविश्वचंदजी वगैरह साधुओंने "हुशीआरपुर," "जालंधर, "नीकोदर," "झंडीआला," "अमृतसर," "पट्टी," "वेरोवाल," "कसूर, "नारोवाल," "सनखतरा," "जीरा," "कोटला," "अंबाला," "लुधीआना," "लाहोर," "रोपड," "जेजो,"

"सरोंईद," ' कुजरांवाला, " (गुजरांवाला) " रामनगर, " " पसरुर, " " जंबु, " वगैरह बहुत स्थानोंमें अपने पक्षके श्रावक बनाये इधर यह कारवाई देखकर, पूज्य अमरसिंह जीको घभराट होगया, और रुदन करके अपने श्रावकोंको कहने लगे कि, " मेरे अच्छे अच्छे पढेहुये बारा चेले आत्मारामके पास चलेगय, और आत्मारामके साथ मिलकर पंजाबके सब शहरोंको बिगाड रहे हैं इससें मेरे बाकी शेष रहेहुये चलोंके वास्ते बडी मुश्किल होगी, और आहार पानी भी मिलना मुश्किल हो जावेगा इसवास्ते इस बातका बंदोबस्त करना चाहिये यदि तुम इस बातका बंदोबस्त न करोंगे तो, मैं इस पंजाब देशको छोडके मारवाड वगैरह देशोंमें आकर, अपनी जींदगी गुजारुंगा ! ! "

तब " पटियाला " वगैरह दो तीन शहरोंके ढुंढक श्रावकोंने, पूज्य अमरसिंहजीके लिखाये मुजब, पत्र लिखकर ब्राह्मणको देकर प्रायः पंजाबके सब शहरमें भेजे, जिसमें लिखाया कि, आत्मारामजी वगैरह जितने साधु,ढुंढकमतसें उलटी श्रद्धावाले होवे, उनको किसी भी श्रावक वंदना नहीं करे, उतरनेको जगा नहीं दे, वस्त्रपात्र नहीं दे, आहार पानी भी नहीं देना, इनका उपदेश भी नहीं सुनना, इनकेपास जाना भी नहीं, सामायिक भी नहीं करना,वगैरह यह खबर हुशीआर पुरके श्रावकोंने भी सुनी तब " नथुमल्ल " भक्त, लाला " प्रभुदयालमल्ल " आदि बहुत श्रावक कहने लगे कि, " जिसने यह पत्र भेजवाये हे, इनकेवास्तेही यह बंदोबस्त है " और शहरोंवालोंनेभी यही जबाब दिया संवत् १९२९ का चौमासा, श्रीआत्मारामजीने जिरामें किया और श्रीविश्नचंदजी वगैरह साधुओंने भी, जुदे जुदे क्षेत्रोंमें चौमासा किया चौमासे बाद सर्व साधु पूर्वोक्त रीतिसें फिरते रहें और लोकोंको सत्योपदेश सुनाते रह जिससें अनुमान सात हजार (७०००) श्रावकोंने ढुंढकमत छोडके, शुद्ध सनातन जैनधर्म, अंगिकार किया संवत् १९३० का चौमासा, श्रीआत्मारामजीने अंबाला शहरमें किया, वहां श्रीसुकमचंदजीकी प्रार्थनासें चौवीस भगवान्के चौवीस स्तवन, बडे गंभीर अर्थ, और वैराग्य रससें भरे हुए बनाये संवत् १९३१ का चौमासा, श्रीआत्मारामजीने शहर हुशीआरपुरमें किया इस चौमासेके बाद सब साधु, लुधीआना शहरमें एकत्र हुये तब श्रीविश्नचंदजी वगैरह साधुओंने श्रीआत्मारामजीको कहा कि, " कृपानाथ! जैन शास्त्रसें विरुद्ध इस ढुंढकमतके भेषमें हमको कहांतक फिरावोगे? अब तो जैन शास्त्रके मुजब जो गुरु होवे उनके पास फिरसें दिक्षा लेके, शास्त्रोक्त भेष धारण करके, " यथार्थ गुरु, " धारण करना चाहिये तथा " श्रीशत्रुंजय, उज्जयंत ' (गिरनार)वगैरह जैन तीर्थोंकी यात्रा करायके,हमारा जन्म सफल कराना चाहिये " यह बात श्रीआत्मारामजीको भी पसंद आनेसें सब साधु शहर लुधीआनासें विहार करके, "कोटला," "सुनाम, ' "हांसी," 'भिवाणी, ' वगैरह शहरोंमें होकर शहर पालीमें (देश मारवाड) गये वहां "नवलखा" "पार्श्वनाथ" की यात्रा करके, " वरकाणा " गाममें श्री " वरकाणा पार्श्वनाथ," "नाडोलमें" "पद्मप्रभु,""नारलाईमें" "श्री ऋषभदेव" वगैरह(११) जिनालय, " घाणेराव " में " श्रीमहावीर स्वामी," 'सादडी" में तथा " राणकपुर " में " श्री ऋषभ

१ कुजरांवाला, रामनगरमें श्री " बूटेरायजीके उपदेशसें संवेगमत प्रचलित हुआथा परंतु पूर्वोक्त साधुओंके विचरनेसें, वे श्रावक परिपक्व होगये

२ पसरुर और जंबुके ओसवाल प्रायः सब श्रीविश्नचंदजीके उपदेशसें श्रीआत्मारामजीकी श्रद्धावाले होगये थे परंतु पीछेसें अशुभ कर्मके उदयसें फिर गये

देवजी," "सीरोहीमें" (१४) जिनालय जो एकही नींव (थडा-चोतरा-पाया) ऊपर है, वगैरहहीं यात्रा करते करते, श्री " आबुराज " पधारे, जिनकी यात्रा करके दिलसें खुश खुश हो गये. श्रीआबुजीकी श्लाघा करनेको, जुबानमें ताकत नहीं है. जो आंखोंसे देखता है, चकित हो जाता है. जिसके देखनेके वास्ते कई अंग्रेज विलायतसें आते हैं, और लिखते हैं कि आबुजीके मंदिर सरिखी इमारत दुनीयाभरमें भी होनीं मुश्किल हे. कई युरोपियन इसका फोटो (आकस) भी उतार कर लेगये हैं, जिसकी नक्कल चिकागो धर्मसमाजके तरफसें छपे हुए पुस्तक वगैरह बहोत जगे पाई जाती है. " टॉडके राजस्पीन " ग्रंथमें इनका बहुत वर्णन है आबुजी देलवाडेके मंदिरोंकी यात्रा करके, श्रीआत्मारामजी, विश्नचंदजी वगैरह(१६) साधु† श्री "अचलगढ" की यात्रा करनेको गये. जहां बडे भारी मंदिरमें चौदासौ चंवालीस(१४४४) मण सोनेकी चौदां (१४) मूर्तियोंके दर्शन करके आबुजीके पहाडसें उतरके श्रीआत्मारामजी "पालनपुर" पधारे. कितनेक दिन वहां ठहरके विचरते विचरते "भोयणी" गाममें श्री "मल्लीनाथस्वामी " की यात्रा करके, ग्रामो ग्राम जिन मंदिरके दर्शन करते हुए, और श्रावकोंको दर्शन देते हुए, शहर " अहमदावादमें " पधारे, श्रीआत्मारामजीका आगमन सुनकर नगरशेठ " प्रेमाभाई हिमाभाई " तथा शेठ "दलपतभाई भगुभाई " वगैरह अनुमान तीन हजार (३०००) श्रावक श्राविका तीन कोसपर सामने लेनेको गये. क्या आश्चर्य है? जहां अनुमान सात हजार घर श्रावकोंके, औ पाचसें जिन मंदिरहै, तहां तीन हजारका सामने जाना कुछ बडीबात नहीं हे. सबने श्रीआत्मारामजीको देखतेही सार विधिपूर्वक वंदना करके बडी धामधूमसें नगरमें ले जाकर,शेठ दलपत भाईके वंगलेमें उतारे. जहा आदमीयोंके एकत्र होनेमें कुछ कसर न रही.

व्याख्यान सुनकर श्रावकवर्ग लोट पोट होतेथे, केइ सखसोंके हृदयको कुलगुरुओंके उत्सूत्र वचनाधकारने वासा करके स्याम कर दियाथा, तिनको इन महात्माके वचन भास्करने दूर करके उज्ज्वल कर दिये. उत्सूत्र प्ररूपक शिरोमणि शांतिसागर जिसने शहर अहमदावादमें जैनमतसें विरुद्ध वर्णन करके एक उपद्रव खडा कर रखाथा, वह श्रीआत्मारामजीके साथ चरचा करनेको तैयार होगया. श्रीआत्मारामजीने भी, शास्त्रानुसार जवाव देकर उसको निरुत्तर कर दिया. तिस दिनसें शांति सागरका जोर नरम होगया. तब शहर अहमदावादके जैनसमुदायने श्रीआत्मारामजीका अपूर्व ज्ञान, और बुद्धिवैभव देखके बहुत प्रशंसा करी, और कहा कि महाराजजी साहिब! आपका इस वखत इस शहरमें आना ऐसा हुआहै कि, जैसें दावानलके लगे वर्षाका आगमन होवे!" अहमदावाद थोडेही दिन रह कर श्रीआत्मारामजी वगैरह साधुओंने श्रीशत्रुंजय तीर्थकी यात्रा करनेके वास्ते " पालीताणा " शहर तरफ विहार किया, और क्रम करके शहर पालीताणामें पधारे. और दूसरे दिन सूर्योदयके लगभग " श्रीशत्रुंजय " पर्वत पर चढे. एक तरफ तो सूर्य उदय होकर चढता जाता था, और दूसरी तरफ श्रीमहाराजजी सूर्य समान दिदार लोकोंको देते हुये क्रम उठाते चढते जाते थे; इस तीर्थका वर्णन करनेको इंद्र भी समर्थ नहीं है तो, औरोंका तो क्याही कहना है? इस तीर्थ ऊपर नव वसी(टूंक)याने हिस्से हैं;जिनमें अनुमान (२७००) जिन मंदिर है. प्रायः सपूर्ण दिन ऐसे दर्शनामृतसें तृप्त हुये कि, न तृषा लगी, न

† चदनलालजीके गुरु रुडमलजी, वृद्ध होनेसें दोनों (शिष्य-गुरू) उस वखत गुजरात देशमें नहीं गयेथे तथा एक दो जने, साधुपणेको छोड गये थे, इसवास्ते कुल सोला साधु लिखे हैं।

भूख ऊपरसें नीचे आनेको दिल बिलकुल कबूल नहीं करता था, परन्तु कोई भी यात्री प्रायः ऊपर न रहनेका रिवाज होनेसें, लाचार होकर "श्रीऋषभदेवजीकी" यात्रा करके नीचे उतर आये सायंकालका प्रतिक्रमण करके, तीर्थराजके गुण गाते हुये फिर दर्शन करनेको सूर्योदयकी आकांक्षा करते हुये सोगये प्रातःकाल होतेही प्रतिक्रमण, प्रतिलेखनादि साधुकी क्रिया करके फिर ऊपर चढे इसी तरांह निरंतर करते रहे तीर्थयात्रा करके पालीताणासें विहार करके, "गोघा बंदर," "भावनगर," "वळा" "पछी" "लाखेणी," "लाठीधर," "बोटाद," "राणपुर," "चुडा," "लींबडी," वगैरह गामोंमें विचरते हुये, सैंकडोंही जिन मंदिरोंकी यात्रा करते हुये, हजारोंही श्रावकोंको दर्शन व उपदेश देते हुये, फिर शहेर अहमदाबादमें आये जहां "गणि श्री मणिविजयजी" महाराजजीके शिष्य "गणि श्री बुद्धिविजयजी" (बूटेरायजी) महाराजजीके पास, श्री "तपगच्छ" का वासक्षेप लिया और इनही महात्माको श्रीआत्मारामजीने, गुरु धारण किये और शेष साधुओंने श्रीआत्मारामजीको अपने सद्गुरु धारण किये इसवखत श्रीबुद्धिविजयजी महाराजजीने सब साधुओंके पिछले नाम, बदल दिये जैसेंकी।

(१)	श्री आत्मारामजी—	श्री आनंदविजयजी
(२)	श्री विश्नचंदजी—	श्री लक्ष्मीविजयजी +
(३)	श्री चंपालालजी—	श्री कुमुदविजयजी
(४)	श्री हुकमचंदजी—	श्री रंगविजयजी
(५)	श्री सलामत रायजी—	श्री चारित्रविजयजी
(६)	श्री हाकम रायजी—	श्री रत्नविजयजी
(७)	श्री खूबचंदजी—	श्री संतोषविजयजी
(८)	श्री घनैयालालजी—	श्री कुशलविजयजी
(९)	श्री तुलसीरामजी—	श्री प्रमोदविजयजी
(१०)	श्री कल्याणचंदजी—	श्री कल्याणविजयजी
(११)	श्री नीहालचंदजी—	श्री हर्षविजयजी
(१२)	श्री निधानमल्लजी—	श्री हीरविजयजी
(१३)	श्री रामलालजी—	श्री कमलविजयजी
(१४)	श्री धर्मचंदजी—	श्री अमृतविजयजी
(१५)	श्री प्रभुदयालजी—	श्री चंद्रविजयजी
(१६)	श्री रामजीलाल—	श्री रामविजयजी

संवत् १९३२ का चौमासा, श्री "आनंदविजयजी" (आत्मारामजी) वगैरह साधुओंने शहेर अहमदाबादमें ही किया चौमासे बाद शत्रुंजय गिरनार वगैरह तीर्थोंकी यात्रा करके श्री आनंदविजयजीने संवत् १९३३ का चौमासा, शहर भावनगरमें किया; चौमासे बाद "बदोरा अमरचंद, जसराज, झवेरचंद" के संघके साथ, "शत्रुंजय, तळाजा, दाठा, महुवा, दीव, प्रभासपाटण, वेरावल, मांगरोल," होकर तीर्थयात्रा करते हुए शहर जुनागढ तीर्थ "गिरनार" की यात्रा करके शहर जामनगरमें पधारे यहांसे सघने फिर भावनगर चलनेके

+ तसवीर दूसरा



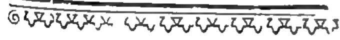


श्रीमन्
मुक्तिविजयजी गणि
(मूलचंदजी)
आदिके सद्गुरु.





मुनिराज श्री वृद्धिचंदजी
मूल नाम–कृपाराम, ज्ञाति–ओसवाल
जन्म–स० १८९०
दीक्षा, स० १९०८
बालब्रह्मचारी
श्रीमन् बूटरायजीके शिष्य
स्वर्गवास स० १९४९



मुनिराज श्री खांतिविजयजी
(तपस्वीजी)
मूल नाम–खरायतिमल्ल
ढुंढक दीक्षा, स० १९११
संवेगी दीक्षा, स० १९३०
श्रीमन् बूटरायजीके शिष्य,
काठिआवाडमें विचरे हैं
स्वर्गवास, स० १९५९
(जन्म चरित्र–पृष्ठ ४०)



मुनिराज श्री नीतिविजयजी
मूल सूरतके
नाम–नगीनदास
दीक्षा, स० १९१३
बहुधा खंभातमें रहे
श्रीमन् बूटरायजीके शिष्य
स्वर्गवास, स० १९४७



मुनि श्रीमन्महोपाध्याय
श्री लक्ष्मीविजयजी
(विश्नचंदजी)
मूल–पुष्करणा ब्राह्मण
ढुंढक दीक्षा, स० १९१४
श्री आत्मारामजी के ये
बडे और विद्वान शिष्य थे
स्वर्गवास, स० १९४०
(ज च पृष्ठ ४४, ६०)



मुनि महाराज
श्री १००८
श्री बुद्धिविजयजी
(बूंटेरायजी)
जन्म–स० १८६३
ढुंढक दीक्षा,
स० १८८८
स्वयमेव संवेगी दीक्षा,
स० १९०३
बाल ब्रह्मचारी
तपगच्छ दीक्षा
स० १९११
स्वर्गवास स० १९३८



वास्ते वहुत प्रार्थना करी. परंतु देश पंजाबमें, जो सत्यधर्मका बीज लगायाथा, तिनको प्रफु-ल्लित करनेका इरादा करके, संघसें जूदे होकर, " मोरवी, ध्रांगध्रा, झींझुवाडा, " होकर "शखेश्वर" गाममें, श्री " शंखेश्वर पार्श्वनाथ " की मूर्ति, जो शंखपति, " कृष्णवासुदेव " को " धरणेंद्र " की आराधनासें मिलीथी, और जिसके स्नात्रजलके छिटकनेसें, " जरासिंध " नामा प्रतिवासुदेवकी जरा विद्या, कृष्ण वासुदेवके लश्करसें दूर हुई थी ऐसे प्रभाववाली श्री पार्श्वनाथ-की मूर्तिके दर्शन करनेसें सव साधु, वहोतही आनंदित हुए. यहांसें विहार करके श्री " आनंद-विजय जी, " " पाटण " शहरमें पधारे. तहा प्राचीन जैन पुस्तकोंके भंडार देखे, तिनमेसें कि-तनेक ग्रंथोंकी नकलें भी करवाई. पाटणसें विहार करके "तारंगाजी " तीर्थपर, " राजाकुमारपा-ल" के उद्धार किये वडे भारी मंदिरमें विराजमान, श्री " अजितनाथ स्वामी " की यात्रा करी और विहार करके " पालणपुर, आबु, शिरोही, पंचतीर्थी, " वगैरहकी यात्रा करते हुए शहर " पाली " में आये. तहा शहर " जोधपुर " के श्रावकोंका पत्र, श्रीआत्मारामजीको मिला. जिसमें लिखाथा कि, " यहा (जोधपुरमें) इसवखत (२५) ढुंढक साधु, आपके साथ चरचा करनेके वास्ते एकत्र हुए हैं. जिसमें दिवान् " विजयसिंह " मेहता, पंडित मंडल सहित, मध्यस्थ नियमित किये गये है. इसवास्ते आप कृपा करके जलदी शहर जोधपुरमें पधारके, हम सेवकोंकी अभिलाषा पूर्ण करें" इसवास्ते श्री आनंदविजयजीने, थोडेही दिन पालीमें रहकर, शहर जोध-पुरके तरफ विहार किया; और क्रम करके शहर जोधपुरमें पहुचे. इनके वहां पहुंचनेसेंही अग-ले रोज (३४) ढुंढक साधु तो, सभा होनेके एकदिन पहिलेंही, विना चरचा किये, चूपचाप इस तराह चले गये, जैसें सूर्योदयसें अंधेरा दूर होजाता है परंतु " हर्षचंद " नामा एक ढुंढक साधु, रहगयाथा सो श्रीआनंदविजयजीसें वातचित करके, शुद्ध श्रद्धानमें आगया. श्रीविश्व-चंदजी गुरु नाम धराया, और " हर्षविजयजी " निज नाम पाया. इस वखत ढुंढकोंके अनिष्टा-चरणसें राज्यके भयसें कितनेही ओसवाल, जैनमतको छोडके वैष्णवादि मतका आश्रय लेने लग गयेथे. इसवास्ते इन लोकोंपर कृपादृष्टि करके, श्री आनंदविजयजी महाराजने संवत् १९३४ का चौमासा, शहर जोधपुरमेंही किया जिससें प्रथम पचास घर अनुमान ठीक ठीक श्रद्धानवाले रहेथे, सो वधके अनुमान पांचसौ होगये क्यों न होवे? सूर्यके उदय होनेसें अंधकार दूर होताही है. यदि ऐसे महात्माके आनेसें भी हृदयगत अज्ञानांधकार दूर न होता तो, कव होता? चौमासे वाद जोधपुरसें विहार करके, दुकालके सववसें रस्तेमें भूख प्यासको सहन करते हुए, श्रीआ-नंदविजयजी, " जयपूर, दिल्ली " होकर देश पंजाबमें शहर अंवालामें आये. इसवखत सूर्योदय-सें घूक जानवरको जैसें चिंता होती है, तैसें पंजाबी ढुंढकोंको हुई. परंतु सूर्यविकाशी कमलकी तराह अन्य श्रावकोंके मुखारविंद खिड गये.

अंवालासें विहार करके शहर लुधीआनामें आये; वहा " श्री उत्तमऋषि " लौंकामतके यति, (पूज) अंबालावालेने सव डेरा छोडके, श्रीआनंदविजयजीके पास पांच महाव्रत अंगी-कार किये, और गुरुजीका दिया, श्री " उद्योतविजयजी" नाम धारण किया

कितनेक दिनों वाद शहर लुधीआनामेंही, जील्ला फिरोजपुर गाम मुदकीका रहनेवाला दुनीचद ओसवाल, हुशीआरपुरका रहनेवाला, उत्तमचंद ओसवाल, शहेर पाली देश मार वाडका रहनेवाला हर्षचंद ओसवाल, जेजोका रहनेवाला मोतीचंद ओसवाल, इन चार जैनों-

की बडी धूम धामसें दीक्षा हुई, जिसमें अनुक्रम करके श्रीआनंद विजयजी महाराजजीने उन्होंके यह नाम रखे(१) "विनय विजयजी (२) कल्याण विजयजी (३) सुमति विजयजी(४) मोती विजयजी " बाद चौमासेके दिन नजदीक आजानेसें संवत् १९२५ का चोमासा, श्रीआनंद विजयजीने शहर लुधीआनामें किया इस साल्में देश पंजाबमें कितनेही शहरोंमें बिमारीका बहुत जोर था जीसमें भी लुधीआनामें अधिकतर बिमारीका जोरथा जिस बिमारीमें मगसर महिनेमें श्रीआनंद विजयजी महाराजजीके शिष्य " रत्नविजयजी " (हाकमरायजी) स्वर्गवास हुये और श्रीआनंद विजयजीको भी, कितनेक दिनोंतक ताप आया जिस तापका ऐसा जोर बध गया कि, श्रीआनंद विजयजी बेहोश होगये यह हाल देखकर सकल श्रीसंघको अतीव खेद पैदा हुआ अब इस वखत क्या करना चाहिये ? ऐसे विचारमेंही सकल श्री संघ दिग्मूढ होगया, परंतु मालेर कोटला निवासी लाला " कवरसेन " जो कि जैनमतके रहस्य उत्सर्ग अपवादादि षड्भंगीका अच्छा ज्ञान धारण करताथा, तिसने आके लाला "गोपीमल्ल," और "प्रभदयाल नाजर " वगैरहको समझाया कि, " विचार करने करनेमेंही तुम काम बिगाड देवोगे ! यह समय विचारनेका नहीं है, जल्दी श्रीमहाराजजी साहिबको, शहर अंबालामें लेचलो क्यों कि, वहांकी आब हवा इस वखत बहोत अच्छी है " यह सुनकर कितनेकके मनमें तो यह बात रुचि नहीं, परंतु कवरसेन बडा लायक होनेसें उसका कथन, कोई भी अन्यथा नहीं कर सकता था वहांसें शहेर अंबालामें लेगये वहांगये बाद दो दिन पीछे, जब श्रीआनंद विजयजीको तपका जोर कुच्छ नरम हुआ, और कुच्छ होश आया, तब देखते हैं तो, अपने आपको शहर अंबालाके उपाश्रयमें देखें आश्चर्य प्राप्त होकर कहने लगे कि, " यह क्या हुआ ? मुजे कोई स्वप्न आया है? अथवा यह कोई इंद्रजाल हो रहा है? या मुझे कोई मतिभ्रम होगया है ? क्योंकि, मैं तो लुधीआनेमें था, और इस वखत मुझे अन्यही अन्य भान हो रहा है " ऐसे अनेक प्रकारके संशयां दोलारूढ हुये विचार कर रहेथे, इतनेमें लाला कवरसेन वगैरह श्रावक समुदाय, हाथ जोडकर कहने लगे कि, " महाराजजी साहिब ! आप शोच मत करें. आपको लुधीआनासें हम यहां (अंबालामें) ले आये है " इत्यादि सब वृत्तांत सुनाया अनुमान दो महिने बाद जब श्रीआनंद विजयजीको आराम होगया, तब पूर्वोक्त सब हाल लिखकर शहर अहमदाबादमें गणिजी ' मुक्ति विजयजी " (मूलचंदजी) महाराजजीके पास भेजा उन्होंने श्री जैनशास्त्रानुसार, जो कुच्छ प्रायश्चित्त देना ठीक समझा, दिया जिसको श्रीआनंदविजयजी महाराजजीने भी, बडी खुशीसें स्वीकार किया इस वखत शहर अंबालामें "श्रीहीरविजयजी," " श्रीकांतिविजयजी," " श्रीहंसविजयजी' की दीक्षा हुई बाद अंबालासें विहार करके लुधीआना, जालंधर होते हुये गुरुके " झंडीआले ' आये और संवत् १९२६ का चोमासा, श्रीआनदविजयजीने झंडीआला में किया ' नारोवाल, ' सनखतरा " चोमासे बाद विहार करके " जीरा, " " पट्टी, " ' अमृतसर, ' होते हुये शहर "गुजरांवाला में पधारे. और संवत् १९२७ का चोमासा, वहां ही किया चोमासे पहिले इस जगा, श्रीमाणिक्य " विजयजी, ' और " श्रीमोहनविजयजी" की दीक्षा हुई और चोमासेमें श्रीआनंदविजयजी महाराजजीनें, बहुत लोकोंके कहनेसें, संस्कृत, प्राकृत नही जाननेवालोंको बोध होनेके लिये, ' जैनतत्त्वादर्श (जैनधर्मके तत्त्वोंका शीशा दर्पण)इस नामका ग्रंथ, बनाना शुरु किया चोमासे बाद विहार करके "पींडदादनखां' में गये,

और " मोतीचंद " ओसवाल शहर अमृतसरके रहनेवालेको दीक्षा देकर " श्रीसुंदर-विजयजी " नाम रखा. यहासें विहार करके श्रीआनंदविजयजी, अपने परिवारसहित गाम " कलश " (महाराजजीकी जन्मभूमि) में पधारे. जिनको देखके श्रीआत्मारामजीके सांसारिक परिवारके " मंगलसेन " " प्रभदयाल " वगैरह पितृव्य भाई, वडे आनंदको प्राप्त हुये. उनकी वहुत प्रार्थनासें एक रात वहां रहे. वहांसें विहार करके " रामनगर, " " पपना-खा, " " किला दिदारसिंघ, " " गुजरांवाला, " " लाहोर " " अमृतसर, " "जालंधर," होकर शहेर हुशीआरपुरमें पधारे; और संवत् १९३८ का चौमासा, वहांही किया. इस चौमा-सेमें " जैनतत्वादर्श " ग्रंथ समाप्त किया. चौमासे वाद विहार करके "जालंधर, "नीकोदर, " " जीरा, " कोटला" होके " लुधीआना " शहेरमें पधारे. और " श्रीजयविजयजी, " "श्री-अमृतविजयजी, " " श्री अमरविजयजी, " तीन शिष्य नये किये. वाद लुधीआनासें विहार करके श्री आनंदविजयजी महाराजजी, शहेर अंवालामें पधारे. और संवत् १९३९ का चौमासा वहांही किया. इस चौमासामें जैनतत्त्वादर्श नामा ग्रंथ, जो प्रथम वनाया था, सो छपवानेके वास्ते, रायवहादुर धनपतिसिंघ, जो शहेर अंवालामे श्री महाराजजी साहिवके दर्शन करनेको आयेथे, उनको दिया जो छपवाके प्रसिद्ध किया गया है, और " अज्ञानतिमिरभास्कर " नामा दूसरा ग्रंथ, वनाना प्रारंभ किया. परन्तु कितनेक वेदादि पुस्तक,जिनकी वहुत जरूरत थी और जे उस वखत पासमें नहीं थे,इस वास्ते थोडासा लिखके,वंध कियाथा. इस चौमासेमें, पंजाव-के श्रावकसमुदायकी प्रार्थनासें, श्रीआनंदविजयजी महाराजजीने "सत्तरभेदीपूजा " वनाई. इतने वर्षोंमें श्रीआनंद विजयजी महाराजजीके परिवारमें " हर्षविजयजी " "उद्योतविजयजी " वगैरह (१९) शिष्य नये हुये, जिनमें जिस जिसकी दीक्षा, श्री महाराजजी साहिवके हाथसें हुई, तिस तिसके नाम, यहां लिखेहैं, और भी नाम, वंश वृक्षसें मालुम होगा. यह पांच चौमासेमें देश पंजावमें श्री आनंदविजयजी महाराजजीने, श्री जैनधर्मका वडा भारी उद्योत किया; और कितनेक लोकोंके दिलमें, ढुंढकोंका अनिष्टाचरण देखनेसें, जैनधर्मके ऊपर द्वेष हो रहाथा दूर किया. क्योंकि, लोकोंको मालुम होगया कि, जो मुखवंधे है, वे मलीन हैं. और यह पीतांवर धारण करनेवाले, उज्ज्वल धर्म प्ररूपक हे, अव इस वखत भी, किसी क्षत्रीय व्राह्मणके साथ वातचीत होने लगती है तो, उसी वखत वे कहने लग जाते हैं कि, " पंजाव देशके ओसवाल (भावडे) तथा खंडेरवालको तो, श्री आनंदविज-यजी (आत्मारामजी) महाराजजीने सुधार दिये. " क्यौंकि, प्रथम तो येह भावडे लोक, मुहवंधे गंदे गुरुओंकी सोवतसें, वडेही मलीन होगये थे; और इसी वास्ते पंजाव देशमें प्रायः सव जगा, येह लंकाके चुडेके नामसें प्रसिद्ध थे. अव भी जो शेष ढुंढक रह गये हैं, उनको लोक वुरे समझते हैं, और उनसें परेहज भी रखते हैं. धर्मको लगा हुआ यह कलंक, दूर किया; येह कोई श्रीआनंद विजयजी महाराजजीने थोडा पुण्य पैदा नहीं किया ! सव जगा जहां जहां जावे, वहा वहां अनेक प्रकारके मत मतातरोंवालेके साथ चर्चावार्ता होनेसें लोकोंमें जैनधर्मकी " फिलॉसोफी " (तत्वज्ञान) मालुम होगई; इत्यादि वहुत उपकार कर रहेथे. परंतु नूतन शि-ष्योंको जैनशास्त्रानुसार, " छेदोपस्थापनी " नामा चारित्रका संस्कार कराना था. सो उसवखत गणिजी महाराज श्री, " मुक्तिविजयजी " (मूलचंदजी) सिवाय, औरको " श्री वुद्धिविजयजी

(बूटेरायजी) महाराजजीके परिवारमें अधिकार नहीं होनेसें देश गुजरात, शहेर अहमदावादके तरफ विहार करनेका इरादा करके, शहर अंबालासें विहार करके दिल्लीमें पधारे वहां विनको ढुंढकोंका छपवाया ' सम्यक्त्वसार ' नामा पुस्तक, भावनगरकी " श्री जैनधर्म प्रसारक सभा " तरफसें मिला तिसका उत्तर, सभाकी प्रेरणासें श्रीआनंदविजयजीनें लिखना सुरु किया शहर दिल्लीसें " हस्तिनापुर" की यात्रा करके " जयपुर " " अजमेर " " नागौर " आदि शहरोंमें विचरते हुये, " बीकानेर " पधारे और संवत् १९४० का चौमासा, वहां किया और चौमासेमें " वीशस्थानकपूजा " बनाई इस चौमासेमें श्रीआनंदविजयजीके बडे शिष्य, " श्रीलक्ष्मीविजयजी (विश्नचंदजी) " बहुत बिमार होगये बीकानेरसें शनैः शनैः विहार करके श्री आनंदविजयजी, श्रीलक्ष्मीविजयजी आदि शिष्यों सहित, शहर पालीमें पधारे यहां श्रीलक्ष्मीविजयजी स्वर्गवास हुये ! अफसोस ! ! महाराजजीकी बडी बांह टूट गई ! ऐसे लायक विनयवान् पंडित शिष्यके स्वर्गवास होनेसें सब श्री संघको बडा खेद हुआ परंतु श्रीआनंदविजयजीको देखके हौंसला किया कि, फिकर नहीं एक न एक दिन तो मरनाही था अस्तु ! अब परमेश्वरसें यही प्रार्थना है कि हमारे शिरपर, श्रीआनंदविजयजी महाराजजी के छत्र छाया, चिरकाल बनी रहे !

श्रीआनंदविजयजी पाली शहरसें विहार करके पचतीर्थी, आबुजी आदिकी यात्रा करते हुए शहर अहमदाबाद पधारे और बडोदाके राज्यमें गाम डभोईके रहनेवाले मोतीचंदको दीक्षा देके " श्री हेमविजयजी " नाम रखा तथा ' उद्योतविजयजी ' आदिको, श्री गणिजी महाराजजीके पास बडी दीक्षा दिलवाई और संवत् १९४१ का चौमासा, वहांही किया चौमासेमें " आवश्यकसूत्र ' बाईस हजार, जो प्रथम संवत् १९३२ के चौमासेमें वांचना प्रारंभ किया था, अधूरा रहनेसें, अब भी व्याख्यान उसहीका करते रहें, और भावनाधिकारमें " श्रीधर्मरत्न प्रकरण ' सटीक वांचते रहे जिसको सुननेके वास्ते अनुमान (७०००) श्रावक श्राविका आतेथे इस चौमासेमें श्री जैनधर्मका बडाही उद्योत हुआ, सैंकडोंही अट्ठाई महोत्सव हुवे, पूजा प्रभावना भी बहुत हुई, अनेक प्रकारकी तपस्या भी हुई, स्वधर्मीवात्सल्य भी बहुत हुये एक दिन श्रीसंघने सलाह करके, श्रीमहाराजश्री साहिब श्रीआनंदविजयजीसें प्रार्थना करीकि, " आपने देशपंजाबमें जो नये श्रावक बनाये हैं, तिनको हम मदद देनी चाहाते हैं, ' तब श्री महाराजजीने कहा कि, ' तुमारी मरजी हमारा धर्मही है के, अपने स्वधर्मियोंको मदद देनी " बाद श्रीसंघने बहुत जिन प्रतिमा धातुकी, और पाषाणकी, देशपंजाबके शहर " अंबाला, " " लुधीआना, ' " कोटला, " " जिरा, ' " जालंधर, " " नीकोदर, " " हुशीआरपुर, ' " गुरुका जंडियाला, ' " पट्टी, ' ' अमृतसर, ' " नारोवाल, " " सनखतरा, " " गुजरांवाला, ' वगैरह बहुत शहरोंमें श्रावकोंके पूजने वास्ते भेजी. तथा इस चौमासेमें, श्रीआनंदविजयजीने, सम्यक्त्वसार पुस्तकका उत्तर लिखके पूर्ण किया जो " सम्यक्त्वशल्योद्धार" के नामसे भावनगरकी सभाके तरफसें छप गया है जिसमें भावनगरकी सभाने भी, अपने तरफसें कितनाक हिस्सा बढाया है इस ग्रंथके वांचनेसें ढुंढकमत, और सनातन जैन धर्ममें, कितना फरक है मालूम होजाताहै परंतु कितनेक शब्द सभाके तरफसें कठिन पढनेसें बहुत ढुंढक लोक वांचते नहीं है. तथा गुजरात देशकी बोलीमें होनेसें, कितनेकको ठीक ठीक



आचार्य श्री १००८ श्रीमद् कमल विजयसूरि

श्रीमद्विजयानंद सूरीश्वर (आत्मारामजी) के पाटधारी

मूल–पंजाबी–ब्राह्मण –सिरसामे यति किशोरचंदजीके पास रहतेथे

दुढक दीक्षा, सं० १९३० में श्री विभचंदजीके पास ली   नाम—रामलालजी

संवेगी दीक्षा–अहमदावादमें—सं० १९३२.

और श्रीमन् आत्मारामजीके बडे शिष्य श्री लक्ष्मीविजयजी (विश्वचंदजी)के शिष्य हुए

पाटण–गुजरातमें पट्टपर विराजे - सं०१९५७

वचनामृतकी वृष्टी जगह २ कर रहे हे

समझ भी नहीं आती है; इस वास्ते कितनेक लोगोंका इरादा है कि, इसको जिस ढवपर श्रीआनंदविजयजी महाराजजीने अपनी कलमसे प्रथम लिखा है, उसही ढवपर हिंदीभाषामें छपवाना चाहिये. जिससे, बहुत फायदा होनेका संभव है; सो प्रायः थोडेही कालमें यकीन है, छप जायगा. चौमासे बाद श्रीआनंदविजयजी वगैरह साधु अहमदाबादसे विहार करके, श्री शत्रुंजय तीर्थकी यात्रा करनेको पधारे. एक महीना "पालीताणा" शहेरमें रहे, और निरंतर यात्रा करके अपना मनुष्यदेह, पावन करते रहे. इस श्री शत्रुंजय तीर्थ ऊपरसे "शेठ प्रेमाभाई," "शेठ नरशी केशवजी," "शेठ वीरचंद दीपचंद" वगैरह देश गुजरातके संघकी मददसे बडे अद्भुत सुन्दर, और देखनेसें चित्त शांत होवे, ऐसे (३५) जिनबिंब देश पंजाबमें भेजे गये. इन जिन प्रतिमाके आनेसे देश पंजाबमें जैनधर्मका बडा उद्योत हुआ, और इन प्रतिमाके रखनेके वास्ते पंजाबके श्रावकोंको अपने २ शहेरमें जैनमदिर बनवानेका ख्याल आया, और जिन मंदिर बनने शुरु हुये. पालीताणासे विहार करके "शिहोर, वरतेज, भावनगर" होकर "गोधा बंदर" में श्रीआन्दविजयजी पधारे. तहा "श्री नवखंडा पार्श्वनाथ" की यात्रा करके "वला, बोटाद" होकर "लिंबडी" शहेर पधारे, जहां पांचसो घर श्रावकोंके, और तीन जिन मंदिर है, श्री महाराजजीके पधारनेकी खुशीमें श्रावकोंने समवशरणकी रचना वगैरह महोच्छव किये. यहाके राजा साहिबने भी, श्रीआनंदविजयजी (आतमारामजी) महाराजजीके दर्शन पाये, और बातचीत करके बडेही आनंदको प्राप्त हुये. एक महीनेबाद लींबडीसे विहार करके वढवाण धंधूका, धोलेरा होकर शहेर खंभात बंदर पधारे, जहां अनुमान एक हजार घर श्रावकोंके और दोसौ जिन मंदिर है. यहां बहुत पुराने ताडपत्रोंपर लिखे पुस्तक भंडार देखे. कईएक शास्त्रोंका उतारा भी, करवा लिया. तथा पुस्तकादिककी मदद ठीक ठीक मिलनेसे "अज्ञान तिमिर भास्कर" नामा ग्रंथ जो शहेर अंबालामें बनाना सुरु किया था, यहां समाप्त किया, जो भावनगरकी "जैन ज्ञान हितेच्छु" सभाके तरफसे छपवाकर प्रसिद्ध किया गयाहे. जिसके पहिले हिस्सेमें, वेदादि शास्त्रोंमें यज्ञादि धर्मका जैसा विचार है,तैसा सप्रमाण दिखलाया हे, और दूसरे हिस्सेमें,जैनमतका संक्षेपसें वर्णन कियाहै. और इस जगा "श्रीस्तंभन पार्श्वनाथजी" की, जो कि बडी प्राचीन प्रतिमा है, यात्रा करके बहुत खुश हुए. खभातसे विहार करके "जबूसर" होकर "भरुच बंदर" पधारे; यहां अनुमान अढाईसें घर श्रावकोंके, और छ मंदिर बडे खुबसुरत है, और वीसमे तीर्थंकर "श्रीमुनिसुव्रत स्वामी" की, बहुत प्राचीन मूर्त्तिके दर्शन करके अत्यानंद प्राप्त हुये. भरुचसें विहार करके श्रीआनंदविजयजी, "सुरत बंदर" पधारे. श्रावक लोकोंने बडे महोत्सवसे शहरमें प्रवेश कराया. ऐसा प्रवेश महोत्सव हुवा कि, उसको देखके सुरतके वासी बडे बडे बुजर्ग जैन और अन्यमति भी, कहने लगे कि, "ऐसा आदर पूर्वक प्रवेश महोतसव आजतक हमने किसीका भी नहीं देखाहै." श्रावकोंकी अतीव प्रार्थना होनेसे, संवत् १९४२ का चौमासा, सुरत शहेरमें किया. चौमासेमें श्रावकोंकी अभिलाषापूर्वक, "श्रीआचारांग सूत्र" सटीक, और "धर्मरत्न प्रकरण" सटीक, पर्षदामें सुनाते रहे. हजारों श्रावक श्राविका तिस वचनामृतको पीकर, मिथ्यात्व विषको दूर करते रहे; और अनेक प्रकारके उद्यापन, समवसरण रचना, अट्ठाई महोच्छव वगैरह महोत्सव करके, श्रीजैनधर्मका उद्योत किया.इस चौमासामें श्रीआनंदविजयजीके धर्मोपदेशसे श्रावक लो-

कोंको ऐसा रंग चढा था के,जिससे अनुमान(७५०००)रुपैये धर्ममें खरच किये यहां रहकर श्रीआनंदविजयजीने "जैनमत वृक्ष' बनाया तथा इस वखत सुरत शहरमें "हुकममुनि" नामा एक "जैनाभास' साधु रहते थे, तिसने "अध्यात्मसार नामा एक ग्रंथ बनाकर प्रसिद्ध किया था परंतु वह ग्रंथ जैनागमकी शैलिसे तद्दन विरुद्ध होनेसे, बहुत श्रावकोंके मनमें विपरीत श्रद्धान प्रवेश कर गया था इसवास्ते श्रीआनंदविजयजी(आत्मारामजी) ने, अध्यात्मसारमेंसे (१४) प्रश्न निकाले; और हुकम मुनिको श्रावक मारफत खबर दिलवाई कि, "तुमारा बनाया अध्यात्मसार ग्रंथ जो जैनमत से विरुद्ध है उसमेंसे निकाले यह(१४)प्रश्नका उत्तर देवो" तिसके उत्तरमें हुकममुनिके तरफसे संतोषकारक जवाब नहीं मिलनेसे,सुरतके श्रीसंघने वे(१४) प्रश्न और श्रीआनंदविजयजीके और हुकममुनिके दिये उत्तर "धी जैन एसोसिएशन आफ् इन्डीया" (भारतवर्षीय जैनसमाज) ऊपर भेजेगये वे सर्व प्रश्न, वहांसे हिंदुस्थानके जैनमतके ज्ञाता साक्षर पंडित जैन साधु यतियोंके पास निर्णय करनेके वास्ते जगेर भेजे गये, तिन सर्वने पक्षपात रहित होकर,जैन शैलीके अनुसार अपना मंतव्य जाहिर किया कि,"हुकम मुनिके बनाये ग्रंथ अध्यात्मसारमेंसे जो (१४) प्रश्न श्री आनंदविजयजी (आत्मारामजी) ने निकाले हैं, वे धर्मसे विरुद्ध, और संशयसें भरे हुए हैं, तथा श्रीआनंदविजयजीके दिये उत्तर जैन शास्त्रानुसार है, और हुकममुनिके दिये उत्तर जैन शास्त्रसे विरुद्ध हैं देशावरोंसे जैन पंडितोंके पूर्वोक्त अभिप्रायोंको,जैन एसोसिएशन आफ इंडीयाने, अपनी सुरत ब्रेंच सभामें, सर्व श्रीसंघको एकत्र करके, संवत् १९४२ का मगसर सुदि १४ के दिन, बांचकर सुना दिये, और सभामें आये हुये हुकममुनिके सेवकोंको खबर दी कि, "सर्व जैन पंडितोंके अभिप्राय मुजिब, हुकममुनिका बनाया अध्यात्मसार ग्रंथ, अप्रमाणीक सिद्ध हुआ है, जिससें हम भी तिस ग्रंथको, जैन शैलीसे विरुद्ध मानके, हुकममुनिको खबर देते हैं के उनको अपने ग्रंथमेंसें असत्य लिखानका सुधारा करना चाहिये, अथवा तिस लिखानको निकाल देना चाहिये जबतक इन दोनों बातोंमेंसे एक भी बात वे करेंगे नहीं, तबतक हम तिस पूर्वोक्त ग्रंथको प्रमाणिक नहीं मानेंगे एसा निर्णय करके सभा विसर्जन हुई थी चौमासेबाद भी कितनाक समय तक पूर्वोक्त कारणसे श्रीआनंदविजयजीका रहना सुरत शहरमेंही हुआ इस समयमें एक ढुंढक साधु जिसका नाम "रायचंद था, और जिसने संवत् १९३९ में पोरबंदर शहेरमें फागण वदि १३ को देवजीरिख नामा ढुंढक साधुके पास दीक्षा ली थी, परंतु सम्यक्त्व शल्योद्धार ग्रंथके देखनेसें ढुंढकमतसें अनास्था होनेसें संवत् १९४२ आश्विन वदि १२ के दिन ढुंढकमतको छोडके श्रीआनंदविजयजी (आत्मारामजी) के पास आकर, संवत् १९४२ मगसर वदि ५ के दिन, शुद्ध सनातन जैनधर्मका अंगीकार किया और दीक्षा लेकर जैनमतका साधु हुआ, जिसका नाम श्रीआनंदविजयजीने "श्रीराजविजयजी' रखा

सुरत शहरसें विहार करके श्रीआनंदविजयजी "भरुच" "मियागाम" "डभोई" होकर शहर "बडोदा" में पधारे और "कस्तुरचंद" मारवाडी सुरत निवासीको दीक्षा देकर "कुंवरविजय' नाम रखा शहर बडोदामें ' श्रीशत्रुंजय तीर्थ संबंधी बहुत मुदतकी तकरारका फैसला होनेकी खुश खबर मिलनेसें, और दिनतक श्रावकोंकी प्रार्थनासें, इस पवित्र तीर्थकी छायामें (पालिताणामें) चौमासा करनेकी श्रीआनंदविजयजीकी इच्छा हुई इसवास्ते

बडौदेसें विहार किया. और "छाणी" "उमेटा" "बोरसद" "पेटलाद" वगैरह शहेरो विचरते हुये, "मातर" गाममें आये. यहां पांचवें तीर्थंकर "श्रीसुमतिनाथ" जो "साचे देव" के नामसें गुजरात देशमें प्रसिद्ध है, तिनके अपूर्व दर्शन पाये. और इन देवके समक्षही, "पाटन" शहेरके रहनेवाले, "लेहराभाई" जिसकी उमर अनुमान अठारह वर्षकी थी तिसको दीक्षा देकर "श्रीसंपत्‌विजयजी" नाम दिया. बाद विहार करके "खेडा" "अहमदाबाद" "कोठ" "लींबडी" "बोटाद" "वला" वगैरह शहेरोंमें विचरते हुये, "पालीताणा" में पधारे. यहा श्रीतीर्थाधिराजकी यात्रा करके, सुरत निवासी "माणेकचंद" ओसवालके लडकेको दीक्षा देकर "श्रीमाणिक्यविजयजी" नाम रखा. और संवत् १९४२ का चौमासा, चौवीस साधुओंके साथ, श्रीआनंदविजयजीने पालीताणामें किया. इन महात्माका चौमासा सुनकर सुरत निवासी शेठ "कल्याणभाई शंकरदास" वगैरह, भरुच निवासी शेठ "अनूपचद मलुकचंद" वगैरह, बडोदा निवासी झवेरी "गोकलभाई दुल्लभदास" वगैरह, जील्ला खानदेश–मालेगांव धूलीया निवासी शेठ "सखाराम दुल्लभदास" वगैरह, खभायतके रहनेवाले शेठ "पोपटभाई अमरचंद" वगैरह, बहुत शहेरोंके अनुमान पांचसो श्रावक श्राविका, अपना सांसारिक कार्य सब छोडके, जंगम और स्थावर दोनोंही तीर्थोंकी युगपत् सेवा करनेका इरादा करके, पालिताणेमेंही आके चौमासा रहे. इस चौमासेमें श्रीआनंदविजयजीने श्रावकोंके उत्साहानुसार, "श्रीभगवतीसूत्र सटीक" तथा "उपदेशपद सटीक" व्याख्यानमें सुनाया.

चौमासेकी समाप्ति समयमें, अर्थात् कार्त्तिकी पूर्णमासी ऊपर, यात्रा करनेके वास्ते बहुत लोकोंका मेला हुआथा. जिसमें कलकत्तावाले बाबु राय बहादुर "बद्रीदासजी" भी आये हुये थे. तथा "गुजरात" "काठियावाड" "कच्छ" "मारवाड" "पंजाब" "पूर्व" वगैरह देशोंके मुख्य शहेरोंमेंसें बहुत संभावित गृहस्थ भी आये हुयेथे. अनुमान (३५०००) आदमी यात्राके वास्ते आये हुयेथे. ऐसे शुभ प्रसंगमें, महाराज श्रीआनंदविजयजी (आत्मारामजी) की अपूर्व विद्वत्ता, और बुद्धि चातुर्यतासें प्रसन्न होकर, सर्व श्रीसंघने मिलके, उनको "सूरि" पद देनेका निश्चय किया. और संवत् १९४३ मगसर वदि (गुजराती कार्त्तिक वदि) पंचमी पूर्णा तीथिको, पालीतानामें शेठ नरशी केशवजीकी धर्मशालामें, श्रीचतुर्विध संघ समुदायने मिलके, पंडित मुनि श्रीआत्मारामजी (आनंदविजयजी) को "सूरि पद" प्रदान करके, "श्रीमद्विजयानंदसूरि" नाम स्थापन करके, अपने आपको पूर्ण किया. इस दिनसें लेकर सर्व साधु, और श्रावक वगेरह, कागल पत्रमें "पूल्यपाद श्रीश्रीश्री १००८ श्रीमद्विजयानंद सूरि" यह नाम लिखने लगे, और इस पूर्वोक्त नामसेही मानने लगे. शासन नायक श्रीमन्महावीर स्वामिसे श्रीमद्विजयानंद सूरि ७२ मे पट्टपर हुये, सो इस माफक है.

शासन नायक श्रीमन्महावीर स्वामी—

(१) श्री सुधर्मा स्वामी — (२) श्री जंबू स्वामी

(३) श्री प्रभवा स्वामी — (४) श्री शय्यंभव सूरि

(५) श्री यशोभद्र सूरि — (६) { श्री संभूतविजयजी तथा / श्री भद्रबाहु स्वामी }

(७) श्री स्थूलभद्र स्वामी

(८) श्री आर्यसुहस्ति सूरि

(९) †श्री सुस्थित सूरि तथा श्री सुप्रतिबुद्ध सूरि

(१०) श्री इंद्रदिन्न सूरि

(११) श्री दिन्न सूरि

(१२) श्री सिंहगिरि सूरि

(१३) श्री वज्र स्वामी

(१४) श्री वज्रसेन सूरि

(१५) * श्री चंद्र सूरि

(१६) ⁓श्री सामंतभद्र सूरि

(१७) श्री वृद्धदेव सूरि

(१८) श्री प्रद्योतन सूरि

(१९) श्री मानदेव सूरि

(२०) श्री मानतुंग सूरि

(२१) श्री वीर सूरि

(२२) श्री जयदेव सूरि

(२३) श्री देवानंद सूरि

(२४) श्री विक्रम सूरि

(२५) श्री नरसिंह सूरि

(२६) श्री समुद्र सूरि

(२७) श्री मानदेव सूरि

(२८) श्री विबुधप्रभ सूरि

(२९) श्री जयानंद सूरि

(३०) श्री रविप्रभ सूरि

(३१) श्री यशोदेव सूरि

(३२) श्री प्रद्युम्न सूरि

(३३) श्री मानदेव सूरि

(३४) श्री विमलचंद्र सूरि

(३५) श्री उद्योतन सूरि

(३६) +श्री सर्वदेव सूरि

(३७) श्री देव सूरि

(३८) श्री सर्वदेव सूरि

(३९) श्री यशोभद्र सूरि तथा श्री नेमिचंद्र सूरि

(४०) श्री मुनिचंद्र सूरि

(४१) श्री अजितदेव सूरि

(४२) श्री विजयसिंह सूरि

(४३) श्री सोमप्रभ सूरि तथा श्री मणिरत्न सूरि

(४४) ×श्री जगच्चंद्र सूरि

(४५) श्री देवेंद्र सूरि

(४६) श्री धर्मघोष सूरि

(४७) श्री सोमप्रभ सूरि

(४८) श्री सोमतिलक सूरि

(४९) श्री देवसुंदर सूरि

(५०) श्री सोमसुंदर सूरि

(५१) श्री मुनिसुंदर सूरि

(५२) श्री रत्नशेखर सूरि

(५३) श्री लक्ष्मीसागर सूरि

(५४) श्री सुमतिसाधु सूरि

(५५) श्री हेमविमल सूरि

(५६) श्री आनंदविमल सूरि

(५७) श्री विजयदान सूरि

(५८) श्री हीरविजय सूरि

---

† इन्होंने सूरि मंत्रका कोटि जाप किया,इस वास्ते निर्ग्रंथ गच्छका “कौटिक गच्छ” नाम प्रसिद्ध हुआ.

* इन्होंसे कौटिक गच्छका नाम “ चंद्र गच्छ ” पडा

⁓ इन्होंसे वनवासी गच्छ प्रसिद्ध हुआ

+ इन्होंसे निग्रंथ गच्छका पांचवा नाम “वडगच्छ” पडा

× इन्होंसे वडगच्छका नाम तपगच्छ प्रसिद्ध हुआ

(५९) श्री विजयसेन सूरि
(६०) श्री विजयदेव सूरि
(६१) श्री विजयसिंह सूरि
(६२) श्री सत्यविजय गणि
(६३) श्री कपूरविजय गणि
(६४) श्री क्षमाविजय गणि
(६५) श्री जिनविजय गणि
(३६) श्री उत्तमविजय गणि
(६७) श्री पद्मविजय गणि
(६८) श्री रूपविजय गणि
(६९) श्री कीर्त्तिविजय गणि
(७०) श्री कस्तूरविजय गणि
(७१) श्री मणिविजय गणि
(७२) श्री बुद्धिविजय गणि (बूटेरायजी)
(७३) § श्री विजयानंद सूरि (श्री आत्मारामजी)—

पालीताणाके चौमासेमें श्रीआनंद विजयजी महाराजने श्रीतीर्थाधिराजको भाव पूजारूप पुष्प भेट करनेके वास्ते, "अष्टप्रकारी पूजा" बनाई.

चौमासे बाद कितनेक दिन यात्राके निमित्त रहकर, विहार करके " सीहोर, वला, बोटाद, लींबडी, वढवाण " होकर " लखतर " आये. इस राज्यका दिवान "फूलचंद कमलसी" श्रावक होनेसें, श्रीमद्विजयानंद सूरिका आगमन राजासाहिबको भी मालुम हुआ, और वे भी श्रीमहाराजजी साहिवके पास आकर धर्मकी चर्चा करते रहे. राजा साहिबने अपना दिल धर्मके तरफ लगा हुआ होनेसे, श्रीमहाराजजी साहिवको रहनेके वास्ते प्रार्थना करी. परंतु श्रावक समुदायके घर थोडे होनेसे, वहां ज्यादा रहना, श्रीमहाराजजी साहिवने ठीक न समझा. लखतरसे विहार करके " वीरमगाम, रामपुरा " होकर " भोयणी " गाममें आये; और श्रीमल्लीनाथ स्वामीके दर्शन पाये. बाद विहार करके " माडल, दशाडा, पंचासर, " होकर " शंखेश्वर " गाममें "श्रीशंखेश्वर पार्श्वनाथजी " की यात्रा करके, चंडावल, समनी, गोचीनार होकर शहेर " राधनपुर " जहां अनुमान पंदरांसौ घर श्रावकोंके और (२५) मंदिर हैं, पधारे. यहां बडौदे शहेरके रहनेवाले " छगनलाल " नामा लडकेको, श्रावकोंका अत्याग्रह होनेसेही संवत् १९४४ वैशाख सुदि तेरस बुधवारके दिन, दीक्षा दी; और " श्रीवल्लभ विजयजी " नाम रखा. बाद श्रीमद्विजयानंद सूरि, यहांसे विहार करके "उण, जामपुर, उंदरा, " वगैरह गामोंमें होकर शहेर "पाटण"में जहां अनुमान अढाई हजार श्रावकोंके घर, और (५००) जिन मंदिर हैं, पधारे; और " श्री पंचासरा पार्श्वनाथ " की यात्रा की. यह मूर्त्ति " वनराज चावडा " ने, श्री शीलगुण सूरिके पास प्रतिष्ठा करायके, स्थापन करीथी; इस मंदिरमें वनराज चावडेकी भी मूर्त्ति है. इस शहरमें पुराणे जैन पुस्तकोंके भंडार देखके, कई पुस्तकोंके उतारे कराय लिये. अनुमान एक महिना रहकर शहेर राधनपुरके श्रावकोंके आग्रहसे पाटण शहेरसें विहार करके,पीछे राधनपुरमें पधारे; और संवत् १९४४ अषाढ सुदि दशमी बृहस्पति वारको एक लडकेको दीक्षा दी, जिसका नाम श्री " भक्ति विजयजी " रखा—जो अब गुण विजयके नामसे कहाताहै. संवत् १९४४ का चौमासा, यहाही किया; इस चौमासेमें श्रीमद्विजयानंद सूरिने व्याख्यान नहीं किया;

§ श्री मुक्तिविजयजी गणि प्रसिद्ध नाम मूलचदजी महाराजजी भी श्री बुद्धिविजयजी गणि महाराजजीके पाट ऊपर हुए हैं अर्थात् श्री मूलचदजी और श्री आत्मारामजी दोनोंही श्री बूटेरायजी महाराजजीके पाट ऊपर हुये, तथा किसी पट्टावलिमें श्री विजयदेव सूरि और श्री विजयसिंह सूरि दोनों एकही पट्ट ऊपर गिने हैं, तो उस मुजब श्रीमद्विजयानद सूरि वहत्तर (७२) मे पट्ट ऊपर जानने.

क्योंकि, आंखमें मोतीया उतर रहाथा तथापि श्रावक लोकोंके आग्रहसे "चतुर्थ स्तुति निर्णय" नामा पुस्तक बनाया, जो छपकर प्रसिद्ध होगयाहै पूर्वोक्त कारणसें चौमासेमें व्याख्यान, "श्री हर्ष-विजयजी" महाराज करते रहे, और श्री सूयगडांग सूत्र, तथा धर्मरत्न प्रकरण सटीक सुनाते रहे

चौमासे बाद श्रीमद्विजयानंद सूरि, राधनपुरसें विहार करके शंखेश्वर पार्श्वनाथजीकी, तथा भोयणीमें श्री मल्लिनाथजीकी यात्रा करके, कडी शहेर होकर शहेर अहमदाबादमें पधारे यहां लुनागढवाले प्रसिद्ध डाक्टर "त्रिभोवनदास मोतीचंद शाह" जो श्रीमहाराजजी साहिबके परम भक्त श्रावक हैं, और जिनोंने श्री महाराज आत्मारामजीकेही उपदेशसें, ढुंढकमतको त्याग करके, सनातन जैनधर्म अंगीकार कियाहै, तिनोंने महाराज श्रीआत्मारामजीकी आंखमेंसे मोतीया निकाला बाद श्रीआत्मारामजी, अहमदाबादमें गोपाल नामा श्रावकको, दीक्षा देकर "श्रीज्ञानविजयजी" नाम स्थापन करके, तदनंतर विहार करके "महेसाणा" जहां पांचसो घर श्रावकोंके, और दस जैनमंदिर है, पधारे और संवत् १९४१ का चौमासा, वहां किया यहां भी डाक्टरकी मनाई होनेसें श्रीमहाराज आत्मारामजीने व्याख्यान नहीं किया, किंतु "श्री हर्ष विजयजी महाराज" "श्रीभगवती सूत्र" सटीक, तथा "धर्मरत्नप्रकरण" सटीक सुनाते रहे चौमासेमें महोत्सवादि बहुत धर्म कार्य समयानुसार हुवे परंतु एक कार्य बहुतही अद्भुत यह हुआ कि, दो हजार रुपैये, पुराने पुस्तकोंके उद्धारमें लगाये, और आगेके वास्ते भी श्रावकोंने ज्ञान संबंधी बंदोबस्त कर रखा

इस चौमासेमें कलकत्ताकी "रोयल एशियाटिक सोसाईटी" के ऑनररी सेक्रेटरी डाक्टर (भट्ट-पंडित) "ए एफ रुडोल्फ् होरनल" साहिबने, पत्रद्वारा शा० मगनलाल दलपतराम मारफत, महाराजजी श्रीमद्विजयानंद सूरि (आत्मारामजी) को धर्म संबंधी कितनेक प्रश्न लिख भेजे थे तिनके जवाब श्री महाराज आत्मारामजीने, शास्त्रानुसार, ऐसी चतुराइसें लिख भेजे, जिनको वांचके पूर्वोक्त साहिब, बहुत खुश हुए और महाराज श्रीका बहुत उपकार मानने लगे पूर्वोक्त अंग्रेज विद्वान साथ, प्रायः बहुत प्रश्नोत्तर हुए, जो बहुतसे भावनगरके "जैन धर्म प्रकाश" चोपान्यामें छपगये हैं तथा पूर्वोक्त साहिबने, "उपाशक दशांग" नामा जैन पुस्तक अंग्रेजी तरजुमाके साथ छपवाया है, जिसमें श्री महाराजजीका उपकार मानके, बडी भक्तिके सूचक, चार श्लोकोंमें श्रीमहाराजजीका गुणानुवाद करके, तथा अंग्रेजी लेखमें भी बहुत स्तुति लिखकर वह पुस्तक महाराजजीश्रीको अर्पण कियाहै [1] श्री महाराज आत्मारामजीने अहमदाबाद निवासी

---

[1] अर्पण पत्रिकाके वे चार श्लोक येह हैं.

उपजाती छंद—दुराग्रहध्वान्तविभेदभानो। हितोपदेशामृतसिंधुचित्त॥
संदेहसंदोहनिरासकारिन्। जिनोक्तधर्मस्य धुरंधरोसि॥ १॥

आर्या———अज्ञानतिमिरभास्करमज्ञाननिवृत्तये सहृदयानाम्॥
आर्हततत्त्वादर्शग्रंथमपरमपि भवानकृत॥ २॥

अनुष्टुप् छंद—आनंद विजय श्रीमन्नात्माराम महामुने॥
मदीयनिखिलप्रश्नव्याख्यातः शास्त्रपारग॥ ३॥
कृतज्ञताचिन्हमिदं ग्रंथसंस्करणं कृतिन्॥
यत्नसंपादितं तुभ्यं श्रद्धयोत्सृज्यते मया॥ ४॥

शेठ "गीरधरलाल हीराभाई," जो उस वखत राज्य पालनपुरके न्यायाधीश थे, तिनकी प्रेरणासे छोटी उमरके बालकोंको भी प्रायः धर्मका स्वरूप मालुम होवे, उस ढबपर, "श्रीजैन प्रश्नोत्तरावली" नामा ग्रंथ प्रारंभ किया. ऐसे आनंदसें चतुर्मास पूर्ण करके श्रीमहाराजजी साहिब विहार करके तारगाजी वगैरह तीर्थकी यात्रा करते हुये, शहेर "पालनपुर" में पधारे. और "जैन प्रश्नोत्तरावलि" ग्रंथ पूर्ण करके पूर्वोक्त महाशयको दिया जो उन्होंने छपवाकर प्रसिद्ध किया. "वर्धमान" दशाडा निवासी, "वाडीलाल" शहेर पाटन निवासी वगैरह सात जनोंको दीक्षा देकर यह नाम रखे. (१) श्रीशुभविजयजी (२) श्रीलब्धिविजयजी (३) श्रीमानविजयजी (४) श्रीजशविजयजी (५) श्रीमोतिविजयजी (६) श्रीचंद्रविजयजी (जिसका नाम इस समय "श्रीदानविजयजी" कहा जाताहै.) (७) श्रीरामविजयजी. ऐसे पाच वर्षमें गुजरात देशमें श्रीजैनधर्मका वहुत उद्योत किया. कई भव्य जीवोंको प्रव्रज्यारूप नावमें बिठाकर, संसार समुद्रसें पार लंघाये. हजारांही श्रावकोंने व्रत, नियम, प्रत्याख्यान, अंगीकार किये. तथा शब्दांभोनिधि, गंधहस्तिमहाभाष्यवृत्ति, (विशेषावश्यक) वादार्णव सम्मतितर्क, प्रमाणप्रमेयमार्तंड, खंडखाद्य वीरस्तव, गुरुतत्त्व निर्णय, नयोपदेश अमृत, तरंगिणी वृत्ति, पंचाशक सूत्रवृत्ति, अलंकार चूडामणि, काव्यप्रकाश, धर्मसंग्रहणी मूलशुद्धि, दर्शनशुद्धि, जीवानुशासन वृत्ति, नवपद प्रकरण, शास्त्रवार्त्ता समुच्चय, ज्योतिर्विदाभरण, अंगविद्या, वगैरह सैंकडों शास्त्र लिखवाके, अभ्यास किया. ऐसे ऐसे अपूर्व ग्रंथोंको लिखवायके उद्धार कराया, जो हर एक ठिकाने मिलने मुश्कल होवे.

पालनपुरसे विहार करके पंजाव देशके श्रावकोंको धर्मोपदेश द्वारा दृढ करनके वास्ते, "आबुजी, सीरोही, पंचतीर्थी" होकर शहर "पाली" में पधारे. यहां मुनि वल्लभविजयजी आदि नवीन साधुओंको योगोद्दहन करायके पुनःसंस्काररूप छेदोपस्थापनीय चारित्र प्रदान किया वाद पालीसे विहार करके श्रीमहाराजजी साहिब, शहेर "जोधपुर" में पधारे, और संवत् १९४६ का चौमासा वहां किया. श्रावकोंकी अभिलाषा पूर्वक व्याख्यानमें श्रीमान् श्री "हेमचंद्र सूरि" विरचित, श्री "योगशास्त्र" वांचते रहे. इस चौमासेमें श्रीमहाराजजी साहिबको युरोपमें छपा हुआ "ऋग्वेद" का पुस्तक, "डॉक्टर ए. एफ. रुडॉल्फ हॉरनल" साहिवके जरियेसे ब्रीटीश सरकारकी तरफसे, आबुके "एजंट टु धी गवरनर जनरल" साहिवकी मारफत भेट आया.

चौमासे बाद महाराजजी श्री जोधपुरसे विहार करके "अजमेर" पधारे, जहां समवसरणकी रचना हुई, धर्मका अच्छा उद्योत हुआ. बाद "जयपुर, अलवर" होकर शहेर दिल्लीमें पधारे. यहां इनको, अपने रत्न समान शिष्य शिष्य, "श्री हर्ष विजयजी" का वियोग हुआ, अर्थात् श्री हर्ष

भावार्थ--दुराग्रह रूपी ध्वान्त अर्थात् अंधकारको नाश करनेमें सूर्य समान और हितकारी उपदेश रूप अमृत समुद्र समान चित्तवाले, संदेहका समूहसे छुडानेवाले, जैन धर्मके धुरके धारण करनेवाले आप हो १

सज्जन पुरुषोंकी अज्ञानकी निवृत्तिके अर्थ आपने "अज्ञान तिमिर भास्कर" और "जैन तत्वादर्श" नाम ग्रंथ रचे, हैं २

महामुनि श्रीमन् आनंदविजयजी (आत्मारामजी) ने मेरे संपूर्ण प्रश्नोंकी व्याख्या की, इस लिये हे मुनि! आप शास्त्रमें पूर्ण हो ३

यत्नसे संपादित और संस्कार किया हुवा कृतज्ञताका चिन्ह रूप यह ग्रंथ श्रद्धा पूर्वक आपको अर्पण करताहू ४.

विजयजी स्वर्गवास हुए दिल्लीसे विहार करके बिनोली, बडौत वगैरह होकर शहेर अंबालामें पधारे यहां "गोविंद" और "गणेशजी," नामा दो ढुंढक साधु, दूसरे साधुओंसे छडके, संवेगमत अंगीकार करनेके वास्ते,श्रीमहाराजजी साहिबके पास आकर, प्रार्थना करने लगे तब श्री महाराजजी साहिबने कहा कि, ' हाल तुम कमसे कम छ महिने तक हमारे साथ इसही (ढुंढक) वेषमें रहो, और संवेगमतकी क्रियाका अभ्यास करो, पीछे तुमको रुचे तो अंगीकार करना, अन्यथा तुमारी मरजी " यह सुनकर कितनेक श्रावकोंकी, और साधुओंकी अरजसें श्रीमहाराजजीकी मरजी नहीं भी थी तो भी, संवेगमतकी दीक्षा देनी पडी परंतु अंतमें दोनोंही, भ्रष्ट होगये इस वखत सब श्रावक, और साधुओंको श्री महाराजजी साहिबका कहना याद आया सत्य है –"वृद्धोंका कहना,और आमलेका खाना, पीछेसें फायदा देता है " अंबालासें विहार करके शहेर लुधीयानामें पधारे, यहां कितनेही आर्यसमाजी वगैरह मतोंवाले लोक, निरंतर आते रहे, अच्छी तरह वार्तालाप होतारहा, निरुत्तर होकर जाते रहे जिसमेंसे एक ब्राह्मणका लडका " कृष्णचंद्र " नामा जो आर्य समाजकी सभामें भाषण दिया करताथा, महाराजजी साहिबके न्याय सहित उत्तर सुनकर, बहुत खुश हुआ, और यथार्थ धर्मका निर्णय करके गुरुमंत्र धारण करके, श्री महाराजजी साहिबका उपासक होगया एक महीने बाद विहार करके " मालेर कोटले" पधारे, और संवत् १९४० का चौमासा, यहां किया चौमासेमें " श्री आवश्यक सूत्र, " और " धर्मरत्न" सटीक वांचते रहे "गैंदामल्ल क्षत्रीय, जीवाभक्त, " वगैरह कितनेही भव्यजीवोंको सत्य धर्ममें लगाये चौमासे बाद विहार करके " रायका कोट, जीगरांवां, जीरा " होकर " पट्टी " पधारे इस वखत पट्टीका स्वरूप बदल गया, अर्थात् प्रथम, आठ दशही घर श्रावकके थे, परंतु श्रीमहाराजजी साहिबके पधारनेसें, यथार्थ निर्णय करके अनुमान अस्सी (८०) घर सनातन धर्मके तरफ रुपाल करनेवाले होगये श्रावकोंने चौमासा करनेकी विनती करी परंतु चौमासा दूर होनेसे जवाब दिया गया कि, "चौमासेके वखत यदि क्षेत्र फरसना होवेगी तो यहांही करेंगे भाव तो है,परतु अबतक निश्चयसें नही कह सकतहैं क्योंकि, न जाने कल क्या होवेगा?" बाद पट्टीसें विहार करके कसूर होकर शहेर अमृतसर पधारे. यहांके श्रावकोंने नवीन श्रीजिन मंदिर, बनाया था, जिसमें "श्रीअरनाथ स्वामी" की प्रतिष्ठा संवत् १९४८ का वैशाख सुदि छठ बृहस्पति वारके दिन करी इस प्रतिष्ठाकी क्रिया करानेके वास्ते, शहेर बडोदेसें झवेरी गोकलभाई दुल्लभदास और शेठ नहानाभाई हरजीवनदास गांधीको बुलाये थे निर्विघ्नपणे प्रतिष्ठा महोत्सव पूर्ण होने बाद, श्रीमहाराजजी साहिब, विहार करके जंडीयाले पधारे यहां सुरतके चौमासेमें श्री महाराजजी साहिबने जो ' जैनमतवृक्ष " बनायाथा और भीमसिंह माणेकने छपवाया था, सो बहुत अशुद्ध छपनेसे, पुनः परिश्रम करके शुद्ध तैयार करके, वांचनेवालोंको सुगमता होनेके वास्ते, पुस्तकके आकारमें तैयार किया, जो इस वखत छपगयाहै यहां पट्टीके श्रावकोंकी विनतीसे जंडियालेसें विहार करके, पट्टी पधारे और संवत् १९४८ का चौमासा पट्टीमें किया चौमासे पहिले कितनेक साधुओंकी प्रार्थनासे " चतुर्थ स्तुतिनिर्णय भाग दूसरा बनाया और चौमासामें "नवपदपूजा" बनाई श्रीउत्तराध्ययनसूत्रवृत्ति कमलसंयमी, और श्री रत्नशेखर सूरि विरचित श्राद्ध प्रतिक्रमणवृत्ति अर्थदीपिका, वांचते रहे, सुनकर लोक बहुत दृढतर होगये सत्य है– " गुरुविना ज्ञान नही

यतः ॥ विनागुरुभ्यो गुण नीरधिभ्यो, जानाति धर्मं न विचक्षणोपि ॥
आकर्ण्ण दीर्घोज्वल लोचनोपि, दीपं विना पश्यति नांधकारे ॥ १ ॥

भावार्थः—गुण समुद्र गुरुओंके विना, विचक्षण पुरुष भी, यथार्थ धर्मको नही जानता है, जैसे कानपर्यंत लंबे निर्मल नेत्रवाला भी पुरुष, अंधकारमें विना दीपकके, नहीं देखता है.

चौमासे बाद, यहां संवत् १९४८ मगसर वदि पंचमीके दिन, गुजरात देशमें शहेर अहमदाबाद-के पास वलाद नामा गामके रहेनेवाले डाह्याभाईको दीक्षा दीनी; और "श्री विवेक विजयजी" नाम स्थापन करके, उसही दिन जीरेके श्रावकोंकी नूतन जिन मंदिरकी प्रतिष्ठा करानेकी विनती मंजूर करके, पट्टीसे विहार किया, और जीरा गाममें पधारे. ‡

वडौदेसे पूर्वोक्त श्रावक आये, तथा भरुच निवासी शेठ "अनूपचंद मलूकचंद" सपरिवार, नूतन स्फाटिक रत्नके जिनबिंबकी अंजनशिलाका (मंत्रपूर्वक संस्कार) करानेके वास्ते, आये. और भी देश देशावरोंके वहुत लोक आये. संवत् १९४८ मार्गशीर्ष सुदि एकादशी (मौन एका-दशी पर्व) के दिन, विधि पूर्वक नूतन बिंबको अंजन करके, "श्री चिंतामणि पार्श्वनाथजी"-को नवीन जिन मंदिरमें गद्दी ऊपर पधराये. निर्विघ्नतासे महोत्सव पूर्ण होनेके बाद, जीरासे वि-हार करके नीकोदर, जालंधर, होकर शहेर हुशीआरपुरमें पधारे. क्योंकि, यहाके रहनेवाले परम उपकारी शेठ लाला गुज्जरमल्लजीने नवीन जिन मंदिर, बनायाथा. तिसकी प्रतिष्ठा करानेका मुहूर्त, साधना था. यहां भी पूर्वोक्त वडौदेवाले गृहस्थही आये थे संवत् १९४८ माघ सुदि पंचमी (वसत पंचमी) के दिन, निर्विघ्नतापूर्वक "श्री वासुपूज्य स्वामी"-को गद्दी ऊपर स्थापन करे बाद, आसपासके गामोंमे कितनाक समय व्यतीत करके

---

‡ जीराके श्रावकोंका आनंद यह स्तुतिसें जाहिर होताहै

(पंजाबी-हिंदी भाषामें)

चलो जी महाराज आए प्यारे, मात रूपदेवी जाए ॥ अचली ॥
भाग्य उनोंदे तेज भए जब, सूरि पदवी पाइ ॥
नगर पट्टीमें किया चौमासा, लोक सबी तर जाइ ॥ च० ॥ १ ॥
मुनी इग्यारह (११) सग उनोंदे, एकसें एक सवाए ॥
महेरबान जब होए सबोजी, जीरे नगर उठ आए ॥ च० ॥ २ ॥
सुनी बात जब सब सेवकने, मनमें खुशी मनाई ॥
लगे शहेरमें बाजे बजन, ध्वजा निशान सजाए ॥ च० ॥ ३ ॥
धूमधामसे जले लैनको, महिमा कही न जाए ॥
एक दूसरा चले अगाडी, आगेही कदम उठाए ॥ च० ॥ ४ ॥
तीन कोशपर मिले सबी जा, चरणो सीस नमाए ॥
सीस उठाके दर्शन पाए, धन्य रूपदेवी जाए ॥ च० ॥ ५ ॥
सबी सघ होकर आनदी, तरफ शहेरदी आए ॥
नगर विच परवेशही कीना, थान बैठक उतराए ॥ च० ॥ ६ ॥
चौंकी ऊपर आनही बैठे, मगलिक आख सुनाए ॥
भरी सभामें दीनानाथ और, खुशीराम गुण गाए ॥ च० ॥ ७ ॥

संवत् १९४९ का चौमासा, शहेर " हुशीआरपुर " में जा किया चौमासामें श्री मानविजयोपाध्याय विरचित " धर्म संग्रह, " तथा श्री संघतिलकसूरि विरचित "तत्त्व कौमुदी " नामा सम्यक्त्व सप्ततिका वृत्ति, वांचथे रहे चौमासे बाद जंबू शहेरके नजदीकमें रहनेवाले ब्राह्मणका पुत्र "कर्मचंद"और वडोदेके रहनेवाले श्रावक' छल्लुभाई"को दीक्षा दीनी जिनके नाम, अनुक्रमसे "कपूरविजयजी" और "लाभविजयजी"रखे बाद हुशीआरपुरसे विहार करके श्रीमद्विजायनंद सूरि (आत्मारामजी) महाराज, जालधर होकर " जेरोवाल " पधारे यहां श्री महाराजजी साहिबको मुंबाईकी "धी जैन एसोसीएशन ओफ इन्डिया" की मारफत, चीकागो (अमेरिका) का पत्र मिला जिसमें चीकागोमें होनेवाले विश्व प्रदर्शनके वखत देश परदेशके धर्मगुरुओंका जो बडा मेला (समाज–The World's Parliament of Religeons) होनेवाला था जिसमें पधारनेका आमंत्रण करनेमें आयाथा, और सबसीडियरी कमीटिके मेम्बर मुकरर किए गएथे परंतु अपनी साधुवृत्तिको खलल होवे इसवास्ते वहां नहीं जा सकनेसें, श्री महाराजजी साहिबने, चीकागोके पत्रकी नकल और चीकागोवालेकी मांगणी मुजब अपना संक्षेपसे जीवन वृत्तान्त, तथा फोटो (छबि) वगैरह, मुंबई श्रीसंघको भेजथा दिये जिससें मुंबईके श्रीसंघने एक सभा करके " मि० वीरचंद राघवजी गांधी, बी ए " (फोटो देखो) को जैन धर्मका प्रतिनिधि करके, चीकागो भेजनेका ठराव किया इस वखत महाराज श्रीका मुकाम, जेरोवालसे अंडीआले होकर शहेर " अमृतसर " में हुआ था वहां मि० वीरचंद राघवजीने आकर, श्रीमहाराजजी साहिबको प्रार्थना करी कि, " मुजको चीकागो जानेके वास्ते श्रीसंघने फरमाया है, इसवास्ते मैं श्रीसंघकी आज्ञाको मस्तकोपरि धारण करके, आपकी सहायतासे चीकागो जानेको तैयार हुआहुं, आप कृपा करके मुजको मदद तरीके थोडासा जैनधर्मसंबंधी ब्यान, लिखदेवें " इस प्रार्थनाको स्वीकार करके, श्रीमहाराजजी साहिबने, एक महिने तक परिश्रम उठाकर, एक किताब (निबंध) तैयार करदिया §

अमृतसरसें विहार करके श्रीमहाराजजी साहिब, अंडीआलामें पधारे, और संवत् १९५०

§ यह निबंध चीकागो प्रश्नोत्तर के नामसे ग्रंथके आकारमें छप रहाहै धर्मसमाजकी १७ दीनकी कारर वाई और भाषणका जो हाल पुस्तकद्वारा चीकागोमें छपाहै, जिसमें महाराजजी श्रीकी तसवीर रखी गईहै और उसके नीचे इस माफक लेख है

No man has so peculiarly identified himself with the interests of the Jain Community as Muni Atmaramji. He is one of the noble band sworn from the day of initiation to the end of life to work day and night for the high mission they have undertaken. He is the high priest of the Jain Community and is recognized as the highest living Authority on Jain religion and literature by oriental scholars.

भावार्थ–जैसी विशेषतासे मुनी आत्मारामजीने अपने आपको जैनधर्ममें संयुक्त वा लीन किया है ऐसे किसी माहात्माने नहीं किया है- संयम ग्रहण करनेके दिनसे जीवन पर्यंत जिन प्रशस्त महाशयोंने स्वीकृत श्रेष्ठ धर्मने अहोरात्र रत या सहोद्योग रहनेका निश्चय वा नियम किया है उनमेंसें यह मुनिराज है जैनधर्मके आप धर्माचार्य हैं, तथा प्राच्य वा पौरस्त्य विद्वान जैनमत और जैनशास्त्रोंके संबंधमें विद्यमान जनोंमें सबसे उत्तम प्रमाण इस महर्षिको मानते हैं.

का चौमासा, वहा किया. चौमासेमें " सूयगडांग सूत्र वृत्ति," और " वासुपूज्य स्वामी चरित " वांचते रहे. इस चौमासेमें श्रावकोंके आग्रहसें " स्नात्रपूजा " बनाई. चौमासे बाद भी यहां जानुओंके (घूंटणोंके) दरदसे, कितनाक समय रहना पडा. तिस समयमें नूतन दीक्षित साधुओंको बृहद् योगोद्वहन कराया, और पट्टीमें जाके छेदोपस्थापनीय चारित्रका संस्कार दिया. बाद पट्टीसें विहार करके जीरामें पधारे और संवत् १९५१ का चौमासा, वहां किया. इसी चौमासेमें, " तत्त्वनिर्णय प्रासाद " नामा ग्रंथ पूर्ण किया, जो ग्रंथ, इस समय अस्मदादिकोंके दृष्टिगोचर हो रहाहै; और जिस ग्रथको हाथमें लेकर, ग्रथकर्त्ताके जीवन चरितामृतका पान कर रहे हैं.

इस ग्रंथकी समाप्ति अनंतर श्रीमहाराजजी साहिबने, " महाभारत " का आद्योपात स्वाध्याय करा. "ऋग्वेदादि चारों वेदों" का, तथा "ब्राह्मण भाग" जितने छपेहुए मिले तिन सबका स्वाध्याय तो, श्रीमहाराजजीने प्रथमसेंही कराथा. स्वमत (जैनमत) विना अन्य मत मतांतरोंका भी, श्रीमहाराजजी साहिबको पूर्ण ज्ञान था. जो इनके बनाये " जैनतत्त्वादर्श, " " अज्ञान तिमिर भास्कर, " और " तत्त्वनिर्णय प्रासाद " वगैरह ग्रंथोंके देखनेसें, साफ साफ मालूम होताहै. महाभारतका स्वाध्याय किये बाद, पुराणोंका स्वाध्याय भी अनुक्रमसें करा.

जीरेके चौमासेसें पहिले जीरेमें ऐसा अद्भुत बनाव बना कि, जिससें पंजाब देशके श्रावकोंको अतीव आनंदामृतका स्नान हुआ. क्योंकि, इस पंजाब देशमें आजतक कोई भी यथार्थ सनातन जैनधर्मकी वृत्तिवाली " साध्वी " न थी. सो देश मारवाड शहेर " बीकानेर " से, साध्वी श्री " चंदनश्रीजी, " और " छगनश्रीजी, " विहार करके रस्तेमें अनेक प्रकारके कष्ट सहन करके जीरामें पधारीं और श्रीमद्विजयानंदसूरीश्वरजीके दर्शनामृतके स्नानसे, मार्गका सर्व परिश्रम भूलायके, पंजाबके श्राविका संघको अतीव सहायक हुईं. इनके साथ एक बाई बीकानेरसे दीक्षा लेनेकेवास्ते आई हुई थी, तिसको दीक्षा दीनी, और " उद्योतश्रीजी " नाम रखा. चौमासेबाद जीरासे विहार करके श्रीमहाराजजी साहिब, पट्टीमें पधारे और संवत् १९५१ माघ सुदि त्रयोदशीके दिन, गुजरात देशसे आये हुये स्फाटिक जिनबिंब, और पंजाब देशके श्रावकोंके कितनेक नूतन जिनबिंब मिलाके (५०) जिनबिंबकी, अंजनशिलाका करी. तथा नवीन जिन मंदिरमें " श्री मनमोहन पार्श्वनाथजी " को स्थापन किये इस पूर्वोक्त क्रिया कराने वास्ते भी, वेही श्रावक आये थे. प्रतिष्ठा महोत्सव पूर्ण होनेके बाद, विहार करके लाहोर तरफ पधारनेका इरादा, श्रीमहाराजजी साहिबका था. परंतु शहेर अंबालाके श्रावक नानकचंद, वसंतामल्ल, उद्दमल्ल, कपूरचंद, भानामल्ल, गंगाराम, वगैरह प्रतिष्ठा महोत्सवपर आये थे. उनोंने विनती करी कि, " महाराजजी साहिब ! हमारे शहेरमें आपकी कृपासे जिन मंदिर तैयार होगया है. सो कृपानाथ ! कृपा करके आप शहेर अंबालामें पधारो. और प्रतिष्ठा करके हमारे मनोरथ पूर्ण करो. हमारी यही अभिलाषा है कि, हमारे जीते जीते प्रतिष्ठा हो जावे, कालका कोई भरोसा नही, खबर नहीं कलको क्या होवेगा ? इस वास्ते हम अनाथोंकी प्रार्थना जरुर अंगीकार करके, हमको सनाथ करने चाहिये. " यह सुनकर श्रीमहाराजजी साहिबने पूर्वोक्त विचार बदलके, शहेर अंबालाके तरफ विहार कर दिया. और अनुक्रमे शहेर अंबालामें पधारे. यहां जुनागढके " डाक्टर त्रिभोवनदास मोतीचंद शाह, एल. एम. "ने आके, श्रीमहाराजजीकी दूसरी आंखका मोतीया निकाला था. इस हेतुसे संवत् १९५२ के चौमासेमें श्री महाराजजी साहिब व्याख्यान नहीं करते थे. पर्युषण पर्वके

लगभग, मि० वीरचंद गांधी चीकागोसे आके, यहां श्रीमहाराजजी साहिबको मिले, और अपनी कारवाई, सुनाई सुनके श्रीमहाराजजी साहिबको इतना हर्ष प्रकट हुआ,जो लिखनेसें बाहिरहै

चौमासे बाद भी कितनाक समय शहेर अंबालामेंही रहे क्योंकि, संवत् १९५२ का मगसर सुदि पूर्णिमाको, "श्रीसुपार्श्वनाथ" सप्तम तीर्थकरकी जिन प्रतिमाको नूतन जिन मंदिरमें स्थापन करनेका मुहूर्त था तिस मुहूर्तपर वहांके श्रावकोंने अपूर्वही रचना करीथी जो समग्र उमरमें भी देखनेमें नहीं आई थी एक साक्षात् देवलोकका नमुना बना दियाथा दूर दूरसे यावत् देश गुजरात–मेहसाणासे चांदीका रथ वगैरह असबाब, मंगवायाथा निर्विघ्नपणेसें विधिपूर्वक पूर्वोक्त मुहूर्त साधके, श्री सूरिमहाराज, लुधीयाना शहेरमें आये इनके शुभागमनसें आनंदित होकर श्रावक समुदायने, किसी सांसारिक कार्यके सबबसे अपनी ज्ञाति (बिरादरी) में कितनेही वर्षोसे जो झगडा पडाथा, सो सलाह धप करके दूर कर दिया और " श्री कलिकुंडपार्श्वनाथ " (जिसके साथकी दो मूर्त्ति, देश गुजरातमें भावनगरके पास वरतेज गाममें, श्रीऋषभदेवनाथके जिन मन्दिरमें, देखनमें आती है) का जिन मन्दिर बनवाना प्रारंभ किया इस जिन मन्दिरके प्रारंभमें अग्रता, रामदत्तामल्ल क्षत्रीय, जिसको श्रीमहाराजजी साहिबने जैनधर्मानुरागी बनायाहै, तिसकी है क्योंकि, इसने अपनी दो दुकानें, श्री जिन मन्दिर बनानेके वास्ते प्रथम दी तदनन्तर लाला गोपीमल्लके पुत्र,खुशीराम वगैरहने अपनी दो दुकानें दी बाद सकल श्रीसंघने मदद देकर, श्रीजिनमन्दिर बनाना सुरू करदिया यहां बहुत अन्यमति लोक भी, व्याख्यानमें आतेथे क्योंकि, इस पंजाब देशमें प्रायःइतना पक्षपात नहींहै किंतु सब मतावलंबीयोंका जोर होनेसे, हर एक मतवालेके पास, हरएक मतवाला प्रायः परस्पर चर्चा करनेके वास्ते आता जाता है इस समय जितनी मतमतांतरोंकी प्रचोलना, देश पंजाबमें है, अन्य स्थानोंमें नहीं होगी श्री महाराजजी साहिबकी शांत मूर्त्तिको देख,और हरएक बातका पूरा पूरा दिलको शांति करनेवाला जवाब सुनके, और अपूर्व ज्ञानामृतका स्वाद चखके, शहेर लुधीयानेके लोक बहुत प्रसन्न होगये, और चौमासेकी प्रार्थना करने लगे श्री महाराजजी साहिबके मनमें भी प्रार्थना मंजूर करनेकी सलाह होगई परंतु इस अरसेमें, जिल्ला स्यालकोट गाम सनखतरेके रहनेवाले भाई, गोपीनाथ, अनन्तराम, प्रभदत्त, ताराचंद खण्डेराव भारी विनती आई कि महाराजजी साहिब ! आपने शहेर अंबालामें, भाई अनन्तरामको फरमायाथा कि यदि मन्दिरका काम तैयार होगया होवे, और प्रतिष्ठा करानेका इरादा होवे तो संवत् १९५४ का वैशाख सुदि पूर्णिमाका मुहूर्त आताहै " तब अनन्तरामने कहाथा कि मैं घर जाकर सब भाइयोंसे सलाह करके आपको जवाब लिखवा देऊंगा और मैं तो परम राजी हूं कि धर्मका काम जलदी हो जाना अच्छा है, सो महाराजजी साहिब ! हम अनन्तरामका कहा सुनकर परमानन्दको प्राप्त हुए हैं हमारे भाग्यमें एसा दिन भी आवे तो, और क्या चाहिये " हमको आप साहिबका हुकम मंजूर है, आपका फरमाया मुहूर्त हमको मान्य है, परन्तु आप जानते हैं कि हम लोक अनजान हैं क्या करना और क्या नहीं हम कुछ जानते नहीं हैं इतना तो, हमको यकिन है कि, आप सरीखे महात्माके प्रभावसे, हमारा सब काम ठीक इंतजाम हो जायगा इसलिये हम, पामर जीव, आपके चरणोंमें सीस रखके, प्रार्थना

करते हैं कि,आप दया करके प्रतिष्ठाके दिनोंसे महिना दो महिने पहिलेही, यहां (सनखतरामें) पधारोगे, जिससे हमको शांति हो जावेगी. ”

इस विनतीको हृदयमें धारण करके श्री महाराजजी साहिब लुधीआनेसे विहार करके फगवाडा, जालंधर,झंडीआला,अमृतसर,होकर नारोवालमें पधारे.यहां अनुमान पंदरा दिन रहकर प्रतिष्ठाके सबबसें श्री सूरिमहाराज,“सनखतरे”पधारे; जहां अलौकिक जैन मंदिर, देखके अत्यानंद हुआ. मंदिरके सोपान(पउडी)चढते हुये,श्री महाराजजी साहिब अपने शिष्य “वल्लभ विजय”से कहने लगे कि,“अरे वल्लभ! क्या शत्रुंजय ऊपर चढते हैं?” इस वखत शत्रुंजयके याद आनेका हेतु यही है कि, वो मंदिर शत्रुंजय तीर्थ ऊपर मूल नायक श्री ऋषभदेव भगवान्‌की टुंकका जैसा नकशा है, वैसीही ढब पर बना हुआहै. अहा! वृद्धोंके, और फिर महात्माओंके, जिसमें भी ऐसे गुण-समुद्र महात्मा कि, जिसके गुणोंका वर्णन करना मुश्किल है, ऐसे महात्माके मुखारविंदसे पूर्वोक्त वचन वासना अनायासही, ऐसी निकली के, जिसने सनखतरेके मंदिरको वासित करदिया. अर्थात् उस समय वो मंदिर, साक्षात् शत्रुंजयकाही अनुभव देने लगा. क्योंकि, श्री महाराजजी साहिबके पधारनेसे, सनखतराके श्रावक समुदायने, देश परदेश प्रतिष्ठा महोत्सव संबंधी आमंत्रण पत्र भेजे जिसको वांचके कपडवंजका श्रावक शाह शंकरलाल वीरचंद और अहमदावादका श्रावक ठकोरदास,नवीन जिनबिंबको अंजनशिलाका करानेके वास्ते लेके सनखतरे पहुंचे, इनको उतारा दे रहे थे, इतनेमेंही, मुंबईसें “ शेठ तलकचंद माणेकचंद जे. पी. ” के भेजे मणिलाल, और छगनलाल नवीन जिनबिंबको अंजनशिलाका कराने वास्ते लेकर आये. जिनके साथ शत्रुंजय तीर्थ ऊपरसे शेठ मोतीशाहके कारखानेसे नवीन जिनबिंबको अंजन-शिलाका वास्ते लेकर, माली, मंदिरका पूजारी, आयाथा. तथा बडोदेवाले, “ गोकलभाई दुल्ल-भदास ” और छाणीवाले “ नगीनदास गरबडदास,” प्रतिष्ठाकी क्रिया कराने वास्ते आये थे; वे भी,‘ ‘बडोदा,” “अहमदावाद,” “ मेहसाणा, ” “छाणी,” “वरतेज,” “जयपुर” “दीली,” वगैरह शहेरोंके श्रावकोंके बनवाए रत्नमय, और पाषाणमय, जिनबिंब, ले आये थे. एवं पौने-दोसौ (१७५) जिनबिंब अंजनशिलाकाके वास्ते, सनखतरेके मंदिरमें तीन वेदिका ऊपर स्थापन किये गये. जिसमें मूलनायकजी, श्री ऋषभदेवजी,स्थापन किये गये थे इस वखत शत्रुं-जय तीर्थके सिद्धगिराका अनुभव, देखनेवालेको होरहा था. श्रीसूरि महाराजजीकी निगा नीचे, श्रीवर्द्धमान सूरि विरचित आचार दिनकर ग्रंथके अनुसार पूर्वोक्त श्रावक सकल क्रिया कराते रहे. लग्नका समय प्राप्त हुए, श्रीसूरि महाराजने, “ श्री धर्मनाथ स्वामी” को, नूतन मंदिरमें गद्दी ऊपर स्थापन करके, मूलनायक श्री “ऋषभदेवजी” वगैरह नूतन जिनबिंबको, विधि पूर्वक अंजन किया. इन अंजन किये नवीन जिनबिंबमेंसें कितनेक तो, श्रीशत्रुंजय तीर्थ ऊपर, कपडवंजवाली शेठाणी माणेकबाईका बनवाए नवीन जिन मंदिरमें स्थापन किये गये. मी० तलकचंद माणेकचं-दने, सुरतमें जिन मंदिर बनायके स्थापन किये. एवं अपने अपने शहेरमें, जिनबिंब बनवानेवालों-ने, श्री जिन मंदिरमें स्थापन किये. मोतीशाह शेठवाले जिनबिंब, शत्रुंजय तीर्थ ऊपर, मोतीशाह-की टुंकमें स्थापन किये गये. एक मूर्त्ति लाजवर्द रत्नकी, श्री नेमनाथ स्वामीकी, अंजनशिला-का, और प्रतिष्ठा महोत्सवके याद करनेके वास्ते, सनखतरेके मंदिरमें स्थापन की गई.

ऐसे वैशाख सुदि पूर्णिमा, सोमवार, स्वाति नक्षत्र, रवियोग, तथा सिद्धयोगादि, शुभ दिनमें

अंजनशिलाका और श्रीधर्मनाथ स्वामीकी प्रतिष्ठा करके बडे आनन्दको प्राप्त हुए और जेठ वदि छठको, सनखतरासे गुजरांवालेके श्रावकोंकी विनती मान्य करके, विहार करके, "किलाशोभा सींघका" होकर, शहेर "पशरूर" में पधारे वहां, प्रथम पांच सात दिन रहनेका इरादा था, परन्तु सनातन जैनधर्मानुरागीके अभावसे, उन्न जलके न मिलनेसें जिस दिन गये, उसही दिन अ नुमान चार बजे विहार करदिया इस वखत नगरके क्षत्रीय ब्राह्मण वगैरह लोकोंने, यहांके रहीश वुदकमतानुसारी भावडोंका, बहुत तिरस्कार किया जिससें कई भावडे लाचार होकर, और कितनेक अंतरंग श्रद्धावाले, अपने बापदादाके डरसें प्रकटपणे काररवाई नहीं करनेवाले, आकर बहुत विनती करके कहने लगे कि, "महाराजजी साहिब! हमारा गुन्हा माफ कीजिये, आगेको ऐसा काम नहीं होगा" परन्तु कालके जोरसे, उस वखत, इन महात्माके मनमें बिलकुल करुणा नहीं आई हाय! काल कैसा निष्करुण है कि, जो अपने आनेके समयमें, करुणासागरको भी निष्करुण, करदेताहै!

पशरूरसें विहार करके छछरांवाली, सतराह, सेरांवाली, होकर वडाला गाममें पधारे वहां रात्रिके पिछले प्रहरमें, दम (श्वास) चलना सुरू होगया इस श्वास रोगने इतना जोर एकदम कर दियाके, कदम भरना भी, मुश्कल होगया तथापि इस रोगको, श्रीमहाराजजी साहिबने, कुच्छ नहीं गिना, मनोबलसे चलते रहे परंतु शरीरने, जवाब दे दिया इसवास्ते वडालेसे गुजरांवालेका एक दिनका रस्ता भी, तीन दिनमें समाप्त किया, और जेठ सुदि बूजके रोज बडी धूमधामसें श्रावक लोकोंने नगरमें प्रवेश करायके श्रीमहाराजजी साहिबको उपाश्रयमें उतारे

सोला (१६) वर्ष पीछे श्रीमहाराजजी साहिबका आगमन, इस शहेरमें होनेसें लोकोंको बडाही उत्साह प्राप्त हुआ था कितनेही जिज्ञासु, चरचा वार्त्ता करते रहे पूर्वोक्त रोगकी चिकित्सा करानेके वास्ते, अन्य साधुओंने कहा परन्तु कालकी प्रबलतासें, चिकित्सा करानेको मान्य नहीं किया इतनाही नही, बलकि साधुओंसे कहने लगे कि, "एसे थोडे थोडे रोग पीछे क्या दवाई करानी?" साधुओंने भी "विनाशकाले विपरीत बुद्धिः" इस कहावत मुजब, श्रीमहाराजजी का कहा, जो इस वखत मान्य नहीं करने योग्य था सो भी मान्य करलिया, जिसका फल थोडेही दिनोंमें, साधु और श्रावकोंको मिलगया अर्थात् संवत् १९५३ जेठ सुदि सप्तमी मंगलवारकी रात्रिको, प्रतिक्रमण करके, अपना नित्य नियम संथारा पोरसी वगैरह कृत्य करके सो गये अनुमान रात्रिको बारा बजे नींद खुलगई, और दम उलट गया दिशाकी हाजत होनेसे दिशा फिरके शुचि करके, आसन ऊपर बेठे हुए, "अर्हन्! अर्हन्! अर्हन्!" ऐसे तीन वेरी मुखसे उच्चारण करके, "लो भाई, अब हम चलते हैं, और सबको खमाते हैं ऐसा कहके, पुनः "अर्हन्" शब्द उच्चारण करते हुए, अंतर्ध्यान होगये[1] इस वखत साधु श्रावकोंको जो दुःख पैदा हुआ, वाणीके अगोचर है इस दुःखको सहन न करके, चंद्रमा भी, मानु अपनी चांदनीको संकोचके, अदृश्य होगया होवे ऐसे अस्त होगया! और अज्ञान रूप भाव अंधारा, अब ज्ञान सूर्यके अस्त होनेसे प्रकट होगया, ऐसा मालुम करनेको, द्रव्य अंधारा, होगया दुर्जनके हृदयवत् काली रात्रिको

[1] जिस वखत महाराजका स्वर्गवास हुवाथा, उसवखत अष्टमी पहिलेसेही लग चूकाथा, इस लिये बाज तिथि जेठ सुदि अष्टमी गीनीगइ

देखके, सब सेवकोंके मुखका तेज, उडगया. किसीका जोर नहीं चला. कई सेवक जन, स्नेह विव्हल होके,कहने लगे, "महाराज ! आपने इतनी शीघ्रता क्यों करी" ? कोई कहता है, " रे ! दुष्ट ! काल ! ऐसे उपकारी पुरुषका नाश करते हुए, तेरा नाश क्यों नहीं हुआ?" कोई कहता है, "महाराज साहिबने,अपना वचन सत्य करलिया. क्योंकि, जब कभी किसी जगेपर, गुजरांवालेके श्रावक विनती करते थे तो, उनको यही जवाब देते थे कि, 'भाई क्यों चिंता करते हो ? अंतमें हमने बाबाजीके क्षेत्र गुजरावालेमें बेठना है'. "

यथा—हे जी तुम सुनीयोजी आतम राम, सेवक सार लीजोजी ॥ अंचली ॥
आतमराम आनंदके दाता, तुम बिन कौन भवोदधि त्राता ॥
हुं अनाथ शरणि तुम आयो, अब मोहे हाथ दीजोजी ॥ हे० ॥ १ ॥
तुम बिन साधु सभा नवि सोहे, रयणाकर विन रयणी खोहे ॥
जैसे तरणि विना दिन दिपे, निश्चय धार लीजोजी ॥ हे० ॥ २ ॥
दिन दिन कहते ज्ञान पढाऊं, चूप रहे तुज लड्डु देऊं ॥
जैसे माय बालक पतयावे, तिम तुमे काहे कीजोजी ॥ हे० ॥ ३ ॥
दिन अनाथ हुं चेरो तेरो, ध्यान धरूं हुं निश दिन तेरो ॥
अबतो काज करो गुरु मेरो, मोहे दीदार दीजोजी ॥ हे० ॥ ४ ॥
करो सहाज भवोदधि तारो, सेवक जनको पार उतारो ॥
बारबार विनती यह मोरी, वल्लभ तार दीजोजी ॥ हे० ॥ ५ ॥

इत्यादि अनेक संकल्प विकल्प करते हुए, आधि रात्रि आधे जुग समान होगई प्रातःकाल होनेसे, शहेरमें हाहाकार हो रहा हिंदुसें लेके मुसलमान पर्यंत कोईकही निर्भाग्य शहेरमें रहगया होगा कि, जिसने उस अंत अवस्थाका दर्शन, नहीं पाया होगा! जो देखता रहा, मुखसें यही शब्द निकालता रहा कि, "इन महात्माने तो समाधि धारण करी है, इनको काल करगये, कौन कहता है ?" यह वखतही ऐसा था; ऐसा तेज शरीर ऊपर छायाथा, देखनेवालेको एक दफा तो भ्रमही पडजाता था. स्कूलके मास्तर छुटी होनेके सबबसे पिछली मुलाकातसे मिलनेको, और बातचित करनेको आते थे, रस्तेमें सुनके हैरान होकर कहने लगे कि, "क्या किसी दुश्मनने यह बात उडाई है ? क्योंकि, कल शामके वखत, हम महात्माके दर्शन करके, और मतमतातरों संबंधी बातचित करके, आज आनेका करार करगये थे. रात रातमें क्या पत्थर पडगया ?" आनके देखे तो सत्यही था. दर्शन करके कहने लगे, " महात्माजी आप हमसें दगा करगये ! हमतो आपसे, बहुत कुच्छ पूछके धर्म संबंधी निर्णय करना चाहते थे आपने यह क्या काम किया ? क्या हमारेही मंद भाग्यने जोर दिया, जो आप हमको भूला गये ?" वगैरह जितने मुख, उतनीही बातें होती रही. परंतु सब,उजाडमें रुदन करने तुल्य था. क्योंकि, कितनाही विरलाप करें, कुच्छ भी बनता नहीं है. काल महा बली है बडे२ तीर्थंकर, चक्रवर्त्ती, वासुदेव, किसीको भी कालने छोडे नहीं है.

रातो रात देशावरोंमें तारद्वारा पूर्वोक्त वज्रघातके समाचार, पहुंच गये परंतु यह अविचारित समाचार, सेवकजनोंको सत्य भान नहीं हुआ यही मनमें आया कि, "किसी द्वेषीने हमारे हृदयको दु खानेके वास्ते, यह खोटी वार्ता, फेलाई है क्योंकि, प्रथम भी दो वखत द्वेषी लोकोंने ऐसी खोटी वार्ता फैलाइ थी " पुनः गुजरांवाले तार भेजके खबर मंगवाई कि " यह क्या बात है ? ' बदलेमें जबाब पहुंचगया कि, " क्या बात पूछते हो ? अंधकार हो गया ज्ञान सूर्य अस्त हो गया ' प्रात काल होतेही लाहोर, अमृतसर, जालंधर, होशीयारपुर, लुधीआना, अंबाला, जीरा, कोटला, वगैरह शहेरोंके श्रावक समुदाय निस्तेज होकर, आने लग गये निरानंद होकर, अश्रुजलकी वर्षासें बाह्यतापको शांत करते हुये, और अंतरंग तापको तेज करते हुये, चंदनकी चितामें स्थापन करके महात्माके शरीरका अग्नि संस्कार, बहुत धूम धामसे किया उस वखतके चितारका स्वरूप यह गायनसे मालूम होगा।

सतगुरुजी मेरे दे गये आज दिदार स्वामीजी मेरे,
दे गये आज दिदार श्री श्री आतमराम सूरीश्वर,
विजयानंद सुखकार स्वामीजी ॥ अचलि ॥
गुरु होए निर्वान, सब हो गया हैरान,
टूट गया मन मान, ज्ञान ध्यान कैसे आवेगा।
अब उपजोया शोक अपार, स्वामीजी• ॥ १ ॥
य गभीर धुनि वानी, जिनराजका वखानी,
गुरुराजकी सुनाना, ऐसे कौन सुनावेगा
अब किसका मुझे आधार ॥ स्वामीजी • ॥ २ ॥
धन्य धन्य सूरिराज, होय जैन के जहाज,
बहु सुधारे धर्म काज, अब कौन इका लावेगा,
श्री गुण ज्ञान अपार ॥ स्वामीजी • ॥ ३ ॥
मुनि सार्थवाह प्यारे, आप लाखोंही सुधारे,
चंद दर्शनी दिदार, नहीं सोहा पछतावेगा,
अब होगइ हाहाकार ॥ स्वामीजी • ॥ ४ ॥
ऐसे सूरज उजार, मतमिथ्यात निवार,
अंधकार मिट सार, कौन चांदना दिखावेगा।
दास गु [illegible] पार ॥ स्वामीजी • ॥ ' ॥

॥ गजल ॥ (चाल रासधारीयोंकी)

जहां व्रजराज कल पावे, चलों सखी आज बावनमें—यहदेशी—

बिना गुरुराजके देखे, मेरा दिल बेकरारी है ॥ अंचलि ॥

॥ बहिर्लापिका ॥

आनंद करते जगत जनको, वयण सत सत सुना करके—विना० ॥ १ ॥

तनु तस शांत होया है, पाया जिनें दर्श आ करके—विना० ॥ २ ॥

मानो सुर सूरि आये थे, भुवि नर देह धर करके—विना० ॥ ३ ॥

राजा अरु रंक सम गिनते, निजातम रूप सम करके—विना० ॥ ४ ॥

महा उपकार जग करते, तनु फनाह समझ करके—विना० ॥ ५ ॥

जीया वल्लभ चाहताहै, नमन कर पांव परकरके—बिना० ॥ ६ ॥

इत्यादि गुणानुवाद करतेहुये सब लोक एकत्र होकर श्रीमहाराजजी साहिबकी सदा यादगारी कायम रखनेके वास्ते, द्रव्य संग्रह करके, स्तूप (समाधि) बनानेका निश्चय करके, निरानंद होकर अपने अपने स्थानोंपर चले गये.*

जिस वखत श्री महाराजजी साहिबका स्वर्गवासका समाचार नगरमें फैलगया, उसही वखत किसी प्रतिपक्षीने पूर्वला वैर लेनेका इरादा करके किसीको स्यालकोट भेजके, गुजरांवालेके "डीप्युटी कमिश्नर" को कल्पित नामसे तार दिलवाया कि, "साधु आत्मारामका मृत्यु जहेरसें हुवा मालूम होताहै. और इधर आप वे प्रतिपक्षी, श्री महाराजजी साहिबजीके सेवकोंसे आनके कहने लगे कि, "यद्यपि हमारा तुमारा अनुष्ठान मिलता नहीं है, तथापि श्रीआत्मारामजी जैनी साधु कहाते थे, तुम हम दोनोंही जैनी कहातेहैं; इनका मरना क्या वारंवार होना है ? तथा पिछली अवस्थाका हमारा भी कुच्छक हक है, इस वास्ते इनके इस निर्वाण महोत्सवमें हम भी, भाग लेवेंगे. तब श्रीमहाराजजी साहिबके सेवकोंने, उनकी वक्रता, और खलता बिना समझे, सरल स्वभावसें उनका कहना मंजूर कर लिया. परंतु यह नहीं विचारा कि, यद्यपि इस वखत यह हमारे सज्जन होकर आये हैं, तथापि वास्तविकमें तो यह दुर्ज्जनही है. इसवास्ते सर्प्पकी तरह इनका विश्वास करना, दुःखदायी है.

यतः—दोजीहो कुडिलगइ, परछिद्दुगवेसणिक्कतल्लिच्छो।
कस्स न दुज्जणलोओ, होइ भुयंगुव्व भयहेऊ ॥ १ ॥
उवयारेण न घिप्पइ, न परिचएण न पिम्मभावेण।
कुणइ खलो अवयारं, खीराइपोसिय अहिव्व ॥ २ ॥

*गुजरांवालेमें गाम बहार वड़ा भारी स्तूप (छत्री) बन गइ है. जिसके दर्शनका सर्व जातिके बहुत लोकोंको नियम है.

भावार्थः—जैसे सर्पको दो जुबान होती है, ऐसे दुजीभा अर्थात् चुगलखोर, सर्पकी तरह कुटिल बांकी गतिवाला, अर्थात् कहना कुच्छ, और करना कुच्छ; तथा जैसे सर्प परके छिद्र (खुड–बिल) ढुंढनेमें रक्त होवाहै, वैसे यह दुर्जन परके छिद्र, अर्थात् अवगुण ढुंढनेमें रक्त होवाहै, ऐसे पूर्वोक्त विशेषणों विशिष्ट दुर्जन पुरुष सर्पकी तरह, किसको भयका हेतु कारण नहीं है? अपितु सबकोही है

तथा दुर्जन पुरुष उपकार करनेसे, परिचय करनेसे, स्नेहभावसे, किसी प्रकारसे भी वश नहीं होताहै किंतु अवसर पाकर, अपकार करनेमें कसर नहीं रखताहै, दूधसे पोषे सर्पकी तरह परंतु वे क्या करे? जब भाग्य वक्र होवे तो, कितनाही पुरुषार्थ करो, सब निष्फल होताहै

यतः—कैवर्त्तकर्कसकरग्रहणच्युतोपि ।
जाले पुनर्निपतित सफरो वराक ॥
दैवात्ततो विगलितो गिलितो बकेन ।
वक्रे विधौ वद कथं पुरुषार्थसिद्धि ॥ १ ॥

भावार्थ – किसी एक कैवर्त (धीवर) ने, कठोर हाथोंसे मच्छ पकडा, वो हाथसे निकलके जालमें पडगया, दैवयोगसे जालमेंसे भी निकलगया तो, तिसको बक (बगला) जानवरने निगल लिया (खा लिया.) तो अब कहो दैवके वक्र हुवे क्या पुरुषार्थ सिद्धि होसक्ती है? कदापि नही

अब श्रावकोंनि उन प्रतिपक्षीयोंका कहना मंजूर करलिया तब वे बहुत खुश होकर धूर्त्तता करके दुर्जनवत्, मित्रता प्रकट करते हुए

यत –आरंभगुर्व्वी क्षयिणी क्रमेण, तन्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात्,
दिनस्य पूर्वार्द्धपरार्द्धभिन्ना, च्छायेव मैत्री खल सज्जनानाम् ॥ १ ॥

भावार्थः—दुर्जनकी मैत्री, दिनके पूर्वार्द्ध भाग समान होती है, जैसे दिनके पूर्वार्द्ध भागमें छाया, प्रथम बहुत होती है, और पीछे क्रम करके घटती जातीहै; ऐसेही दुर्जनकी मैत्री, प्रथम तो अत्यंत गाढी होतीहै, और पीछे क्रमकरके घटती जाती है और सज्जन पुरुषोंकी मैत्री, दिनके पिछले भाग समान होतीहै, अर्थात् जैसे दिनके पिछले भागकी छाया, प्रथम थोडी होतीहै और पीछेसे क्रमकरके बढती जाती है, ऐसेही सज्जन पुरुषोंकी मैत्री, थोडी होती है, और पीछेसे क्रमकरके बढती जाती है

धूर्त्ततासे सर्वकार्यमें, वे लोक, अग्रगामी होते चले जब श्रीमहाराजजी साहिबके शरीरके विमानको बहार, वास्ते अग्नि संस्कारके ले चलेथे तब वे लोक, अपनी अंतरंग पापकी प्रेरणासे, रस्तेमें बहुत ठिकाने सज्जन बनके रोकते रहे, तथापि कुच्छ नहीं बना क्या बिल्लीके भागको छिका टूटताहै? जिसका पुन्य तेज होवे, उसको दुर्जन कितनीही चालाकी करे, कुच्छ नहीं कर सकता है दैवयोगसे उस दिन अंग्रेजोंका कोई तेहवारका दिन होनेसे, तार, रातको नव बजे आया जब यहां अग्निसंस्कार हो चुकाथा डिप्युटी कमिश्नरने, विचार नहीं किया कि यह साधु किस मतके है? इनका आचार विचार कैसा है? डेराधारी है, या रमते फकीर है? कोड़ी

पैसा रखतेहैं, वा नहीं ? वगैरह विचार किये विनाही, पोलीस कमिश्नरको बंदोवस्त वास्ते हुक्म भेज दिया. श्रावकोंने बारीस्टर वगैरह भी बुलाया था. कामिश्नरने तलास करके अपना निश्चय करलिया. कुच्छ भी नहीं बना. श्री महाराजजी साहिबके सेवक जीत गये. और प्रतिपक्षीको लोकोंकी तरफसे गालियां तिरस्कारका सिरोपाव मिलतारहा !

देशदेशावरोंमें स्वर्गवासकी खबर पहुंचतेहीं बजार हाट बंधकरके हडताल पडी, हाहाकार होगया.हजारों रुपयोंका दान पुन्यहुआ.जगेजगे पूजा भणाई गई, वगैरह हजारों धर्म कार्य हुए.

इस तराह श्रीमद्विजयानंदसूरि (श्रीआत्मारामजी) महाराजका जीवन चरित, संक्षेपसे वर्णन किया. इससे मालूम होगा कि, इन महात्माने विद्याकी प्राप्ति, धर्म शोधन और जैनधर्मके उद्धारके वास्ते, कितना वडा परिश्रम उठाया और अंतमें कैसा जय प्राप्त किया था. ऐसे महात्मा पुरुषोंको धन्य है !

इन महात्माके उपकारकी यादगीरीमें, प्रायः हरएक ठिकाने विद्याशाला स्थापन होरहींहे; और उनके चरण, तथा तिनकी मूर्तिकी स्थापना होगई है और भी करनेकी हिलचाल होरहींहे.

पंजाब देशमें इनके अपूर्व जयकी यही निशानींहै कि, अमृतसर, जीरा, हुशीआरपुर, पट्टी, अंवाला, सनखतरा, कोटला, नीकोदर, लुधिआना,जालंधर, झंडीयाला,वेरोवाल, जेजो, रोपड, कसूर, नारोवाल, आदि क्षेत्रोंमें श्रीजिन मंदिर बनगये हैं. और अन्य ठिकाने बने जाते हैं.

॥ इति शुभम् ॥

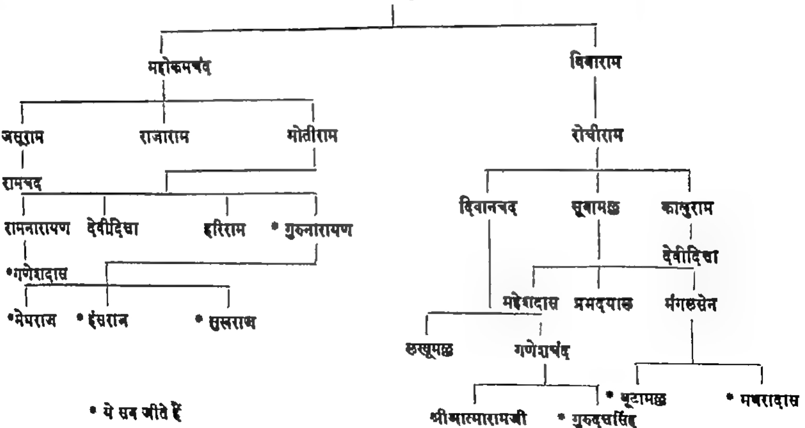
वेद बाणांकं इंद्वब्दे नभोमासे सिते दले,
प्रतिपद्वासरे शुक्रे, चरितं श्रुतिसौख्यदम् ॥ १ ॥
नारोवालपुरे रम्ये, सुव्रताजिनमंडिते,
चतुर्मासीस्थितेनेदं, विजयानंदसूरीणाम् ॥ २ ॥
यद्दृष्टं यच्छ्रुतं यच्चा–नुभूतं किल तन्मया,
वल्लभविजयाख्येन, भाषायां ग्रथितं मुदा ॥ ३ ॥

इति तपगच्छाचार्य श्रीमद्विजयानंदसूरि शिष्य महोपाध्याय श्रीमल्लक्ष्मी विजय
शिष्योपाध्याय श्रीमद्धर्ष विजय शिष्य मुनिवल्लभ विजय
विरचितं श्रीमद्विजयानंदसूरि चरितं समाप्तं ॥

॥ शुभं लेखक पाठकयोरिति ॥

मुनि श्री आत्मारामजीका जन्मचरित्रमें पृष्ठ ३४ देखो

मुनिराज श्रीआत्मारामजीका कुरसीनामा (वंशवृक्ष). खानदान कपूरक्षत्रियान्–गाम कलश–तहसील पिंडदादनखान–जिल्ला जेहलम–पंजाब कपूर यह कोम पंजाबमें सब हिंदुओमें प्रथम दरज्जेका है





मुनि श्री वल्लभ विजयजी जन्म स० १९२७.

जन्म,–वडोदा, ज्ञाति–श्रीमाली, पीता–दीपचन्द, माता–इच्छाबाई

दीक्षा, स० १९४४ में राधणपुर

श्रीमन्महोपाध्याय श्री लक्ष्मीविजयजीके शिष्य – श्री हर्षविजयजीके शिष्य

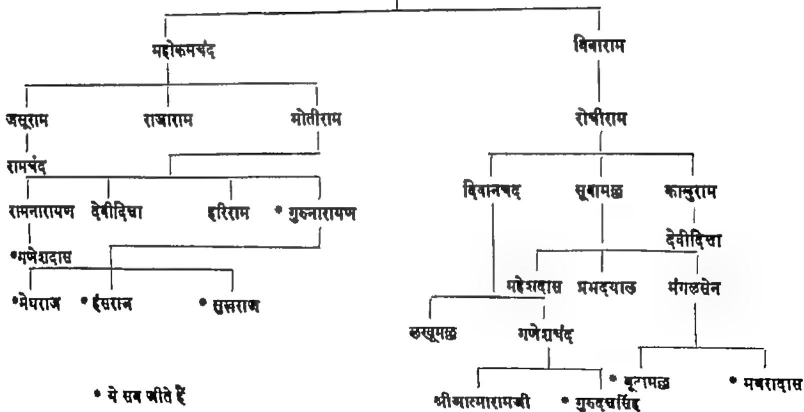
पंजाबमें इनके उपदेशसे पुस्तक भंडार, आत्मानंद जैन पत्रिका, आत्मानंद जैन पाठशाला, पाई फंड आदिकी स्थापना हुई

पंजाबदेश तीर्थस्तवनावली आदिके कर्त्ता

इस ग्रंथके संशोधन कर्त्ता

मुनि श्री आत्मारामजीका जन्मचरित्रमें पृष्ठ ३४ देखो

मुनिराज श्रीमात्मारामजीका कुरसीनामा (वंशवृक्ष) खानदान कपूरक्षत्रियान्–गाम कलश–तहसील पिंडदादनखान–जिल्ला जेहलम–पंजाब कपूर यह कोम पंजाबमें सब हिंदुओंमें प्रथम दरजेका है



॥ ॐ ॥

॥ नमः श्री परमात्मने ॥

अथ तत्वनिर्णयप्रासादप्रारम्भः ॥

अथ श्रीमत्तपगच्छाचार्य श्री श्री श्री १००८ श्रीमद्विजयानंदसूरीश्वर "आत्माराम" कृत श्री तत्वनिर्णयप्रासादनामग्रंथप्रारंभः ।

तत्रादौ मंगलाचरणम् ॥

प्राकारैस्त्रिभिरुत्तमा सुरगणैस्संसेविता सुन्दरा
सर्वाङ्गैर्मणिकिङ्किणीरणरणज्झाङ्कारराववैर्वरा ॥
यस्यानन्यतमा सुभूमिरभवद् व्याख्यानकाले ध्रुवं
स श्रीदेवजिनेश्वरोभिमतदो भूयात्सदा प्राणिनाम् ॥ १ ॥

जीन प्रभुकी सभा (सुभूमि) निश्चय करके व्याख्यान समयमें (रजत, कनक, रत्नके बने) तीन कोट करके उत्तम, देव समुदायसें संसेवित, सर्वांगोंसें मनोहर, मणिमय घुंघरूओंके रणरणत् झणकार करके श्रेष्ठ, ओर अनुपम होती हुई,—ऐसे श्री जिनेश्वर देव प्राणिओंको सदा वांच्छित फलके देनेवाले हो ॥ १ ॥

(१. यह श्लोकमें समुच्चय राग द्वेषादि अंतरंग शत्रुओंको जितनेवाले श्री जिनेश्वर देवकी स्तुति है.)

नमितनम्रसुरासुरकिन्नरचरणपङ्कजबोधिदपारग ॥
प्रथमतीर्थकरप्रविशारद प्रभव भव्यजनाय सुसौख्यदः ॥२॥

नम्रीभूत देव, असुर, और किन्नर करके नमस्कार किये गये हैं जिनके, बोधबीज (समकित-रत्नत्रय) की प्राप्तिके कराने-

ये नो पण्डितमानिनः शमदमस्वाध्यायचिन्ताचिता
रागादिग्रहवञ्चिता न मुनिभिः संसेविता नित्यशः ॥
नाकृष्टा विषयैर्मदैर्न मुदिता ध्याने सदा तत्परा-
स्ते श्रीमन्मुनिपुङ्गवा गणिवराः कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ॥ ५ ॥

जे पांडित्यमद रहित, क्रोधादिको शांत करनेमें, इंद्रियोंका दमन करनेमें, स्वाध्याय ध्यान करनेमें लीन, रागादि ग्रह करके अवंचित, (नही ठगाये हुवे,) मुनियों करके नित्य संसेवित, विषयों करके अलिप्त, (पांच इंद्रियोंके तेवीस विषयोंसें पराङ्मुख) अष्टमद (जातिमद, कुलमद, वलमद, रुपमद, तपमद, ज्ञानमद, लाभमद, ऐश्वर्यमद,) रहित, और ध्यानमें सदा तत्पर हैं, वे श्रीमान मुनियोंमें प्रधान गणधर और पूर्वाचार्य हमारें मंगल करो ॥ ५ ॥

(५. यह काव्यमें जिनके किये शास्त्रोंसें शास्त्रकारको बोध प्राप्त हुआ तिनका बहुमान किया है.)

कलमकलितपुस्तन्यस्तहस्ताग्रमुद्रा
दिशतु सकलसिद्धिं शारदा सारदा नः ॥
प्रतिवदनसरोजं या कवीनां नवीनां
वितरति मधुधारां माधुरीणां धुरीणाम् ॥ ६ ॥

जो कवियोंके मुखकमलमें नवीन (अपूर्वही) श्रेष्ट और मधुर मधुधारा देती है, लेखनी संयुक्त पुस्तक धारण किया है हस्ताग्र भागमें जिसने ऐसी मुद्रामूत्रिको धारण करनेवाली, और सारवस्तुको देनेवाली श्री सरस्वती देवी (श्री भगवतकी वाणीकी अधिष्ठायिका देवी) सकल सिद्धि देओ ॥ ६ ॥

(६. यह श्लोकमें श्रुत देवकी स्तुति करी है.)

श्रीवीरशासनाधिष्ठं यक्षं मातङ्गनामकम् ॥
सिद्धायिकां त्वहं देवीं स्तुवे विघ्नोपशान्तये ॥ ७ ॥

वाले, ससारसमुद्रके पारंगामी, और अति कुशल (प्रविशारद=केवल ज्ञान, केवल दर्शन करके सयुक्त) ऐसे, हे, प्रथम तीर्थके करनेवाले (श्री आदीश्वर–ऋषभदेव भगवान्) भव्य जिवोंको भला सुख देनेवाले हो॥२॥

(२ यह श्लोकमें इस अवसर्पिणीके चौवीस तीर्थंकरोमें प्रथम तीर्थंकर श्री युगादि देवकी स्तुति है)

ये पूजितास्सुरगिरौ विविधैः प्रकारै
क्षीरोदसागरजलैरमरासुरेशैः ॥
जन्माभिषेकसमये वरभक्तियुक्ते-
स्ते श्रीजिनाधिपतयो भविकान् पुनन्तु ॥ ३ ॥

जन्माभिषेक समयमें, सुमेरु पर्वतपर उत्कृष्ट भक्तिवान चार जातिके (भुवनपति, वाणव्यतर, ज्योतिषि, वैमानिक) देवेंद्रोंने, क्षीर समुद्रके जलसें नाना प्रकारका पूजन किया, ऐसे श्री जिनाधिपति भव्य जीवोंको पवित्र करो ॥ ३ ॥

(३ यह श्लोकमें बावीस तीर्थंकरकी समुच्चय स्तुति है)

गतौ रागद्वेषौ विविधगतिसंचारजनकौ
महामल्लौ दुष्टावतिशयबलौ यस्य बलिन ॥
प्रभोर्देवार्यस्य प्रचुरतरकर्मारिविकलं
नमामो देवं त विबुधजनपूजाभिकलितम् ॥ ४ ॥

जीन बलवान, देव प्रधान (चौवीसमे तीर्थंकर श्री महावीर) प्रभुके, नाना प्रकारकी गतिओंमे (चार गति, चोरासी लक्ष जीवाजून) भ्रमण करानेवाले दुष्ट महामल्ल समान अतिशय बलवाले राग द्वेष नाशको प्राप्त हुए, उन बडे भारी कर्म शत्रु करके रहित, और देवसमूह करके पूजित, श्री जिनेश्वरदेवको (श्री महावीर–वर्द्धमान स्वामिको) हम नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥

(४ यह काव्यमें निकटोपकारी शासननायक श्री महावीर, चौवीसमे तीर्थंकरकी स्तुति व नमस्कार है)

ये नो पण्डितमानिनः शमदमस्वाध्यायचिन्ताचिता
रागादिग्रहवञ्चिता न मुनिभिः संसेविता नित्यशः ॥
नाकृष्टा विषयैर्मदैर्न मुदिता ध्याने सदा तत्परा-
स्ते श्रीमन्मुनिपुङ्गवा गणिवराः कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ॥ ५ ॥

जे पांडित्यमद रहित, क्रोधादिको शांत करनेमें, इंद्रियोंका दमन करनेमें, स्वाध्याय ध्यान करनेमें लीन, रागादि ग्रह करके अवंचित, (नही ठगाये हुवे,) मुनियों करके नित्य संसेवित, विषयों करके अलिप्त, (पांच इंद्रियोंके तेवीस विषयोंसें पराङ्मुख) अष्टमद (जातिमद, कुलमद, बलमद, रुपमद, तपमद, ज्ञानमद, लाभमद, ऐश्वर्यमद,) रहित, और ध्यानमें सदा तत्पर हैं, वे श्रीमान मुनियोंमें प्रधान गणधर और पूर्वाचार्य हमारें मंगल करो ॥ ५ ॥

(५. यह काव्यमें जिनके किये शास्त्रोंसें शास्त्रकारको बोध प्राप्त हुआ तिनका बहुमान किया है.)

कलमकलितपुस्तन्यस्तहस्ताग्रमुद्रा
दिशतु सकलसिद्धिं शारदा सारदा नः ॥
प्रतिवदनसरोजं या कवीनां नवीनां
वितरति मधुधारां माधुरीणां धुरीणाम् ॥ ६ ॥

जो कवियोंके मुखकमलमें नवीन (अपूर्वही) श्रेष्ठ और मधुर मधुधारा देती है, लेखनी संयुक्त पुस्तक धारण किया है हस्ताग्र भागमें जिसने अैसी मुद्रामूत्रिको धारण करनेवाली, और सारवस्तुको देनेवाली श्री सरस्वती देवी (श्री भगवतकी वाणीकी अधिष्ठायिका देवी) सकल सिद्धि देओ ॥ ६ ॥

(६. यह श्लोकमें श्रुत देवकी स्तुति करी है.)

श्रीवीरशासनाधिष्ठं यक्षं मातङ्गनामकम् ॥
सिद्धायिकां त्वहं देवीं स्तुवे विघ्नोपशान्तये ॥ ७ ॥

श्री महावीर स्वामीके शासनकी रक्षा करनेवाले मातंग यक्ष देवता और सिद्धायिका देवीकी, विघ्नोंकी शातिके लिये, स्तुति करता हु ॥ ७ ॥

अन्यानपि सुरान् स्मृत्वा जैनधर्मैकतत्परान्
तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रन्थोऽस्माभिः प्रतन्यते ॥ ८ ॥

जैन धर्ममें तत्पर सम्यग् दृष्टि दुसरे देवोंका स्मरण करके, तत्वनिर्णय प्रासाद नामा ग्रंथको हम विस्तार करते हैं ॥ ८ ॥

(७ ८ यह दो श्लोकमें सम्यग् दृष्टि देवोंका स्मरण करके शास्त्रका प्रारंभ सूचन किया है)

अथ प्रथमस्तम्भप्रारम्भः

विदित होवे के सप्रति कालमें कितनेक लोक ससारिक विद्याका अभ्यास करके अपने आपकों सर्वसें अधिक अकलवंत मानने लग जाते हैं, और ऐसे घमडमें घूट पहने फिरते हैं कि घोडोंकों भी मात करते हैं और कितनेक तो नास्तिकही बन जाते हैं कितनेक नवीन मिथ्या मतके पक्षी हो जाते हैं परतु पक्षपात छोडके सत्य धर्मका निश्चय करके स्वीकार करना दुर्लभ है हम बहुत नम्रतासें सर्व मतवालोंसें विनती करते हैं कि, हे प्रिय मित्रो। यद्यपि अपने अपने पितामह प्रपितामहादिकी परपरायसें अपने अपने कुलमें जो जो धर्मव्यवहार चला आता है, तिसकोंही सत्यधर्म मान रहे हैं, चाहे वो असत्यही होवे, ओर अन्य धर्मावलबियोंकों मिथ्या मतवाले मान रहे हैं, चाहो वो सत्य मतही होवे, पर यह सुज्ञ जनोंका लक्षण नही है क्योंकि, इस भरतखडमें जैनमत, वेदमत ओर बौद्धमत ये तीन मत बहुत कालसें प्रचलित हैं तिनमेसें वेदमतवाले कहते हैं, कि हमारा वेदमतही सबसें पुराना है, इसवास्ते सत्यधर्मका प्रतिपादक है ओर जैनमतवाले अपने मतकों सर्व मतोंस प्राचीन मानते है, ऐसेही बौद्धमतवाले मानते हैं इन तीनो मतोंमेंसे वेदकी रचनाका यूरोपियन पडित पुरानी मानते हैं

मोक्षमूलर भट्ट अपने रचे संस्कृत साहित्य ग्रंथमें यह भी लिखते हैं, कि वेदके छंदोमंत्र ऐसे हैं, जैसें अज्ञानीयोंके मुखसें अकस्मात् वचन निकले हों. और यह भी कहते हैं, कि जरथोस्ती धर्मपुस्तककी रचना वेदरचनासें पहिली वा वेदरचनाके समान कालकी है.

अब सोचना चाहिये कि, वेदमत और जरथोस्तीमतके पुस्तकोंसें पहिले कोई मत और कोई मतके पुस्तक भी अवश्य होने चाहिये. क्योंकि, मोक्षमूलरके लिखने मूजब वेदके छंदोभाग मंत्रभागकी रचनाको २९०० वा ३१०० वर्षके लगभग हूए हैं. फेर मोक्षमूलरजी कहते हैं, कि २२००० वर्ष पहिलें एशियाके अमुक अमुक हिस्सेमें अमुक अमुक जातिके लोक वस्ते थे तो क्या तिनके समयमें कोइ भी पुस्तक, कोइ भी धर्म, इस खंडमें नही था? यह कैसें माना जावे? इस हेतुसें यह कोइ भी नही कह सक्ता है, कि यही पुस्तक पहिला है, अन्य नही. इसवास्ते वेद सर्व पुस्तकोंसें पहिला पुस्तक सिद्ध नही होता है. हां, संप्रति कालमें जो वेदके पुस्तक हैं, वे जैनमतके संप्रति कालके पुस्तकोंसें प्राचीन रचनाके हैं. क्योंकि, वर्त्तमान कालमें जे जैनमतके पुस्तक हैं वे सर्व श्री महावीर अर्हन्के समयसें लेके पीछेही रचे गए हैं. क्योंकि, श्री महावीर भगवान्के, (११) इग्यारह वडे शिष्योंने नव वाचनामें द्वादशांगकी रचना करी थी. अर्थात् नव तरेंके आचारांग, नव तरेंके सूत्रकृतांग. यावत् नव तरेके दृष्टिवाद. तिनमेसें पांचवे गणधर श्री सुधर्मस्वामीकी वाचना विना, आठ वाचनाका व्यवच्छेद श्री महावीर और श्री गौतमगणधरके पीछेही हो गया था. संप्रति कालमें जे पुस्तक जैनमतमें प्रचलित हैं, वे सर्व श्री सुधर्मस्वामीकी वाचनाके हैं. इस वाचनाके पुस्तकोंको भी वहुत उपद्रव हो गुजरे हैं.

प्रथम तो नंद राजाके समयमें इस खंडमें वारां वर्षका प्रथम काल पडा, तिसमें भिक्षाके न मिलनेसें एक भद्रबाहुस्वामीको वर्जके सर्व साधुयोंके कंठाग्रसें द्वादशांगके पुस्तक सर्व विस्मृत हो गये थे. जव वारां वर्षका दुर्भिक्षकाल गया, तव पाटलीपुत्र नगरमें सर्व साधु एकट्ठे हूए; जिस जिस साधुको जो जो पाठ कंठ रह गया था, सो सो सर्व सं-

धान करके एकादशाग तो पूरे करे, और बारमे अगके पढनेवास्ते श्री सघने तीक्ष्ण बुद्धिवाले श्री स्थूलभद्रादि ५०० साधु नैपाल देशमें श्री भद्रबाहुस्वामीके पास भेजे तिनमेसें एक श्री स्थूलभद्रजीनेही दश पूर्व सूत्रार्थसें और चार पूर्व सूत्र मात्र पढे श्री स्थूलभद्रजीके शिष्य श्री आर्यमहागिरि और श्री आर्यसुहस्तिने दश पूर्वहि सूत्रार्थसें पढे तहासे लेके वज्रस्वामी तक दश पूर्वके कठाग्र ज्ञानवाले आचार्य रहे; परंतु अर्थांश तो क्रमसें न्यून न्यूनतर होता चला गया और वज्रस्वामी दश पूर्वधरने सर्व शास्त्रोंका उद्धार अर्थात् किसी जगे प्राचीन नाम निकालके नवीन नाम प्रक्षेप करे, अस्तोव्यस्त हुए आलापकोंको न्यूनाधिक करके स्थापन करे, इत्यादि उद्धार करा तिनके पीछे दशमा पूर्व पूर्ण व्यवच्छेद हूआ, अर्थात् श्री आर्यरक्षितसूरि साढे नव पूर्व कठाग्र ज्ञानवाले हूए, सपूर्ण दशमा पूर्व नही पढ सके

पीछे स्कदिलाचार्यके समयमें बारां वर्षीय पुन॰ काल पडा, तिसमें भिक्षाके न मिलनेसें क्षुधादोपसें साधुयोंकों अपूर्वार्थ ग्रहण १, अपूर्वार्थ स्मरण २, और श्रुतपरावर्त्तन ३, ये तीनो मूलसेंही जाते रहे और जो अतिशायी अर्थात् चमत्कारी लोकोंमें चमत्कार दिखलानेवाले बहुत शास्त्र नष्ट हो गए और, अगोपागादिमें जो ज्ञान था, सो भी पठन पाठन परावर्त्तनादिक न होनेसें भावसें नष्ट हो गया

बारा वर्ष पीछे सुभिक्ष होनेसें मथुरा नगरीमें स्कदिलाचार्य प्रमख श्रमण सघने एकत्र मिलके जो जिसके याद था, सो सर्व अनुपागादि एकत्र करके, ऐसेहि कालिक, उत्कालिक, श्रुत, और पूर्वगत किंचित् सधान करके रचे मथुरा नगरीमें पुस्तक जोडे गए, इस वास्ते इसकों जैन मतमें 'माथुरी वाचना' कहते है

कितनेक आचार्य ऐसे कहते है, कि पीछले बारावर्षीय दुर्भिक्षकालमें श्रुत नष्ट नही हूआ था, किंतु तिस समयमे तितनाहि ज्ञान रह गया था, शेष पहिलाही कठस भूल गया था केवल अन्य जे युगप्रधान सूत्राधक धारक थे, वे सर्व दुर्भिक्षमें मृत्युधर्मको प्राप्त हो गए थे,

एक श्री स्कंदिलाचार्यहि रह गये थे, तिनोंने मथुरा नगरीमें फेर अनुयोग प्रवर्त्तन करा, इस वास्ते 'माथुरी वाचना' कहते हैं.

जो सूत्रार्थ श्री स्कंदिलाचार्यने संधान करके कंठाग्र प्रचलित करा था, सोही श्री देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजीने, एक कोटी (१०००००००) पुस्तकोंमें आरूढ करा. सो ज्ञानमतोंके झगडोंसें और मुसलमानोंके राज्यके जुलमोंसें लाखों ग्रंथ जलाए गए. और लाखों ग्रंथ जैनी लोकोंकी अज्ञानतासें उद्धारके विना कराए, पाटणादि नगरोंमें भुसकी तरे ताडपत्रके पुस्तकोंके चूरसें कोठे कीतने भरे हैं.

इतिहासतिमरनाशकके रचनेवालेका ऐसा कथन है, कि अब भी जो पुस्तक जैसलमेर, खंभात, पाटण, अहमदावादादि स्थानोंमें विद्यमान हैं, वे पुस्तक देखने वैदिक मतवालोंके नसीबमें भी नही हैं.

पूर्वपक्षः—जब जैनमतके चौदह पूर्वधारी, दश पूर्वधारी, विद्यमान थे, तबसेंही जेकर ग्रंथ लिखे जाते तो जैनमतका इतना ज्ञान काहेको नष्ट होता? क्या तिस समयमें लोक लिखना नही जानते थे?

उत्तरपक्षः—हे प्रियवर! पूर्वोक्त महात्माओंके समयमें किसीकी भी शक्ति नही थी, जो संपूर्ण ज्ञान लिख सक्ता. और ऐसे ऐसे चमत्कारी विद्याके पुस्तक थे, जे गुरु योग्य शिष्योंके विना कदापि किसीकों नही दे सक्ते थे; वे पुस्तक कैसें लिखे जाते? और बीजक मात्र किंचित् लिखे भी गए थे. यह नही समजना कि तिस समयमें लोक लिखना नही जानते थे. क्योंकि, (७२) बाहत्तर कलाओंमें प्रथम कला लिखतकी है. और वे बाहत्तर (७२) कला इस अवसर्प्पिणी कालमें प्रथम श्री ऋषभदेवजीने अपने पुत्र और प्रजाकों सिखलाई. जिसमें लिखत भी श्री ऋषभदेवजीने, (१८), अष्टादश प्रकारकी सिखलाई. वे अठारह भेद लिपिके आगे लिखते हैं.

ब्राह्मी लिपि १, यवन लिपि २, दोषऊपरिका लिपि ३, वरोट्टिका लिपि ४, खरसापिका लिपि ५, प्रभारात्रिका लिपि ६, उच्चतरिका लिपि ७, अक्षरपुस्तिका लिपि ८, भोगयवत्ता लिपि ९, वेदनतिका लिपि १०, निन्हतिका लिपि ११, अंक लिपि १२, गणित लिपि १३, गांधर्व लिपि

१४, आदर्श लिपि १५, माहेश्वर लिपि १६, दामा लिपी १७, और बो लिदि लिपि १८, ये अठारह प्रकारकी लिपि श्री ऋषभदेवजीने ब्राह्मी नामा निज पुत्रीकों सिखलाई, इस वास्ते ब्राह्मी लिपि अथवा ब्राह्मी सस्कृतादि भेदवाली वाणी, भाषा, तिसकों आश्रित्य श्री ऋषभदेवजीने, या दिखलाई अक्षर लिखनेकी प्रक्रिया, सा ब्राह्मी लिपि, तिसके अठारह भेदं पीछेसें देशांतर कालातर पुरुषातरके भेद पाकर ये अठारह प्रकारकी लिपि अनेक रूपसें प्रचलित हो गई, परं मूल सर्व लिपियोंका यह अठारह भेदवाली ब्राह्मी लिपीही है इस वास्ते जे कोइ कहते हैं, कि प्राचीन आर्य लोक लिखनाही नहीं जानते थे, ये कहना प्रमाणिक नही है और लिखना तो जानते थे, परतु कल्पसूत्रकी भाष्य वृत्तिमें लिखा है, कि जो साधु सूत्र लिखे वा पास रक्खे तो तिसकों प्रायश्चित्त लेना पडता है, क्योंकि, पुस्तक लिखेगा तब स्याही, पट्टी, बधन, दोरे, वगैरे रखने, रस्तेमें बोझ उठाना, पुस्तकके पत्रोंमें अनेक सूक्ष्म जीव उत्पन्न होते हैं, इत्यादि अनेक दूषण होनेसें लिखनेका निषेध है और श्री देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजीने जो पुस्तक लिखे, सो अन्यगतिके न होनेसें, और सर्व ज्ञान व्यवच्छेद होनेके भयसें, और प्रवचनकी भक्तिसें लिखे हैं क्योंकि, जैनमतमें मैथुन वर्जी किसी वस्तुका एकांत निषेध नही है इस वास्ते अपवाद पदावलबके सूत्र सर्व लिखे और अब भी योही रीति प्रचलित है और वर्तमान कालमें जे जैनमतके पुस्तक विद्यमान हैं, उनोंसें जैनमतके आचार्य सत्यवादी और भवभीरु भी सिद्ध होते हैं क्योंकि, अपने मतके पुस्तकोंका जैसा वृत्तात बीता था, तैसाही लिख गए और अपनी कल्पनासें कोइ पाठ उलट पुलट नही करा, सो महानिशीथादि शास्त्रोंमें प्रगट देखनेमें आता है

---

१ इन अठारह प्रकारकी लिपिका स्वरूप किसी जगा भी नही देखा, इस वास्ते नही लिखा है, परंमें धीरावार लिखे हैं

२ जैसे वैदिक मतवालोंने वेद, उपनिषद, महाभारत, भागवत, पुराणादिमें करा है, ना पाठ भाग लिखा लोग

इस पूर्वोक्त सर्व लेखसें यही सिद्ध हुआ, कि जैनमतके सर्व सूत्र श्री महावीरजीसेंही प्रचलित हूए हैं; परंतु यह नही समझना कि शेष त्रेवीस (२३) तीर्थंकरोंके समयमे जैनमतके शास्त्र नही थे.

पूर्वपक्षः–त्रेवीस तीर्थंकरोंके समयमें किस किस नामके शास्त्र जैनमतके थे?

उत्तरपक्षः–जो नाम संप्रति कालमें आचारादि द्वादशांगोंका है, सोही नाम शेष तीर्थंकरोंके समयमे था.

पूर्वपक्षः–श्री ऋषभदेवके समयकेही शास्त्र श्री महावीरजीतांई तथा संप्रति कालमें भी क्यों नही रहे? और अजितादि त्रेविस तीर्थंकरोंको अपने अपने शासनको प्रचलित करने वास्ते नवीन नवीन द्वादशांगकी रचना करनेका क्या प्रयोजन था?

उत्तरपक्षः–हे भव्य! जे अनंत तीर्थंकर अतीत कालमें हो गए हैं, और जे अनंत तीर्थंकर आगामि कालमे होवेंगे, तिन सर्वके द्वादशांगी रचनाके तत्वमे किंचित्‌मात्रभी अंतर नही; किंतु पुरुष स्त्रीयोंके नाम, और गद्य पद्यादि रचना इत्यादिमे अंतर है, शेष तत्वस्वरूप एकसरीखा है; इस वास्ते जो श्री महावीरजीके समयकी रचना शास्त्रोंकी है, सोही श्री ऋषभदेवजीके समयमें थी. इस वास्ते जैनमतके पुस्तक सर्व मतोंके पुस्तकोंसें पुराने सिद्ध होते हैं.

और जो तीर्थंकर अपने अपने तीर्थमें नवीन उपदेश द्वादशांगीका करते हैं, वे अपना अपना तीर्थंकर नाम पुण्य प्रकृति रूप कर्मके क्षय करने वास्ते. क्योंकि, विना उपदेशके तीर्थ नही होता है; तीर्थके करे विना तीर्थंकर नाम कर्मका फल नही भोगा जाता है, और तीर्थंकर नाम कर्मके फल भोगे विना मुक्ति नही होती है; इस वास्ते उपदेश करते हैं. और इसी हेतुसें नवीन शास्त्र रचे जाते हैं, परंतु हकीकतमें पुरानेही हैं.

---

१ आचाराग १, सूत्रकृताग २, स्थानाग ३, समवायाग ४, विवाहप्रज्ञप्ति ५, ज्ञाताधर्मकथा ६, उपासक दशाग ७, अंतगड ८, अनुत्तरोववाइ ९, प्रश्न व्याकरण १०, विपाकश्रुत ११, और दृष्टिवाद १२.

पूर्व पक्ष—जैनमतके सर्व शास्त्र प्राकृत भाषामें रचे हैं, इस वास्ते प्रमाणिक नही हैं

उत्तर पक्ष —यह कहना अयुक्त है किसी भी भाषामें सच्चा पुस्तक लिखा हूआ होवे, सो सर्व सुज्ञ जनोंको प्रमाण है और प्राकृत भाषाकी बाबत सो वेदांग शिक्षामें ऐसें लिखा है

"त्रिषष्टि चतु षष्टिर्वा वर्णा शंभुमते मता ॥
प्राकृते सस्कृते चापि स्वय प्रोक्ता स्वयंभुवा ॥ ३ ॥"

भावार्थ यह है कि, त्रेसठ (६३) वा चौसठ (६४) वर्ण शंभुके मतमें प्रमाण हैं प्राकृतमें और सस्कृतमें आप स्वयंभूने कथन करे हैं और पाणिनी वररुचि प्रमुखोंने प्राकृतके व्याकरण रचे हैं जेकर प्राकृत भाषा प्रमाणिक न होवे तो व्याकरण क्यों रचे जाते?

हंटर साहिब अपने रचे संक्षिप्त हिंदुस्थानके इतिहासमें लिखते हैं कि, हिंदुस्थानकी मूल भाषा पुराणी प्राकृत है.

रुद्रटप्रणीत काव्यालंकारकी टिप्पणी करनेवाले लिखते हैं कि, प्राकृत भाषा प्रथम थी तिस्सेंही सस्कृत बनाई गई है और सस्कृत यह जो शब्द है, सो भी यही ज्ञापन करता है कि, असस्कृत शब्दोंको जब समारके रचे तिसका नाम संस्कृत है, सो पाठ लिखते हैं ॥

प्राकृतसंस्कृतमागधपिशाचभाषाश्च शूरसेनी च ।
षष्ठोत्र भूरि भेदो देशविशेषादपभ्रंश ॥ १२ ॥

प्राकृतेति । सकल जगज्जतूना व्याकरणादिभिरनाहितसंस्कारः सहजो वचनव्यापार प्रकृति । तत्र भवं सैव वा प्राकृतम् । 'आरिसवयणे सिद्ध देवाण अद्धमागहावाणी' इत्यादि वचनाद्वा प्राक् पूर्वं कृतं प्राकृत बालमहिलादिसुबोध सकलभाषानिबधनभूत वचनमुच्यते । मेघनिर्मुक्तजलमिवैकस्वरूप तदेव च देशविशेषात् संस्कारकरणाच्च समासादितविशेष सत् सस्कृताद्युत्तरभेदानाप्नोति । अत एव शास्त्रकृता प्राकृतमादौनिर्दिष्टं तदनुसस्कृतादीनि । पाणिन्यादिव्याकरणोदितशब्द-लक्षणेन सस्करणात् सस्कृतमुच्यते । इत्यादि

इस्से भी यही सिद्ध होता है कि, प्राकृत भाषा प्रथम थी. तिस भाषाको समारके रचना करनेसें वेदोंकी संस्कृत रची गई. और जब वेदोंकी संस्कृतकों पिछली व्याकरणोंसें मांजी, तब शुद्ध संस्कृत उत्पन्न भई. इससें यह सिद्ध हुआ कि, वेदोंकी संस्कृतसें पहिले प्राकृत पुस्तक होने चाहिये.

और गुर्जर देशीय मणिलाल नभुभाइ द्विवेदी अपने रचे सिद्धांतसार ग्रंथमें लिखते हैं कि "इस ठिकाणे भाषाशास्त्रीयोंमें बहुत भारी झगडा चलता है. जब, संस्कृत–सुधरी भाषा–ऐसा नाम पडा, तब किसमेसें सुधारी यह मालुम करना चाहिये. प्राकृतमेंसें, लोकभाषामेंसें सुधारी; ऐसें कहो तो प्राकृत प्राचीन भाषा होगी, और संस्कृत किसी कालमें सार्वत्रिक बोलाती भाषा न थी ऐसें मानना पडेगा. दूसरा मत ऐसा है, कि प्राकृत भाषा प्राचीन तो खरी, और उसके मिलापवाली वेद भाषामेंसें नवीन भाषा हुई सो संस्कृत; परंतु संस्कृत सार्वत्रिक उपयोगमें नही आती थी ऐसा नही. विद्वानो तथा उच्च वर्गके लोक संस्कृतही बोलते थे, और नीचलोक स्त्रीवर्ग इत्यादि प्राकृत बोलते थे. इस उभय पक्षके अनुयायी बहोत हैं; परंतु ज्यादा ख्याल दूसरे पक्ष तरफ है. स्लेगेल, बन्सन, वील्सन, मुर, गोल्डस्टकर, वेबर, बोप, मेक्समूलर वगैरे किसी भी पाश्चात्य पंडितके भाषा संबंधी लेखमें इस बातका विस्तार मिल जायगा."

ऊपर जो लेख लिखे हैं, सो कितनेही ग्रंथ और अनुमानद्वारा लिखे हैं. अब जैनमतके पुस्तकानुसार जो कथन है सो लिखते हैं. प्राकृत और संस्कृत ये दोनों भाषा अनादि सिद्ध है. तिनमें प्राकृत भाषा तीन तरहकी है. १ समसंस्कृत प्राकृत, २ तज्जा अर्थात् संस्कृत शब्दोंकों प्राकृत शब्दोंका निर्देश करणा. और ३ देशी, अर्थात् प्राकृत संस्कृत व्याकरणोंसें जिसकी सिद्धि न होवे; किंतु अनादिसिद्ध जे शब्द हैं, तिनकों देशी प्राकृत कहते हैं. जैसें श्रीपादलिप्तसूरिविरचित देशीनाममाला और तरंगलोला कथा वगैरे-तथा श्री हेमचंद्रसूरिविरचित देशीनाममाला-परंतु यह नही समझना कि, जो अनेक देशोंके शब्द एकत्र

करणे, तिसका नाम देशी प्राकृत है जैनमतके चौदह (१४) पूर्व तो प्रायः संस्कृत भाषामेंही रचे जाते हैं और अगादि शास्त्र प्राय प्राकृत भाषामेंही रचे जाते हैं तिसका कारण सस्कार वर्णनमें लिखेंगे

और प्राकृत भाषा प्राय विद्वज्जनमानमजिका भी है जैसें वृद्धवादीसूरिजीने, श्री सिद्धसेनदिवाकरकों एक गाथा प्राकृतकी पूछी, तिसका अर्थ तिनकों नही आया तथा जितने अर्थांशकों प्राकृत दे सक्ती है, तितने अर्थांश प्राय' सस्कृत नही दे सक्ती है' इस वास्ते प्राकृत भाषा बहुत गहनार्थवालीहै और इसी हेतुसें, जैनोंने अगोपागादिकी रचनामें प्राकृत भाषाही ग्रहण करी है

और दयानंदसरस्वतिजी जो लिखते हैं कि, जैनाचार्योंने अपने तत्वोंकों छाना रखनेके वास्ते धूर्ततासें प्राकृत भाषामें रचना करी है, इसका उत्तर, वाहजी वाह ! खूब विद्वत्ता दिखलाई। आपकों जो भाषा न आवे, उस भाषाके पुस्तक बनानेवाले वा लिखनेवाले धूर्त हैं इस्सें तो दयानदस्वामीके लेखानुसार जिसकों सस्कृत भाषा नही आती है उसके वास्ते तो जितने वैदिकमतके, तथा और मतके पुस्तक, जो कि सस्कृतादिमें बने हुए हैं, वे सर्व धूर्तोंके बनाए सिद्ध होवेंगे बलके वेद तो महा धूर्तोंके बनाए सिद्ध होवेंगे क्योंकि उनकी रचना तो सर्व सस्कृत ग्रथोंसें प्राय विलक्षणही है यदि कहोगे कि, वैदिक शब्दोंकों सिद्ध करनेवाला व्याकरण विद्यमान है, तिस्सें वेदकी रचना सिद्ध हो सक्ती है तो क्या प्राकृत शब्दोंकों सिद्ध करनेवाला व्याकरण नही है? यदि है, तो आपही धूर्त ठहरेंगे, जो कि सत्य शास्त्रोंकों असत्य और असत्यकों सत्य बनानेका उद्यम कर रहे हैं, वा करते थे यदि दयानदसरस्वतिजीने प्राकृत, शौरसेनी, मागधी, पिशाची, चूलिकापिशाची इत्यादि भाषायोंके व्याकरण पढे होते वा देखे होते तो कदापि ऐसा लेख नही लिखत, परतु वे तो सिवाय अष्टाध्यायीके कुछ भी नही जानते थे, जो कि, उनोंके बनाए ग्रथोंसें विद्वज्जन आपही जान

१ देखो अथ [illegible] आवश्यकप्रतिक्रमण चूर्णि

२ अन्य भी कोई अमण [illegible]

सक्ते हैं. अब सोचना चाहिये कि, प्राकृतमें जो रचना करी है सो धूर्त्ततासें करी है. यह लिखना सिवाय निर्विवेकी, कदाग्रहीसें और किसीका हो सक्ता है? यदि कोई किसी अपठित जाटके आगे सुंदर संस्कृत वेद, जिनशतक काव्यादि ग्रंथ रख देवें तो, क्या वो जाट तिसकों पढ सक्ता है? नही. जेकर वो जाट कहै, इन पूर्वोक्त शास्त्रोंके रचनेवाले धूर्त्त और अपंडित थे, तो क्या तिस जाटका वचन बुद्धिमान् सत्य मानेंगे? कदापि नही. ऐसेंही दयानंदसरस्वतिजीका कहना है. जितनाचिर षड्भाषाके व्याकरण और न्यायादि न पढे, तब तक वो पूर्ण विद्वानोंकी पंक्तिमें नही गिना जाता है.

और दयानंदसरस्वतिजीने जो वेदों ऊपर भाष्य रचा है, सो निःकेवल स्वकपोलकल्पित है. जो कोई विद्वान् देखता है, तो मुह मचकोडता है. और दयानंदस्वामीने जो वेदोंके स्वकपोलकल्पित अर्थ लिखे हैं, वे केवल वेदोंका विहूदापण छिपानेके वास्ते है. सज्जनोंकों ऐसा काम करणा उचित नही है, कि वेश्याकों सती सिद्ध करना; परंतु सतीकों झूठा कलंक लगा होवे तो सज्जन तिसको दूर करणेका यत्न करते हैं. और अपने अपने संप्रदायमें अपने अपने मतके पुस्तकोंके पूर्व पुरुषोके करे अर्थोंसे अपना स्वकपोलकल्पित मत सिद्ध न होनेसें अक्षरोंके अनुसार जो स्वकपोलकल्पित अर्थ करते हैं, वे महा मिथ्यादृष्टियोंके लक्षण है; जैसें, जैनमतके नामसें अपठित, जैनाभास, ढुंढक साधु करते हैं. तैसेंही दयानंदस्वामी पंडित कहलाके करते थे.

क्योंकि, ऋग्वेदादि चारों वेदोंमें जीवहिंसा और इंद्र, वरुण, कुबेर, नक्त, पूषा, यम, अश्विनौ, उषा, नदी इत्यादिकी स्तुति, और प्रार्थनाके सिवाय, और कितनीक जुगुप्सनीय, उपहास्यजनक वातोंके सिवाय जीवोंके कल्याणकारी मोक्ष मार्गका किंचित् भी उपदेश नही है. और न कोइ संसारकी उपकारिणी विद्याका कथन है. सो वाचक वर्गको मालुम होनेके वास्ते थोडासा लिख दिखाते हैं.

प्रथम वेदोंका हिंसकपणा देखना होवे तो हमारे बनाए अज्ञानति-

मिरभास्कर ग्रंथसें देख लेना जुगुप्सनीय, उपहास्यजनक बातों लिखनी हम अच्छा नही समझते हैं[१] और स्तुति प्रार्थना विषयक जो लेख है, नीचे लिखते हैं

॥ ऋग्वेद । मंडल १, अष्टक १, अनुवाक १ ॥

प्रथम नवऋचामें—अग्नि, वा, अग्निदेवताकी स्तुति है.

तदनु तीन ऋचामें—वायु, वा, वायु देवताका वर्णन है और आमंत्रण स्तुति है

तदनु तीन ऋचामें—ऐंद्रवायु देवताका आमंत्रण है

तदनु तीन ऋचामें—ऐंद्रवायु देवताका आमंत्रण है

तदनु तीन ऋचामे—मैत्रावरुण दो देवताका सामर्थ्य कथन है

त० ती०—अश्विनौ देव वैद्योंके गुण कथन, और उनोंका आमत्रण है

त० ती०—इन्द्रकों आमत्रण, और तिसके हरित् घोडेका वर्णन है

त० ती०—विश्वेदेवास इस नामके देवताका सामर्थ्य, और आमत्रण है

त० दो०—सरस्वती देवीका सामर्थ्य कथन है

त० एक०—सरस्वती नदीका वर्णन, और उपकार कथन है

॥ ऋ० अ० १ म० १ अ० २ ॥

प्रथम तीन ऋचामें—इन्द्रकों सोम रस पीनेके वास्ते आमंत्रण, सोमरस पीनेसें इन्द्र हमकों गौआ देवेगा

तदनु एक ऋचामें—यज्ञ करानेवाला यजमानकों कहता है, तू जा कर

---

१ मणिलाल नभुभाई अपने बनाए सिद्धांतसार पुस्तकमें लिखते हैं कि—यज्ञसंबंधी एकांत बहुत मुख्य रीतिसें विचारने जैसी है बहुत बडे यज्ञोंमें एक दोसें सौ सौ तक पशु मारनेका संप्रदाय नजरे आता है बकरे घोडे इत्यादि पशु मात्रका बलि दिया जाता था इतनाही नही परंतु अपनकों आश्चर्य लगता है कि मनुष्योंका भी भोग देनेमे आता था। पुरुषमेध इस नामका यज्ञही वेदमें स्पष्ट रहा हुआ है और शुनःशेपादि वृत्तांत भी इसी बातकी साक्षी देता है और इस रुधिरप्रसंगमें आनंद मानने उपरांत, मांस खानेसें, और आगीतक यज्ञमें तो सुरा (मदिरा) पानेसें भी, आर्यलोक मस्त होते मालूम पडते हैं

२ मिसरों दफनेकी रूग हा। ऋग्वेद अष्टक आठ (८) में और यजुर्वेद अध्याय तेवीस (२३) में देख लो.

इंद्रकों पूछ कि यज्ञ करानेवालेने इंद्रकी स्तुति ठीक करी है, कि नही? यह सुण कर इंद्र तेरेकों श्रेष्ठ धन पुत्रादि सर्व औरसें देवेगा.

तदनु एक ऋचामें—हमारे ऋत्विज इंद्रकों कहे, हमारे निंदक इस देशमें, तथा अन्य देशोंमें भी न रहे.

त० एक०—हे इंद्र! तेरे अनुग्रहसें हमारे शत्रु भी मित्रभूत हूए बोलते हैं.

त० तीन०—इंद्रकों सोमवल्लीका रस देवो, जिसकों पीके इंद्र वृत्रनामारि असुर शत्रुयांकों हननेवाला होवे, और संग्राममें, हे इंद्र! तूं अपने भक्तकी रक्षा करनेवाला हो, हे इंद्र! तेरेकों अन्नवाला करते हैं.

तदन एक ऋचामें—इंद्र धनकी भूमिका रक्षक है, इस वास्ते हे ऋत्विजो! तुम इंद्रकी स्तुति करो.

त० एक०—हे ऋत्विजो! शीघ्र इस कर्ममें आवो! आवो! आ कर बैठो; बैठ कर इंद्रकी स्तुति करो.

त० एक०—हे ऋत्विजो! तुम सर्व एकठे होकर इंद्रकों गावो.

त० एक०—पूर्व मंत्रोक्त गुणवाला इंद्र हमकों पूर्व अप्राप्त पुरुषार्थकों प्राप्त करो! और, सोइ इंद्र धन, स्त्री, अथवा बहुत प्रकारकी बुद्धियांकों सिद्ध करो.

त० नव०—इंद्रके रथ घोडोंका कथन, और इंद्रकी प्रार्थना.

त० एक०—इंद्रही अग्नि, वायु, सूर्य, नक्षत्रके रूपसें रहा हूआ है.

त० एक०—इंद्रके घोडे रथका वर्णन.

त० एक०—सूर्यका वर्णन.

त० पांच०—मरुतका वर्णन, पणि नामक असुरोंने स्वर्गसें गौआं चुरायके अंधकारमें छिपा रखी. पीछे इंद्र मरुतोंके साथ तिनकों जीतता हूआ, इंद्र मरुतकी स्तुति, और आमंत्रण.

त० एक०—इंद्र आकाशादिकोंसें ल्याके हमकों धन देवो.

त० नव०—इंद्रकी अनेक रूपसें स्तुति.

। ऋ० अ० १ मं० १ अ० ३ ।

प्रथम पांच ऋचामें–शत्रुकों जीतने वास्ते इन्द्रकी प्रार्थना, और धनादिका मागना

तदनु दश ऋचामें–इन्द्रकों धनके वास्ते प्रेरणा, हे इन्द्र! हमकों धन, गौआं, अन्न सयुक्त कीर्ति, हजारां सख्याका धन, व्रीहि, जव, वहुत रथ सहित अन्न दे। अपने धनकी रक्षा वास्ते हम इंद्रकों बुलाते हैं, स्तुति करते हुए सर्व यजमान इंद्रके सामर्थ्यकी प्रशसा करते हैं

तदनु नव ऋचामें–इन्द्रकी महिमा; धन, गौआ, दुग्ध दे। वर्षा प्रेरो। दुग्धवाली गौआ दे। हमारी स्तुति सुणो। इत्यादि

त० २३ ऋ०–हे इंद्र! हम तुजकों जानते हैं, तू सग्राममे हमारा बुलाना सुणता है, हजारोंका धन देनेवाला है इत्यादि इन्द्रकी स्तुति हमारी स्तुति तुमकों पहुंचे

त० ३ ऋ०–हे इंद्र! तेरे अनुग्रहसें हम शत्रुयांसें भय न पावेंगे, इन्द्र धनदाता है

त० ३ ऋ०–इन्द्रके गुणोंका कथन, वल नामक असुर देव सबधिनी गौआ चुरायके, किसी बिलमें गुप्त करी, फिर इन्द्र, सैन्य सहित बिलसें निकाल लाया तिसका कथन, और यजमान इन्द्रकी स्तुति कर्त्ता है

त० २ ऋ०–इन्द्रने शुष्ण असुरकों मारा, और इन्द्रकी स्तुति

। ऋ० अ० १ म० १ अ० ४ ।

१२ ऋ०–देव दुत, अग्नि, सर्व देवताओंकों बुलानेवाला है, इस यज्ञमें यजमानकी करी आहुति सर्व देवताओंकों पहुचानेवाला है, स्तुति योग्य है हे अग्ने! तू देवताओंकों बुलाके इस यज्ञ कर्ममें आके बैठ! तू हमारे शत्रुयाकों भस्म कर! इत्यादि

८ ऋ०–अग्नि विशेषका वर्णन

३ ऋ०–अग्नि विशेषका वर्णन

१ ऋ०–हे इन्द्रादि देवो! तुमारे वास्ते तृप्तिकारिका, सोमा, सपादन करी है

३ ऋ०—अग्निकों आमंत्रण, अग्निकी स्तुति, अग्निके रथके घोडे पुष्ट-शरीरवाले हैं, अग्निसें प्रार्थना, यज्ञ करनेवालोंकों पत्नीयुक्त कर.

१ ऋ०—हे अग्ने! तेरी जिव्हा करके देवते सोमका भाग पीवो.

१ ऋ०—देवताकों स्वर्गलोकसें यज्ञमें बुलाना.

३ ऋ०—हे अग्ने! तूं देवताओं सहित सोमसंबंधी मधुर भाग पी. हे अग्ने! तूं हमारे यज्ञकों निष्पादन कर. हे देवाग्ने! तूं अपने रोहित नामा घोडेकों जोडके इस यज्ञमें देवताओंकों बुलाव.

१२ ऋ०—हे इंद्र! ऋतुदेवसहित सोम पी. हे मरुत! तूं सोम पी. ऋतुके साथ हमारे यज्ञकों सोध. हे अग्नादेवते! तूं रत्नोंका दाता है, इस वास्ते सोम पी. हे अग्ने! तूं देवताकों बुलवाव. हे इंद्र! तूं ऋतुसहित धनभूतपात्रसें सोम पी. हे मित्रनामक और वरुणनामक देव! तुम ऋतुके साथ हमारे यज्ञमें व्याप्त हुओ. अग्निदेवकी धनके अर्थी ऋत्विज स्तुति करते हैं. द्रविणोदा देवता हमकों धन देवो. द्राविणोदा देव ऋतुयांके साथ नेष्टृसंबंधि पात्रसें सोम पीनेकी इच्छा करता है, इस वास्ते हे ऋत्विज! तुम होमके स्थानपर जाकर होम करो. हे द्रविणोदा देव! ऋतुयां सहित तेरेकों हम पूजते हैं. तूं हमकों धन दे. हे अश्विनौ देवते! तुम ऋतु सहित यज्ञके निर्वाहक हो. हे अग्निदेव! तूं गृहपतिके रूप करके ऋतु सहित यज्ञका निर्वाहक है.

९ ऋ०—हे इंद्र! सोम पीनेके वास्ते अपने घोडोंकों बुलाव. वेदीके पास इंद्रकों आहुति—हे इंद्र! तूं घोडोंसहित आव, हम आहुति देते हैं. हे इंद्र! तूं गौर मृगकी तरें तृषित (प्यासा) हुवा इस सोमकों पी. हे इंद्र! तिस तिस पात्रगत तिन तिन सोमोंकों बलके वास्ते तूं पी. हे इंद्र! यह जो श्रेष्ठ स्तोत्र हम करते हैं, सो तेरे हृदयकों सुखदायि होवे; स्तुति अनंतर तूं सोम पी. इंद्रकों यज्ञमें आमंत्रण—हे शतक्रतो! तूं हमकों वांछित फल, गौआं, घोडे सहित पूरण कर. हम भी ध्यान करके तेरी स्तुति करते हैं.

९ ऋ०–में अनुष्ठाता समीचीनराज्यसंयुक्त, सम्यग् दीप्यमान वा ऐसें इंद्रवरुणोंसबधी रक्षाकी प्रार्थना करता हु हे इंद्रवरुणौ! तुम अनुष्ठान करनेवालेके रक्षक हो इत्यादि–हे इंद्रवरुणौ! यदा यदा हम धन चाहते हैं, तदा तदा तुम देते हो हे इंद्रवरुणौ! तथाविध हवि ग्रहण करनेवाले तुह्मारे दोनोंके प्रसादसें हम अन्न देनेवाले पुरुषोंमें मुख्य होते हैं यह इंद्र धन देनेवालोंमेंसें प्रभूतधन देता है, वरुण स्तुति करने योग्य है, इंद्र वरुणके रक्षक होनेसें हम धनकों प्राप्त होते हैं, निधि भी करते हैं, हे इंद्रवरुणौ! हम तुमकों आहुति देते हैं, मणि आदि विचित्र धनके वास्ते, और शत्रुयोंमें हमको जययुक्त करो हे इंद्रवरुणौ! तुम हमारी बुद्धियामें सुख दो, हे इंद्रवरुणौ! तुम श्रेष्ठ स्तुतिको प्राप्त हो

॥ ऋ० अ० १ म० १ अ० ८ ॥

१ ऋ०–हे ब्रह्मणस्पते देव! मुजे अनुष्ठानकर्त्ताकों देवोंके विषे प्रकाशवाला कर, कक्षीवान् नामक ऋषिकी तरें

१ ऋ०–धनवान्, रोगोंकों हननेवाला, धनप्राप्तिवाला, पुष्टिकी वृद्धि करनेवाला, शीघ्र फलका देनेवाला, ऐसा ब्रह्मणस्पति देव, हमकों अनुग्रह करो

१ ऋ०–हे ब्रह्मणस्पते! शत्रुको दूर कर, हमको पाल

१ ऋ०–यह इंद्रदेव यक्ष्यमाण मनुष्यकों वर्द्धमान करता है, तथा ब्रह्मणस्पति, और सोम करते ह सो यजमान विनाशको प्राप्त नहीं होता है

१ ऋ०–हे ब्रह्मणस्पते! तू अनुष्ठान करनेवाले मनुष्यकी पापसें रक्षा कर, तथा सोम, इंद्र, दक्षिण, यह सर्व देव रक्षा करो

सदसस्पति नाम देवता, इंद्रका प्यारा, धनका दाता, इत्यादि चतुर्दश (१४) ऋचामें अनेक प्रकारके देवताओंका सामर्थ्य और आमंत्रणादि वर्णन हैं

८ ऋ०–मनुष्य तप करके देवते हूए, तिनको ऋभु कहते हैं तिनाको प्रीति उत्पन्न करने वास्ते ऋषिजाने अपने मुखकरके स्तोत्र उत्पन्न करा, तिस स्तोत्रका वर्णन

६ ऋ०—इंद्राग्नि आदि देवताका वर्णन.

१९ ऋ०—अनेक नामके देव देवीका वर्णन, और यज्ञके वास्ते आमंत्रण.

१ ऋ०—विष्णु परमेश्वर त्रिविक्रमावतारमें पृथिवीकी रक्षा करता भया, तिसका वर्णन.

१ ऋ०—विष्णु त्रिविक्रमावतारधारी इस जगत्कों उद्दिश्य विशेष करके पादक्रमण करता भया, इत्यादि—

१ ऋ०—कोइ भी जिसकों हनने सामर्थ्य नहीं, ऐसा विष्णु जगत्का रक्षक है. पृथिव्यादि स्थानोंमें तीन पादक्रमण करता हुआ. धर्म जो अग्निहोत्रादि तिसका पोषण करता हुआ.

१ ऋ०—हे ऋत्विगादयः! तुम विष्णुके कर्म पालनादि देखो, इत्यादि विष्णुवर्णन.

१ ऋ०—पंडित विष्णुसंबंधि स्वर्गस्थान उत्कृष्ट पदकों देखते हैं, जैसें चक्षु आकाशमें देखते हैं.

१ ऋ०—प्रमादरहित जे पंडित हैं, वे विष्णुके पदकों दीपाते हैं.

३ ऋ०—यज्ञके वास्ते ऐंद्रवायुदेवताका आमंत्रणादिवर्णन.

३ ऋ०—मित्रवरुणदेवताका आमंत्रणादिवर्णन.

६ ऋ०—मरुतदेवताकों विनती आमंत्रणादि.

३ ऋ०—पूषन्देवताका वर्णन.

८ ऋ०—आप् (पाणी)का वर्णन, आमंत्रण और तिससें विनती आदि.

१ ऋ०—अग्निका वर्णन.

॥ ऋ० अ० १ मं० १ अ० ६ ॥

१९ ऋ०—यूपकेसाथ यज्ञके वास्ते बंधा हूआ शुनःशेपनामा जन अपनी जिंदगीके वास्ते अनेक देवताओंको विनती करता है, और उन्होंकी स्तुति करता है; विशेषकरके वरुणदेवताकी स्तुति जीवन वास्ते करता है.

२१ ऋ०—शुनःशेपने वरुणकीही स्तुति करी तिसका वर्णन.

२२ ऋ०—वरुणके कहनेसें शुनःशेपने अग्निकी स्तुति करी.

१ ऋ०–अग्निकी प्रेरणासें शुनःशेपने विश्वेदेवताकी स्तुति करी

८ ऋ०–उखल मूसलकी स्तुति है, क्योंकि, उखल मूसल सोमको कूटके इंद्रके पीने योग्य रस काढते हैं

१ ऋ०–ऋत्विग्विशेष हे हरिश्चंद्र देवता। पक्षे हे हरिश्चंद्र! तू सोमको गाडीऊपर लाद दे

२२ ऋ०–विश्वेदेवोंकी प्रेरणासें शुनःशेपने इंद्रकी स्तुति करी हे इंद्र! हमकों गालीयां देनेवाले हमारे शत्रुयांकों तू मार इत्यादि

१ ऋ०–इंद्रने तुष्टमान होके शुनःशेपकों हिरण्यरथ दिया

३ ऋ०–इंद्रकी प्रेरणासें शुनःशेपने इंद्रके घोडोंकी स्तुति करी

३ ऋ०–इंद्रके घोडोंकी प्रेरणासें शुनःशेपने उषःकालाभिमानिनी देवताकी स्तुति करी.

॥ ऋ० अ० १ मं० १ अ० ७ ॥

१८ ऋ०–अग्निकी स्तुति, अग्निके कर्त्तव्य, हे अग्ने! नहुषनामा राजाका तूने सेनापतिपणा करा, किसी लडकी छोकरीका तू उपदेशक था,–इत्यादि

१५ ऋ०–इंद्रके पराक्रमोंका वर्णन, मेघकों मारा, जलकों भूमिमें गेरा, पर्वताकों तोडके नदीओंकों ले आया, अनेक असुरांकों मारे, वृत्रनामा असुरने मेघकों रोक रक्खा था तिसकों इंद्रने मारा–इत्यादि

१५ ऋ०–पणिनामा असुर देवताओंकी गौआंकों हरके ले गया, देवताओंने परस्पर सलाह करके इंद्रके पास पुकार करा, इंद्र गौआंकों ले आया, वृत्रके अनुचरोंकों मारा, मेघ वर्षाया, दैत्य मारे, कुत्सनामा ऋषिकी रक्षा करी, दशद्यु ऋषिकी रक्षा करी, शत्रुओंके भयसें जलमें मग्न हुआ, इंद्रके अनुग्रहसें वहार निकला, और उसकी रक्षा करी–इत्यादि

१२ ऋ०–अश्विनीकुमारोंका सामर्थ्य, उनोंकी प्रार्थना, रथके गर्दभोंका वर्णन, और यज्ञमें आमंत्रणादि

११ ऋ०–सूर्यका वर्णन, सूर्य बहुत देशोंसें आता है, सूर्यके रथका वर्णन, सूर्यके घोडोंका वर्णन, सोश्यावीनामा घोडा सूर्यका रथ वहता है, लोक स्वर्गोपलक्षित तीन है, दो लोक सूर्यके समीप होनेसें सूर्य उनकों

प्रकाशता है, तीसरा यमलोक है, जिसमें प्रेतपुरुष आकाशमार्गसें जाते हैं. सूर्यके किरण तीन लोकको प्रकाश करते हैं, ऐसे किरणोंवाला सूर्य रात्रिमें कहां है? यह रहस्य कोइ नहीं जानता है. सूर्य आठों दिशा और गंगादि सात नदीयों वा सात समुद्रांकों प्रकाशता है, सो यहां यज्ञमें आवो, सोनेके हाथोंवाला सूर्य स्वर्ग और पृथ्वीके बीचमें चलता है. सूर्यकी स्तुति. हे सूर्य! तेरे चलनेका मार्ग निर्मल है. आज तूं आ कर हमारी रक्षा कर–इत्यादि.

॥ ऋ० अ० १ मं० १ अ० ८ ॥

२० ऋ०–अग्निकी स्तुति, अग्निकों आमंत्रण,–हे अग्ने! तूं हमारे शत्रुओंकों मार, भस्म कर, राक्षसोंकों भस्म कर–इत्यादि.

४० ऋ०–काण्व ऋत्विक्का वर्णन, मरुत् देवताका सामर्थ्यवर्णन, काण्वकों यज्ञमें आमंत्रण, पुनः मरुत् देवताका सामर्थ्यवर्णन, उनकों विनती और आमंत्रण–४९ प्रकारके मरुत् देवताओंका सामर्थ्यवर्णन, यज्ञमें आमंत्रण और उनोंसें याचना करनी–इत्यादि.

८ ऋ०–ब्रह्मणस्पति देवताका सामर्थ्यवर्णन, उनकों आमंत्रण और उनसें अनेक वस्तुओंकी याचना–इत्यादि.

९ ऋ०–वरुण, मित्र और अर्यमा, इन तीनों देवताओंका कथन, और उनोंसें प्रार्थना, धन देवो, यजमानकी रक्षा करो, शत्रुओंकों मारो–इत्यादि.

१० ऋ०–पूषन् देवताका वर्णन, तिसका सामर्थ्य, तिसकों आमंत्रण और तिससें धनादिकी याचना–इत्यादि.

५ ऋ०–रुद्रनामक देवका वर्णन स्तोत्रद्वारा–

१ ऋ०–हमारे घोडे, मेष, मेषी, पुरुष, स्त्री, गौआदिके तांइ देव सुख करता है.

३ ऋ०–हे सोम! हमकों धन दे. इत्यादि वर्णन.

॥ ऋ० अ० १ मं० १ अ० ९ ॥

२४ ऋ०–अग्निकी स्तुति, अग्निका विचित्र प्रकारके विशेषणां सं-

युक्त वर्णन, हे अग्ने! तू धूमरूप चिन्हवाला है, तूं यहां आव, हमको धन दे—इत्यादि

१५ ऋ०—उषो देवता तथा अश्विनौ देवता इन्होंका वर्णन, उन्होंको आमन्त्रण, आवो, सोम पीवो—इत्यादि

१० ऋ०—हे अश्विनौ देवते! तुम सोम पीवो यजमानकों रत्नादि धन देवो इत्यादि प्रार्थना और आमन्त्रणादि

२० ऋ०—हे द्यु देवताकी पुत्रि उषः! अश्ववती, गोमती, तू धनवानोंका धन हमारे वास्ते प्रेरय, सोम पीने वास्ते सर्व देवोंकों बुलवा, इत्यादि प्रार्थना, अनेक प्रकारसें उष देवताकी स्तुति, और आमन्त्रण यज्ञके वास्ते—इत्यादि

१३ ऋ०—सूर्यकी स्तुति, सूर्यकों आमंत्रण यज्ञके वास्ते—हे सूर्य! तूं और कोइ जानेकों समर्थ नहीं तिस रस्तेकरके जानेवाला है, सोइ विख्याते हैं; दो हजार दोसौ और दो (२२०२) योजन अर्द्ध निमेषमात्रमें चलता है इस वास्ते तेरे तांइ नमस्कार हो हे सूर्य! तूं आकाशमें चलता है, यह सूर्य मेरे उपद्रव करनेवाले रोगोंकों नाश करता हुआ उदय हुआ—इत्यादि

॥ ऋ० अ० १ म० १ अ० १० ॥

१ ऋ०—इन्द्र आपही किसीका पुत्र हुआ, यद्वा, काण्वपुत्र, मेधातिथि यजमानका सोम, इन्द्र, मेषका रूप करके पीता हुआ, वो ऋषि उसकों मेष कहता हुआ, इसी वास्ते अबभी इन्द्रकों मेष कहते हैं उस मेषरूप इंद्रका वर्णन

१ ऋ०—वरुणकी स्तुति और तिसका वर्णन

८ ऋ०—विचित्र कर्त्तव्यों सहित इन्द्रकी स्तुति

१ ऋ०—शर्यात नामा राजऋषिके यज्ञमें भृगुगोत्रका उत्पन्न हुआ च्यवन महाऋषि आश्विनग्रहकों ग्रहण करता हुआ, इंद्र उसकों देख

१ हे सूर्य त्वं तरणिः तरिता अन्येन गन्तुमशक्यस्य महतोऽध्वनो गन्ताऽसि तथा च स्मर्यते 'योजनानां सहस्रे द्वे द्वे शते द्वे च योजने ॥ एकेन निमिषार्धेन क्रममाण नमोऽस्तु ते' इति भाष्यकार ॥

कर क्रोधित हुआ, उसकों इंद्र पीछा ल्याया, फेर तिसके तांइ सोम-दिया, इस अर्थका वर्णन है.

१ ऋ०–अंगराज किसी दिनमें अपनी राणीयांके साथ गंगामें जल-क्रीडा करता हुआ; तिस समयमें दीर्घतमा नाम ऋषिकों अपने स्त्री, पुत्र, नौकरादिकोंने दुर्वल होनेसें कुछभी नही कर सक्ता है, ऐसे द्वेषसे गंगामें वहा दिया; सो ऋषि वहता हुआ अंगराजके क्रीडाप्रदेशमें आ लगा. राजाने सर्वज्ञ जाणके तिस ऋषिकों वहार निकाला, और कहा कि, हे भगवन्! मेरे पुत्र नही हैं; यह पट्टराणी है, इसके विषें किसी पुत्रकों उत्पन्न कर. ऋषिनें मान लिया. पट्टराणीने भी राजाकेपास मान लिया. पीछे यह अतिशय वृद्ध जुगुप्सित मेरे योग्य नही है, ऐसी अपनी बुद्धिकरके विचारके राणीने अपनी उशित् नामा दासीकों भेजी. तिस सर्वज्ञ ऋषिने मंत्रपवित्र पानी करके दासीकों सिंचन करी; सो दासी ऋषिपत्नी हुई; तिसविषे कक्षीवान् नाम ऋषि उत्पन्न हुआ, सोही राजाका पुत्र हुआ. उसने वहुविध राजसूयादि यज्ञ करे, तिसके करे यज्ञोंसें तुष्टमान होके इंद्रने वृचया नामा स्त्री तिसके तांइ दीनी. तथा हे इंद्र! तूं वृषणश्व नाम राजाकी कन्या होता भया, जिसका नाम मेना था.–इत्यादि वर्णनका संक्षेप है.

इत्यादि प्रायः सारा ऋग्वेद इसीसें परिपूर्ण है. यजुर्वेदादिमें भी सिवाय हिंसा और प्रार्थनाके और कुछभी प्रायः नहीं है. और जो ऋग्वेदके सातमे मंडलमें ईश्वरकी स्तुति और स्वरूप लिखा है, सो सर्व सूक्त नवीन हैं. क्योंकि, तिनकी संस्कृत अन्य अष्टक मंडल सूक्तोंसें अन्य तरेकी शुद्ध माजन करी हुई मालुम होती है. दयानंदस्वामीजीने इन सूक्तोंके अर्थभी प्राचीन अर्थोंसें उलटे करे हैं; परंतु इससें कुछ पंडिताई हांसल नहीं होती है. भवभीरु और पंडितोंका तो यही काम होता है, सत्यकों ग्रहण करना, असत्यकों त्याग करना. ओर असत्यकों जो मनःकल्पित अर्थ हेतु–युक्तिद्वारा सत्य सिद्ध करना है, सो तो कदाग्रहीका काम है. आर असल प्राचीन वेदमंत्रोंमें अनीश्वरी, पूर्वमीमांसा, अर्थात् जैमनीय मतका प्रतिपादन है, इस वास्तेही मीमांसक विधि-

वाक्यकों वेद मानते हैं; शेष ईश्वर, ईश्वरस्तुति, ईश्वरस्वरूप और वेदांत अद्वितीय ब्रह्मकी प्रतिपादक श्रुतियां, यह सर्व ऋषियोंने पीछे प्रक्षेप करी हैं, ऐसें मानते हैं जैन मतका शास्त्रभी पूर्वोक्त मीमांसक मतकी गवाही देता है यदुक्त षड्दर्शनसमुच्चये श्रीहरिभद्रसूरिपादैः ॥

जैमिनीया पुन प्राहुः, सर्वज्ञादिविशेषण. ॥
देवो न विद्यते कोपि, यस्य मान वचो भवेत् ॥ १ ॥
तस्मादतींद्रियार्थाना, साक्षाद्द्रष्टुरभावतः ॥
नित्येभ्यो वेदवाक्येभ्यो, यथार्थत्वविनिर्णय ॥ २ ॥
अतएव पुरा कार्यो, वेदपाठ प्रयत्नतः ॥
ततो धर्मस्य जिज्ञासा, कर्त्तव्या धर्मसाधनी ॥ ३ ॥
नोदनालक्षणो धर्मो, नोदना तु क्रियाप्रति ॥
प्रवर्त्तक वच. प्राहुः, स्व कामोग्निं यजेद्यथा ॥ ४ ॥

भावार्थ—जैमनीय पुनः कहते हैं कि, सर्वज्ञादि विशेषणवाला ऐसा कोइ देव नहीं है कि, जिसका वचन प्रमाण होवे ॥ १ ॥ तिस वास्ते अतींद्रिय अर्थोके साक्षात् द्रष्टाके अभावसें नित्य ऐसें वेदवाक्योंसें यथावस्थित पदार्थत्वका विशेष निर्णय होता है ॥ २ ॥ इस वास्ते प्रथम प्रयत्नसें वेदपाठ करना, पीछे धर्मसाधन करनेवाली धर्मजिज्ञासा करनी ॥ ३ ॥ वेदवचनकृतनोदना, प्रेरणालक्षण धर्म; और नोदना क्रियाके प्रतिप्रवर्त्तकका वचन, जसें स्वर्गका कामी अग्निका यजन करे ॥ ४ ॥

और जिन सूक्तोंसें ईश्वरका स्वरूप कथन करा है, सो भी प्रमाणयुक्तिसें बाधित है, सो स्वरूप थोडासा आगेकों लिख दिखावेंगे और वेदोंकी उत्पत्ति जनमतवाले जैसें मानते हैं, तैसें जैनतत्वादर्श नामक (संवत १९४० का छपा) पुस्तकके ५१० सें लेके ५२२ पृष्ठतक जाननी ब्राह्मण लोक जिसतरें वेदकी संहिता उत्पन्न भई मानते हैं, तैसें महीधरकृत यजुर्वेदभाष्य, और अज्ञानतिमिरभास्कर ग्रंथसें जान लेनी इस वास्ते वेद सर्वज्ञ अष्टादश दूषणरहित भगवतके कथन करे हूए नहीं हैं; तो फर ये

पुस्तक प्राचीन हुए वा नवीन हुए तो इनसें कुछभी सत्य मोक्षमार्गकी सिद्धि नही होती है. यह किंचित्मात्र ग्रंथसमीक्षाविषयक लिखा, इसके आगे देवविषयक स्वरूप लिखा जायगा, जोकि ध्यान देकर वाचनेके योग्य है.

इति श्रीमद्विजयानन्दसूरिकृते तत्वनिर्णयप्रासादे ग्रंथ-
समीक्षाविषये प्रथमः स्तंभः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयस्तम्भप्रारम्भः

अब इस द्वितीय स्तंभमें थोडासा देवविषयक लिखते हैं. क्योंकि, कोइ लोक कहते हैं कि, जैनमतवाले ब्रह्मा, महादेव और विष्णुकों नहीं मानते हैं. इस वास्ते जैनमत प्रमाणिक नही है; परंतु यह कहना उन मित्र लोकोंको अच्छा नही है. क्योंकि, असली ब्रह्मा, महादेव और विष्णु जो है, तिनकों तो जैनमतवालेही मानते हैं. और कल्पित जो ब्रह्मा, महादेव, विष्णु है तिनकों अन्य मतवाले मानते हैं.

पूर्वपक्षः—जैनमतवाले जैसें ब्रह्मा, महादेव और विष्णुकों मानते हैं, तिनका स्वरूप लिखो; जिससें हरेक वाचकवर्गकों मालुम हो जावे कि, जैनमतवाले ऐसे ब्रह्मा, महादेव और विष्णुकों मानते हैं.

उत्तरपक्षः—हे प्रियवर! मेरी इतनी बुद्धि वा शक्ति नही है, जो मैं यथार्थ ब्रह्मा, महादेव और विष्णुका पूरेपूरा स्वरूप लिख सकूं. तोभी पूर्वाचार्योंके प्रसादसे किंचित्मात्र लिखता हूं; जिसको ध्यान देके पढनेसें मालुम होगा कि, ब्रह्मा, महादेव और विष्णु ऐसे होते हैं.

प्रशांतं दर्शनं यस्य सर्वभूताभयप्रदं ॥
मांगल्यं च प्रशस्तं च शिवस्तेन विभाव्यते ॥ १ ॥

भाषार्थः—जिस महादेवका अथवा तिसकी प्रतिमाका दर्शन प्रशांत है, दर्शन करनेवालेके मनकों प्रशांत करनेका हेतु होनेसें प्रशांत दर्शन

और तिनकी मूर्ति निरुपाधिक प्रशांतरूप होनेसें प्रशात दर्शनवाली है क्योंकि, जो त्रिभुवनमें प्रशांतरूप परिणामवाले परमाणु भगवान्‌के शरीरको लगे हैं, तैसें परमाणु तितनेही जगत्‌में हैं, इसवास्ते भगवान्‌के प्रशांतरूप समान अन्यरूप किसीका भी नही है तथा तिनकी मूर्ति जैसी प्रशाताकारवाली है, तैसी जगत्‌में किसी भी देवकी नही है, इस वास्ते भगवान्‌का प्रशांत दर्शन है और सर्वभूत प्राणियोंको अभयदान देनेवाला है, " अभय दयाण इति वचनात् " क्योंकि, विद्यमान भगवानके स्वरूप और तिनकी मूर्तिके सरूपमें कोईभी वस्तु भय देनेवाली नही है जिसके हाथमें त्रिशूल, चक्र, परशु, तलवार आदि शस्त्र होवेंगे, वो देव अभय देनेवाला नही है, परतु किसी वैरीके भयसें वा किसीके मारनेवास्ते शस्त्र धारण करे हैं भगवान्‌में पूर्वोक्त दूषण नही हैं, इसवास्ते अभयदानका दाता है और मागल्यरूप है " अरिहता मगल इति वचनात् " और प्रशस्त भला है, प्रशस्त वस्तुरूप होनेसें इस करके पूर्वोक्त विशेषणोंवाला होनेकरके शिव कहीये है ॥ १ ॥

महत्वादीश्वरत्वाच्च यो महेश्वरता गतः ॥
रागद्वेषविनिर्मुक्त वदेऽह त महेश्वरम् ॥२॥

भापार्थ –प्रथम श्लोकमें शिवका सरूप कथन करा, अथ महेश्वरका सरूप कहते हैं बडा होनेसें और ईश्वर होनेसें जो महेश्वरताकों प्राप्त हुआ है, तिहां महत् शब्दका अर्थ बडा है, शुद्ध स्वरूप शुद्ध ज्ञानादि गुणोंसें, बडा होनेसें और सर्व देवताओंका ठाकुर (पूज्य) अलंघनीय आज्ञावाला और सर्वका नायक, अग्रेश्वरी होनेसें ईश्वर क्योंकि, जो चैतन्य जड पदार्थ जगत्‌में है, वे सर्व तिसकी स्याद्वाद मुद्रारूप आज्ञाका उल्लंघन नही कर सक्ते हैं. और जो उल्लंघन करता है, सो तीन कालमें भी वस्तुसरूपकों प्राप्त नही होता है उक्त च श्रीमद्धेमचन्द्रसूरिप्रवरैः ॥

आदीपमाव्योम समस्वभावं स्याद्वादमुद्रानतिभेदि वस्तु ॥
तन्नित्यमेवैकमनित्यमन्यदिति त्वदाज्ञाद्विषता प्रलापाः ॥१॥

भाषार्थः–'आदीपं' दीपकसें लेके 'आव्योम, व्योम मर्यादीकृत्य' आकाशपर्यंत, सर्व वस्तु पदार्थस्वरूप जो हैं, सो समस्वभाव हैं; तुल्यरूप हैं स्वभावस्वरूप जिसका, सो समस्वभाव. क्योंकि, वस्तुका स्वरूप द्रव्यपर्यायात्मक है, ऐसा हम कहते हैं. तैसेंही वाचक मुख्य श्री उमास्वातिजी तत्वार्थसूत्रमें कहते हैं. "उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सदिति" जो उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यकरके युक्त है सोइ सत् है. और जो सत् है सोई वस्तुका लक्षण है. समस्वभाव सर्व वस्तुयों किस हेतुसें? ऐसें पृछकके पूछे थके विशेषणद्वारकरके हेतु कहते हैं. 'स्याद्वादमुद्रानतिभेदि'– 'स्यात्' ऐसा अव्यय अनेकांतका द्योतक है. तब तो स्याद्वाद (अनेकांतवाद) नित्य–अनित्यादि अनेक धर्मोंके शबल स्वभाववाला एक वस्तुका मानना, तिसकी मुद्रा (मर्यादा) तिसको जो उल्लंघन न करे (न तोडे) सो स्याद्वादमुद्रानतिभेदि वस्तु है. जैसें न्याय एकनिष्ट न्यायतत्पर राजाके राज्यशासन चलाते हुए, सर्व तिसकी प्रजा तिसकी मुद्रा (मर्यादा) का अतिक्रम नही करती हैं. जेकर अतिक्रम करे तो तिसके सर्व अर्थकी हानि होवे है. ऐसेंही विजयवंत निःकंटक स्याद्वाद महानरेंद्रके हुए, तिसकी स्याद्वादमुद्राका सर्वही पदार्थ अतिक्रम (उल्लंघन) नही कर सकते हैं. जेकर उल्लंघन करे तो तिनको स्वरूप व्यवस्थाकी हानिकी प्रसक्ति होनेसें अवस्तुपणेका प्रसंग होवेगा. और सर्व वस्तुयोंका जो समस्वभाव कथन करा है, सो परवादियोंको जो अभीष्ट मान्य है, एक व्योमादि वस्तु नित्यही है, अन्यत् प्रदीपादि अनित्यही है, ऐसे वादके प्रतिक्षेप खंडनका बीज है. सर्वही भाव पदार्थ द्रव्यार्थिक नयापेक्षासें नित्य है, और पर्यायार्थिक नयके मतसें अनित्य है. तहां एकांत अनित्यपणेवादीयोंने अंगीकार करे प्रदीपको प्रथम नित्यानित्यपणेके व्यवस्थापनविषे दिङ्मात्र (संक्षेपमात्र) कथन करते हैं. तथाहि प्रदीपपर्यायको प्राप्त हुए तैजस परमाणु जे हैं, वे स्वभावें वा तैलके क्षयसें वा पवनके अभिघातसें ज्योतिःपर्यायको त्यागके तमोरूप पर्यायांतरको प्राप्त होते हुए भी एकांत अनित्य नही हैं. क्योंकि, पुद्गल द्रव्यरूपकरके वे सदा अवस्थितही हैं. इतने मात्रसेंही अनित्यता नही

है कि, पूर्व पर्यायका नाश और उत्तर पर्यायका उत्पाद होना जैसें मट्टीरूप द्रव्य, स्थासक, कोश, कुशूल, शिवक, घटादि अवस्थांतरांको प्राप्त हुआ भी, एकांत विनष्ट नही होता है तिन अवस्थायोंमें भी, मृत्तिकाद्रव्यके अनुगमको आबालगोपालादिकोंको प्रतीत होनेसें और ऐसें भी न कहना कि, अंधकार, पुद्गलरूप नही है, नेत्रोंके विषयकी अन्यथा अनुपपत्ति होनेसें प्रदीपालोकवत् तिसको पौद्गलिकपणा सिद्ध है

पूर्वपक्ष—जो चाक्षुष है, सो सर्व अपने प्रतिभासमें आलोककी अपेक्षा करता है परंतु तम ऐसा नही है, तो फिर तमको कैसें चाक्षुषपणा होवे?

उत्तरपक्ष—उलूकादिकोंको तिसके विनाभी अंधकारके प्रतिभास होनेसें जिन अस्मदादिकोंने अन्यत् चाक्षुष घटादिक आलोक विना उपलभ नही करीये है, तिनोही अस्मदादिकोंने तिमिरको देखीये है भावोंके विचित्र होनेसें अन्यथा कैसें पीत श्वेतादि भी, स्वर्ण, मुक्ताफलादि पदार्थ आलोककी अपेक्षासें दीखते हैं, और प्रदीप चंद्रादि प्रकाशांतरकी अपेक्षा रहित दीख पडते हैं इससें सिद्ध हुआ कि, तम चाक्षुष द्रव्य है नेत्रोंसें दीखनेवाला द्रव्य है, और रूपवान् होनेसें स्पर्शवाला भी जाना जाता है, शीतस्पर्शके ज्ञानका जनक होनेसें और जे अनिबडावयवत्व, अप्रतिघातित्व, अनुद्भूतस्पर्शविशेषवत्त्व, अप्रतीयमान खंडावयविद्रव्याविभागत्व, इत्यादि तमके पौद्गलिकपणेके निषेध वास्ते परवादियोंने साधन उपन्यास करे हैं, वे सर्व प्रदीप प्रभाके दृष्टांत करकेही प्रतिषेध करने योग्य हैं, तुल्ययोग क्षेम होनेसें और ऐसें भी न कहना कि, तैजस परमाणु तमपणे कैसें परिणमते हैं? क्योंकि, पुद्गलोंमें तिस तिस सामग्रीके सहकारी हुआ, विसदृशकार्यका उत्पादकपणा भी देखनेमें आता है देखा है आर्द्रेंधनके संयोगसें, भास्वररूप भी अग्निसें, अभास्वररूप धूमकार्यका उत्पाद इस हेतुसें सिद्ध हुआ कि, नित्यानित्यरूप प्रदीप है जिस अवसरमें बूझनेसें पहिले देदीप्यमान दीप है, तिस अवसरमें भी नवीन नवीन पर्यायोंके उत्पाद व्ययका भागी होनेसें और प्रदीप अन्वयके होनेसें नित्यानित्यरूपही दीपक है

है कि, पूर्व पर्यायका नाश और उत्तर पर्यायका उत्पाद होना जैसें मट्टीरूप द्रव्य, स्थासक, कोश, कुशूल, शिवक, घटादि अवस्थांतरांको प्राप्त हुआ भी, एकांत विनष्ट नही होता है तिन अवस्थायोंमें भी, मृत्तिकाद्रव्यके अनुगमको आबालगोपालादिकोंको प्रतीत होनेसें और ऐसें भी न कहना कि, अंधकार, पुद्गलरूप नही है, नेत्रोंके विषयकी अन्यथा अनुपपत्ति होनेसें प्रदीपालोकवत् तिसको पौद्गलिकपणा सिद्ध है

पूर्वपक्ष —जो चाक्षुष है, सो सर्व अपने प्रतिभासमें आलोककी अपेक्षा करता है परंतु तम ऐसा नही है, तो फिर तमको कैसें चाक्षुषपणा होवे ?

उत्तरपक्ष —उलूकादिकोंको तिसके विनाभी अंधकारक प्रतिभास होनेसें जिन अस्मदादिकोंने अन्यत् चाक्षुष घटादिक आलोक विना उपलभ नही करीये है, तिनोंही अस्मदादिकोंने तिमिरको देखीये है भावोंके विचित्र होनेसें अन्यथा कैसें पीत श्वेतादि भी, स्वर्ण, मुक्ताफलादि पदार्थ आलोककी अपेक्षासें दीखते हैं, और प्रदीप चंद्रादि प्रकाशांतरकी अपेक्षा रहित दीख पडते हैं इससें सिद्ध हुआ कि, तम चाक्षुष द्रव्य है नेत्रोंसें दीखनेवाला द्रव्य है, और रूपवान् होनेसें स्पर्शवाला भी जाना जाता है, शीतस्पर्शके ज्ञानका जनक होनेसें और जे अनिबडावयवत्व, अप्रतिघातित्व, अनुद्भूतस्पर्शविशेषवत्त्व, अप्रतीयमान खडावयविद्रव्याविभागत्व, इत्यादि तमके पौद्गलिकपणेके निषेध वास्ते परवादियोंने साधन उपन्यास करे हैं, वे सर्व प्रदीप प्रभाके दृष्टांत करकेही प्रतिषेध करने योग्य हैं, तुल्ययोग क्षेम होनेसें और ऐसें भी न कहना कि, तैजस परमाणु तमपणे कैसें परिणमते हैं ? क्योंकि, पुद्गलोंमें तिस तिस सामग्रीके सहकारी हुआ, विसदृशकार्यका उत्पादकपणा भी देखनेमें आता है देखा है आर्द्रेंधनके संयोगसें, भास्वररूप भी अग्निसें, अभास्वररूप धूमकार्यका उत्पाद इस हेतुसें सिद्ध हुआ कि, नित्यानित्यरूप प्रदीप है जिस अवसरमें घुझनेसें पहिले देदीप्यमान दीप है, तिस अवसरमें भी नवीन नवीन पर्यायोंके उत्पाद व्ययका भागी होनेसें और प्रदीप अन्वयके होनेसें नित्यानित्यरूपही दीपक है

यथासंख्य उत्तर करके पूर्वतर नित्यही एक है, सो ऐसें ज्ञापन करता है कि, जो अनित्य है सो भी कथंचित् नित्यही है. और जो नित्य है, सो भी कथंचित् अनित्यही है. प्रकांतवादीयोंने भी एकही पृथ्वीमें नित्यानित्यत्व माना है. "तथा च प्रशस्तकारः' पृथिवी दो प्रकारकी है. नित्या और अनित्या, परमाणु लक्षणा नित्या है, और कार्यलक्षणा अनित्या है. और ऐसें भी न कहना कि यहां परमाणुकार्य द्रव्यलक्षणविषय दो भेदोंसें एकाधिकरण नित्यानित्य नही है. क्योंकि, पृथिवीत्वका दोनों जगे अव्यभिचार होनेसें. ऐसें अप् आदिकमें भी जानना. आकाशसें भी तिनोने संयोगविभाग अंगीकार करनेसें अनित्यत्व युक्तिसें मानाही है. तथा च स एवाह' शब्दकारणत्व वचनसें संयोगविभाग हैं. ऐसें नित्यानित्य दोनों पक्षोंको संवलितत्व है. और यह स्वरूप लेशमात्रसें ऊपर लिख आए हैं. प्रलापप्रायत्व परवादीयोंके वचनोंका इस प्रकारसें समर्थन करना योग्य है. वस्तुका प्रथम तो अर्थक्रियाकारित्व लक्षण है, सो लक्षण एकांत नित्य आनित्य पक्षोंमें घटता नही है. अप्रच्युत अनुत्पन्न स्थिरैकरूप जो नित्य है, सो क्रमकरके अर्थक्रिया करता है, वा अक्रम करके. परस्पर व्यवच्छेद रूपोंको प्रकारांतरके असंभव होनेसे तहां क्रम करके अर्थक्रिया तो नही करता है. क्योंकि, सो कालांतरभाविनीक्रिया प्रथम क्रिया कालमेंही जबरदस्तीसें करे समर्थको कालक्षेप करना अयोग्य है; कालक्षेपिको असमर्थ प्राप्ति होनेसें. जेकर कहेंगे समर्थ भी तिस तिस सहकारिके समवधानके हुए तिस तिस अर्थको करता है. तब तो सो समर्थ नहीं है. अपर सहकारिकी सापेक्षवृत्ति होनेसें. सापेक्ष जो है, सो समर्थ नही. इस न्यायसें जेकर कहोगे वो तो सहकारिकी अपेक्षा नही करता है. किंतु कार्यही सहकारिके न हुए, नही होता है, इस वास्ते तिनकी अपेक्षा करता है. तब तो सो भाव समर्थ है वा असमर्थ है? जेकर समर्थ है तो काहेको सहकारीयोंके मुखको देखता है ? जलदीही क्यों नही करता है ?

पूर्वपक्षः—समर्थ भी बीज, पृथिवी, जल पवनादि सहकारीयोंकेसहितही अंकुरको करता है, अन्यथा नही.

उपचारको भी किंचित् साधर्म्यद्वारसें मुख्यार्थका स्पर्शि होनेसें प्रमाणता है आकाशका जो सर्वव्यापकत्व मुख्य प्रमाण है सो तिस तिस आधेय घटपटादि सबंधि नियत प्रमाणके वशसें कल्पित भेदके हुए प्रतिनियत देशव्यापि करके व्यवहार करते हुए घटाकाश पटाकाशादि तिस तिस व्यपदेशका निबंधन होता है और तिस तिस घटादि संबंधके हुए व्यापकपणे करके अवस्थित आकाशको अवस्थांतरकी आपत्ति है, तब तो अवस्थाके भेद हुए अवस्थावालेका भी भेद है अवस्थाको तिससें अविष्वग्भाव होनेसें सिद्ध हुआ कि, नित्यानित्य आकाश है स्वयभूमतवाले भी नित्यानित्यही वस्तु मानते हैं 'तथा चाहुस्ते' तीन प्रकारका निश्चय यह परिणाम है धर्मिका धर्मलक्षण अवस्थारूप है सुवर्ण धर्मि, तिसका धर्म परिणाम वर्द्धमान रुचकादि धर्मका लक्षण परिणाम अनागतादि है यदा यह हेमकार वर्द्धमानकको भागके रुचककी रचना करता है, तदा वर्द्धमानक वर्त्तमानता लक्षणको छोडके अतीततालक्षणको प्राप्त होता है और रुचक तो अनागतता लक्षणको त्यागके वर्त्तमानताको प्राप्त होता है, और वर्त्तमानताको प्राप्त हुआ भी, रुचक नव पुराणादि भावको प्राप्त होता हुआ अवस्था परिणामवान् होता है सो यह तीन प्रकारका परिणाम धर्मिके धर्मलक्षण अवस्था जे हैं, सो धर्मिसें भिन्न भी हैं, और अभिन्न भी हैं, ते धर्मिसें अभेद होनेसें नित्य हैं और भेद होनेसें उत्पत्तिविनाशविषयत्व है ऐसें दोनोही उपपन्न होते हैं

अथ इस काव्यके उत्तरार्द्धका विवरण करते हैं तन्नित्यमेवैकम् इत्यादि—ऐसें उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकत्व सर्व भावोंके सिद्ध हुआ भी, एक आकाशादिक नित्यही है, और अन्यत् प्रदीप घटादिक अनित्यही है, इस प्रकारसें दुर्नयवादापत्ति होवे है अनंतधर्मात्मक वस्तुमें स्वाभिप्रेतनित्यत्वादिधर्मके सिद्ध करनेमें तत्पर होना, और शेष धर्मोंके तिरस्कार करनेमें प्रवर्त्त होना दुर्नयोंका लक्षण है इस उल्लेख करके तेरी आज्ञाके द्वेषी तेरे कथन करे शासनके विरोधियोंके प्रलापा प्रलपितानि असंबद्धवाक्य तिनके हैं यहां प्रथम आदीप मिति इससें परप्रसिद्धिकरके अनित्यपक्ष उल्लेखके हुए भी जो आगे

यथासंख्य उत्तर करके पूर्वतर नित्यही एक है, सो ऐसें ज्ञापन करता है कि, जो अनित्य है सो भी कथंचित् नित्यही है. और जो नित्य है, सो भी कथंचित् अनित्यही है. एकांतवादीयोंने भी एकही पृथ्वीमें नित्यानित्यत्व माना है. "तथा च प्रशस्तकारः' पृथिवी दो प्रकारकी है. नित्या और अनित्या, परमाणु लक्षणा नित्या है, और कार्यलक्षणा अनित्या है. और ऐसें भी न कहना कि यहां परमाणुकार्य द्रव्यलक्षणविषय दो भेदोंसें एकाधिकरण नित्यानित्य नही है. क्योंकि, पृथिवीत्वका दोनों जगे अव्यभिचार होनेसें. ऐसें अप् आदिकमें भी जानना. आकाशसें भी तिनोने संयोगाविभाग अंगीकार करनेसें अनित्यत्व युक्तिसें मानाही है. तथा च स एवाह' शब्दकारणत्व वचनसें संयोगविभाग हैं. ऐसें नित्यानित्य दोनों पक्षोंको संवलितत्व है. और यह स्वरूप लेशमात्रसें ऊपर लिख आए हैं. प्रलापप्रायत्व परवादीयोंके वचनोंका इस प्रकारसें समर्थन करना योग्य है. वस्तुका प्रथम तो अर्थक्रियाकारित्व लक्षण है, सो लक्षण एकांत नित्य आनित्य पक्षोंमें घटता नही है. अप्रच्युत अनुत्पन्न स्थिरैकरूप जो नित्य है, सो क्रमकरके अर्थक्रिया करता है, वा अक्रम करके. परस्पर व्यवच्छेद रूपोंको प्रकारांतरके असंभव होनेसे तहां क्रम करके अर्थक्रिया तो नही करता है. क्योंकि, सो कालांतरभाविनीक्रिया प्रथम क्रिया कालमेंही जबरदस्तीसें करे समर्थको कालक्षेप करना अयोग्य है; कालक्षेपिको असमर्थ प्राप्ति होनेसें. जेकर कहेंगे समर्थ भी तिस तिस सहकारिके समवधानके हुए तिस तिस अर्थको करता है. तब तो सो समर्थ नही है. अपर सहकारिकी सापेक्षवृत्ति होनेसें. सापेक्ष जो है, सो समर्थ नही. इस न्यायसें जेकर कहोगे वो तो सहकारिकी अपेक्षा नही करता है. किंतु कार्यही सहकारिके न हुए, नही होता है, इस वास्ते तिनकी अपेक्षा करता है. तव तो सो भाव समर्थ है वा असमर्थ है? जेकर समर्थ है तो काहेको सहकारीयोंके मुखको देखता है? जलदीही क्यों नही करता है?

पूर्वपक्षः—समर्थ भी बीज, पृथिवी, जल पवनादि सहकारीयोंकेसहितही अंकुरको करता है, अन्यथा नही.

' उत्तरपक्ष'—सहकारियोंने तिसको किंचित् उपकार करीये है, वा नही? जेकर नही करीये है, तब तो सहकारीयोंकी सनिधानसें पहिलेकी तरें क्यों नही अर्थक्रियामें उदास रहता है? जेकर उपकार करीये है, तब तो सो उपकार तिनोने भिन्न कयीये हैं वा अभिन्न? जेकर अभिन्न करीये हैं तब तो तिसकोही करीये हैं ऐसें तो लाभ इच्छते हुए मूलहानिही आ गई कृतक होनेसें, तिसको अनित्यताकी आपत्तिसें जेकर भेद है, तो सो उपकार तिसको कैसें हुआ? सह्य और विंध्याचलको क्यों न हुआ?

पूर्वपक्ष—तिसके साथ सबध होनेसे तिसका यह उपकार है

उत्तरपक्ष'—उपकार्य उपकारका क्या सबध है? सयोगसबध तो नही क्योंकि, सो तो द्रव्योंकाही होता है यहां तो उपकार्य द्रव्य है, और उपकार क्रिया है, इसवास्ते सयोगसबध तो नही है और समवायसबध भी नही है क्योंकि, तिसको एक होनेसें और व्यापक होनेसें, निकट दूरके अभावसें, सर्वत्र तुल्य होनेसें नियतसबधियोंके साथ भी सबध युक्त नही है क्योंकि, नियतसबधिसबधके अगिकार करे हुए तिसका करा उपकार इस समवायका अगिकार करना चाहिये तैसें हुए उपकारको भेदाभेद कल्पना तैसेंही है उपकारको समवायसें अभेद हुए समवायही करा सिद्ध हुआ और भेद माने भी समवायको नियत सबधिसबधत्व नही है तिस वास्ते एकांत नित्यभाव क्रमकरके अर्थ क्रिया नही करता है और युगपत भी अर्थक्रिया नही करता है एक भाव सकल कालमें होनेवालीयां युगपत् सर्व क्रियाओंको करता है, ऐसी प्रतीति नही होती है जेकर करे तो दूसरे समयमें क्या करेगा? जेकर करेगा तो क्रमभावी पक्षके दूषण होवेंगे जेकर न करेगा तो अर्थक्रियाकारित्वके अभावसें अवस्तुत्वका प्रसग है ऐसें एकांत नित्यसें क्रमाक्रमकेसाथ व्याप्त अर्थक्रिया व्यापकानुपलब्धिके बलसें व्यापक निवर्तन होनेसें निवर्तमान होती हुई स्वव्याप्य अर्थक्रियाकारित्वको निवर्तन करे हैं और अर्थक्रियाकारित्व निवर्तमान होता हुआ स्वव्याप्यसत्वको निवर्तन करता है इस वास्ते, एकांत नित्य पक्ष भी युक्तिक्षम नही है एकात अनित्य पक्ष भी अगीकार करने योग्य नही है अनित्य जो है सो प्रतिक्षण

विनाशी है सो क्रमकरके अर्थक्रिया करनेको समर्थ नही है, देशकृत कालकृत क्रमकेही अभावसें. क्रम जो है सो पूर्वापर है, सो क्षणिकमें संभवे नही है. क्योंकि, अवस्थितकोंही नाना देशकालव्याप्ति है; और देशक्रम कालक्रम भी कहिये है. और एकांत विनाशीमें सा है नही. 'यदाहुः'

यो यत्रैव स तत्रैव यो यदैव तदैव सः ॥
न देश कालयोर्व्याप्तिर्भावानामिह दृश्यते ॥ १ ॥

भाषाः—जो जहां है सो तहांही है. जो जिस कालमें है सो तिसही कालमें है. भावोंकी यहां देशकालोंविषे व्याप्ति नही दीखती है. और संतानकी अपेक्षाकरके भी पूर्वोत्तर क्षणोंको क्रम संभव नही है, संतानको अवस्तु होनेसें. वस्तुके हुए भी जेकर तिसको क्षणिकत्व है, तब तो क्षणोंसें कुछ भी विशेष नही है. जेकर अक्षणिकत्व है, तब तो क्षणभंगवाद समाप्त हुआ. अक्रमकरके भी क्षणिकमें अर्थक्रियाका संभव नही है. सो क्षणिक एक बीजपूरादि रूपादिक्षण युगपत् अनेक रसादि क्षणोंको उत्पादन करता हुआ एक स्वभावकरके उत्पन्न करता है, वा नाना स्वभावोंकरके? जेकर एककरके करता है, तब तो तिन रसादि क्षणोंका एकत्वपणा होवेगा; एक स्वभावसें जन्य होनेसें. अथ नाना स्वभावोंकरके उत्पन्न करता है, किंचित् रूपादि उपादानभावकरके, किंचित् रसादि सहकारिपणेकरके, तब तो वे स्वभाव तिसके आत्मभूत है वा अनात्मभूत है? जेकर अनात्मभूत है, तब तो स्वभावत्वकी हानि है. जेकर आत्मभूत है तब तो तिसको अनेकत्वपणा है, अनेक स्वभावत्व होनेसें. अथवा अनेक स्वभावोंको एकत्वका प्रसंग है. तिससें तिनको अव्यतिरिक्त होनेसें और तिसको एक होनेसें. अथ जोहि एकत्र उपादानभाव है सोही अन्यत्र सहकारिभाव है; इस वास्ते स्वभावभेद नही मानते हैं, तव तो नित्य एक रूपको भी क्रमकरके नाना कार्यकारिको स्वभावभेद और कार्यसांकर्य कैसे माना है क्षणिकवादियोंने? अथ नित्य जो है सो, एकरूपवाला होनेसें अक्रम है और अक्रमसें क्रमकरके होनेवाले नाना कार्योंकी कैसें

उत्पत्ति होवें ? अहो स्वपक्षपाती देवानाप्रिय बौद्धो! जो वस्तु स्वय एक निरशरूपादिक्षण लक्षणकारणसें युगपत् अनेक कारणसाध्य अनेक कार्योंको अगीकार करता हुआ भी परपक्षे नित्य भी वस्तुमें क्रमकरके नाना कार्य करनेमें भी विरोध उद्भावन करता है तिस वास्ते, क्षणिक भावको भी अक्रमकरके अर्थक्रिया दुर्घट है इस वास्ते एकांत अनित्यसें भी क्रमाक्रम व्यापकोंकी निवृत्ति होनेसें व्याप्य अर्थक्रिया भी निवृत्त होवे है और तिसकी निवृत्तिके हुए सत्व भी व्यापकानुपलब्धि बलकरकेही निवर्त्तता है इससें एकात अनित्यवाद भी रमणीय नही है और स्याद्वादमें तो पूर्वोत्तराकार परिहार स्वीकार स्थिति लक्षण परिणाम करके भावोंको अर्थक्रियाकी उपपत्ति अविरुद्ध है ऐसें भी न कहना कि, एकत्र वस्तुमें परस्पर विरुद्ध धर्माध्यासयोगसें स्याद्वाद असत् है क्योंकि, नित्य पक्ष अनित्य पक्षसें विलक्षण पक्षांतरके अगीकार करनेसें और तैसेंही सर्व जनोने अनुभव करनेसें ॥ १ ॥

तथाच पठति ॥ भागे सिंहो नरो भागे योर्थो भागद्वयात्मक ॥
तमभाग विभागेन नरसिंह प्रचक्षते ॥ २ ॥

भावार्थ —तथा वैशेषिकोंने भी चित्ररूप एक अवयवीके माननेसें एकही पटादिके चलाचल रक्तारक्त आवृतानावृतत्वादि विरुद्ध धर्मोंकी उपलब्धिसें और सौगतोंने भी एकत्र चित्रपटी ज्ञानमें नील अनीलके विरोधको अनगीकार करनेसें स्याद्वाद मानाहै यद्वा यद्यपि अधिकृतवादी प्रदीपादिकको कालातर अवस्थायि होनेसें क्षणिक नही मानते हैं तिनके मतमें पूर्वापर सावत् छिन्नसत्ताकोंही अनित्यता लक्षणत्तें तो भी बुद्धिसुखादिकको वे भी क्षणिकताकरकेही मानते हैं तिनके अधिकारमें भी क्षणिकवाद चर्चा अनुपपन्न नही हैं और जो भी कालातरावस्थायि वस्तु है, सो भी नित्यानित्यही है क्षण भी ऐसा कोइ नही है जहा वस्तु उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक नही है इति काव्यार्थ ॥ २ ॥

महेश्वरका स्वरूप कथन करके महादेवका स्वरूप श्लोक ११ करके कथन करते हैं

महाज्ञानं भवेद्यस्य लोकालोकप्रकाशकम् ॥
महादया दमो ध्यानं महादेवः स उच्यते ॥ ३ ॥

भाषा–बडा ज्ञान, अर्थात् केवलज्ञान, लोकालोकके स्वरूपका प्रकाशक होवे, जिसकों और जीवनमोक्षावस्थामें महादया, महादम और महाध्यान, शुक्लध्यान होवे जिसकों सो महादेव कहा जाता है ॥ ३ ॥

महांतस्तस्करा ये तु तिष्ठन्तः स्वशरीरके ॥
निर्जिता येन देवेन महादेवः स उच्यते ॥ ४ ॥

भाषा–जे वडे भारी तस्कर छद्मस्थावस्थामें अपने शरीरमें रहे हुए अष्टादश (१८) दूषणरूप, वे सर्व जिस देवने अपुनर्भवरूपसें जीते हैं, सो महादेव कहा जाता है ॥ ४ ॥

रागद्वेषौ महामल्लौ दुर्जयौ येन निर्जितौ ॥
महादेवं तु तं मन्ये शेषा वै नामधारकाः ॥५॥

भाषा–राग अभिष्वंगरूप, द्वेष अप्रीतिरूप, ये दोनो महामल्ल दुर्जय हैं; जीतने कठिन हैं. परं जिसने ये पूर्वोक्त दोनो मल्ल जीते हैं, तिसकों लो मैं सच्चा महादेव मानता हूं. और जो रागी द्वेषीकों लोक महादेव मानते हैं, सो नाममात्रसें महादेव है; नतु यथार्थ स्वरूपसें. होलिके बादशाहवत् ॥ ५ ॥

शब्दमात्रो महादेवो लौकिकानां मते मतः ॥
शब्दतो गुणतश्चैवार्थतोपि जिनशासने ॥ ६ ॥

भाषा–शब्दमात्र (कथनमात्र) महादेव तो लौकिक मतवालोंके मतमें मान्य है, और जैसा शब्द तैसाही अर्थ होवे, अर्थात् शब्दसें जो अर्थ निकले तिस अर्थरूप गुणसंयुक्त जो होवे, तिसकों जैन मतमें महादेव मानते हैं ॥ ६ ॥

शक्तितो व्यक्तितश्चैव विज्ञानं लक्षणं तथा ॥
मोहजालं हतं येन महादेवः स उच्यते ॥ ७ ॥

भाषा–शक्ति क्षायकज्ञानलब्धिरूप और व्यक्ति ज्ञानउपयोग, लक्षण,

लब्धिकी अपेक्षा ज्ञानशक्ति सादि अनंत है, और ज्ञानोपयोगलक्षणसें सादि सांत, और द्रव्यार्थक नयकी विवक्षासें अनादि, अनंत ऐसा विज्ञानरूप लक्षण है जिसका तथा मोहजाल अर्थात् अट्ठाइस (२८) उत्तरप्रकृतिरूप मोहका जाल जिसने हत (नष्ट) किया है, सो महादेव कहा जाता है ॥ ७ ॥

नमोऽस्तु ते महादेव महामद विवर्जित ॥
महालोभविनिर्मुक्त महागुणसमन्वित ॥ ८ ॥

भाषा—महामद करके विवर्जित (रहित), महालोभ करके रहित, और महागुणसंयुक्त, ऐसे हे महादेव ! तेरेकों नमस्कार होवे ॥ ८ ॥

महारागो महाद्वेषो महामोहस्तथैव च ॥
कषायश्च हतो येन महादेवः स उच्यते ॥ ९ ॥

भाषा—महाराग, महाद्वेष, महाअज्ञान, चशब्दसें सूक्ष्म सत्तागत जो स्वल्प भी राग, द्वेष, अज्ञान और षोडश प्रकारका कषाय ये पूर्वोक्त दूषण जिसने हने हैं, निःसत्ताकीभूत करे हैं सो महादेव कहा जाता है ॥ ९ ॥

महाकामो हतो येन महाभयविवर्जित ॥
महाव्रतोपदेशी च महादेवः स उच्यते ॥ १० ॥

भाषा—महा काम, जो सर्व जगत्‌में व्यापक हो रहा है, तिसकों जिसने हण्या है, और जो सात प्रकारके महाभयकरके विवर्जित (रहित) है, और जो पंच महाव्रतका उपदेशक है, सो महादेव कहा जाता है ॥१०॥

महाक्रोधो महामानो महामाया महामद ॥
महालोभो हतो येन महादेवः स उच्यते ॥ ११ ॥

महाक्रोध, महामान, महामाया, महामद, महालोभ, ये जिसने हनन किये हैं, सो महादेव कहा जाता है ॥ ११ ॥

महानन्दो दया यस्य महाज्ञानी महातपः ॥
महायोगी महामौनी महादेवः स उच्यते ॥ १२ ॥

भाषा—अतिशय आत्मानद, और दया (परम करुणा) है जिसके, और जो

महाज्ञानी, महातपःस्वरूप, महायोगी सर्व योगोंका जाननहार, और धारहार है; और जो महामौनी, सावद्य वचनसें रहित है, सो महादेव कहा जाताहै ॥ १२ ॥

महावीर्यं महाधैर्यं महाशीलं महागुणः ॥
महामञ्जुक्षमा यस्य महादेवः स उच्यते ॥ १३ ॥

भाषा–महावीर्य, वीर्यांतरायकर्मके क्षय होनेसें अनंतवीर्य, महाधैर्य, छद्मस्थावस्थामें परीसह उपसर्गोंसें कदापि ध्यानसें चलायमान नहीं होनेसें, महाशील, अष्टादश सहस्र १८००० शीलांगवाले होनेसें, केवलज्ञानदर्शनादि अनंत महागुण, और महाकोमल मनोहर क्षमा है जिसके, सो महादेव कहा जाता है ॥ १३ ॥

स्वयंभूतं यतोज्ञानं लोकालोकप्रकाशकम् ॥
अनन्तवीर्यचारित्रं स्वयंभूः सोभिधीयते ॥ १४ ॥

भाषा–स्वयमेवही आत्मस्वरूपसेंही ज्ञानावरणीयादि कर्मोंके क्षय होनेसें आविर्भूत हुआ है ज्ञानकेवलरूप लोकालोकका प्रकाशक जिसके, वीर्यांतराय कर्मके क्षय होनेसे आविर्भूत हुआ है अनंतवीर्य जिसके, और चारित्रमोहके क्षय होनेसें अनंतक्षायक चारित्र प्रगट हुआ है जिसके, तिस भगवान्कों स्वयंभू कहियेहैं. "शंभुः स्वयंभूर्भगवान्" इतिवचनात्॥ १४॥

शिवो यस्माज्जिनः प्रोक्तः शंकरश्च प्रकीर्त्तितः ॥
कायोत्सर्गी च पर्यङ्की स्त्रीशस्त्रादिविवर्जितः ॥ १५ ॥

भाषा–शिव निरुपद्रव, अर्थात् जिसका स्वरूप निरुपद्रव है, और सर्व जगत्के निरुपद्रव होनेमें हेतु है; क्योंकि, जहां जहां भगवंत विचरते हैं, तहां तहां चारों तर्फ पच्चीस योजनतांइ दुष्ट व्यंतरकृत मरीज्वरादि नही होतेहैं. और स्वचक्रपरचक्रका भय नही होता है. और अवृष्टि, अतिवृष्टि तथा मूषक टीडप्रमुख धान्यके उपद्रवकारी जीव नही होते हैं. और जीवोंकों शिव अर्थात् मुक्तिपथका उपदेश देनेसें जिन भगवान् तीर्थंकरकोंही शिव कहतेहैं, चौतीस ३४ अतिशय संयुक्त होनेसें. पुनः तिसही भगवंतको तीन भुवनके जीवोको उपदेशद्वारा शं (सुख) करनेसें शंकर

कहते हैं. "त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रयशंकरत्वात्" इतिवचनात्। भगवंतके दोही आसन हैं, कायोत्सर्गासन वा पर्यंकासन पुनः भगवंतकी मुद्रा, स्त्री और चक्र त्रिशूलादि, आदिशब्दसें जपमाला, यज्ञोपवीत, कमंडलु इत्यादिसें रहित होतीहै क्योंकि, इनके रखनेसें भगवान् कामी, क्रोधी, अज्ञानी, अशुची इत्यादि दूषणोंवाला सिद्ध होता है यदुक्तं "स्त्रीसंगः काममाचष्टे द्वेषं चायुधसंग्रहः ॥ व्यामोहं चाक्षसूत्रादिरशौचं च कमण्डलुः" इति ॥ १० ॥

साकारोऽपि ह्यनाकारो मूर्त्तामूर्त्तस्तथैव च ॥
परमात्मा च बाह्यात्मा अन्तरात्मा तथैव च ॥ १६ ॥

भाषा—देहसंयुक्त तेरमे चौदमे गुणस्थानमें जबतांइ औदारिक, तैजस, कार्मण शरीरोंकेसाथ संबंधवाला है, तबताइ ईश्वर साकारस्वरूपवाला है; और जब सिद्धपदकों प्राप्त होताहै, तब निराकारस्वरूप कहा जाता है ईश्वर साकारावस्थामें मूर्तिमान् है, और सिद्धपदकी अपेक्षा अमूर्त्त स्वरूप है, परमात्मा है, बाह्यात्मस्वरूपवाला है, और अंतरात्मास्वरूपवाला भी है कथंचित् भगवंतमें पूर्वोक्त सर्वस्वरूप घटे हैं, सोही स्याद्वाद शैलीकरके दिखाते हैं ॥ १६ ॥

दर्शनज्ञानयोगेन परमात्मायमव्ययः ॥
परा क्षान्तिरहिंसा च परमात्मा स उच्यते ॥ १७॥

भाषा—दर्शनज्ञानके योगकरके अर्थात् ज्ञानदर्शनस्वरूपकरके जो परमात्मास्वरूपकों प्राप्त हुआ है । 'नाणदंसणलक्खण' इतिवचनात्। और जो अव्ययरूपवाला है "तद्भावाव्ययं नित्यम्" इतिवचनात्। और उत्कृष्ट क्षमा और अहिंसा इनकरके जो संयुक्त है, सो परमात्मा कहा जाताहै ॥ १७ ॥

परमात्मासिद्धिसंप्राप्तौ बाह्यात्मा तु भवान्तरे ॥
अन्तरात्मा भवेद्देह इत्येषत्रिविधः शिवः ॥ १८ ॥

भाषा—जब सिद्धिमुक्तिकों प्राप्त होवे तब परमात्मा जानना, अर्थात् तेरमें चौदमें गुणस्थानसें सिद्धिपदप्राप्तितक परमात्मा कहा जाताहै और

जवतांइ चौथा गुणस्थान प्राप्त नही होता, तवतांइ वाह्यात्मा कहा जाता है. और चौथे गुणस्थानसें लेकर बारमे गुणस्थानतांइ देहमें रहे, तिसकों अंतरात्मा कहते हैं. यह तीनो प्रकारका शिव कहा जाता है॥१८॥

सकलो दोषसंपूर्णो निष्कलो दोषवर्जितः ॥
पञ्चदेहविनिर्मुक्तः संप्राप्तः परमं पदम् ॥ १९ ॥

भाषा–जवतांइ सकल है, अर्थात् घातिकर्मचतुष्टयकी उत्तरप्रकृतियां ४७ रूप कलाकरके संयुक्त है तवतांइ सदोष है, ओर जगत्में भ्रमण करता है. और जब निष्कल होता है, पूर्वोक्त उपाधियोंसें रहित होता है तव दोषविवर्जित है. और पंच देह (औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण,) इन पांचप्रकारके शरीरोंसे मुक्त होता है, तव परमपदकों प्राप्त होता है ॥ १९ ॥

एकमूर्त्तिस्त्रयो भागा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥
तान्येव पुनरुक्तानि ज्ञानचारित्रदर्शनात् ॥ २० ॥

भाषा–एकमूर्ति द्रव्यार्थिकनयके मतसें, परंतु एकही मूर्त्तिके पर्यायार्थिक नयके मतकरके तीन भाग ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वररूपसें कहे हैं, वे ऐसें हैं. ज्ञानस्वरूपकों विष्णु, चारित्रस्वरूपकों ब्रह्मा और सम्यग्दर्शनस्वरूपकों महेश्वर कहते हैं. पर्यायार्थिकनयके ये तीनो गुण अविरोधिपणे एक द्रव्यमें रहते हैं. जैसें अग्निमें उष्णता, पीतता, रक्तता रहती है. तैसें एक आत्माद्रव्यमें तीन गुण एकमूर्त्तिमें रहतेहैं. इस हेतुसें तीनोंकी एक मूर्त्ति है ॥ २० ॥

अब लौकिक मतमें जो तीन देवोंकी एकमूर्त्ति मानते हैं, सो संभव नही होती है, सोही दिखाते हैं.

एकमूर्त्तिस्त्रयो भागा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥
परस्परं विभिन्नानामेकमूर्त्तिः कथं भवेत् ॥ २१ ॥

भाषा–एकमूर्त्ति, तीन भाग, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, इन तीनो परस्पर विशेष भिन्नोंकी एकमूर्त्ति कैसें होवे? अपि तु न होवे ॥ २१ ॥

कार्यं विष्णुः क्रिया ब्रह्मा कारण तु महेश्वरः ॥
कार्यकारणसपन्ना एकमूर्त्तिः कथ भवेत् ॥ २२ ॥

भाषा–विष्णु तो कार्यरूप है, ब्रह्मा क्रियारूप है, और महेश्वर कारणरूप है, तब कार्य कारण प्राप्त हुआकी एकमूर्त्ति कैसें होवे? क्योंकि, कारण, कार्य, क्रिया ये तीनो एकरूप नही हो सक्के हैं ॥ २२ ॥

प्रजापतिसुतो ब्रह्मा माता पद्मावती स्मृता ॥
अभिजिज्जन्मनक्षत्रमेकमूर्त्तिः कथ भवेत् ॥ २३ ॥

भाषा–ब्रह्माके पिताका नाम प्रजापति, प्रजापति ऋषिका पुत्र ब्रह्मा हुआ, ब्रह्माकी माताका नाम पद्मावती, ब्रह्माका जन्म अभिजित् नक्षत्रमें हुआ था. अभिजित् नक्षत्रका अधिष्ठाता देवताका नाम ब्रह्मा है, इसवास्ते पुत्रका नाम ब्रह्मा रक्खा ॥ २३ ॥

वसुदेवसुतो विष्णुर्माता च देवकी स्मृता ॥
रोहिणी जन्मनक्षत्रमेकमूर्त्तिः कथ भवेत् ॥ २४ ॥
पेढालस्य सुतो रुद्रो माता च सत्यकी स्मृता ॥
मूल च जन्मनक्षत्रमेकमूर्त्ति कथ भवेत् ॥ २५ ॥

भाषा–वसुदेवका पुत्र विष्णु हुआ, और माता देवकी कही, और रोहिणी नक्षत्रमें जन्म हुआ, पेढालका पुत्र रुद्र हुआ, और माताका नाम सत्यकी, दूसरा नाम सुज्येष्ठा, और मूलनक्षत्रमें जन्म हुआ, इस पृथक् २ हेतुसें इन तीनोंकी एकमूर्त्ति कैसें होवे ॥ २४ ॥ २५ ॥

रक्तवर्णो भवेद्ब्रह्मा श्वेतवर्णो महेश्वरः ॥
कृष्णवर्णो भवेद्विष्णुरेकमूर्ति कथ भवेत् ॥ २६ ॥
अक्षसूत्री भवेद्ब्रह्मा द्वितीय शूलधारक ॥
तृतीय शखचक्राक एकमूर्ति कथ भवेत् ॥ २७ ॥
चतुर्मुखो भवेद्ब्रह्मा त्रिनेत्रोऽय महेश्वर ॥
चतुर्भुजो भवेद्विष्णुरेकमूर्ति कथ भवेत् ॥ २८ ॥

मथुरायां जातो ब्रह्म राजगृहे महेश्वरः ॥
द्वारावत्यामभूद्विष्णुरेकमूर्त्तिः कथं भवेत् ॥ २९ ॥
हंसयानो भवेद्ब्रह्मा वृषयानो महेश्वरः ॥
गरुडयानो भवेद्विष्णुरेकमूर्त्तिः कथं भवेत् ॥३०॥
पद्महस्तो भवेद्ब्रह्मा शूलपाणिर्महेश्वरः ॥
चक्रपाणिर्भवेद्विष्णुरेकमूर्त्तिः कथं भवेत् ॥ ३१ ॥

भाषा–ब्रह्माके शरीरका रंग लाल, महादेवका श्वेत, और विष्णुका कृष्ण था. ब्रह्माने जपमाला धारण करी है, महादेवने शूल, और विष्णुने शंख, चक्र धारण करे हैं. ब्रह्माके चार मुख थे, महादेवके तीन नेत्र थे, और विष्णुकी चार भुजायां थी. ब्रह्मा मथुरानगरीमें उत्पन्न भया, महादेव राजगृहमें, और विष्णु द्वारिकामें. ब्रह्माका वाहन हंस था, महादेवका बैल, और विष्णुका गरुड. ब्रह्माके हाथमें कमल था, महादेवके हाथमें शूल (त्रिशूल), और विष्णुके हाथमें चक्र था. इत्यादि विलक्षण हेतुओंसें इन तीनोंकी एकमूर्त्ति कैसें होवे? ॥२६॥२७॥२८॥२९॥३०॥३१॥

कृते जातो भवेद्ब्रह्मा त्रेतायां च महेश्वरः ॥
द्वापरे जनितो विष्णुरेकमूर्त्तिः कथं भवेत् ॥ ३२ ॥

भाषा–कृतयुगमें अर्थात् सतयुगमें ब्रह्मा उत्पन्न भए, त्रेतायुगमें महेश्वर उत्पन्न हुए, और द्वापरयुगमें विष्णु उत्पन्न हुए, इन हेतुओंसें इन तीनोंकी एकमूर्त्ति कैसें होवे? ॥ ३२ ॥

इन पूर्वोक्त तीनो देवोंकी एकमूर्त्ति नही हो सक्ती है, पृथक् २ गुणोंके होनेसें. अब जिसतरें तीनोंकी एकमूर्त्ति होवेहै, सो दिखाते हैं.

ज्ञानं विष्णुस्सदा प्रोक्तं चारित्रं ब्रह्म उच्यते ॥
सम्यक्त्वं तु शिवं प्रोक्तमर्हन्मूर्त्तिस्त्रयात्मिका ॥ ३३ ॥

भाषा–ज्ञानकों सदा विष्णु कहते हैं, चारित्रकों ब्रह्मा कहते हैं, और सम्यक्त्व जो है तिसको शिव कहते हैं. इसवास्ते 'अर्हन्' जो है, सो त्रयात्मक मूर्त्तिरूप है. अर्थात् ज्ञान, दर्शन, चारित्र इन तीनों गुणमयी अर्हन्की

आत्मा है क्योंकि, ये तीनो गुण आत्माद्रव्यसें, कथंचित् भेदाभेदरूप है जब द्रव्यार्थिक नयके मतसें विचारिए, तब तो एक द्रव्य होनेसें एकही मूर्ति है और जब पर्यायार्थिक नयके मतसें विचारिए, तब ज्ञान दर्शनचारित्ररूप तीनो गुणोंके भिन्न २ होनेसें तीन रूप सिद्ध होते हैं. और स्याद्वादवादीके मतमें कथंचित् द्रव्यपर्यायके भेदाभेद होनेसें, एक-मूर्त्ति त्रयात्मक हैं इस हेतुसें अर्हन्‌ही, ब्रह्मा, विष्णु, महादेवके रूपके धारक हैं, अन्य नही ॥ ३३ ॥

पूर्वपक्ष —जैसें आपने ज्ञानदर्शनचारित्रकी अपेक्षा, अर्हन्मूर्ति त्रयात्मक मानी है, तैसेंही, ब्रह्मा, विष्णु, महादेवकी मूर्त्ति माननेमें क्या दोष है?

उत्तरपक्ष —हे प्रियवर! ऐसी मानी जाय और पूर्वोक्त ज्ञानदर्शनचारित्र उनोंमें सिद्ध होवे, तब तो कोइ भी दोप न आवे अन्यथा वेश्याका सतीके गुणोंसें वर्णन करनेसदृश है क्योंकि, लौकिकमतवालोंने जैसें ब्रह्मा, विष्णु, महादेव माने हैं, तिनोंमें पुराणादि शास्त्रोंके लेखसें, पूर्वोक्त ज्ञान, दर्शन, चारित्रमेसें एक भी सिद्ध नही होता है सोही हम लिख दिखाते हैं—यथा मत्स्यपुराणे तृतीयाध्याये॥

सावित्रीं लोकसृष्ट्यर्थं हृदि कृत्वा समास्थित ॥
ततः सजपतस्तस्य भित्त्वा देहमकल्मषम् ॥ ३० ॥
स्त्रीरूपमर्द्धमकरोदर्द्धं पुरुषरूपवत् ॥
शतरूपा च साख्याता सावित्री च निगद्यते ॥ ३१ ॥
सरस्वत्यथ गायत्री ब्रह्माणी च परन्तप ॥
तत स्वदेहसंभूतामात्मजामित्यकल्पयत् ॥ ३२ ॥
दृष्ट्वा तां व्यथितस्तावत्कामबाणार्दितो विभु ॥
अहोरूपमहोरूपमिति चाह प्रजापतिः ॥ ३३ ॥
ततो वसिष्ठप्रमुखा भगिनीमिति चुक्रुशुः ॥
ब्रह्मा न किंचिद्ददृशे तन्मुखालोकनादृते ॥ ३४ ॥

अहोरूपमहोरूपमिति प्राह पुनः पुनः ॥
ततः प्रणामनम्रां तां पुनरेवाभ्यलोकयत् ॥ ३५ ॥
अथ प्रदक्षिणं चक्रे सा पितुर्वरवर्णिनी ॥
पुत्रेभ्यो लज्जितस्यास्य तद्रूपालोकनेच्छया ॥ ३६ ॥
आविर्भूतं ततो वक्त्रं दक्षिणं पाण्डु गण्डवत् ॥
विस्मयस्फुरदोष्ठं च पाश्चात्यमुदगात्ततः ॥ ३७ ॥
चतुर्थमभवत्पश्चाद्वामं कामशरातुरम् ॥
ततोन्यदभवत्तस्य कामातुरतया तथा ॥ ३८ ॥
उत्पतन्त्यास्तदाकारा आलोकनकुतूहलात् ॥
सृष्ट्यार्थं यत्कृतं तेन तपः परमदारुणम् ॥ ३९ ॥
तत्सर्वं नाशमगमत् स्वसुतोपगमेच्छया ॥
तेनोर्ध्वं वक्त्रमभवत्पंचमं तस्य धीमतः
आविर्भवज्जटाभिश्च तद्वक्त्रं चावृणोत्प्रभुः ॥ ४० ॥
ततस्तानब्रवीद्ब्रह्मा पुत्रानात्मसमुद्भवान् ॥
प्रजाः सृजध्वमभितः सदेवासुरमानुषीः ॥ ४१ ॥
एवमुक्तास्ततः सर्वे ससृजुर्विविधाः प्रजाः ॥
गतेषु तेषु सृष्ट्यर्थं प्रणामावनतामिमाम् ॥ ४२ ॥
उपयेमे स विश्वात्मा शतरूपामनिंदिताम् ॥
सम्बभूव तया सार्द्धमतिकामातुरो विभुः ॥
सलज्जां चकमे देवः कमलोदरमन्दिरे ॥ ४३ ॥
यावदब्दशतं दिव्यं यथान्यः प्राकृतो जनः ॥
ततः कालेन महता तस्याः पुत्रोऽभवन्मनुः ॥ ४४ ॥

भाषा—प्रथम ब्रह्माजी लोककी रचनाके निमित्त बडी सावधानीसें हृदयमें सावित्रीको धारण करके उसको जपते हुए पापरहित देहको भेदन करके

आधे शरीरको स्त्रीरूप और आधेको पुरुषरूप करते भये इस सा-
वित्रीको शतरूपा कहते हैं और इसीको गायत्री और ब्रह्माणी भी क-
हते हैं फिर वह ब्रह्माजी अपने देहसें उत्पन्न हुई उस स्त्रीकों अपनी
आत्मजा (पुत्री) मानने लगे तदनतर उसकों देखकर कामदेवके
बाणोंसें महापीडित हुए ब्रह्माजी आश्चर्यपूर्वक यह कहने लगे कि, अहो
बडा आश्चर्य है कि, इसका कैसा सुदर चित्तरोचक रूप हैं फिर वसि
ष्ठादिक जो ब्रह्माके पुत्र थे, वह उसको अपनी बहन समझने और
कहने लगे और ब्रह्माजी सबकों त्याग कर उसके मुखकीही ओर देखने
लगे अर्थात् उस नम्रमुखी सावित्रीके रूपको वारंवार देख कर कहने
लगे कि, इसका रूप कैसा आश्चर्यकारी सुदर है इसके पीछे वह सुदर
रूपरगवाली सरस्वती अपने पिताकी प्रदक्षिणा करती भई उस समय
पुत्रोंसे लज्जित होकर ब्रह्माजीका मुख उसके देखनेकी इच्छाकरके दाहि
नी ओरसें पीला हो गया, और ओष्ठ भी फुरने लगे, तब तो आश्चर्य कर
नेसे अपने मुखकों पीछे करलिया इसके अनतर कामदेवकी पीडासें
युक्त होकर ब्रह्माजीका मुख महाकामातुरतासें उसके देखनेकों आश्चर्यित
होके शोभित हुआ उस समयपरही सरस्वतीकेही समानरूपवाली एक
दूसरी स्त्री उत्पन्न हो गई और जो कि ब्रह्माजीने सृष्टि रचनेकेलिये बडा
दारुण तप किया था, वह ब्रह्माजीका किया हुआ तप अपनी पुत्रीके सग
भोग करनेकी इच्छा करनेसें नष्ट हो गया था, इस हेतुसें ब्रह्माजीके ऊप
रकी ओर पांचवां मुख उत्पन्न होता भया तब उस समर्थ ब्रह्माजीने उस
पांचवें मुखको अपनी जटाओंसे ढककर अपने पूर्वोक्त पुत्रोंसे कहा कि,
तुम देवता, राक्षस और मनुष्यादि सब प्रकारकी प्रजाको रचो उनकी
आज्ञा पातेही वह सब ब्रह्माके पुत्र अनेक प्रकारकी प्रजाओंकी सृष्टि रच
नेको चले गये उनके चलेजानेके पीछे कामके बाणोंसे महापीडित ब्र
ह्माजी नम्रमुखी और अनिंदित अपनी शतरूपानाम स्त्रीको ग्रहणकरके
बडी लज्जासें युक्त होकर देवताओंके सो वर्षपर्यंत अन्य अज्ञानी मनुष्यों
केसमान उससें रमण करते भये—फिर बहुत कालपीछे उसको मनु नाम पुत्र
हुआ—इत्यादि तथा अध्याय चौथे अध्यायमें लिखाहै कि, ब्रह्माजी वेदकी

राशि है, और गायत्री उसकी अधिष्ठात्री है, इस हेतुसें गायत्रीके संग गमन करनेमें ब्रह्माजीको कुछ दोष नहीं है. ऐसा होनेपर भी पूर्वके प्रजापति ब्रह्माजी अपनी पुत्रीके साथ संगम करनेसें बडे लज्जित हुए, और क्रोधसें कामदेवको यह शाप देते भये कि, जो तैंने मेरा भी मन अपने बाणोंसे चलायमान कर दिया, इसहेतुसे शीघ्रही तेरे शरीरको—शिवजी भस्म करेंगे.–इत्यादि–तथा च नवषष्टितमेऽध्याये ॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥

वर्णाश्रमाणां प्रभवः पुराणेषु मया श्रुतः ॥
सदाचारस्य भगवन् धर्मशास्त्रविनिश्चयः ॥
पुण्यस्त्रीणां सदाचारं श्रोतुमिच्छामि तत्वतः ॥१॥

॥ ईश्वर उवाच ॥

तस्मिन्नेव युगे ब्रह्मन् सहस्राणि तु षोडश ॥
वासुदेवस्य नारीणां भविष्यन्त्यम्बुजोद्भव ॥ २ ॥
ताभिर्वसन्तसमये कोकिलालिकुलाकुले ॥
पुष्पिते पवनोत्फुल्लकह्लारसरसस्तटे ॥ ॥ ३ ॥
निर्भरापानगोष्ठीषु प्रसक्ताभिरलंकृतः ॥
कुरंगनयनः श्रीमान् मालतीकृतशेखरः ॥ ४ ॥
गच्छन् समीपमार्गेण सांबः परपुरंजयः ॥
साक्षात्कन्दर्परूपेण सर्वाभरणभूषितः ॥ ५ ॥
अनंगशरतप्ताभिः साभिलाषमवीक्षितः ॥
प्रवृद्धो मन्मथस्तासां भविष्यति यदात्मनि ॥ ६ ॥
तदावेक्ष्य जगन्नाथः सर्वतो ध्यानचक्षुषा ॥
शापं वक्ष्यति ताः सर्वा वो हरिष्यंति दस्यवः ॥
मत्परोक्षं यतः कामलौल्यादीदृग्विधं कृतम् ॥७॥

तत प्रसादितो देव इद वक्ष्यति शार्ङ्गभृत् ॥
ताभि शापामितप्ताभिर्भगवान् भूतभावन ॥८॥
उत्तारभूत दासत्व समुद्राद्ब्राह्मणप्रिय ॥
उपदेक्ष्यत्यनन्तात्मा भाविकल्याणकारकम् ॥ ९ ॥
भवतीनामृषिर्दाल्भ्यो यद्व्रत कथयिष्यति ॥
तदेवोत्तारणायाल दासत्वेऽपि भविष्यति ॥
इत्युक्त्वा ता परिष्वज्य गतो द्वारवतीश्वरः ॥ १० ॥
तत. कालेन महता भारावतरणे कृते ॥
निवृत्ते मौसले तद्वत् केशवे दिवमागते ॥ ११ ॥
शून्ये यदुकुले सर्वैश्चौरैरपि जितेऽर्जुने ॥
हृतासु कृष्णपत्नीषु दासभोग्यासु चाम्बुधौ ॥ १२ ॥
तिष्ठन्तीषु च दौर्गत्यसंतप्तासु चतुर्मुख. ॥
आगमिष्यति योगात्मा दाल्भ्यो नाम महातपा ॥१३॥
तास्तमर्घेण संपूज्य प्रणिपत्य पुन पुनः ॥
लालप्यमाना बहुशो बाष्पपर्याकुलेक्षणाः ॥ १४ ॥
स्मरन्त्यो विपुलान् भोगान् दिव्यमाल्यानुलेपनम् ॥
भर्तारं जगतामीशमनन्तमपराजितम्॥ १५ ॥
दिव्यभावान् तां च पुरीं नानारत्नगृहाणि च ॥
द्वारकावासिनः सर्वान् देवरूपान् कुमारकान् ॥
प्रश्नमेवं करिष्यन्ति मुनेरभिमुख स्थिता ॥१६॥

॥ स्त्रिय ऊचुः ॥

दस्युभिर्भगवन् सर्वाः परिमुक्ता वय बलात् ॥
स्वधर्माच्च्यवतेऽस्माकमस्मिन् व शरणं भव ॥ १७ ॥
आदिष्टोऽसि पुरा ब्रह्मन केशवेन च धीमता ॥

कस्मादीशेन संयोगं प्राप्य वेश्यात्वमागताः ॥ १८॥
वेश्यानामपि यो धर्मस्तन्नो ब्रूहि तपोधन ॥
कथयिष्यत्यतस्तासां स दाल्भ्यश्चैकितायनः ॥ १९ ॥
॥ दाल्भ्य उवाच ॥
जलक्रीडा विहारेषु पुरा सरसि मानसे ॥
भवतीनां च सर्वासां नारदोभ्यासमागतः ॥ २० ॥
हुताशनसुता सर्वा भवन्त्योऽप्सरसः पुरा ॥
अप्रणम्यावलेपेन परिपृष्टः स योगवित् ॥
कथं नारायणोऽस्माकं भर्त्ता स्यादित्युपादिश ॥ २१ ॥
तस्माद्वरप्रदानं वः शापश्चायमभूत्पुरा ॥
शय्याद्वयप्रदानेन मधुमाधवमासयोः ॥ २२ ॥
सुवर्णोपस्करोत्सर्गाद्द्वादश्यां शुक्लपक्षतः ॥
भर्त्ता नारायणो नूनं भविष्यत्यन्यजन्मनि ॥ २३ ॥
यदकृत्वा प्रणामं मे रूपसौभाग्यमत्सरात् ॥
परिपृष्टोऽस्मि तेनाशु वियोगो वा भविष्यति ॥
चौरैरपहृताः सर्वा वेश्यात्वं समवाप्स्यथ ॥ २४ ॥
एवं नारदशापेन केशवस्य च धीमतः ॥
वेश्यात्वमागताः सर्वा भवन्त्यः काममोहिताः ॥
इदानीमपि यद्वक्ष्ये तच्छृणुध्वं वरांगनाः ॥ २५ ॥

भाषा—ब्रह्माजी बोले, हे शिवजी! मैनें पुराणोंमें वर्णआश्रमोंकी उत्पत्ति और धर्मशास्त्रका निश्चय सुना है. अब उत्तम स्त्रियाओंके सदाचारको सुनना चहाता हूं. शिवजी बोले, हे ब्रह्माजी! इसी द्वापरयुगमें श्रीकृष्णके सोलह हजार स्त्रियां होंगी तब एक समय वसंतऋतुमें कोकिलाभ्रमरादिकोंसे कूजित, खिलेहुए कमलोंसें शोभित सरोवरोंवाले पुष्पितवनमें एकांत स्थानोंके सरोवरोंके तटोंपै विराजमान हुई वह स्त्रियां अपने

समीपमें मृगकेसें नेत्र, चमेलीके सुगंधित पुष्पोंको धारण किये उत्तम आभूषणोंसे शोभित, साक्षात् मानों कामदेवही रूपको धारण किये चले आते हुए श्रीमान् सांबको देख कर, कामदेवके बाणोंसे पीडित हो कर, भोगकी इच्छासें उसको देखेगी, तब उनके चित्तमें कामकी वृद्धि होवेगी. उस वार्त्ताको अंतर्यामी श्रीकृष्णजी जान कर उन सब स्त्रियोंको यह शाप देंगे कि, जो तुमने मेरे पीछे ऐसी कामदेवकी चचलता करी है इस हेतुसे तुम सबको चोर हरेंगे फिर इस शापसें दुःखित हो कर वह स्त्रियां श्रीकृष्णको प्रसन्न करेगी. उस समय श्रीकृष्णजी उनके दासपनेका शाप दूर करनेवाले, और आगे होनेवाले मनुष्योंके कल्याण करनेवाले इस व्रतको कहेंगे कि, हे स्त्रियो! तुह्मारे आगे जो दाल्म्यऋषि व्रत कहेंगे वही व्रत तुह्मारे दासभावको दूर करेगा ऐसा कहकर श्रीकृष्णजी उन स्त्रियोंसें मेलमिलाप करके चले जायगे अर्थात् बहुत काल व्यतीत हो जानेपर पृथ्वीका भार उतारनेके पीछे श्रीकृष्णचंद्रजी परमधामको चले-जायंगे इनके चले जानेकेपीछे जब मुसलयुद्ध होकर यादव नष्ट हो जायंगे, उस समय अर्जुनकी रक्षित की हुई कृष्णकी स्त्रियांओंको अर्जुनके समीपसें शूद्रलोक छीन कर समुद्रपार ले जाकर भोग करेंगे वहां उन केपास महातपस्वी योगात्मा दाल्भ्यऋषि आवेंगे तब वह स्त्रियांओं उन ऋषिको अर्घदानसें पूजन कर प्रणाम करके अश्रुओंसे व्याकुल अनेक भोग दिव्यमाला पुष्पचंदनादिकोंको स्मरण करती हुई जगतोंके पति अपने भर्त्ताका, अनेक प्रकारके रत्नोंसे युक्त द्वारकापुरीका, अपने उत्तम २ स्था नोंका, देवताओंके समान रूपवाले द्वारकावासिओंका और अपने पुत्रभ्रा ताआदि सुहृदोंका स्मरण करती हुई दाल्भ्यमुनिके समीप सन्मुख खडी होके यह प्रश्न करेंगी कि, हे भगवन्! हम सबोंको चोरधाडियोंने बलकर छीन लिया, और घरोंपर ले जाकर भोग किया अब हम अपने धर्मसें हीन हो गई हैं, सो आपके शरण हैं हे महात्मन्! प्रथम श्रीकृष्णजीके दिये हुए शापसे हम वेश्याभावको प्राप्त हो गई हैं हमारे उपदेशकर्त्ता आपही नियत किये गयेहैं, हे तपोधन! आप कृपा करके वेश्याओंका धर्म वर्णन कीजिये—इसप्रकारसे पूछे हुए दाल्भ्यऋषि उन—स्त्रियोंसे वेश्याओंके

धर्म कहेंगे कि, हे स्त्रियो! पूर्वकालमें तुम सब किसी समय मानससरोवरमें क्रीडा कर रही थीं, उस समय तुह्मारे समीप नारद मुनि आगये थे, उस कालमें तुम अग्निकी पुत्री अप्सरारूप थीं, उस समय तुमने नारदजीको प्रणाम नही किया था, और विना प्रणाम कियेही तुमने उस योगीसे यह प्रश्न किया था कि, हे मुने! हमको जगन्नाथ श्रीकृष्ण भर्त्ता कैसे प्राप्त होय उसको कहिये. उस समय तुमको नारद मुनिने श्रीकृष्णजीके मिलनेका वर दिया था, और प्रणाम नही करनेसे शाप भी दिया था, अर्थात् यह कहा था कि चैत्र वैशाख इन दोनों महीनोंकी शुक्ल पक्षकी द्वादशीके दिन दो शय्यादान और सुवर्णका दान करनेसे दूसरे जन्ममें तुह्मारा निश्चयकरके नारायण पति होगा, और जो कि, तुमने अपने रूप और सौभाग्यके अभिमानसे मुझको प्रणाम विना कियेही प्रथम प्रश्न किया है इस हेतुसे तुह्मारा इस प्रकारसे वियोग भी होगा कि, तुम चोरोंसे हरी जाओगीं, और वेश्याभावको प्राप्त हो जाओगीं. इसीसे तुम सब नारदजीके और श्रीकृष्णजीके शापसे कामसे मोहित होकर वेश्यापनेको प्राप्त होगई हो ॥ इत्यादि—

॥ पुनरपि मत्स्यपुराणे ॥

ज्वलत्फणिफणारत्नदीपोद्योतितभित्तिके ॥
शयनं शशिसंघातशुभ्रवस्त्रोत्तरच्छदम् ॥ ५८६ ॥
नानारत्नद्युतिलसच्छक्रचापविडम्बकम् ॥
रत्नकिङ्किणिकाजालं लम्बमुक्ताकलापकम् ॥५८७॥
कमनीयचलल्लोलवितानाच्छादिताम्बरम् ॥
मन्दिरे मन्दसंचारः शनैर्गिरिसुतायुतः ॥ ५८८ ॥
तस्थौ गिरिसुताबाहुलतामीलितकन्धरः ॥
शशिमौलिसितजोत्स्नाशुचिपूरितगोचरः ॥ ५८९ ॥
गिरिजाप्यसितापाङ्गी नीलोत्पलदलच्छविः ॥

समीपमें मृगकेसें नेत्र, चमेलीके सुगंधित पुष्पोंको धारण किये उत्तम आभूषणोंसे शोभित, साक्षात् मानों कामदेवही रूपको धारण किये चले आते हुए श्रीमान् सांबको देख कर, कामदेवके बाणोंसे पीडित हो कर, भोगकी इच्छासें उसको देखेगी, तब उनके चित्तमें कामकी वृद्धि होवेगी। उस वार्त्ताको अंतर्यामी श्रीकृष्णजी जान कर उन सब स्त्रियोंको यह शाप देंगे कि, जो तुमने मेरे पीछे ऐसी कामदेवकी चंचलता करी है इस हेतुसे तुम सबकों चोर हरेंगे फिर इस शापसें दुःखित हो कर वह स्त्रियां श्रीकृष्णकों प्रसन्न करेगी। उस समय श्रीकृष्णजी उनके दासपनेका शाप दूर करनेवाले, और आगे होनेवाले मनुष्योंके कल्याण करनेवाले इस व्रतको कहेंगे कि, हे स्त्रियों! तुह्मारे आगे जो दाल्भ्यऋषि व्रत कहेंगे वही व्रत तुह्मारे दासभावको दूर करेगा ऐसा कहकर श्रीकृष्णजी उन स्त्रियोंसें मेलमिलाप करके चले जायगे अर्थात् बहुत काल व्यतीत हो जानेपर पृथ्वीका भार उतारनेके पीछे श्रीकृष्णचंद्रजी परमधामकों चले जायगे इनके चले जानेकेपीछे जब मुसलयुद्ध होकर यादव नष्ट हो जायगे, उस समय अर्जुनकी रक्षित की हुई कृष्णकी स्त्रियाओंको अर्जुनके समीपसें शूद्रलोक छीन कर समुद्रपार ले जाकर भोग करेंगे वहा उन केपास महातपस्वी योगात्मा दाल्भ्यऋषि आवेंगे तब वह स्त्रियांओं उन ऋषिको अर्घदानसें पूजन कर प्रणाम करके अश्रुओंसे व्याकुल अनेक भोग दिव्यमाला पुष्पचंदनादिकोंको स्मरण करती हुई जगतोंके पति अपने भर्त्ताका, अनेक प्रकारके रत्नोंसे युक्त द्वारकापुरीका, अपने उत्तम २ स्थानोंका, देवताओंके समान रूपवाले द्वारकावासिओंका और अपने पुत्रभ्राताआदि सुहृदोंका स्मरण करती हुई दाल्भ्यमुनिके समीप सन्मुख खडी होके यह प्रश्न करेंगी कि, हे भगवन्! हम सबोंको चोरधाडियोंने बलकर छीन लिया, और घरोंपर ले जाकर भोग किया अब हम अपने धर्मसें हीन हो गई हैं, सो आपके शरण हैं हे महात्मन्! प्रथम श्रीकृष्णजीके दिये हुए शापसे हम वेश्याभावको प्राप्त हो गई हैं हमारे उपदेशकर्त्ता आपही नियत किये गयेहं, हे तपोधन! आप कृपा करके वेश्याओंका धर्म वर्णन कीजिये–इसप्रकारसे पूछे हुए दाल्भ्यऋषि उन–स्त्रियोंसे वेश्याओंके

धर्म कहेंगे कि, हे स्त्रियो! पूर्वकालमें तुम सब किसी समय मानससरोवरमें क्रीडा कर रही थीं, उस समय तुह्मारे समीप नारद मुनि आगये थे, उस कालमें तुम अग्निकी पुत्री अप्सरारूप थीं, उस समय तुमने नारदजीको प्रणाम नही किया था, और विना प्रणाम कियेही तुमने उस योगीसे यह प्रश्न किया था कि, हे मुने! हमको जगन्नाथ श्रीकृष्ण भर्त्ता कैसे प्राप्त होय उसको कहिये. उस समय तुमको नारद मुनिने श्रीकृष्णजीके मिलनेका वर दिया था, और प्रणाम नही करनेसे शाप भी दिया था, अर्थात् यह कहा था कि चैत्र वैशाख इन दोनों महीनोंकी शुक्ल पक्षकी द्वादशीके दिन दो शय्यादान और सुवर्णका दान करनेसे दूसरे जन्ममें तुह्मारा निश्चयकरके नारायण पति होगा, और जो कि, तुमने अपने रूप और सौभाग्यके अभिमानसे मुझको प्रणाम विना कियेही प्रथम प्रश्न किया है इस हेतुसे तुह्मारा इस प्रकारसे वियोग भी होगा कि, तुम चोरोंसे हरी जाओगीं, और वेश्याभावको प्राप्त हो जाओगीं. इसीसे तुम सब नारदजीके और श्रीकृष्णजीके शापसे कामसे मोहित होकर वेश्यापनेको प्राप्त होगई हो ॥ इत्यादि–

॥ पुनरपि मत्स्यपुराणे ॥

ज्वलत्फणिफणारत्नदीपोद्योतितभित्तिके ॥
शयनं शशिसंघातशुभ्रवस्त्रोत्तरच्छदम् ॥ ५८६ ॥
नानारत्नद्युतिलसच्छक्रचापविडम्बकम् ॥
रत्नकिङ्किणिकाजालं लम्बमुक्ताकलापकम् ॥५८७॥
कमनीयचलल्लोलवितानाच्छादिताम्बरम् ॥
मन्दिरे मन्दसंचारः शनैर्गिरिसुतायुतः ॥ ५८८ ॥
तस्थौ गिरिसुताबाहुलतामीलितकन्धरः ॥
शशिमौलिसितजोत्स्नाशुचिपूरितगोचरः ॥ ५८९ ॥
गिरिजाप्यसितापाङ्गी नीलोत्पलदलच्छविः ॥

विभावर्या च संपृक्ता बभूवातितमोमयी ॥
तामुवाच ततो देवः क्रीडाकेलिकलायुतम् ॥ ५१० ॥

इति श्री मत्स्यपुराणे त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३॥

भाषा–फिर प्रकाशित हुए रत्नोंकी भीतोंवाले स्थानमें चन्द्रमाके समान श्वेत वस्त्रसें शोभित हुई अनेक प्रकारके रत्नोंकी किंकिणी और मोतीयोंकी जालीसे जडी हुई कांतिवाली सुंदर चांदनी जिसके ऊपर तनी हुई ऐसी उत्तम शय्यापर शिवजी महाराज पार्वतीको साथ लेके शयन करते भये जब पार्वतीकी भुजाओंमें अपनी ग्रीवा लगाकर शयन करते भये, तब शिवजीकी श्वेत कांति अत्यंत सुंदर लगती भई, और नीले कमलके समान कांतिवाली पार्वती भी रात्रिके अंधकारमें अतिकाली विदित होती भई उस समय शिवजी पार्वतीसे हास्यके वचन बोले ॥ इतिश्रीमत्स्यपुराणभाषाटीकायां त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥

॥ शर्व उवाच ॥

शरीरे मम तन्वङ्गि ! सिते भास्यसितद्युतिः ॥
भुजङ्गीवासिताऽशुद्धा संश्लिष्टा चन्दने तरौ ॥ १ ॥
चन्द्रातपेन संपृक्ता रुचिराम्बरया तथा ॥
रजनीवासिते पक्षे दृष्टिदोषं ददासि मे ॥ २ ॥
इत्युक्ता गिरिजा तेन मुक्तकण्ठा पिनाकिना ॥
उवाच कोपरक्ताक्षी भ्रुकुटीकुटिलानना ॥ ३ ॥

॥ देव्युवाच ॥

स्वकृतेन जनः सर्वो जाड्येन परिभूयते ॥
अवश्यमर्थात् प्राप्नोति खण्डनं शशिमण्डलम् ॥ ४ ॥
तपोभिर्दीर्घचरितैर्यच्च प्रार्थितवत्यहम् ॥
तस्या मे नियतस्त्वेष ह्यवमानः पदेपदे ॥ ५ ॥

नैवास्मि कुटिला शर्व ! विषमा नैव धूर्जटे ! ॥
सविषस्त्वं गतः ख्यातिं व्यक्तं दोषाकराश्रयात् ॥ ६ ॥
नाहं पूष्णोपि दशना नेत्रे चास्मि भगस्य हि ॥
आदित्यश्च विजानाति भगवान् द्वादशात्मकः ॥ ७ ॥
मूर्ध्नि शूलं जनयसि स्वैर्दोषैर्मामधिक्षिपन् ॥
यस्त्वं मामाह कृष्णेति महाकालेति विश्रुतः ॥ ८ ॥
यास्याम्यहं परित्यक्ता चात्मानं तपसा गिरिम् ॥
जीवन्त्या नास्ति मे कृत्यं धूर्त्तेन परिभूतया ॥ ९ ॥
निशम्य तस्या वचनं कोपतीक्ष्णाक्षरं भवः ॥
उवाचाधिकसंभ्रान्तः प्रणयेनेन्दुमौलिना ॥ १० ॥

॥ शर्व उवाच ॥

अगात्मजासि गिरिजे! नाहं निन्दापरस्तव ॥
त्वद्भक्तिबुद्ध्या कृतवांस्तवाहं नामसंश्रयम् ॥ ११ ॥
विकल्पः स्वस्थचित्तेपि गिरिजे ! नैव कल्पना ॥
यद्येवं कुपिता भीरु! त्वं तवाहं न वै पुनः ॥ १२ ॥
नर्मवादी भविष्यामि जहि कोपं शुचिस्मिते ॥
शिरसा प्रणतश्चाहं रचितस्ते मयाऽञ्जलिः ॥ १३ ॥
स्नेहेनाप्यवमानेन निन्दितेनैति विक्रियाम् ॥
तस्मान्न जातु रुष्टस्य नर्मस्पृष्टो जनः किल ॥ १४ ॥
अनेकैः स्वादुभिर्देवी देवेन प्रतिबोधिता ॥
कोपं तीव्रं न तत्याज सती मर्मणि घट्टिता ॥ १५ ॥
अवष्टब्धमथास्फाल्य वासः शंकरपाणिना ॥
विपर्यस्तालका वेगाद्यातुमैच्छत शैलजा ॥ १६ ॥

तस्या व्रजन्त्याः कोपेन पुनराह पुरान्तकः ॥
सत्यं सर्वैरवयवैः सुतासि सदृशी पितुः ॥ १७ ॥
हिमाचलस्य शृङ्गैस्तैर्मेघजालाकुलैर्नभः ॥
तथा दुरवगाह्येभ्यो हृदयेभ्यस्तवाशयः ॥ १८ ॥
काठिन्यांकस्त्वमस्मभ्यं वनेभ्यो बहुधा गता ॥
कुटिलत्व च वर्त्मभ्यो दुःसेव्यत्वं हिमादपि ॥ १९ ॥
संक्रान्ति सर्वदैवेति तन्वङ्गि! हिमशैलराट् ॥
इत्युक्ता सा पुनः प्राह गिरिशं शैलजा तदा ॥ २० ॥
कोपकम्पितमूर्द्धा च प्रस्फुरद्दशनच्छदा ॥

॥ उमोवाच ॥

मा सर्वान् दोषदानेन निन्दान्यान् गुणिनो जनान्॥२१॥
तथापि दुष्टसंपर्कात् संक्रान्त सर्वमेव हि ॥
व्यालेभ्योऽधिकजिह्वात्वं भस्मना स्नेहवन्धनम् ॥ २२ ॥
हत्कालुष्य शशाङ्कात्तु दुर्बोधित्व वृषादपि ॥
तथा बहु किमुक्तेन अल वाचा श्रमेण ते ॥ २३ ॥
श्मशानवासान्निर्भीत्व नग्नत्वान्न तव त्रपा ॥
निर्घृणत्व कपालित्वाद्दया ते विगता चिरम् ॥ २४ ॥
इत्युक्त्वा मन्दिरात्तस्मान्निर्जगाम हिमाद्रिजा ॥
तस्यां व्रजन्त्या देवेशगणै किलकिलो ध्वनि ॥ २५ ॥
क्व मातर्गच्छसि त्यक्त्वा रुदन्तो धाविता पुनः ॥
विष्टभ्य चरणौ देव्या वीरको बाष्पगद्गदम् ॥ २६ ॥
प्रोवाच मातः! किं त्वेतत् क्व यासि कुपितान्तरा ॥
अहं त्वामनुयास्यामि व्रजन्तीं स्नेहवर्जिताम् ॥ २७ ॥

सोहं पतिष्ये शिखरात्तपोनिष्ठे त्वयोज्झितः ॥
उन्नाम्य वदनं देवी दक्षिणेन तु पाणिना ॥ २८॥
उवाच वीरकं माता मा शोकं पुत्र! भावय ॥
शैलाग्रात्पतितुं नैव न चागन्तुं मया सह ॥ २९ ॥
युक्तं ते पुत्र वक्ष्यामि येन कार्येण तच्छृणु ॥
कृष्णेत्युक्ता हरेणाहं निन्दिता चाप्यनिन्दिता ॥ ३० ॥
साहं तपः करिष्यामि येन गौरीत्वमाप्नुयाम् ॥
एष स्त्रीलम्पटो देवो यातायां मय्यनन्तरम् ॥ ३१ ॥
द्वाररक्षा त्वया कार्या नित्यं रन्ध्रान्ववेक्षिणा ॥
यथा न काचित् प्रविशेद्योषिदत्र हरान्तिकम् ॥ ३२ ॥
दृष्ट्वा परस्त्रियश्चात्र वदेथा मम पुत्रक! ॥
शीघ्रमेव करिष्यामि यथायुक्तमनन्तरम् ॥ ३३ ॥
एवमस्त्विति देवीं स वीरकः प्राह सांप्रतम् ॥
मातुराज्ञामृतह्रदे प्लावितांगो गतज्वरः ॥ ३४ ॥
जगाम कक्ष्यां संद्रष्टुं प्रणिपत्य च मातरम् ॥ ३५ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १५४॥

भाषा–शिवजी कहते हैं कि, हे तन्वंगि! मेरे शरीरमें श्वेत कांति झलक रही है, और तू ऐसे मुझसे लिपट रही है जैसे कि चंदनके वृक्षमें सर्पिणी लिपट रही हो, चंद्रमाकी किरणोंके समान सुंदर वस्त्रोंसे युक्त हुई ऐसी विदित होती हुई जैसे कि कृष्ण पक्षमें रात्रि दिखाई देती है, ऐसे कही हुई पार्वती शिवजीके कंठको छोडकर क्रोधसे लाल नेत्र कर भ्रुकुटी चढाकर बोली कि, अपने ही अवगुणोंसे सब लोगोंका तिरस्कार होता है, प्रयोजन होनेसे चंद्रमाका मंडल भी ग्रहणके समयमें अवश्य खंडित हो जाता है. बहुतसी तपस्याओंसे जो मैंने तुह्मारी प्रार्थना करी लो, उसका मुझको

यह फल प्राप्त हुआ कि, पद २ में मेरा तिरस्कार होता है हे शिवजी! मैं, विषम और कुटिल नही हूं हे धूर्जटे! दोषोंके सेवन करनेवालेके आश्रय होकर मुझमें विष उत्पन्न हो गया है हे शिव! में पूषाके दांत नही हूं इंद्र नहीं हूं. मुझको सूर्य भगवान् देखता है मेरा तिरस्कार करनेवाला पुरुष अपने दोषोंकरके अपनेही मस्तकमें शूल चुभोता है जो तुम मुझको कृष्णा और महाकाली यह जो कहते हो, इसलिये मैं अपने आत्माको त्यागकर पर्वतमें तप करने जाती हूं धूर्तके साथ लगकर मुझ जीवती हुईका क्या प्रयोजन है?

पार्वतीके ऐसे वचनोंको सुनकर शिवजी सभ्रमको प्राप्त होकर बडी विनयसे यह वचन बोले हे पार्वती! तू मेरी प्यारी है, मैंने तेरी निंदा नही करी है, मैंने तो तेरी बुद्धि जानकर कृष्णा, कालिका यह तेरे नाम निकाले हैं हे गिरिजे! स्वस्थचित्तवालोंके विकल्प नही होता है, हे भीरु! जो तू ऐसी कुपित होती है तो, तेरा हास्य मैं फिर अब कभी न करूंगा अब तो कोपको दूर कर हे सुंदरहास्यवाली! मैं तुजको शिरसे प्रणाम करता हूं, और सूर्यकी ओर हाथ जोडता हूं स्नेहसे, अपमानसे, अथवा निंदा करनेसे जो रूस जाता है उसके साथ हास्य कभी न करना चाहिये इस प्रकारके अनेक विनयके वचनोंसे शिवजीने पार्वतीको समझाया, परंतु मर्ममें भिदी हुई पार्वती अपने महाक्रोधको नही त्यागती भई शिवजीके हाथसे अपने वस्त्रको छुटाकर शीघ्रही गमन करनेकी तैय्यारी करती भई. तब उसके गमनहीके विचारको देखकर शिवजी क्रोधपूर्वक फिर बोले कि, सत्य है! तू सबप्रकारसे अपने पिताकेही समान है

हिमाचलके शिखरोंपर जैसे मेघोंसे व्याकुल हुआ आकाश दुर्लभ हो जाता है, इसीप्रकार तेरा भी हृदय कठिन है तू ऐसी कठिण है तभी तो हमको छोडकर वनोंमें जाती है पर्वतमें जैसे कि भयकर मार्ग रहते हैं उनसे भी तू कुटिल है और तेरा सेवन करना हिमाचलसे भी कठिन है, ऐसे कही हुई पार्वती क्रोधकरके मस्तकको कपाकर और दांतोंको चबा कर फिर बोली कि, आप अन्य गुणी लोगोंको दोष लगाकर उनकी निंदा मत करो

आपकेभी दुष्टोंके संपर्कसे सब दोष हैं, तुम सर्पसे भी कठिन हो, भस्मके समान स्नेह नही करते, चंद्रमाके कलंकसे भी बुरा तुम्हारा हृदय है, इस वृषभसे भी कम निर्बुद्धि हो, इससे अधिक बकझक करनेसे क्या प्रयोजन है? श्मशानमें वास करनेसे तुम भय नही करते, नंगे रहनेसे तुमको लज्जा नही है, कपाल धारण करनेसे तुम्हारी दया चली गई है, ऐसा कहकर पार्वती उस स्थानसे चलती भई. तब चलनेके समय शिवके गणोंका किलकिल शब्द हुआ. वीरभद्र रोकर उसदेवीके संग भाग २ कर यह कहने लगा कि, हे माता! तू मुझको छोडकर कहां जाती है, ऐसे कहकर पैरोंमें लौट गया, और कहने लगा कि, मैं स्नेहको त्यागकर तुझजानेवालीके संग चलूंगा, और जिस पर्वतमें तू तप करेगी वहांसे तुझसे त्यागा हुआ मैं पर्वतके शिखरपर चढकर गिरूंगा. जब उसने ऐसी बातें कही तब पार्वती दक्षिण हाथसे उसके मुखको प्यार करके बोली हे पुत्र! तू शोच मत कर, पर्वतसे नही गिरना चाहिये, और मेरेसाथ भी तुझको नही चलना चाहिये. हे पुत्र! तेरे करनेके योग्य कामको मैं बताती हूं, सो तू सुन. शिवजीने मुझको कृष्णा बताकर मेरी बडी निंदा करी है, सो मैं ऐसा तप करूंगी जिस्से कि गौरवर्ण हो जाऊं. यह शिवजी स्त्रीके लालची हैं. जब मैं चली जाऊं उस समय तू इस स्थानके द्वारपर रक्षा करियो कि, कोई अन्य स्त्री इनकेपास न आने पावे. हे पुत्र! जो अन्यकोई स्त्री इनके समीप आती हुई देखे तो, अवश्य मुझसे कह दीजो, मैं शीघ्रही उसका प्रबंध करदूंगी. यह बात सुनकर वीरभद्र बोला कि, ऐसाही करूंगा. यह कहकर माताकी आज्ञा रूप अमृत ह्रदमें स्नान करनेसे आनंदयुक्त होता भया. और अपनी माताको प्रणाम करके पर्वतकी कक्षामें चला जाता भया.

इति श्रीमत्स्यपुराणे भाषाटीकायां चतुःपंचाशदधिकशततमोऽध्यायः १५४

॥ सूत उवाच ॥

देवीं सापश्यदायान्तीं सतीं मातुर्विभूषिताम् ॥
कुसुमामोदिनीं नाम तस्य शैलस्य देवताम् ॥ १ ॥

सापि दृष्ट्वा गिरिसुता स्नेहविक्लवमानसा ॥
क्व पुत्रि! गच्छसीत्युच्चैरालिङ्ग्योवाच देवता ॥ २ ॥
सा चास्यै सर्वमाचख्यौ शंकरात्कोपकारणम् ॥
पुनश्चोवाच गिरिजा देवता मातृसम्मताम् ॥ ३ ॥

॥ उमोवाच ॥

नित्यं शैलाधिराजस्य देवता त्वमनिन्दिते! ॥
सर्वतः सन्निधानं ते मम चातीव वत्सला ॥ ४ ॥
अतस्तु ते प्रवक्ष्यामि यद्विधेयं तदा धिया ॥
अन्यस्त्रीसप्रवेशस्तु त्वया रक्ष्यः प्रयत्नतः ॥ ५ ॥
रहस्यत्र प्रयत्नेन चेतसा सततं गिरौ ॥
पिनाकिनं प्रविष्टाया वक्तव्यं मे त्वयानघे! ॥ ६ ॥
ततोहं संविधास्यामि यत्कृत्यं तदनन्तरम् ॥
इत्युक्ता सा तथेत्युक्त्वा जगाम स्वगिरिं शुभम् ॥ ७ ॥
उमापि पितुरुद्यानं जगामाद्रिसुता द्रुतम् ॥
अन्तरिक्षं समाविश्य मेघमालामिव प्रभा ॥ ८ ॥
ततो विभूषणान्यस्य वृक्षवल्कलधारिणी ॥
ग्रीष्मे पञ्चाग्निसंतप्ता वर्षासु च जलोषिता ॥ ९ ॥
वन्याहारा निराहारा शुष्का स्थण्डिलशायिनी ॥
एवं साधयती तत्र तपसा सव्यवस्थिता ॥ १० ॥
ज्ञात्वा तु तां गिरिसुतां दैत्यस्तत्रान्तरे वशी ॥
अन्धकस्य सुतो दृप्तः पितुर्वधमनुस्मरन् ॥ ११ ॥
देवान् सर्वान् विजित्याजौ वृकभ्राता रणोत्कटः ॥
आडिर्नामान्तरप्रेक्षी सततं चन्द्रमौलिनः ॥ १२ ॥

आजगामामररिपुः पुरं त्रिपुरघातिनः ॥
स तत्रागत्य ददृशे वीरकं द्वार्यवस्थितम् ॥ १३ ॥
विचिन्त्यासीद्वरं दत्तं स पुरा पद्मजन्मना ॥
हते तदान्धके दैत्ये गिरीशेनामरद्विषि ॥ १४ ॥
आडिश्चकार विपुलं तपः परमदारुणम् ॥
तमागत्याब्रवीद्ब्रह्मा तपसा परितोषितः ॥ १५ ॥
किमाडे! दानवश्रेष्ठ! तपसा प्राप्तुमिच्छसि ॥
ब्रह्माणमाह दैत्यस्तु निर्मृत्युत्वमहं वृणे ॥ १६ ॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥

न कश्चिच्च विना मृत्युं नरो दानव! विद्यते ॥
यतस्ततोपि दैत्येन्द्र! मृत्युः प्राप्यः शरीरिणा ॥ १७ ॥
इत्युक्तो दैत्यसिंहस्तु प्रोवाचाम्बुजसंभवम् ॥
रूपस्य परिवर्तो मे यदा स्यात्पद्मसंभव! ॥ १८ ॥
तदा मृत्युर्मम भवेदन्यथा त्वमरो ह्यहम् ॥
इत्युक्तस्तु तदोवाच तुष्टः कमलसंभवः ॥ १९ ॥
यदा द्वितीयो रूपस्य विवर्त्तस्ते भविष्यति ॥
तदा ते भविता मृत्युरन्यथा न भविष्यति ॥ २० ॥
इत्युक्तोऽमरतां मेने दैत्यसूनुर्महाबलः ॥
तस्मिन् काले त्वसंस्मृत्य तद्वधोपायमात्मनः ॥ २१ ॥
परिहर्तुं दृष्टिपथं वीरकस्याभवत्तदा ॥
भुजङ्गरूपी रन्ध्रेण प्रविवेश दृशः पथम् ॥ २२ ॥
परिहृत्य गणेशस्य दानवोऽसौ सुदुर्जयः ॥
अलक्षितो गणेशेन प्रविष्टोऽथ पुरान्तकम् ॥ २३ ॥

भुजङ्गरूपं सत्यज्य वभूवाथ महासुरः ॥
उमारूपी छलयितुं गिरिशं मूढचेतन ॥ २४ ॥
कृत्वा माया ततो रूपमप्रतर्क्यमनोहरम् ॥
सर्वावयवसपूर्णं सर्वाभिज्ञानसवृतम् ॥ २५ ॥
कृत्वा मुखान्तरे दन्तान् दैत्यो वज्रोपमान् दृढान् ॥
तीक्ष्णाग्रान् बुद्धिमोहेन गिरिशं हन्तुमुद्यत ॥ २६ ॥
कृत्वोमारूपसंस्थानं गतो दैत्यो हरान्तिकम् ॥
पापो रम्याकृतिश्चित्रभूषणाम्बरभूषित ॥ २७ ॥
त दृष्ट्वा गिरिशस्तुष्टस्तदालिङ्ग्य महासुरम् ॥
मन्यमानो गिरिसुतां सर्वैरवयवान्तरैः ॥ २८ ॥
अपृच्छत् साधु ते भावो गिरिपुत्रि ! न कृत्रिम ॥
या त्व मदाशय ज्ञात्वा प्राप्तेह वरवर्णिनि ! ॥ २९ ॥
त्वया विरहितं शून्य मन्यमानो जगत्त्रयम् ॥
प्राप्ता प्रसन्नवदना युक्तमेवंविध त्वयि ॥ ३० ॥
इत्युक्तो दानवेन्द्रस्तु तदाभाषत् स्मयञ्छनै ॥
न चाबुध्यदभिज्ञान प्रायस्त्रिपुरघातिन ॥ ३१ ॥

॥ देव्युवाच ॥

यातास्म्यहं तपश्चर्तुं वलभ्यायतवातुलम् ॥
रतिश्च तत्र मे नाभूत्तत प्राप्ता त्वदन्तिकम् ॥ ३२ ॥
इत्युक्त शकर शङ्कां काचित् प्राप्यावधारयत् ॥
हृदयेन समाधाय देवः प्रहसिताननं ॥ ३३ ॥
कुपिता मयि तन्वङ्गी प्रकृत्या च दृढव्रता ॥
अप्राप्तकामा सप्राप्ता किमेतत् संशयो मम ॥ ३४ ॥

इति चिन्त्य हरस्तस्य अभिज्ञानं विधारयन् ॥
नापश्यद्वामपार्श्वे तु तदङ्गे पद्मलक्षणम् ॥ ३५ ॥
लोमावर्त्तं तु रचितं ततो देवः पिनाकधृक् ॥
अबुध्यद्दानवीं मायामाकारं गूहयंस्ततः ॥ ३६ ॥
मेढ्रे वज्रास्त्रमादाय दानवं तमशातयत् ॥
अबुध्यद्वीरको नैव दानवेन्द्रं निषूदितम् ॥ ३७ ॥
हरेण सूदितं दृष्ट्वा स्त्रीरूपं दानवेश्वरम् ॥
अपरिच्छिन्नतत्त्वार्था शैलपुत्र्यै न्यवेदयत् ॥ ३८ ॥
दूतेन मारुतेनाशुगामिना नगदेवता ॥
श्रुत्वा वायुमुखाद्देवी क्रोधरक्तविलोचना ॥
अशपद्वीरकं पुत्रं हृदयेन विदूयता ॥ ३९ ॥

इतिश्रीमत्स्यपुराणे पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥

भाषा–सूतजी बोले इसके अनंतर वह पार्वती कुसुमामोदिनीनामवाली उस पर्वतकी देवता सतीको सन्मुख आती हुई देखती भई, वह सती देवता भी पार्वतीको देखकर स्नेहपूर्वक बोली कि, हे पुत्री! तू कहां जाती है, तब पार्वती उस अपने शिवजीके प्रभावसे उत्पन्न हुए अपने क्रोधरूप कारणको कहती भई, और अपनी माताकेही समान उस सतीको मानकर यह वचन बोली. हे अनिंदिते! तू इस पर्वतकी देवता है, सदैव यहां रहती है, और मेरी बडी प्यारी है, इस हेतुसे मैं तेरे आगे जो कहती हूं वह तुझको करना चाहिये. इस पर्वतमें जो अन्य कोई स्त्री आवे, अथवा शिवजी एकांतमें किसी अन्य स्त्रीसे बतरावें तो, तू मुझको अवश्य खबर दीजो, उसकेपीछे मैं प्रबंध करलूंगी. ऐसा कहकर पार्वती अपने हिमालय पर्वतमें जाती भई. पार्वती अपने पिताके बगीचेमें ऐसे जाती भई जैसे कि, आकाशमें मेघमाला चली जाती है, ऐसे प्रकारसे आकाशमार्ग होकर उसने गमन किया, और वहां जाकर वृक्षोंके वल्कल

शरीरपर धारण किये, ग्रीष्मऋतुमें पचाग्नि तपी, वर्षाऋतुमें जलमें निवास किया, कभी वनके फलोंका आहार किया, कभी निराहार रही, और पृथ्वीपर शयन किया, ऐसे प्रकारोंसे तपस्या करती भई इसपीछे अधक दैत्यका पुत्र उस पार्वतीको जानकर अपने पिताके वधका स्मरण कर वदला लेनेका उपाय करता भया, वह अधकका पुत्र आडि नाम दैत्य रणमें देवताओंको जीतकर शिवजीके समीप आता भया वहा आकर द्वार पर खडे हुए वीरभद्रको देख प्रथम ब्रह्माजीके दिये हुए वरका चिंतवन कर वहा वहुतसा तप करता भया तव तपसे प्रसन्न हुए ब्रह्माजी उस आडि दैत्यके समीप आकर वोले कि, हे दानव ! इस तपकरके तू किस वातकी इच्छा करता है, *यह सुनकर वह दैत्य वोला कि, मैं कभी न मरू यह* वर मागता हू ब्रह्माजीने कहा, हे दानव ! मृत्युके विना तो कोई भी नहीं है, इस हेतुसे तू किसी कारणसे अपनी मृत्युको माग ले, यह सुनकर वह दानव ब्रह्माजीसे वोला कि, जव मेरा रूप वदल जावे, तभी मेरी मृत्यु हो, अन्यथा अमर ही रहूं यह सुन ब्रह्माजी प्रसन्न होकर वोले कि, जव तेरा दूसरा रूप वदलेगा उसी समय तेरी मृत्यु होगी यह वर पाकर वह दैत्य अपनी आत्माको अमर मानता भया इसके अनंतर वीरभद्रकी दृष्टि चुरानेके निमित्त सर्पका रूप धारण कर वीरभद्रके विना देखे शिवजीके पास जाता भया, फिर वह मूढचित्तवाला दैत्य शिवजीके छलनेके निमित्त पार्वतीजीका रूप वना लेता भया, मायासे मनोहर, सपूर्ण अगोंकी शोभासे युक्त ऐसे रूपको वनाकर मुखमें वडे २ तीक्ष्ण वज्रके समान दातोंको लगाके अपनी वुद्धिके मोहसे शिवजीके मारनेका उद्योग करता भया पार्वतीका रूप धारण कर सुदर अंगोंमे आभूषण और कृत्रिम वस्त्रोंको पहर शिवजीके समीप जाता भया तव उस महाअसुरको देखकर शिवजी प्रसन्न होकर पार्वती समझकर यह वचन वोले कि, हे पार्वती ! तेरा स्वभाव अच्छा है ? कुछ छल तो नहीं है ? क्या तू मेरा मनोरथ जानकर मेरेपास आई है ? तेरे विरहसे मैंने सव जगत् शून्य मान रक्खा है, अव तू मेरे पास आगई यह तैंने वहुत अच्छा किया ऐसे कहा हुआ वह दैत्य हसकर शिवजीके प्रभावको

नहीं जानता हुआ, धीरे धीरे यह वचन बोला, अर्थात् वह पार्वतीरूप दैत्य बोला कि, मैं तप करनेकेनिमित्त गई थी, वहां तुम्हारे विना मेरा चित्त नहीं लगा, इस कारण तुम्हारे पास आई हूं. ऐसे वचन सुनकर शिवजी कुछेक शंका विचार कर हृदयमें समाधान कर हंसकर बोले हे तन्वंगि! तू मेरे उपर क्रोधित हो गई थी, और दृढ विचार करके चली थी, अब विना प्रयोजन सिद्ध किये हुए कैसे चली आई? यह मुझको संदेह है. यह कहते हुए शिवजी उसके लक्षणोंको देखते भये. तब उसकी बाईं पांशूमें कमलका चिन्ह नहीं पाया, उस समय महादेवजी उस दानवी मायाको जानकर अपने लिंगपर वज्रास्त्रको रखकर उसके संग रमण करके उसको मारते भये. इस प्रकारसे उस मारे हुए दानवको वीरभद्रने नहीं जाना. और वह पर्वतकी देवता स्त्रीरूपवाले दानवको शिवजीसे मारा हुआ देख उस प्रयोजनको अच्छे प्रकारसे विना समझेही, वायुको दूत वनाकर पार्वतीकेपास भेजती भई. तब पार्वती वायुकेद्वारा उस वृत्तांतको सुन क्रोधसे लाल नेत्र कर वडे दुःखित हुए हृदयसे वीरभद्रको शाप देती भई.

इति श्रीमत्स्यपुराणभाषाटीकायां पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः १५५

॥ देव्युवाच ॥

मातरं मां परित्यज्य यस्मात्त्वं स्नेहविक्लवात् ॥
विहितावसरः स्त्रीणां शंकरस्य रहोविधौ ॥ १ ॥
तस्मात्ते पुरुषा रूक्षा जडा हृदयवर्जिता ॥
गणेशक्षारसदृशी शिला माता भविष्यति ॥ २ ॥
निमित्तमेतद्विख्यातं वीरकस्य शिलोदये ॥
सोभवत्प्रक्रमेणैव विचित्राख्यानसंश्रयः ॥ ३ ॥
एवमुत्सृष्टशापाया गिरिपुत्र्यास्त्वनन्तरम् ॥
निर्जगाम मुखात् क्रोधः सिंहरूपी महाबलः ॥ ४ ॥
स तु सिंहः करालास्यो जटाजटिलकंधरः ॥

प्रोद्धूतलम्बलाङ्गूलो दंष्ट्रोत्कटमुखातट ॥ ५ ॥
व्यावृत्तास्यो ललजिह्व क्षामकुक्षि शिरादिषु ॥
तस्याशुवर्तितु देवी व्यवस्यत सती तदा ॥ ६ ॥
ज्ञात्वा मनोगत तस्या भगवाश्चतुरानन ॥
आगम्योवाच देवेशो गिरिजा स्पष्टया गिरा ॥ ७ ॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥

किं पुत्रि! प्राप्तुकामासि किमलभ्य ददामि ते ॥ ८ ॥
विरम्यतामतिक्लेशात् तपसोस्मान्मदाज्ञया ॥
तच्छ्रुत्वोवाच गिरिजा गुरु गौरवगर्भितम् ॥ ९ ॥
वाक्य वाचाचिरोद्गीर्णवर्णनिर्णीतवाञ्छितम् ॥

॥ देव्युवाच ॥

तपसा दुष्करेणाप्त पतित्वे शंकरो मया ॥ १० ॥
स मा श्यामलवर्णेति बहुश प्रोक्तवान् भव ॥
स्यामह काञ्चनाकारा वाल्लभ्येन च सयुता ॥ ११ ॥
भर्तुर्भूतपतेरङ्गमेकतो निर्विशेङ्कवत् ॥
तस्यास्तद्भाषित श्रुत्वा प्रोवाच कमलासन ॥ १२ ॥
एव भव त्व भूयश्च भर्तृदेहार्धधारिणी ॥
ततस्तस्याजहुद्भ्राङ्गा फुल्लनीलोत्पलत्वचम् ॥ १३ ॥
त्वचा सा चाभवद्दीप्ता घटाहस्ता विलोचना ॥
नानाभरणपूर्णाङ्गीपीतकौशेयधारिणी ॥ १४ ॥
तामब्रवीत्ततो ब्रह्मा देवीं नीलाम्बुजत्विषम् ॥
निशे भूधरजादेहसपर्कात्त्व ममाज्ञया ॥ १५ ॥

संप्राप्ता कृतकृत्यत्वमेकानंशा पुरा ह्यसि ॥
य एष सिंहः प्रोद्भूतो देव्याः क्रोधाद्वरानने! ॥ १६ ॥
स तेऽस्तु वाहनं देवि! केतौ चास्तु महाबलः ॥
गच्छ विन्ध्याचलं तत्र सुरकार्यं करिष्यसि ॥ १७ ॥
पञ्चालो नाम यक्षोऽयं यक्षलक्षपदानुगः ॥
दत्तस्ते किंकरो देवि! मया मायाशतैर्युतः ॥ १८ ॥
इत्युक्ता कौशिकी देवी विन्ध्यशैलं जगाम ह ॥
उमापि प्राप्तसंकल्पा जगाम गिरिशान्तिकम् ॥ १९ ॥
प्रविशन्तीति तां द्वारि ह्यपकृष्य समाहितः ॥
रुरोध वीरको देवीं हेमवेत्रलताधरः ॥ २० ॥
तामुवाच च कोपेन रूपात्तु व्यभिचारिणीम् ॥
प्रयोजनं न तेऽस्तीह गच्छ यावन्न भेत्स्यसि ॥ २१ ॥
देव्या रूपधरो दैत्यो देवं वञ्चयितुं त्विह ॥
प्रविष्टो न च दृष्टोऽसौ स वै देवेन घातितः ॥ २२ ॥
घातिते चाहमाज्ञप्तो नीलकंठेन कोपिना ॥
द्वारेषु नावधानं ते यस्मात्पश्यामि वै ततः ॥ २३ ॥
भविष्यसि न मद्द्वाःस्थो वर्षपूगान्यनेकशः ॥
अतस्तेऽत्र न दास्यामि प्रवेशं गम्यतां द्रुतम् ॥ २४ ॥

इतिश्रीमत्स्यपुराणे षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥

भाषा–पार्वती कहती है हे वीरभद्र! तू स्नेहरहित हो मुझ माताको त्याग कर शिवजीके ओर अन्य स्त्रियोंके एकांत समयमें सावधान नहीं रहा, इस हेतुसे तेरी माता रूखी जडहृदयसे वर्जित काली शिलाके समान हो जायगी इस प्रकारसे यह वीरभद्रके शिलामेंसे उदय होनेका निमित्त होता भया; तब वह वीरभद्र विचित्र २ कथाओंको सुन रहा था और पार्वतीने

ऐसा शाप देदिया उस समय पार्वतीके मुखसे सिंहरूप होकर क्रोध निकलता भया उस विकरालमुख जटाधारी लंबी पूंछयुक्त कराल डाढोंसमेत मुख फाडे जिव्हा निकाले और पतली कटिवाले सिंहको देखकर उसकी वार्त्ताको पार्वती जब चिंतवन करने लगी तब उस पार्वतीके मनकी वार्ताको जानकर ब्रह्माजी आए और बडी स्पष्ट वाणीसे बोले कि हे पुत्रि! तू क्या चाहती है? मैं कौनसी अलभ्य वस्तु तुझको दूं? तू इस बडे क्लेशवाले तपको समाप्त कर और मेरी आज्ञाको मान ले यह सुनकर पार्वती बहुत दिनके विचारे हुए मनोरथके वचनको बोली कि, मैंने बडे दुर्लभ व्रत और तपोंसे महादेवजीको प्राप्त किया था, उन्होंने मुझको बहुतवार काली २ ऐसा शब्द कहा, सो मैं चाहती हूं कि, मेरा शरीर कांचनके समान वर्णवाला हो जाय जिस्से कि, अपने पतिकी गोदीमें सुशोभित रहूं यह उसके वचनको सुनकर ब्रह्माजी बोले कि, तेरा शरीर ऐसाही हो जायगा, और अपने भर्त्ताके आधे शरीरके धारण करनेवाली भी हो जायगी इसके अनंतर नीले कमलके समान पार्वतीकी त्वचा कांचनके वर्णसमान तत्काल हो गई और जो उसकी नीली त्वचा थी वह देवी रात्रिका स्वरूप पीत और कसूमे वस्त्रोंसे युक्त होकर अलग हो गया तब ब्रह्माजी नीले कमलके सदृश वर्णवाली उस रात्रीसे बोले हे रात्री! तू मेरी आज्ञासे पार्वतीके शरीरके स्पर्श करनेसे कृतकृत्य हो गई और हे वरानने! इस पार्वतीके क्रोधसे जो सिंह निकला है वही तेरा वाहन होगा और तेरी ध्वजामें भी यही सिंह रहेगा तू विन्ध्याचलमें चली जा वहां जाकर तू देवताओंके कार्योंको करेगी और हे देवि! यह पांचालनाम यक्ष तेरे निमित्त अनुचर देता हूं इस यक्षको हजारों माया आती हैं ऐसे कही हुई कौशिकी देवी विन्ध्याचल पर्वतमें जाती भई, और पार्वती भी अपने मनोरथको सिद्ध करके शिवजीके समीप जाती भई तब उस भीतर जाती हुईको द्वारपर सावधान हो हाथमें बेत ले खडा हो कर वीरभद्र रोकता भया और व्यभिचारिणीका रूप जानकर उस्से क्रोधपूर्वक बोला कि, यहां तेरा कुछ प्रयोजन नहीं, जो तू नहीं डरती है तो चली जा, यहां पार्वतीजीका रूप धरके महादेवके छलनेके निमित्त एक दैत्य आया था,

उसको भीतर जाते हुए मैंने नहीं देखा था, वह शिवजीने मार डाला. उसको मारकर मुझसे क्रोधपूर्वक कहने लगे कि तुम द्वारपर सावधान नहीं रहते हो इस हेतुसे मैं अब सबकी चौकसी करता हूं; सो तुझको भीतर नहीं जाने दूंगा, तू शीघ्रही उलटी चली जा.

इति श्रीमत्स्यपुराणभाषाटीकायां षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥१५६॥

॥ वीरक उवाच ॥

एवमुक्ता गिरिसुता माता मे स्नेहवत्सला ॥
प्रवेशं लभते नान्या नारी कमललोचने! ॥ १ ॥
इत्युक्ता तु तदा देवी चिंतयामास चेतसा ॥
न सा नारीति दैत्योसौ वायुर्मे यामभाषत ॥ २ ॥
वृथैव वीरकः शप्तो मया क्रोधपरीतया ॥
अकार्यं क्रियते मूढैः प्रायः क्रोधसमीरितैः ॥ ३ ॥
क्रोधेन नश्यते कीर्तिः क्रोधो हन्ति स्थिरां श्रियम् ॥
अपरिच्छिन्नतत्त्वार्था पुत्रं शापितवत्यहम् ॥ ४ ॥
विपरीतार्थबुद्धीनां सुलभो विपदोदयः ॥
संचिन्त्यैवमुवाचेदं वीरकं प्रति शैलजा ॥ ५ ॥
लज्जासज्जविकारेण वदनेनाम्बुजत्विषा ॥

॥ देव्युवाच ॥

अहं वीरक! ते माता मा तेऽस्तु मनसो भ्रमः॥ ६ ॥
शंकरस्यास्मि दयिता सुता तु हिमभूभृतः ॥
मम गात्रछविभ्रान्त्या मा शङ्कां पुत्र! भावय ॥ ७ ॥
तुष्टेन गौरता दत्ता ममेयं पद्मजन्मना ॥
मया शप्तोस्यविदिते वृत्तान्ते दैत्यनिर्मिते ॥ ८ ॥

ज्ञात्वा नारीप्रवेशं तु शंकरे रहसि स्थिते ॥
न निवर्तयितु शक्य शाप किंतु ब्रवीमि ते ॥ ९ ॥
शीघ्रमेष्यसि मानुष्यात् स त्वं कामसमन्वितः ॥
शिरसा तु ततो वन्द्य मातरं पूर्णमानस ॥
उवाचार्चितपूर्णेन्दुद्युतिं च हिमशैलजाम् ॥ १० ॥

॥ वीरक उवाच ॥

नतसुरासुरमौलिमिलन्मणिप्रचयकान्तिकरालनखाङ्किते ॥
नगसुते! शरणागतवत्सले! तव नतोऽस्मि नतार्त्तिविनाशिनि ११
तपनमण्डलमण्डितकन्धरे! पृथुसुवर्णसुवर्णनगद्युते! ॥
विषभुजङ्गनिषङ्गविभूषिते! गिरिसुते! भवतीमहमाश्रये ॥ १२ ॥
जगति कः प्रणताभिमत ददौ झटिति सिद्धनुते भवती यथा ॥
जगति काञ्चनवाञ्छतिशंकरो भुवनधृतनये! भवतीं यथा ॥ १३ ॥
विमलयोगविनिर्मितदुर्जयस्वतनुतुल्यमहेश्वरमण्डले! ॥
विदलितान्धकबान्धवसंहति सुरवरै प्रथमं त्वमभिष्टुता ॥ १४ ॥
सितसटापटलोद्धतकधराभरमहामृगराजरथा स्थिता ॥
विमलशक्तिमुखानलपिङ्गलायतभुजौघविपिष्टमहासुरा ॥ १५ ॥
निगदिता भुवनैरिति चण्डिका जननि! शुम्भनिशुम्भनिषूदनी ॥
प्रणतचिन्तितदानवदानवप्रमथनैकरतिस्तरसा भुवि ॥ १६ ॥
वियति वायुपथे ज्वलनोज्ज्वलेऽवनितले तव देवि! चयद्वपु ॥
तदजितेप्रतिमे प्रणमाम्यहं भुवनभाविनि! ते भववल्लभे ॥ १७ ॥
जलधयो ललितोद्धवतीचयो हुतवहद्युतयश्च चराचरम् ॥
फणसहस्रभृतश्च भुजङ्गमास्त्वदभिधास्यति मय्यभयङ्करा ॥ १८ ॥
भगवति! स्थिरभक्तजनाश्रये! प्रतिगतो भवतीचरणाश्रयम् ॥

करणजातमिहास्तु ममाचलन्नुतिलवाप्तिफलाशयहेतुतः ॥
प्रशममेहि ममात्मजवत्सले! नमोऽस्तु ते देवि! जगत्त्रयाश्रये १९

॥ सूत उवाच ॥

प्रसन्ना तु ततो देवी वीरकस्येति संस्तुता ॥
प्रविवेश शुभं भर्त्तुर्भवनं भूधरात्मजा ॥ २० ॥
द्वारस्थो वीरको देवान् हरदर्शनकाङ्क्षिणः ॥
व्यसर्जयत् स्वकान्येव गृहाण्यादरपूर्वकः ॥ २१ ॥
नास्त्यत्रावसरो देवा देव्या सह वृषाकपिः ॥
निर्भृतः क्रीडतीत्युक्ता ययुस्ते च यथागतम् ॥ २२ ॥
गते वर्षसहस्रे तु देवास्त्वरितमानसः ॥
ज्वलनं चोदयामासुर्ज्ञातुं शंकरचेष्टितम् ॥ २३ ॥
प्रविश्य जालरन्ध्रेण शुकरूपी हुताशनः ॥
ददृशे शयने शर्वं रतं गिरिजया सह ॥ २४ ॥
ददृशे तं च देवेशो हुताशं शुकरूपिणम् ॥
तमुवाच महादेवः किंचित्कोपसमन्वितः ॥ २५ ॥
यस्मात्तु त्वत्कृतो विघ्नस्तस्मात्त्वय्युपपद्यते ॥
इत्युक्तः प्राञ्जलिर्वह्निरपिबद्वीर्यमाहितम् ॥ २६ ॥
तेनापूर्यत तान् देवांस्तत्तत्कायविभेदतः ॥
विपाट्य जठरं तेषां वीर्यं माहेश्वरं ततः ॥ २७ ॥
निष्क्रान्तं तप्तहेमाभं वितते शंकराश्रमे ॥
तस्मिन् सरो महज्जातं विमलं बहुयोजनम् ॥ २८ ॥
प्रोत्फुल्लहेमकमलं नानाविहगनादितम् ॥
तच्छ्रुत्वा तु ततो देवी हेमद्रुममहाजलम् ॥ २९ ॥

तत्र कृत्वा जलक्रीडा तदब्जकृतशेखरा ॥
उपविष्टा ततस्तस्य तीरे देवी सखीयुता ॥ ३० ॥
पातुकामा च तत्तोय स्वादुनिर्मलपङ्कजम् ॥
अपश्यन् कृत्तिका स्नाता षडर्कद्युतिसन्निभम् ॥ ३१ ॥
पद्मपत्रे तु तद्वारि गृहीत्वोपस्थिता गृहम् ॥
हर्षादुवाच पश्यामि पद्मपत्रे स्थित पय. ॥ ३२ ॥
ततस्ता ऊचुरखिल कृत्तिका हिमशैलजम् ॥

॥ कृत्तिका ऊचुः ॥

दास्यामो यदि ते गर्भ सभूतो यो भविष्यति ॥ ३३ ॥
सोऽस्माकमपि पुत्र स्यादस्मन्नाम्ना च वर्तताम् ॥
भवेल्लोकेषु विख्यातः सर्वेष्वपि वरानने ! ॥ ३४ ॥
इत्युक्तोवाच गिरिजा कथ मद्गात्रसभव ॥
सर्वैरवयवैर्युक्तो भवतीभ्य सुतो भवेत् ॥ ३५ ॥
ततस्ता कृत्तिका ऊचुर्विधास्यामोऽस्य वै वयम् ॥
उत्तमान्युत्तमाङ्गानि यथैव तु भविष्यति ॥ ३६ ॥
उक्ता वै शैलजा प्राह भवत्वेवमनिन्दिता ॥
ततस्ता हर्षसपूर्णा पद्मपत्रास्थित पय ॥ ३७ ॥
तस्यै ददुस्तया चापि तत्पीत क्रमशो जलम् ॥
पीते तु सलिले तस्मिंस्ततस्तस्मिन् सरोवरे ॥ ३८ ॥
विपाट्य देव्याश्च ततो दक्षिणा कुक्षिमुद्गत ॥
निश्चक्रामाऽद्भुतो बाल सर्वलोकविभासक ॥ ३९ ॥
प्रभाकरप्रभाकार प्रकाशकनकप्रभ ॥
गृहीतनिर्मलोदग्रशक्तिशूल षडानन ॥ ४० ॥

दीप्तो मारयितुं दैत्यान् कुत्सितान् कनकच्छविः ॥
एतस्मात्कारणाद्देवः कुमारश्चापि सोऽभवत् ॥ ४१ ॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥१५७॥

भाषार्थः—वीरभद्रने कहा हे कमललोचने! मेरी स्नेह करनेवाली माताने भी मुझसे यही आज्ञा करी है, और कह गई है कि, किसी अन्य स्त्रीको भीतर मत जाने देना. यह सुनकर पार्वती देवी चिंतवन करने लगी कि, अहो जो वायु मुझसे कह आया था वह तो दैत्य था, स्त्री नहीं थी; मुझ क्रोधयुक्तने वीरभद्रको वृथाही शाप दिया; विशेषकरके क्रोधसे भरेहुए मूर्ख बुरा कार्य करडालते हैं, क्रोधसे कीर्ति नष्ट हो जाती है, क्रोधसे स्थिर लक्ष्मीका नाश होजाता है, मैंने विनाही विचारेहुए पुत्रको शाप देदिया. विपरीतबुद्धिवालोंको सहजहीमें विपत्ति प्राप्त होजाती है. ऐसे चिंतवन करके वह पार्वती लज्जापूर्वक वीरभद्रसे कहनेलगी; हे वीर-भद्र! मैं तेरी माता हूं, तू चित्तमें संदेह मत करे, मैं शिवजीकी प्यारी स्त्री हूं, हिमाचलकी पुत्री हूं; हे पुत्र! मेरे शरीरकी कांतिकरके तू शंका मत करे, मुझको ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर गौरवर्ण देदिया है. हे पुत्र! उस दैत्यके वृत्तांतसे मैंने तुझको विना समझे हुए शाप देदिया है वह तो दूर नहीं होसकेगा; परंतु यह कह देती हूं कि तुम मनुष्यके प्रभावसे शापसे निवृत्त होकर शीघ्रही आओगे. इसके पीछे वीरभद्र पूर्ण चंद्रमाके-समान कांतिवाली अपनी माता पार्वतीको शिरसे प्रमाण करने लगा. वीरभद्र कहता है, हे शरणागतवत्सले! देवतादैत्योंके प्रणाम करते हुए मुकुटोंकी मणियोंसे शोभित चरणारविंदवाली! मैं तुझको प्रणाम करता हूं. हे सूर्यमंडलकेसमान शोभित शिरवाली, पर्वतके समान कांतिवाली, सर्पाकार टेढी भृकुटियोंवाली! ऐसी जो आप हैं उनकेही मैं आश्रय हूं हे पार्वती! प्रणाम करते हुएको जैसे तुम शीघ्रही वर देती हो ऐसा दूसरा वर देनेवाला तेरेसिवाय कौन है? और शिवजी भी तेरे विना जगत्में किसीकी इच्छा नहीं करते हैं. हे निर्मलयोगके द्वारा अपने शरीरको महादेवजीके शरीरमंडलके समान करनेवाली! और दैत्योंका नाश करने

वाली! तुझको सब देवता लोगभी शिरसे प्रणाम करते हैं हे जननी! तुम श्वेतकेश और वढेमुखवाले सिंहपर सवारीकरके अपनी निर्मलशक्तिसे जब असुरोंको मारती हो तव संसार तुमको चंडिका कहता है, तुम हीं शुंभनिशुंभको मारती और भक्तजनोंके मनोरथोंको सिद्ध करती हो. हे देवि! आकाशमें वायुके मार्गमें जलती हुई अग्निमें और पृथ्वीतलमें जो तेरा रूप है उसको मैं नमस्कार करता हू, और ललितरगोंवाले समुद्र, अग्नि और हजारों सर्प यह सब तेरे प्रभावसे मुझको भय नहीं देसक्ते हैं, मैं आपके चरणोंके आश्रय होगया हू, अब किसी फलकी इच्छा नहीं करता हू हे देवि! मुझपर शांत होकर कृपा करो, मैं आपको प्रणाम करता हू सूतजी कहते हैं जब वीरभद्रने इस प्रकारसे स्तुति करी तब प्रसन्न होकर पार्वतीजी अपने पति शिवजीके मंदिरमें प्रवेश करती भई फिर द्वारपर खडा हुआ वीरभद्र शिवजीके दर्शन करनेके लिये आये हुए देवताओंको अपने २ घरोंको भेजता भया, यह कहने लगा, हे देवताओ! अब दर्शन करनेका अवसर नहीं है, शिवजी पार्वती केसंग रमण कर रहे हैं ऐसे वचनोंको सुनकर देवता स्थानोंको चले गये. जब हजार वर्ष व्यतीत होचुके तव देवता शीघ्रताकरके शिव जीके समाचार लेनेकेनिमित्त अग्निदेवताको भेजते भये अग्नि तोतेका रूप धारण करके स्थानके किसी छिद्रके द्वारा स्थानमें प्रवेश करके पार्वतीकेसग रमण करते हुए महादेवजीको देखता भया तव कुछेक क्रोध करके महादेवजी उस तोतेसे बोले कि, तेरा किया हुआ यह विघ्न है इस लिये यह विघ्न तुझीमें प्राप्त होगा ऐसा कहा हुआ अग्नि अंजली बांधकर महादेवजीके वीर्य्यको पीता भया फिर उस वीर्यसे तृप्त हुआ अग्नि देवताओंको तृप्त करता भया उस समय वह शिव जीका वीर्य उन देवताओंके उदरको फाडकर बहार निकलता भया, और शिवजीके आश्रमके समीप प्राप्त होता भया वहाँ एक सरोवर बनगया बडा, स्वच्छ और बहुत योजन विस्तृत, सुवर्णकीसी कांति वाला, फूले हुए कमलोंसे शोभित उस सरोवरको सुनकर पार्वतीदेवी सखियोंसे युक्त हो उसके जलमें क्रीडा करती हुई तीरपर स्थित होगए,

और उस जलके पीनेकी भी इच्छा करी. उस समय स्नान करती हुई कृत्तिकाभी छह सूर्योंके समान उस जलको देखती भई. तब पार्वती कमलके पत्तेपर स्थित हुए उस जलको ग्रहण करके आनंदसे बोली कि, कमलपत्रपर स्थित हुए इस जलको मैं देखती हूं. ऐसे पार्वतीके वचनको सुन कर कृत्तिका पार्वतीसे बोली कि, हे शुभानने! इस जलसे जो तुह्मारे गर्भ रह जावे तो वह हमारे नामसे प्रसिद्ध हमाराही पुत्र संसारमें प्रसिद्ध होवे ऐसी प्रतिज्ञा करे तो, हम इस जलको देवें. यह सुनकर पार्वतीजी बोली कि, मेरे अवयवोंसे युक्त हुआ बालक तुह्मारा पुत्र होवेगा? जब पार्वतीनें यह वचन कहा, तब कृत्तिका बोली कि, हम इसके उत्तम २ अंगोंका विधान कर देवेंगी. यह बात सुनकर पार्वतीजीने कहा कि, अच्छा इसी प्रकार होजागया. तब कृत्तिका प्रसन्न होकर उस जलको पार्वतीके निमित्त देती भई. तब पार्वतीने भी वह जल पीलिया. इसके अनंतर उस जलका गर्भ पार्वतीकी दाहिनी कोखको फाडकर बाहर निकला. और उसमेंसे सब लोकोंको प्रकाशित करनेवाला अद्भुत बालक निकला, सूर्यके समान तेजस्वी, कंचनके समान देदीप्य, शक्ति और शूलको ग्रहण किये हुए, छ मुखवाला, वह अद्भुत बालक होता भया. सुवर्णकीसी कांतिवाला यह बालक दुष्ट दैत्योंको मारनेवाला होता भया. इस प्रकारसे स्वामी कार्तिककी उत्पत्ति हुई है.

इति श्रीमत्स्यपुराणभाषाटीकायां सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥१५७॥

पुनरपि मत्स्यपुराणे चतुर्नवत्यधिकशततमेऽध्याये यथा—
महादेवस्य शापेन त्यक्त्वा देहं स्वयं तथा ॥
ऋषयश्च समुद्भूताश्च्युते शुक्रे महात्मनः ॥ ६ ॥
देवानां मातरो दृष्ट्वा देवपत्न्यस्तथैव च ॥
स्कन्नं शुक्रं महाराज! ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ ७ ॥
तज्जुहाव ततो ब्रह्मा ततो जाता हुताशनात् ॥
ततो जातो महातेजा भृगुश्च तपसां निधिः ॥ ८ ॥

भापार्थ-प्रथम महादेवजीके शापसे सव ऋषि अपने २ शरीरको आपही त्याग कर स्वर्गलोकमें जाते भये, वहां ब्रह्माजीके वीर्यसे फिर ऋषि उत्पन्न हुए हैं तव देवताओंकी माता, और देवताओंकी स्त्रिया, ब्रह्माजीके वीर्यको स्खलित हुआ जानकर ब्रह्माजीके समीपसे उस वीर्यको अग्निमें हवन करवा देती भई जव ब्रह्माजीने वीर्यका हवन किया, तव अग्निमेंसे महातेजवाले भृगुऋषि उत्पन्न हुए मत्स्यपुराण अध्याय ॥१९४॥

तथा ब्रह्मवैवर्त्तपुराणेऽपि चतुर्थोऽध्याये ॥
रतिं दृष्ट्वा ब्रह्मणश्च रेत पातो वभूव ह ॥
तत्र तस्थौ महायोगी वस्त्रेणाच्छाद्य लज्जया ॥१३॥
वस्त्र दग्ध्वा समुत्तस्थौ ज्वलदग्नि सुरेश्वर ॥
कोटितालप्रमाणश्च सशिखश्च समुज्ज्वलन् ॥ १४ ॥
कृष्णस्य कामवाणेन रेत पातो वभूव ह ॥
जले तद्रेचन चक्रे लज्जया सुरससदि ॥ २३ ॥
सहस्रवत्सरान्ते तद्डिम्भरूप वभूव ह ॥
ततो महान् विराट् जज्ञे विश्वौघाधार एव स ॥२४॥

भापार्थ-रतिको देखकर ब्रह्माजीका वीर्यपात होता भया, तव वो महायोगी ब्रह्मा लज्जाकरके वस्त्रकेसाथ आच्छादन करके खडा होता भया, तव वो वीर्य वस्त्रको जालकर जाज्वल्यमान, कोटिताल प्रमाण, शिखावाला, देदीप्यमान, अग्निदेवता उत्पन्न होता भया — कामके वाणोंकरके देवसभामें कृष्णजीका वीर्यपात होता भया, तव लज्जाकरके कृष्णजी उस वीर्यको जलमें निकालते भये, वहां वो वीर्य हजार वर्ष व्यतीत हुए तव वालकरूप होता भया, तिस्से जगत् समूहको आधार भूत महान् विराट् उत्पन्न होता भया ब्रह्मवैवर्त्त पुराण अध्याय ॥ ४ ॥

इत्यादि प्राय सर्व पुराणादिके लेखोंसे, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, जो कि लोकोंने कल्पन किये हैं उन्होंमें ज्ञानदर्शन चारित्र नहीं सिद्ध होते हैं किंतु, काम, क्रोध, ईर्पा, रागादि दोप सिद्ध होते हैं और ऐसे

रागी द्वेषी देव मुक्तिकेवास्ते नही होते हैं. यदुक्तं ॥ "ये स्त्रीशस्त्राक्षसूत्रादिरागाद्यङ्ककलङ्किताः ॥ निग्रहानुग्रहपरास्ते देवाः स्युर्न मुक्तये ॥ १ ॥ नाट्याट्टहाससंगीताद्युपप्लवविसंस्थुलाः ॥ लंभयेयुः पदं शान्तं प्रसन्नान् प्राणिनः कथम् ॥ २ ॥" इतिकलिकालसर्वज्ञश्रीमद्धेमचंद्रसूरिकृतयोगशास्त्रे- यद्यपि इन श्लोकोंका अर्थ जैनतत्त्वादर्श ग्रंथमें लिखा है तथापि भव्य जीवोंके उपकारार्थ लिखते हैं.

जिस देवकेपास स्त्री होवे, तथा तिसकी प्रतिमाकेपास स्त्री होवे, क्योंकि, जैसा पुरुष होता है, उसकी मूर्ति भी प्रायः वैसीही होती है. आजकाल सर्व चित्रोमें वैसाही देखनेमें आता है. सो मूर्तिद्वारा देवकाभी स्वरूप प्रगट हो जाता है. तथा शस्त्र, धनुष्य, चक्र, त्रिशूलादि जिसके पास होवे, तथा अक्षसूत्र जपमालादि आदि शब्दसे कमंडलु प्रमुख होवे, फेर कैसा वो देव है? रागद्वेषादि दूषणोंका जिनमें चिन्ह होवे? क्योंकि, स्त्रीकों जो पास रक्खेगा वो जरूर कामी और स्त्रीसें भोग करनेवाला होगा. इस्से अधिक रागी होनेका दूसरा कौनसा चिन्ह है? इसी कामरागके वश होकर कुदेवोंने परस्त्री, स्वस्त्री, बेटी, माता, बहिन, और पुत्रकी वधू, प्रमुखसे अनेक कामक्रीडा कुचेष्टा करी है. और इसीका नाम लोकोंने भगवान्‌की लीला धारण किया है!!!

अब जो पुरुषमात्र होकर परस्त्री गमन करता है, उसको आज कालके मतावलंबियोंमेंसे कोइभी अच्छा नहीं कहता तो, फेर परमेश्वर होकर जो परस्त्रीसे कामकुचेष्टा करे, उसके कुदेव होनेमें कोईभी बुद्धिमान् शंका कर सक्ता है? नहीं. और जो अपनी स्त्रीसे काम सेवन करता है, और परस्त्रीका त्यागी है, उसकोंभी परस्त्रीका त्यागी धर्मी गृहस्थलोक कह सक्ते हैं, परंतु उसको मुनि वा ऋषि वा ईश्वर कभी नहीं कहे सकेंगे. क्योंकि, जो आपही कामाग्निके कुंडमें प्रज्वलित हो रहा है, तिसमें कभी ईश्वरता नहीं हो सक्ती; इस हेतुसे जो राग रूप चिन्ह करके संयुक्त है, सो देव नही हो सक्ता है. पुनः जो द्वेषके चिन्हकरके संयुक्त है, वोभी देव नहीं हो सक्ता है. द्वेषके चिन्ह शस्त्रादिकोंका धारण करना. क्योंकि, जो शस्त्र, धनुष्य, चक्र, त्रिशूल

प्रमुख रक्खेगा, उसने अवश्य किसी वैरीकों मारणा है, नही तो, शस्त्र रखनेसे क्या प्रयोजन है? जिसकों वैर विरोध लगा हुवा है, सो परमेश्वर नहीं हो सक्ता है, जो ढाल वा खड्ग रक्खेगा वह अवश्यमेव भयसंयुक्त होगा, और जो आपही भयसंयुक्त है तो, उसकी सेवा करनेवाले निर्भय कैसें हो सक्ते हैं? इस हेतुसे द्वेषसंयुक्तको परमेश्वर कौन बुद्धिमान् कह सक्ता है? परमेश्वर जो है, सो तो वीतराग है; सिवाय वीतरागके अन्य कोइ, रागी, द्वेषी, परमेश्वर कभी नहीं हो सक्ते हैं

तथा जिसके हाथमें जपमाला है, सो असर्वज्ञताका चिन्ह है; जेकर सर्वज्ञ होता तो मालाके मणियोंके विनाभी जपकी संख्या कर सक्ता, और जो जपको करता है सोभी अपनेसे उच्चका करता है, तो, परमेश्वरसे उच्च कौन है? जिसका वो जप करता है

तथा जो शरीरको भस्म लगाता है, और धूणी तापता है, नगा होके कुचेष्टा करता है, भाग, अफीम, धतूरा, मदिरा प्रमुख पीता है, तथा मासादि अशुद्ध आहार करता है, नर, हस्ति, ऊट, गर्दभ, बैल प्रमुखकी जो असवारी करता है, सोभी सुदेव नही हो सक्ता है, क्योंकि, जो शरीरको भस्म लगाता है, और धूणी तापता है, सो किसी वस्तुकी इच्छावाला है, सो जिसका अभीतक मनोरथ पूरा नहीं हुआ, सो परमेश्वर कैसे हो सक्ता है? और जो नशे, अमलकी चीजें, खाता पीता है, सो तो नशेके अमलमें आनद और हर्ष ढूढता है, और परमेश्वर तो सदा आनद और सुखरूप है, परमेश्वरमें वो कौनसा आनद नहीं था जो नशा पीनेसे उसकों मिलता है? और जो असवारी है सो परजीवोंको पीडाका कारण है, और परमेश्वर तो दयालु है, वो परजीवोंको पीडा कैसे देवे? और जो कमडलु रखता है सो शुचि होनेके कारण रखता है, और परमेश्वर तो सदाही, पवित्र है उनको कमडलुसे क्या काम है?

तथा निग्रह, जो जिसके उपर क्रोध करे, तिसका वध, बधन मारण, रोगी, शोकी, अतीष्टवियोगी, नरकपात, निर्धन हीन, दीन, क्षीण करे, और अनुग्रह, जिसके ऊपर तुष्टमान होवे, तिसकों इन्द्र, चक्रवर्ती, बल

देव, वासुदेव, महामंडलिक, मंडलिकादिकोंको राज्यादि पदवीका वर देवे; तथा सुंदर देवांगनासदृश स्त्रीका संयोग, पुत्रपरिवारादिकोंका संयोग जो करे, ऐसा रागी, द्वेषी, देव मोक्षके तांइ कभी नहीं हो सक्ता है. सो तो भूत प्रेत पिशाचादिकोंकी तरह क्रीडाप्रिय देवता मात्र है. ऐसा देव अपने सेवकोंको मोक्ष कैसे दे सक्ता है? आपही यदि वो रागी द्वेषी कर्मपरतंत्र है तो, सेवकोंका क्या कार्य सार सक्ता है?

तथा जो नाद, नाटक, हास्य, संगीत, इनके रसमें मग्न है, वादित्र, (बाजा) बजाता है, नृत्य करता है, औरांको नचाता है, हसता और कूदता है, विषयी रागोंको गाता है, संगीत बोलता है, स्त्रीके विरहसे विलाप करता है, इत्यादिक अनेक प्रकारकी मोहकर्मके वश संसारकी चेष्टा करता है, और स्वभाव जिसका अस्थिर हो रहा है, सोभी परमेश्वर नहीं कहा जाता है; यदि परमेश्वर आपही ऐसा है तो फेर वो परमेश्वर सेवकोंको शांतिपद कैसे प्राप्त करा सक्ता है? यदि किसी पुरुषने एरंडवृक्षको कल्पवृक्ष मानलिया तो, क्या वो कल्पवृक्ष हो सक्ता है? वा कल्पवृक्षका सारा काम दे सक्ता है?

अब भगवान्में अष्टगुण होते हैं सो लिखते हैं.

॥ मूलम् ॥ आर्यावृत्तम् ॥

क्षितिजलपवनहुताशनयजमानाकाशसोमसूर्याख्याः ॥
इत्येतेष्टौ भगवति वीतरागे गुणा मताः ॥ ३४ ॥

भाषार्थ–क्षिति १ जल २ पवन ३ अग्नि ४ यजमान ५ आकाश ६ सोम ७ और सूर्य ८ ऐसे आठ गुण भगवान् वीतरागमें माने है. ॥३४॥

क्षितिरित्युच्यते क्षांतिर्जलं या च प्रसन्नता ॥
निःसंगता भवेद्वायुर्हुताशो योग उच्यते ॥ ३५ ॥
यजमानो भवेदात्मा तपोदानदयादिभिः ॥
अलेपकत्वादाकाशः संकाशः सोभिधीयते ॥ ३६ ॥

व्याख्या–क्षितिशब्दकरके क्षमा कहिए है, जल कहनेसे निर्मलता, और पवन कहनेसे निःसंगता–प्रतिबंधरहित, अग्नि कहनेसे योग, अर्थात्

जैसे अग्नि इंधनको भस्म करके जाज्वल्यमान रूपवाला होता है, तैसे भगवत कर्मवनको दाहके निर्मल योगरूपको प्राप्त हुये हैं इसवास्ते भगवान् अर्हन्‌को योगरूप कहते हैं यजमान अर्थात् यज्ञ करनेवाला आत्मा है, तपदानदयादिसें यज्ञ करता है निर्लेप लेपरहित होनेसें आकाशसमान भगवतको कहते हैं ॥३५–३६ ॥

सौम्यमूर्त्तिरुचिश्चंद्रो वीतराग समीक्ष्यते ॥
ज्ञानप्रकाशकत्वेन आदित्य सोऽभिधीयते ॥ ३७ ॥

व्याख्या—सौम्यमूर्ति मनोहर होनेसे भगवत चन्द्रवत् चन्द्र वीतराग होनेसे देखते है, और ज्ञानप्रकाशकरने करके सो भगवत अर्हंतको आदित्य (सूर्य) कहिये है ॥ ३७ ॥

पुण्यपापविनिर्मुक्तो रागद्वेषविवर्जित ॥
श्रीअर्हद्भ्यो नमस्कारः कर्त्तव्य· शिवमिच्छता ॥ ३८ ॥

व्या०–पुण्यपापकरके विनिर्मुक्त (रहित) है, और रागद्वेषकरके विवर्जित है ऐसे श्रीअर्हंतको मुक्तिइच्छक पुरुषोंने नमस्कार करणे योग्य है. ॥ ३८ ॥

अकारेण भवेद्विष्णू रेफे ब्रह्मा व्यवस्थित ॥
हकारेण हर प्रोक्तस्तस्यान्ते परम पदम् ॥ ३९ ॥

व्या०–अब अर्हन् शब्दका स्वरूप कथन करते हैं आदिमें जो अकार है, सो विष्णुका वाचक है, और रकारमें ब्रह्मा व्यवस्थित है, और हकार करके हर (महादेव) कथन करा है, और अतमें नकार परमपदका वाचक है ॥ ३९ ॥

अकार आदिधर्मस्य आदिमोक्षप्रदेशक ॥
स्वरूपे परम ज्ञानमकारस्तेन उच्यते ॥ ४० ॥

व्या०–अकार करके आदिधर्म और मोक्षका प्रदेशक है, तथा स्वरूपविषे परम ज्ञान है, इसवास्ते अर्हन् शब्दकी आदिमे जो अकार है, तिसका यह अर्थ होनेसे अकार कहते है ॥ ४० ॥

रूपि द्रव्यस्वरूपं वा दृष्ट्वा ज्ञानेन चक्षुषा ॥
दृष्टं लोकमलोकं वा रकारस्तेन उच्यते ॥ ४१ ॥

व्या०–रूपी द्रव्य, वा शब्दसे अरूपी द्रव्य, ज्ञाननेत्रकरके जिसने देखा है, तथा लोकालोक जिसने देखा है, इसवास्ते रकार कहते हैं.॥४१॥

हता रागाश्च द्वेषाश्च हता मोहपरीषहाः ॥
हतानि येन कर्माणि हकारस्तेन उच्यते ॥ ४२ ॥

व्या०–राग, द्वेष, अज्ञान, परीषह और अष्टकर्म हनन किये हैं, अर्थात् नष्ट किये हैं, इसवास्ते हकार कहते हैं. ॥ ४२ ॥

संतोषेणाभिसंपूर्णः प्रातिहार्याष्टकेन च ॥
ज्ञात्वा पुण्यं च पापं च नकारस्तेन उच्यते ॥ ४३ ॥

व्या०–संतोषकरके जो सर्वतरेसें संपूर्ण है, और अष्ट प्रातिहार्य-करके संपूर्ण है, सो अष्ट प्रातिहार्य लिखते हैं–

"किंकिल्लि कुसुमवुट्टि देवज्झुणि चामरासणाइं च ॥
भावलय भेरि छत्तं जयति जिणपाडिहेराइं" १ ॥

व्या०–भगवंतके सहचारि होनेसें प्रातिहार्य कहे जाते हैं, अथवा इंद्रके आदेश करनेवाले देवताओंका जो कर्म उसकों प्रातिहार्य कहते हैं, वे आठही प्रातिहार्य देवताके करे जाणने.

किंकिल्ली०–अशोकवृक्ष–सो जहां श्रीभगवंत विचरे समवसरे, वहां महाविस्तीर्ण कुसुमसमूह लब्धभ्रमरनिकर शीतलसच्छाय मनोहर विस्तीर्ण शाखावाला भगवान्के देहमानसें बारां गुणा अशोकवृक्ष देवता करते है, तिसके नीचे बैठके भगवान् देशना (धर्मोपदेश) देते हैं, ॥ १ ॥

कुसुमवुट्टि–पुष्पवृष्टिः–जलस्थलके उत्पन्न हुये, श्वेत, रक्त, पीत, नील, श्याम, ऐसे पांच वर्णोंके विकस्वर सरस सुगंधमय फूलोंकी वर्षा समवसरणकी पृथ्वीमें देवता करते हैं; जिसमें फूलोंके बींट नीचेपासे, और मुख ऊंचेपासे होते है, तथा वर्षा गोडेप्रमाण होती है; अर्थात् पुष्पवृष्टिसें समवसरण भूभागमें जानुप्रमाण उंचा पुष्पसमूह होता है.॥ २ ॥

देवज्झुणि–दिव्यध्वनिः–भगवान् जिस वखत अत्यंत मधुर स्वरकरके

सरस अमृतरससमान समस्त लोकोंको प्रमोद देनेवाली वाणीकरके धर्म देशना देते हैं, तिस वखत देवता तिस भगवतके स्वरको अपनी ध्वनि करके अखड (पूर्ण) करते हैं यद्यपि मधुरमें मधुर पदार्थसेंभी भगवान्की वाणीमें अधिक रस है, तथापि भव्य जीवके हितवास्ते भगवान् जो देशना देते हैं सो मालवकोश रागमें देते हैं, जिस वखत भगवान् मालवकोश रागकरके देशना आलापते हैं, तिस वखत भगवान्के दोनों तरफ रहे हुए देवता मनोहर वेणु वीणादिके शब्दकरके तिस भगवान्की वाणीको अधिकतर मनोज्ञ करते हैं जैसें कोई सुस्वर करके गयन करता होवे, उसके पास वीणादिके शब्दकरके ध्वनि पूर्ण करें ॥ ३ ॥

चामर—केलिस्तभमें लगे हुए ततु निकरके समान मनोहर दंडमें लगे हुए अनेक रत्नोंकी किरणोंकरके मानो इंद्रधनुष्यकाही विस्तार न होता होय? ऐसे रत्नोंकरके जडित सुवर्णदाडीसहित श्वेत चामर भगवान्के दोनोंपासे देवता करते हैं, तथा इंद्रभी करते हैं ॥ ४ ॥

आसणाइ च—आसनानि च—अनेक रत्नचूनियाकरके विराजमान सुवर्णमय मेरुशृगकीतरह ऊंचा और अनेक कर्मरूप वैरिके समूहकों मानो डराते न होय? ऐसें साक्षात् सिंहरूपकरके शोभायमान ऐसा सुवर्णमय सिंहासन देवता करते हैं, तिसके ऊपर बैठके भगवान् देशना देते हैं ॥ ५ ॥

भावलय—भामंडल—भगवतके पीछे शरदृऋतु सबधि सूर्यकी किरणों कीतरह दुर्दर्श अत्यंत देदीप्यमान श्री वीतरागके मस्तकके पीछले भागमें भामडलकीतरह भामडल होता है "भा" नाम काति, तिसका मडल अर्थात् माडला सो भामडल विनाभामडलके भगवान्के मुखसन्मुख अतिशय तेजोमयि होनेसें, कोइ देख नही सक्ता है इस वास्ते, देवता भामडलकी रचना करते हैं ॥ ६ ॥

भेरि—भेरी ढक्का दुदुभिरिति यावत्—जिसने अपने ओंकार शब्दकरके विश्वका विवर भरा है ऐसी भेरी शब्दायमान करते हैं मानो भेरीका शब्द तीन जगत्के लोकोंको ऐसें कहता न होय? कि "हे जनो! तुम प्रमादको छोडके श्री जिनेश्वर देवको सेवो, यह जिनेश्वर देव मुक्तिरूपी

गरीमें पहुंचानेको सार्थवाहतुल्य है," ऐसी दुंदुभि अर्थात् आकाशमें देव्यानुभावकरके क्रोडोंही देववाजिंत्र वजते हैं. ॥ ७ ॥

छत्तं–तीन भवनमें परमेश्वरत्वके ज्ञापक, शरत्कालके चंद्रमा और मुचकुंदके समान उज्वल मुक्ताफलकी मालाकरके विराजमान, ऐसें तीन छत्र भगवान्के मस्तकोपरि छत्रातिछत्रप्रत्ये धारण करते हैं.

यह आठ प्रातिहार्य श्री जिनेश्वर भगवत्संबंधि जयवंते वर्त्तो !

इन पूर्वोक्त अष्ट प्रातिहार्यकरके संपूर्ण है, और पुण्य पाप उपलक्षणसें नव तत्त्व जाणता है तिस हेतुसे नकार अंत्याक्षर कहते हैं. यह अर्हन् शब्दके अक्षरोंका अर्थ है. ॥ ४३ ॥

अब स्तवनकर्त्ता पक्षपातसें रहित होके अंतका आर्यावृत्त कहते हैं.

भवबीजाङ्कुरजनना रागाद्याःक्षयमुपागता यस्य ॥
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्धेमचंद्रसूरिविरचितं श्रीमहादेवस्तोत्रम् ॥

व्या०–संसाररूप बीजके चार गतिरूप अंकुरके उत्पन्न करनेवाले राग, द्वेष, अज्ञानादि अठारह दूषण जिसके क्षयभावको प्राप्त हुए हैं, तिसका नाम ब्रह्मा हो, वा विष्णु हो, वा हर,(महादेव) हो, वा जिन हो, तिसकेतांइ नमस्कार हो ॥ ४४ ॥ इति श्रीम० श्रीमहादेव स्तोत्रम् ॥

इन पूर्वोक्त विशेषणोंवाले ब्रह्मा, विष्णु, महादेवकोंही जैनमतवाले अर्हन्, अरिहंत, अरुहंत, अरह, जिन, तिर्थंकर, इत्यादि नामोंसें मानते हैं. क्योंकि, जैनमतमें अरिहंत है, सोही ब्रह्मा, विष्णु, महादेव है. "यदुक्तं श्रीमन्मानतुङ्गसूरिप्रवरैः—'

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधा-
त्त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रयशंकरत्वात् ॥
धातासि धीरशिवमार्गविधेर्विधाना-
द्व्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुषोत्तमोऽसि ॥ २५ ॥

टीका ॥ अर्थान्तरकरणेनान्यदेवनाम्ना जिनं स्तुवन्नाह । बुद्धस्त्वमिति ॥ हे नाथ! त्वमेव बुद्धः असि वर्त्तसे । असीति क्रियापदं । कः कर्त्ता । त्वं ।

कथभूतस्त्व । बुद्ध ज्ञाततत्त्व । कस्मात् विबुधार्चितबुद्धिबोधात् । विबुधै गणधरैर्देवैर्वा अर्चित पूजितो बुद्धे केवलज्ञानस्य बोधो वस्तुस्तोमपरिच्छेदो यस्य स विबुधार्चितबुद्धिबोधस्तस्मात् विबुधार्चितबुद्धिबोधात् इति बहुव्रीहि । पक्षे बुद्ध । सप्तानामन्यतम सुगत केवलज्ञानाभावेन ज्ञाततत्त्वो नास्तीति भाव । हे नाथ ! त्वमेव शकरोऽसि । असीति क्रियापद । कः कर्त्ता । त्व । कथभृतस्त्व । शकर । कस्मात् । भुवनत्रयशकरत्वात् । भुवनत्रयस्य जगत्त्रितयस्य शकरत्वात् सुखकारित्वात् । भुवनाना त्रय भुवनत्रय इति तत्पुरुष । भुवनत्रयस्य शं सुख करोतीति भुवनत्रयशंकरस्तस्य भावस्तत्त्व तस्मात् भुवनत्रयशकरत्वात् । इति तत्पुरुष । पक्षे शंकरो महादेव स तु कपाली नग्नो भैरव सहारक तेन यथार्थनामा शकरो नास्तीति भाव । हे धीर ! धिय बुद्धि राति ददातीति धीरस्तस्य सबोधन हे धीर ! धाता त्व असि । कस्मात् । निष्पादनात् । कस्य शिवमार्गविधे । शिवस्य मोक्षस्य मार्ग पथा । तस्य विधि रत्नत्रयरूपयोगस्तस्येति तत्पुरुषः । एतावता मोक्षमार्गविधेर्विधानात् त्वमेव धातासीत्यर्थ सपन्न । पक्षे धाता ब्रह्मा स तु जडो वेदोपदेशान्नरकपथमुदजीघटत्तेन शिवमार्गविधेर्विधायको नास्तीति भाव । हे भगवन् ! त्वमेव व्यक्त स्पष्ट पुरुषोत्तम असि । पुरुषेषु उत्तम पुरुषोत्तम इति तत्पुरुष । पक्षे पुरुषोत्तम कृष्ण । स तु सर्वत्र कपटप्रकटनात् यथार्था पुरुषोत्तमता न धत्ते इति भाव ॥ २९ ॥

भावार्थ —यह है कि, हे नाथ ! विबुधों, वा गणधरों, वा देवोंकरके पूजित केवलज्ञानके बोध वस्तु स्तोमके प्रगट करनेवाला होनेसें, तूही बुद्ध है पक्षमें सातों बुद्धोंमेंसे अन्यतम सुगत केवलज्ञानके अभावकरके ज्ञाततत्त्व नही है हे नाथ ! तीन भुवनकों, श (सुख) करनेसे तूं शकर है पक्षमें शंकर, महादेव, सो तो, कपाली, नग्न, भैरव सहारक होनेकरके यथार्थनामा शकर नही है हे धीर ! ज्ञानदर्शनचारित्ररूप मोक्षमार्गके विधिकों करनेसे तूही धाता है पक्षमें धाता, ब्रह्मा, सो तो, जड है वेदोपदेश (हिंसकशास्त्रोपदेश) सें नरकपथकों प्रगट करता भया, तिसकरके शिवमार्गके विधिको करनेवाला नही है हे भगवन्!

तूं ही व्यक्त (प्रगट) पुरुषोंमें उत्तम है. पक्षमें पुरुषोत्तम, कृष्ण, सो तो, सर्वत्र कपटवशसे यथार्थ पुरुषोत्तम नही है ॥ २९ ॥

और अज्ञ लोकोंने, जो ब्रह्मा, विष्णु, महादेवके नामोंको कलंकित करे है, और तिनके असभ्यतारूप चरित लिखे हैं, वे देव यथार्थ ब्रह्मा विष्णु, महादेव नही माने जाते हैं. क्योंकि उन देवोंका चरित, और स्वरूप, जो परमतवालोंने लिखा है, तिस चरित स्वरूपसेही सिद्ध होता है कि वे यथार्थ ब्रह्मा, विष्णु, महादेव नही थे.

तथाचाह भर्तृहारिः– ॥

शंभुस्वयंभुहरयो हरिणेक्षणानां
येनाक्रियंत सततं गृहकुंभदासाः ॥
वाचामगोचरचरित्रपवित्रिताय*
तस्मै नमो भगवते मकरध्वजाय† ॥ ४८ ॥

भावार्थः–जिस कामदेवने, शंभु (महादेव), स्वयंभु (ब्रह्मा), और हरि (विष्णु), इन्होंकों, हरिणसमान, ईक्षण (नेत्र) है जिनोंके, ऐसी स्त्रियोके निरंतर घरके कुंभदास, अर्थात् पानी भरनेवाले करे हैं. [दूसरी परतमें, 'गृहकर्मदासाः' ऐसा पाठ है. उसका अर्थ घरके काम करनेवाले दास, अर्थात् नौकर.] वचनके अगोचर चरित्र उन्होंकरके पवित्र, ऐसा जो भगवान् मकरध्वज (कामदेव) तिसकेतांइ नमस्कार हो.

तथा भोजराजाकी सभाके मुख्य पंडित धनपालजी कहते हैं.

दिग्वासा यदि तत्किमस्य धनुषा तच्चेत्कृतं भस्मना
भस्माथास्य किमङ्गना यदि च सा कामं प्रति द्वेष्टि किम् ॥
इत्यन्योन्यविरुद्धचेष्टितमहो पश्यन्निजस्वामिनो
भृङ्गी सान्द्रसिरावनद्धपरुषं धत्तेऽस्थिशेषं वपुः ॥ १ ॥

* प्रत्यतरे 'वाचामगोचरचरित्रविचित्रिताय'–अर्थ.–वाणीयोंके अगोचर अर्थात् वचनोंसें न कहे जावे. ऐसें विचित्र, अद्भुत, आश्चर्यकारी, चरित्र है जिसके, ऐसा जो कामदेव भगवान् तिसकेतांइ नमस्कार हो,

† प्रत्यतरे 'कुसुमायुधाय' यह कामदेवकाही पर्यायनाम है.

भावार्थ —एकदा अवसरमें भोजराजा शिवालयके द्वारमें अति दुर्बल भृगीगणकी मूर्ति देखके, पंडित श्रीधनपालजीकों पूछते भए कि, “हे पंडित! यह भृगीगण अति दुर्बल किस कारणसें है?” तब श्रीपंडित धनपालजीने कहा, “हे राजन्! यह भृगीगण, अपने स्वामी शंकरका असमंजस स्वरूप देखके चिंताकरके दुर्बल हो गया है,” सोही दिखाते हैं भृगीगण यह चिंता करता है कि, यदि महादेव, दिगंबर (दिशारूप वस्त्रका धारी) है, तो फेर इनकों धनुष काहेकों रखना चाहिये? क्योंकि, दिगंबर, निं किंचन, होके धनुष रखना यह परस्पर विरुद्ध है ॥ १ ॥ यदि, धनुषही रखना था, तो फेर शरीरको भस्म लगानेसें क्या लाभ है? क्योंकि, धनुषधारी होना यह योद्धे और अहेडी शकारीयोंका काम है, और भस्म शरीरको लगाना यह संतोंका काम है, जिसका किसीकेभी साथ वैर विरोध नही है यह दूसरा विरोध ॥ २ ॥ अथ जेकर भस्मही शरीरके लगाये संत बने, तो फेर स्त्रीकों संग काहेकों रखनी चाहिये? ॥ ३ ॥ जेकर स्त्रीही संग रखनी थी, तो फेर कामके ऊपर द्वेष करके उसकों भस्म क्यों करना था? ॥ ४ ॥ ऐसें परस्पर अपने स्वामीके विरुद्ध लक्षण देखके भृगीगण दुर्बल हो गया है

॥ अकलंकदेवोप्याह ॥

ईशः किं छिन्नलिङ्गो यदि विगतभयः शूलपाणिः कथं स्या-
न्नाथः किं भैक्ष्यचारी यतिरिति च कथं साङ्गनः सात्मजश्च ॥
आर्द्राजः किंत्वजन्मा सकलविदिति किं वेत्ति नात्मान्तरायं
संक्षेपात्सम्यगुक्तं पशुपतिमपशुः कोत्र धीमानुपास्ते ॥ १ ॥

भावार्थ —जेकर शंकर, आप ईश्वर सर्व वस्तुका कर्त्ता, हर्त्ता है तो, ऋषिके शापमें उसका लिंग किस वास्ते टूट गया? और ईश्वर होके ऋषिके आगे नग्न होके काहेकों नाचा? और जेकर ईश्वर भयरहित है तो, शूलपाणि क्यों है? जेकर त्रिभुवननाथ है तो, क्यों भीख मांगके खाता है? जेकर यति है तो, किसवास्ते स्त्रीसहित और पुत्रसहित है? जेकर आर्द्रा नक्षत्रसें जन्म लिया तो, अजन्मा (जन्मरहित)

किसतरह हुआ? जेकर सर्वज्ञ है तो, आत्माकी अंतराय क्यों नही देखता? अर्थात् घरघरमें भीख मांगता है, तब किसी घरसें भीख मिलती है, और किसी घरसें नही मिलती है; जिस घरसें भीख नही मिलती है, तिस घरमें भीख मांगनेको क्यों जाता है? यह संक्षेपसें सम्यक् प्रकारसें कथन करा है. ऐसे पशुपति (महादेव) की, अपशु अर्थात् बुद्धिमान् मनुष्य कौन सेवा कर सक्ता है? ॥ १ ॥ इस हेतुसें, जो कल्पित ब्रह्मा, विष्णु, महादेव हैं, वे जैनमतवालोंके उपास्य नही हैं. और जो यथार्थ ब्रह्मा, विष्णु, महादेव है, वे जैनोंके उपास्य है.

" इति श्रीविजयानन्दसूरिकृते तत्वनिर्णयप्रासादे किंचिद्देवस्वरूपवर्णनो नाम द्वितीयः स्तम्भः ॥ २ ॥ "

अथ तृतीयस्तम्भप्रारम्भः

द्वितीयस्तंभमें यथार्थ ब्रह्मा, विष्णु, महादेवका किंचिन्मात्र स्वरूप लिखा. अथ तृतीयस्तंभमें तिन यथार्थ ब्रह्मा, विष्णु, महादेवमें जे जे अयोग्य बातें हैं, तिनके व्यवच्छेदरूप श्रीमन्महावीरस्वामी स्तोत्र लिखते हैं.

इहां निश्चय विषमदुःषमअररूप रात्रितिमिरके दूर करनेकों सूर्यसमानने, और पृथिवीतलमें अवतार लेके अमृतसमान धर्मदेशनाके विस्तारसें परमार्हत हुआ श्री कुमारपाल भूपालसें प्रवर्त्तित कराई अभयदान जिसका नाम ऐसी संजीविनी औषधिकरके जीवित करे नाना जीवोंने दीनी आशीर्वादरूप महात्म्यकल्प अर्थात् पंचम अरेपर्यंततांइ स्थिर रहनेहारा स्थिर करा है विशद (निर्मल) यशःशरीरकरके जिन्होंनें, और चातुरविद्यके निर्माण करनेमें एक ब्रह्मारूप श्रीहेमचंद्रसूरिने, जगत्में प्रसिद्ध श्रीसिद्धसेनदिवाकरविरचित बत्तीस बत्तीसियोंके अनुसारि श्रीवर्द्धमानजिनकी स्तुतिरूप, अयोग्यव्यवच्छेद और अन्य योग्यव्यव-

च्छेद नाम किया दो वत्तीसियां पंडितजनोंके मनके तत्त्वबोध हेतुभूत रचीयां है तिनमेंसें, प्रथम द्वात्रिंशिका सुगमार्थरूप है, इसवास्ते इसकी व्याख्या नही करते हैं, ऐसें श्रीमल्लिषेणसूरि कहते हैं , परंतु इस कालके हमारे सरीखे मंदबुद्धियोंको तो, प्रथम द्वात्रिंशिकाका अर्थ जानना बहुतही कठिन हो रहा है, तथापि, शिष्यजनोंकी प्रार्थनासें, और श्रीहेमचंद्रसूरिजीकी भक्तिके मिससें किंचिन्मात्र अर्थ लिखते हैं

अगम्यमध्यात्मविदामवाच्य वचस्विनामक्षवतां परोक्षम्
श्रीवर्द्धमानाभिधमात्मरूपमहं स्तुतेर्गोचरमानयामि ॥ १॥

व्याख्या—(अहं) मैं हेमचंद्रसूरि (श्रीवर्द्धमानाभिधम्) श्रीवर्द्धमान नाम भगवतको (स्तुते) स्तुतिका (गोचरम्) विषय (आनयामि) करता हूं कैसा है श्रीवर्द्धमान भगवंत (अध्यात्मविदाम्) अध्यात्मवेत्तायोंके (अगम्यम्) अगम्य है, अर्थात् अध्यात्मज्ञानीभी जिसका संपूर्ण स्वरूप नही जान सक्ते हैं जे आत्माका, मनका और देहका, यथार्थ स्वरूप जानते हैं, तिनको अध्यात्मवित् कहते हैं तिनोंकेभी ज्ञानकरके श्रीवर्द्धमान भगवंतका स्वरूप अगम्य है तथा (वचस्विनाम्) वचस्वी पंडितको कहते हैं, मनःपर्यायज्ञानी, अवधिज्ञानी, पूर्वधर, गणधरादि सर्व शास्त्रोंका वेत्ता ऐसें सद्बुद्धिमान् सर्व पापोंसें दूर वर्त्तनेवाले ऐसें पंडितोंके वचनों करके श्रीवर्द्धमान भगवंतका स्वरूप (अवाच्यम्) अवाच्य है, अर्थात् ऐसें पंडितभी जिनका संपूर्ण स्वरूप नही कह सक्ते है क्योंकि, श्रीवर्द्धमान भगवंत अनंतस्वरूप गुणवान् है और छद्मस्थके तो ज्ञानमेंही वे सर्वगुण नही आ सक्ते हैं तो, तिन सर्वका स्वरूप कथन करना तो दूरही रहा तथा (अक्षवताम्) नेत्रोंवालोंके (परोक्षम्) परोक्ष है, यद्यपि संप्रति कालके नेत्रोंवालोंके तो भगवंतका स्वरूप देखना परोक्षही है, परंतु भगवंतके जीवनमोक्षके समयमें भी नेत्रोंवालोंकेभी श्रीभगवंतका स्वरूप परोक्षही था क्योंकि, समवसरणमेंभी विराजमान भगवंतका अनंत गुणात्मक स्वरूप, नेत्रोंवाले नही देख सक्ते थे तथा कैसे है श्रीवर्द्धमानाभिध भगवंत (आत्मरूपम्) आत्मरूप है आत्मा शब्दका अर्थ ऐसा है कि, अतति

सततं निरंतर अवगच्छति जानता है; अत 'सात्यतगमने' इस बचनसें, अत धातुकों गत्यर्थ होनेसें, और गत्यर्थ सर्व धातुयोंकों ज्ञानार्थत्व होनेसें. तब तो, अनवरत निरंतर जो जानें ऐसें निपातसें, आत्मा, जीव, उपयोग, लक्षण होनेसें, आत्मा सिद्ध होता है. और सिद्ध मोक्षावस्था संसारी अवस्था दोनोंमेभी, उपयोगके भाव होनेकरके निरंतर अवबोधके होनेसें. जेकर निरंतर अवबोध न होवे, तब तो अजीवत्वका प्रसंग होवेगा; और अजीवको फेर जीव होनेके अभावसें. जेकर, अजीवभी जीव हो जावे, तब तो, आकाशादिकोंकोभी जीवत्व होनेका प्रसंग होवेगा. तब तो, जीवादि व्यवस्थाकाही भंग होवेगा. इसवास्ते, निरंतर अवबोधरूप होनेसें, आत्मा कहते हैं. अथवा, अतति सततं निरंतरं गच्छति प्राप्त होता है, अपनी ज्ञानादिपर्यायांकों जो, सो आत्मा है.

पूर्वपक्षः—ऐसें तो आकाशादिकोंकों भी, आत्मशब्दके व्यपदेशका प्रसंग होवेगा. क्योंकि, वेभी अपनी अपनी पर्यायांकों प्राप्त होते हैं; अन्यथा अपरिणामी होनेकरके, अवस्तुत्वका प्रसंग होवेगा.

उत्तरपक्षः—जैसें तुम कहते हो, तैसें नही है. क्योंकि, दो प्रकारके शब्द होते हैं. व्युत्पत्तिमात्रनिमित्तरूप, और प्रवृत्तिनिमित्तरूप; तिसमें यह तो व्युत्पत्तिमात्रही है, और प्रवृत्तिनिमित्तसें तो जीवही आत्मा है. न आकाशादि. अथवा, संसारी अपेक्षा नानागतियोंमें निरंतर गमन करनेसें, और मुक्तात्माकी अपेक्षाभूततद्भावसें आत्मा कहते हैं. यह आत्मा शब्दका अर्थ है. सो आत्मा, तीन प्रकारका है. बाह्यात्मा १, अंतरात्मा २, परमात्मा ३. तिनमें जो परमात्मा है, तिसका स्वरूप ऐसा है, जो शुद्धात्मस्वभावके प्रतिबंधक कर्म शत्रुयोकों हणके निरूपमोत्तम केवलज्ञानादि स्वसंपद पाकरके, करतलामलकवत् समस्त वस्तुके समूहकों विशेष जानते और देखते हैं; और परमानंदसंपन्न होते हैं; वे तेरमें चौदमें गुणस्थानवर्त्ती जीव, और सिद्धात्मा, शुद्धस्वरूपमें रहनेसें, परमात्मा कहे जाते हैं. ऐसा परमात्मास्वरूप है, जिसका ॥ १ ॥

इस काव्यका भावार्थ यह है कि, सपाद लक्ष पंचांगव्याकरणादि साढेतीन कोटि श्लोकोके कर्त्ता, श्रीहेमचंद्राचार्य, अपने आपकों श्रीवर्द्ध-

मान भगवतकी सपूर्ण स्तुति करनेकी सामर्थ्य न देखते हुए, अपने आपकों कहते हैं कि, जो वर्द्धमान भगवत परमात्मरूप हे, जो अध्यात्म ज्ञानियोंके अगम्य है, जो वचस्वियोंके अवाच्य है, और जो नेत्रवालोंके परोक्ष हे, तिनकों में स्तुतिका विषय करता हू, यह वडाही मेरा साहस है. तब मानू श्री वर्द्धमान भगवत साक्षात्ही श्री हेमचद्राचार्यकों कहते हैं कि, "हे हेमचद्र! जेकर तू मेरी स्तुति करनेकों शक्तिमान् नही है तो, तूं किसवास्ते मेरी स्तुति करनेकों उद्यम करता है?" तब श्री हेमचद्राचार्य भगवतको मानू साक्षात्ही कहते हैं

स्तुतावशक्तिस्तव योगिना न किं गुणानुरागस्तु ममापि निश्चल
इद विनिश्चित्य तव स्तव वदन्न वालिशोप्येष जनोऽपराध्यति२

व्याख्या-"हे भगवन्! (तव) तेरी (स्तुतौ) स्तुति करनेमें (किम्) क्या (योगिनाम्) योगियोंकों (अशक्ति) असमर्थता (न) नही है! अपितु है, अर्थात् हे भगवन्! तेरी स्तुति करनेकी योगियोंमेंभी शक्ति नही है, परतु तिनोंनेभी तेरी स्तुति करी है" तब मानू भगवान् फेर साक्षात् श्री हेमचद्रजीकों कहते हैं कि, "हे हेमचद्र! योगियोंकों मेरे गुणोंमें अनुराग है, इस वास्ते तिनोंने मेरी स्तुति करी है जो गुण रागी करेगा सो समीची नही करेगा" तब श्रीहेमचंद्रजी कहते हैं (गुणानुरागस्तु ममापि निश्चल) "गुणानुराग तो मेरा भी निश्चल है, अर्थात् हे भगवन्! तेरे गुणोंका राग तो मेरेमी अति दृढ है (इदम्) यही वार्त्ता (विनिश्चित्य) अपने मनमें चिंतन करके अर्थात् निश्चय करके (तव स्तव वदन्) तेरी स्तुति कहता हुआ (वालिश अपि) मूर्ख भी (एष जन) यह हेमचद्र (नअपराध्यति) अपराधका भागी नही होता हे

अथ स्तुतिकार अपनी निरभिमानता और पूर्वाचार्योंकी बहुमानता सूचन करते हैं

क सिद्धसेनस्तुतयो महार्था अशिक्षितालापकला क चैपा ॥
तथापि यूथाधिपतेः पथस्थः स्खलद्गतिस्तस्य शिशुर्न शोच्यः ॥३॥

व्याख्या—हे भगवन्! (क) कहां तो (महार्थाः) अति महा अर्थ संयुक्त (सिद्धसेनस्तुतयः) सिद्धसेनदिवाकरकी करी हुई स्तुतियां, और (क) कहां (एषा) यह (अशिक्षितालापकला) नही सीखा है अब तक पूरा पूरा बोलनाभी जिसने, तिसके कहनेकी स्तुतिरूप कला; अर्थात् कहां श्रीसिद्धसेनदिवाकररचित महा अर्थवालिया बत्तीस बत्तीसियां, और कहां मेरे अशिक्षित आलापकी यह स्तुतिरूप कला; (तथापि) तोभी, (यूथाधिपतेः) हाथियोंके यूथाधिपके (पथस्थः) पथ मार्गमें रहा हुआ (स्खलद्गतिः) स्खलित गतिभी, अर्थात् पथसें इधर उधर गति स्खलायमान् भी (तस्य) तिस यूथाधिपका (शिशुः) बालक कलभ (न शोच्यः) शोचनीय नही है. ऐसेंही श्री सिद्धसेनदिवाकर गच्छाधिप है, और मैं तिनका (बालक) बच्चा हूं. जिस रस्तेपर वे चले हैं, मैंभी तिसही रस्तेमें रहा हुआ, अर्थात् तिनकी तरहही स्तुति करता हुआ, जेकर स्खलायमानभी होजावुं, तोभी शोचनीय नही हूं.

अथाग्रे श्रीहेमचंद्रसूरि अयोग व्यवच्छेदरूप भगवंतकी स्तुति रचते हैं.

जिनेंद्र यानेव विबाधसे स्म दुरंतदोषान् विविधैरुपायैः ॥
त एव चित्रं त्वदसूययेव कृताः कृतार्थाः परतीर्थनाथैः ॥४॥

व्याख्या—हे जिनेंद्र! (यानेव) जिनही (दुरंतदोषान्) दुरंतदूषणोंकों (विविधैः) विविध प्रकारके (उपायैः) उपायोंकरके (विबाधसे) तुम बाधित करते हुए हैं, अर्थात् जिन दुरंतदूषण राग, द्वेष, मोहादिकोंको नाना प्रकारके संयम, तप, ज्ञान, ध्यान, साम्यसमाधि, योग लीनतादि उपायोंकरके दूर करे हैं; (चित्रम्) मुझकों वडाही आश्चर्य है कि, (त एव) वेही दुरंतदूषण (परतीर्थनाथैः) परतीर्थनाथोंने (त्वदसूययेव) तेरी असूया करकेही (कृतार्थाः) कृतार्थ (कृताः) करे हैं, अर्थात् अच्छे जानके स्वीकार करे हैं; सोही दिखाते हैं.

हे भगवन्! प्रथम रागकों तैने दूर करा; तिस रागकोंही परतीर्थनाथोंने स्वीकार करा है. क्योंकि, रागका प्रायः मूल कारण स्त्री है, सो तो, तीनोंही देवने अंगीकार करी है. ब्रह्माजीने सावित्री, शंकरने पार्वती,

और विष्णुने लक्ष्मी और पुत्र पुत्रीयां साम्राज्य परिग्रहादिकी ममतामी सर्व देवोंके तिनके शास्त्रोंके कथनानुसारही सिद्ध हे और अप्रीतिल क्षणद्वेपभी पूर्वोक्त देवोंमें सिद्ध हे क्योंकि, जो शस्त्र रखेगा सो यातो वैरीके भयसें अपनी रक्षाकेवास्ते रखेगा, यातो अपने वैरियोंको मारने वास्ते रखेगा, शकर धनुप, वाण, त्रिशूलादि, और विष्णु चक्र, धनुष वाण, गदादि, और ब्रह्मादि तीनो देवोंने अनेक पुरुपोंकों शाप दिये महाभारतादि ग्रथोंमें प्रसिद्ध है, और शकर विष्णुने अनेक जनोंके साथ युद्ध करे हे, इत्यादि अनेक हेतुयोंसें, तीनो देव, द्वेपी सिद्ध होते हैं और मोह, अज्ञानभी, तीनो देवादिक परतीर्थनाथोंने स्वीकार करा हे क्योंकि, जपमाला रखनेसें अज्ञानी सिद्ध होते है, जपमाला जपकी गिणती वास्ते रखते हैं, जपमालाविना जपकी गिणती (सख्या) न जानने सें, अज्ञानिपणा सिद्ध हे और महाभारत, रामायण, शिवपुराणादि ग्रथोंके कथनसें, तीनो देव, अस्मदादिकोंकी तरह अज्ञानी सिद्ध होते हैं. जैसें, शिवके लिंगका अत ब्रह्मा विष्णुकों न मिला, इत्यादि अनेक उदाहरण है तिससें, तीनो देव अज्ञानी सिद्ध होते हैं तथा हास्य, रति, अरति, भय, जुगुप्सा, शोक, काम, मिथ्यात्व, निद्रा, अविरति, पाच विघ्नादि दूपणभी, तीनो देवादिकोंमें तिनके कथन करे शास्त्रोंसेंही सिद्ध होते हैं

इस वास्ते मानू हे जिनेंद्र! तीनो देवोंने तेरी ईर्पा करकेही पूर्वोक्त दूपण अगीकार करे हैं यह प्राय जगत्में प्रसिद्धही हे कि, जो निर्द्धन धनाढ्यका स्पर्धी, जब धनाढ्यकी बरावरी नही करसक्ता है, तब धनाढ्य की ईर्पासे विपरीत चलना अगीकार करता हे तैसेंही, परतीर्थनाथोंने हे भगवन्! तेरेकों सर्व दूपणोंसें रहित देखके तेरी ईर्पासेंही मानू सर्व दूपण कृतार्थ करे हैं, यह मेरेकों बडाही आश्चर्य हे ॥ ४ ॥

अथ स्तुतिकार भगवतमें असत् उपदेशकपणे काव्य वच्छेद करते हं

यथास्थित वस्तु दिशन्नधीश न तादृश कौशलमाश्रितोऽसि ॥
तुरगशृगाण्युपपादयद्भ्यो नमः परेभ्यो नवपण्डितेभ्यः॥ ५ ॥

व्याख्या–हे अधीश! हे जिनेंद्र! तू (यथास्थित) यथास्थित (वस्तु) व

स्तुका स्वरूप (दिशन्) कथन करता हूआ (तादृशं) तैसी (कौशलं) कौशलता–चातुर्यताकों (न) नही (आश्रितोसि) आश्रित–प्राप्त हूआ है, जैसी चातुर्यताकों असद्रूप पदार्थकों, सद्रूप कथन करते हूए परवादी प्राप्त हूए हैं, अर्थात् जीव १, अजीव २, पुण्य ३, पाप ४, आस्रव ५, संवर ६, निर्ज्जरा ७, वंध ८, और मोक्ष ९, यह नव पदार्थ हैं. तिनमें जो जीव है, सो ज्ञानादि धर्मोंसें कथंचित् भिन्नाभिन्न रूप है, शुभाशुभ कर्मोंका कर्त्ता है, अपने करे कर्मोंका फल अपने अपने निमित्तों द्वारा भोक्ता है, नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव रूप चार गतिमें अपने कर्मोंके उदयसें भ्रमण करता है, सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप साधनोंसें निर्वाण पदकों प्राप्त होता है, चैतन्य अर्थात् उपयोगही जिसका लक्षण है, अपने कर्मजन्य शरीर प्रमाण व्यापक है, द्रव्यार्थिक नयके मतसें नित्य है, पर्यायार्थिक नयके मतसें अनित्य है, द्रव्यार्थें स्वरूपसें अनादि अनंत है, पर्यायार्थें सादि सांत है, और कर्मोंके साथ प्रवाहसें अनादि संयोग संबंधवाला है, इत्यादि विशेषणोंवाला जीव है. ॥ १॥

चैतन्यरहित, अज्ञानादि धर्मवाला, रूप, रस गंध, स्पर्शादिकसें भिन्नाभिन्न, नरामरादि भवांतरमें न जानेवाला, ज्ञानावरणादि कर्मोंका अकर्त्ता, तिनोके फलका अभोक्ता, जड स्वरूप, इत्यादि विशेषणोंवाला रूपी, अरूपी, दो प्रकारका अजीव है. तिनमें परमाणुसें लेके जो वस्तु वर्ण गंध रस स्पर्श संस्थानवाला दृश्य है, वा अदृश्य है, सो सर्व रूपी अजीव है. तथा धर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, और काल, ये चारों अरूपी अजीव है. धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, यह तीनों द्रव्यसें एकैक द्रव्य हैं, क्षेत्रसें धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय यह दोनों लोकमात्र व्यापक है, आकाशास्तिकाय, लोकालोक व्यापक है, कालसें तीनों ही द्रव्य अनादि अनंत है, और भावसें वर्ण गंध रस स्पर्शरहित, और गुणसें धर्मास्तिकाय चलनेमें सहायक है, और अधर्मास्तिकाय स्थितिमें सहायक है, और आकाशास्तिकाय सर्व द्रव्योंका भाजन विकाश देनेमें सहायक है. काल, द्रव्यसें एक वा अनंत है, क्षेत्रसें अढाइ द्वीप प्रमाण व्यावहारिक काल है, कालसें अनादि अनंत है, भावसे वर्ण गंध रस

स्पर्श रहित, गुणसें नव पुराणादि करनेका हेतु है और रूपी अजीव पुद्गल रूप द्रव्यसें पुद्गल द्रव्य अनंत है, क्षेत्रसें लोकप्रमाण है, कालसें अनादि अनंत है, भावसें वर्ण गंध रस स्पर्श वाला है मिलना और विच्छड जाना यह इसका गुण है, इन पूर्वोक्त पांचों द्रव्योंका नाम अजीव है २

तथा पुण्य जो है, सो शुभ कर्मोंके पुद्गल रूप है, जिनके संबंधसें जीव सांसारिक सुख भोगता है ३ इससें जो विपरीत है सो पाप है ४ मिथ्यात्व (१) अविरति (२) प्रमाद (३) कषाय (४) और योग (५) यह पांच बंधके हेतु है, इस वास्ते इनकों आस्रव कहते हैं, ५ आस्रवका निरोध जो है सो संवर है, अर्थात् सम्यग्दर्शन, विरति, अप्रमाद, अकषाय, और योगनिरोध, यह संवर है ६ कर्मका और जीवका क्षीरनीरकी तरें परस्पर मिलना तिसका नाम बंध है ७ बंधे हूए कर्मोंका जो क्षरणा है सो निर्ज्जरा है ८ और देहादिकका जो जीवसें अत्यंत वियोग होना और जीवका स्वस्वरूपमें अवस्थान करना तिसका नाम मोक्ष है ९ *

इन पूर्वोक्त नवही तत्त्वोंका स्याद्वाद शैलीसें शुद्ध श्रद्धान करना तिसका नाम सम्यग्दर्शन है, और इनका स्वरूप पूर्वोक्त रीतिसें जानना तिसका नाम सम्यग्ज्ञान है, और सत्तरें भेदें संयमका पालना तिसका नाम सम्यक्चारित्र है, इन तीनोंका एकत्र समावेश होना तिसका नाम मोक्षमार्ग है, जड, और चैतन्यका जो प्रवाहसें मिलाप है, सो संसार है, यह संसार प्रवाहसें अनादि अनंत है और पर्यायोंकी अपेक्षा क्षणविनश्वर है इत्यादि वस्तुका जैसा स्वरूप था, तैसाही, हे जिनाधीश ! तैंने कथन करा है, ऐसे कथन करनेसें तैंने कोई नवीन कुशलता—चातुर्यता नही प्राप्त करी है क्योंकि, जेसें अतीतकालमें अनंत सर्वज्ञोंने वस्तुका स्वरूप यथार्थ कथन करा है, तैसाही तुमने कथन करा है इस वास्ते, (तुरगशृंगाण्युपपादयद्भ्य)घोडेके शृंग उत्पन्न करनेवाले (परेभ्य नवपंडितेभ्य) पर नवीन पंडितोंकेताइं (नम) हमारा नमस्कार होवे, अर्थात् जिनोंने तुरगशृंग समान असत् पदार्थ कथन करके

* जीवाजीवादि नव पदार्थोंका स्वरूप जैनतत्त्वादर्श ग्रंथमें विस्तारसें लिखा है, इस वास्ते यहां नहीं लिखा है

जगत्‌वासी मनुष्यांको मिथ्यात्व अंधकार संसारकी वृद्धिके हेतुभूत मार्गमें प्रवर्त्तन कराया है, तिनोंकेतांइ हम नमस्कार करते हैं. ये तुरंगश्रृंग समान पदार्थ यह है. एकही ब्रह्म है, अन्य कुछभी नही है, १. पूर्वोक्त ब्रह्मके तीन भाग सदाही निर्मल है और एक चौथा भाग मायावान् है, २. ब्रह्म सर्वव्यापक है. ३. सक्रिय है, ४. कूटस्थ नित्य है, ५. अचल है, ६. जगत्‌की उत्पत्ति करता है, ७. जगत्‌का प्रलय करता है, ८. ऊर्णनाभकीतरें सर्व जगत्‌का उपादान कारण है, ९. सदा निर्लेप सदा मुक्त है,१०. यह जगत् भ्रममात्र है, ११. इत्यादि तो वेद और वेदांत मतवालोंने तुरंगश्रृंग समान वस्तुयोंका कथन करा है.

और सांख्य मतवालोंने एक पुरुष चैतन्य है, नित्य है, सर्वव्यापक है, एक प्रकृति जडरूप नित्य है, तिस प्रकृतिसें बुद्धि उत्पन्न होती है, बुद्धिसें अहंकार, अहंकारसें षोडशकागण, पांच ज्ञानेंद्रिय, (पांच कर्मेंद्रिय, इग्यारमा मन, और पांच तन्मात्र, एवं षोडश) पांच तन्मात्रसें पाच भूत एवं सर्व, २५ प्रकृति जडकर्त्ता है, और पुरुष तिसका फल भोक्ता है, पुरुष निर्गुण है, अकर्त्ता है, अक्रिय है, परंतु भोक्ता है, इत्यादि सर्व कथन तुंरगशृंगकीतरें असद्रूप करा है.

नैयायिक वैशेषिक यह दोनों ईश्वरको सृष्टिका कर्त्ता मानते हैं, ईश्वर नित्य बुद्धिवाला है, सर्वव्यापक और नित्य है, ईश्वरही सर्व जीवोंका फलप्रदाता है, आत्मा अनंत है परंतु सर्वही आत्मा सर्वव्यापक है, मोक्षावस्थामें ज्ञानके साथ समवायसंबंधके तूटनेसें आत्मा चैतन्य नही रहता है, और तिसकों स्वपरका भान नही होता है, इत्यादि सर्व कथन तुरंगशृंग उपपादनवत् है.

पूर्व मीमांसावाले कहते हैं कि ईश्वर सर्वज्ञ नही है, मोक्ष नही है, वेद अपौरुषेय और नित्य है, वेदका कोई कर्त्ता नही है, इत्यादि सर्व कथन तुरंगशृंग उपपादनवत् असत् है.

बौद्ध मतके मूल चार संप्रदाय है,—योगाचार (१), माध्यमिक(२), वैभाषिक (३), सौतांत्रिक(४); इनमें योगाचार मतवाले विज्ञानाद्वैतवादी हैं, आत्माको नहीं मानते हैं, एक विज्ञान क्षणकोही सर्व कुछ

मानते हैं, कितनेक विज्ञान क्षणोंके सतानके नाशकोही निर्वाण मानते हैं, कितनेक शून्यवादी सर्व शून्यही सिद्ध करते हैं, इत्यादि सर्व कथन तुरगशृंग उपपादनवत् है

इन पूर्वोक्त, सर्ववादियोंका कथन जिस रीतिसें तुरगशृंग उपपादनवत् असत् है, सो कथन अन्य योगव्यवच्छेदक द्वात्रिंशिकावृत्ति, (स्याद्वाद मंजरी,) षट्दर्शनसमुच्चय बृहद्वृत्ति, प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार सूत्रकी लघु वृत्ति (रत्नाकरावतारिका,) बृहद्वृत्ति (स्याद्वाद रत्नाकर,) धर्म संग्रहणी, अनेकांत जयपताका, शब्दांभोनिधि, गंधहस्ति महाभाष्य, (विशेषावश्यक,) वादमहार्णव, (सम्मतितर्क,) इत्यादि शास्त्रों से जानना

इन पूर्वोक्त वादियोंने असत् वस्तुकों सत् करके कथन करनेमें जैसी कुशलता प्राप्त करी है, तैसी, हे जिनाधीश! तैंने नही पाई है इस वास्ते, तिन परपंडितोंपितांइ हमारा नमस्कार होवे इहां जो नमस्कार करा है, सो उपहास्य गर्भित है, न तु तत्त्वसें ॥ ८ ॥

अथ स्तुतिकार भगवतमें व्यर्थ दयालुपणेका व्यवच्छेद करते हैं

जगत्यनुध्यानबलेन शश्वत् कृतार्थयत्सु प्रसभं भवत्सु ॥
किमाश्रितोन्यैः शरणं त्वदन्यः स्वमांसदानेन वृथा कृपालुः ॥९॥

व्याख्या—हे भगवन्! (जगति) जगत्में (शश्वत्) निरंतर (प्रसभं) यथास्यात् तैसें हठसें (भवत्सु) तुमोंको (कृतार्थयत्सु) जगतवासी जीवों का कृतार्थ करने हूआ, किस करके (अनुध्यान बलेन) अनुध्यान नाम अनुग्रहरूपा याचना है, अनुग्रहार्थ बल करके, अर्थात् सद्धर्मदेशनारूप बल करके भव्य जीवोंके तारने वास्ते निरंतर जगत्में प्रसभसें—हठसें देशनाके बलसें जनोंको कृतार्थ करते हूए क्योंकि परोपकार निरपेक्ष अर्थात् बदलेके उपकारकी अपेक्षा रहित जो अनुग्रहार्थ बलसें भव्य जनोंको मोक्षमार्ग में प्रवर्त्त करता है, इससें उपरांत अन्य कोइभी ईश्वरकी दयालुता नही है, जब कर पिछाडी उपकार दयालु ईश्वर मानने समर्थ है, तो फेर ब्रह्मा

करना व्यर्थ सिद्ध होवेगा; इस वास्ते ईश्वरकी यही दयालुता है, जो भव्य जनोंकों उपदेश द्वारा मोक्षमार्ग प्राप्त करना सो तो आप निरंतर जगत्में करही रहे हैं, ऐसे आप परम कृपालुकों छोडके (अन्यैः) अन्य परवादीयोंनें (त्वदन्यः) तुमारेसें अन्यकों (शरणं) शरणभूत (किम्) किसवास्ते (आश्रितः) आश्रित किया है—माना है ? कैसा है वो अन्य ? (स्वमांसदानेन वृथा कृपालुः) अपना मांस देने करके जो वृथा कृपालु है; आत्माका घात, और परकों अपना मांस देके तृप्त करना, यह वृथाही कृपालुका लक्षण है, क्योंकि, ऐसी कृपालुतासें परजीवका कल्याण नही होता है, असद्धर्मोपदेशरूप होनेसें. बुद्धका यह कहना है कि, मेरे सन्मुख कोइ व्याघ्र सिंहादिक भूखसें मरता होवे तो, मैं अपना मांस देके तिसकी क्षुधा निवारण करुं, मैं ऐसा दयालु हूं. और क्षेमेंद्रकविविरचित बोधि सत्व-अवदान कल्पलतामें बोधि सत्वने पूर्व जन्मांतरमें अपना शरीर सिंहको भक्षण करवाया था ऐसा कथन है, इस वास्ते बुद्ध अपने आपकों स्वमांसके देनेसें कृपालु मानता था, परंतु यह कृपालुता व्यर्थ है. ॥ ६ ॥
आथाग्रे आचार्य असत्पक्षपातीयोंका स्वरूप कहते हैं.

स्वयं कुमार्गं लपतां नु नाम प्रलम्भमन्यानपि लम्भयन्ति ॥
सुमार्गगं तद्विदमादिशन्तमसूयान्धा अवमन्वते च ॥ ७ ॥

व्याख्या-(असूययांधाः) ईर्षा करका जे पुरुष अंधे है वे (स्वयं) आपतो (कुमार्गं) कुमार्गकों (लपतां) कथन करो ! प्रबल मिथ्यात्व मोहके उदय होनेसें जैसें मद्यप पुरुष मदके नशेमें, जो चाहो सो असमंजस वचन बोलो तैसेही मिथ्यात्वरूप धतूरेके नशेसें ईर्षांध पुरुष कुमार्ग, अर्थात् अश्वमेध, गोमेध, नरमेध, अजामेध, अंत्येष्टि, अनुस्तरणि, मधुपर्क, मांस आदिसें श्राद्ध करना, ब्राह्मणोके वास्ते शिकार मारके लाना, परमेश्वरको जीव वध करके बलिका देना, मोक्ष प्राप्तको फेर जगत्में जन्म लेना, तीर्थोंमें स्नान करनेसें सर्व पापोंसें छूटना, काशीमें मरणेसें मोक्षका मानना, अरूपी, अशरीरी, सर्वव्यापक, मुखादि अवयव रहित, ऐसें परमेश्वरकों वेदादि शास्त्रोंका उपदेष्टा मानना, अग्निमें

घृतादि द्रव्योंके हवन करनेसें पवन सुधरता है, तिससें मेघ शुद्ध वर्षता है, तिससें मनुष्य निरोग्य रहते हैं, यह अग्निके हवन करनेसें महान् उपकार है ऐसा मानना, वेदोंमें ईश्वरने मास खानेकी आज्ञा दीनी है, वेदमंत्र पवित्रित मास खानेमें दूषण नही, निरंतर माससें हवन करना, केवल क्रियासेंही मोक्ष मानना, केवल ज्ञानसेंही मोक्ष मानना, रागी, द्वेषी, अज्ञानी, कामीकों परमेश्वर कथन करना, सारभी, सपरिग्रहीकों साधु मानना, पशुयोंकों मारना चाहिये नही तो येह वहुत हो गए तो, मनुष्योंकी हानि करेंगे, स्त्रीकों इग्यारह खसम करने, ऐसे नियोगकी ईश्वरकी आज्ञा है, इत्यादि कुमार्गका नुपदेश करो! कर्मके नुदयकों अनिवार्य होनेसें (नु) अव्यय है, खेदार्थमें तिससें वडा खेद है (नाम) कोमलामंत्रणमें है वा प्रसिद्धार्थमें है तब तो ऐसा अर्थ हुवा कि, वडाही खेद है कि ऐसे असूया करके अंध पुरुष (अन्यानपि) अन्य जगत्वासी मनुष्योंकोंभी (प्रलम्भ) कुमार्गके लाभ–प्राप्तिकों (लम्भयन्ति) प्राप्ति कराते हैं, अर्थात् आप तो कुमार्गकी देशना करनेसें नाशकों प्राप्त हुए हैं, परं अन्य जनोंकाभी कुमार्गमें प्रवर्त्तीके नाश करते हैं इतना करकेभी संतोषित नही होते हैं, वलकि वे, असूया इर्षा करके अंधे (सुमार्गग) सुमार्ग गत पुरुषकों, (तद्विदं) सुमार्गके जानकारकों और (आदिशन्तं) सुमार्गके नुपदेशककों (अवमन्वते) अपमान करते हैं जैसें यह ईश्वरकों जगत्कर्त्ता नही मानते हैं, वेदोंके निंदक हैं, वेद वाह्य हैं, नास्तिक हैं, जगत्कों प्रवाहसें अनादि मानते हैं, कर्मका फलप्रदाता निमित्तकों मानते हैं, परंतु ईश्वरको फलप्रदाता नही मानते हैं, आत्माकों देहमात्र व्यापक मानते हैं, पट्कायको जीव मानते हैं, इत्यादि अनेक तरेसें अपना मत चलाते हैं, इस वास्ते अहो लोको ! इनके मतका श्रवण करना तथा इनका संसर्ग करना, अच्छा नही है, इत्यादि अनेक वचन वोलके पूर्वोक्त तीनोंका अपमान करते हैं ॥ ७ ॥

अथागे भगवत्के शासनका महत्त्व कथन करते हैं

प्रादेशिकेभ्य परशासनेभ्यः पराजयो यत्तव शासनस्य
खद्योतपोतद्युतिडम्बरेभ्यो विडम्बनेय हरिमण्डलस्य ॥ ८ ॥

व्याख्या—हे जिनेंद्र! (परशासनेभ्यः) पर शासनोंसें, कैसें पर शासनोंसें ?(प्रादेशिकेभ्यः) प्रमाणका एक अंश माननेसें जे मत उत्पन्न हूए है, अर्थात् एक नयको मानके जे परमत वादीयोंने उत्पन्न करे है, तिनका नाम प्रादेशिक मत है. आत्मा एकांत नित्यही है, वा क्षणनश्वरही है, वस्तु सामान्य रूपही है, वा विशेष रूपही है वा सामान्य विशेष स्वतंत्रही पृथक् २ है, कार्य सत्ही उत्पन्न होता है, वा असत्ही उत्पन्न होता है, गुण गुणीका एकांत भेदही है, वा एकांत अभेदही है, एकही ब्रह्म है, इत्यादि प्रादेशिक परमतोंसें (यत्) जो (तव शासनस्य) तेरे शासनका (पराजय) पराजय है, सो, ऐसा है, जैसा (खद्योतपोद्युतिडम्बरेभ्यः) खद्योतके बच्चेकी पांखोके प्रकाश रूप अडंबरसें (हरि मंडलस्य) सूर्यके मंडलकी (इयं) येह (विडम्बना) विटंवना अर्थात् पराभव करना है, भावार्थ यह है कि, क्या खद्योतका बच्चा अपनी पांखोंके प्रकाशसें सूर्यके प्रकाशकों पराभव कर सक्ता है? कदापि नही कर सक्ता है. तैसेंही, हे जिनेंद्र ! एक नया भास मतके माननेवाले वादी, खद्योत पोतवत् तेरे अनंत नयात्मक स्याद्वाद मतरूप सूर्यमंडलका पराभव कदापि नही कर सक्ते हैं ॥ ८ ॥

भगवंतका शासन सर्व प्रमाणोंसें सिद्ध है. अथ, जो ऐसे शासनमें संशय करता है, क्या जाने यह भगवंत अर्हन्का शासन सत्य है, वा नही? अथवा, जो भगवंतके शासनमें विवाद करता है कि, यह शसन सत्य नही है, ऐसे पुरुषकों स्तुतिकार उपदेश करते हैं.

शरण्यपुण्ये तव शासनेऽपि संदेग्धि यो विप्रतिपद्यते वा ॥
स्वादौ सतथ्ये स्वहिते च पथ्ये संदेग्धि वा विप्रति पद्यते वा॥९॥

व्याख्या—हे जिनेंद्र ! (शरण्यपुण्ये) शरणागतकों जो त्राण करणे योग्य होवे तिसकों शरण्य कहते हैं तथा पुण्य पवित्र ऐसे (तव) तेरे (शासनेपि) शासनके हूएभी (यो) जो पुरुष तेरे शासनमें (संदेग्धि) संदेह करता है (वा) अथवा (विप्रतिपद्यते) विवाद करता है, सो पुरुष (स्वादौ) अत्यंत स्वादवाले (तथ्ये) सच्चे

(स्वहिते) स्वहितकारी (च) और (पथ्ये) निरोग्यतामें साहायक ऐसे सुंदर भोजनमें (संदेग्धि) संशय करता है, क्या जाने यह भोजन, स्वादु, तथ्य, स्वहितकारि, पथ्य है, वा नही ? (वा) अथवा (विप्रतिपद्यते) विवाद करता है, यह भोजन, स्वादु, तथ्य, स्वहितकारि, पथ्य, नही है, यह तिसकी प्रगट अज्ञानता है अतिमका वा, पाद पूरणार्थ है काव्यका भावार्थ यह है कि, हे जिनेंद्र! शरणागतकों त्राण करणेवाला तेरा शासन शरण्य रूप है "चत्तारि सरणमिति वचनात्"—चारही वस्तुयें जगत्में शरण्य है अरिहंत, १, सिद्ध, २, साधु, ३, और केवलज्ञानीका कथन करा हूआ धर्म, ४ तिनमें अरिहंत उसकों कहते हैं, जिनोने ज्ञानावरण, १, दर्शनावरण, २, मोहनीय, ३, और अंतराय, ४, इन चारों कर्मकी ४७ उत्तर प्रकृतिया क्षय करी है, और अष्टादश दूषणोंसें रहित हूए है, केवल ज्ञान और केवल दर्शन करके संयुक्त है, चौत्रीस अतिशय और पैंत्रीस वचन अतिशय करके सहित है, जीवन मोक्षरूप है, महामाहन, १, महागोप, २, महानिर्यामक, ३, महासार्थवाह, ४, येह चारों जिनकों उपमा है, परोपकार निरपेक्ष अनुग्रहके वास्ते जिनोंका भव्य जनोंकेताइं उपदेश है, अरिहंतके विना अन्य कोइ यथार्थ उपदेष्टा शरणभूत नही है, क्योंकि, इनोंनेही आदिमें जगत्वासीयोंको उपदेशद्वारा मोक्षमार्ग प्राप्त करा है । १ ।

दूसरा शरण सिद्धोंका है, जे अष्ट कर्मकी उपाधिसें रहित है, सदा आनंद और ज्ञान स्वरूप है, स्वस्वरूपमें जिनोंका अवस्थान है, अमर, अचर अजर, अमल, अज, अविनाशी, सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, सदाशिव, पारगत, परमेश्वर, परमब्रह्म, परमात्मा, इत्यादि अनंत तिनके विशेषण है, ऐसे सिद्ध परमात्मा शरणभूत है, जे कर एसे सिद्ध न होवे तब तो अरिहंतके कथन, करे मार्गको भव्य जन काहेको अंगीकार करे? और सिद्धोंके विना आत्माका शुद्ध स्वरूप कैसे जाना जाये? इसवास्ते सिद्ध आत्मस्वरूपके अविप्रणाशके हेतु है, इस वास्ते शरणरूप है । २ ।

तीसरा शरण साधुओंका है साधु कहनेसें आचार्य उपाध्याय और साधु, इन तीनोंका ग्रहण है जे कर आचार्य उपाध्याय न होते तो, अस्मदादिकों

को अरिहंतका उपदेश कौन प्राप्त करता ? और साधु न होते तो जगत्-वासीयांको मोक्षमार्ग पालन करके कौन दिखाता ? और मोक्षमार्गमें प्रवर्त्ते हुए भव्य जनोंकों साहाय्य कौन करता ? इस वास्ते साधु शरणभूत है. । ३ ।

चौथा शरण केवल ज्ञानीका कथन करा हुआ धर्म है; क्योंकि विना धर्मके पूर्वोक्त वस्तुयोंका अस्मदादिकांकों कौन बोध करता ? इस वास्ते सर्व शरणभूतोंसें अधिक शरण्यभूत, हे भगवन् ! तेरा शासन है । ४ ।

तथा हे जिनेंद्र ! तेरा शासन पुण्य पवित्र है, सर्व दूषणोंसें मुक्त होनेसें, प्रमाण युक्ति शास्त्रसे, अविरोधि वचन होनेसें, तथा दृष्टसेंभी अविरोधि होनेसें, ऐसे शरण्य और पवित्र तेरे शासनके हुएभी, जो कोइ इसमें संशय करता है, वा विवाद करता है, सो पुरुष, अत्यंत स्वादु, तथ्य, स्वहितकारि, पथ्य भोजनमें संशय करनेवाला है, अर्थात् वो अत्यंतही मूर्ख है, जो ऐसी वस्तुमें संशय वा विवाद करता है ॥ ९ ॥

अथ स्तुतिकार अन्य आगमोंके अप्रमाण होनेमें हेतु कहते हैं.

हिंसाद्यसत्कर्मपथोपदेशादसर्वविन्मूलतया प्रवृत्तेः
नृशंसदुर्बुद्धिपरिग्रहाच्च ब्रूमस्त्वदन्यागममप्रमाणम् ॥ १० ॥

व्याख्या—हे जिनेंद्र! (त्वदन्यागमम्) तेरे कथन करे हुए आगमोंसें अन्य आगम (अप्रमाणम्) प्रमाण नही, अर्थात् सत्पुरुषांकों मान्य नही है, ऐसें (ब्रूमः) हम कहते हैं. अन्य आगमोकों प्रमाणता किस हेतुसें नही है ? सोइ दिखाते हैं (हिंसाद्यसत्कर्मपथोपदेशात्) वे, अन्य वेदादि आगम, हिंसादि असत् कर्मोके पथके उपदेशक होनेसें, और (असर्वविन्मूलतयाप्रवृत्तेः) असर्ववित्, असर्वज्ञोंके मूलसें प्रवृत्त होनेसें, अर्थात् असर्वज्ञोंके कथन करे हुए होनेसें, और (नृशंसदुर्बुद्धिपरिग्रहात्) निर्दय, उपलक्षणसें मृषा, चोरी, स्त्री, परिग्रहके धारनेवाले दुर्बुद्धि, अर्थात् कदाग्रही असत्पक्षपातीयोंके ग्रहण करे हुए होनेसें; भावार्थ ऐसा है कि, जे आगम, निर्दयी, मृषावादी, अदत्तग्राही स्त्रीके भोगी और परिग्रहके लोभीयोने ग्रहण करे हैं, अर्थात् वे जिन आगमोकों जगत्में प्रवर्त्तावने

वाले हैं, और जे आगम हिंसादि, आदि शब्दसें मृषा, अदत्तादान, मैथुनादि पाप कर्म करनेके उपदेशक हैं, वे आगम प्रमाण नही है. ॥१०॥

अथ भगवतप्रणीत आगमके प्रमाण होनेमें हेतु कहते हैं

हितोपदेशात्सकलज्ञक्लृप्तेर्मुमुक्षुसत्साधुपरिग्रहाच्च ॥
पूर्वापरार्थेप्यविरोधसिद्धेस्त्वदागमा एव सतां प्रमाणम् ॥११॥

व्याख्या—हे भगवन् जिनेंद्र! (त्वदागमाएव) तेरे कथन करे हुए द्वादशांगरूप आगमही (सतां) सत्पुरुषाकों (प्रमाणम्) प्रमाण है, किस हेतुसें (हितोपदेशात्) एकात हितकारी उपदेशके होनेसें और (सकलज्ञक्लृप्ते) सर्वज्ञके कथन करे रचे हुए होनेसें, (च) और (मुमुक्षुसत्साधुपरिग्रहात्) मोक्षकी इच्छावाले सत्साधुयोंके ग्रहण करनेसें, अर्थात् आचार्य उपाध्याय साधु जिनके प्रवर्त्तक होनेसें, (अपि) तथा (पूर्वापरार्थे) पूर्वापर कथन करे अर्थोंमें (अविरोधसिद्धे)अविरोधकी सिद्धिसें ॥११॥

अथ भगवत्के सत्योपदेशकों परवादी किसी प्रकारसेंभी निराकरण नही कर सक्ते हैं यह कथन करते हैं

क्षिप्येत वान्यैः सदृशी क्रियेत वा तवांघ्रिपीठे लुठनं सुरेशितुः ॥
इदं यथावस्थितवस्तुदेशनं परैः कथंकारमपाकरिष्यते ॥ १२ ॥

व्याख्या—हे जिनेंद्र! (तव) तेरे (अंघ्रिपीठे) चरण कमलोंमें, जो (सुरेशितुः)इंद्रका (लुठनं) लुठना-लोटना था, चरणमें चौसठ इंद्रादि देवते सेवा करते थे, इत्यादि जो तेरे आगममें कथन है, तिसकों (अन्यैः) परवादीबौद्धादि, (क्षिप्येत) क्षेपन करें—खंडन करें, यथा जिनेंद्रके चरण कमलोंमें इंद्रादि देवते सेवा करते थे, यह कथन सत्य नही है, जिनेंद्र और इंद्रादि देवतायोंके परोक्ष होनेसें (वा) अथवा (सदृशी क्रियेत) सदृश करें, जेसें श्री वर्द्धमान जिनके चरणोंमें इंद्रादि लोटते थे—चरण कमलकी सेवा करते थे, ऐसेंही श्री बुद्ध भगवान् शाक्यसिंह गौतमकेभी चरणोंमें इंद्रादि सेवा करते थे, येसें कहें, परंतु (इदं) यह जो (यथावस्थितवस्तुदेशनं) यथार्थ वस्तुके स्वरूपका कथन तेरे शासनमें है, तिसकों (परैः) परवादी (कथंकारम्) किस प्रकार करके (अपाकरिष्यते)

अपाकरण-तिरस्कार-खंडन करेंगे अपितु किसी प्रकारसेंभी खंडन नहीं कर सकेंगे. ॥ १२ ॥

अत्र कोइ प्रश्न करे कि, यदि अर्हन् भगवन् श्री वर्द्धमानका, कोइभी परवादी जिसका किसी प्रकारसेंभी खंडन नही कर सक्ते हैं ऐसा सत्योपदेश है, तो फेर अन्य मतावलंबी तिसकी उपेक्षा क्यों करते हैं? इसका उत्तर स्तुतिकार श्रीमद्धेमचंद्राचार्य देते हैं.

तद्दुःखमाकालखलायितं वा पचेलिमं कर्मभवानुकूलम् ॥
उपेक्षते यत्तव शासनार्थमयं जनो विप्रतिपद्यते वा ॥ १३ ॥

व्याख्या–हे जिनेंद्र! (यत्) जो (अयं जनः) यह प्रत्यक्ष जन (तव) तेरे (शासनार्थं) शासनार्थकी (उपेक्षते) उपेक्षा करता है, (वा) अथवा (विप्रतिपद्यते) तेरे शासनार्थके साथ शत्रुपणा करता है (तत्) सो, तिस प्राणिका (दुःखमाकालखलायितं) पंचम दुःखम कालका खलायितपणा है,–दुःखम कालही तिस जीवके साथ खलकी तरें आचरण करता है, जो सत्य जिनेंद्रके कथन करे मार्गकी प्राप्ति नही होने देता है, (वा) अथवा, (भवानुकूलम्) तिस जीवके भवानुकूल संसारमें भ्रमण करवाने योग्य (कर्म) अशुभ कर्म मिथ्यात्व मोहनीयादि (पचेलिमं) पक्के हुए, अर्थात् अपना फल देनेके वास्ते उदयावलिमें आये हुए है, तिनके उदयसें जिनेंद्रके कथन करे हुए मार्गको अंगीकार नही कर सक्ता है, जैसें, ऊंट द्राक्षावलडीके खानेकी इच्छा नही करता है, तैसेंही दुःखम काल खलायितपणेसें और पचेलिम कर्मके उदयसे, यह जन, हे जिनेंद्र! तेरे मार्गकी उपेक्षा करता है, अर्थात् कल्याणकारी जानके अंगीकार नही करता है; अथवा तेरे शासनके साथ शत्रुपणा करता है॥ १३॥

कोई कहेकि, तप करना, और योगाभ्यासादि सत्कर्म करने, तिनके प्रभावसेंही मोक्षकी प्राप्ति हो जावेगी, तो फेर जिनेंद्रके कथन करे मार्गके अंगीकार करनेकी क्या आवश्यकता है? तिसका उत्तर, स्तुतिकार देते हैं.

परः सहस्राः शरदस्तपांसि युगांतरं योगमुपासतां वा ॥
तथापि ते मार्गमनापतन्तो न मोक्ष्यमाणा अपि यान्ति मोक्षम् १४

व्याख्या—हे भगवन्! (पर) पर अन्य मतावलवी (सहस्रा) हजारों (शरद) वर्षोतांई (तपासि) विविध प्रकारके तप करो, (वा) अथवा (युगातर) अर्थात् बहुत युगातांई (योग) योगाभ्यासकों (उपासता) सेवो करो, (तथापि) तोभी वे (ते) तेरे (मार्गम्) मार्गकों (अनापतंत) न प्राप्त होते हुए, अर्थात् तेरे मार्गके अगीकार करे विना, (मोक्ष्यमाणाअपि) चाहो वे अपने आपकों मोक्ष होना मानभी रहे हैं, तोभी, (मोक्षम्) मोक्षकों (न) नही (याति) प्राप्त होते हैं, क्योंकि, सम्यग् दर्शन ज्ञान चारित्रके अभावसें किसीकोंभी मोक्ष नहीं है, और सम्यग् दर्शन ज्ञान चारित्रकी प्राप्ति, तेरे मार्ग विना कदापि नही होवे है ॥ १४ ॥

अथाग्रे स्तुतिकार, परवादीयोंके उपदेश भगवत्के मार्गकों किंचिन्मात्रमी कोप वा आक्रोश नही कर सक्के हैं, सो दिखाते हैं

अनाप्तजाड्यादिविनिर्मितित्वसंभावनासंभविविप्रलम्भाः ॥
परोपदेशाः परमाप्तक्लृप्तपथोपदेशे किमु संरभन्ते ॥ १५ ॥

व्याख्या—हे जिनेंद्र! (परोपदेशा) जे परमतवादीयोंके उपदेश हैं, वे उपदेश (परमाप्तक्लृप्तपथोपदेशे) तेरे परमाप्तके रचे कथन करे उपदेशमें (किमु) क्या, किंचिन्मात्रमी (संरभन्ते) करते हैं? अर्थात् कोप वा आक्रोश करते हैं? किंचिन्मात्रमी नही क्या? खद्योत प्रकाश करते हुए सूर्य मंडलकों कोप वा आक्रोश कर सक्ता है? कदापि नही ऐसें तेरे शासनकोंभी परोपदेश संरभ नही कर सक्के हैं, क्योंकि, परवादीयोंके मतमें जो सूक्ति संपत् है, सो तेरेही पूर्व रूपी ये समुद्रके बिंदु गए हुए हैं, तिनके विना जो परवादीयोंने स्वकपोलकल्पनासें मिथ्या जाल खडा करा है, सो सर्व युक्ति प्रमाणसें बाधित है, इस हेतुसें परवादीयोंके उपदेश तेरे मार्गमें कुछभी कोप वा आक्रोश नही कर सक्के हैं केसें हैं वे परवादीयोंके उपदेश? (अनाप्तजाड्यादिविनिर्मितित्वसंभावनासंभविविप्रलंभा) अनाप्तोंकी बुद्धिकी जो जाड्यतादि, तिससें निर्मितित्व संभावना, अर्थात् अनाप्तोंकी मंदबुद्धिकी संभावना करके विप्रलंभरूप वे उपदेश रचे गए

भावार्थ यह है कि, अनाप्तोंकी मंदबुद्धिकी संभावनामें जे विप्रल-

भरूप-विप्रतारणरूप उपदेश रचे गए हैं, वे उपदेश, तेरे परमाप्तके रचे पथोपदेशमें कोप वा आक्रोश, वा तिनके खंडनमें उत्साह, वा वेग, जलदी नही कर सक्ते हैं, असमर्थ होनेसें. ॥ १८ ॥

अथ स्तुतिकार परवादियोंके मतमें जे उपद्रव हुए हैं, वे उपद्रव भगवानूके शासनमें नही हुए हैं, ऐसा स्वरूप दिखाते हैं.

यदार्जवादुक्तमयुक्तमन्यैस्तदन्यथाकारमकारि शिष्यैः ॥
न विप्लवोयं तव शासनेभूदहो अधृष्या तव शासनश्रीः॥ १६॥

व्याख्या-(अन्यैः) परमतके आदि पुरुषोंने (आर्जवात्) आर्जवसें अर्थात् भोले भाले सादे अपने मनमाने विचारसें (यत्) जो कुछ वेदादि शास्त्रोंमें (अयुक्तम्) अयोग्य (उक्तम्) कथन करा है (तत्) सोही कथन (शिष्यैः) तिनके शिष्योंने (अन्यथाकारम्) अन्यरूपही (अकारि) कर दीया है; क्यौंकि, प्रथम जे वेद थे वे अनीश्वरवादी मीमांसकोंके मतानुयायी थे, और कर्मकांड यजनयाजनादि और अनेक देवतायोंकी उपासना करके स्वर्गप्राप्ति मानते थे, और काम्य कर्मोंके वास्ते अनेक तरेंके यज्ञादि करते थे, मोक्ष होना नही मानते थे, सर्वज्ञकोंभी नही मानते थे, वेदोंकों अपौरुषेय किसीके रचे हुए नही हैं, किंतु अनादि हैं, ऐसें मानते थे; तिस अपने मतकी पुष्टि वास्ते पूर्वमीमांसा नामक ऐसें जैमनि मुनिने रचे हैं, ऐसा इस मतका स्वरूप था. प्रथम तो वेदोंमेंही गडबड कर दीनी, कितनेही प्राचीन मंत्र वीचसें निकाल दिये, ऋग्वेदमें पुरुषसूक्त, और जे जे ईश्वर विषयक ऋचा हैं, वे प्रक्षेप कर दीनी है; और यजुर्वेदादिकोंमें 'सहस्रशीर्षः सहस्रपात्' तथा 'हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे' इत्यादि तथा 'इशावास्य' इत्यादि; तथा चारवेद ईश्वरसें उत्पन्न हुए हैं, तथा चार वेद हिरण्यगर्भके उत्स्वास रूप है इत्यादि श्रुतियां ईश्वर विषयक वेदोंमें प्रक्षेप करके वेदोंकों ईश्वरके रचे हुए सिद्ध करे; पीछे तिन वेदोंके मूल पाठमें भेदवालीयां हजारां शाखा और शाखाके सूत्र रचे गए, तदनंतर यास्काचार्यादिकोंनें निघंटु निरुक्तादि रचके वेदोंके

शब्दोंके अर्थोंमें गडबड करदीनी, 'यथा आग्निमीळे (ले)' इत्यादिमें, 'अग्निर्वै विष्णु ' इत्यादि

और कुमारिल मीमासाके वार्त्तिककारनेभी, प्राचीन अर्थोंमें वहुत गडवड करी है, तथा वेद रचनाके पहिलें निरीश्वरी सांख्य मत था, पीछे नवीन साख्य मतवाले उत्पन्न हुए, तिनोंने सेश्वर सांख्यमत प्रगट करा, पीछे सांख्य मतके अनुसार ऋषियोंने वेदांत अद्वैत ब्रह्मके स्वरूपके प्रतिपादक पुस्तक रचे, तिनोंका नाम उपनिषद् रक्खा, प्रकृतिकी जगे मायाकी कल्पना करी, और तीन गुणादि २४ चोवीस तत्वोंके नाम वेही रक्खे, परतु तिनकों माया करके कल्पित ठहराए, और प्रमाण भट्ट मतानुसारि मानलीए. और उपनिषद् नामक ग्रथ तो इतने रच लिए कि, जिसने अपना नवीन मत चलाया, तिसकी सिद्धिके वास्ते नवीन उपनिषद् रचके प्रसिद्ध करी; जैसे रामतापनी, गोपालतापनी, हनुमतोपनिषद्, अल्लोपनिषद्, इत्यादि पीछे तिनके भाष्यादि रचे गए

शंकर स्वामीने दश उपनिषदों ऊपर, गीता ऊपर, और विष्णुसहस्र नामादि ऊपर, भाष्य रचे, तिनोंने प्राचीन अर्थोंको व्यवच्छेद करके नवी नही तरेके अर्थ रचे, तिस भाष्यके ऊपर टीकाकारोंने शंकरकी भूलें सुधारनेकों टीका रची पुराण, और स्मृतिनामक कितनेही पुस्तकोंमें प्राचीन पाठ निकाल कर नवीन पाठ प्रक्षेप करे, और कितनेही नवीन रचे; सांप्रति शकर स्वामीके मतानुयायीयोंमें वेदांत मतके माननेमें सैंकडो भेद हो रहे हैं, तथा व्याससूत्रोंपरि शकरस्वामिने शारीरक भाष्य रचा है, और अन्योंने अन्य तरेके भाष्यार्थ रचे हैं, सायणाचार्यने चारों वेदोंउपर नवीन भाष्य रचके मन माने अर्थ उलट पुलट विपर्यय करके लिखे हैं, परतु प्राचीन भाष्यानुसार नही और दयानद सरस्वतीजीने तो, ऋग्वेद और यजुर्वेद के वो भाष्य ऐसे विपरीत स्वकपोलकल्पित रचे हैं कि, मृषावादकों वहुतही पुष्ट करा है, सो वाचके पंडित जन वहुतही उपहास्य करते हैं सप्रति दयानद स्वामीके चलाये आर्य समाज पथके दो दल हो रहे हैं, तिनमेसे एक दलवाले तो मास खानेका निषेधही करते हैं, और दूसरे दलवाले कहते हैं कि, वेदमें मांस खानेकी आज्ञा

है, इससें प्रगट मांस खानेका उपदेश करते हैं, और राजपुताना योधपुरके महाराजा सर प्रतापसिंहजीनें एक नवीन पुस्तक बनवा कर, तिसमें अथर्ववेदके मंत्र लिखके, तिनके ऊपर एक पंडितने नवीन भाष्य रचा है, तिसमें बहुत प्रकारसें मांसका खाना ईश्वरकी आज्ञासें सिद्ध करा है. तथा इस विषयक मनुस्मृति और दयानंदस्वामी आदिका भी प्रमाण लिखा है. अब यह दोनों दल परस्पर विवाद कर रहे हैं.

और गौतमने सिर्फ वेद और वेदांतके खंडनवास्ते ही न्यायसूत्र रचे हैं, वेद और वेदांतसें विपर्ययही प्रक्रिया रची है, कणादने षट् पदार्थ ही रचे हैं इत्यादि अनेक विप्लव अन्य मतके शास्त्रोंमें तिनके शिष्योंने करे हैं अर्थात् पूर्वजोंने जो कुछ कथन करा था, सो, तिनके शिष्यप्रशिष्यादिकोंने अन्यथा आकारवाला कर दिया है!!! हे जिनेंद्र! (तव) तेरे (शासने) शासनमें (अयं) यह पूर्वोक्त (विप्लवः) विप्लव (न) नहीं (अभूत्) हुआ है अर्थात् शिष्य प्रशिष्योंका करा ऐसा विप्लव तेरे कथनमें नही हुआ हैं. क्योंकि, सात निह्नव, और अष्टमबोटिक महा निह्नव, इनोंनें किंचिन्मात्र विप्लव करना चाहा था, तोभी, तिनका करा किंचिद् विप्लव न हुआ, शासनसें बाह्य तिनकों श्री संघने तत्काल कर दीए, इसवास्ते तेरे शासनमें पूर्वोक्त विप्लव नही हुआ है. इसवास्ते (अहो) बडाही आश्चर्य है कि, (तव) तेरे (शासनश्रीः) शासनकी लक्ष्मी (अधृष्या) अधृष्य है, अर्थात् कोईभी तिसकी धर्षणा नही कर सक्ता है ॥ १६ ॥

अथ परवादीयोंने जे जे अपने अपने मतके अधिष्ठाता स्वामीभूत देवते कथन करे हैं, तिनमें जे जे अघटित परस्पर विरुद्ध बातें हैं, वे, स्तुतिकार दिखाते हैं.

देहाद्ययोगेन सदा शिवत्वं शरीरयोगादुपदेशकर्म ॥
परस्परस्पर्धि कथं घटेत परोपक्लृप्तेष्वधिदैवतेषु ॥ १७ ॥

व्याख्या-(देहाद्ययोगेन) देहादिके अयोगसे, अर्थात् देह, आदि शब्दसें राग, द्वेष, मोहादि सर्व कर्म जन्य उपाधिके अभावसें (सदा) नि-

रतर (शिवस्व) शिवपणा, सत्‌चित्‌आनदरूप परम ब्रह्म परमात्मा परम ईश्वरपणा है, और (शरीरयोगात्) शरीरके योगसें सवभसेही (उपदेशकर्म) उपदेश कर्म है, अर्थात् देहवाला ईश्वर होवे तवही उपदेष्टा हो सक्ता है, यह दोनो वातें (परस्परस्पर्धि) परस्पर विरोधि (कथ) किसतरें (परोपक्लृतेपु) परवादीयोंके माने हुए (अधिदैवतेपु) अधिदेवतायोंमें (घटेत) घटती हैं ? अपितु किसी प्रकारसेभी नही घट सकी हैं क्योंकि, परवादीयोंने अनादि मुक्तरूप निरुपाधिक, निरजन, निराकार, ज्योति स्वरूप, एक ईश्वर, सर्व व्यापक माना है, ऐसा ईश्वर किसी प्रकारसेंभी उपदेष्टा सिद्ध नही हो सक्ता है उपदेश करनेके देहादि उपकरणोंके अभावसें क्योंकि, धर्माधर्म, अर्थात् पुण्य पापके विना तो देह नही हो सक्ता है, और देह विना मुख नही होता है, और मुख विना वक्तापणा नही है, व्याकरणके कथन करे स्थान और प्रयत्नोंके विना साक्षर शब्दोच्चार कदापि नही हो सक्ता है, तो फेर देह रहित, सर्वव्यापक, अक्रिय परमेश्वर, किसतरें उपदेशक सिद्ध हो सक्ता है ?

पूर्वपक्ष –परमेश्वर अवतार लेके, देहधारी होके, उपदेश देता है

उत्तरपक्षः–परमेश्वरके मुख्यतीन अवतार माने जाते हैं, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, और येही मुख्य उपदेशक माने जाते हैं, परतु परवादीयोंके शास्त्रानुसार तो ये तीनो देव, राग, द्वेष, अज्ञान, काम, ईर्पादि दूषणोंसें रहित नही थे, तो फेर, ईश्वर, अनादि, निरुपाधिक, सदा मुक्त, सदाशिव, केसें सिद्ध होवेगा ? और सर्वव्यापी ईश्वर, एक छोटीसी देहमें किसतरें प्रवेश करेगा ?

पूर्वपक्ष –हम तो ईश्वरके एकाशका अवतार लेना मानते हैं

उत्तरपक्ष –तव तो ईश्वर एक अशमें उपाधिवाला सिद्ध हुआ, तव तो ईश्वरके दो विभाग हो गए, एक विभाग तो सोपाधिक उपाधिवाला, और एक विभाग निरुपाधिक उपाधिरहित

पूर्वपक्ष –हा हमारे ऋग्वेद और यजुर्वेदमें कहा है कि, ब्रह्मके तीन हिस्से तो सदा मायाके प्रपचसे रहित, अर्थात् सदा निरुपाधिक है, और एक चौथा हिस्सा सदाही उपाधिसयुक्त रहता है

उत्तरपक्षः–तब तो ईश्वर, सर्व, अनादि, मुक्त, सदा शिवरूप न रहा, परं, देश मात्र मुक्त, और देशमात्र सोपाधिक रहा. तब एकाधिकरण ईश्वरमें परस्पर विरुद्ध, मोक्ष और बंधका होना सिद्ध हुआ, सो तो दृष्टेष्टबाधित है. छायातपवत्. विशेष इसका समाधान श्रुतिसहित आगें करेंगे. तब तो, ईश्वरकों सदा मुक्त, कूटस्थ, नित्य, देहादिरहित, सदा शिवादि न कहना चाहिये.

पूर्वपक्षः–ईश्वर तो देहादिसें रहित, सर्वव्यापक और सर्व शक्तिमान् है, इसवास्ते ईश्वर अवतार नही लेता है, परंतु सृष्टिकी आदिमें चार ऋषियोंकों अग्नि १, वायु २, सूर्य ३ और अंगिरस ४ नामवालोंकों, वेदका बोध ईश्वर कराता है.

उत्तरपक्षः–यद्यपि यह पूर्वोक्त कहना दयानंदस्वामीका नवीन स्वकपोलकल्पित गप्परूप है, तथापि इसका उत्तर लिखते हैं. प्रथम तो, ईश्वर सर्वव्यापक होनेसें अक्रिय है, अर्थात् वो कोइभी क्रिया नही करसक्ता है, आकाशवत्; तो फेर ऋषियोंकों वेदका बोध कैसें करा सक्ता है.

पूर्वपक्षः–ईश्वर अपनी इच्छासें वेदका बोध करता है.

उत्तरपक्षः–इच्छा जो है, सो मनका धर्म है, और मन देह विना होता नही हैं, ईश्वरके देह तुमने माना नही है, तो फेर, इच्छाका संभव ईश्वरमें कैसें हो सक्ता है?

पूर्वपक्षः–हम तो इच्छानाम ईश्वरके ज्ञानकों कहते हैं, ईश्वर अपने ज्ञानसें प्रेरणा करके वेदका बोध कराता है.

उत्तरपक्षः–यहभी कहना मिथ्या है, क्योंकि, ज्ञान जो है, सो प्रकाशक है, परंतु प्रेरक नही है, ईश्वरमें रहा ज्ञान, कदापि प्रेरणा नही करसक्ता है, तो फेर किसतरें ऋषियोंकों वेदका बोध कराता है?

पूर्वपक्षः–पूर्वोक्त ऋषि, अपने ज्ञानसेंही ईश्वरके ज्ञानांतर्गत वेदज्ञानकों जानके, लोकोंकों वेदोंका उपदेश करते हैं.

उत्तरपक्षः–यहभी कथन ठीक नही है, क्यौं कि, जब ऋषि अपने ज्ञानसें ईश्वरके ज्ञानांतर्गत वेदज्ञानकों जानते हैं, तो वो वेदज्ञान ईश्वरके ज्ञानमें व्यापक है? वा किसीजगे ज्ञानमें प्रकाशका पुंजरूप हो रहा

है ? जेकर सर्वव्यापक है, तब तो ऋपियोंने ईश्वरका सर्वज्ञान देख लीना, जब ईश्वरका सर्वज्ञान देखा, तब तो ईश्वरका सर्व स्वरूप ऋपियोंने देख लीया, तब तो ऋपिही सर्वज्ञ सिद्ध हुए, सो तो तुम ईश्वरके विना अन्य किसीभी जीवकों सर्वज्ञ मानते नही हैं जेकर मानोगें, तो वे ऋपि सर्वज्ञ ईश्वरतुल्य होवेगें, और अपने ज्ञानसेंही वेदोंके उपदेशक सिद्ध होवेगें, तब ईश्वरके कथन करे, वा कराये वेद क्योंकर सिद्ध होवेगें ? जेकर दूसरा पक्ष मानोगें तब तो अनाडीके रंगे वस्त्रके रंगसमान ईश्वरका ज्ञान सिद्ध होवेगा, जैसें अनाडीके रंगे वस्त्रमें एकजगे तो अधिक रंग होता है, और दूसरी जगे अल्परग होता है ऐसेही ईश्वरकाभी ज्ञान, एक अंशमें वेदादिज्ञानके प्रकाशपुजरूप ज्ञानवाला है, तब तो एक अशमें ईश्वर वेदोंके ज्ञानवाला है और अन्य सर्व अनत अशोंमें वेदके ज्ञानसें अज्ञानी सिद्ध होवेगा, इसवास्ते शरीररहित सर्वव्यापक ईश्वर, कदापि वेदादिशास्त्रोंका उपदेशक सिद्ध नही होता है

पूर्वपक्ष—ईश्वर सर्वशक्तिमान् है, इसवास्ते देहरहित सर्वव्यापक ईश्वर, अपनी शक्तिसें सर्वकुछ करसक्ता है, हे जैनो! ऐसे तुम मान लेवो.

उत्तरपक्ष—ऐसे तुम्हारे कथनमें क्या प्रमाण है ? क्यों कि, प्रमाणविना प्रेक्षावान् कदापि किसीके कथनकों नही मानेगें, परतु यह तुम्हारा कथन तो तुम्हारी प्रीय भार्या आर्यासमाजिनीही मानेगी, अप्रमाणिक होनेसें और एक यहभी वात है कि, जब तुमने ईश्वरकों विना प्रमाणसेंही सर्व शक्तिमान् माना है तो, क्या ईश्वरमें अवतार लेनेकी शक्ति नही है ? क्या ईश्वर कृष्णावतार लेके, गोपियोंके साथ क्रीडा रासविलास भोगविलासादि नही कर सक्ता है ? क्या शकर बन करके, पार्वतीके साथ विविधप्रकारके भोगविलास और अनेकतरेंकी शिवकी लीला नही कर सक्ता है ? क्या ब्रह्मा बनके चारों वेदोंका उपदेश, और निजपुत्रीसें सहस्र वर्षतक भोगविलास नही कर सक्ता है ? क्या मत्स्यवराहादि चौवीस अवतार धारके अपने मनधारे कृत्य नही कर सक्ता है ? क्या ईश्वर नाचना, गाना, रोना, पीटना, चोरी, यारी, निर्लज्जतादि नही कर सक्ता है ? क्या लिंगकी वृद्धि करके, तीन लोकातोंसेंभी परे नही पहुंचाय सक्ता है ? इत्यादि

अनेक कृत्य जे अच्छे पुरुष नही करसक्ते हैं, वे सर्व कृत्य ईश्वर करसक्ता है?

पूर्वपक्षः–ऐसे ऐसे पूर्वोक्त सर्वकृत्य ईश्वर नही कर सक्ता है, क्यों कि, ऐसी बुरी शक्तियां ईश्वरमें है तो सही, परंतु ईश्वर करता नहीं है.

उत्तरपक्षः–तुम्हारे दयानंदस्वामी तो लिखते हैं कि, ईश्वरकी सर्वशक्तियां सफल होनी चाहिये; जेकर पूर्वोक्त सर्वकृत्य ईश्वर न करेगा तो, तिसकी सर्व शक्तियां सफल कैसे होवेंगी?

पूर्वपक्षः–ईश्वरमें ऐसी २ पूर्वोक्त अयोग्य शक्तियां नही है.

उत्तरपक्षः–तब तो वदतोव्याघात हुआ, अर्थात् सर्वशक्तिमान् ईश्वर सिद्ध नही हुआ, तो फेर, देह मुखादि उपकरणरहित सर्वव्यापक ईश्वर, प्रमाणद्वारा वेदोंका उपदेशक कैसें सिद्ध होवेगा? अपितु कदापि नही होवेगा. क्योंकि, उपदेश जो है सो देहवालेका कर्म है, इस वास्ते एक ईश्वरमें पूर्वोक्त देहरहित होना और उपदेशकभी होना, ये परस्पर विरोधि धर्म नही घट सक्ते हैं, इसवास्ते परवादीयोंका कथन अज्ञानविजृंभित है ॥ १७ ॥

अथ स्तुतिकार भगवंत श्रीवर्द्धमानस्वामी फेर अयोग्यव्यवच्छेद कहते हैं–

प्रागेव देवांतरसंश्रितानि रागादिरूपाण्यवमांतराणि
न मोहजन्यां करुणामपीश समाधिमास्थाय युगाश्रितोऽसि १८

व्याख्या–हे जिनेंद्र! हे ईश! (रागादिरूपाणि) राग, द्वेष, मोह, मद, मदनादिरूपदूषण (प्राक्-एव) पहिलांही (देवांतरसंश्रितानि) तेरे भयसें, (देवांतर) अन्यदेवोंमें आश्रित हुए हैं कि, मानू, निर्भय हम इहां रहेगें; जिनेंद्र तो हमारा समूलही नाश करनेवाला है, इसवास्ते किसी बलवंतमें रहना ठीक है, जो हमारी रक्षा करे, मानू, ऐसा विचारकेही रागादि दूषण देवांतरोंमें स्थित हुए हैं. कैसे है वे रागादिदूषण? (अवमांतराणि) जे क्षयकों प्राप्त नही हुए हैं, अर्थात् अप्रतिहत शक्तिवाले हैं, जिनका क्षय वा क्षयोपशम वा उपशम किंचित् मात्रभी नही हुआ है, इसवास्ते हे ईश! तूं (समाधिं–आस्थाय) समाधिकों

अवलवके, समाधिनाम शुक्लध्यानकों अवलवके, (मोहजन्या) मोहजन्य (करुणा-अपि) करुणाकोंभी (न) नही (युगाश्रित –असि) युगमें आश्रित हुआ है, अर्थात् मोहरूप करुणा करकेभी तू युगयुगमें अवतार नही लेता है. जैसे गीतामें लिखा है–

"उपकाराय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम् ॥
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगेयुगे ॥ १ ॥"
तथाबोद्धमतेपि "ज्ञानिनो धर्मतीर्थस्य कर्त्तार परमं पदम् ॥
गत्वा गच्छंति भूयोपि भवन्तीर्थनिकारत ॥ १ ॥"

अर्थ –अच्छे जनोंके उपकारवास्ते, और पापी दैत्योंके नाश करने वास्ते, और धर्मके सस्थापन करनेवास्ते, हे अर्जुन! मैं युगयुगमें अव तार लेता हू । १ । हमारे धर्मतीर्थका कर्ता बुद्ध भगवान्, परमपदको प्राप्त होकेभी, अपने प्रवर्त्तमान करे धर्मकी वृद्धिकों देखके जगद्वासीयों की करी पूजाके लेनेवास्ते, और अपने शासनके अनादरसें अर्थात् अपने प्रवर्ताये शासनकी पीडा दूर करनेवास्ते, इहा आता है ऐसी मोहजन्य करुणाकों हे ईश! तू युगयुगमें आश्रित नही हुआ है ॥ १८ ॥

अथ स्तुतिकार भगवतमें जैसा कल्याणकारी उपदेश रहा है, तैसा अन्यमत के देवोंमें नहीं है, यह कथन करते हैं––

जगन्ति भिन्दन्तु सृजन्तु वा पुनर्यथा तथा वा पतय प्रवादिनाम् ।
त्वदेकनिष्ठे भगवन् भवक्षयक्षमोपदेशे तु परतपस्विन ॥ १९ ॥

व्याख्या –(प्रवादिनाम्– पतय॰) प्रवादीयोंके पति, अर्थात् परमतके प्रवर्त्तक देवते हरिहरादिक, (यथा तथा वा) जैसें तैसें प्रवादीयोंकी कल्पना समान वे देवते (जगंति) जगताको (भिंदतु) भेदन करो–प्रलय करो–सूक्ष्म रूपकरके अपनेमें लीन करो, (वा पुन॰) अथवा (सृजतु) सृष्टियांकों सृजन (उत्पन्न) करो, यह कर्त्तव्य तिनके कहनेमूजब होवो, वे देवते करो, परतु हे भगवन्! (त्वदेकनिष्ठे) एक तेरेहीमें रहे हुए (भव क्षयक्षमोपदेशेतु) ससारके क्षय करनेमें समर्थ ऐसे धर्मोपदेशके देनेमें तो, वे परवादीयोंके पति (स्वामी) देवते, (पर) परमउत्कृष्ट (तपस्विन॰)

तपस्वी अर्थात् दीन हीन कंगाल गरीव है, अनुकंपा करनेयोग्य है; क्योंकि, वे विचारे दूधकी जगे आटेका धोवन अपने भक्तोंकों दूध कहके पिलारहे हैं, इस वास्ते अनुकंपा करनेयोग्य है कि, इन विचारांकों किसीतरें सच्चा दूध मिले तो ठीक है ॥ १९ ॥

अथ स्तुतिकार परवादियोंके नाथोंने भगवान्की मुद्राभी नही सीखी है यह कथन करते हैं–

वपुश्च पर्यंकशयं श्लथं च दृशौ च नासानियते स्थिरे च ॥
न शिक्षितेयं परतीर्थनाथैर्जिनेंद्रमुद्रापि तवान्यदास्ताम् ॥ २०

व्याख्या–हे जिनेंद्र! (परतीर्थनाथैः) परतीर्थनाथोंने (इयं) येह (तव) तेरी (मुद्रा–अपि) मुद्राभी, शरीरका न्यासरूपभी (न) नही (शिक्षिता) सीखी है तो (अन्यत्) अन्य तेरे गुणोंका धारण करना तो (आस्ताम्) दूर रहा, कैसी है तेरी मुद्रा? (वपुः–च) शरीर तो (पर्यंकशयं) पर्यंकासनरूप (च) और (श्लथं) शिथिल है, (च) और (दृशौ) दोनों नेत्र (नासानियते) नासिकाउपर दृष्टिकी मर्यादासंयुक्त (च) और (स्थिरे) स्थिर है.

भावार्थः–यह है कि, भगवंतकी जो पर्यंकासनादिरूप मुद्रा है, सो मुद्रा, योगीनाथ भगवंतने योगीजनोंके ज्ञापनवास्ते धारण करी है; क्यों कि, जितना चिरयोगीनाथ आप योगकी क्रिया नही करदिखाता है तितना चिरयोगी जनोंकों योग साधनेका क्रियाकलाप नही आता है तथा भगवंत अष्टादश दूषणरहित होनेसें निःस्पृह और सर्वज्ञ है, तिनकी मुद्रा ऐसीही होनी चाहिये; परंतु परतीर्थनाथोंने तो भगवंतकी मुद्राभी नही सीखी है; अन्यभगवंतके गुणोंका धारण करना तो दूर रहा, परतीर्थनाथोंने तो भगवंतकी मुद्रासें विपरीतही मुद्रा धारण करी है; क्यों कि, जैसी देवोंकी मुद्रा थी, वैसीही मुद्रा तिनकी प्रतिमाद्वारा सिद्ध होती है

शिवजीने तो पांच मस्तक जटाजूटसहित, और शिरमें गंगाकी मूर्त्ति और नागफण, गलेमें रुंड (मनुष्योंके शिर) की माला, और सर्प, हाथ दश, प्रथम दाहने हाथमें डमरु, दूसरेमें त्रिशूल, तीसरेसें ब्रह्माजीको

आशीर्वादका देना, चौथेमें पुस्तक, और पाचवेमें जपमाला, वामे प्रथम हाथमें गंध सूंघनेकों कमल, दूसरेमें शस्त्र, तीसरे हाथसें विष्णुकों आशीर्वादका देना, चौथेमें शास्त्र, और पांचमे हाथसें दाहने पगका पकडना, ऐसी मूर्ति धारण करी है. तथा अन्यरूपमें शिवजीने पार्वतीकों अर्धांगमें धारण करी है, और अपने हाथसें लपेट रहे है. तथा शिवजीके दाहनेपासे ब्रह्माजी हाथ जोडकरके खडे हैं, और वामेपासे विष्णु हाथ जोडके खडे हैं

विष्णुकी और ब्रह्माजीकी मुद्रा तो प्रायः चित्रोंमें प्रसिद्धही है शंख, चक्र, गदादिशस्त्र, और श्री (लक्ष्मी) जी सहित तो विष्णुकी और चारमुख, कमंडलु जपमाला वेद पुस्तकादि चारों हाथोंमें धारण करे, ऐसी मुद्रा ब्रह्माजीकी है. परंतु योगीनाथ अरिहंतकी मुद्रा तो, किसीनेभी धारण नही करी है ॥ २० ॥

अरिहंतकी मूर्ति



शिवकी मूर्ति



विष्णुकी मूर्ति



ब्रह्माकी मूर्ति



अथाग्रे स्तुतिकार भगवंतके शासनकी स्तुति करते हैं-

यदीयसम्यक्त्वबलात् प्रतीमो भवादृशानां परमस्वभावम् ॥
वास न । पाशविनाशनाय नमोस्तु तस्मै तव शासनाय ॥ २१ ॥

व्याख्या-(यदीयसम्यक्त्वबलात्) जिसके सम्यक्तवलसें, अर्थात् जिसके सम्यग् ज्ञानके बलसें (भवादृशानां) तुम्हारेसरीखे परमाप्तजीवनमोक्षरूप महात्मायोंके (परमस्वभावम्) शुद्धस्वरूपकों (प्रतीमः) हम जानते हैं (तस्मै) तिस (तव) तेरे (शासनाय) शासनकेतांइ हमारा (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे, कैसे शासनकेतांई ? (कुवासनापाशविनाशनाय) कुवासनारूपपाशीके विनाश करनेवाला तिसकेतांई.

भावार्थः-जेकर हे भगवन्! तेरा शासन न होता तो, हमारे सरीखे पंचमकालके जीव तुम्हारे सरीखे परमाप्तपुरुषोंके परम शुद्धस्वभावकों कैसें जानते? परंतु तेरे आगमसें ही सर्वकूंजाना; और तेरे आगमनेही पांच प्रकारके मिथ्यात्वरूप कुवासनापाशीका विनाश करा है, इसवास्ते तेरे शासनकेतांई हमारा नमस्कार होवे. ॥ २१ ॥

अथ स्तुतिकार दो वस्तुयों अनुपम कहते हैं-

अपक्षपातेन परीक्षमाणा द्वयं द्वयस्याप्रतिमं प्रतीमः ॥
यथास्थितार्थप्रथनं तवैतदस्थाननिर्बंधरसं परेषाम् ॥ २२ ॥

व्याख्या-(अपक्षपातेन) पक्षपातरहित हो कर (परीक्षमाणाः) जब हम परीक्षा करते हैं तो, (द्वयस्य) दो जनोंकी (द्वयं) दो वस्तुयों (अप्रतिमं)अनुपम उपमा रहित (प्रतीमः) जानते हैं; हे भगवन् ! (तव) तेरा (एतत्) यह (यथास्थितार्थप्रथनं) यथास्थित पदार्थोंके स्वरूप कथन करनेका विस्तार, अर्थात् यथास्थित पदार्थोंके स्वरूप कथन करनेका विस्तार जैसा तैंने करा है, ऐसा जगत्में कोइभी नही कर सक्ता है, इसवास्ते तेरा कथन हम अनुपम जानते हैं. और (परेषां) अन्योंका (अस्थानानिर्बंधरसं) अस्थाननिर्बंधरस, अर्थात् अन्योंने असमंजसपदार्थोंके स्वरूपकथनरूप गोले गिरडाये हैं, वेभी उपमारहित हैं, तिनोंके विना ऐसा असमंजसकथन अन्य कोईभी नही कर सक्ताहै. ॥ २२ ॥

अथ स्तुतिकार अज्ञानियोंके प्रतिबोध करनेमें अपनी असमर्थता कहते हैं –

अनाद्यविद्योपनिषन्निषण्णैर्विशृंखलैश्चापलमाचरद्भिः ॥
अमूढलक्ष्योपि पराक्रिये यत्त्वत्किंकर किं करवाणि देव ॥२३॥

व्याख्या–अनादि अविद्या, अर्थात् मिथ्यात्व अज्ञानरूप उपनिषद्रहस्यमें तत्पर हुयोंने, और विशृंखलोंने, अर्थात् विना लगाम स्वछंदाचारी प्रमाणिकपणारहितोंने, और चपलता अर्थात् वाग्जालकी चपलताके आचरण करतेहुयोंने, इन पूर्वोक्त विशेषणोंविशिष्ट महाअज्ञानिपुरुषोंने जेकर तेरे अमूढ लक्ष्यकोंभी–जिसके उपदेशादि सर्व कर्म निष्फल न होवें तिसकों अमूढलक्ष्य कहते हैं, अर्थात् सर्वज्ञ ऐसे तेरे अमूढलक्ष्यकोंभी, जेकर पूर्वोक्त पुरुष खंडन करे–तिरस्कार करे, जैसें कोई जन्मांध सूर्यके प्रकाशकों पराकरण करे, न माने, तो तिसकों निर्मल नेत्रवाला पुरुष क्या करे? ऐसेही अज्ञानी तेरा तिरस्कार करे, तो हे देव! स्वस्वरूपमें क्रीडा करनेवाले सर्वज्ञ वीतराग! तेरा किंकर मैं हेमचंद्रसूरि, क्या करूं? कुछभी तिनकेतांई नही कर सकता हूं. जैसें जन्मके अंधकों अंजनवैद्य कुछ नही कर सकता है. ॥ २३ ॥

अथ स्तुतिकार भगवतकी देशना भूमिकी स्तुति करते हैं—

विमुक्तवैरव्यसनानुबंध श्रयंति यां शाश्वतवैरिणोऽपि ॥
परैरगम्या तव योगिनाथ तां देशनाभूमिमुपाश्रयेऽहम् ॥२४॥

व्याख्या–हे योगिनाथ! (यां) जिस तेरी देशनाभूमिकों (शाश्वतवैरिण–अपि) शाश्वतवैरीभी, अर्थात् जिनका जातिके स्वभावसेंही निरंतर वैरानुबंध चला आता है, जैसें बिल्लि मूषकका, श्वान बिल्लिका, वृक अजाका, इत्यादि, वेभी सर्व, (विमुक्तवैरव्यसनानुबंधाः) स्वजातिका शाश्वत वैर रूपव्यसनके अनुबंधसें विमुक्त रहित हुए थके (श्रयंति) आश्रित होते हैं यह भगवतका अतिशय है कि, शाश्वतवैरीभी भगवानकी देशनाभूमि समवसरणमें जब आते हैं, तब परस्पर वैर छोडके परममैत्रीभावसें एकत्र बैठते हैं; और जो (परैः) परवादीयोंने (अगम्यां) अगम्य है, अर्थात् परवादी जिस देशनाभूमिका स्वरूप नही जान सक्ते हैं

मिथ्यात्व अज्ञानरूप पटलोंसें अंधे होनेसें; (तां) तिस (तव) तेरी (देशनाभूमिं) देशनाभूमिकों (अहम्) मैं (उपाश्रये) उपाश्रित करता हूं-आश्रित होताहूं, जिससें मेराभी सर्वजीवोंके साथ वैरानुबंधरूप व्यसन छुट जावे. ॥ २४ ॥

अथस्तुतिकार परदेवोंका साम्राज्य वृथा सिद्ध करते हैं.

मदेन मानेन मनोभवेन क्रोधेन लोभेन च संमदेन ॥
पराजितानां प्रसभं सुराणां वृथैव साम्राज्यरुजा परेषाम् ॥२५॥

व्याख्या—(परेषाम्–सुराणाम्) परदेवताओंका, ब्रह्मा, विष्णु, महादेवादिकोंका (साम्राज्यरुजा) लोकपितामहपणा, जगत्कर्त्तापणा, हंसवाहन, कमलासन, यज्ञोपवीत, कमंडलु, चतुर्मुख, सावित्रीपति, विशिष्ठादि दश पुत्रोंवाला, वेदोंका कहनेवाला, चार वर्णका उत्पन्न करनेवाला, वर शाप देने समर्थ, सतोगुणरूप, इत्यादि ब्रह्माजीका साम्राज्य—चतुर्भुज, शंख, चक्र, गदा, शारंग, धनुष्, वनमालाका धारनेवाला, ईश्वर, लक्ष्मी, राधिका, रुक्मिणीआदिका पति, सोलां सहस्र गोपियोंके साथ क्रीडा करनी, अनेक रूपका करना, बत्रीस सहस्र राणियोंका स्वामी, त्रिखंडाधिप, वामन नरसिंह रामकृष्णादिका रूप धारना, कंस, वाली, रावणादिका वध करना, सहस्रों पुत्रोंका पिता, रजोगुणरूप, सृष्टिका पालनकर्ता, भक्तसाहायक, घटघटमें व्यापक होना, इत्यादि विष्णुका साम्राज्य. और जगत्प्रलय करना, वृषभवाहन, पंचमुख, चंद्रमौलि, त्रिनेत्र, कैलासवासी, सर्वसें अधिक कामी, स्त्रीके अत्यंत स्नेहवाला, सदा स्त्री पार्वतीकों अर्द्धांगमें रखनेवाला, अत्यंत भोला, त्रिभुवनका ईश्वर इत्यादि शिवका साम्राज्य. इसीतरे सर्वलौकिक देवोंका साम्राज्य समज लेना. ऐसा पूर्वोक्त साम्राज्यरूप रोग परतीर्थनाथोंका (वृथाएव) वृथाही है. कैसे परतीर्थनाथोंका? (मदेन) अष्टप्रकारके मद (मानेन) अभिमान–अहंकार (मनोभवेन) काम (क्रोधेन) क्रोध शत्रुके मारणरूप वा शापदानरूप (लोभेन) लोभ स्त्री, पुत्र, धन, धान्य, शस्त्र, स्थानादिग्रहणरूप, (च) शब्दसे मायाकपटादि और (संमदेन) हर्ष खुशी इनों करके (प्रसभं) यथा स्यात्तथा अर्थात् हठ करके अपने वडे सामर्थ्य करके (पराजितानां) जे पराजित

हैं, अर्थात् पूर्वोक्त दुपणोंकरके जे सयुक्त हैं, तिनोंका क्योंकि, पूर्वोक्त साम्राज्यरूप रोग आत्माकों मलिन करने और दु ख देनेवाला है, इस वास्ते वृथाही है ॥ २५ ॥

अथाग्रे स्तुतिकार असत्वादी और पडितजनोंके लक्षण कहते हैं

स्वकण्ठपीठे कठिन कुठार परे किरन्त प्रलपन्तु किंचित् ॥
मनीषिणा तु त्वयि वीतराग न रागमात्रेण मनोऽनुरक्तम् ॥२६॥

व्याख्या—(परे) परवादी जे हैं, वे (स्वकण्ठपीठे) अपने कठपीठमें (कठिन) कठिन—तीक्ष्ण (कुठार) कुठार—कुहाडा (किरन्त) क्षेपन करते हुए (किंचित्) कुछक (प्रलपन्तु) प्रलपन करो, अर्थात् परवादी अप्रमाणिक युक्तिवाधित किंचित् तत्वके स्वरूपकथनरूप कठिन कुठार—कुहाडा अपने कठपीठमें क्षेपन करो—मारो, यद्वा तद्वा वोलो, सत्मार्गके अनभिज्ञ होनेसें, अपने आत्माकी हानि करो, परतु हे वीतराग ! (मनीपिणा तु) मनीपि—पडित—सद्‍वुधिमानोंका तो (मन) मन—अतकरण (त्वयि) तेरे विपे (रागमात्रेण) रागमात्र करके (न) नहीं (अनुरक्त) रक्त है, किंतु युक्तिशास्त्रके अविरोधि तेरे कथनके होनेसें तेरे विपे पडितजनोंका मन अनुरक्त है ॥ २६ ॥

अथाग्रे जे पुरुप अपनेकों माध्यस्थ मानते हैं, परतु वेभी निश्चय मत्सरी हैं, तिनका स्वरूप कथन करते हैं

सुनिश्चित मत्सरिणो जनस्य न नाथमुद्रामतिशेरते ते ॥
माध्यस्थमास्थाय परीक्षकाये मणौ च काचे च समानुवन्धा ॥२७॥

व्याख्या—हे नाथ ! (सुनिश्चित) हमारे निश्चित करा हुआ वर्त्ते है कि (ते) वे जन (मत्सरिण) मत्सरी (जनस्य) पुरुपकी (मुद्रा) मुद्राकों (न) नहीं (अतिशेरते) उल्लघन करते है, अर्थात् ऐसे जनभी मत्सरियोंकी पंक्तिमेंही निश्चित करे हुए हैं, कैसे हैं वे जन ? (ये) जे (परीक्षका) परीक्षक होके और (माध्यस्थ्यम्—आस्थाय) माध्यस्थपणेकों धारण करके (मणौ) मणिमें (च) और (काचे) काचमें (समानुवन्धा) सम अनुवधवाले है

भावार्थ—माध्यस्थपणेकों धारण करके, जे पुरुष अपने आपकों परीक्षक मानते हैं कि, हम पक्षपातरहित सच्चे परीक्षक हैं; परंतु काचके टुकडेकों, और चंद्रकांतादि मणियोंकों मोलमें, वा गुणोंमें समान मानते हैं, वे परीक्षक नहीं हैं, किंतु वेभी मत्सरि पुरुषकी मुद्रावालेही हैं. ऐसेंही जिनोंने माध्यस्थपणा और परीक्षक अपने आपकों माने हैं, फेर काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, हिंसा, मैथुनादिरहित सर्वज्ञ वीतरागकों, और पूर्वोक्त कामादिसहित अज्ञानी सरागीकों एकसमान मानते हैं, इसवास्ते वे परीक्षक नहीं, किंतु वेभि मत्सरी ही हैं ॥ २७ ॥

अथ स्तुतिकार प्रतिवादीयोंसमक्ष अवघोपणा करते हैं.

इमां समक्षं प्रतिपक्षसाक्षिणामुदारघोषामवघोषणां ब्रुवे॥
न वीतरागात्परमस्ति दैवतं न चाप्यनेकान्तमृते नयस्थितिः ॥२८॥

व्याख्या—मैं श्री हेमचंद्रसूरी (प्रतिपक्षसाक्षिणां) प्रतिपक्षसाक्षियोंके (समक्षं) समक्ष—प्रत्यक्ष (इमां) यह जो आगे कहेंगे तिस (उदारघोषाम्) मधुर शब्दोंवाली (अवघोपणाम्) अवघोषणा, लोकोंके जनावने वास्ते उच्च शब्द करके जो बोलना तिसका नाम अवघोषणा कहते हैं, तिस अवघोषणाकों (ब्रुवे) बोलता हूं—करता हूं, सोही दिखाते हैं, (वीतरागात्) वीतरागसें (परं) परे—कोई (दैवतं) सत्यधर्मका आदि उपदेष्टा (न) नहीं (अस्ति) है, (च) और (अनेकांतं—ऋते) अनेकांत अर्थात् स्याद्वादविना कोइ (नयस्थितिः—अपि) नयस्थितिभी (न) नहीं है; अर्थात् स्याद्वादके विना पदार्थके स्वरूपके कथन करनेरूप जो नयस्थिति है सोभी नहीं है. स्यात् पदके चिन्हविना किसीभी नित्यानित्यादिनयके कथनकी सिद्धि न होनेसें ॥ २८ ॥

अथ स्तुतिकार अपने आपकों अपक्षपाती सिद्ध करते हैं.

न श्रद्धयैव त्वयि पक्षपातो न द्वेषमात्रादरुचिः परेषु॥
यथावदाप्तत्वपरिक्षया तु त्वामेव वीर प्रभुमाश्रिताः स्मः ॥ २९ ॥

व्याख्या—हे वीर! (श्रद्धया—एव) श्रद्धा मात्र करकेही, अर्थात् श्रीमहावीरके विना अन्य किसी परवादीके मतके देवकों अपना प्रभु ईश्वर

सत्योपदेष्टा नहीं मानना, ऐसी श्रद्धा, मनकी दृढता करकेही, (त्वयि) तेरेविषे हमारा (पक्षपात) पक्षपात (न) नहीं है, और (द्वेपमात्रात्) द्वेपमात्रसें (परेपु) परमतके देव हरिहरब्रह्मादिकोंमें (अरुचि) अरुचि —अप्रीति (न) नहीं है, परतु (यथावदाप्तत्वपरीक्षया—तु) यथावत् आप्तपणेकी परीक्षा करकेही, हे वीर! वर्द्धमान! हम (त्वा—एव) तुजही (प्रभुम्) प्रभुकों (आश्रिता स्म) आश्रित हुए हैं आप्तत्वकी परीक्षा आप्तके कथनसें और आप्तके चरितसें सिद्ध होती है, सो हमने तेरे कथनकी परीक्षा करी है, परतु तेरे वचन हमने प्रमाणवाधित वा पूर्वापर विरोधि नहीं देखे हैं, और तेरा चरित देखा, सोभी आप्तत्वके योग्यही देखा है, और तेरी प्रतिमाद्वारा तेरी मुद्राभी निर्दोप सिद्ध होती है इन तीनों परीक्षायोंके करनेसें तेरेमें निर्दोप आप्तपणा सिद्ध होता है, इस वास्ते हमने तेरेकों प्रभु माना है और अन्यदेवोंमें ये तिनो शुद्ध निर्दोप परीक्षायों सिद्ध नहीं होती हैं, इसवास्ते तीन देवोंकों हम अपना प्रभु नहीं मानते हैं ;नतु द्वेष वा अरुचिसें " यदवादिलोकतत्वनिर्णये श्री हरिभद्रसूरीपादे । पक्षपातो न मे वीरे न द्वेप कपिलादिपु। युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्य परीग्रह " इति ॥ २९ ॥

अथाग्रे स्तुतिकार भगवतकी वाणीकी स्तुति करते हैं

तम स्पृशामप्रतिभासभाज भवन्तमप्याशु विविन्दते या ॥
महेम चन्द्राशुदृशावदातास्तास्तर्कपुण्या जगदीशवाच ॥३०॥

व्याख्या—हे जगदीश! भगवन्! (या) जे वाचायों तेरी वाणीयों (तमस्पृशाम्) अज्ञानरूप अधकारके स्पर्शनेवालोंके (अप्रतिभासभाजम्) अप्रतिभासभाज अर्थात् अज्ञानी जिसकों नहीं जानसक्ते हैं, ऐसे (भव न्तम्—अपि) तुजकोंभी—तेरेकोंभी (आशु) शीघ्र (विविन्दते) प्रगट करतीयां है—जनातीयां हे (ता) तिन (चन्द्राशुदृशावदाता) चंद्रकी किरणोंकीतरें दृशा—ज्ञान करके अवदाता—श्वेत और (तर्कपुण्या) तर्क करके पवित्र सम्मत (वाच) वाणीयांकों (महेम) हम पूजते हैं ॥ ३० ॥

अथ स्तुतिकार नामके पक्षपातसें रहित होकर, गुणविशिष्ट भगवंतकों नमस्कार करते हैं.

यत्र तत्र समये यथा तथा योऽसि सोस्यभिधया यया तया॥
वीतदोषकलुषः स चेद्भवानेक एव भगवन्नमोऽस्तुते ॥ ३१ ॥

व्याख्या–(यत्र तत्र समये) जिसतिस मतके शास्त्रमें (यथातथा) जिस तिस प्रकारकरके (यया तया अभिधया) जिस तिस नामकरके (यः) जो तूं (आसि) है (सः) सोही (आसि) तूं है, परं (चेत्) यदि जेकर (वीतदोषकलुषः) दूर होगए हैं द्वेष राग मोह मलिनतादि दूषण, तो, (भवान्–एक–एव) सर्व शास्त्रोंमें तूं जिस नामसें प्रसिद्ध है, सो सर्व जगें तूं एकही है, इसवास्ते हे भगवन्! (ते) तेरेतांइ (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे ॥ ३१ ॥

अथ स्तुतिकार स्तुतिकी समाप्तिमें स्तुतिका स्वरूप कहते हैं.

इदं श्रद्धामात्रं तदथ परनिन्दां मृदुधियो
विगाहन्तां हन्त प्रकृतिपरवादव्यसनिनः॥
अरक्तद्विष्टानां जिनवरपरीक्षाक्षमधिया-
मयंतत्त्वालोकः स्तुतिमयमुपाधिं विधृतवान्॥ ३२ ॥

व्याख्या–(मृदुधियः) मृदु कोमल विशेषबोधरहित जिनकी कोमल बुद्धि है, वे पुरुष तो (इदम्) इस स्तोत्रकों (श्रद्धामात्रं) श्रद्धामात्र, अर्थात् जिनमतकी हमकों श्रद्धा है, इसवास्ते हम इसको सत्य करकेही मानेंगे, ऐसे जन तो इस स्तोत्रकों श्रद्धामात्र (विगाहन्तां) अवगाहन करो–मानो, (हन्त) इति कोमलामंत्रणे (तत्–अथ) अथ सोही स्तोत्र (प्रकृतिपरवादव्यसनिनः) स्वभावही जिनोंका परके कथनमें वाद करनेका है, अर्थात् अपने माने देव और तिनके कथनमें जिनकों आग्रह है कि, हमने तो यही मानना है, अन्य नहीं, ऐसे व्यसनी पुरुष इस स्तोत्रकों (परनिन्दां) परनिंदारूप अवगाहन करो; स्तुतिकारने परदेवोंकी निंदारूप यह स्तोत्र रचा है, ऐसें मानो, अपने माननेका कदाग्रह होनेसें, परंतु हे जिनवर! (परीक्षाक्षमधियाम्) परीक्षा करनेमें समर्थ बुद्धिवाले

(अरक्तद्विष्टाना) रागद्वेषरहितोंकों, अर्थात् किसी मतमें जिनोंका राग पक्ष पात नहीं है, और किसी मतमें जिनोंकों द्वेषसें अरुचि नहीं है, ऐसे परीक्षा पूर्वक सत् असत् वस्तुका प्रमाणसें निर्णय करनेवालोंकों (अय) यह (त त्त्वालोक) तत्त्वप्रकाशक स्तव—स्तोत्र (स्तुतिमय—उपार्धि) स्तुतिमय उपा धिकों—स्तुतिमय धर्मचिंताकों (विधृतवान्) धारण करता है ॥३२॥ इतिश्रि हेमचद्रसूरिविरचितमयोगव्यवच्छेदिकाद्वात्रिंशिकाख्य श्री महावीर स्वामि स्तोत्र बालावबोधसहित समाप्तम् ॥ तत्समाप्तौ च समाप्तोय तृतीय स्तम्भ ॥ श्रीमत्तपोगणेशेन विजयानदसूरिणा ॥ कृतोबालावबोधोय परोपकृतिहेतवे॥१॥

इन्दुबाणाङ्कचन्द्राब्दे माघमासे सिते दले ॥
पञ्चम्या च तिथौ जीववस्रेपूर्तिमगात्तथा ॥ २ ॥

॥ इतिश्रीमद्विजयानदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे अयो गव्यवच्छेदकवर्णनोनाम तृतीय स्तभ ॥ ३ ॥

॥ अथ चतुर्थस्तम्भप्रारम्भः॥

तृतीयस्तभमें प्राय अयोगव्यवच्छेदका वर्णन किया, अब इस चतुर्थ स्तभमें विशेषत अयोगव्यवच्छेदादि वर्णन करते हैं

॥ अर्हम् ॥

प्रणिपत्यैकमनेकं केवलरूप जिनोत्तम भक्त्या ॥
भव्यजनबोधनार्थं नृतत्त्वनिगम प्रवक्ष्यामि ॥ १ ॥

व्याख्या—में हरिभद्रसूरि (नृतत्त्वनिगम) नृतत्त्व लोकतत्त्वनिर्णयरूप निगम आगम कहता हु, किसवास्ते? (भव्यजनबोधनार्थं) भव्यजनोंके तत्त्वज्ञानके वास्ते, क्या करके ? (भक्त्या) भक्ति करके (प्रणिपत्य) नम स्कार करके, किसको ? (जिनोत्तम) जिन नाम सामान्य केवलीका है, ति नोंमें तीर्थंकरनामकरके जो उत्तम होवे, तिनकों जिनोत्तम, जिनवर, अ रिहत, कहते है, तिनकों ऐसे जिनोत्तमको ? (एक) एकरूपकों, और (अनेक) अनेकरूपकों, शुद्धद्रव्यार्थिकनयके मतसें एकरूप है, "एगेदव्वे एगेआया एगेसिद्धे" इति श्रीस्थानागसूत्रवचनप्रामाण्यात्, अर्थात् सामा

न्यरूपसें एकही केवल जिनोत्तमरूप परमेश्वर है, और व्यक्तिरूपकरके अनंत आत्मा एक परमब्रह्म परमेश्वरपदमें विराजमान होनेसें अनेक रूप है, अथवा द्रव्यार्थे एक आत्मा होनेसें एकरूप है, और पर्यायार्थिक-नयके मतसें ज्ञानदर्शनचारित्रादि अनंत पर्यायांकरके अनंत रूप है, "उक्तंच ज्ञाताधर्मकथांगे स्थापत्यासुतमुनिशुकपरिव्राजकसंवादे–सुया एगे विअहं दुवे विअहं अणेगे विअहं–इत्यादि–हे शुक! मैं एकभी हूं, दो रूपभी हूं, अनेक रूपभी हूं–इत्यादि–" तिन एकानेकरूपवाले जिनोत्तमकों, फेर कैसे जिनोत्तमकों? (केवलरूपं) केवल शुद्धस्वरूप सर्वकर्मकृतउपाधिकरके विनिर्मुक्त रहितकों ॥ १ ॥

अथ ग्रंथकार परिषत्–सभाकी परीक्षा करनी कहते हैं.

भव्याभव्यविचारो न हि युक्तोऽनुग्रहप्रवृत्तानाम् ॥
कामं तथापि पूर्वं परीक्षितव्या बुधैः परिषत् ॥ २ ॥

व्याख्या–(भव्याभव्यविचारः) भव्याभव्य अच्छे और बुरे पुरुषोंका विचार (अनुग्रहप्रवृत्तानाम्) अनुग्रह बुद्धिकरके प्रवृत्त होए संत जनोंकों (नहि–युक्तः) करना युक्त–उचित नही है (कामं) यह कथन यद्यपि सम्मत है (तथापि) तोभी (बुधैः) बुद्धिसानोंने (पूर्वं) प्रथम (परिषत्) श्रोताजनकी (परीक्षितव्या) परीक्षा करणी उचित है ॥ २ ॥

अथ ग्रंथकार उपदेशके अयोग्य परिषत् के लक्षण कहते हैं.

वज्रमिवाभेद्यमनाः परिकथने चालनीव यो रिक्तः ॥
कलुषयति यथा महिषः पूनकवद्दोषमादत्ते ॥ ३ ॥

व्याख्या—जो पुरुष (वज्रं–इव) वज्रवत् (अभेद्यमनाः) अभेद्य मनवाला होवे, अर्थात् उपदेश श्रवणकरके जिसके मनमें किंचित्मात्रभी शुभ परिणामांतर न होवे, मुद्गशेलवत्; और (यः) जो (परिकथने) उपदेशादिकेविषे (चालनी–इव) चालनीकी तरे (रिक्तः) रिक्त हो जावे, जैसें चालनीमें जल डालीए तब सर्व जल निकल जाता है, तैसें जो श्रोता व्याख्यान श्रवण करता है, और तत्काल भूलता जाता है, सो चालनीकी तरे रिक्त जानना. २. और (यथा) जैसें (महिषः) भैंसा तलावमें पा-

पीने जाता है, तब पानीमें प्रवेश करके पानीको विलोडन करके (कलुषयति) मलीन करता है, और जलमें मूत्र करता है, न तो आप पानी पीता है, और न भैंसाको पानी पीने देता है, तैसेंही जो श्रोता व्याख्यानमें क्लेश लडाइ विग्रह कषाय करे, न तो आप सुने, और न शेषपरिषत्को सुनने देवे, सो श्रोता भैंसेसमान जानना ३ और जो श्रोता (पूनकवत्) पूनक बैया विजडासुघरा नामक जीवका घर, जो वृक्षके ऊपर बडी चतुराइसें बनाता है, तिस घरसें अहीरलोक घृत तपाके छानते हैं, तिस पूनकमेंसें घृत तो निकल जाता है, और कूडाकचरा रह जाता है, तद्वत् पूनकवत्—पूनककी तरें गुण तो नहीं ग्रहण करता है, परंतु (दोष) दोषको—अवगुणाको (आदत्ते) ग्रहण करता है, सो पूनकसमान जानना ४ येह चारों परिषदा उपदेश करणे योग्य नहीं हैं यह कथन उपलक्षण मात्र है, क्योंकि नंदिसूत्र आवश्यकसूत्र बृहत्कल्पसूत्रादिकोंमें औरभी अयोग्य परिषत्का वर्णन है ॥ ३ ॥

पूर्वोक्त परिषत्को उपदेश निरर्थक है, सो दृष्टांतद्वारा कहते हैं

जलमन्थनवत्कथितं वधिरस्येव हि निरर्थकं तस्य ॥
पुरतोन्धस्य च नृत्यं तस्माद्ग्रहणं तु भव्यस्य ॥ ४ ॥

व्याख्या—(जलमन्थनवत्) जलके विलोडनेकीतरें (बधिरस्य) बहिरेको (कथित—इव) कथनकीतरें (च) और (अंधस्य) आंधेके (पुरतः) आगे (नृत्य) नाटककीतरें (तस्य) तिस पूर्वोक्त अभव्यजनको अयोग्य परिषत्को उपदेश करना (निरर्थक) व्यर्थ है, अर्थात् जैसें जलका विलोडना व्यर्थ है, जैसें बहिरेको कहना व्यर्थ है, और जैसें आंधेके आगे नाटकका करना व्यर्थ है, तैसें तिस अयोग्य पुरुषको उपदेशका देना व्यर्थ है (तस्मात्) तिस हेतुसें (तु) निश्चयकरके (भव्यस्य) भव्ययोग्य पुरुषका (ग्रहण) ग्रहण करना योग्य है ॥ ४ ॥

अथ ग्रंथकार परके तरफसें आशंका करते हैं

आचार्यस्यैव तज्जाड्यं यच्छिष्यो नावबुध्यते ॥
गावो गोपालकेनेव कुतीर्थेनावतारिता ॥ ५ ॥

व्याख्या—(आचार्यस्य—एव) आचार्य-गुरुकाही (तत्) वो (जाड्यं) मूर्खपणा है (यत्) जो (शिष्यः) शिष्य (न—अवबुध्यते) प्रतिबोध नहीं होता है, जैसें (गोपालकेन—एव) गवालीएनेही (गावः) गौयां (कुतीर्थेन) बुरे घाटकरके (अवतारिताः) अवतारण करी हैं, इसमें गौयांका कसूर नहीं, किंतु गवालीएकाही कसूर है ॥ ५ ॥

अव आचार्य पूर्वोक्त आशंकाका उत्तर देते हैं.

किंवा करोत्यनार्याणामुपदेष्टा सुवागपि ॥
तत्र तीक्ष्णकुठारोपि दुर्दारुणि विहन्यते ॥ ६ ॥
अप्रशान्तमतौ शास्त्रसद्भावप्रतिपादनम् ॥
दोषायाभिनवोदीर्णे शमनीयमिव ज्वरे ॥ ७ ॥
उदितौ चन्द्रादित्यौ प्रज्वलिता दीपकोटिरमलापि ॥
नोपकरोति यथान्धे तथोपदेशस्तमोन्धानाम् ॥ ८ ॥
एकतडागे यद्वत् पिवति भुजङ्गः शुभं जलं गौश्च ॥
परिणमति विषं सर्पे तदेव गवि जायते क्षीरम् ॥ ९ ॥
सम्यग्ज्ञानतडागे पिवतां ज्ञानसलिलं सतामसताम् ॥
परिणमति सत्सु सम्यक् मिथ्यात्वमसत्सु च तदेव ॥ १० ॥
एकरसमंतरिक्षात् पतति जलं तच्च मेदिनीं प्राप्य ॥
नानारसतां गच्छति पृथक् पृथक् भाजनविशेषात् ॥ ११ ॥
एकरसमपि तद्वाक्यं वक्तुर्वदनाद्विनिःसृतं तद्वत् ॥
नानारसतां गच्छति पृथक् पृथक् भावमासाद्य ॥ १२ ॥
स्वं दोषं समवाप्य नेष्यति यथा सूर्योदये कौशिको
राद्धिं कङ्कटुको न याति च यथा तुल्येपि पाके कृते ॥
तद्वत् सर्वपदार्थभावनकरं संप्राप्य जैनं मतं
बोधं पापधियो न यान्ति कुजनास्तुल्ये कथासंभवे ॥ १३ ॥

व्याख्या–अनार्य पुरुषोंको भले वचनोंवालाभी उपदेष्टा क्या करता है? अपितु कुछभी नहीं कर सक्ता है, जेंसें बुरे काष्टमें तीक्ष्णभी कुठार कुंठ हो जाता है ॥ अप्रशांत, मिथ्यात्व करके अति मलीन बुद्धिवाले पुरुष विषे शास्त्रका यथार्थ तत्व प्रतिपादन करना दोषकेतांइ होता है, जेंसें नवीन ज्वरके उदयमें शमन करनेयोग औषधका करना, अथवा घृत दुग्धादि पान कराना दोषकेतांइ होता है ॥ चंद्रमा सूर्य उदय हुए हैं, तथा जाज्वल्यमान कोटिदीपकभी निर्मल जलते हैं, तोभी वे चंद्रादि, जेंसें अंधपुरुषविषे उपकार नहीं करसक्के हैं, तेंसेंही मिथ्यात्व अज्ञानरूप अंधकारकरके आच्छादित मतिवाले पुरुषोंको सद्गुरुका उपदेशभी उपकार नहीं करसक्ता है ॥ एकही तलावमें जेंसें सर्प और गौ शुभ जल पीते हैं, परंतु सर्पविषे वोही जल विषरूप परिणामे परिणमता है, और वोही जल गौकेविषे दुध होके परिणमता है ॥ तेंसेंही सम्यक् अविपरीत ज्ञानरूप तलावमें जिनतीर्थंकर अरिहंतका ज्ञानरूप पाणी पीनेवाले सत् और असत्पुरुषोंको परिणमता है, सत्पुरुषोंमें तो सम्यक्त्वरूप होके परिणमता है, और असत्पुरुषोंमें मिथ्यात्वरूप होके परिणमता है ॥ जेंसें एकरसवाला पानी, आकाशसें पडता है, और सो पानी नानाप्रकारकी पृथ्वीको प्राप्त होके न्यारे न्यारे भाजनोंके विशेषसें नानारसपणे प्राप्त होता है ॥ तेंसेंही एकरसवाला वाक्य, तिस वक्ताके मुखसें निकला हुआ, नानारसपणे अर्थात् न्यारे न्यारे जीवोंके भावोंको प्राप्त होके नाना प्रकारके अभिप्रायपणे परिणमता है ॥ जेंसें अपनेही दोषको प्राप्त होके उल्लुक सूर्यके उदयको नहीं इच्छता है, और जेंसें सर्व मूगोकेसाथ तुल्यपाकके करेभी कोकडु रधाता नहीं है, तेंसेंही सर्व पदार्थोके स्वरूपका प्रकट करनेवाला जैनमत पाकरकेभी, पापबुद्धि बुरे जन, तुल्यकथाके श्रवण करनेसेंभी बोधको प्राप्त नहीं होते हैं ॥६।७।८।९।१०।११।१२।१३॥

अथ प्रथकार तत्वनिर्णय करनेको कहते हैं

हठी हठे यद्वदति प्लुत स्यान्नौर्नाविवद्धा च यथा समुद्रे ॥
तथा परप्रत्ययमात्रदक्षो लोक प्रमादाम्भसि वम्भ्रमीति ॥१४॥

यावत्परप्रत्ययकार्यबुद्धिर्विवर्त्तते तावदुपायमध्ये ॥
मनः स्वमर्थेषु निघट्टनीयं नह्याप्तवादा नभसः पतन्ति ॥१५॥

व्याख्या—जैसें कदाग्रही कदाग्रहमें अतिप्लुत चलायमान होता है, अर्थात् एक पक्षमें जूठा होकर दूसरेमें आश्रित होता है, दूसरेसें तीसरेमें, एतावता अनवस्थितिवाला होता है, और जैसें मलाहकी वंधी हुई नावा समुद्रमें अतिप्लुत होती है, तैसेंही परके निश्चय किये मात्रमेंही चतुर जो लोक है, सो प्रमादरूप पाणीमें अतिशय भ्रमण करता है, अर्थात् जे लोक अपने मनमें ऐसा समझतें हैं कि, हमकों निश्चय करनेकी कुछ जरूर नहीं है कि, यह सत्य है वा असत्य? किंतु जो पूर्वजोंने कहा है, सोइ मान्य है, वे लोक तत्त्वपदार्थके ज्ञानकों कवीभी प्राप्त नहीं होते हैं.॥ इसवास्ते जवतक परके ज्ञानके कार्यमें बुद्धि वर्त्तती है, तवतक उपायमें तत्वपदार्थके ज्ञानमें, और पदार्थोंमें अपना मन निरंतर जोडना चाहिये, अर्थात् अपने मनकों पदार्थोंके निर्णय करनेमें प्रवर्त्तावना चाहिये. क्योंकि, आप्तवाद, सत्योपदेष्टाके वचन आकाशसें नहीं गिरते हैं, किंतु बुद्धिसें विचारयुक्ति द्वारा सिद्ध होते हैं कि, येह वचन आप्तके है, और येह अनाप्तके है, इस वास्ते बुद्धिमान् पुरुषकों तत्त्व पदार्थका अवश्य निर्णय करना चाहीये ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ असत् तत्वपदार्थके अग्राह्यपणेका हेतु कहते हैं.

यच्चिन्त्यमानं न ददाति युक्तिं प्रत्यक्षतो नाप्यनुमानतश्च ॥
तद्बुद्धिमान् को नु भजेत लोके गोशृङ्गतः क्षीरसमुद्भवो न ॥१६॥

व्याख्या—जो कथन करा हुआ तत्त्वपदार्थ, जब विचारीए, तब प्रत्यक्ष वा अनुमानसें युक्तिकों न देवे, अर्थात् जो युक्तिप्रमाण प्रत्यक्ष अनुमानसें सिद्ध न होवे, सो तत्त्वका कथन कौन बुद्धिमान् सत्यकरके मानेगा ? अपितु कोइभी नहीं मानेगा. जैसें लोकमें गौके शृंगसें प्रत्यक्ष, और अनुमानसें कदापि दूधकी उत्पत्तिका संभव सिद्ध नहीं हो सक्ताहै ॥१६॥

अथ ग्रंथकार जे प्रकृतिसेंही विनयवाले नम्र हैं तिनकोंही विनयवंत पुरुष विनयवंत करसक्ते हैं यह कथन दृष्टांतद्वारा सिद्ध करते हैं.

येवै नेया विनयनिपुणैस्ते,क्रियन्ते विनीता
नावैनेयो विनयनिपुणै शक्यते साविनेतुम् ॥
दाहादिभ्य समलममलं स्यात् सुवर्णं सुवर्णं
नायस्पिंडो भवति कनकं छेददाहक्रमेण ॥ १७ ॥

व्याख्या–जे विनयवत विनयमें निपुण पुरुष हैं, तिनकोंही विनय निपुण पुरुषोंहीने विनयवत करणेकों समर्थ होइए हैं, परतु अविनीतप्रकृतिवालेकों विनयवत करणेमें समर्थ नहीं होइए हैं दृष्टांत–जैसें भले वर्णादिवाले सुवर्णकोंही दाह ताडन छेदादिकरके अमल (निर्मल) सुवर्ण सिद्धकरशकीए हैं, अर्थात् समलसुवर्णही दाहादिकों करके निर्मल सुवर्ण होता है, परतु छेददाहादिक्रमकरके लोहका पिंड, कनक (सुवर्ण) नहीं होता है, ऐसेंही जे योग्य पुरुष हैं, वेही उपदेशकों सुणके शुभपरिणामांतरको प्राप्त होसक्के हैं, अयोग्य पुरुष नहीं होसक्के हैं ॥ १७ ॥

अथ ग्राह्य पदार्थका लक्षण कहते हैं

आगमेन च युक्त्या च योर्थ समभिगम्यते
परीक्ष्य हेमवद्ग्राह्य पक्षपाताग्रहेण किम् ॥ १८ ॥

व्याख्या–आगमकरके और युक्तिकरके जो अर्थ–पदार्थ सिद्ध होवे, सोही दाहताडनछेदादिक्रमकरके सुवर्णकीतरें परीक्षा करके ग्रहण करने योग्य है, अर्थात् परीक्षक जनोंकों परीक्षापूर्वक सोही ग्रहण करना चाहिये कि, जो पदार्थ परीक्षामें पक्का हो जावे, किंतु पक्षपात आग्रहकों धारण न करना चाहिये क्यों कि, पक्षपात–झूठा आग्रह करणेसें क्या लाभ है ? कुछभी लाभ नहीं है ॥ १८ ॥

अथ जो विना विचारे तत्त्वपदार्थ ग्रहण करता है, सो पीछेसें पश्चात्ताप करता है, सोइ दिखाते हैं

मातृमोदकवद्बाला ये गृह्णन्त्य विचारितम् ॥
ते पश्चात्परितप्यन्ते सुवर्णग्राहको यथा ॥ १९ ॥

व्याख्या—यह मोदक मेरी माताका बनाया हुआ है, ऐसा जानके जे बालक तिसके अच्छेपणेका आग्रह करते हैं, और विना विचारे तिसकों ग्रहण करते हैं, वे पीछे परिताप (पश्चात्ताप) कों प्राप्त होते हैं. जैसें विना परीक्षाके करे सुवर्णका ग्रहण करनेवाला पुरुष, पीछे पश्चात्ताप करता है, यथा धिग् है मेरेकों जो मैने विना परीक्षाकेकरे सुवर्णके वदले पीतल ग्रहण किया. ऐसेही जे पुरुष अपने २ कुलकी रूढिसें माने अधर्मकों धर्म मानके कूद रहे हैं, और सत्य धर्मका निर्णय नहीं करते हैं, वे पक्षपाती पुरुष पीछे पश्चात्ताप करेंगे, लोहवणिक्वत्. ॥ १९ ॥

अथ तत्त्वज्ञानप्राप्तिका उपाय दिखाते हैं.

श्रोतव्ये च कृतौ कर्णौ वाग् बुद्धिश्च विचारणे॥
यःश्रुतं न विचारेत स कार्यं विन्दते कथम् ॥ २० ॥

व्याख्या—सुननेयोग्य वस्तुमें तो दोनो कान करेहैं, वचन और बुद्धि ये दोनों तत्त्वके विचारणेमें प्रवृत्तमान करेहैं, सो पुरुष तत्त्वज्ञानकों प्राप्त होता है, परंतु जो सुणके विचारता नहीं है, सो पुरुष कार्यकों अर्थात् तत्त्वकों कैसें जाणे ? ॥ २० ॥

नेत्रैर्निरीक्ष्य विषकण्टकसर्प्पकीटान्
सम्यग् यथा व्रजति तान् परिहृत्य सर्वान् ॥
कुज्ञानकुश्रुतिकुदृष्टिकुमार्गदोषान्
सम्यग् विचारयथ कोत्र परापवादः ॥ २१ ॥

व्याख्या—जैसें विषकंटक सर्प कीडे इन सर्वकों मार्गमें चलता हुआ, नेत्रोंसें देखकरके सम्यक् प्रकारे सर्व ओरसें परिवर्जन करता है, इसमें जो कहे कि, यह पुरुष रस्तेमें विषकंटक सर्प कीडे इनकों वर्जके चलता है, इसवास्ते यह पुरुष विषकंटकादिका निंदक है, क्या वो उसके कहनेसें पूर्वोक्त वस्तुयोंका अपमान करनेवाला सिद्ध होसक्ता है ? कदापि नहीं होसक्ता है. ऐसेही जो पुरुष कुज्ञान, कुश्रुति, कुदृष्टि, कुमार्ग—कुज्ञान-अज्ञान, पदार्थके स्वरूपकों विपर्यय कथन करना. जैसें आत्मा चारभूतोंसें

ही उत्पन्न होताहै, अथवा आत्मा एकांत नित्यही है, अथवा आत्मानाम क कोई पदार्थ है नहीं, एकांतक्षणिक विज्ञानाद्वैतरूपही तत्त्व है, एकान्त ब्रह्मा द्वैतरूपही तत्त्व है, अथवा आत्मा सर्वव्यापक है, अथवा अंगुष्ठपर्व मात्र, वा तंदुलमात्र, वा श्यामाकधान्यजितना आत्मा है, सृष्टि, प्रलय, ईश्वर करता है, जीवोंके कर्मोंका फलप्रदाता ईश्वर है, वा जीवोंका पूर्वोत्तर जन्म नहीं है, इत्यादि चैतन्य, और जडपदार्थोंके स्वरूपका विपरीतकथन जिस शास्त्रमें होवे, सो शास्त्र अज्ञानरूप है

तथा कुश्रुति,–जिस शास्त्रमें जीवहिंसा करणेमें धर्म कथन करा होवे, यथा 'वेदविहिता हिंसा धर्माय' इत्यादि, तथा जिस शास्त्रके श्रवण करणेसें श्रोताकों अधर्मबुद्धि उत्पन्न होवे, वात्स्यायनादिकामशास्त्रवत्, सो कुश्रुति

कुदृष्टि,–जिसकी बुद्धि, कुदेव, कुगुरु, कुधर्मकरके वासित होवे, सो कुदृष्टि, और कुमार्ग, एकांत नित्य, एकांत अनित्य, इत्यादि दुर्नयके मत सें जिस शास्त्रमें कथन करा होवे, संसारके मार्गकों मोक्षका मार्ग, और मोक्षमार्गकों संसारका मार्ग कहना, तथा सम्यग् देव गुरु धर्मका स्वरूप जिसमें कथन नहीं करा होवे, सो कुमार्ग, इत्यादिदूषणोंकों त्यागके शुद्धमार्ग कों कथन करे, अर्थात् सद्‌ज्ञान, सत्‌श्रुति, सदृष्टि, सन्मार्गका कथन करे, और पूर्वोक्त वस्तुयोंका निषेध करे तो, इसमें दूसरोंका क्या अपवाद है? अर्थात् क्या निंदा है? सो, परीक्षको! तुमही विचार करो ॥ २१ ॥

प्रत्यक्षतो न भगवानृषभो न विष्णु
राऽलोक्यते न च हरो न हिरण्यगर्भः ॥
तेषां स्वरूपगुणमागमसंप्रभावा
ज्ज्ञात्वा विचारयथ कोऽत्र परापवादः ॥ २२ ॥

व्याख्या–प्रत्यक्ष प्रमाणसें तो, न भगवान् ऋषभदेव दिखलाइ देता है और न प्रत्यक्षप्रमाणसें विष्णु दिखलाइ देता है, और न हर–महादेव दीखता है न ब्रह्माजी दीखता है, अब इन पूर्वोक्त देवोंका स्वरूप जाणयाविना कैसें जाना जावे कि, तिनमें कैसे कैसे गुण थे? इसवास्ते ये

सर्व आगमसें अर्थात् आगम—वेदस्मृतिपुराणादि जैसा तिनका जीवनचरित्र प्रतिपादन करते हैं, तिनकों सुणके वा वांचके पूर्वोक्त देवोंके चारित्रकों जाणकर तिन देवोंके स्वरूपगुणका निर्णय करिए तो, इसमें विचार करो कि, क्या किसी देवकी निंदा है ? ॥ २२ ॥

अब पूर्वोक्त देवोंका किंचित् स्वरूप ग्रंथकार दिखाते हैं.

विष्णुः समुद्धतगदायुधरौद्रपाणिः
शंभुर्ललन्नरशिरोस्थिकपालपाली ॥
अत्यन्तशान्तचरितातिशयस्तु वीरः
कम्पूजयामउपशान्तमशान्तरूपम् ॥ २३ ॥

व्याख्या—उगरी हुइ गदारूप करके रौद्रपाणी, अर्थात् भयानक जिसका हाथ है, ऐसे स्वरूपवाला तो विष्णु है; और गलेमें मनुष्यके कपालोंकी मालावाला स्वरूप, महादेवका अर्थात् ऐसे स्वरूपवाला महादेव है; और अत्यंत शांतरूप चरितातिशयवाला वीर महावीर अर्हन् है, यह स्वरूप पुराणादि शास्त्रोंमें और जैनमतके शास्त्रोंमें कथन करा है, तथा प्रत्यक्षमेंभी पूर्वोक्त देवोंका स्वरूप, तिनकी मूर्तियांद्वारा सिद्ध होता है. अब हम वाचकवर्गकों पूछते हैं कि, तुम कहो, अब हम किसकों पूजें? शांतरूपवालेकों कि अशांतरूपवालेकों ? ॥ २३ ॥

अब ग्रंथकार पूर्वोक्तदेवोंके कृत्योंका किंचित् स्वरूप दिखाते हैं.

दुर्योधनादिकुलनाशकरो बभूव विष्णुर्हरस्त्रिपुरनाशकरः किलासीत्॥
क्रौञ्चं गुहोपि दृढशक्तिहरं चकार वीरस्तु केवल जगद्धितसर्वकारी २४

व्याख्या—दुर्योधनादि अनेक राजायोंके कुलोंका नाश करनेवाला विष्णु, कृष्ण होता भया, यह कथन महाभारतादि ग्रंथोंमें प्रसिद्ध है; और हर महादेव, त्रिपुरनामक दैत्यका नाश करनेवाला निश्चयकरके होताभया, और कार्तिकेयभी, क्रौंचनामक राजाकी दृढशक्तिका हरन—नाश करने अर्थात् क्रौंचराजाकी दृढशक्तिका नाश करनेवाला हुआ है, परंतु श्रीमवीर तो, केवल सर्वजगत्के हितके करनेवाले हुए हैं. अब कहो! किसकी हम पूजा करीए? ॥ २४ ॥

पीड्यो ममैष तु ममैष तु रक्षणीयो
मथ्यो ममैष तु न चोत्तमनीतिरेषा॥
नि श्रेयसाभ्युदयसौख्यहितार्थबुद्धे-
र्वीरस्य सन्ति रिपवो न च वध्यनीया ॥ २५ ॥

व्याख्या—यह मेरेकों पीडनेयोग्य—दुःख देनेयोग्य है, और यह मेरेकों रक्षणेयोग्य है, और यह मेरेकों मथने योग्य है, और यह मथने योग्य नहीं है, इत्यादि यह पूर्वोक्त नीति—न्याय पूर्वोक्त काम करनेवाले देवोंका उत्तम कर्म नहीं है, 'रागद्वेषपूर्वकत्वात्'—और जिससें जीवोंको मुक्ति, और पुण्यानुबंधी पुण्यके उदयसें स्वर्गप्राप्तिरूप सुख, और इसलोक-परलोकमें हित होवे, ऐसी बुद्धिवाले अर्थात् ऐसे ज्ञानसत्योपदेशवाले, श्रीमहावीर भगवंतके रिपु वैरि तो जगत्में बहुत हैं, परंतु श्रीमहावीरजीकों वधनीय कोईभी नहीं है, अर्थात् वध्य करणे योग्य, पीडा देने योग्य, मथनेयोग्य, कोईभी नहीं है वीतरागत्वात् ॥ २५ ॥

रागादिदोषजनकानि वचांसि विष्णो
रुन्मत्तचेष्टितकराणि च यानि शंभो ॥
नि शेषरोपशमनानि मुनेस्तु सम्यग्-
वन्द्यत्वमर्हति तु को नु विचारयध्वम् ॥ २६ ॥

व्याख्या—पुराणादि शास्त्रोंमें विष्णुके वचनरागादिदोषोंके जनक उपलब्ध होतेहैं, और पूर्वोक्त शास्त्रोंमेंही शंभु—महादेवके वचन उन्मत्तपणेकी चेष्टाके उपलब्ध होतेहैं, और जैनागममें मुनि श्रीमहावीर अर्हन्के वचन संपूर्ण रोष, उपलक्षणसें रागकामादिके शमन करनेवाले उपलब्ध होतेहैं, अब हे वाचकवर्गो! तुमपक्षपातकों छोडके अच्छीतरे विचार करो कि, इन पूर्वोक्त देवोंमें वंदना करनेयोग्य कौन देव है? ॥ २६ ॥

यश्चोद्यतः परवधाय घृणां विहाय
त्राणाय यश्च जगतःशरणं प्रवृत्तः ॥

रागी च यो भवति यश्च विमुक्तरागः
पूज्यस्तयोः क इह ब्रूत चिरं विचिन्त्य ॥ २७ ॥

व्याख्या—जो एक तो दयाकों छोडके परके बध करणेकेवास्ते उद्यत हो रहाहै, और जो एक जगत्के त्राणकेतांइ अर्थात् जगद्वासि जीवोंकी रक्षाकेवास्ते शरणकों प्रवृत्त हुआ है, अर्थात् शरण्यभूत हैं; और जो एक रागी है, और जो वीतराग है, इन दोनोंमेंसे पूज्य—पूजनेयोग्य कौनसा देव है? सो, हे पाठकजनो! तुम चिरकालतक चिंतन करके कहो ॥२७॥

शक्रं वज्रधरं बलं हलधरं विष्णुं च चक्रायुधं
स्कन्दं शक्तिधरं श्मशाननिलयं रुद्रं त्रिशूलायुधम् ॥
एतान् दोषभयार्दितान् गतघृणान् बालान् विचित्रायुधान्
नानाप्राणिषु चोद्यतप्रहरणान् कस्तान्नमस्येद्बुधः ॥ २८ ॥

व्याख्या—वज्र धारण करनेवाले इंद्रको, हलमुशलके धारनेवाले बलदेवको, और चक्र धरनेवाले विष्णुको, शक्तिके धरनेवाले कार्तिकेयको, श्मशानमें रहनेवाले और त्रिशूलके धरनेवाले रुद्र-महादेवको, इन पूर्वोक्त दोषभयकरके पीडित, दयारहित, अज्ञानी, विचित्र प्रकारके शस्त्र रखनेवाले, और नानाप्रकार प्राणियोंकेउपर शस्त्रके उगरने वा चलानेवाले देवोंको, कौन बुध प्रेक्षावान् नमस्कार करे? अपितु कोइभी न करे ॥ २८ ॥

न यः शूलं धत्ते न च युवतिमङ्के समदनां
न शक्तिं चक्रं वा न हलमुशलाद्यायुधधरः ॥
विनिर्मुक्तं क्लेशैः परहितविधावुद्यतधियं
शरण्यं भूतानां तमृषिमुपयातोऽस्मि शरणम् ॥ २९ ॥

व्याख्या—जो देव, त्रिशूल धारण नहीं करता है, और कामयुक्त स्त्रीको अपने खोलेमें नहीं धारण करता है, तथा जो शक्तिको, और चक्रको धारण नहीं करता है, तथा जो हलमुशलादि शस्त्रोंका धारनेवाला नहीं है, तिस रागद्वेष अज्ञानकामादि सर्वक्लेशोंसे रहित, परजीवोंके हित

करनेमें सावधान बुद्धिवाले, और जगद्वासि जीवोंके शरणभूत, ऋषि, सचे देवके शरणको मैं प्राप्त हुआहू ॥ २९ ॥

रुद्रो रागवशात् स्त्रिय वहति यो हिंस्रो ह्रिया वर्जितो
विष्णु क्रूरतर कृतघ्नचरित स्कन्द स्वय ज्ञातिहा ॥
क्रूरार्या महिषातकृन्नरवसामासास्थिकामातुरा
पानेच्छुश्च विनायको जिनवरे स्वल्पोपि दोषोऽस्ति क ॥३०॥

व्याख्या—रुद्र—महादेव रागके वशसें स्त्रीको वह रहा है, और जीव हिंसा करनेवाला है, और लज्जाकरके वर्जित है, विष्णु अतिशयकरके क्रूर और कृतघ्नचरितवाला है, स्कद आपही अपनी ज्ञातिका हननेवाला है, निर्दय काली भवानी भैंसोंके अत करनेवाली मनुष्योंकी चर्बी मास हाडोंकी इच्छावाली कामातुर है, और विनायक पीनेकी इच्छावाला है, परतु जिनवरमें पूर्वोक्त दूषणोंमेंसे स्वल्पमात्रभी कोइ दूषण है? अपितु कोइभी नहीं३०॥

ब्रह्मा लूनशिरा हरिर्दृशि सरुक् व्यालुप्तशिश्नो हर
सूर्योप्युल्लिखितोनलोप्यखिलभुक् सोम कलङ्काङ्कित ॥
स्वर्नाथोपि विसंस्थुल खलु वपु सस्थैरुपस्थै कृत
सन्मार्गस्खलनाद्भवन्ति विपद प्राय प्रभूणामपि ॥ ३१ ॥

व्याख्या—ब्रह्माजीका शिर कटागया, विष्णुके नेत्रमें रोग हुआ, महादेवका लिंग टूट गया, सूर्यका शरीर त्राछ गया, अग्नि सर्वभक्षी हुआ, चद्रमा कलकवाला हुआ, और इंद्रभी सहस्रभगकरके बुरे शरीरवाला हुआ, क्योंकि, सन्मार्ग (अच्छेमार्ग) सें स्खलायमान (भ्रष्ट) होनेसें, प्राय समर्थ पुरुषोंकोभी दु ख होतेहैं इसका भावार्थ कथानकोंसें जानना तथाहि—

ब्रह्माजीका शिर क्यों कटा? सो लिखते हैं एकदा प्रस्तावे तेतीस कोटी देवता एकत्र मिले, तहां सर्व परस्पर मातापितायोंका वर्णन करते हुए, तहां तिन्होंनें कहा कि, वडा आश्चर्य है जो महेश्वरके माता पिता जाननेमें नहीं आते हैं, इसवास्ते महेश्वरके मातापिता नहीं हुए हैं, ऐसा

देवतायोंका वचन सुणके, ब्रह्माने पांचमे गर्दभके मुखसरीसे मुख करी ईर्षासें कहा कि, मेरे सर्व पदार्थके जाननेवालेके जीवतेहुए ऐसें क्यों कहते हो? क्योंकि, महेश्वरके मातापिताका स्वरूप मैं जानता हूं. तदपीछे ब्रह्माजीने कहनेका प्रारंभ करा, तब महेशने अप्रकाशने योग्य प्रकाश करनेसें ब्रह्माउपर क्रोधकरके कनिष्ठिका अंगुलीके नखकरके सर्वदेवतायोंके प्रत्यक्ष शीघ्र ब्रह्माजीका शिर छेदन करा.

कोइक ऐसें कहते हैं कि ब्रह्मा और वासुदेव इन दोनोंका अपने अपने बडपणविषे विवाद हुआ, ब्रह्मा कहै मैं बडा हूं, और वासुदेव कहै मैं, दोनों जने विवाद करते हुए महेश्वरके पास गए, महेशने कहा तुम जिद मत करो, परंतु तुमारे दोनोंमेंसे जो मेरे लिंगके अंतको पावेगा, सोइ बडा, अन्य नहीं; तिस पीछे विष्णु तो लिंगका अंत देखने वास्ते बडे वेगसें अधोलोकको गया; परंतु लिंगका अंत न पाया, क्यों कि पातालके वडवानलके सबबसें आगे न जा सका, तबसें ही कृष्ण, काले शरीरवाला होके पाछा आया, और महादेवको कहने लगा कि, तुमारे लिंगका अंत नहीं है.

और ब्रह्माभी, तैसेंही ऊपरको जाता हुआ, परंतु लिंगके अंतको प्राप्त नहीं हुआ, तब खेदको प्राप्त हुआ, तिस अवसरमें महेशके लिंगके मस्तकके ऊपरसें पडती हुई माला प्राप्त हुई, तब ब्रह्मा मालाको पूछता हुआ कि, तूं कहांसें आई है? मालाने जवाब दिया कि, लिंगके मस्तकोपरसें आई हूं; ब्रह्मा बोला, आतीहुई तेरेको कितना काल लगा? मालाने कहा, छ मास, तब ब्रह्माने कहा, ऐसे वेगसें चलनेवाली तुझको छ मास लगे है तो, लिंगका अंत बहुत दूर है, इसवास्ते मैं थाकके पाछा जाताहूं, परंतु अंतकी पृच्छामें तैनें साक्षी देनी; मालाने ब्रह्माका कहना मान्य करा, तब तिसको साथ लेके ब्रह्मा शंभुके पास जाताहुआ, और कहता हुआकि मैंने लिंगका अंत पाया, और साक्षीकेवास्ते इस मालाको साथ ल्यायाहूं. तब शंभुने मालाको पूछा, मालाने कहा जैसें ब्रह्मा कहता है, तैसेंही है, तब अनंतलिंगको सांत करनेवाले ब्रह्मा, और जूठी साक्षी देनेवाली माला, दोनोंके उपर ईश्वर कोपायमान हुआ, कनिष्ठिकाके नखसें ब्रह्माका गर्दभाकार शिर छेदन करा, और मालाको अस्पृश्यपणेका शाप दीया.

और मत्स्यपुराणके १८२ अध्यायमें ऐसें लिखा है

[पार्वतीजी महादेवजीसें पूछती है] जिस हेतुसें आप इस स्थानकों नहीं छोडते उस उत्तम हेतुकोभी वर्ण कीजिये यह सुनकर महादेवजीने कहा कि, हे देवि ! पूर्वकालमें ब्रह्माजीके पाच शिर होतेभये, उनमें पांचवाँ शिर सुवर्णकेसमान कातिवाला था, फिर एकसमय वह ब्रह्माजी मुझसें कहने लगे कि, मैं तुम्हारे जन्मको जानता हू, तब मैने क्रोधकरके अपने वायें अंगूठेके नखसें ब्रह्माका वह पांचवाँ शिर छेदन करदिया, तब ब्रह्मा जीने कहा कि, तुमने विनाही अपराधके मेरा शिर काटडाला है, इस लिये मेरे शापसे तुम कपाली होगे, अर्थात् तुम्हारे हाथमें कपाली चिपक जायगी, तब तुम ब्रह्महत्यासें व्याकुल होकर तीर्थोपर विचरोगे, उनके शापको सुनकर मैं हिमवान् पर्वतपर चला गया, वहाँ नारायणके पाससे मैंने भिक्षा मागी; तब नारायणने अपने नखके अग्रभागसे वह मेरे हाथकी कपाली उतारली, उसके उतारतेही उसमेंसे बहुतसी रुधिरकी धारा निकली, और ५० योजनके विस्तारमें वह रुधिरकी धारा फैल गई, और कपालीभी फैलकर बडे अद्भुत भयकररूपसें घोर दीखती भई, इसके पीछे वह रुधिरकी धारा दिव्य हजार वर्षोतक वहती भई, तब विष्णु भगवान् मुझसे कहने लगे कि, यह ऐसा कपाल तुम्हारे हाथमें कैसे लगगया था ? इस मेरे हृदयके सदेहको आप मेरे आगे कहिये, तब मैंने कहा कि, हे देव ! आप इस कपालकी उत्पत्तिको श्रवण कीजिये पूर्व कालमें हजारों वर्षोतक ब्रह्माजीने दारुण तपस्याकरके अपने दिव्यशरीरको रचा, उनके तपके प्रभावसे सुवर्णके समान कांतिवाला पांचवाँ शिर होताभया, उन ब्रह्माजीके पांचवें शिरकों मैंने क्रोधकरके काटडाला, उसी शिरकी यह कपाली है—इत्यादि

हरि—कृष्ण, नेत्रविषे रोगी ऐसे हुए—दुर्वासा महाऋषिको उर्वशीके साथ भोग करनेकी इच्छा हुई, तब उर्वशीने दुर्वासाऋषिको कहा कि, जेकर तूं अपूर्व यान (असवारी) में बैठके स्वर्गमें आवेगा तो, मैं तुझकों अगीकार करुगी, यह सुनकर दुर्वासा ऋषि कृष्ण वासुदेवके पास गया, तिन्होंने ऋषिकी स्वागत करी, और आगमनका कारण पूछा तब ऋषिने

कहा कि, मैं स्वर्गमें जानेको ईच्छता हूं, इसवास्ते तूं भार्यासहित गोरूप होके रथमें जुडके मुझे स्वर्गमें पहुंचता कर, परंतु तुमने रस्ते चलते हुए पीछेको नहीं देखना. तव कृष्णजीने भक्ति और भयसें तिसका वचन अंगीकार करा, और ऋषिको स्वर्गमें लेजानेको प्रवृत्त हुआ. रस्तेमें स्त्रीहोनेसें तथा विध चलनेकी शक्तिके न होनेसें, लक्ष्मीको मुनि प्राजनक दंडकरके वारंवार प्रेरता हुआ, तिस प्रेरणाको हरि स्नेहकरके असहन करता हुआ, लक्ष्मीके सन्मुख देखता हुआ, तव दुर्वासा ऋषिने अंगीकृतके न निर्वाह करनेसें कृष्णके उपर कोप करके तिसके नेत्रोंको प्राजनकसें प्रेरणा करी, ऐसे हरिके लोचनोंमें रोग उत्पन्न भया.

अन्य ऐसे कहते हैं कि--एकदा प्रस्तावे कृष्णजी तलावके कांठेऊपर तप तपतेथे, तहां कोइ तापसनी स्नान करतीथी, कृष्णने तिसका नग्नपणा सकास दृष्टिसें देखा, तापसनीने तैसा जानकर शाप देके, लोचन सरोग करा.

महादेवका लिंग ऐसे टूटा--दारुवन नामक तपोवनमें तापस वसतेथे, तिनकी कुटियोंमें महादेव भीख मांगनेकेवास्ते अपना समस्त अलंकार और घंटोंकी टंकारसे दिगंतराल मुख करता हुआ जाताथा, तापसनीको देखके महादेवको विकार उत्पन्न हुआ, तव महेश्वरने तिसकेसाथ भोग करा. यह वृतांत ऋषियोंने जाना, तव ऋषियोंने अतिकोपसे शाप दिया, तब शिवका लिंग टूटगया, तदपीछे सर्वजनोंके लिंग टूट गए, और जगतोत्पत्ति बंध होगई. तव देवतायोंने विचार करा कि, यह तो अकालमेंही संहार होनेलगा, ऐसे चिंतके तिनोंने तापसोंको प्रसन्न करा, तव तिनोंने तैसाही लिंग करदीया, परंतु यह कहदिया कि, यह लिंग, आगे तो सदाही स्तब्ध रहता था, परंतु आजपीछे जव कामार्थी होवेगा, तवही स्तब्ध, होवेगा, तदपीछे सर्वलोकोंकेभी लिंग वैसेही होगए.

सूर्यका शरीर ऐसे त्राछा गया--पाहिलां सूर्यकी रन्नादेवी नामा भार्या थी, तिसका यम नामा पुत्र होता भया, रन्नादेवी सूर्यका ताप नहीं सहन करती हुई, अपने स्थानमें अपनी प्रतिच्छायाकों स्थापनकरके समुद्रके तटपर जाकर वडवा (घोडी) का रूपकरके रहती हुई; प्रतिच्छाया, शनैश्चर भद्रानामके अपत्योंको जनती हुई. एकदा प्रस्तावे वाहि-

रसें आएहुए यमनें भोजन मागा, छायाने भोजन नहीं दिया, तदा यमने लातका प्रहार करा, तब छायाने शाप देके यमका पग रोगवाला करदिया, यमने अपने पिता सूर्यको कहा, सोभी सुणके चिंतवन करता हुआ कि, स्वमाता ऐसे कैसें करे ? इसवास्ते यह असली यमकी माता नहीं है ऐसे चिंतवन करतेहुए सूर्यने वडवाके रूपमें यमकी माताको देखी, तब सूर्य तिसकी इच्छाविनाहि जोरावरीसें तिसकेसाथ भोग करता हुआ, तिससे आश्विनदेवने होतेभए तिस रत्नाने रोपारुणनयन होके सूर्यको देखा, तब सूर्य कुष्टी होगया, तब सूर्य अपने रोगके दूर करणेवास्ते धन्वतरिकेपास गया, तब धन्वतरिने कहा कि, तेरा शरीर विनाछीले अच्छा नहीं होवेगा, तब सूर्यने अपने शरीरको छीलावनेवास्ते देववढइको प्रार्थना करी, तब तिसने कहा कि, पीडा सहनेवाला होवे तो त्राछुं अन्यथा नहीं, सूर्यने कहा जैसे तुम कहोगे तैसे हि होवेगा, तब मस्त कसे लेके जानुताइ त्राच्छनेमें बहुत पीडा हुई, तब सूर्यने सीत्कार करा, तब वढाइने त्राछना छोड दिया

अन्य ऐसे कहतेहैं—वडवारूप स्वभार्याको भोगके सूर्य तिसके पिताको उपलभ देता हुआ कि, तेरी पुत्री मुझको छोडके अन्य जगे रहती है, सो कहता हुआ कि, तेरा ताप न सहन करनेसे वो क्या करे? इसवास्ते जेकर तिस मेरी पुत्रीके साथ तेरा प्रयोजन है तो, अपना शरीर छीलवा ले, *तिससें तेज मंद होजावेगा, तब सूर्यने देववढइसे शरीर छीलवाया*

और मत्स्यपुराणके ११ एकादश अध्यायमें ऐसे लिखा है—ऋषियोंने पूछा हे सूतजी ! आप यथार्थक्रमसे सूर्यवंश और चद्रवंशको वर्णन कीजिये सूतजी बोले प्रथम अदितिस्त्रीमें कश्यपजीसे सूर्य उत्पन्न हुए, उनकी संज्ञा, राज्ञी और प्रभा, यह तीनों नामवाली तीन स्त्रिया होतीं भई इनमें बहु रैवतीकी पुत्री राज्ञीनाम सूर्यकी स्त्रीने रेवतनाम पुत्रको उत्पन्न किया, प्रभास्त्रीने प्रभासनाम पुत्रको उत्पन्न किया, और संज्ञानाम स्त्रीने मनुनाम पुत्रको उत्पन्न किया, और इसी स्त्रीने यम और यमुना, इन दोनों पुत्रपुत्रियोंकोभी उत्पन्न किया फिर वह संज्ञास्त्री जब सूर्यके तेजको न सहती भई, तब उसने अपने शरीरसे छाया नाम बडी उत्तम स्त्रीको उत्पन्न किया

वह छायानाम स्त्री संज्ञाके आगे खडी होकर बोली कि मैं क्या करूं? तब संज्ञाने कहा कि, हे वरानने ! तूं इस मेरे पति सूर्यको ही भज, और मेरी संतानको माताके समान अपना स्नेहकरके पालन कर; फिर तथास्तु अर्थात् ऐसाही करूंगी इस प्रकारसे अंगीकार करके वह छाया सूर्यको प्राप्त हुई. तब सूर्यभी उसको संज्ञाकेही समान जानकर बडे आदर भावसे उसकेसंग भोग करनेलगे, उसमें दूसरा मनु नाम पुत्र उत्पन्न हुआ, यह मनु पूर्वके मनुका सवर्णी होकर सावर्णि नाम मनु विख्यात हुआ, फिर उसी छायामें सूर्यसे शनैश्चर, तपती और विष्टि, यह संतान उत्पन्न हुई. इसके अनंतर वह छाया अपने पुत्र सावर्णिनाम मनुमें अधिक स्नेह करनेलगी, इस वातको प्रथम मनुने तो सहलिया, परंतु यम न सहसके, और महाक्रोधित होकर यमने उस छायाके पुत्र मनुको दाहिन पैरसे ताडन किया, तब छायाने यमको यह शाप दिया कि, यह तेरा पैर पीवयुक्त कीटोंसे भरे घाववाला होकर राधसे झिरे.

फिर यम इसशापको न सहकर, अपने पिताके पास जाकर यह बोले कि, हे देव! माताने मुझे निरपराध शापित करदिया है, मैंने बालकपणेसे जरा पैरको उठादिया था, उस समय मनुने उसको निषेधभी किया था, परंतु उसने शाप देही दिया. हे विभो! जो कि उसने हमको शापसे हत कर दिया है, इसहेतुसे वह विशेषकरके हमारी माता नहीं है, तब सूर्यने कहाकि, हे महामते ! मैं क्या करूं ? मूर्खतासे अथवा कर्मके प्रभावसे कहो, किसको दुःख नहीं होता है ? शिवजीसेभी कर्मकी रेखा दूर नहीं होती है तो, अन्यजनोंकी क्या वात है ? हे पुत्र! मैं तुझे मुरगा दूंगा, वह तेरे कृमियोंको भक्षण करके राधरुधिरकोभी खा कर दूर करदेगा. पिताके इसवचनको सुनकर यम दारुण तपस्या करनेलगे, अर्थात् गोकर्ण तीर्थपर जाके सर्व वस्तुओंको त्याग, फल, मूल, पत्र और वायु, इनका आहार करनेलगे, वहां दश किरोड वर्षोंतक यमने महादेवजीका तप किया, तब शूलधारी शिवजी उसपर प्रसन्न होकर बोले कि, वर मांग. तब यमने संसारके कियेहुए पापपुण्योंको जान लेनाही वर मांगा, इस-

प्रकार करके वह यम, शिवजीके प्रभावसे लोकपाल होजाताभया, फिर अधर्मोंकाभी जाननेवाला होकर, सब पितरोंका पति होता भया

इसकेपीछे सूर्यदेवता, प्रथम कियेहुए सज्ञाके कर्मको जानकर, उसके पिता, त्वष्टाके पास गये, और क्रोध होकर उससे बोले कि, तुम्हारी पुत्रीने मेरी विनाआज्ञा ऐसा कर्म किया यह सुनकर हे ऋषियो ! उस त्वष्टाने सूर्यको समझाकर कहा कि, हे भगवन्! यह मेरी पुत्री आपके तेजको न सहकर घोडीका रूप धारण करके मेरे समीप आईथी, सो हे सूर्यदेव ! मैंने उससे यह कहकर उसको लौटादिया कि, सूर्यकी आज्ञा लिये विना जो तू मेरे घर आई है, इसहेतुसे तू मेरे घरमें प्रवेश करनेको योग्य नहीं है इस मेरे वचनको सुनकर वह मरुस्थल देशमें जाकर घोडीके रूपको धारण करके पृथ्वीमें विचरती है, इस हेतुसे आप प्रसन्न होकर मेरेऊपर दया करो हे दिवाकरजी ! मैं आपके तेजको यत्रमें करके पृथक् करदूगा, और आपके रूपको मनुष्योंका आनद करनेवालाभी कर दूगा तब सूर्यने कहा, ऐसाही करो तब उस त्वष्टाने सूर्यके तेजको यंत्रमें करके सूर्यसे पृथक् कर दिया, फिर उसी पृथक् किये हुए सूर्यके तेजसें, विष्णुका चक्र, शिवजीका त्रिशूल, इन्द्रका वज्र और अन्य २ देवताओंके अनेक शस्त्रोंको बनाया

इसके अनतर दैत्यदानवोंके नाश कर्त्ता संपूर्ण मूर्तिसे रहित सूर्यके सहस्र किरणवाले विना पैरके सुदरमुखमात्रही रूपको त्वष्टाने ऐसा बनाया कि, फिर उससूर्यके पैरोंके रूप देखनेकोभी त्वष्टा समर्थ नहीं हुआ, तभीसे सूर्यकी प्रतिमामें कोई उनके पैरोंकी मूर्ति नही बनवाता है और कोई हठसे वा मूर्खतासे उनके पैरोंकी मूर्ति बनावता है वह पापियोंकी महानिंदित गतिको प्राप्त होकर इस ससारके कठिण दु खोंको भोगता हुआ कुष्ठरोगको प्राप्त होताहै, इसहेतुसे धर्मकामादिकी इच्छाका करनेवाला मनुष्य किसी मदिर वा स्थानमें किसी स्थानपरभी सूर्यकी मूर्तिमें पैर न बनवावे

इसके उपरात सूर्य देवता, उसी सुखकेही रूपसे कामदेवसे पीडित होकर पृथ्वीलोकमें जाकर उस सज्ञाकी इच्छा करतेभये, और बडे तेज

वाले घोडेका रूप बनाकर उस घोडीरूप संज्ञाके पास पहुंचे; तब संज्ञा मनसे क्षोभको प्राप्त होकर भयसे विव्हल होती भई, और उस सूर्यसेही धारण किये हुए वीर्यको परपुरुषकी शंका करके अपनी नासिकाके दोनों छिद्रोंके द्वारा बाहर त्यागती भई, उसी वीर्यसे अश्विनीकुमार उत्पन्न होते भये. अश्वसे उत्पन्न होनेसे उनको दस्रौ कहते हैं, और नासिकाके द्वारा होनेसे नासत्यौ ऐसाभी कहते हैं.

अग्नि सर्वभक्षी ऐसे हुआ—पहिले कोइक ऋषि अपनी कुटीमें वैश्वानरको बडी भक्तिसे आहुतियोंकरी पूजता था, सो एकदा अग्निको कहनेलगा कि, तूं मेरी भार्याकी रखवाली करी, ऐसे कहकर ऋषि बाहिर गया. तब पीछे कामांध होके किसी ऋषिने अग्निके प्रत्यक्षही ऋषिपत्नीके साथ भोग करा, क्षणांतरमें सो ऋषि आया, तिसने इंगिताकारकरके अपनी भार्याको परपुरुषने भोगी जानके अग्निको पूछा कि, यहां कौन आयाथा? तब दोनोंमेंसें किसीनेभी उत्तर न दिया, परंतु तिस ऋषिने अपने ज्ञानकरके तिस उपपतिको जान लिया, तब रक्षणेयोग्यकी रक्षा न करनेसें और पूछेका उत्तर न देनेसें ऋषिने अग्निके उपर क्रोध करा, और शाप दिया कि, तूं सर्वभक्षण करनेवाला होवेगा. तब अग्नि अशुचि आदि सर्व भक्षण करने लगा, और जो कुछ गंदकी आदि अग्नि भक्षण करे सो सर्व देवताओंको प्राप्त होने लगा. "अग्निमुखा वै देवा" इतिश्रुतिवचनप्रामाण्यात्, तब अशुचि रस खानेसें उद्विग्न हुए देवते, अपने ज्ञानसें शापका व्यतिकर जानकर तिस ऋषिकों प्रसन्न करनेलगे, परंतु ऋषिने माना नहीं. अंतमें देवताओंके अतिआग्रहसें अग्निको सप्तजिव्हावाला कर दिया, तबसें अग्निका नाम सप्तार्चि प्रसिद्ध हुआ. तिनमें दो जिव्हासें आहुतिं भोगने लगा, वह देवताओंको पहुंचने लगी, और शेष पांच जिव्हासें सर्व भक्षी स्थापन किया.

चंद्रमाकों ऐसे कलंक लगा—चंद्रमा बृहस्पतिके पास पढताथा, तिसने बृहस्पतिकी भार्याकेसाथ भोग करा, सो वृत्तांत बृहस्पतिने जाना, तब तिसने चंद्रमाको शाप दिया कि, हे गुरुपत्नीउपभुंजक! तूं सदा कलंकवान् हो.

इंद्रभी सहस्र भगकरके बुरे शरीरवाला हुआ, सो ऐसे—पूर्वकालमें गौतममुनिकी अहल्यानाम भार्या थी, तिसके रूपऊपर मोहित होके तिसकी कुटीमें जाके इंद्र तिसकेसाथ भोग करताभया, इतनेमें गौतमजी कुटीके बाहिर आगए, इंद्र तिसके भयसें मार्जारका रूपकरके स्वर्गमें जाता हुआ गौतमऋषिने विचारा कि, यह कोइ सामान्य बिडाल नहीं है, इत्यादि विचारकरके जाना कि, यह तो इंद्र है तब शाप देके इंद्रको सहस्र भग वाला कर दिया, और अपने छात्रोंको तिसकेसाथ भोग करनेवास्ते भेजता हुआ, पीछे देवताओंने ऋषिको प्रसन्न करा, तब गौतमने इंद्रको सहस्रभगकी जगे सहस्रनेत्रवाला करदिया—इति ॥ ३१ ॥

बन्धुर्न न स भगवानरयोऽपि चान्ये
साक्षान्न दृष्टतर एकतमोऽपि चैषाम् ॥
श्रुत्वा वच सुचरित च पृथग्विशेषं
वीर गुणातिशयलोलतया श्रिता स्म ॥ ३२ ॥

व्याख्या—सो भगवान् श्रीवीर, हमारा भाइ नहीं है, और अन्य ब्रह्मा, विष्णु, महादेवादि देवते हमारे शत्रु नहीं हैं, और न इन पूर्वोक्त सर्व देवोंमेंसें किसी एककोंभी प्रत्यक्षसें अतिशयकरके हमने देखा है, परंतु पृथग् विशेषवाले वचनको और चरितको अर्थात् जैनागमानुसार श्रीमहावीरके वचन, और तिनका चरित सुणके, और अनतर काव्यमें लिखेहुए पुराणानुसार अन्यदेवोंके वचन, और चरित सुणके, पृथक् २ तिन चारितोंका विशेष विचार करके, गुणातिशयकी चचलता करके, हम श्रीमहावीरकोंही आश्रित हुए हैं ॥ ३२ ॥

नास्माक सुगत पिता न रिपवस्तीर्थ्या धन नैव तै-
र्दत्त नैव तथा जिनेन न हृत किंचित्कणादादिभि ॥
किं त्वेकातजगद्धित स भगवान् वीरो यतश्चामलम्
वाक्यं सर्वमलोपहर्तृ च यतस्तद्भक्तिमंतो वयम् ॥ ३३ ॥

व्याख्या—कोइ सुगत वुध* हमारा पिता नहीं है, और न अन्य देवते हमारे शत्रु हैं, और न तिन देवताओंने हमको धन दिया है, तैसेही जिन अरिहंत महावीरनेभी कोइ हमको धन नहीं दिया है, और न कणाद, गौतम, पतंजलि, जैमिनि, कपिलादिकोंने हमारा किंचित् मात्रभी धन हरा है; किंतु श्रीमहावीर भगवान् एकांत जगत्के हितका करनेवाला है. क्योंकि, तिनके वचन अमल, बत्तीस दूषणोंसें रहित, और अष्टगुणोंकरी संयुक्त हैं. और श्रद्धापूर्वक सुणनेवाले, और धारनेवाले श्रोताजनोंके सर्व पापमलके हरनेवाले हैं; इसवास्ते तिस श्रीमहावीरकी भक्तिवाले हम हुए हैं.

अब पूर्वोक्त दूषण और गुण शिष्यजनोंके अनुग्रहकेवास्ते लिखते हैं.

अलियमुवघायजणयं निरच्छयमवच्छयं छलं दुहिलं
निस्सारमाधियमूणं पुणरुत्तं वाहयमजुत्तं च ॥ १ ॥
कमभिन्नं वयणाभिन्नं विभत्तिभिन्नं च लिंगभिन्नं च
अणभिहियमपयमेव य सभावहीणं ववहियं च ॥ २ ॥
काल जति च्छविदोसो समयाविरुद्धं च वयणमित्तं च
अच्छावत्ती दोसो य होइ असमास दोसो य ॥ ३ ॥
उवमारूवगदोसो निद्देसपदच्छसंधिदोसो य
एए उसुत्तदोसा बत्तीसं होंति नायव्वा ॥४॥ इत्यावश्यकबृहद्वृत्तौ.

[भावार्थः] अनृतम्—अणहोया, कहना, जैसें सर्वजगत्का कारण प्रधान प्रकृति है, और सद्भूतका निन्हव (निषेध) करना, जैसें आत्मा नहीं है इत्यादि—१।

उपघातजनकम्—जिसमें जीवहिंसाका प्रतिपादन होवे, यथा, वेदविहिता हिंसा धर्मायेत्यादि—२।

निरर्थकम्—वर्णक्रमनिर्देशवत्, यथा "आरादेस्" यहां आर्, आत्, एस्, यह आदेशमात्रकाही कथन है, न कि अभिधेयकरके किसी अर्थकी प्रतीति होवेहै, इसवास्ते निरर्थक; डिच्छादिवत्—३।

* वुधनाम अर्हन्काही है—वुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधादितिवचनात् ॥

अपार्थकम्—पूर्वापरसंबंधकरके रहित, जैसें दशदाडिम, छपूडे, कुंडा, अजाचर्म, पललपिंड, कीटिके ! चल, इत्यादि–४।

छलम्—अर्थ विकल्प उपपत्तिकरके वचनका विघात करना, यथा “नव कंबलो देवदत्त” इत्यादि–५।

द्रुहिलम्—द्रोहस्वभाववाला–यथा–“यस्य बुद्धिर्न लिप्येत हत्वा सर्व मिद जगत्। आकाशमिव पंकेन नासौ पापेन युज्यते”॥ जैसे पंककरके आकाश नहीं लिपता है, तैसे जिसकी बुद्धि इस सारे जगत्को मारके लिपती नहीं है, सो पापके साथ जुडता नहीं है, अर्थात् उसको कर्मका बंध पाप नहीं लगता है, इत्यादि–अथवा द्रुहिल–कलुष, जिस वचनकरके पुण्य पाप एकसदृश होजावे, यथा “एतावानेव लोकोय यावानिन्द्रिय गोचर”–जितना इन्द्रियोंद्वारा दीखता है इतनाहीमात्र यह लोक है, पर देवलोक नरकादि कुछ नहीं है इत्यादि–६।

निःसारम्—परिफल्गु, निष्फल, वेदवचनवत्–७।

अधिकम्—वर्णादिकोंकरके अधिक जो वचन होवे, सो अधिक–८।

ऊनम्—वर्णादिकोंकरके हीन–९।

अथवा हेतु उदाहरणोंकरके जो अधिक वा हीन होवे, सो अधिक ऊन, वचन जाणना जैसें शब्द अनित्य है, कृतकत्व और प्रयत्नानतरीयकत्व होनेसें, घटपटवत् यहां एकहेतु और एकदृष्टात अधिक है तथा शब्द अनित्य है, घटवत् इस वचनमें हेतुके न होनेसें, और शब्द अनित्य है, कृतकत्व होनेसें, इसमें दृष्टांतके न होनेसें ऊन है इत्यादि–८।९।

पुनरुक्तम्—अनुवादकों वर्जके शब्द, और अर्थका जो पुनः कहना, सो पुनरुक्त पुनरुक्त तीन प्रकारका होता है, तथा हि–शब्दपुनरुक्त, यथा इन्द्रइन्द्रइति १, अर्थपुनरुक्त, यथा इन्द्र शक्रइति २ अर्थसें आपन्न (प्राप्त) सिद्धकों, जो स्वशब्द करके कहना, सो अर्थापन्न पुनरुक्त, यथा इंद्रियांकरकेप्रफुल्लित बलवान् मोटा देवदत्त दिनमें नहीं खाता है, यहां अर्थापन्नसे सिद्ध है कि, रात्रिमें खाता है, अन्यथा पीनत्वायसंभवात् तहां जो कहेकि, दिनमें नहीं खाता है, रात्रिमें खाता है, यह पुनरुक्त जानना ३–१०।

व्याहतम्—जहां पूर्वके कथन करके परका कथन बाध्या जावे, सो व्याहत. यथा "कर्म चास्ति फलं चास्ति कर्त्ता नास्ति च कर्म्मणामित्यादि" –कर्मभी है और कर्मोंका फलभी है, परं कर्मोंका कर्ता नहीं है. इत्यादि–११।

अयुक्तम्—जो प्रमाणसें सिद्ध न होवे, यथा "तेषां कटतटभ्रष्टैर्गजानां मदबिन्दुभिः॥ प्रावर्त्तत नदी घोरा हस्त्यश्वरथवाहिनीत्यादि"–तिन हस्तियोंके गंडस्थलसे भ्रष्ट–हुए झरे हुए मदाबिन्दुओंकरके हस्ति अश्व रथांको वहा देनेवाली घोर नदी, प्रवर्त्तती भई–चलती भई. इत्यादि–१२।

क्रमभिन्नम्—जहां क्रमकरके कथन न होवे, जैसें स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षुः, और श्रोत्रांके, अर्थ (विषय) स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, और शब्द, ऐसे कथनमें स्पर्श, रूप, शब्द, गंध और रस, ऐसे कहना, सो क्रमभिन्न.–१३।

वचनभिन्नम्—वचनका व्यत्यय होना, यथा वृक्षावेतौ पुष्पिता इत्यादि–१४।

विभक्तिभिन्नम्—विभक्तिका व्यत्यय होना, अर्थात् प्रथमादिविभक्तिके स्थानमें द्वितीयादिका कहना, यथा एष वृक्षमित्यादि–१५।

लिंगभिन्नम्—लिंगव्यत्यय होना, स्त्रीलिंगादिके स्थानमें पुंलिंगादिका होना, यथा अयं स्त्रीइत्यादि–१६।

अनभिहितम्—अपने सिद्धांतमें जो नहीं कहा है, तिसका कथन करना, सो अनभिहित जैसें सप्तम पदार्थ, दशम द्रव्य, वा वैशेषिककों; प्रधान और पुरुषसें अधिक सांख्यमतको; चार सत्यसें अधिक शाक्यको. इत्यादि–१७।

अपदम्—अन्य छंदमें अन्य छंदका कहना, जैसे आर्यापदमें वैतालीय पदका कहना–१८।

स्वभावहीनम्—जो वस्तुके स्वभावसें अन्यथा कहना, यथा अग्नि शीतल, मूर्त्तिमत् आकाश. इत्यादि–१९।

व्यवहितम्—जहां प्रकृतको छोडके, अप्रकृतको विस्तार करके कथन करके, फिर प्रकृतका कथन करना.–२०।

कालदोषः—अतीतादिकालका व्यत्यय करना, जैसें रामचंद्र वनमें प्रवेश करतेभये, इसस्थानमें प्रवेश करतेहैं. इत्यादि–२१।

यतिदोष —अस्थानमें विश्राम करना, अथवा विश्राम करनाही नहीं २२

छविदोष —अलंकाररहित–२३।

समयविरुद्धम्—अपने सिद्धातविरुद्ध कहना, यथा असत्कारणमें कार्यका मानना सांख्यको, और सत्कारणमें कार्यका मानना वैशेषिकको, समयविरुद्धमिति–२४।

वचनमात्रम—निर्हेतुक, जैसे इष्टभूभागमें लोकका मध्य कहना–२५।

अर्थापत्तिदोष —जहां अर्थसेंही अनिष्टकी प्राप्ति होवे, यथा ब्राह्मण मारने योग्य नहीं है, ऐसे वचनमें अर्थसेंही अब्राह्मणघातापत्ति होवे है–२६।

असमासदोष —जहा समासव्यत्यय होवे, अथवा समासविधिमें समास न किया होवे, सो असमासदोष जानना–२७।

उपमादोष —हीनकों अधिक उपमा देनी, और अधिककों हीनोपमा देनी, यथा सर्षप मेरुसमान, और मेरु सर्षपसमान है इत्यादि–२८।

रूपकदोष —स्वरूपअवयवोंका व्यत्यय करना, अर्थात् अवयवोंका अवयवीरूपकरके कहना, यथा पर्वतरूप अवयवोंको पर्वतकरके कहना –२९।

अनिर्देशदोष —जहा कथन करनेयोग्य पदोंका एक वाक्यभाव न करिए, यथा इहा देवदत्त स्थालीमें ओदन पकाता है, ऐसे कहनेमें देवदत्त स्थालीमें ओदन ऐसे कहना –३०।

पदार्थदोष —जहां वस्तुके पर्यायवाचिपदको, पदार्थांतरकल्पनाको कहे, जैसें द्रव्यके पर्यायवाची सत्तादि, अर्थात् महासामान्य, अवांतरसामान्य, विशेष, गुणकर्मादिकाको पदार्थपरिकल्पना, उलूक अर्थात् वैशेषिकमतवाले करे है –३१।

संधिदोष —अस्थानमें संधि करना, और संधि स्थानमें न करना–३२।

जो इन पूर्वोक्त दोषोंसें रहित होवे, सो वचन अमल (निर्मल) जानना तथा अष्टगुणोंकरके जो संयुक्त होवे, सो वचन सूत्र अमल (निर्मल) सर्वज्ञभाषित जानना वह अष्टगुण यह है निद्दोसं सारवंत च हेउजुत्त मलंकियं ॥ उवणीयं सोवयारं च मियं महुरमेव य ॥ भावार्थ ॥ निर्दोषम्–

दोषरहित, १, सारवत्–बहुपर्याय अर्थकरके संयुक्त, गो*शब्दवत्, २, हेतुयुक्तम्–अन्वयव्यतिरेक लक्षण, हेतुओंकरके संयुक्त, ३, अलंकृतम्–उपमादि अलंकारोंकरके संयुक्त, ४, उपनीतम्–उपनयनिगमनसंयुक्त, ५, सोपचारम्–ग्राम्यवचनकरके रहित, ६, मितम्–वर्णादिपरिमाणसंयुक्त, ७, मधुरम्–सुणनेमें मनोहर ८॥ इति–॥ ३३ ॥

हितैषी यो नित्यं सततमुपकारी च जगतः
कृतं येन स्वस्थं बहुविधरुजार्तं जगदिदम् ॥
स्फुटं यस्य ज्ञेयं करतलगतं वेत्ति सकलं
प्रपद्यध्वं संतः सुगतमसमं भक्तिमनसः ॥ ३४ ॥

व्याख्या–जो देव, जगद्वासि जीवोंका नित्य सदाही हितकारी है, और निरंतर उपकारी है, जिसने बहुविध अनेक प्रकारके कर्म रोगकरी पीडित इस जगत्को उपदेशद्वारा स्वस्थ करा है, और जिसके ज्ञानमें सर्व ज्ञेय पदार्थ करतलगत आमलेकीतरें प्रकट हो रहे हैं, और जो सकलपदार्थांको जानता है, हे संतजनो! ऐसे असदृश अर्थात् जिसके बरावर कोई नहीं है–ऐसे–सुगत भगवान् अर्हनको भक्तिमनसें अंगीकार करो, और तिसको परमेश्वर मानके शुद्ध मनसें पूजो–सेवो ॥ ३४ ॥

असर्वभावेन यदृच्छया वा परानुवृत्त्या विचिकित्सया वा ॥
ये त्वां नमस्यन्ति मुनीन्द्रचन्द्रास्तेप्यागरीसंपदमाप्नुवन्ति ॥३५॥

व्याख्या—यथार्थस्वरूपके विना जाण्या, अथवा संपूर्णभक्ति विना, वा यदृच्छा स्वतः प्रवृत्तीसें, वा परकी अनुवृत्ति देखादेखीसें परकी दाक्षिण्यतासें, वा विचिकित्सा फलके संशयसें, हे मुनीद्रोंमें चंद्रमासमान मुनींद्रचंद्र भगवन् अर्हन्! जे कोइ तेरेको नमस्कार करते हैं, वे पुरुषभी देवतायोंकी सुखादिसंपत्विभूतीकों प्राप्त होते हैं, हे जिन! तेरे यथार्थ (सत्य) शासनके माननेवालोंका तो क्याही कहना है? ॥ ३५ ॥

* गोशब्दो हि बहुपर्यायो बह्वर्थ इतितात्पर्य–दिशि दृशि वाचि जले भुवि दिवि वज्रेऽसौ पशौ च गोशब्दइतिवचनादेवं सूत्रमपि बह्वर्थयुक्त विधेयमिति–तथा किरणे सूर्ये चंद्रे वायौ ऋषभनाभौषधौ सौरभेय्या वाणे मातरीत्यादावपि गोशब्दो विज्ञेय ॥

यदा रागद्वेषादसुरसुररत्नापहरणे
कृत मायावित्व भुवनहरणाशक्तिमतिना ॥
तदा पूज्यो वन्द्यो हरिरपरिमुक्तो ध्रुवतया
विनिर्मुक्त वीर न नमति जनो मोहबहुल ॥ ३६ ॥

व्याख्या—जिस अवसरमें रागद्वेषसें सुर असुरोंके समक्ष रत्न हरणेमें तीन भवनके हरनेकी शक्तिवाले विष्णु हरिने मायाविपणा करा—यह कथा पुराणोंमें प्रसिद्ध है कि, जिसतरे मणि चोरी गई, जैसें बलभद्रजीके सिर लगाई, और जैसी माया हरिने करी, इत्यादि—तदा तिस अवसरमें निश्चयकरके अष्टादश दूषणोंकरके अपरिमुक्त (सहित)को पूज्य और वंद्य मानके जन (लोक) पूजता है, और नमस्कार करता है, पर सर्वदूषणोंसें विनिर्मुक्त (रहित) श्रीवीरभगवान्कों नमस्कार नहीं करता है तो, फेर तिसके मोह अज्ञान बहुत नहीं तो, अन्य क्या है? अर्थात् मोह बहुल—बहुत मोह अज्ञानके वश होनेसें सत्यासत्य नहीं जानसका है, इसीवास्ते दूषणरहितकों छोडके दूषणसहितको मानता है, नमन करता है, और पूजता है ॥ ३६ ॥

अथ आचार्य श्रीहरिभद्रसूरिजी अपने आपको पक्षपातसें रहित होना बतलाते हैं

त्यक्त स्वार्थ परहितरत सर्वदा सर्वरूपं
सर्वाकारं विविधमसमं यो विजानाति विश्वम् ॥
ब्रह्मा विष्णुर्भवतु वरद शंकरो वा हरो वा
यस्याचिन्त्यं चरितमसम भावतस्तं प्रपद्ये ॥ ३७ ॥

व्याख्या—जिसने स्वार्थका तो त्याग करा है, और जो परहितमें रत है, तथा जो सर्वदा (सर्वकाल) सर्वरूप जडचैतन्यरूप, सर्वाकार परिमडल, वृत्त, त्र्यश, चतुरस्र, आयतनसस्थानाकार, विविध प्रकारे उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यरूप विश्व—जगत्को, असम—अनन्यसदृश जानता है, अर्थात् जो अन्योंकेसमान नहीं जानता है क्यों कि, अन्य तो एकांतनित्य, वा

एकात अनित्य, इत्यादि जानते है, परंतु सर्वज्ञ परमेश्वर तो, सर्व पदार्थोंको त्रिपदीरूपसें जानता है, अन्यथा सर्वज्ञत्वहानिप्रसंगः–तथा जिसका चरित अनन्यसदृश और अचिंत्य, अर्थात् किसीभी दूषणकरके कलंकांकित नहीं, ऐसा होवे, सो पूर्वोक्त विशेषणविशिष्ट देव, नामकरके ब्रह्मा हो, वा विष्णु हो, वा उपदेशद्वारा वर (प्रधान) ज्ञान दर्शन चारित्रका देनेवाला हो, वा शं(सुख) करनेवाला शंकर हो, वा हर (महादेव) हो, तिसको ही मैं सच्चे भावसें अपना देव (परमेश्वर) करके अंगीकार करता हूं ॥ ३७ ॥

अब पक्षपात न होनेमें हेतु कहते हैं.

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु ॥
युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः ॥ ३८ ॥

व्याख्या—मेरा कुछ श्रीमहावीरविषे पक्षपात नहीं है कि, जो कुछ श्रीमहावीरजीने कहा है, सोइ मैंने मानना है, अन्यका कहा नहीं; और कपिलादिमताधिपोंमें द्वेष नहीं है कि, कपिलादिकोंका कहना नहीं मानना; किंतु जिसका वचन शास्त्रयुक्तिमत, अर्थात् युक्तिसें विरुद्ध नहीं है, तिसका ही वचन ग्रहण करनेका मेरा निश्चय है ॥ ३८ ॥

अब जगत्में कपिल, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, जैमिनी, गौतम, कणाद, व्यास, पंतजालि, आदि, और ऋषभादि चौवीस तीर्थंकर, और गौतमबुद्धादि अनेक धर्मतीर्थके कर्त्ता हुए हैं; इसवास्ते इनमेसें कोइएक तो सत्यवक्ता अवश्य होना चाहिए. सोइ ग्रंथकार कहते हैं.

अवश्यमेषां कतमोपि सर्ववित् जगद्धितैकान्तविशालशासनः॥
स एव मृग्यो मतिसूक्ष्मचक्षुषा विशेषमुक्तैः किमनर्थपण्डितैः ।३९।

व्याख्या–इन पूर्वोक्त धर्मतीर्थके प्रवर्त्तकोंमेंसें कोइभी वक्ता, जगत्के एकांत हितकारी विशाल आगमवाला, अर्थात् जगत्के एकांत हितकारी प्रौढ अतिसुंदर आगमके कथन करनेवाला सर्वज्ञ होना चाहिए, जो ऐसा होवे, तिसकाही अन्वेषण बुद्धिरूप सूक्ष्मचक्षुकरके बुद्धिमानोंको

करना चाहिए, परतु अन्यका नहीं क्योंकि, पूर्वोक्त विशेषणोंकरके रहित अनर्थके कथन करनेवाले अज्ञानी पंडितोंके विचार करनेसें तिनोंके वचन सुननेसें और तिनकों अपने इष्टदेव माननेसें क्या प्रयोजन है? क्या लाभ है? अपितु कुछभी नहीं है ॥ ३९ ॥

यस्य निखिलाश्च दोषा न सन्ति सर्वे गुणाश्च विद्यन्ते॥
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा महेश्वरो वा नमस्तस्मै ॥ ४० ॥

व्याख्या–जिसके सर्वदोष, अर्थात् राग, द्वेष, मोह, अज्ञानादि अष्टा दश दूषण नहीं है, अर्थात् क्षय होगए हैं, और सर्वगुण अनतज्ञान, अनतदर्शन, अनंतचारित्र, अनतवीर्यादि अनंत गुण जिसके विद्यमान हैं, अर्थात् दूषणोंके नष्ट होनेसें आत्माके अनंत गुण जिसके प्रकट हुए हैं, सो ब्रह्मा होवे वा विष्णु होवे वा महेश्वर होवे तिसकेताई मेरा नमस्कार होवे ॥ ४० ॥

इतिश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचिते तत्वनिर्णयप्रासादे लोकतत्व निर्णयान्तर्गतदेवतत्त्ववर्णनो नाम चतुर्थस्तंभ ॥ ४ ॥

अथपञ्चमस्तम्भारम्भः ॥

चतुर्थस्तम्भमें देवतत्वस्वरूपकथन किया अथ पंचमस्तम्भमें लोक क्रियात्मविषयक वर्णन लिखते हैं

लोकक्रियात्मतत्त्वे विवदन्ते वादिनो विभिन्नार्थम् ॥
अविदितपूर्वं येषां स्याद्वादविनिश्चितं तत्त्वम् ॥ ४१ ॥

व्याख्या–जिनोंकों स्याद्वादकरके विशेष निश्चित करेहुए तत्वका ज्ञान नहीं हुआ है, मे वादी लोकक्रियात्मतत्त्वविषे अन्य अन्यतरेसें विवाद करते हैं, अज्ञातपूर्वकत्वात् ॥ ४१ ॥

इच्छंति कृत्रिम सृष्टिवादिनः सर्वमेवमिति लोकम् ॥
कृत्स्नं लोकं महेश्वरादयः सादिपर्यन्तम् ॥ ४२ ॥

व्याख्या—सृष्टिके वाद करनेवाले सर्वलोकको (संपूर्ण जगत्को) कृत्रिम (रचाहुआ) मानते हैं, तिनमेंसें महेश्वरादिसें सृष्टिकीउत्पत्ति माननेवाले सृष्टिवादी जे हैं वे संपूर्ण लोकको आदि और अंतवाला मानतेहैं ४२

मानीश्वरजं केचित् केचित्सोमाग्निसंभवं लोकम्॥
द्रव्यादिषड्विकल्पं जगदेतत्केचिदिच्छन्ति ॥ ४३ ॥

व्याख्या—मानी ईश्वर (अहंकारी ईश्वर) मैं ईश्वर हूं ऐसे ईश्वरसें लोक उत्पन्न हुआ है, ऐसे कितनेक मानतेहैं, कितनेक सोम और अग्निसें जगत्की उत्पत्ति मानते हैं, और कितनेक इस जगत्को द्रव्यादि षट्विकल्परूप मानते हैं, सोइ दिखाते हैं ॥ ४३ ॥

द्रव्यगुणकर्मसामान्ययुक्तविशेषं कणाशिनस्तत्त्वम् ॥
वैशेषिकमेतावत् जगदप्येतावदेतावत् ॥ ४४ ॥

व्याख्या—पृथिव्यादिनवप्रकारका द्रव्य, शब्दादि चौवीस गुण उत्क्षेपादि पांच प्रकार कर्म, सामान्य द्विप्रकार, समवाय एक, और विशेष अनंत, यह षट्पदार्थ कणादमुनिका तत्त्व है, वैशेषिकमतभी इतनाही है, और जगत्भी इतनाही है ॥ ४४ ॥

इच्छन्ति काश्यपीयं केचित्सर्वं जगन्मनुष्याद्यम्॥
दक्षप्रजापतीयं त्रैलोक्यं केचिदिच्छन्ति ॥ ४५ ॥

व्याख्या—कितनेक सर्व जगत्कों कश्यपसंबंधि मानते हैं, अर्थात् यह जगत् कश्यपने रचा है. 'तथाहि शतपथब्राह्मणे'—

सयत्कूर्म्मो नाम। एतद्वै रूपं कृत्वा प्रजापतिः प्रजा असृजत यत्सृजताकरोत् तद्यदकरोत्तस्मात्कूर्म्मः कश्यपो वै कूर्म्मस्तस्मादाहुः सर्वाः प्रजाः काश्यप्यइति—श-कां–७ अ–५ ब्रा–१ कं–५

[भाषार्थः] (स यत्कूर्म्मो नाम) सो, जो कि, कूर्म्मनामसें वेदोंमें प्रसिद्ध है, सो (एतद्वै रूपं कृत्वा प्रजापतिः) एतत् अर्थात् कूर्म्मरूपको धारण-

करके प्रजापति—परमेश्वर (प्रजा असृजत) प्रजाको उत्पन्न करतेहुए (तद्यदकरोत्) सो प्रजापति, जिस्सें सपूर्ण जगत्को उत्पन्न करते भये हैं (तस्मात्कूर्म्म) तिसीसे कूर्म्म कहे गये हैं (कश्यपो वै कूर्म्म) वै—निश्चय करके यही कूर्म्म कश्यपनामसे कहे गये हैं (तस्मात्) तिसीसे (आहु) सपूर्ण ऋषिलोक कहते हैं कि (सर्वा प्रजा काश्यप्यइति) सपूर्ण प्रजा कश्यपकीही है

तथा कितनेक कहते हैं कि, यह सर्व जगत् मनुका रचा है 'तथाहि शतपथब्राह्मणे'—

मनवे ह वै प्रात अवनेग्यमुदकमाजहुर्यथेदं पाणिभ्यामवने-जनायाहरन्ति एव तस्यावनेनिजानस्य मत्स्य पाणी आपेदे ॥१॥

सहास्मैवाचमुवाच बिभृहि मा पारयिष्यामि त्वेति कस्मान्मा पारयिष्यसीति । औघ इमा सर्वा प्रजा निर्वोढास्ततस्त्वा पारयितास्मीति कथन्ते भृतिरिति ॥ २ ॥

स होवाच। यावद्वै क्षुल्लका भवामो बह्वी वै नस्तावन्नाष्ट्रा भवन्त्युत मत्स्य एव मत्स्यं गिलति कुम्भ्यामाग्रे विभरासि। स यदा तामति-वर्द्धो अथ कर्षूं खात्वा तस्या माविभरासि स यदा तामतिवर्द्धे अथ मा समुद्रमभ्यवहरासि तर्हि वा अतिनाष्ट्रो भवितास्मीति॥ ३॥

स शश्वत् झष आस। स हि ज्येष्ठ वर्द्धते अथ तिथीं समा तदौघ आगन्ता तन्मा नावमुपकल्प्योपासासै स औघ उच्छ्रिते नावमापद्यासै ततस्त्वा पारयितास्मीति ॥ ४ ॥

तमेव भृत्वा समुद्रमभ्यवजहार ॥ स यत्तिथीं तत्समां परि-दिदेश ॥ तत्तिथीं समा नावमुपकल्प्योपासाचक्रे ॥ स औघ उच्छ्रिते नावमापेदे त स मत्स्य उपन्यापुप्लुवे तस्य शृंगे नावः पाश प्रतिमुमोच तेनैतमुत्तर गिरिमतिदुद्राव ॥ ५ ॥

स होवाच अपीपरं वै त्वां वृक्षे नावं प्रतिबध्नीष्व । तन्तु त्वामा-
गिरौ सन्तमुदकमन्तश्छैत्सीद्यावदुदकं समवायात्तावत्तावदन्ववस-
र्पासीति ॥ सह तावत्तावदेवान्ववससर्प तदप्येतदुत्तरस्य
गिरेर्मनोरवसर्पणमित्यौघो हृताः सर्वाः प्रजा निरुवाहाथेहम-
नुरेवैकः परिशिशिषे ॥६॥ सोर्चं श्राम्यं तपश्चचार प्रजाकामः
श–कां–१ अ–८ ब्रा–१ कं–१।२।३।४।५।६॥

[भाषार्थः] मनुजीके प्रति प्रातःकालमें भृत्यगण (नोकर) हस्त धोने.. और तर्पणकेलिये, जलका आहरण करतेभये, तब मनुजीने जैसे इतरलो.. वैदिककर्मनिष्ठपुरुष, इस अवनेग्यजलकों तर्पण करनेकेलिये अ.. दोनों हाथों करके ग्रहण करते हैं, इसीप्रकार तर्पण करतेहुए मनुजी.. हाथमें मछलीका बच्चा मत्स्य अकस्मात् आगया, तब उसको देख.. मनुजी शोचने लगे, तावदेव मनुजीके प्रति मत्स्य कहने लगा कि, .. मनु ! तूं मेरा पालन कर, और हे मनु ! मैं तेरा पालन करूंगा. तब उ.. मत्स्यकी मनुष्यवाणी सुन आश्चर्य मानकर मनुजी बोले कि, तूं काहे.. मेरी पालना करेगा. क्योंकि, तूं तो महा तुच्छ जीव है. तब मत्स्यने क.. कि, हे राजन् ! तूं मुझे छोटासा मत समझ, यह संपूर्ण प्रजा जो कु.. तेरे देखनेमें आती है, सो यह सब बडेभारी जलोंके समूहमें डूब जाय.. कुछभी न रहेगी, सो मैं तिस महाप्रलयकालके जलसमूहसें तेरेकों पाल.. करूंगा अर्थात् उस प्रलयकालके जलमें मैं तुझको नहीं डूबने दूंगा. त.. मनुजी बोले कि, हे मत्स्य ! तेरा पालन किस प्रकारसें होगा, सोभी कृ.. करके आपही बताइये.

तब मत्स्यने कहा कि, जबतक हम लोक छोटे रहतेहैं, तबतक बहुतर.. पापी प्रजा धीवरादि हमारे मारनेवाली होती हैं, और बडे २ मत्स्य औ.. बडी २ मछलियांही छोटे २ मत्स्य और छोटी २ मछलियांकों निगल जा.. हैं, इससे प्रथम इस समय तो मेरेको अपने कमंडलुमें रखलीजिये, तब मनुजीने उस मत्स्यको कमंडलुमें जल भरकर रखलिया, सो मत्स्य जब उस कमंडलुसेभी अधिक बढ गया. ..... पूछा कि, अब आपको

में कैसें पालन करू, तव मत्स्यने कहा कि, हे राजन्! एक बडा गर्त्ता था तलाव वा नदी खुदाकर उसमें मुझको पालन कर सो मत्स्य जब नदीसें भी अधिक बढ गया तव फिर मनुजीने पूछा कि, अब मैं तुम्हारा कैसे पालन करू ? तब मत्स्यने कहा कि, हे राजन्! अब मुझको समुद्रमें छोड दीजिये, तब मैं नाशरहित हो जाउगा यह सुनकर मनुजीने उस नदीको खुदाकर समुद्रमें मिलादी तब वहमत्स्य समुद्रमें चला गया

सो मत्स्य समुद्रमें जातेही शीघ्रही बडाभारी मत्स्य होगया, और सो फेर उससे भी बहुत बडा क्षण २ में बढने लगा, अब तदनंतर वो मत्स्य राजा मनुसें जिस वर्षकी जिस तिथीको वो जलोंका समूह आनेवाला था, बतलाकर कहता हुआ कि, जब यह समय आवे तब हे राजन्! तुम एक उत्तम नाव बनवाकर, और उसनावमें सवार होकर, मेरी उपासना करनी, अर्थात् मेरा स्मरण करना जब सो जलोंका समूह आवेगा, तब मैं तेरी नौकाकेपासही आजाउंगा, और तब फिर मैं तेरा पालन करुगा

मनुजी तदुक्तक्रमसे उस मत्स्यको धारणपोषणकर समुद्रमें पहुचाते भये, सो मत्स्य जिस तिथि और जिस संवत्‌को जलसमूहका आगमन बता-गयेथे, मनुजीभी तिसी तिथि और संवत्‌में नाव बनवाकर उस मत्स्यरूप-भगवान्‌की उपासना करतेभये, तदनंतर सो मनु, उसजलोंके समूहको उठा देखकर नावमें आरूढ होजाते हुये, तब वह मत्स्य तिसमनुजीके समीपही आकर ऊपरको उछले, तब मनुजीने उन मत्स्यभगवान्‌को उछ-लते हुए देखा, तब मनुजी तिसमत्स्यके शृंगमें अपनी नौकाका रस्सा डालदेते भये, तिस करके वह मत्स्य नौकाको खीचते हुए उत्तरगिरि (हिमालय) नामकपर्वतकेपास शीघ्रही पहुचा देतेभये

पर्वतके नीचे नौकाको पहुचाकर मत्स्यजी कहते भये कि, हे राजन्! निश्चयकरके मैं तेरेको प्रलयजलमें डूबनेसें पालन करता भया हू अब तुम नौकाको इस वृक्षके साथ बाध दीजिये, तुम इस पर्वतके शिखरपर जब तक जल रहे तबतक रहना, और इसरस्सेको मत खोलना, फिर जब कि यह जल पर्वतके नीचे जैसे २ उतरता जाय तैसे तैसेही तुमभी पर्व

की नीचे उतरते आना, ऐसे मनुजीके प्रति समझाकर मत्स्यजी जलमें मागये और सो मनुजीभी, मत्स्यजीके कथनानुकूल जैसे २ जल उतरता या तैसै २ उस जलके अनुकूलही पर्वतके नीचे २ उतरते आए, सोभी ह केवल पर्वतके ऊपरसे एक मनुकाही जो नीचे अवसर्पण अर्थात् अवारण हुआ, सो एक मनुही उस सृष्टिमेंसें बाकी बचे, और संपूर्ण प्रजाजलसमूहमें ही लय होगई; तब फिर मनुजीने प्रजाके रचनार्थ पर्य्यालोचन कर तपोनुष्ठान किया, इसीसें यह प्रजा, मानवीनामसें अबतक प्रसिद्ध है. इति ॥

और कितनेक ऐसा मानते हैं कि, यह तीनो लोक दक्ष प्रजापतिने करे हैं, अर्थात् तीनों दक्ष प्रजापतीने रचे हैं ॥ ४५ ॥

केचित्प्राहुर्मूर्तिस्त्रिधा गतिका हरिः शिवो ब्रह्मा ॥
शंभुर्बीजं जगतः कर्ता विष्णुः क्रिया ब्रह्मा ॥ ४६ ॥

व्याख्या—कितनेक कहते हैंकि एकही परमेश्वरकी मूर्तिकी तीन गतियां हैं; हरि (विष्णु) १, शिव २, और ब्रह्मा ३, तिनमें शिव तो जगत्का कारणरूप है, कर्त्ता विष्णु है, और क्रिया ब्रह्मा है ॥ ४६ ॥

वैष्णवं केचिदिच्छंति केचित् कालकृतं जगत् ॥
ईश्वरप्रेरितं केचित् केचिद्ब्रह्मविनिर्मितम् ॥ ४७ ॥

व्याख्या—कितनेक मानते हैं कि यह जगत् विष्णुमय, वा विष्णुका रचा हुआ है; और कितनेक कालकृत् मानते हैं और कितनेक कहते हैं कि, जो कुछ इस जगत्में हो रहा है, सो सर्व, ईश्वरकी प्रेरणासें ही हो रहा है और कितनेक कहते हैं, यह जगत् ब्रह्माने उत्पन्न करा है ॥ ४७ ॥

अव्यक्तप्रभवं सर्वं विश्वमिच्छन्ति कापिलाः ॥
विज्ञप्तिमात्रं शून्यं च इतिशाक्यस्य निश्चयः ॥ ४८ ॥

व्याख्या—अव्यक्त (प्रधान प्रकृति) तिस अव्यक्तसें सर्व जगत् उत्पन्न होता है, ऐसे कपिलके मतके माननेवाले मानते हैं; और शाक्यमु-

के सतानीय विज्ञानाद्वैत क्षणिकरूप जगत् मानते हैं, और कितनेक सके सतानीय सर्व जगत्को शून्यही मानते हैं ॥ ४८ ॥

पुरुषप्रभवं केचित् दैवात् केचित् स्वभावत ॥
अक्षरात् क्षरित केचित् केचिदण्डोद्भव महत् ॥ ४९ ॥

व्याख्या—कितनेक, पुरुषसें जगत् उत्पन्न हुआ मानते हैं, अथवा पुरुष सर्व जगत् मानते हैं, "पुरुष एवेद सर्व मित्यादिवचनात्" और कि- देवसें, और स्वभावसें जगत् उत्पन्न हुआ मानते हैं, और कितनेक र ब्रह्मके क्षरणेसें, अर्थात् मायावान् होनेसें जगत्की उत्पत्ति मानते ' एको बहुस्यामितिवचनात् " और कितनेक अंडेसें जगत्की उत्पत्ति ते हैं ॥ ४९ ॥

याहच्छिकमिदं सर्वं केचिद्भूतविकारजम् ॥
केचिच्चानेकरूपं तु बहुधा संप्रधाविता ॥ ५० ॥

व्याख्या—कितनेक कहते हैं कि यह लोक यदृच्छासें अर्थात् स्वतोही न हुआ है, और कितनेक कहते हैंकि यह जगत् भूतोंके विकारसें उत्पन्न हुआ है, और कितनेक जगत्को अनेकरूपही मानते हैं, ऐसे नप्रकारके विकल्प सृष्टिविषयमें लोकोंनें अज्ञानवशसें कथन करे हैं॥ ५०॥

वैष्णव केचिदिच्छन्ति ' इत्यादिविकल्पोंमें जिस विकल्पवाला, जिस सें सृष्टिकी रचना मानता है, सो पृथक् २ सक्षेपमात्रसें प्रथकार ते हैं—

गवास्त्वाहु ॥ " जले विष्णुः स्थले विष्णुराकाशे विष्णुमालिनि ॥
विष्णुमालाकुले लोके नास्ति किंचिदवैष्णवम्॥५१॥

सर्वतः पाणिपाद तत् सर्वतोक्षिशिरोमुखम् ॥
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ ५२ ॥

ऊर्द्धमूलमध शाखमश्वत्थ प्राहुरव्ययम् ॥
छंदासि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥ ५३ ॥

“पुराणे चान्यथा॥” तस्मिन्नेकार्णवीभूते नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥
नष्टामरनरे चैव प्रनष्टोरगराक्षसे ॥ ५४ ॥
केवलं गह्वरीभूते महाभूतविवर्जिते ॥
अचिन्त्यात्मा विभुस्तत्र शयानस्तप्यते तपः ॥५५॥
तत्र तस्य शयानस्य नाभौ पद्मं विनिर्गतम् ॥
तरुणरविमण्डलनिभं हृद्यं काञ्चनकर्णिकम् ॥ ५६ ॥

तस्मिंश्च पद्मे भगवान् दण्डकमण्डलुयज्ञोपवीतमृगचर्म-वस्तुसंयुक्तो ब्रह्मा तत्रोत्पन्नस्तेन जगन्मातरः सृष्टाः ॥५७॥

अदितिः सुरसंघानां दितिरसुराणां मनुर्मनुष्याणाम्॥
विनता विहङ्गमानां माता विश्वप्रकाराणाम् ॥ ५८ ॥
कद्रूः सरीसृपाणां सुलसा माता तु नागजातीनाम्॥
सुरभिश्चतुः पदानामिला पुनः सर्वबीजानाम् ॥ ५९ ॥
प्रभवस्तासां विस्तरमुपागतः केचिदेवमिच्छन्ति ॥
केचिद्वदन्त्यवर्णं सृष्टं वर्णादिभिस्तेन ॥ ६० ॥

व्याख्या—वैष्णवमतवाले कहते हैं कि–जलमेंभी विष्णु है, स्थलमें भी विष्णु है, और आकाशमेंभी जो कुछ है, सो विष्णुकीही माला–पंक्ति है, सर्वलोक विष्णुहीकी माला–पंक्तिकरके आकुल अर्थात् भराहुआ है इसवास्ते इस जगत्‌में ऐसी कोइभी वस्तु नहीं है, जो कि, विष्णुका रूप नहीं है.

पांच वस्तुकरके सर्वतः सर्वजगे पाणय (हाथ) हैं, और सर्वजगे पग हैं जिसके, और सर्वत्र जिसके आंखें, शिर और मुख हैं, और जो सर्वजगे श्रवणेंद्रियोंकरके युक्त है, और जो सर्वलोकविषे सर्ववस्तुयोंको व्याप्य होके रहता है, अर्थात् सर्वओरसे प्राणियोंकी वृत्तियोंकरके हस्तादिउपाधि-योंकरके सर्वव्यवहारका स्थान होके रहता है.

'क्षराक्षराभ्यामुत्कृष्ट' ऐसा पुरुषोत्तम जिसका मूल है, अधइति अर्वाचीन कार्यरूप उपाधियां हिरण्यगर्भादि ग्रहण करीए हैं, वे सर्व शाखाकीतरे शाखा है जिसकी, ऐसा पीपलका वृक्ष प्रवाहरूपकरके अविच्छेद होनेसें अव्यय है, "ऊर्ध्वमूलोऽर्वाक्शाख एषोऽश्वत्थ सनातन इत्यादिश्रुतिवचनात्" और, 'छंदासि यस्य पर्णानि' वेद जिसके पत्र हैं, धर्माधर्म प्रतिपादनद्वार करके छाया समान कर्मफलकरके संयुक्त होनेकरके संसाररूप वृक्षकों सर्वजीवोंके आश्रयभूत होनेसें पत्रोंसमान वेद है, जो ऐसे पीपलके वृक्षको जानता है, सोइ वेदोंके अर्थोंको जानता है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

पूर्वोक्त वर्णन प्राय वेदानुसार किया, अब पुराणानुसार वर्णन करते हैं तिस संसारके एकार्णवीभूत हुआ, स्थावरजंगमके नष्ट हुए, अमर (देवतायों) के नष्ट हुए, उरगराक्षसोंके नष्ट हुए, केवल गव्हरीभूत महाभूतकरके रहित, ऐसे जलमें, अर्थात् जलके ऊपर, अचिंत्य आत्मावाला विभु, विष्णु सूताहुआ तप तपता है, तहां तिस सूतेहुए विष्णुकी नाभिसें तत्कालके उदय हुए सूर्य मंडलके समान मनोहर सुवर्णकी कर्णिकावाला पद्म (कमल) निकला, तिस कमलमें भगवान् ब्रह्मा, कमंडलु यज्ञोपवीत मृगचर्मासनादि वस्तुयोंसहित उत्पन्न हुआ, तिस ब्रह्मानें जगत्की मातायें पैदा करीं, सोइ दिखाते हैं स्वर्गवासिदेवतायोंकी माता अदिति १, असुरोंकी माता दिति २, मनुष्योंकी मनु ३, पक्षीयोंकी विनता ४, सर्पोंकी कद्रू ५, नागजातियोंकी माता सुलसा ६, चौपायोंकी सुरभि ७, और सर्व बीजोंकी माता इला (पृथिवी) ८ ॥ तिनोंसें—पूर्वोक्त मातायोंसें उत्पन्न हुई प्रजा विस्तारको प्राप्त हुई, कितनेक ऐसें मानते हैं और कितनेक ऐसें कहते हैं कि, प्रथम सर्वप्रजा वर्णरहित थी, पीछे तिसने—ब्रह्माने वर्णादिकरके सृष्टि रची ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥

"कालवादिनश्चाहु ॥" काल सृजति भूतानि काल संहरते प्रजा॥
काल सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रम ॥६१॥

व्याख्या—कालवादी कहते हैं कि—कालही जीवोंको उत्पन्न करता है, और कालही प्रजाका संहार करता है, जीवोंके सतेक रक्षा करणरूप

कालही जागता है, इसवास्ते कालही उल्लंघन करना दुष्कर है ॥ ६१ ॥

“ ईश्वरकारणिकाश्चाहुः ॥ ”

प्रकृतीनां यथा राजा रक्षार्थमिह चोद्यतः
तथा विश्वस्य विश्वात्मा स जागर्ति महेश्वरः ॥ ६२ ॥
अन्यो जंतुरनीशो यमात्मनः सुखदुःखयोः ॥
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं वा श्वभ्रमेव च ॥ ६३ ॥
सूक्ष्मोऽचिन्त्योविकरणगणः सर्ववित् सर्वकर्ता
योगाभ्यासादमलिनधियां योगिनां ध्यानगम्यः ॥
चन्द्रार्काग्निक्षितिजलमरुत्दीक्षिताकाशमूर्ति
र्ध्येयो नित्यं शमसुखरतैरीश्वरः सिद्धिकामैः ॥ ६४ ॥

व्याख्या–ईश्वरको कारण माननेवाले वादी कहते हैं कि–जैसें प्रजाकी रक्षावास्ते राजा उद्यत है, तैसेही सर्वजगत्‌की रक्षावास्ते विश्वात्मा ईश्वर जागता है, अर्थात् सर्वजगत्‌का बंदोबस्त महेश्वर करता है; क्योंकि, अन्यजीव सर्व अपने आपको कर्मफल सुखदुःखोंको देने सामर्थ्य नहीं है, किंतु, ईश्वरकी प्रेरणासेंही जीव स्वर्ग वा नरकको जाताहै; इसवास्ते शमरूप सुखोंमें रक्त सिद्धिके कामी पुरुषोंको निरंतर ईश्वरकाही ध्यान करना योग्य है. ईश्वर भगवान् कैसा है? सूक्ष्म है, अचिंत्य जिसका कोइभी चिंतवन नहीं करसक्ता है, इंद्रियोंके समूहसें रहित है, सर्वज्ञ है, सर्वका कर्त्ता है, योगाभ्याससे निर्मल बुद्धिवाले योगियोंके ध्यानसे जानाजाता है, चंद्र, सूर्य, अग्नि, पृथिवी, जल, पवन, दीक्षित आकाशवत् मूर्ति है जिसकी, अर्थात् सर्व व्यापक है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

“ ब्रह्मवादिनश्चाहुः ॥ आसिदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ॥
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ ६५ ॥
ततःस्वयंभूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम् ॥
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ॥ ६६ ॥

लोका नातु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादत ॥
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत् ॥६७॥

व्याख्या–ब्रह्मवादी कहते हैं कि–इद यह जगत् तममें स्थित लीन था, प्रलयकालमें सूक्ष्मरूपकरके प्रकृतिमें लीन था, प्रकृतिभी ब्रह्मात्म करके अव्याकृतथी अर्थात् अलग नहीं थी, इसवास्तेही अप्रज्ञात प्रत्यक्ष नहीं था, अलक्षणम् अनुमानका विषयभी नहीं था, अप्रतर्क्यम् तर्कयितुमशक्यम् तर्ककरनेके योग्य नहीं था, वाचक स्थूलशब्दके अभावसें, इस वास्तेही अविज्ञेय था, अर्थापत्तिकेभी अगोचर था, इसवास्ते सर्व ओरसे सुसकीतरें स्वकार्य करणेमें असमर्थ था तदनतर क्या होता भया ? सो कहे हैं, प्रलयके अवसानानतर स्वयभू परमात्मा अव्यक्त बाह्यकरण अगोचर इद यह महाभूत आकाशादिक आदिशब्दसें महदादिकोंको प्रथम सूक्ष्मरूपकरके रहेको स्थलरूपकरके प्रकाश करता भया, कैसा है स्वयभू परमात्मा ? वृत्तौजा सृष्टि रचनेका सामर्थ्य जिसका अव्याहत है, और जो तमोनुद प्रकृतिका प्रेरक है, सो स्वयभू परमात्मा भूलोकोंकी वृद्धि वास्ते मुख, बाहु, ऊरु और पगोंसें ब्राह्मण १, क्षत्रिय २, वैश्य ३, और शूद्रोंको यथाक्रम निर्मित करता भया ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

"साख्याथाहु" ॥ पञ्चविधमहाभूत नानाविधदेहनामसस्थानम् ॥
अव्यक्तसमुत्थान जगदेतत् केचिदिच्छन्ति ॥६८॥
सर्वगत सामान्य सर्वेषामादिकारण नित्यम् ॥
सूक्ष्ममलिङ्गमचेतनमाक्रियमेक प्रधानाख्यम् ॥ ६९ ॥
प्रकृतेर्महास्ततोहकारस्तस्माद्गणश्च षोडशक ॥
तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्य पञ्चभृतानि ॥ ७० ॥
मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्या प्रकृतिविकृतय पञ्च ॥
षोडशकश्च विकारो न प्रकृतिर्न विकृति पुरुष ॥ ७१ ॥
गुणलक्षणो न यस्मात् कार्यकारणलक्षणोपि नो यस्मात् ॥
तस्मादन्य पुरुष फलभोक्ता चेत्यकर्त्ता च ॥७२॥

प्रवर्त्तमानान् प्रकृतेरिमान् गुणान्
तमोवृतत्वाद्विपरीतचेतनः ॥
अहंकरोमीत्यबुधोऽपि गम्यते
तृणस्य कुब्जीकरणेप्यनीश्वरः ॥ ७३ ॥

व्याख्या--सांख्यमतवाले कहते हैं कि-पांच प्रकारके महाभूत, नानाप्रकारका देह, नाम, संस्थान (आकार) येह सर्व अव्यक्त प्रधानसेंही समुत्थान (उत्पन्न) होते हैं, अर्थात् जगदुत्पत्ति प्रधानसेंही मानते हैं. अब प्रधान अपरनाम प्रकृतिका स्वरूप दिखाते हैं, जो प्रधान है, सो सर्वगत है, सामान्यरूप है, सर्व कार्योंका आदिकारण है, नित्य है, सूक्ष्म है, लिंगरहित है, अचेतन है, अक्रिय है, एक है, ऐसा प्रधाननामा तत्त्व है. तिस प्रधान (प्रकृति)सें महान्, अर्थात् बुद्धि उत्पन्न होतीहै, तिसबुद्धिसें अहंकार उत्पन्न होता है, तिस अहंकारसें सोलांका गण उत्पन्न होता है, तिन सोलांके गणमेंसें पांच तन्मात्रसें पांच भूत उत्पन्न होते हैं; मूलप्रकृति जो है सो अविकृति है, महदादिप्रकृतिकी विकृतियां है, सोलां जो है सो विकार है, और पचीसमा तत्त्व पुरुष है, सो न प्रकृति है और न विकृति है; जिसहेतुसें पुरुषमें गुणलक्षण नहीं है, और कार्यकारण लक्षणभी नहीं है, तिसहेतुसें प्रकृतिसें पुरुष अन्य है, कर्मके फलका भोक्ता है, परंतु कर्त्ता नहीं है; "अकर्त्ता निर्गुणो भोक्ता आत्मा कपिलदर्शने" इतिवचनात् ॥

प्रकृतिसें प्रवर्त्तमान हुए इन पूर्वोक्त गुणोंको तमोवृतरूप होनेसें, चेतन इन गुणोंसें विपरीतस्वरूप है, इसवास्ते 'अहं करोमि' मैं कर्त्ता हूं ऐसा तो मूर्खभी मानता है; क्यों कि, कर्त्तापणा जो है, सो तो अहंकारको है, और पुरुष तो तृणमात्रकोभी वांका करणे समर्थ नहीं है ॥ ६८॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ —५—

"शाक्याश्चाहुः ॥" विज्ञप्तिमात्रमेवैतदसमर्थावभासनात् ॥
यथा जैन करिष्येहं कोशकीटादिदर्शनम् ॥७४॥
क्रोधशोकमदोन्मादकामदोषाद्युपद्रुताः ॥
अभूतानि च पश्यन्ति पुरतोवास्थितानि च ॥७५॥

व्याख्या—बौद्धमती कहते हैं कि—जो कुछ दीखता है, सो सर्व विज्ञानमात्र है, क्यों कि, जो दीखता है सो असमर्थ होके भासन होता है, अर्थात् युक्तिप्रमाणसें अपने स्वरूपको धारणे समर्थ नहीं है हे जैन! जैसें तू कहता है कि, मैं कोशकीटकादिका दर्शन करता हूं, वा करूंगा, परंतु यह जो तुझको दीखता है, सो उपाधिकरके भान होता है, नतु यथार्थ स्वरूपसें सोइ दिखावे है क्रोध, शोक, उन्माद, काम, दोषादि करके पीडित हुएधके पुरत (आगे) अवस्थितपदार्थोंको देखते हैं, वे न होतेहुएको देखते हैं, न तु सद्भूतोंको ॥ ७४ ॥ ७५ ॥—६—

"पुरुषवादिनश्चाहु ॥" पुरुष एवेद ॅसर्व यद्भूत यच्च भाव्यं। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति। यदेजति यन्नेजति यद्दूरे यदु अन्तिके यदन्तरस्य सर्वस्य यदु सर्वस्यास्य बाह्यतो यस्मात् पर नापरमस्ति किंचित्। यस्माणीयोह्न स्वस्ति कश्चिद्वृक्ष इव स्तब्धोदिवि तिष्ठत्येकस्तेनेद पूर्णं पुरुषेण सर्वं ॥
एक एव हि भूतात्मा तदा सर्वं प्रलीयते ॥
द्वावेव पुरुषो लोके क्षरश्चाक्षर एव च ॥ १ ॥
क्षरश्च सर्वभूतानि कूटस्थोक्षर एव च ॥

"अपरेप्याहु ॥" विद्यमानेषु शास्त्रेषु ध्रियमाणेषु वक्तृषु ॥
आत्मान ये न जानन्ति ते वै आत्महता नरा ॥ १ ॥
आत्मा वै देवता सर्व सर्वमात्मन्यवस्थितम् ॥
आत्मा हि जनयत्येष कर्मयोग शरीरिणाम् ॥ २ ॥
आत्मा धाता विधाता च आत्मा च सुखदु खयो ॥
आत्मा स्वर्गश्च नरक आत्मा सर्वमिद जगत् ॥ ३ ॥
न कर्तृत्व न कर्माणि लोकस्य सृजते प्रभु ॥
स्वकर्मफलसयोगः स्वभावाद्धि प्रवर्त्तते ॥ ४ ॥

आत्मज्ञानस्वभावेन स्वयं मननसंभवात् ॥
स्वकर्मणश्च संभूतेः स्वयंभूर्जीव उच्यते ॥ ५ ॥
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ॥
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥ ६ ॥
अच्छेद्योयमभेद्योयं निरुपाख्योयमुच्यते ॥
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोयं सनातनः ॥ ७ ॥
सोक्षरः स च भूतात्मा संप्रदायः स उच्यते ॥
स प्राणः स परं ब्रह्म सो हंसः पुरुषश्च सः ॥ ८ ॥
नान्यस्तस्मात्परो द्रष्टा श्रोता मन्तापि वा भवेत् ॥
न कर्त्ता न च भोक्तास्ति वक्ता नैवात्र विद्यते ॥ ९ ॥
चेतनोध्यवसायेन कर्मणा स निबध्यते
ततोभवस्तस्य भवेत्तदभावात्परं पदम् ॥ १० ॥
उद्धरेद्दीनमात्मानमात्मानमवसादयेत् ॥
आत्मा चैवात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ ११ ॥
संतुष्टानि च मित्राणि संक्रुद्धाश्चैव शत्रवः ॥
नहि मे तत् करिष्यन्ति यन्न पूर्वं कृतं मया ॥ १२ ॥
शुभाशुभानि कर्माणि स्वयं कुर्वन्ति देहिनः ॥
स्वयमेवोपकुर्वन्ति दुःखानि च सुखानि च ॥ १३ ॥
वने रणे शत्रुजनस्य मध्ये
महार्णवे पर्वत मस्तके वा ॥
सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा
रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि ॥ १४ ॥

व्याख्या-पुरुषवादी कहते हैं कि-पुरुष, आत्मा, एवशब्द अवधारणमें है, सो कर्म और प्रधानादिके व्यवच्छेदार्थ है, यह सर्व प्रत्यक्ष वर्त्तमान

सचेतनाचेतन वस्तु, इस व्याख्यालंकारमें, जो कुछ अतीत कालमें हुवा, और जो आगे होवेगा, मुक्ति और ससार सो सर्व पुरुषही है, उतशब्द अपि शब्दार्थे और अपिशब्द समुच्चयविषे है। अमृतस्य–अमरणभव (मोक्ष) का ईशान: प्रभु है। यदिति यच्चेति च शब्दके लोप होनेसें जो अन्नेन अहारकरके अतिरोहति–अतिशयकरके वृद्धिको प्राप्त होता है, यदेजति- जो चलता है पशुआदि, जो नहीं चलता है पर्वतादि, जो दूर है मेरु आदि जो निकट है, उशब्द अवधारणमें है, सो सर्व पुरुषही है, जो अतर इस चेतनाचेतन पदार्थके बीचमें, और जो कुछ इसके बाह्यसें है, सो सर्व पुरुषही है, जिस पुरुषकेपरे अपर कोइ किंचित् प्राणरूप कल्याणकारी अतिचतुर नहीं है तथा जो एक, आकाश, स्वर्गमें, वा रहता है, तिसही पुरुषकरके यह सर्व पूर्ण भराहुआ है जब एकला पुरुषही रहजाता है, तब सर्व जगत् तिसपुरुषमेंही लय होजाता है, क्यों कि दोही पुरुष जगत्में है एक क्षर–नाश होनेवाला, और दूसरा अक्षर–अविनाशी है, जितने जगत्में भूत हैं, वे सर्व क्षर हैं, और जो कूटस्थ है, सो अक्षर है ॥ १ ॥

औरभी कहते हैं कि—शास्त्रोंके विद्यमान हुए, और वक्तायोंके धारण कर तेहुएभी जे पुरुष अपने आत्माको नहीं जानते हैं, वे पुरुष निश्चयकरके आत्म हत (आत्मघाती) हैं आत्माही देवता है, आत्मामेंही सर्व वस्तु व्यवस्थित है, आत्माही सर्व शरीरवाले जीवोंके कर्मका सयोग उत्पन्न करता है। आत्माही धाता है, आत्माही विधाता है, आत्माही सुखदुःखमें है, आत्माही स्वर्ग है, आत्माही नरक है, और यह सर्व जगत् आत्माही है। ईश्वर, लोकको न कर्त्तापणा रचता है और न कर्मोंको रचता है, किंतु अपने करे कर्मफलका सयोग स्वभावसेंही प्रवर्त्तता है। आत्मज्ञान स्वभावकरके आपही भवन होनेका सभव होनेसें अपने कर्मोंसेंही जीव जगत्में उत्पन्न होता है, इसवास्ते जीवको स्वयभू कहते हैं। इसआत्माको शस्त्र छेदन नहीं करसक्ते हैं, अग्नि दाह नहीं करसक्ता है, पाणी गीला नही करसक्ता है, और पवन शोषण नहीं करसक्ता है। इसवास्ते यह आत्मा अच्छेद्य है, अभेद्य है, पूरापूरा स्वरूपकथन नहीं करसक्ते हैं इसवास्ते निरुपाख्य है, नित्य है, सर्वगत (सर्वव्यापक) है, स्थाणु (स्थिरस्वभाव) अर्थात् रूपांतरापत्तिकरके

शून्य है, अचल पूर्वरूपापरित्यागी है और सनातन (अनादि) है. । सो आत्माही, अक्षर, भूतात्मा, संप्रदाय, प्राण, परब्रह्म, हंस और पुरुषादि कहनेमें आता है. । आत्मासें अन्य कोई देखनेवाला, सुननेवाला, मनन करनेवाला, कर्त्ता, भोक्ता और वक्ता, नहीं है; किंतु, आत्माही है. । आत्मा चैतन्यरूप है, सो चेतन आत्मा अध्यवसायकरके कर्मोसें बंधाता है, तब आत्माको संसार होता है, और कर्मबंधके अभावसें परंपद मोक्ष प्राप्त होता है.। आत्मा आपही अपने दीनात्माका उद्धार करता है, और आपही अपनेको दुःखोंमें गेरता है, आत्माही आत्माका बंधु है, और आत्माही आत्माका रिपु (शत्रु) है. । संतुष्ट मित्र, और क्रोधायमान शत्रु, जो सुखदुःख पूर्वे मैंने नही करा है, सो सुख दुःख मेरेको नही करेंगे. । क्यों कि, शुभाशुभकर्मोंको देहधारी आपही करते हैं, और आपही तिन कर्मोंको सुखदुःखरूपकरके भोगते हैं. । वनमें, संग्राममें, शत्रुजनोंके बीचमें, समुद्रमें, पर्वतके शिखरऊपर, सूतेको, प्रमत्तको, विषमआपदामें पडेको, इत्यादि अवस्थावाले आत्माकी पूर्वले करे हुए पुण्यही सर्वत्र रक्षा करते हैं. ॥ १।२।३।४।५।६।७।८।९।१०।११।१२।१३।१४ ॥

"दैववादिनश्चाहुः ॥"

स्वच्छन्दतो न हि धनं न गुणो न विद्या
नाप्येव धर्मचरणं न सुखं न दुःखम् ॥
आरुह्य सारथिवशेन कृतान्तयानं
दैवं यतो नयति तेन पथा व्रजामि ॥ १ ॥
यथायथा पूर्वकृतस्य कर्मणः
फलं निधानस्थमिवावतिष्ठते ॥
तथातथा तत्प्रतिपादनोद्यता
प्रदीपहस्तेव मतिः प्रवर्त्तते ॥ २ ॥
विधिर्विधानं नियतिः स्वभावः
कालोग्रहा ईश्वरकर्मदैवम् ॥

भाग्यानि कर्माणियमः कृतान्त
पर्यायनामानि पुराकृतस्य ॥ ३ ॥
यत्तत्पुराकृत कर्म्म न स्मरन्तीह मानवाः
तदिदं पाण्डवज्येष्ठ दैवमित्यभिधीयते ॥ ४ ॥

व्याख्या—दैववादी ऐसें कहते हैं-स्व (अपणे), छंदे (अभिप्राय), सें धन, गुण, विद्या, धर्माचरण, सुख और दु खादि नही होते हैं, किंतु कालरूप यान ऊपर चढा दैव, तिसके वशसें जहा दैव लेजाता है, तहांही मैं जाता हू । जैसें २ पूर्वकृत कर्मोंका फल निधानकीतरें रहता है, पूर्वकृतनिकाचितकर्मका नामही दैव है, तैसें २ तिसके प्रतिपादनमें उद्यत हुआ, प्रदीप हस्तकीतरें मति प्रवर्त्ते है । विधि १, विधान २, नियति ३, स्वभाव ४, काल ५, ग्रह ६, ईश्वर ७, कर्म ८, दैव ९, भाग्य १०, कर्म ११, यम १२, और कृतात १३, यह सर्व पूर्वकृत कर्मोंकेही पर्याय नाम है । जिस कारणसें ते पूर्वकृत कर्म यहा मनुष्य नही स्मरण करते है, तिस कारणसें, यह, हे पांडवज्येष्ठ ! दैव कहा जाता है ॥ १।२।३।४ ॥

"स्वभाववादिनश्चाहु ॥"

क कण्टकाना प्रकरोति तीक्ष्ण
विचित्रिता वा मृगपक्षिणा च ॥
स्वभावतः सर्वमिद प्रवृत्तं
न कामचारोस्ति कुतः प्रयत्न ॥ १ ॥
बदर्याः कण्टकस्तीक्ष्णो ऋजुरेकश्च कुंचितः ॥
फलं च वर्त्तुलं तस्या वद केन विनिर्मितम् ॥२॥

व्याख्या—स्वभाववादी ऐसें कहते हैं-कौन पुरुष कटकोंको तीक्ष्ण करता है ? और मृगपक्षीयोंका विचित्र रग विरगादि स्वरूप कौन करता है ? अपितु कोइभी नही करता है, स्वभावसेंही सर्व प्रवृत्त होते हैं, इस वास्ते अपनी इच्छासें कुछभी नही होता है, इसवास्ते पुरुषका प्रयत्न ठीक नही है । बेरीका एक कांटा ऋजु (सरळ) और तीक्ष्ण, और एक

कुंचित (वांका) और फल वर्त्तुल (गोल), हे प्रियवर ! कहो स्वभावविना येह किसने बनाए (रचे) हैं? ॥ १ । २ ॥

"अक्षरवादिनश्चाहुः ॥"

अक्षरात् क्षरितः कालस्तस्माद्व्यापक इष्यते ॥
व्यापकादिप्रकृत्यन्तः सैव सृष्टिः प्रचक्ष्यते ॥ १ ॥

"अपरेप्याहुः ॥"

अक्षरांशस्ततो वायुस्तस्मात्तेजस्ततो जलम् ॥
जलात् प्रसूता पृथिवी भूतानामेषसंभवः ॥ २ ॥

व्याख्या–अक्षरवादी कहते हैं–अक्षरसें क्षरका काल उत्पन्न हुआ, तिस हेतुसें कालको व्यापक माना है, व्यापकादि प्रकृतिपर्यंत सोही सृष्टि कहते हैं.

अपर ऐसे कहते हैं–प्रथम अक्षरांश, तिससें वायु उत्पन्न हुआ, तिस वायुसें तेज(अग्नि)उत्पन्न हुआ, अग्निसें जल उत्पन्न हुआ, और जलसें पृथिवी उत्पन्न हुइ, इन भूतोंका ऐसें संभव हुआ है ॥ १ । २ ॥

"अंडवादिनश्चाहुः ॥"

नारायणः परोऽव्यक्तादण्डमव्यक्तसंभवम् ॥
अण्डस्यान्तस्त्वमी भेदाः सप्तद्वीपा च मेदिनी ॥ १ ॥
गर्भोदकं समुद्राश्च जरायुश्चापि पर्वताः ॥
तस्मिन्नण्डेत्वमी लोकाः सप्त सप्त प्रतिष्ठिताः ॥ २ ॥
तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम् ॥
स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद् द्विधा ॥ ३ ॥
ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवं भूमिं च निर्ममे——इत्यादि——

व्याख्या–अंडवादी कहते हैं–नारायण भगवान् परमअव्यक्तसें, व्यक्त अंडा उत्पन्न हुआ, और तिस अंडेके अंदर यह भेद जो आगे कहते हैं, सातद्वीपवाली पृथिवी, गर्भोदक वर्षणेवाला जल, समुद्र, जरायु मनुष्यादि, और पर्वत, तिस अंडेविषे ये लोक सात २ अर्थात् चौदह भुवन प्रति-

ष्ठित है, सो भगवान् तिस अंडेमें एक वर्ष रहकरके अपने ध्यानसें तिस अंडेके दो भाग करता हुआ, तिन दोनों टुकडोंमें ऊपरले टुकडेसें आकाश और दूसरे टुकडेसें भूमि निर्माण करता भया इत्यादि।१।२॥३॥

"अहेतुवादिनश्चाहु॥"

हेतुरहिता भवन्ति हि भावा प्रतिसमयभाविनश्चित्राः॥
भावादृते न द्रव्यं सभवरहितं खपुष्पमिव॥१॥

व्याख्या—अहेतुवादी कहते हैं—[प्राय अहेतुवादी, परिणामवादी, और नियतिवादी, येह यदृच्छावादीहीके भेद मालुम होते हैं] प्रतिसमय होने वाले विचित्र प्रकारके जे भाव हैं, वे सर्व अहेतुसेंही उत्पन्न होते हैं, और भावसें रहित द्रव्यका सभव नहीहै, आकाशके पुष्पकीतरें ॥१॥

"परिणामवादिनश्चाहु ॥"

प्रतिसमयं परिणाम प्रत्यात्मगतश्च सर्व भावानाम्॥
संभवति नेच्छयापि स्वेच्छाक्रमवर्त्तिनी यस्मात् ॥१॥

व्याख्या—परिणामवादी कहते हैं—समय २ प्रति परिणाम, प्रति आत्मगत आत्मा २ प्रति प्राप्त हुआ, सर्वभावोंको संभव होता है, इच्छासें कुछभी नही होता है, क्योंकि स्वेच्छा क्रमवर्तिनी है, और परिणाम तो युगपत् सर्व पदार्थोंमें है ॥१॥

"नियतिवादिनश्चाहुः ॥"

प्राप्तव्यो नियतिबलाश्रयेण योऽर्थः
सोऽवश्यं भवति नृणां शुभोऽशुभो वा॥
भूताना महति कृतेऽपि हि प्रयत्ने
नाभाव्यं भवति न भाविनोस्ति नाशः॥१॥

सत्यं पिशाचाः स्म वने वसामो भेरीं कराग्रैरपि न स्पृशाम ॥
अयं च वादः प्रथितः पृथिव्या भेरीं पिशाचा किल ताडयन्ति॥२॥

व्याख्या—नियतिवादी कहते हैं—नियतिबलाश्रयकरके जो अर्थ प्राप्तव्य प्राप्तहोने योग्य है, सो शुभ वा अशुभ अर्थ पुरुषोंको अवश्यमेव होता है,

जीवोंके बहुत प्रयत्नके करनेसेंभी, जो नही होनहार है, वो कदापि नही होता है; और जो होनहार है तिसका कदापि नाश नही होता है. यथा हम साचे पिशाच हैं, और वनमें वसते हैं, भेरीको हम हस्ताग्रोंकरके भी स्पर्श नही करते हैं, तोभी यह वाद पृथिवीमें प्रसिद्ध है कि, निश्चयकरके भेरीको पिशाचही ताडना करते हैं (बजाते हैं) ॥ १ । २ ॥

"भूतवादिनश्चाहुः ॥"

पृथिव्यापस्तेजोवायुरिति तत्त्वानि तत्समुदायशरीरेंद्रियविषयसंज्ञामदशक्तिवच्चैतन्यंजलबुद्बुदवज्जीवो चैतन्यविशिष्ट कायःपुरुष इति ॥

भौतिकानि शरीराणि विषयाः कारणानि च ॥
तथापि मन्दैरन्यस्य कर्त्तृत्वमुपदिश्यते ॥ १ ॥
एतावानेव लोकोयं यावानिन्द्रियगोचरः ॥
भद्रे वृकपदं ह्येतत् यद्वदन्त्यबहुश्रुताः ॥ २ ॥
तपांसि यातनाश्चित्रा संयमो भोगवंचना ॥
अग्निहोत्रादिकं कर्म बालक्रीडेव लक्ष्यते ॥ ३ ॥

व्याख्या—भूतवादी कहते हैं—पृथिवी १, पाणी २, अग्नि ३, और वायु ४, येह चार तत्त्व हैं; तिनका समुदाय सोही शरीरेंद्रिय विषय संज्ञा है, और मदशक्तिकीतरें चैतन्य उत्पन्न होता है, जलके बुदबुदकीतरें जीव है, अचैतन्य विशिष्ट काया है, सोही पुरुष है, इति. ॥ ऐसें पूर्वोक्त भौतिक शरीर है, वेही विषय और कारण है, तोभी मूर्ख लोक अन्य ईश्वरादिको कर्त्तापणा कहते हैं. । यह लोक इतनाही है, जितना इंद्रियोंके गोचरविषय है; हे भद्रे ! जैसा यह जूठा कल्पित करा हुआ वृक (भेडीये) का पग है, अबहुश्रुत (अज्ञानी लोक) ऐसेही नरक स्वर्ग जूठे कल्पन करके मूर्खलोकोंको डराते हैं. । तप करना है, सो निःकेवल अनेक प्रकारकी पीडामात्र है, और जो संयम है, सो भोगोंकी वंचनारूप है, अग्निहोत्रादिक जे कर्म्म हैं, वे बालकोंकी क्रीडाकीतरें मालुम होते हैं. ॥ १।२।३ ॥

"अनेकवादिनश्चाहुः॥"

कारणानि विभिन्नानि कार्याणि च यत पृथक्॥
तस्मात्रिष्वपि कालेषु नैव कर्मास्ति निश्चय ॥ १ ॥

व्याख्या—अनेकवादी कहते हैं—कारणभी भिन्न है, और कार्यभी भिन्न है, तिसवास्ते तीनोही कालोंविषे कर्मोंकी आस्ति नही है ॥ १ ॥इतिपूर्वपक्ष ॥

इसपूर्वपक्षमें परवादीयोंके अभिमत पक्ष लिखतेहुए श्रीहरिभद्रसूरिजीनें, जो जो ऋग्वेद यजुर्वेदादिकोंकी श्रुतिया, तथा मनु गीताप्रमुख ग्रथोंके अनुसार थोडे २ व्यस्त श्लोक लिखे हैं, तिसका कारण यह है कि पूर्वपक्षोंके श्लोक बहुत हैं सर्व लिखते तो ग्रथ भारी हो जाता, इसवास्ते प्रतीकमात्रसें तिन सर्वमतवादीयोंके स्वपक्षस्थापनके सर्वश्लोक जान लेने

प्रथम इस अवसर्पिणीकालमें श्रीऋषभदेवजीनेही, अनतनयात्मक सर्वव्यापक स्याद्वादरसकूपिकाके रससमानसें सर्वजीवादितत्त्वोंका निरूपण करा था, तिसमेसें किंचिन्मात्र सार लेके सांख्यमत, और सांख्य मतका किंचित् आशय लेके वेदात, योग, मनुस्मृति, गीताप्रमुख शास्त्र ऋषिब्राह्मणोंने रचे जैसें आर्यवेदोंकी उत्पत्ति, और तिनका व्यवच्छेद, और अनार्यवेदोंकी उत्पत्ति हुई, तथा आर्यब्राह्मणोंकी, और अनार्यब्राह्मणोंकी उत्पत्ति, इत्यादि वर्णन हम जैनतत्त्वादर्शनामाग्रथमें लिख आए हैं, तहांसे जानना और प्राय इस ग्रथमें जे जे मत पूर्वपक्षमें लिखे हैं, वेभी सर्व जैनतत्वादर्शग्रथमें खडनरूपसें लिख दीए हैं, इहा तो केवल जो श्रीहरीभद्रसूरिजीने सामान्यप्रकारे समुच्चय पूर्वपक्षोंका खडन लिखा है, सोही लिखेंगे वाचकवर्गको विदित होवे कि, वेदकेसाथ स्मृति नही मिलती है, और स्मृतियोंकेसाथ पुराण नही मिलते हैं, इसवास्ते यह सर्वपुस्तक सर्वज्ञके कथन करे हुए नही है, परस्परविरुद्धत्वात् इसवास्ते पूर्वोक्त मतोंवालोंने जगत्विषयक जो जो कथन करा है, सो सर्व तिनोंका अज्ञानविजृंभित है क्योंकि, इस जगत्का यथार्थस्वरूप पूर्वोक्त मतवालोंमेसें किसीनेभी नही जाना है "तत्त ते नाभिजाणति नविनासी कयाइवि इतिवचनप्रामाण्यात्" ॥

अब ग्रंथकारने जो सामान्यसें पूर्वपक्षका खंडन लिखा है, सोही लिखतेहैं.

तेषामेवाविनिर्ज्ञातमसदृशं सृष्टिवादिनामिष्टम् ॥
एतद्युक्तिविरुद्धं यथातथा संप्रवक्ष्यामि ॥ १ ॥
सदसज्जगदुत्पत्तिः पूर्वस्मात्कारणात्स्वतो नास्ति ॥
असतोपि नास्ति कर्त्ता सदसद्भ्यां संभवाभावात् २ ॥
यदसत्तस्योत्पत्तिस्त्रिष्वपि कालेषु निश्चितं नास्ति ॥
खरशृंगमुदाहरणं तस्मात्स्वाभाविको लोकः ॥ ३ ॥
मूर्त्तामूर्त्तं द्रव्यं सर्वं न विनाशमेति नान्यत्वम् ॥
यद्वेत्येतत्प्रायः पर्यायविनाशो जैनानाम् ॥ ४ ॥
काश्यपदक्षादीनां यदभिप्रायेण जायते लोकः ॥
लोकाभावे तेषां अस्तित्वं संस्थितिः कुत्र ॥ ५ ॥

व्याख्या—तिन पूर्वोक्त सृष्टिवादीयोंने इस जगत्का स्वरूप यथार्थ जाना- हुआ नही है, और जो उनकों सृष्टिका स्वरूप इष्ट है, सोभी एकसरीषा नही है, कोइ कैसें माने है, और कोइ किसीतरें माने है, सो सर्व प्रायः ऊपर पूर्वपक्षमें लिख आए हैं; और जो इन पूर्वपक्षीयोंका मानना है, सोभी युक्तिप्रमाणसे विरुद्ध है, जैसें युक्तिप्रमाणसे विरुद्ध है, तैसें, मैं(श्रीहरिभद्रसूरि) सम्यक्प्रकारसें संक्षेपरूप कथन करूंगा. । जगत्की उत्पत्ति सत्कारणसें है वा असत्कारणसें है ? सत्कारणसेंभी नही है, और असत्कारणसेंभी नही है; और सृष्टिका कर्त्ता सत् असत् दोनों स्वरूपोंसें संभव नही हो सक्ता है, प्रमाणके अभावसें, सोही दिखाते हैं. । जेकर कारण सत्रूप है, तब तो कारण अपने स्वरूपको कदापि नही त्यागेगा, जब कारण अपने स्वरूपको नही त्यागेगा, तब कार्यरूप जगत् कैसें उत्पन्न होवेगा ? जेकर कारण अपने स्वरूपको त्यागके कार्य उत्पन्न करेगा, तब तो कारणका सत्स्वरूप नही रहेगा, तथा जगदुत्पत्तिसें पहिलां जो जगत्का कारण था, सो नित्यस्वरूपवाला था, वा, अनित्यस्वरूपवाला था ? जेकर नित्य माना- जायगा, तब तो तीनोंही कालमें जगत्की उत्पत्ति नही होवेगी, "अ प्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकरूपं नित्यं ॥"

यह नित्यका लक्षण है जब कारण अपने स्वरूपसें न क्षरेगा, अर्थात् नाश नही होवेगा, और नवीन स्वरूप धारण नही करेगा, तब कार्यको कैसें उत्पन्न करेगा? क्योंकि, मृत्पिंड, स्थास, शिवक, कोश, कशूला दि पूर्वरूपोंको त्यागकेही उत्तर रूपोंको प्राप्त होता है, जेकर कहोगे कार ण अनित्य है, तब तो सोभी कारण अन्यकारणसें उत्पन्न होना चाहिए, सोभी कारण अन्यकारणसें ऐसे माने अनवस्थादूषण होवे है, इसवास्ते सत् और नित्यकारणसें जगदुत्पत्ति कैसें हो सक्तीहै? अपितु कदापि नही हो सक्ती है

और एक यह बडा दूषण जगदुत्पत्ति माननेमें है कि, जब जगत्ही नही था, तब जगत्की उत्पत्तिका कारण और जगत्कर्त्ता ईश्वर, ये दोनों किस स्थानमें रहते थे? क्योंकि कोईभी स्थान रहनेवाला नही था जेकर कहोगे आकाशमें रहते थे, तो, यह कहनाभी मिथ्या है, क्योंकि, सांख्य शास्त्रमें, तथा वेदोंमें, आकाशकोभी उत्पत्तिवाला माना है, जो कि आगे लिखेंगे जब आकाशही नही उत्पन्न हुआ था, तब जगत्का सत् नित्यकारण, और कर्त्ता ये दोनों कहा रहते थे?

एक अन्यबात यह है कि, आकाशनाम शून्य पोलाडका है, जब शून्य पोलाडरूप आकाश नहीं था तो, क्या इहा कोइ निग्गर घनरूप था? क्योंकि, सप्रतिपक्ष जो वस्तु है, तिनमें जहां एक होवेगा, तहां दूसरेका अवश्य अभाव होवेगा, अंधकारउद्योतवत् जब घनरूप था, सो परमाणु आदि चारों महाभूतोंके सिवाय अन्य कोइ वस्तु सिद्ध नही होसक्ती है, और परमाणु आदि चार महाभूत आकाशविना कदापि किसी जगे नही रहसक्के हैं, इसवास्ते सत्कारणसें वा नित्यानित्यकार णोंसें जगत्की उत्पत्ति जे मानते हैं, तिनके घटमें अज्ञान विजृंभितके विना अन्य कोइ कारण नही है

तथा जगत्का जो कर्त्ता माना है, सो सत्स्वरूप है कि, असत्स्वरूप है? जेकर सत्स्वरूप है तो, फेर नित्य है कि, अनित्य है? इत्यादि

प्रायः कारणवालेही सर्व विकल्प जान लेने. तथा जब जगत्ही नही था, तब जगतका कर्ता कहां रहताथा? जेकर कहे सर्व जगें व्यापक था, तो, हे प्यारे! जब कोइ जगाही नही थी, तो, व्यापक किसमें था? क्योंकि, विना आकाशके कोइभी जड चैतन्य वस्तु नही रह सक्ती है, यह प्रमाण-सिद्ध है; और अप्रमाणिक कथनकों सत्य करके मानना, यह बुद्धिमानों-का काम नही है. जेकर असत्कारण, और असत्कर्त्ताके माननेसें जग-दुत्पत्ति होवे, तब तो खरशृंगसेंभी पुरुष उत्पन्न होना चाहिए; सोही ग्रंथ-कार दिखावे है. जिसवास्ते असत् जो है, तिसकी उत्पत्ति तीनोही का-लमें निश्चित नही होसक्ती है, इस कथनमें खरशृंगका दृष्टांत है, जैसें खरशृंग स्वरूपसें असत् है, तिस्सें कोइभी कार्य उत्पन्न नही होसक्ता है, तैसेंही असत्कारण और असत्कर्त्तासेंभी कोइ कार्य उत्पन्न नही हो-सक्ता है; तिसकारणसें प्रवाह अपेक्षा अनादि स्वभावसिद्ध लोक है, नतु ईश्वरादिरचित. ॥

मूर्त्तामूर्त्त जो द्रव्य है, परमाणु और परमाणुजन्य जो कार्यद्रव्य है, सर्व मूर्त्तद्रव्य है; जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श होवे, तिसकों मूर्तद्रव्य कहते हैं; और आत्मा आकाशादि अमूर्त द्रव्य है. ये दोनो स्वरूप, द्रव्योंके सर्वथा कदापि विनाश नही होते हैं, और न अन्यत्व, अर्थात् मूर्तद्रव्य कदापि अमूर्त्तभावकों प्राप्त नही होवे है, और न अमूर्त कदापि मूर्त भावकों प्राप्त होवे है; किंतु, यह जो जगत्की उत्पत्ति विनाश है, सो पर्या-यरूपकरके जैन मानते हैं, न तु द्रव्यरूपकरके. । काश्यपदक्षादिकोंके, आदिशब्दसें समलब्रह्महिरण्यगर्भब्रह्मादिके अभिप्रायसें जेकर जगत्की उत्पत्ति होवे, तब लोकके अभावसें तिनका काश्यप, दक्ष, हिरण्यगर्भा-दिकोंका अस्तिपणा, और रहना कहां था? कहांहीभी नही था. ॥ १।२।३।४।५ ॥

सर्वं धराम्बराद्यं याति विनाशं यदा तदा लोकः ॥
किं भवति बुद्धिरव्यक्तमाहितं तस्य किं रूपम् ॥ ६ ॥

व्याख्या–सर्व पृथिवी आकाशादि जिस अवसरमें नष्ट हो जावेंगे, तब इस लोकका क्या स्वरूप होवेगा? अव्यक्तस्थापितबुद्धिका क्या स्वरूप होवेगा? तात्पर्य यह है कि, साख्यमतवालोंके प्रकृतिपुरुष, और वेदांतियोंका अव्यक्त ब्रह्म, इन सर्वका रहनाभी आकाशादिके अभावमें प्रमाणसिद्ध नही होवेगा ॥ ६ ॥

यदमूर्त्तं मूर्त्तं वा स्वलक्षण विद्यते स्वलक्षणत ॥
तद्व्यक्त निर्दिष्ट सर्व सर्वोत्तमादेशै ॥ ७ ॥

व्याख्या–जिसपदार्थका मूर्त्त वा अमूर्त्त स्वलक्षण है, वो पदार्थ अपने लक्षणसें विद्यमान है, सो व्यक्त है, ऐसा सर्वोत्तमादेशोंकरके कहा है ॥ ७ ॥

द्रव्य रूप्यमरूपि च यदिहास्ति हि तत् स्वलक्षण सर्वम् ॥
तल्लक्षण नयस्य तु तद्वध्यापुत्रवद्ग्राह्यम् ॥ ८ ॥

व्याख्या—इस जगत्में जो रूपि वा अरूपि द्रव्य है, सो स्व २ लक्षणकरके विद्यमान है, जिसद्रव्यमें स्वलक्षण नही है, वो द्रव्य वन्ध्यापुत्रवत् जानना, अर्थात् वो द्रव्यही नही है, ॥ ८ ॥

यद्युत्पत्तिर्न भवति तुरगविषाणस्य खरविषाणाद्यात् ॥
उत्पत्तिरभूतेभ्यो ध्रुव तथा नास्ति भूतानाम् ॥ ९ ॥

व्याख्या–जैसें, खरशृगामसें घोडेके शृगकी उत्पत्ति नहीं होती है, तैसेंही मूर्त्तद्रव्यके स्वलक्षणयुक्तके न हुए अविद्यमानकारणोंसे निश्चय भूतोंकी उत्पत्ति नही है ॥ ९ ॥

तत्र व्यक्तमलिङ्गादव्यक्तादुद्भनिप्यति कदाचित ॥
सोमाग्निना तु न सभवोस्ति यदि न सन्ति भूतानि ॥ १० ॥
असति महाभूतगणे तेपामेव ननुसभवो नास्ति ॥
पशुपतिदिनपतिसोमाण्डव्यपितामहहरगणाम् ॥ ११ ॥
बुद्धिमनो भेदाना देहाभावे च सभवो नास्ति ॥

ईहापोहाभावस्तदभावे संभवाभावः ॥ १२ ॥
तदभावेस्ति न चिन्ता चिन्ताभावे क्रियागुणो नाऽस्ति ॥
कर्तृत्वमनुपपन्नं क्रियागुणानामसंभवतः ॥ १३ ॥

व्याख्या—तहां अलिंगवाले अव्यक्तसें व्यक्तस्वरूपकी तों कदाचित् उत्पत्ति होसक्ती है, दधिवत्; परंतु यदि भूतही नही है तो, सोमादिकोंकाभी संभव नही है. क्योंकि, जेकर शरीरके मूलकारणभूतही नही है तो, सोमादिकोंके शरीरका संभव कैसें होगा?। जब महाभूतोंका समूहही नही है तो, तिनके पशुपति (महादेव,) दिनपति, वत्स, मांडव्य, पितामह, ब्रह्मा, विष्णुके शरीरकाभी संभव नही होसक्ता है.।और देहके अभाव हुए बुद्धि, और मनके भेदोंका संभव नही है. क्योंकि, देहके विना मन और बुद्धिका संभव किसीप्रमाणसेंभी सिद्ध नही होसक्ता है, और बुद्धि मनके अभावसें ईहाअपोहका अभाव है, ईहानाम विचार करणेका है, और अपोहानाम निश्चय करणेके सन्मुख होनेका है, बुद्धिमनके अभावसें इन दोनोंका संभव नही है.? इहाअपोहाके अभावसें चिंता नही हो सक्ती है, और चिंताके अभावसें क्रियागुण नही है, क्रियागुणके संभव न होनेसें कर्त्तापणाकी अनुपपत्ति है; जब क्रियागुण नही है, तब कर्त्तापणा किसीप्रमाणसेंभी सिद्ध नही होता है.॥ १०।११।१२।१३ ॥

तेन कृतं यदि च जगत् स कृतः केनाकृतोथ बुद्धिर्वः ॥
विज्ञेयः सत्येवं भवप्रपंचोऽपि तद्वदिह ॥ १४ ॥

व्याख्या—जेकर यह जगत् तिस ईश्वरने रचा है तो, वो ईश्वर किसने रचा है? अथ जेकर तुमारी ऐसी बुद्धि होवे कि, ईश्वर तो किसीनेभी नही रचा है तो, ऐसेही जगत्का प्रपंचभी जानना चाहिए, अर्थात् जगत्भी ईश्वरकीतरें किसीने नही रचा है, किंतु प्रवाहसें अनादि है; ऐसे क्यों नही मानते हैं? ॥ १४ ॥

अभ्युपगम्येदानीं जगतः सृष्टिं वदामहे नास्ति ॥
पुरुषार्थैः कृतकृत्यो न करोत्याप्तो जगत्कलुषम् ॥ १५ ॥

अपकार प्रेतार्थे कस्तस्य कृत सुरादिभि किं वा ॥
संयोजितायदेते सुखदुःखाभ्यामहेतुभ्याम् ॥ १६ ॥
तुल्ये सति सामर्थ्ये किं न कृतो वित्तसंयुतो लोक ॥
येन कृतो बहुदु खो जन्मजरामृत्युपथि लोकः ॥ १७ ॥
यदि तेन कृतो लोको भूयोपि किमस्य सक्षय क्रियते ॥
उत्पादित किमर्थं यदि सक्षपणीय एवासौ ॥ १८ ॥
क संक्षिप्तेन गुणः को वा सृष्टेन तस्य लोकेन ॥
को वा जन्मादिकृत दु खं संप्रापितैः सत्वै ॥ १९ ॥
भूतानुगतशरीरं कुम्भाद्यं कुम्भकृत् यथा कृत्वा ॥
असकृद्भिनत्ति तद्वत् कर्त्ता भूतानि निस्त्रिंश ॥ २० ॥
भवसंभवदु खकरं नि कारणवैरिणं सदा जगत ॥
कस्तं व्रजेच्छरण्यं भूरि श्रेयोर्थमतिपापम् ॥ २१ ॥
स्वकृत जगत् क्षपयतस्तस्य न बन्धोस्ति बुद्धिरन्येषाम् ॥
किं न भवति पुत्रवधे बन्ध पितुरुग्रचित्तस्य ॥ २२ ॥
जगत प्रागुत्पत्तिर्यदि कर्त्तुर्विग्रहात् कथ तद्वत् ॥
अधुना न भवति तस्यैव विग्रहात्संभवस्तस्या ॥ २३ ॥
विविधासु यथायोनिषु सत्वाना साम्प्रतं समुत्पत्ति
नित्यं तथैव सिद्धा प्राहुर्लोकस्थितिविधिज्ञा ॥ २४ ॥
एवं विचार्यमाणा सृष्टिविशेषा परस्परविरुद्धा ॥
हरिहरविचारतुल्या युक्तिविहीना परित्याज्या ॥ २५ ॥

व्याख्या—अब हम अपने सिद्धांतकों अंगीकारकरके कहते हैं, जगत् की उत्पत्ति, ईश्वरने नही करी हे, क्योंकि, सर्व पुरुषार्थकरके जो ईश्वर कृतकृत्य हे, सो ईश्वर आप्त, मलीन जगत्को नही करता है जेकर करे तो, कृतकृत्य नही, आप्त नही, वीतराग नही, तब तो, वो ईश्वरही नही।

प्रेतादिकोंने तिस ईश्वरका क्या बुरा करा है? जिस्सें तिनको अधमपणे उत्पन्न करे; और देवतायोंने क्या ईश्वरऊपर उपकार करा? जिस्से तिनकों उत्तमपणे उत्पन्न करे; असुरोंकों दुःखमें और देवतायेंकों सुखमें विनाही हेतु जोड दिए, क्या एही ईश्वरकी न्यायशीलता है?। जेकर ईश्वर पक्षपातरहित, न्यायी, दयालु, सर्वसामर्थ्य है तो, सर्व लोकोंकों वित्त (धन,) कलत्र,पुत्रादिकरके तुल्य सुखी क्यों नही करे? और किसवास्ते जन्म जरा मृत्युके पथिकलोक रच दिए? जेकर तिस ईश्वरनेही लोक रचा है, तो फेर तिसका क्षय किसवास्ते करता है? जेकर क्षयही करणा था तो जगत्की उत्पत्ति करणेकी क्या आवश्यकता थी? तिस जगत्के क्षय करणेसें ईश्वरकों किसगुणकी प्राप्ति हुई? और तिसके रचनेसें क्या लाभ हुआ? और जीवोंकों जन्म देके दुःखी करनेसें तिस ईश्वरकों क्या लाभ हुआ?। जैसें कुंभकार कुंभादि करता है, और फेर तिनकों भांगता है, तैसेही ईश्वर जीवानुगतशरीर रचता है, और भांगता है, तब तो वो ईश्वर बडाही निर्दय है, ऐसा सिद्ध होवेगा.। जगत्–संभव दुःखोंका करनेवाला (देनेवाला), और जगद्वासीयोंका विनाहीकारण सदा वैरी (शत्रु,) ऐसे अतिपापरूप ईश्वरके शरणकों कौन बुद्धिमान् कल्याणार्थी अपने कल्याणकेवास्ते प्राप्त होवे? अपितु कोइ नही.। कितनेक लोकोंकी ऐसी बुद्धि होती है कि, अपने करे जगत्के क्षय करणेवाले तिस ईश्वरकों कर्मबंध नही है, यह कथन उनोंका अज्ञान विजृंभित है; क्या निर्दयचित्तवाले पिताकों पुत्रके बध करनेमें पापका बंध नही होता है? अवश्यमेव होता है; ऐसेंही ईश्वरकोंभी जगत् संहार करते हुए अवश्यमेव पापका बंध होवे है.। जगत्की उत्पत्ति प्रथम जेकर शरीरवाले कर्त्ताने करी है तो, कैसें तिसकीतरें अधुना संप्रातिकालमें जगत्की उत्पत्ति देहवाले कर्त्तासें होती हुई नही दीख पडती है? तात्पर्य यह है कि, प्रथम जेकर सृष्टि देहधारी ईश्वरने करी है तो, संप्रातिकालमें जो नवीननवीन सृष्टि उत्पन्न हो रही है, तिसकाभी कर्त्ता देहधारी ईश्वर हमकों दीखना चाहिए, परंतु दीखता नही है; और सृष्टि अपने कार-

णोंसें हो रही है, और अमूर्त्त देहरहित ईश्वर सृष्टिका कर्त्ता किसीप्रमाणसेंभी सिद्ध नही होता है, इसवास्ते जगत् ईश्वरका रचा हुआ नही है ॥ १५ । १६ । १७ । १८ । १९ । २० । २१ । २२ । २३ ॥

पूर्वपक्ष—जेकर ईश्वर जगत्का रचनेवाला नही, तो फेर इस जगत्की व्यवस्था कैसें माननी चाहिए ?

उत्तरपक्ष—नानाप्रकारकी योनियोंमें सप्रतिकालमें अपने २ कारणोंसें जैसें जीवोंकी उत्पत्ति हो रही है, और काल स्वभाव नियतिकर्म उद्यम जड चैतन्यमें प्रेरणशक्तिद्वारा जैसें इस जगत्की व्यवस्था हो रही है, ऐसेंही नित्यप्रवाहसें अनादि अनत सिद्ध है जे लोक स्थितिके विधिके जाननेवाले सर्वज्ञ है, तिनका ऐसा कथन है और युक्तिप्रमाणसेंभी ऐसाही सिद्ध होवे है ॥ २४ ॥

ऐसें विचार करतां थकां सृष्टिकी रचनामें विशेष कथन है, वे परस्परविरुद्ध है, ते सर्व ऊपर लिख दीखाए है जैसें हरिहर विरंचि प्रमुख सरागी देवोंमें परमेश्वरपणा प्रमाणयुक्तिसें सिद्ध नही होता है, तैसेंही प्रमाणयुक्तिसें जगत् ईश्वरकृत सिद्ध नही होता है, इसवास्ते ये सृष्टिरचनाके कथन युक्तिविहीन है, तिस्सेंही बुद्धिमानोंको त्यागने योग्य है ॥२५॥

मुक्तो वामुक्तो वास्ति तत्र मूर्त्तोथ वा जगत्कर्त्ता ॥
सदसद्वापि करोति हि न युज्यते सर्वथाकरणम् ॥ २६ ॥

व्याख्या—जगत्का कर्त्ता ईश्वर मुक्तरूप वा अमुक्तरूप, मूर्त्त वा अमुर्त्त, सत्रूप वा असत्रूप, किसीतरेंभी सिद्ध नही होता है ॥ २६ ॥

मुक्तो न करोति जगन्न कर्मणा वध्यते विगतराग ॥
रागादियुत सतनुर्निवध्यते कर्मणावश्यम् ॥ २७ ॥

व्याख्या—जो मुक्तरूप है, सो तो जगत्कों नही रचेगा, प्रयोजनाभावात् और जो वीतराग है, सो कर्मबंधनोंसें नही बंधाता है, जो रागसंयुक्त शरीरसहित है, सो अवश्यमेव कर्मोंकरके बंधाता है ॥ २७ ॥

ज्ञानचरित्रादिगुणैः संसिद्धाः शाश्वताः शिवाः सिद्धौ ॥
तनुकरणकर्म्मरहिता बहवस्तेषां प्रभुर्नास्ति ॥ २८ ॥

व्याख्या—ज्ञानदर्शनचारित्रादिगुणोंकरके जे संसिद्ध है, और जे मुक्तिमें शाश्वत शिवरूप है, और शरीर इंद्रियकर्मोंकरके रहित है, ऐसे अनंत आत्मा, सामान्यरूपसें एक, और विशेषरूपकरके अनंत, ऐसे तिन सिद्धोंका कोइ प्रभु ईश्वर नही है, किंतु आपही ज्योतिःस्वरूप है. ॥ २८ ॥

कर्म्मजनितं प्रभुत्वं संसारे क्षेत्रतश्च तद्भिन्नम् ॥
प्रभुरेकस्तनुरहितः कर्त्ता च न विद्यते लोके ॥ २९ ॥

व्याख्या—कर्मसंयुक्तकर्मजनित जो प्रभुपणा है, सो संसारमें है, राजादि; और क्षेत्रसें विचारिए तो, उर्द्ध अधो तिर्यक् लोकमें है; परंतु इस जगतसें भिन्न, कर्मरहित, शरीररहित, सर्वव्यापक, सृष्टिका कर्त्ता, एक ईश्वर इसलोकमें नही है. क्योंकि, पूर्वोक्त विशेषणोंवाला ईश्वर प्रमाणसें सिद्ध नही होता है. ॥ २९ ॥

अवगाहाकृतिरूपैः स्थैर्यभावेन शाश्वतेलोके ॥
कृतकत्वमनित्यत्वं मेर्वादीनां न संवहति ॥ ३० ॥

व्याख्या—अवगाहकरके, आकृतिकरके, रूपकरके, स्थैर्यभावकरके, इस शाश्वते लोकमें कृतकत्वपणा, अनित्यपणा, मेरुआदिपदार्थोंकों नही प्राप्त होता है. "तेषां शाश्वतत्वान्नित्यत्वाच्च" तिनोंकों शाश्वते और प्रवाहरूपसें नित्य होनेसें. ॥ ३० ॥

गुणवृद्धिहानिचित्रात् क्वचिन्महान् कृतो न लोकश्च ॥
इति सर्वमिदं प्राहुः त्रिष्वपि लोकेषु सर्वविदः ॥ ३१ ॥

व्याख्या—गुणवृद्धिहानिके विचित्र होनेसें समय २ उत्पादविनाशादिके होनेसें, कोइ जगेभी महान्का करा हुआ लोक नही है. ऐसें सर्व यह तीनों लोकमें, तीनोंही कालमें, सर्वज्ञ भगवान् कहते है. ॥ ३१ ॥

अद्धाचक्रमनीशं ज्योतिश्चक्र च जीवचक्र च ॥
नित्य पुनंति लोकानुभावकर्मानुभावाभ्याम् ॥ ३२ ॥

व्याख्या—अद्धाचक्र (कालचक्र) जो लोकमें वर्त्तता है, सो ईश्वरकृत नही है, ऐसेंही ज्योतिश्चक्र और जीवचक्र जानने, ये तीनों चक्र नित्य सदाही लोककी अनादि मर्यादाकरके, और जीवोंके शुभाशुभ कर्मोंके अनुभावसामर्थ्यकरके, प्रवर्त्त रहे हैं, नतु ईश्वरकी प्रेरणासें ॥ ३२ ॥

चंद्रादित्यसमुद्रास्त्रिष्वपि लोकेषु नातिवर्त्तते ॥
प्रकृतिप्रमाणमात्मायमित्युवाचोत्तमज्ञाता ॥ ३३ ॥

व्याख्या—चंद्र, सूर्य, समुद्र, ये, तीनो लोकमें जो अपनी मर्यादाका उल्लंघन नही करते है, यह भी अनादि लोकस्थिति, और जीवोंके कर्मोंहीके प्रभावसें है और प्रकृति अर्थात् देहप्रमाणव्यापक यह आत्मा है, ऐसें उत्तमज्ञानवान् कहते भए हैं ॥ ३३ ॥

सर्वा पृथिव्यश्च समुद्रशैला सस्वर्गसिद्धालयमतरिक्षम् ॥
अश्वत्रिम शास्वत एष लोक अतो वहिर्यत्तदलौकिक तु ॥ ३४ ॥

व्याख्या—सर्व पृथिवी, समुद्र, पर्वत, स्वर्ग (देवलोक) और सिद्धालय मुक्ताकाशचिदाकाशसहित अतरिक्ष आकाश, ये सर्व, तिनमें कितनेक तो स्वरूपसें अनादि है, और कितनेक प्रवाहसे अनादि है, इसवास्ते ईश्वरकृत नही है, किंतु यह लोक शाश्वत है, और इस लोकसें जो बाहिर है, सो अलोक है, नि केवल आकाशमात्र है ॥ ३४ ॥

प्रकृतीश्वरौ विधान काल सृष्टिर्विधिश्च दैवं च ॥
इति नामधनो लोक स्वकर्म्मतः समरत्यजगः ॥ ३५ ॥

व्याख्या—प्रकृति, ईश्वर विधान, काल, सृष्टि, विधि, दैव ये सर्व लोकके नाम है इसलोकम ससारी जीव अपन २ कर्मोंकरके भ्रमण करता है, नतु स्ववशासे ॥ ३५ ॥

कर्मानुभावनिर्म्मितनैकाकृतिजीवजातिगहनस्य ॥
लोकस्यास्य न पर्यवसानं नैवादिभावश्च ॥ ३६ ॥

व्याख्या–कर्मोंके अनुभावसमर्थसें जीवोंकी अनेक आकृति बन रही है, तिस अनेकाकृतीसंयुक्त जीवोंकी जाति, योनियोंकरके गहन इसलोकका कदापि पर्यवसान (छेहडा) नही है, और आदिपणाभी नही है. ॥३६॥

तस्मादनाद्यनिधनं व्यसनोरुभीमं
जन्मारदोषदृढनेम्यतिरागतुम्ब्यम् ॥
घोरंस्वकर्मपवनेरितलोकचक्रं
भ्राम्यत्यनारतमिदं हि किमीश्वरेण॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्धरिभद्रसूरिकृत लोकतत्त्वनिर्णयः ॥

व्याख्या–तिसवास्ते अनादि, अनंत और कष्टोंकरके भयजनक जन्मरूप अरे! दोषरूप दृढ चक्रकी नेमीधारा है, रागरूप तुंब घोर नाभी है, अपने २ कर्मरूप पवनका प्रेरा हुआ लोकचक्र निरंतर भ्रमण करता है, तो फेर ईश्वर कर्त्ताकी कल्पना करनेसें क्या लाभ है? कुछभी नही है. निःकेवल अज्ञानियोंके अज्ञानकी लीला है, जो कि, जगत्का कर्त्ता ईश्वर मानना ॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्धरिभद्रसूरिकृतलोकतत्त्वनिर्णयस्य बालावबोधः ॥

श्रीमत्तपोगणेशेन विजयानंदसूरिणा ॥
कृतोबालावबोधोयं परोपकृतिहेतवे ॥ १ ॥
इंदुबाणांकचन्द्राब्दे मधुमासे सिते दिले ॥
त्रयोदश्यां तिथौ बुधघस्त्रे पूर्त्तिमगात्तथा ॥ २ ॥

सर्व श्री संघसें हम नम्रतापूर्वक विनती करते हैं कि, महादेवस्तोत्र, अयोगव्यवच्छेद, और लोकतत्त्वनिर्णय नामक ग्रंथोंकी टीका तो हमकों मिली नही है, केवल मूलमात्र पुस्तक मिले हैं, सोभी प्रायः अशुद्धसें है, परंतु कितनेक मुनियोंकी प्रार्थनासें यह बालावबोधरूप किंचिन्मात्र भाषा लिखी है; इनमें ग्रंथकारके अभिप्रायसें जो कुछ अन्यथा लिखा होवे, वा जिनाज्ञासें विरुद्ध लिखा होवे तो, मिथ्यादुष्कृत हमकों होवे;

और जो हमारी इस बालक्रीडामें भूल होवे, सो सुज्ञ जनोंको सुधार लेनी चाहिए.

ऊपर हम अन्य २ मतोंवाले जिसतरें सृष्टि अर्थात् जगत्की उत्पत्ति मानते हैं, सो लिख आए हैं अथ प्रेक्षावानोंको विचार करना चाहिए कि, इन पूर्वोक्त सृष्टिवादीयोंमेंसें सत्य कथन किसका है, और मिथ्या कथन किसका है?

पूर्वपक्ष —जो तुमने सृष्टिविषयक मत लिखे हैं वे सर्वमतधारियोंकी कल्पना मिथ्या है, परंतु मनुस्मृति उपनिषद्वेदादिमें जो सृष्टिक्रम लिखा है, सो सर्व सत्य और माननीय है, अन्य सर्वमतावलंबियोंने अपने २ मतोंमें मिथ्या कल्पनामात्र लिखा है विशेषत वेदोंमें जो क्रम है, सो अधिकतर माननीय है, क्योंकि वेदोंमें जो कथन है, सो ब्रह्माजीका है

उत्तरपक्ष —मनुस्मृत्यादिका सृष्टिक्रम यदि सत्य होवे, और युक्तिप्रमाणसे अबाधित होवे तो ऐसा कौन प्रेक्षावान् है, जो तिसको न माने? परंतु हे प्यारे! मनुस्मृत्यादिमें जो सृष्टिक्रम है, सोभी परस्परविरुद्ध है, और युक्तिप्रमाणसें बाधित है, विशेषत वेदोंका और वेदोंमें जो कथन है तिसँसेंही यह सिद्ध होता है कि, वेद ईश्वरकृत नही है, जो कि, आगे किंचिन्मात्र लिखेंगे ॥

इति श्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्वनिर्णयप्रासादे लोकतत्वनिर्णयांतर्गतसृष्टिवर्णनो नाम पंचम स्तंभ ॥ ५ ॥

॥ अथ षष्ठस्तम्भारम्भः ॥

पंचमस्तंभमें लोकतत्वनिर्णयांतर्गत वेदस्मृत्याद्यनुसार संक्षेपरूप सृष्टिक्रम वर्णन करा, अथ षष्ठस्तंभमें कुछक विस्तारसें करते हैं पर व इस हमारे लेखको पक्षपात छोडके वाचक जन सूक्ष्मबुद्धिसें विचार करेंगे तो उनको सत्यासत्य कथन यथार्थ विदित हो जावेगा, और जो अपने वंशपरंपरासें चली आई रूढीकाही पक्ष करेंगे, तब तो तिनको

सत्य मोक्षमार्गकी प्राप्ति नही होवेगी.

अथ प्रथम मनुस्मृतिमें जैसे सृष्टिका क्रम लिखा है, सोही लिख दिखाते हैं.

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ॥
अप्रतर्क्यमिव ज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ ५ ॥
ततः स्वयंभूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम् ॥
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ॥ ६ ॥
योसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः ॥
सर्वभूतमयोचिन्त्यः स एव स्वयमुद्बभौ ॥ ७ ॥
सोभिध्यायशरीरात्स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ॥
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥ ८ ॥
तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ॥
तस्मिन् जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥ ९ ॥
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ॥
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ १० ॥
यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ॥
तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥ ११ ॥
तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम् ॥
स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद् द्विधा ॥ १२ ॥
ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवं भूमिं च निर्ममे ॥
मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम् ॥ १३ ॥
उद्बबर्हात्मनश्चैव मनः सदसदात्मकम् ॥
मनसश्चाप्यहंकारमभिमन्तारमीश्वरम् ॥ १४ ॥
महान्तमेव चात्मानं सर्वाणि त्रिगुणानि च ॥
विषयाणां ग्रहीतॄणि शनैः पञ्चेन्द्रियाणि च ॥ १५ ॥

तेषा त्ववयवान् सूक्ष्मान् पण्णामप्यमितौजसाम् ॥
सन्निवेश्यात्ममात्रासु सर्वभूतानि निर्ममे ॥ १६ ॥
यन्मूर्त्यवयवा सूक्ष्मास्तस्येमान्याश्रयन्ति षट्॥
तस्माच्छरीरमित्याहुस्तस्य मूर्तिं मनीषिण ॥ १७ ॥
तदाविशन्ति भूतानि महान्ति सह कर्मभि ॥
मनश्चावयवैः सूक्ष्मैःसर्वभूतकृदव्ययम् ॥ १८ ॥
तेषामिद तु मनाना पुरुषाणा महौजसाम् ॥
सूक्ष्माभ्यो मूर्तिमात्राभ्य सभवत्यव्ययाद्व्ययम् ॥१९॥
आद्याद्यस्य गुणं त्वेषामवाप्नोति पर परः ॥
योयो यावतिथश्चैषा सस तावद्गुण स्मृत ॥ २० ॥
सर्वेषा तु सनामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्॥
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ॥ २१ ॥
कर्मात्मना च देवाना सोऽसृजत् प्राणिना प्रभुः ॥
साध्याना च गणं सूक्ष्मं यज्ञं चैव सनातनम् ॥ २२॥
अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ॥
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजु सामलक्षणम् ॥ २३ ॥
कालं कालविभक्तीश्च नक्षत्राणि ग्रहास्तथा ॥
सरितः सागरान् शैलान् समानि विषमाणि च ॥ २४॥
तपो वाचं रतिं चैव कामं च क्रोधमेव च ॥
सृष्टिं ससर्ज चैवेमां स्रष्टुमिच्छन्निमा प्रजाः ॥ २५ ॥
कर्मणा च विवेकार्थं धर्माधर्मौ व्यवेचयत् ॥
द्वन्द्वैरयोजयच्चेमा सुखदु खादिभिः प्रजा ॥ २६ ॥
अण्व्योमात्रा विनाशिन्यो दशार्द्धानां तु याः स्मृताः ॥
ताभिः सार्द्धमिदं सर्वं संभवत्यनुपूर्वश ॥ २७ ॥

यं तु कर्म्माणि यस्मिन् स न्ययुङ्क्त प्रथमं प्रभुः ॥
स तदेव स्वयं भेजे सृज्यमानः पुनः पुनः ॥ २८ ॥
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्म्माधर्म्मावृतानृते ॥
यद्यस्य सोऽदधात् सर्गे तत्तस्य स्वयमाविशेत् ॥ २९ ॥
यथर्त्तुलिङ्गान्यृतवः स्वयमेवर्त्तुपर्य्यये ॥
स्वानि स्वान्यभिपद्यन्ते तथा कर्म्माणि देहिनः ॥ ३० ॥
लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः ॥
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्त्तयत् ॥ ३१ ॥
द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषो ऽभवत् ॥
अर्द्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत् प्रभुः ॥ ३२ ॥
तपस्तप्त्वाऽसृजद्यं तु स स्वयं पुरुषो विराट् ॥
तं मां वित्तास्य सर्वस्य स्रष्टारं द्विजसत्तमाः ॥ ३३ ॥
अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ॥
पतीन् प्रजानामसृजं महर्षीनादितो दश ॥ ३४ ॥
मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ॥
प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च ॥ ३५ ॥
एते मनूंस्तु सप्तान्यानसृजन् भूरितेजसः ॥
देवान् देवनिकायांश्च महर्षींश्चामितौजसः ॥ ३६ ॥
यक्षरक्षःपिशाचांश्च गन्धर्वाप्सरसोऽसुरान् ॥
नागान् सर्पान् सुपर्णांश्च पितॄणां च पृथग्गणान् ॥ ३७ ॥
विद्युतोशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च ॥
उल्कानिर्घातकेतूंश्च ज्योतींष्युच्चावचानि च ॥ ३८ ॥
किन्नरान् वानरान् मत्स्यान् विविधांश्च विहंगमान् ॥
पशून् मृगान् मनुष्यांश्च व्यालांश्चोभयतोदतः ॥ ३९ ॥

क्रिमिकीटपतङ्गाश्च यूकामक्षिकमत्कुणम् ॥
सर्वं च दंशमशक स्थावर च पृथग्विधम् ॥४०॥
एवमेतैरिद सर्वं मन्नियोगान्महात्मभि ॥
यथा कर्मतपोयोगात् सृष्ट स्थावरजगमम्॥४१॥म०अ०१

व्याख्या—(इव) यह जगत्, तममें (स्थित) लीन था, प्रलयकालमें सूक्ष्मरूपकरके प्रकृतिमें लीन था, प्रकृतिभी ब्रह्मात्मकरके (अव्याकृत) अलग नही थी, इसवास्तेही (अप्रज्ञात) प्रत्यक्ष नही था,(अलक्षण) अनुमानका विपयभी नही था, (अप्रतर्क्य) तर्कयितुमशक्य तदा वाचक स्थूलशब्दके अभावसें इसवास्तेही अविज्ञेय था, अर्थापत्तिकेभी अगोचर था, इसवास्ते (प्रसुप्तमिव सर्वत) सर्वओरसें सूतेकीतरें स्वकार्य करणे असमर्थ था ॥ ५ ॥ अथ क्या होता भया सो कहे हैं तव प्रलयके अवसानानतर स्वयभू परमात्मा (अव्यक्त) वाह्यकरण अगोचर (इव) यह महाभूत आकाशादिक आदिशब्दसें महदादिकोंकों (व्यजयन् अव्यक्तावस्थ) प्रथम सूक्ष्मरूपकरके रहेकों स्थूलरूपकरके प्रकाश करता हुआ, (वृत्तौजा) सृष्टि रचनेका सामर्थ्य अव्याहत है जिसका, (तमोनुद) प्रकृतिका प्रेरक ॥६॥ जो सो (अतींद्रियग्राह्य) ईश्वर सूक्ष्म वाह्येंद्रियअगोचर (अव्यक्त) अवयवरहित (सनातन) नित्य (सर्वभूतमय) सर्वभूतात्मा इसवास्तेही (अचिंत्य) इतना है ऐसा न जाननेसें अचिंत्य है, सो परमात्माही आप महदादिकार्यरूपकरके प्रकट हुआ ॥७॥ सो परमात्मा नानाविध प्रजा रचनेकी इच्छावाला 'अभिध्यायापो जायता' ऐसें अभिध्यानमात्रकरकेही (अप्) पाणी प्रथम उत्पन्न करता भया, तिस पाणीमें शक्तिरूपवीजकों आरोपित करता भया॥८॥ सो वीज परमेश्वरकी इच्छासें सुवर्णसदृश अंडा होता भया, सूर्यसमान जिसकी प्रभा है, तिस अंडेमें (हिरण्यगर्भ) ब्रह्मा सर्वलोकोंका पितामह आपही उत्पन्न भया ॥ ९ ॥ पाणीका नाम नारा है, क्योंकि, पाणी जो है सो नरनाम परमात्मा ईश्वरके अपत्य—पुत्र है, सोही (नारा) पाणी इस ब्रह्मरूप परमात्माका (अयन) आश्रय है, इसवास्ते परमात्माकों नारायण

कहते हैं ॥ १० ॥ जो सो परमात्मारूप कारण (अव्यक्त) बाह्येंद्रियोंके अगोचर (नित्य) उत्पत्तिविनाशरहित सत् असत् आत्मक तिसने जो उत्पन्न करा पुरुष, तिसकों लोकमें ब्रह्मा कहते हैं. ॥ ११ ॥ तिस अंडेमें ब्रह्मा ब्रह्ममानवाले वर्षतक रह करके अपने ध्यान करके तिस अंडेके दो भाग करता भया. ॥ १२ ॥ तिन दोनों खंडोंसें—भागोंसें—ऊपरले भागसें देवलोक, और नीचले भागसें भूलोक, और दोनों भागोंके बीचमें आकाश विदिशासहित आठ दिशा और पाणीका स्थिरस्थान समुद्र इनकों रचता भया. ॥ १३ ॥ ब्रह्मा परमात्माके पाससें तिसरूपकरके मनका उद्धार करता भया, युगपत् ज्ञान अनुत्पत्तिलक्षणसें मन सत् है, और अप्रत्यक्ष होनेसें असत् है, मनके पहिले अहंकारतत्त्व अहं ऐसा अभिमाननामक कार्ययुक्त ईश्वर स्वकार्यरक्षणसमर्थकों उत्पन्न करता भया. ॥ १४ ॥ महत्नामक जो तत्त्व है तिसकों अहंकारसें पहिले परमात्मासेंही उद्धार करता भया, और आत्माकों उपकार करनेवाली तीनो गुण सत्त्व रजः तमःयुक्त विषयोंके ग्रहणहारि पांच इंद्रियोंको क्रमकरके उत्पन्न करता भया और च शब्दसें पायुआदि पांच कर्मेंद्रिय और पांच तन्मात्रको उत्पन्न करता भया. ॥ १५ ॥ तिन पूर्वोक्त अहंकार और पांच तन्मात्र छहोंके सूक्ष्म जे अवयव है तिन अवयवोंको आत्ममात्रविषे पूर्वोक्त छहोंकें अपने विकारोंमें जोडकरके मनुष्य तिर्यक्स्थावरादि सर्वभूतोंको परमात्मा रचता भया, तिनमें तन्मात्रोंका विकार पांच महाभूत, और अहंकारका इंद्रियां, पृथिवीआदिभूतोंविषे शरीररूपकरके परिणत ऐसें भूतोंविषे तन्मात्र और अहंकारकी योजना करके संपूर्ण कार्यजातका निर्माण करा, इसीवास्तेही पूर्वोक्त ६,(अमितौजस)अनंतकार्यके निर्माण करनेसें अतिवीर्यशाली है॥१६॥ जिसवास्ते (मूर्त्ति) शरीर है, तिसके संपादक अवयव सूक्ष्म तन्मात्र अहंकाररूप षट् है, प्रकृतिसहित तिस ब्रह्मके यह जे आगे कहेंगे वे भूत और इंद्रिय पूर्व कहे हुए कार्यपणेकरके आश्रय करते हैं, तन्मात्रोंसें भूतोंकी उत्पत्ति होनेसें और अहंकारसें इंद्रियोंकी उत्पत्ति होनेसें, तिसवास्ते तिस ब्रह्मकी मूर्त्ति (स्वभाव) तिनको तैसें परिणतोंकों इंद्रियादिशा-

लिनीको लोक शरीर ऐसा कहते हैं, छर्होंके आश्रयणसें शरीर ऐसे निर्वचनसें पूर्वोक्त उत्पत्तिक्रमही दृढ करा ॥ १७ ॥ सो ब्रह्म शब्दादि पचतन्मात्रात्मकरके अवस्थित महाभूत जे है, आकाशादिक (आवि शति) तिनसें उत्पन्न होता है, कर्मोंकरकेसहित स्वकार्योंकरके तहां आकाशका अवकाशदानकर्म, वायुका व्यूहन विन्यासरूप, तेजका पाक, पाणीका पिंडीकरणरूप, पृथिवीका धारणकरणा, अहकारात्मकरके अवस्थित ब्रह्म मनअहकारसें उत्पन्न होता है, अवयवों करके अपने कार्योंकरके शुभाशुभ सकल्प सुखदु खादिरूपकरके सूक्ष्म बाहिरइद्रियोंके अगोचर होनेसें सर्वभूतोंका करा सर्वोत्पत्ति निमित्त मनोजन्य शुभाशुभ कर्मोंसें उत्पन्न होनेसें जगत्को (अव्यय) अविनाशी है ॥ १८ ॥ तिन पूर्वोक्त प्रकृतियोंको महत् अहंकार तन्मात्राको, सप्त सख्याको, पुरुपसें अपणेको उत्पन्न होनेसें तद्भक्तिमाप्त होनेसें ' पुरुपाणा महोजसां ' स्वकार्य सपादन करनेसें वीर्यवंतोंको सूक्ष्म जे मूर्तिमात्र शरीरसपादक भाग है तिनसें यह जगत् नश्वर होता है, अनश्वरसें जो कार्य है, सो विनाशी है, स्वकारणमें लय होता है, और कारण तो कार्यकी अपेक्षा थिर है, परमकारण तो ब्रह्म नित्य उपासना करनेयोग्य है, यह दिखाते हुए यह अनुवाद है ॥१९॥तिन भूतोंको आकाशादिक्रमकरके उत्पत्तिक्रम है,शब्दादिगुणवत्ता कहेंगे तहा आदिके(आकाशादिके)गुण शब्दादिक है वाय्वादि परस्पर प्राप्त होते हैं, यही बात स्पष्ट करते है,'पोयइति' इनके बीचमेसें जो जितनोंकरके पूर्ण है, सो यावतिथ कथिए हैं 'सत्तद्वितीयादि' दूसरा दो गुणवाला, तीसरा तीन गुणवाला, ऐसें मनुआदिकोंने कहा है इस कथनसें यह कहा, आकाशका शब्दगुण, वायुका शब्दस्पर्श, तेजका शब्दस्पर्शरूप, अपूका शब्दस्पर्शरूपरस, भूमिका शब्दस्पर्शरूपरसगध ॥२०॥ सो परमात्मा हिरण्यगर्भरूपकरके अवस्थित हुआ सर्ववस्तुयोंके नाम, गोजातिका गो, अश्वजातिका अश्व, कर्म, ब्राह्मणको पठन करना, क्षत्रियको प्रजा रक्षादि, पृथक् २ जिसके पूर्वकल्पमें जे जे नाम कर्म थे, वे सृष्टिकी आदिमें वेद शब्दोंसें जान कर निर्माण करता भया॥२१॥सो ब्रह्मा देवनायोंके गणसमूहको

सृजन करता भया, प्राणीयोंको इंद्रादिकोंके कर्म आत्मस्वभाव है जिनका तिनकों, और पाषाणादिकोंको, और देवतायोंके साध्योंको, देवविशेषोंके समूह, यज्ञ ज्योतिष्टोमादिकोंको, कल्पांतरमेंभी अनुमीयमान होनेसें नित्य है इनकों सृजन करता भया ॥ २२ ॥ ब्रह्मा, ऋग्, यजुः, साम, नामक तीनवेदोंकों अग्नि, वायु, रविसें आकर्षण करता भया; सनातन नित्य वेद अपौरुषेय है, ऐसें मनुको सम्मत है, यज्ञकी सिद्धिकेवास्ते दोहन करता भया; ॥ २३ ॥ आदित्यादिक्रिया, प्रचयरूपकाल, कालविभक्ति मास ऋतु अयनादि, नक्षत्र कृत्तिकादि ग्रह सूर्यादि नदीयां समुद्रादिकों, पर्वतोंको समविषम ऊंचनीच स्थानोंकों रचता भया ॥२४॥ तपः—प्राजापत्यादि, वाचं-वाणी, रति—चित्तका परितोष, काम—इच्छा, क्रोध इनकों रचता भया; येह प्रजा वक्ष्यमाण देवादिकोंकी रचना करनेकी इच्छा करता भया; ॥२५॥ कर्मणांचेति—धर्मयज्ञादिक, सो कर्त्तव्य है; अधर्म—ब्रह्मादिबध, सो न कररना; ऐसें कर्मोंके विभागतांइ धर्माधर्मका विवेचन करता भया, पृथक् करके कहता भया; धर्मका फल सुख, अधर्मका फल दुःख, धर्माधर्मके फल भूत दोनों परस्पर विरुद्धोंकरके सुखदुःखादिकोंकरके इस प्रजाकों योजन करता भया; आदिग्रहणसें काम, क्रोध, राग, द्वेष, क्षुधा, पिपासा, शोक मोहादिकरके युक्त करता भया ॥२६॥ दशार्द्धानां पंचमहाभूतोंके जे सूक्ष्म पंचतन्मात्ररूप विनाशी पांच महाभूतरूपपणे परिणामी जे है, तिनोके साथ कथन करा, और करेंगे. ऐसा यह जगत् उत्पन्न होता है. अनुक्रमकरके सूक्ष्मसें स्थूल, स्थूलसें स्थूलतर, इसकरके सर्वशक्तिसें ब्रह्मकी मानस सृष्टि कदाचित् तत्त्वनिरपेक्षाही होवेगी, ऐसी शंकाको दूर करता हुआ तत् द्वारकरकेही यह सृष्टि ऐसा मध्यमे फेर स्मरण करता भया. ॥ २७ ॥ सो प्रजापति जिसजातिविशेषकों व्याघ्रादिकोंको, जिस क्रिया हरिणादिमारणारूपमें, सृष्टिकी आदिमें जोडता भया, सो जातिविशेष वारंवार सृजन करतां स्वकर्मोंके वश करके तैसाही आचरण करते हुए. इस कहनेकरके प्राणियोंके कर्मानुसार प्रजापतिने उत्तमाधम जातियां रची है, नतु रागद्वेषाधीनसें. ॥ २८ ॥ इसकाही विस्तार करते हैं, (हिंस्र कर्म) सिंहादिकोंको

हाथीमारणादिक,(अहिंस्र) हरिणादिक, (मृदु) दयाप्रधान विप्रादि,(क्रूर) क्षत्रियादिकोंको, (धर्म) जेसें ब्रह्मचर्यादि, (अधर्म) जेसें मांसमैथुनादि सेवन करना, सत्य बोलना, असत्य बोलना, सृष्टिकी आदिमें प्रजापति जिसमें जो कर्म स्थापन करता भया, सो कर्म पीछेसें अदृष्टवशसें स्वयमेवही प्राप्त होता भया ॥२९॥ इस अर्थमें दृष्टांत कहते हैं, जैसें वसंतादिऋतुयोंमें ऋतुके चिन्ह आम्रमंजरीआदि स्वकार्यावसरमें आपही प्राप्त होते हैं, तैसेंही जीवोंको हिंसादि कर्म जानने ॥३०॥ भूलोकोंके बहुतवास्ते मुख, बाहु ऊरु, पगोंसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रोंको यथाक्रम निर्मित करता भया ॥ ३१ ॥ सो ब्रह्मा निज देहके दो खंड करके एक खंडका पुरुष बना, और दूसरे खंडकी स्त्री बनी, तिस स्त्रीविषे मैथुन धर्म करणेसें विराट्नामा पुरुषको निर्मित करता भया ॥३२॥ सो विराट् तप करके जो निर्माण करता भया, तिस वस्तुको मुझको बतलाउ हे द्विजोत्तम! इस सर्वजगतके रचनेवालेको ॥३३॥ मैं प्रजाको सृजन करनेकी इच्छा करता थका सुदुश्चर तप तपके दश प्रजापतियोंको प्रथम सृजन करता भया क्योंकि, तिनोंकरके प्रजा सृजमान होनेसें ॥३४॥ मरीचि १, अत्रि २, अंगिरस ३, पुलस्त्य ४, पुलह ५, क्रतु ६, प्रचेतस ७, वसिष्ट ८, भृगु ९, और नारद १० ॥३५॥ येह मरीचिआदि दश बडे तेजवाले अन्य सप्त परिमाणरहित मनुयोंको देवतायोंको ब्रह्मके सृजन करे हुए देव निवास स्थानक स्वर्गादिकोंको और महाऋषियोंको सृजन करता भया यह मनुशब्द अधिकारवाची है इसवास्ते चौदह मन्वन्तरोंमें जिसको जहां सर्गादिका अधिकार है सो इस मन्वन्तरमें स्वायंभुव स्वारोचिषनामा करके मनु कहा जाता है ॥ ३६ ॥ यक्ष, वैश्रवण राक्षस, तिसके अनुचर रावणादि, पिशाच गंधर्व अप्सरस असुर नाग, सर्प गरुड पितरोंका इनका पृथक् २ रचना भया ॥ ३७ ॥ विजली, अशनि मेघ इन्द्रधनु- उल्का सप्रकाशरेखा भूमि आरंभिम निर्घात उत्पातध्वनि केतु तारा अन्य ज्योतिषि ग्रह अस्तादि नाना प्रकारके रचता भया ॥ ३८ ॥ किन्नर वानर मत्स्य नानाप्रकारके पक्षियोंको पशु मृग मनुष्योंको, व्याल

सिंहादि दो है दांतकी पंक्ति हेठोपरि जिनके तिनकों रचता भया. ॥३९॥ क्रमी, कीट, पतंग, यूका, माकड, मक्षिका, दंश, मशक, स्थावर वृक्षलतादिभेद भिन्न विविधप्रकारके रचता भया. ॥ ४० ॥ इन मरीचि आदिकोंने यह सर्व स्थावर जंगम सृजन करा, (यथाकर्म) जिसजीवकेजैसें कर्म थे तिस अनुसार देव मनुष्य तिर्यगादिमें उत्पन्न करे, मेरी आज्ञासें, तप योगसें बडा तप करके सर्व ऐश्वर्य तपके अधीन है,यह दिखलाया.॥४१॥ मनु० अ० १ ॥

[समीक्षा] वेदोंका कथन जो सृष्टिविषयक है, सो पाठकगणोंके वाचनार्थे संक्षेपसें प्रायः श्रुतियांसहित लिखेंगे, इहां मनुस्मृतिके कथनका किंचित् स्वरूप लिखते हैं, क्योंकि मनुस्मृतिभी वेदतुल्य, वा वेदोंसेंभी अधिक मानी जाती है; उपनिषद जो वेदका सार कहनेमें आता है तिनकी मूलश्रुतिमें मनुकी प्रशंसा लिखी है. मनुस्मृतिके प्रथम अध्यायके ५-६-७ श्लोकोंमें जो सृष्टिसंबंधि कथन है, सो प्रायः ऋग्वेदकी प्रलयादिके समानही है, इसवास्ते आठमे श्लोकसें विचार करते हैं.

सो परमात्मा नानाविध प्रजा रचनेकी इच्छावंत हुआथका ध्यानसें 'आपो जायन्तां' ऐसें ध्यानमात्रसें पहिलां पाणीही रचता भया, पाणी सृजनेसें पहिलां ब्रह्म अव्याकृत था, अव्याकृत शब्दकरके पंचभूत ५, पंच बुद्धींद्रिय ५, पंच कर्मेंद्रिय ५, प्राण १, मन १, कर्म १, अविद्या १, वासना १, ये सर्व सूक्ष्मरूपकरके शक्तिरूपकरके ब्रह्मकेसाथ रहे, तिसका नाम अव्याकृत है. ॥ इति मनुस्मृतिटीकायां. ॥ इस पूर्वोक्त कथनसें ता, सांख्यमतवालोंकी मानी प्रकृति सिद्ध होती है, और मनुने सृष्टिका क्रमभी महदहंकारादिक्रमसें कहनेसें प्रायः सांख्यमतकी प्रक्रियाही अंगीकार करी मालुम होती है; इस्सें सांख्यशास्त्र मनुसें पहिलें सिद्ध होता है. जब सूक्ष्मरूपसें प्रकृति, ब्रह्मसें भेदाभेदरूपसें प्रलयदशामें थी, तब तो अद्वैतमत निर्मूल हुआ, और ब्रह्मके साथ माया, वा, प्रकृति भेदाभेदरूपसें माननी यह युक्तिविरुद्ध है. क्योंकि, जेकर भेद है तो कथं अभेद? और जेकर अभेद है तो, कथं भेद? यह दोनो पक्ष एक अधि-

करणमें कैसें रह सक्ते है? यह कहना तो ऐसा हुआ कि, जैसें कोइ उन्मत्त कहता है, मेरी माता तो है, पर वंध्या है इस पूर्वोक्त कथनमें मनुजीने, तथा ऋग्वेदके कर्त्ताने, छिपकरके स्याद्वादका किंचित् शरण लिया मालुम होता है क्योंकि, स्याद्वादविना कदापि भेदाभेद पक्ष सिद्ध नही होता है स्याद्वाद तो परमेश्वरकी सर्वपदार्थोंपर मोहर छाप लगी हूई है, जिसवस्तु उपर स्याद्वादरूप मोहर छाप नही, सो वस्तु खरशृंगवत् एकांत असत् है, 'स्याभ्रेद स्यादभेद मलयुक्तसुवर्णवत्' जैसें सोना और मल अव्याकृत, अर्थात् विभागरहित एक पिंडीरूप है, परंतु सुवर्णकी विवक्षा करीए तब तो कथंचिद् भेद है, सर्वथा नही, जेकर सर्वथाही भेदविवक्षा करीए तब तो, सुवर्णकी पिंडीमें मल न होना चाहिये और जेकर सुवर्ण और मलका एकांत अभेदही मानीए तब तो, सुवर्णकी पिंडीमें सर्वथा मल न होना चाहिये, किंतु एकांत सुवर्णही होगा इसवास्ते कथंचित् भेदाभेद पक्ष बनता है, परंतु स्यात्पदके विना केवल भेदाभेद पक्ष नही सिद्ध होता है, और जहां कथंचित् भेदाभेद पक्ष माना जावेगा, तहां अवश्यमेव दो वस्तुयों माननी पडेगी, क्षीरनीरवत् इसवास्ते अव्याकृत ब्रह्म कथंचित् द्वैत, कथंचित् अद्वैत मानना पडेगा, इसवास्ते वेदांतियोंका एकांत अद्वैतपक्ष तीनकालमेंभी सिद्ध नही हो सक्ता है और जडकार्यका उपादान कारणभी जड, और चैतन्यकार्यका उपादनकारण चेतन्यही सिद्ध होवेगा, इसवास्ते एक चैतन्य ब्रह्म, जडचैतन्यरूप जगत्का कदापि उपादानकारण सिद्ध नही हो सक्ता है, इसवास्ते श्रुतिस्मृत्यादिकोंमें जो लिखा है कि, मैं एकही जडचैतन्य अनेकरूप हो जाऊ, यह प्रमाणबाधित है और ब्रह्मको जो जगत् रचनेकी इच्छा हुई, यह भी कथन मिथ्या है, क्योंकि, शरीरकेविना मन नही, और मनविना इच्छा नही, यह प्रमाणसिद्ध है, ऊपरभी लिख आए हैं

अंडा रचा, यह कथन, ऋग्वेदयजुर्वेदकी श्रुतिसें, और गोपथब्राह्मणादिसें विरुद्ध है, क्योंकि, ऋग्वेदमें अंडा नही कहा, यजुर्वेद और गोपथब्राह्मणमें ब्रह्माकी उत्पत्ति कमलसें कही है तिस अंडेमें परमात्मा

आपही ब्रह्मा होता भया, अन्य जगे वेदमें ब्रह्माको अज कहा हैं, यह परस्परविरुद्ध है. तिस अंडेमें ब्रह्माजीने ब्रह्माके एक वर्षतक वास करा, अंडेमेंही रहा, यह कथन मनुकी टीकामें हैं. ब्रह्माके एक वर्षके मनुष्योंके ३१,१०,४०,००,००,००० वर्ष होवे हैं. तथाहि. ॥

१ एक वर्ष देवताका, ३६० वर्ष मनुष्यके। देवताके १२००० वर्षका एक युग देवताका। जिसमें मनुष्यके चतुर्युग–वर्ष–४३,२०,०००। देवताके २००० युगका एक ब्रह्माका अहोरात्र–८,६४,००,००,००० मनुष्यवर्ष। ३६० दिनका एक वर्ष, जिसमें मनुष्यके वर्ष–३१,१०,४०,००,००,०००। इतने वर्षतक ब्रह्माजी तिस अंडेमें रहे.

इतने वर्षतक अंडेमें रहनेका क्या कारण था? क्या ब्रह्माजी तिस अंडेसें निकलनेका रस्ता मार्ग ढूंढते रहे? किंवा वौंदल गए? कुछ सूज नही पडती थी? किंवा तिस अंडेके मापनेमें इतने वर्ष लग गए? किंवा अब मैं क्या करूं ऐसी चिंतामें इतने वर्ष व्यतीत हो गए? किंवा उत्पत्तिके दुःखसें इतने वर्षतक विश्राम करा? किंवा जो वेदमें लिखा है, ब्रह्माजीने तप करा अर्थात् इतने वर्षोंतक सृष्टि रचनेकी तजवीज करते रहे? इन सर्व पक्षोंके माननेमें दूषण आते हैं. क्योंकि, सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ निरावाध परमेश्वरमें पूर्वोक्त कोइ पक्षभी सिद्ध नही हो सक्ता हैं, इसवास्ते परमेश्वर ब्रह्माका अंडेमें रहना अज्ञोंकी कल्पनामात्र हे.

फेर लिखा है, ब्रह्माजीने ध्यानसें तिस अंडेके दो भाग करे, यह भी असत्य है. क्योंकि, ध्यान तो वस्तुके स्वरूपका वोधक हैं, ज्ञानांश होनेसें; इसवास्ते ज्ञानसें अंडेके दो टुकडे नही हो सक्ते हैं. तिन दो टुकडोंसें एक टुकडेका स्वर्गलोक, और हेठले दूसरे खंडसें भूमि रचता हुआ, इन दोनोंके बीचमें आकाश दिशां और दिशांके अंतराल और पाणीका स्थान समुद्र रचता हुआ, यह कथन युक्तिविरुद्ध तो हैही, परंतु ऋग्वेदसेंभी विरुद्ध है; क्योंकि, ऋग्वेदमें प्रजापतिके शिरसें स्वर्ग, पगोंसे भूमि, कानसें दिशा, और नाभिसें आकाश, उत्पन्न हुए लिखा है.

चतुर्दश (१४) श्लोकसें लेकर ३१ श्लोकपर्यंत मनुजीने जो सृष्टिक्रम लिखा

है, सो सर्व स्वकपोलकल्पित, और प्रमाणबाधित है क्योंकि, किसीजगें चैतन्य उपादानकारणसें जडकार्यकी उत्पत्ति लिखी है, और किसीजगें जड उपादानकारणसें चैतन्य कार्यकी उत्पत्ति लिख मारी है, और किसी जगें रूपीसें अरूपीकी, और अरूपीसें रूपीकी उत्पत्ति घसीट मारी है

और आपही जीवरूप धारण करा, हिंसा, मृषावाद, चौरी, मैथुन, मांसभक्षणादि, येह सर्व जीवोंकों जीवोंके कर्मानुसार लगा दीए, आपही अपना सत्यानाश कर लिया सृष्टि क्या रची, एक मोटी आपदाका जं जाल अपने आप, अपने गलेमें डाल लिया! जेकर सृष्टि न रचता, और प्रलयदशामें सुखसें सूता रहता तो अच्छा था!!!

पूर्वपक्ष —यदि सृष्टि न रचता तो, जीवोंकों कर्मोंका फल कैसें भुक्ताता?

उत्तरपक्ष —इसका समाधान ऋग्वेदके सृष्टिक्रमकी समीक्षामें करेंगे बत्तीसमें श्लोकसें लिखा है कि, तिस ब्रह्माने अपनी देहके दो भाग करे, एक भागका पुरुष बना, और दुसरे भागकी स्त्री बनी, तिस स्त्रीकेसाथ मैथुनधर्म करा, तिस्सें विराट् उत्पन्न भया, तिस विराट्ने तप करा, तप करके मनुकों अर्थात् मेरेकों उत्पन्न करा, कैसा हू मैं मनु? सर्व इस ज गत्का रचनेवाला, ऐसें मुझ मनुकों हे द्विजोत्तम! तुम जानो, पीछे मैं प्र जाके सृजनेकी इच्छा करते हुएने, अतिशयकरके दुश्चर तप तपीने मैंनें पहिला दश प्रजापतियोंकों सृजन करे, जिनके नामऊपर लिखे हैं, इनके सिवाय सात मनुयोंकों सृजन करे इत्यादि

वाचकवर्गो! जरा विचार करके देखो कि, जो कथन ऋग्वेदसें और युक्तिसें विरुद्ध है, सो मिथ्या वागूजाल मनुजीने रच कर अनेक भव्यज नोंकों फसाये हैं देखो! ब्रह्माजीने आपही स्त्रीपुरुष बन कर मैथुन करा, तिस्सें विराट्नामा पुरुष उत्पन्न भया, यह कथन कैसा लज्जनीय है कि, सर्वजगत्का पितामहभी मैथुन करता है? और विना स्त्रीके विराट्नामा पुत्र न उत्पन्न कर सका, फेर तिसकों सर्वशक्तिमान् मानना, यह कैसी अ ज्ञानता है? तथा विराट्ने मनुकों विनास्त्रीके कैसें उत्पन्न करा? और

फेर मनुजीनें, विनास्त्रीके दश प्रजापति प्रजा सृजनेवाले ऋषियोंको और सात मनुयोकों कैसें उत्पन्न करे? जेकर विनास्त्रीके संतानकी उत्पत्ति हो जावे तो, ब्रह्माजीने स्त्री वन कर काहेकों तिसकेसाथ मैथुन करके विराट् उत्पन्न करा? ऋग्वेदके भाष्यकारने तो, विराट्का अर्थ जो यह ब्रह्मांड है सो करा है, परंतु ब्रह्माजीने तो अंडेसेही ब्रह्मांड रचा लिखा है, तो फेर यह विराट्नामा वीचमें कौन उत्पन्न हो गया, जिसने मनुकों उत्पन्न करा? अव अज्ञानियोंके कथनकी कहांतक समीक्षा करीए, जिस कथनका प्रमाणयुक्तिसे विचार करते है, सोही मिथ्या स्वकपोलकल्पित सिद्ध होता है; जैसा मनुका कथन प्रमाणयुक्तिसे वाधित है, ऐसाही सर्वस्मृति पुराणोंका जान लेना. इत्यलं वहुप्रयासेन ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरीश्वरविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रन्थेमनुस्मृतिसृष्टिक्रमवर्णनो नाम षष्ठः स्तम्भः ॥ ६ ॥

॥ अथसप्तमस्तम्भारंभः ॥

षष्ठस्तम्भमें मनुस्मृतिका सृष्टिक्रम लिखा, अथ सप्तमस्तम्भमें पूर्वप्रतिज्ञात ऋग्वेदादिका सृष्टिक्रम लिखते हैं.

नासदासीन्नोसदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ॥
किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् ॥१॥

न। असत्। आसीत्। नोइति। सत्। आसीत्। तदानीम्। न। आसीत्। रजः। नोइति। विऽउम। परः। यत्। किम्। आ। अवरीवरिति। कुह। कस्य। शर्मन्। अम्भः। किम्। आसीत्। गहनम्। गभीरम् ॥१॥

नमृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः ॥
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास ॥२॥

न । मृत्युः । आसीत् । अमृतम् । न । तर्हि । न । रात्र्याः । अह्नः । आसीत् । प्रऽकेतः । आनीत् । अवातम् । स्वधया । तत् । एकम् । तस्मात् । ह । अन्यत् । न । परः । किम् । चन । आस ॥ २ ॥

तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकम् ॥ ३ ॥

तमः । आसीत् । तमसा । गूळ्हम् । अग्रे । अप्रऽकेतम् । सलिलम् । सर्वम् । आः । इदम् । तुच्छ्येन । आभु । अपिऽहितम् । यत् । आसीत् । तपसः । तत् । महिना । अजायत । एकम् ॥ ३ ॥

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ॥
सतो बन्धुमसति निरविन्दन्हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥४॥

कामः । तत् । अग्रे । सम् । अवर्तत । अधि । मनसः । रेतः । प्रथमम् । यत् । आसीत् । सतः । बन्धुम् । असति । निः । अविन्दन् । हृदि । प्रति ऽइष्य । कवयः । मनीषा ॥ ४ ॥

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी३दुपरिस्विदासी३त् ॥
रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥५॥

तिरश्चीनः । विऽततः । रश्मिः । एषाम् । अधः । स्वित् । आसी३त् । उपरि । स्वित् । आसी३त् । रेतःऽधाः । आसन् । महिमानः । आसन् । स्वधा । अवस्तात् । प्रऽयतिः । परस्तात् ॥ ५ ॥

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः ॥
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव ॥६॥

कः। अद्धा। वेद। कः। इह। प्र। वोचत्। कुतः। आऽजाता। कुतः। इयम्। विऽसृष्टिः। अर्वाक्। देवाः। अस्य। विऽसर्जनेन। अथ। कः। वेद। यतः। आऽबभूव॥६॥

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद॥७॥

इयम्। विऽसृष्टिः। यतः। आऽबभूव। यदि। वा। दधे। यदि। वा। न। यः। अस्य। अधिऽअक्षः। परमे। विऽओमन्। सः। अङ्ग। वेद। यदि। वा। न। वेद॥७॥ ऋ० अ० ८ अ० ७ व० १७ मं० १० अ० ११ सू० १२९

भाषार्थः—'तपसस्तन्महिनाजायतैकमइत्यादि' करके आगे सृष्टि प्रतिपादन करेंगे, अब तिसकी पहिली अवस्था, (निरस्त) दूर करी है. समस्त प्रपंचरूप, जो प्रलयअवस्था, सो निरूपण करिये हैं. (तदानीम्) प्रलयदशामें अवस्थित रहा हुआ, जो इस जगत्का मूलकारण, सो (नासदासीत्) असत, शशेके शृंगवत् निरुपाख्य नही था, क्योंकि तैसें कारणसें इस सत्रूप जगत्की उत्पत्ति कैसे संभवे? तथा (नोसत्) सत् नही (आसीत्) था, आत्मवत् सत्त्व कहनेकरके भी निर्वाच्य था; यद्यपि सत् असत् आत्मक प्रत्येक विलक्षण है, तोभी भावाभावोंको साथ रहनेकाभी संभव नही है, तो तिनका तादात्म्य कहांसें होवे? इसवास्ते उभय विलक्षण निर्वाच्यही था, यह तात्पर्यार्थ है. ननु, ऐसा वितर्कमें पद है, 'नोसदिति' इसकरके पारमार्थिक सत्त्वका निषेध है तो, आत्माकों भी अनिर्वाच्यत्वका प्रसंग होवेगा, जेकर कहोगे ऐसें नही, क्योंकि, 'आनीदवातम्' इसपदकरके तिसका सत्त्व आगे कहेंगे, इसवास्ते परिशेषसें मायाकाही सत्त्व इहां निषेध करते हैं. ऐसें मान्याभी 'तदानीं' इस विशेषणकों आनर्थक्यपणा होवेगा; क्योंकि, व्यवहारदशामें तिस मायाको पारमार्थिकसत्त्व होनेके अभावसें. अथ जेकर व्यवहारिक सत्त्वकों तिस अवसरमेंभी

व्यवहारिकसत्ता पृथिवी आदिक भावोंकी तदापि विद्यमान होनेसें, कैसें नोसत् ऐसा निषेध हो सक्ता है? ऐसी शकाका उत्तर कहते हैं (नासीद्रज) इत्यादि। "लोकारजांस्युच्यन्तइतियास्क"। इहां सामान्य अपेक्षाकरके एकवचन है, (व्योम्नोवक्ष्यमाणत्वात्) व्योमकों वक्ष्यमाण होनेसें, तिस व्योमका हेठला भाग पातालादि पृथिवी अततक (नासीत्) नही थे इत्यर्थ। (व्योम) अतरिक्ष, सो भी (नो) नही था (पर) व्योमसें परे ऊपर देशमें द्युलोकादि सत्यलोकांततक (यत्) जो है, सो भी नही था, इस कहनेकरके चतुर्दशभुवनसयुक्त ब्रह्माड भी निषेध करा अथ तदावरकत्वकरके पुराणोंमें जे प्रसिद्ध हे आकाशादिभूत, तिनका अवस्थान—रहनेका प्रदेश, और तिसके आवरणका निमित्त, आक्षेप मुखकरके क्रमकरके निषेध करते हैं (किमावरीवरिति) क्या आवरणेयोग्यतत्त्व आवरकभूतजात (आवरीव) अत्यत आवरण करे? आवार्यके अभावसें, तदा आवरकभी नही था इत्यर्थ। 'यद्वा किम् इति प्रथमा विभक्ति',' क्या तत्त्व आवरक आवरण करे? आवार्यके अभावसें, आव्रियमाणकीतरें, सो भी स्वरूपकरके नही था इत्यर्थ। आवरण करे सो तत्त्व (कुह) किस स्थानमें रहके आवरण करे? आधारभूत तैसा देश स्थान भी नही था (कस्य शर्मन्) किसका भोक्ता जीवके सुखदुःखके साक्षात्कारलक्षणमें, वा निमित्तभूतके हुआ थका तिस आवरकत्वकों आवरण करे? जीवोंके उपभोगवास्तेही सृष्टि है तिस सृष्टिके हुआ थकाही ब्रह्माडकों भूतोंकरके आवरण होवे, परतु प्रलयदशामें भोगनेवाले जीवरूप उपाधिके प्रविलीन होनेसें, किसीका कोइ भी भोक्ता सभव नही था, ऐसें आवरणरूप निमित्तके अभावसें सो नही घटता है इस कहनेकरके भोग्यप्रपचकीतरें भोक्तृप्रपच भी तिस अवसरमें नही था, यद्यपि सावरण ब्रह्मांडका निषेध करनेसें तिसके अतर्गत अप्सत्त्वकाभी निराकरण करा, तो भी 'आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत्' इत्यादिश्रुतिकरके कोइक पाणीके सद्भावकी आशका करे तिसप्रति कहते हैं, (अभ्भःकिमासीदिति) क्या (गहनम्) दुःग्म जिसमें प्रवेश होवे (गभीरम्) और अति अगाध ऐसा पाणी था? सो भी नही था 'आपो वा इदमग्रे'

इत्यादि जो श्रुति है, सो अवांतर प्रलयके स्वरूपकथनमें है; इहां तौ महाप्रलयके स्वरूपका कथन है, इसवास्ते निरुपयोगी है. ॥ १ ॥

मृत्यु भी नही था, अमरणपणा भी नही था, 'तर्हि तस्मिन् प्रतिहारसमये' तिस प्रतिहारसमयमें रात्रीदिनका (प्रकेतः) प्रज्ञान भी नही था, तिनके हेतुभूत सूर्यचंद्रमाके अभावसें; (आनीदवातं) एक शुद्ध ब्रह्मही था, (स्वधया) मायाकरके विभागरहित था, तस्मात् पूर्वोक्त मायासहित ब्रह्मसें विना, अन्य कोइ भी वस्तुभूत भूतकार्यरूप नही था. यह वर्त्तमान जगत् भी नही था. ॥ २ ॥

(तमसागूढ्मग्रे) सृष्टिसें पहिले प्रलयदशामें भूतभौतिक सर्व जगत् (तमसा गूढम्) जैसें रात्रिसंबंधि तमः सर्वपदार्थोंको आवरण करता है, तैसें आत्मतत्त्वके आवारक होनेसें माया अपरनाम भावरूप अज्ञान इहां तमः कहते हैं, तिस तमःकरके (निगूढं—संवृतं) नाम ढांपा हुआ था; कारणभूत मायाकरके यद्यपि जगत् था, तो भी (अप्रकेतम्—अप्रज्ञायमानम्) प्रतीत नही था, (सलिलम्) पाणीकीतरें; जैसें पाणी और दूध अविभागापन्न हैं, ऐसें माया और ब्रह्म अविभागापन्न थे (तुच्छेन) तुच्छ कल्पनाकरके सत् असत्सें विलक्षण होनेसें भावरूप अज्ञानकरके ढांपा हुआ था, (एकम्) एकीभूत कारणरूप तमःकरके अविभागताको प्राप्त हुआ भी, सो कार्यरूप (तपसः) स्रष्टव्यपर्यालोचनरूपके (महिना) माहात्म्यकरके उत्पन्न भया.॥३॥

ननु उक्तरीतिसें जेकर ईश्वरका विचारणाही जगत्की उत्पत्तिविषे कारण है तो, सो विचारही किस निमित्तसें है? सोही दिखाते हैं. 'कामस्तदग्रे इत्यादि'—इस विकारवाली सृष्टिके पहिले परमेश्वरके मनमें इच्छा उत्पन्न होती भइ कि, मैं सृष्टि करूं; ईश्वरको इच्छा किस हेतुसें भइ? सो कहे हैं, 'मनसःइति' अंतःकरणसंबंधी वासना शेषकरके, सर्व प्राणियोंके अंतःकरणमें तैसा (रेतः) होनहार प्रपंचका बीजभूत पहिले अतीतकल्पमें जीवोंने जो करा था पुण्यात्मक कर्म, यतः जिसकारणसें सृष्टिके समयतक वे कर्मफल परिपक्वफल देनेके सन्मुख होते भए, तिसहेतुसें सर्वसाक्षी फलप्रदाता ईश्वरके मनमें सृष्टि करणेकी इच्छा उत्पन्न भइ; तिस इच्छाके हुए सृजनेयोग्य विचारके तदपीछे सर्वजगतको

रचता है सतइति तदपीछे सत्स्वरूपकरके अनुभूयमान इस जगत्का 'बंधु–वधक' हेतुभूत कल्पांतरमें प्राणियोंने जो करा है कर्मसमूह, तिनकों 'कवय' तीनों कालके जाननेवाले योगी हृदयमें बुद्धिद्वारा विचारकरके तिन कर्मानुसार सृष्टि करता भया ॥४॥

(रश्मिः) रश्मिसमान जैसें सूर्यकी किरणां उदयानतर निमेषमात्रकालमें युगपत् सर्व जगतमें व्याप्त होती हैं, तैसें शीघ्र सर्वत्र व्याप्त होता हुआ यह कार्यवर्ग 'विततः' विस्तारवत होता भया सो कार्यवर्ग, प्रथमसें क्या (तिरश्चीनः) तिर्यग् मध्यमें स्थित हुआ था? किंवा, अध नीचेंकों हुआ था? अथवा, उपरकों हुआ था? ऐसा मालुम नही होता था किंतु सर्वत्र एकसाथही सृष्टि होती भइ, (रेतोधा) इससृष्टिमें (रेतसः) बीजभूत कर्मोंके करणेहारे, और भोगनेवाले जीव होते भए 'महिमान' अन्यमहान् पदार्थ आकाशादिभूत भोग्यरूप होते भए, भोक्ता और भोग्यमें स्वधा अन्नोंका यह भोग्य प्रपच (अवस्तात्) निकृष्ट होता भया, (प्रयतिः) भोक्ता (परस्तात्) उत्कृष्ट होता भया ॥५॥

अथ सृष्टि दुर्विज्ञान है, इसवास्ते विस्तारसें नही कही, सोही कहते हैं 'को अद्धेति' कौन पुरुष परमार्थसें जानता है? और कौन (इह) इस लोकमें (प्रवोचत्) कह सक्ता है? 'इय दृश्यमाना विसृष्टि' यह दृश्यमान विविध प्रकारभूत भौतिक भोक्तृभोग्यादिरूपकरके बहुतप्रकारकी सृष्टि, (कुत) किस उपादानकारणसें, और (कुत) किस निमित्तकारणसें, (आजाता) समतात् जाता–प्रादुर्भूता–उत्पन्न हुइ है? ये दोनों कथन विस्तारसें कौन जान सक्ता, और कह सक्ता है? ननु देवता सर्वज्ञ है, इसवास्ते वे जान तेभी होवेंगे, और कह भी सक्के होवेंगे? सोही कहते हैं अर्वागिति। देवते इस जगतके रचनेसेंपीछे उत्पन्न हुए हैं, इसवास्ते वे कैसें जान सक्के और कह सक्के हैं? अथ जब देवते भी नही जानते है तो, तिनसें व्यतिरिक्त मनुष्यादि तो कैसें जान सकते हैं कि, यत जिसकारणसें सपूर्ण जगत् उत्पन्न भया, सो कारण क्या था?॥६॥ 'इय विसृष्टिः' यह विविधप्रकारकी गिरिनदीसमुद्रादिरूपकरके विचित्रा सृष्टि जिससें उत्पन्न भइ है, और

जो 'दधे' इसकों धारण करता है, अथवा नही धारण करता है, ऐसा कोइ भी नही जानता है. 'यो अस्येति' जो इस जगत्का अध्यक्ष ईश्वर, सो सत्यभूत आकाशमें निर्मल स्वप्रकाशमें प्रतिष्ठित है, सो ईश्वरही जाने वा न जाने, अन्यकोइ नही जान सक्ता है.॥७॥

तथा—सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१॥

सहस्रऽशीर्षा । पुरुषः । सहस्रऽअक्षः । सहस्रऽपात् । सः । भूमिम् । विश्वतः । वृत्वा । अति । अतिष्ठत् । दशऽअङ्गुलम् ॥ १ ॥

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् ॥
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ २ ॥

पुरुषः । एव । इदम् । सर्वम् । यत् । भूतम् । यत् । च । भव्यम् । उत । अमृतऽत्वस्य । ईशानः । यत् । अन्नेन । अतिऽरोहति ॥ २ ॥

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥३॥

एतावान् । अस्य । महिमा । अतः । ज्यायान् । च । पुरुषः । पादः । अस्य । विश्वा । भूतानि । त्रिऽपात् । अस्य । अमृतम् । दिवि ॥ ३ ॥

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि॥ ४॥

त्रिऽपात् । उर्ध्वः । उत् । ऐत् । पुरुषः । पादः । अस्य । इह । अभवत् । पुनरिति । ततः । विष्वङ् । वि । अक्रामत् । साशनानशनेइति । अभि ॥ ४ ॥

तस्माद्विरळजायत विराजो अधि पूरुषः ।
सजातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥५॥ १७॥

तस्मात्। विऽराट्। अजायत। विऽराजः। अधि। पुरुषः। सः। जातः। अति। अरिच्यत। पश्चात्। भूमिम्। अथो इति। पुरः ॥ ५ ॥ १७ ॥

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥६॥

यत्। पुरुषेण। हविषा। देवाः। यज्ञम्। अतन्वत। वसन्तः। अस्य। आसीत्। आज्यम्। ग्रीष्मः। इध्मः। शरत्। हविः ॥ ६ ॥

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥ ७ ॥

तम्। यज्ञम्। बर्हिषि। प्र। औक्षन्। पुरुषम्। जातम्। अग्रतः। तेन। देवाः। अयजन्त। साध्याः। ऋषयः। च। ये ॥ ७ ॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम्।
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान्ग्राम्याश्च ये ॥ ८ ॥

तस्मात्। यज्ञात्। सर्वऽहुतः। सम्ऽभृतम्। पृषत्ऽआज्यम्। पशून्। तान्। चक्रे। वायव्यान्। आरण्यान्। ग्राम्याः। च। ये ॥ ८ ॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ ९ ॥

तस्मात्। यज्ञात्। सर्वऽहुतः। ऋचः। सामानि। जज्ञिरे। छन्दांसि। जज्ञिरे। तस्मात्। यजुः। तस्मात्। अजायत ॥ ९ ॥

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥ १० ॥ १८ ॥

तस्मात्। अश्वाः। अजायन्त। ये। के। च। उभयादतः। गावः। ह। जज्ञिरे। तस्मात्। तस्मात्। जाताः। अजावयः ॥ १० ॥ १८ ॥

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते ॥ ११ ॥

यत् । पुरुषम् । वि । अदधुः । कतिधा । वि । अकल्पयन् । मुखम् । किम् । अस्य । कौ । बाहू इति । कौ । ऊरूइति । पादौ । उच्येते इति ॥ ११ ॥

ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्ययद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ १२ ॥

ब्राह्मणः । अस्य । मुखम् । आसीत् । बाहूइति । राजन्यः । कृतः ऊरू इति । तत् । अस्य । यत् । वैश्यः । पत्ऽभ्याम् । शूद्रः । अजायत ॥ १२ ॥

चन्द्रमामनसोजातश्चक्षोः सूर्योअजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्चप्राणाद्वायुरजायत ॥ १३ ॥

चन्द्रमाः । मनसः । जातः । चक्षोः । सूर्यः । अजायत । मुखात् । इन्द्रः । च । अग्निः । च । प्राणात् । वायुः । अजायत ॥ १३ ॥

नाभ्याआसीदन्तरिक्षंशीर्ष्णोद्यौःसमवर्तत ।
पद्भ्यांभूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथालोकाँ अकल्पयन् ॥ १४ ॥

नाभ्याः । आसीत् । अन्तरिक्षम् । शीर्ष्णः । द्यौः । सम् । अवर्तत । पत्ऽभ्याम् । भूमिः । दिशः । श्रोत्रात् । तथा । लोकान् । अकल्पयन् ॥ १४ ॥ ऋ० अष्टक ८ । अ० ४ । व० १७।१८।१९ । मं० ।१०। अ० ७ । सू० ९० ॥

भाषार्थः—सर्वप्राणि समष्टिरूप ब्रह्मांडदेह है जिसके, ऐसा विराट्नाम पुरुष, सो (यह सहस्रशीर्षा) सहस्रशिर, सहस्रशब्दको उपलक्षण होनेसें अनंत शिरोंकरके युक्त है; क्योंकि, जे सर्वप्राणियोंके शिर हैं, ते सर्व तिसकी देहके अंतर होनेसें तिसकेही शिर हैं, इसहेतुसें सहस्रशीर्षपणा; ऐसें (सहस्राक्षः) सहस्राक्षपणा, और (सहस्रपात) सहस्रपादपणाभी जानना सो

पुरुष, 'भूमिं' ब्रह्मांडगोलकरूपभूमिकों 'विश्वतः' सर्व ओरसें 'वृत्वा' परिवेष्टन करके 'दशांगुल' दशांगुलदेशकों 'अत्यतिष्ठत्' अतिक्रमकरके व्यवस्थित है दशांगुल यह उपलक्षण है, इसवास्ते ब्रह्मांडसें बाहिर भी सर्व जगे व्याप्य होके स्थित है ॥ १ ॥

जो 'इद' यद वर्त्तमान जगत् है, सो सर्व 'पुरुष एव' पुरुषही है 'यच्च भूत' और जो अतीत जगत्, 'यच्च भव्यम्' और जो भविष्यत् होणहार जगत्, (तदपि पुरुषएव) सोभी पुरुषही है जैसें इस कल्पमें वर्त्तते प्राणियोंके देह है, ते सर्वही विराट्पुरुषके अवयव है, तैसेंही अतीतानागतकल्पोंमें भी जानना, इत्यभिप्राय 'उतापि च' और 'अमृतत्वस्य' देवपणेका यह 'ईशान' स्वामी है, यत् जिसकारणसें 'अन्नेन' प्राणियोंके अन्नरूप भोग्यकरके 'अतिरोहति' अपनीकारण अवस्थाकों अतिक्रमकरके परिदृश्यमान जगत् अवस्थाकों प्राप्त होता है, तिसकारणसें प्राणियोंके कर्मफल भोगनेतांइ जगत्अवस्था अगीकार करनेसें यह तिसका वस्तुतत्त्व नही है, इत्यर्थ ॥ २ ॥

अतीतानागतवर्त्तमानरूप जगत् जहातक है 'एतावान्' इतना सर्व भी 'अस्य' इस पुरुषका 'महिमा' आपना सामर्थ्य विशेष है, न कि तिसका वास्तव्य स्वरूप है क्योंकि, वास्तव स्वरूप तो पुरुष है, अतः (महिम्नोपि) इससें महिमासेभी 'जायान्' अतिशय करके अधिक है, येह दोनों स्पष्ट करते हैं, 'अस्य' इस पुरुषके 'विश्वा भूतानि' त्रिकालमें वर्तनेवाले सर्व प्राणी 'पाद' चौथे हिस्से प्रमाण है 'अस्य' इस पुरुषके 'त्रिपात' शेष तीन हिस्से–भाग 'अमृत' विनाशरहित हुआ थका दिवि द्योतनात्मके स्वप्रकाशरूपमें व्यवतिष्ठित है इतिशेष ॥३॥

जो यह त्रिपात् पुरुषः ससारके स्पर्शरहित ब्रह्मस्वरूप है, और जो यह 'ऊर्ध्वः उदैत्' इस अज्ञानकार्य ससारसे बाहिरभूत है, इहांके गुण दोषोंकरी अस्पृष्ट है, उत्कर्षताकरके रहा हुआ है, 'तस्यास्य' तिस इसका 'सोयं पादलेश' सो यह पादलेश 'इह' इहां मायामें फेर होता भया सृष्टिसंहार करते पुन २ वारवार आता है, 'तत' तदपीछे आपा

में आयांअनंतर 'विष्वङ्' देवतिर्यगादिरूपकरके विविधप्रकारका हुआ थका, 'व्यक्रामत्' व्याप्तवान् हुआ क्या करके? 'साशनानशने अभिलक्ष्य' (साशनं) भोजनादिव्यवहारसंयुक्त चेतन प्राणिजात लखीए हैं, (अनशनं) तिससें रहित अचेतन गिरिनदीआदिक, येह दोनोंको जैसे होवे तैसें स्वयमेव विविधरूप होके व्याप्त होता भया ॥ ४ ॥

विष्वङ् व्यक्रामदिति यदुक्तं तदेवात्र प्रपंच्यते ॥ 'तस्मात्' तिसआदिपुरुषसें विराट्–ब्रह्मांडदेह उत्पन्न भया । विविधप्रकारकी वस्तु शोभे है इसमें इति विराट् । 'विराजोधि' विराट् देहके ऊपर तिसदेहकोंही अधिकरण करके 'पुरुषः' तिस देहका अभिमानी कोइक पुरुष उत्पन्न होता भया, सो यह सर्ववेदांतोंकरके वेद्य परमात्मा सोही अपनी मायाकरके विराट्देह ब्रह्मांडरूप रचके तिसमें जीवरूप करी प्रवेशकरके ब्रह्मांडाभिमानी देवात्मा जीव होता भया. 'सजातः' सो उत्पन्न हुआ विराट् पुरुष 'अत्यरिच्यत-अतिरिक्तोभूत्' विराटसें व्यतिरिक्त देवतिर्यक्मनुष्यादिरूप होता भया. 'पश्चात्' देवादिजीवभावसें पीछे 'भूमिम्' भूमिकों सृजन करता भया, 'अथो' भूमिसृष्टिके अनंतर तिनजीवोंके 'पुरः' शरीर रचता भया ॥ ५ ॥

'यत्' यदा पूर्वोक्त क्रमकरकेही शरीरोंके उत्पन्न हुए थके, 'देवाः' देवते उत्तर सृष्टिकी सिद्धिवास्ते बाह्यद्रव्यके अनुत्पन्न होनेकरके हविके अंतर असंभव होनेसें पुरुषस्वरूपही मनःकरके हविपणे संकल्पकरके 'पुरुषेण' पुरुषनामक 'हविषा' हविःकरके, 'मानसं यज्ञम्' मानस यज्ञकों 'अतन्वत' विस्तारते–करते हुए. 'तदानीम्' तिस अवसरमें 'अस्य' इस यज्ञका 'वसन्तः' वसंतऋतुही 'आज्यम्' घृत 'आसीत्' होता भया, तिस वसंतऋतुकोंही घृतकी कल्पना करते हुए; ऐसेंही 'ग्रीष्म इध्म आसीत्' ग्रीष्मऋतु इध्म होता भया, तिसकोंही इध्मकरके कल्पना करते-हुए; तथा 'शरद्धविरासीत्' शरदृतु हविः होता भया, तिसकोंही पुरोडाशाभिध हविःकरके कल्पना करते हुए. ऐसें पुरुषकों हविःसामान्यरूपकरके संकल्पकरके तिसते अनंतर वसंतादिकोंकों घृतादिविशेषरूपकरके कल्पन करा, ऐसे जानना योग्य है. ॥ ६ ॥

'यज्ञ' यज्ञके साधनभूत 'तम्' तिस पुरुषकों पशुत्वभावनाकरके यूपमें बांधेहुएकों 'बर्हिषि' मानस यज्ञमें 'प्रौक्षन्' प्रोक्षण करते भये, कैसे पुरुषकों? सोही कहे हैं 'अग्रत' सर्वसृष्टिके पहिले 'पुरुषम् जातम्' पुरुषपणे उत्पन्न भयेकों 'तेन' तिस पुरुषरूप पशुकरके 'देवा' देवते 'अयजन्त' यजन करते भये, मानस यज्ञ निष्पन्न करते भये इत्यर्थ। कौन वे देवते? सोही कहे हैं 'साध्या' सृष्टिके साधनयोग्य प्रजापतिप्रमुख 'ऋषयश्च' और तिनके अनुकूल ऋषि मन्त्रोंके देखनेवाले जे हैं, ते सर्व यजन करते भये इत्यर्थ ॥७॥

'सर्वहुत' सर्वात्मक पुरुष जिस यज्ञमें आहवन करीए, सो यह सर्व हुत, तैसें 'तस्मात्' पूर्वोक्त 'यज्ञात्' मानसयज्ञसें 'पृषदाज्यम्' दधिमिश्रितघृतकों 'सभृतम्' संपादन करा, दधि और घृत यह आदिभोग्यजात सर्वसपादन करा इत्यर्थ। तथा 'वायव्यान्' वायुदेवसबधी लोकमें प्रसिद्ध 'आरण्यान् पशून्' आरण्य पशुयोंकों 'चक्रे' उत्पन्न करता भया, आरण्य हरिणादिक। तथा 'ये च ग्राम्या' गौ अश्वादि तिनकोंभी उत्पन्न करता भया ॥ ८ ॥ 'सर्वहुतस्तस्मात्' पूर्वोक्त 'यज्ञात्' यज्ञसें 'ऋच सामानि जज्ञिरे' ऋच साम उत्पन्न भए 'तस्मात्' तिस यज्ञसेंही 'छदासि' गायत्रीआदि 'जज्ञिरे' उत्पन्न भए 'तस्मात्' तिस यज्ञसें 'यजुरप्यजायत' यजुर्वेदभी होता भया ॥ ९ ॥

'तस्मात्' तिस पूर्वोक्त यज्ञसें 'अश्वा अजायन्त' घोडे उत्पन्न भए, तथा 'ये के च' जे केइ अश्वसें व्यतिरिक्त गर्दभ और खच्चरां 'उभयादत' उर्ध्व अधोभाग दोनों दतयुक्त होते हैं जिनके ते भी तिसयज्ञसेंही उत्पन्न हुए हैं, तथा 'तस्मात्' तिस यज्ञसें 'गावश्च जज्ञिरे' गौयां उत्पन्न हुई हैं, किंच 'तस्मात्' तिसयज्ञसें 'अजा' बकरीयां और 'अवय' भेडें भी 'जाता' उत्पन्न भई ॥ १० ॥

प्रश्नोत्तररूपकरके ब्राह्मणादि सृष्टि कहनेकों ब्रह्मवादियोंके प्रश्न कहते हैं। प्रजापति प्राणरूप देवते 'यत्' यदा 'पुरुष' विराड्रूप पुरुषकों 'व्यदधु' रचते भए, अर्थात् सकल्पकरके उत्पन्न करते भए, तब 'कतिधा' कितने प्रकारोंकरके 'व्यकल्पयन्' विविधरूप कल्पना करते भए? 'अस्य'

इस पुरुषका 'मुखं किम् आसीत्' मुख क्या होता भया ? 'कौ बाहू अभूताम्' क्या दोनो बाहां होती भई ? 'कौ ऊरू कौ च पादौ उच्येते' क्या साथल, और क्या दोनो पग कहीए ? प्रथम सामान्य प्रश्न है, पीछे मुखं किम् इत्यादिकरके विशेषविषयक प्रश्न है ॥ ११ ॥

अब पूर्वोक्त प्रश्नोंके उत्तर कहते हैं, 'अस्य' इस प्रजापतिका 'ब्राह्मणः' ब्राह्मणत्वजातिविशिष्ट पुरुष 'मुखमासीत्' मुख होता भया, अर्थात् मुखसें उत्पन्न हुआ है, जो यह 'राजन्यः' क्षत्रियत्वजातिविशिष्ट है, सो 'बाहूकृतः' बाहांकरके उत्पन्न करा है, अर्थात् बाहांसें उत्पन्न हुआ है, 'तत् तदानीं' तिससमय 'अस्य' इस प्रजापतिके 'यत् यौ ऊरू' जे दो ऊरू थे, तद्रूप 'वैश्यः' वैश्य होता भया, अर्थात् ऊरूयोंसें वैश्य उत्पन्न हुआ, तथा इस पुरुषके 'पद्भ्यां' दोनों पगोंसें 'शूद्रः' शूद्रत्वजातिमान् पुरुष 'अजायत' होता भया, यह कथन यजुर्वेदके सप्तमकांडमें स्पष्टपणें है. ॥ १२ ॥

जैसें दधिघृतादि द्रव्य, गवादि पशु, ऋगादि वेद और ब्राह्मणादि मनुष्य, तिससें उत्पन्न हुए हैं, तैसें चंद्रादि देवते भी तिससेंही उत्पन्न हुए हैं, सोही दिखाते हैं. प्रजापतिके 'मनसः' मनसें 'चंद्रमा जातः' चंद्रमा उत्पन्न भया 'चक्षोः' नेत्रोंसें 'सूर्यः अजायत' सूर्य उत्पन्न भया 'मुखात् इंद्रश्च अग्निश्च' मुखसें इंद्र और अग्नि दो देवते उत्पन्न भए, और 'प्राणाद्वायुरजायत' प्राणोंसें वायु उत्पन्न भया. ॥ १३ ॥

जैसें चंद्रादिकोंको प्रजापतिके मनःप्रमुखसें कल्पना करते भए, तथा तैसेंही 'लोकान्' अंतरिक्षादिलोकोंको प्रजापतिके नाभि आदिकसें देवते 'अकल्पयन्' उत्पन्न करते भए, सोही दिखाते हैं। 'नाभ्याः' प्रजापतिकी नाभिसें 'अंतरिक्षमासीत्' आकाश उत्पन्न भया 'शीर्ष्णः' शिरसें 'द्यौः समवर्तत' स्वर्ग उत्पन्न हुआ 'पद्भ्यां भूमिरुत्पन्ना' पगोंसें भूमि उत्पन्न भई, और 'श्रोत्राद्दिश उत्पन्ना इति' श्रोत्र-कानोंसें दिशा उत्पन्न भई. ॥ १४ ॥ इत्यादि ।

तथा—

यइमा विश्वाभुवनानिजुह्वदृषिर्होतान्यसीदत्पितान ।
सआशिषाद्रविणमिच्छमानःप्रथमच्छदवराँ २॥ ऽआविवेश ॥१७॥
किᳬस्विदासीदधिष्ठानमारम्भणंकतमत्स्वित्कथासीत् ।
यतोभूमिंजनयन्विश्वकर्माविद्यामौर्णोन्महिनाविश्वचक्षा ॥१८॥
विश्वतश्चक्षुरुतविश्वतोमुखोविश्वतोबाहुरुतविश्वतस्पात् ।
संबाहुभ्यांधमतिसपतत्रैर्द्यावाभूमीजनयन्देवएकः ॥ १९ ॥
किᳬस्विद्वनकउसवृक्षआसयतोद्यावापृथिवीनिष्टतक्षु ।
मनीषिणोमनसापृच्छतेदुतयदध्यतिष्ठद्भुवनानिधारयन् ॥ २० ॥

यजुर्वेद १७ अध्याये

भावार्थ —प्रजाकों संहार सृजन करते विश्वकर्माको देखता हुआ ऋषि कहता है । (य) जो विश्वकर्मा (इमा) इमानि (विश्वा) विश्वानि—यह जो सर्व (भुवनानि) भूतजातोंकों (जुह्वत्) संहार करता हुआ (न्यसीदत्) आपही बैठता हुआ, कैसा ? (ऋषि) अतींद्रियद्रष्टा सर्वज्ञ (होता) संहाररूप होमका कर्त्ता (न) अस्माकम्—हम प्राणियोंका (पिता) जनक है । प्रलयकालमें सर्व लोकोंका संहार करके जो परमेश्वर आप एकेलाही रह गया था, तथा चोपनिषद । "आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किंचन मिषत् । सदेव सोम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयमित्याद्या ॥ " (स) तैसा पूर्वोक्त स्वरूपवाला सो परमेश्वर (आशिषा) अभिलापकरके " बहुस्या प्रजायेयेत्येवरूपेण " ऐसे रूपकरके पुन फेर रचनेकी इच्छारूपकरके (द्रविणमिच्छमान) जगत्रूपधनकी अपेक्षा करता हुआ (अवरान्) अभिव्यक्त उपाधीयोंमें (आविवेश) जीवरूप करके प्रवेश करता भया कैसा ? (प्रथमच्छत्) प्रथम एक अद्वितीयस्वरूपकों जो छादन करे सो ' प्रथमच्छत् ' उत्कृष्ट रूपकों आच्छादन करता हुआ प्रवेश करता भया, (इच्छमान) सो वाछा करता भया, ' बहु स्यां ' बहुतरूप हो जाऊं इत्यादि श्रुतियोंसें जान लेना ॥ १७ ॥

अथ ईश्वर जैसें जगत्कों सृजता है, सो प्रश्नोत्तरोंकरके कहते हैं। लोकमें घटादि करनेकी इच्छावाला कुंभकार, घरादिस्थानमें रहकरके मृत्तिकाआदि आरंभक द्रव्यरूपकरके, और चक्रादि उपकरणोंकरके घटादिक निष्पादन करता है। ईश्वरकों सो आक्षेप करते हैं। (स्विदिति) वितर्कमें है, द्यावाभूमी सृजता हुआ विश्वकर्माका (अधिष्ठानं किमासीत्) आधार क्या था? क्योंकि विना अधिष्ठानके कुछ भी नही कर सक्ता है (स्विदिति वितर्के) तर्क करते हैं, (आरंभणं कतमत् आसीत्) आरंभण क्या था? उपादान कारण क्या था? जैसें मृत्तिका घटोंका (कथा) क्रिया च किम्प्रकारा (आसीत्) क्रिया किसप्रकार थी? निमित्त कारण क्या था? दंडचक्रसलिलसूत्रादिकरके घटादि करते हैं, तिनसमान क्या था? (यतः) जिससें विश्वकर्मा जिस कालमें पृथिवी और स्वर्गकों (जनयन्) रचता हुआ (महिना) स्वसामर्थ्यकरके सृष्टि द्यावापृथिवीकों (और्णोत्) आच्छादित करता भया, कैसा विश्वकर्मा? (विश्वचक्षाः) सर्वद्रष्टा ॥ १८ ॥

उत्तर कहते हैं ॥ (एकः) अकेला असहायी (देवः) विश्वकर्मा (द्यावाभूमी जनयन्) स्वर्ग और भूमिकों रचता हुआ (बाहुभ्यां) बाहुस्थानीय धर्माधर्मकरके (संधमति) संयोगकों प्राप्त होता है, (पतत्रैः) पतनशीलवाले अनित्य पंचभूतोंकरके प्राप्त होता है, धर्माधर्मनिमित्तोंकरके पंचभूतरूप उपादानोंकरके साधनांतरके विनाही सर्व सृजन करता है, अथवा धर्माधर्मकरके च पुनः भूतोंकरके (संधमति) सम्यक् प्रकारकरके प्राप्त करता है जीवोंकों, कैसा है? (विश्वतश्चक्षुः) सर्व ओरसें चक्षु हैं जिसके (विश्वतोमुखः) सर्व ओरसें मुख हैं जिसके (विश्वतोबाहुः) सर्व ओरसें बाहां हैं जिसके (विश्वतःपात्) सर्व ओरसें पग हैं जिसके, सो परमेश्वरकों सर्व प्राण्यात्मक होनेसें जिस जिस प्राणीके जे जे चक्षु आदि हैं, ते सर्व तिस उपाधिवाले परमेश्वरकेही हैं; इसवास्ते सर्व जगे चक्षुआदि प्राप्त होते हैं इति. ॥ १९ ॥

पुनः फेर प्रश्न है (स्विदिति) वितर्कमें है (वनं किम् आस) सो वन कौनसा था? (उ) अपि च (सः वृक्षः कः) और सो वृक्ष कौनसा

था? (यत) जिस वन, और वृक्षसें विश्वकर्मा, (द्यावापृथिवी) द्यावापृथिवीकों (निष्टतक्षु) आछता घडता रचता अलकृत करता हुआ, क्योंकि, तैसें वनवृक्षका सभव नही है लोकमे तो घरादि बनानेकी इच्छावाला किसी वनमें किसी वृक्षकों छेदनकरके आछनादिकरके स्वभाविक करता है, इहां जगत् रचनेमें सो है नही। एक अन्यबात है (मनीषिण) हे बुद्धिमानो ! (मनसा) मनकरके—विचारकरके (तत् इत् उ) सो भी (पृच्छत) तुम पूछो, सो क्या ? (भुवनानि) जगत्कों (धारयन्) धारण करता हुआ विश्वकर्मा (यदध्यतिष्ठत्) जिस जगे रहता था सो भी तुम पूछो कुभकारादि जैसें घरादिकमें बैठके घटादि करते हैं, सो आधिष्ठान भी पूछो। इन सर्व प्रश्नोंका यह उत्तर है कि, ऊर्णनाभिवत् यह आत्मा (ईश्वर) सर्व जगत्का आरभ करता है, ऊर्णनाभि (मकडी—करोलीया) अपने अदरसेंही चेपवस्तु निकालके जाला रचता है, तैसेंही ईश्वर अपने अदरसेंही सर्व कुछ निकालके जगत् रचता है, इसवास्ते इसजगत्का उपादानकारण, और निमित्तकारण ईश्वर आपही है अन्य नही ॥ २० ॥

॥ इति यजुर्वेदसहितायां सप्तदशाध्याये ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचिते तत्वनिर्णयप्रासादग्रन्थे ऋग्वेदाद्यनुसारसृष्टिक्रमवर्णनो नाम सप्तमःस्तम्भः ॥ ७ ॥

॥ अथाष्टमस्तम्भारम्भः ॥

सप्तमस्तम्भमें ऋगादिवेदानुसार सृष्टिक्रम वर्णन करा, अथाष्टम स्तम्भमें पूर्वोक्त सृष्टिक्रमकी यत्किंचित् समीक्षा करते हैं, तहां प्रथम हम बहुत नम्रतापूर्वक विनती करते हैं कि, पक्ष-कदाग्रहकों छोडके प्रेक्षावानोंकों यथार्थ तत्वका निर्णय करना चाहिये, परतु यह नही समझना चाहिये कि, यह अमुक धर्म, और अमुक २ शास्त्र हमारे वृद्ध मानते आए हैं सो, अब हम इसकों त्यागके अन्यकों क्योंकर मान लेवे ? क्योंकि ऐसी समज प्रेक्षावानोंकी नही है, किंतु यातो अज्ञ होवे, या दृढ कदाग्रही होवे, तिसकी ऐसी समझ होती है इसवास्ते, वेद, स्मृति, पुराण, तथा जैन

बौद्ध, सांख्य, वेदांत, न्याय, वैशेषिक, पातंजल, मीमांसादि सर्वशास्त्रोंके कहे तत्त्वोंको प्रथम श्रवण पठन मनन निदिध्यासनादि करके जिस शास्त्रका कथन युक्तिप्रमाणसें बाधित होवे, तिसका त्याग करना चाहिये; और जो युक्तिप्रमाणसें बाधित न होवे, तिसकों स्वीकार करना चाहिये; परंतु मतोंका खंडनमंडन देखके द्वेषबुद्धि कदापि किसी भी मतउपर न करनी चाहिये. क्योंकि, सर्वमतोंवाले अपने २ माने मतोंकों पूरा २ सच्चा मान रहे हैं. इन पूर्वोक्त मतोंमेंसे सांख्य, मीमांसक, जैन और बौद्ध ये जगत्का कर्त्ता ईश्वरकों नही मानते हैं, और वैदिक, नैयायिक, वैशेषिकादिमतोंके माननेवाले जगत्का कर्त्ता ईश्वरकों मानते हैं; वेदमतवाले अन्यमतोंवालोंसें विलक्षणही जगत् और जगत्कर्त्ताका स्वरूप मानते हैं, और यह भी कहते हैं कि, वेदसमान अन्य कोइ भी पुस्तक प्रमाणिक नही हैं, इसवास्ते प्रथम हम वेदके कथनकोंही विचारते हैं कि, प्रमाणसिद्ध है वा नही? जेकर प्रमाणसिद्ध है, तब तो वाचकवर्गकों सत्य करके मानना चाहिये, और जेकर प्रमाणबाधित होवे तब तो, तिसका त्यागही करना चाहिये. वेदोंमें भी बडा, और प्रथम जो ऋग्वेद है, तिसके कथनकाही सत्य वा असत्यका विवेचन करते हैं.

ऋ० अ ८। अ ७। व १७। मं १०। अनु ११। सू १२९॥ प्रलयदशामें जगत्उत्पत्तिका कारणभूत माया, सत्स्वरूपवाली भी नही थी, और असत्स्वरूपवाली भी नही थी, किंतु सत् असत् दोनों स्वरूपोंसें विलक्षण अनिर्वाच्यस्वरूपवाली थी.

उत्तरपक्षः—जहां असत्का निषेध करेंगे, तहां अवश्यमेव सत्का विधि मानना पडेगा; और जहां सत्का निषेध करेंगे, तहां अवश्यमेव असत् मानना पडेगा; और जहां असत् सत् दोनोंका युगपत् निषेध करेंगे, तहां सत् असत् दोनों युगपत् मानने पडेंगे; और जहां सत् असत् दोनों युगपत् निषेध करेंगे, तहां असत् सत् दोनों युगपत् मानने पडेंगे. असत् और सत् ये दोनों एक स्थानमें रह नही सक्ते हैं.

पूर्वपक्षः—हम तो सत् असत् दोनों पक्षोंसें विलक्षण तीसरा अनिर्वाच्य पक्ष मानते हैं, इसवास्ते श्रुतिका कथन सत्य है

उत्तरपक्षः—यह जो तुम अनिर्वाच्यत्व मानते हो तो, इसके अक्षरोंका यह अर्थ होता है, निस्शब्द प्रतिषेधार्थमें है, सो प्रतिषेध, या तो भावका होना चाहिये, वा अभावका नकारप्रतिषेध भी, या तो भावका निषेध करेगा, या अभावका तब तो, अनिर्वाच्यत्वका अर्थ भी भाव, वा अभाव सिद्ध होवेगा, तो फेर अनिर्वाच्यत्व कहनेसें भाव, वा अभावसें अधिक कुछ भी नहीं सिद्ध होता है, इसवास्ते माया, या तो सत् माननी पडेगी, वा असत् माननी पडेगी

पूर्वपक्ष—प्रतीतिके जो अगोचर होवे, तिसकों हम अनिर्वाच्यत्व कहते हैं

उत्तरपक्ष—प्रलयदशामें सो प्रतीति अगोचर था, जो जीवोंके प्रतीति अगोचर था कि, ब्रह्मके प्रतीति अगोचर था? प्रथम पक्ष तो संभव होही नहीं सक्ता है, क्योंकि, प्रतीति करनेवाले जीव तो तिस प्रलय दशामें विद्यमानही नही थे तो, प्रतीति गोचर वा अगोचर किसकी अपेक्षा कहनेमें आवे? जेकर ब्रह्मके प्रतीति अगोचर था, तब तो माया, वा जगत्का कारण, खरशृंगवत् एकांत असत्रूप हुआ तब तो, तिससें जगत् उत्पत्ति त्रिकालमें भी नही होवेगी जेकर ब्रह्मके प्रतीति गोचर है, तब तो माया, सत्स्वरूपवाली सिद्ध होवेगी, तिसके सिद्ध होनेसें अद्वैत ब्रह्म त्रिकालमें भी सिद्ध नही होवेगा, इसवास्ते, 'नासदासीन्नोसदासीत्' यह कहना युक्तिसें बाधित है तथा 'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्' ॥ 'सदेव सौम्येद मग्र आसीत्' ॥ इन दोनों श्रुतियोंसें यह सिद्ध होता है कि, जगत् उत्पत्तिसें पहिले आत्मा, अर्थात् ब्रह्मही एकला था, अन्य कुछ भी नही था ॥ तथा हे सौम्य! सत्ही यह आगे था, अन्य कुछ भी नही था! प्रथम तो ऋग्वेदकी पूर्वोक्त श्रुतिसें ये दोनों श्रुतियों विरुद्ध मालुम होती हैं क्योंकि, इन दोनों श्रुतियोंसें तो, विना एक ब्रह्मात्मा सत्स्वरूपसें अन्य कुछ भी नही था, ऐसा सिद्ध होता है तब तो माया, अपरनाम जगत् उत्पत्तिका कारण, कदापि सिद्ध नही होवे

गा; तो फेर, ऋग्वेदकी श्रुतिकी कही अनिर्वाच्य माया, प्रलयदशामें क्योंकर सिद्ध होवेगी? जेकर कहोंगे, अव्याकृत, अर्थात् माया, और ब्रह्मके पृथक्रूप न होनेसें एकही आत्मा कहा है; तव तो, ब्रह्मकेसाथ ओतप्रोत होनेसें ब्रह्मके सतुस्वरूपकीतरें, माया भी सत्स्वरूपवाली सिद्ध होवेगी. तव तो ऋग्वेदकी श्रुतिने जो प्रलयदशामें मायाकों सत् असत् स्वरूपसें विलक्षण जो अनिर्वाच्य कथन करी है, यह कहना मिथ्या सिद्ध होवेगा.

और जब एकही ब्रह्म सत्स्वरूप था, तव तो इस जगत्का उपादान कारण भी सत्स्वरूप ब्रह्मही सिद्ध होवेगा, तव तो यह जडचैतन्य पंचरूप जगत् ब्रह्मरूपही सिद्ध हुआ. तव तो, धर्म, अधर्म, पुण्य, पाप, ज्ञान, अज्ञान, सत्कर्म, असत्कर्म, स्वर्ग, नरक, धर्मी, अधर्मी, साधु, असाधु, सज्जन, दुर्जन, गुरु, शिष्य, शास्त्र, इत्यादि कुछ भी सिद्ध नही होवेगा. तव तो, चार्वाक, और वेदांतमतवालोंके सदृशपणाही सिद्ध हुआ. क्योंकि, चार्वाक तो, चार भूतोंकाही कार्यरूप यह जगत् मानते हैं, अन्यधर्मा धर्मादि ऊपर कहे हुए है नही. और वेदांती, सर्व इस जडचैतन्यरूप जगत्का उपादानकारण एक सत्स्वरूप ब्रह्मही मानते हैं, इसवास्ते तिनके मतमें भी ऊपर कहे धर्माधर्मादिक नही है. इसवास्ते चार्वाक, और वेदांतमतवाले ये दोनों नास्तिक सिद्ध होते हैं. क्योकि, जो जीवोंकों अविनाशी नही मानता है, और पुण्यपापके हेतु, और पुण्यपापके फल भोगनेके स्थान नही मानता, आत्माकों भवांतर गमन करनेवाला नही मानता है, और देवगुरुधर्मकों नही मानता है, सो नास्तिक है; येह पूर्वोक्त सर्व लक्षण वेदांतमतमें मिलते हैं. क्योंकि, जब सर्व कुछ ब्रह्मही है, तब तो सत्स्वरूप ब्रह्ममें अन्य कुछ भी पुण्यपापादि न माने आवेंगे, इसवास्ते असली वेदांतका सिद्धांत, अंतमें नास्तिक सिद्ध हो जाता है.

पूर्वपक्षः—प्रलयदशामें एकही सत्स्वरूप ब्रह्म था, परंतु यजुर्वेदके सप्तदश (१७) अध्यायमें, और उपनिषदोंमें कहा है, और्णनाभि, अर्थात् मकडी कोलिकनामा जीव, जैसें अपने अंदरसेंही चेप जैसी वस्तु नि-

कालके जाल बनाता है, ऐसेंही सत्स्वरूप ब्रह्म, अपने आपहीमेंसे इस जगत्का उपादान कारण निकालके तिससेंही यह जगत् रचना करता है

उत्तरपक्ष —हे प्रियवर! यह जो ओर्णनाभि—मकडीका दृष्टांत दिया है, सो भी अयुक्त है, क्योंकि, ओर्णनाभि—मकडी जो है, सो केवल चैतन्य नही है, किंतु तिसका चैतन्यस्वरूपवाला जीव शरीररूप जड उपाधिवाला है, मनुष्यशरीरवत्, इसवास्ते, सो जंतु जो कुछ शरीरद्वारा आहार करता है, सो तिसके शरीरके अंदर चेप मलमूत्रादिपणे परिणमता है, मनुष्यके आहार करणेसें वात पित्त कफ मल मूत्र लालादिवत् तथा ओर्णनाभीने जो जाला रचा है, तिसका उपादान कारण ओर्णनाभि नही है, किंतु जालेका उपादानकारण ओर्णनाभिके शरीरमें जो चेपादि वस्तु है, सो है, इससें यह सिद्ध हुआ कि. ब्रह्मात्माके अन्य कुछक जडचेतन्यवस्तुयों थी, जिन उपादान कारणोंसें जडचेतन्यकार्यरूप संसार— रचा परंतु ब्रह्मनें स्वयमेवही जगत्रूपकों धारण स्वीकार नहीं करा, ऐसें मानोंगे, तब तो अद्वैतकी हानी होवेगी इसवास्ते, ओर्णनाभिका दृष्टांत भी असंगत है

तथा जब प्रलयदशा होती है तब केवल एकही ब्रह्म होताहै? वा माया और ब्रह्म ये दो होते हैं? वा मायाकरके अव्याकृत ब्रह्म, अर्थात् माया और ब्रह्म क्षीरनीरकीतरें अपृथक्पणें मिश्रित होते हैं? प्रथमपक्षमें तो शुद्ध, बुद्ध, सच्चिदानंद, अक्रिय, कूटस्थ, नित्य, सर्वव्यापक. ऐसे ब्रह्मसें तो त्रिकालमें कदापि सृष्टि नही होवेगी, निरुपाधिक होनेसें मुक्तात्मावत् ।१। जेकर दूसरा पक्ष मानोगे, तब तो द्वैतापत्तिसें त्रिकालमें भी अद्वैतकी सिद्धि नही होवेगी ।२। जेकर तीसरा पक्ष मानोंगे, तब तो तीनोंही कालमें एक शुद्ध ब्रह्मकी सिद्धि न होवेगी

और ऊपर सप्तम स्तंभमें लिखी श्रुतियोंमें लिखा है कि—ब्रह्मके चार भागोंमेंसें तीन भाग तो सदा मायाप्रपंचसें रहित शुद्ध सच्चिदानंदरूप अपने स्वरूपमेंही प्रकाश करता हुआ व्यवस्थित रहता है, और एक चौथा भाग तो मायामें मायामयरूप हो कर, अथवा सदा मायामें

युक्त हुआ थका सृष्टिसंहार करके वारंवार आता है, मायामें आयांअनंतर देव मनुष्य तिर्यगादिरूपकरके विविध प्रकारका हुआ थका जड चैतन्यके रूपकों व्याप्त होता है इत्यादि—अब हे प्रियवाचकवर्गो! तुम विचार करो कि, जब एक अद्वैतही शुद्ध सच्चिदानंद स्वरूप माना, तो फेर तिसका एक भाग तो मायासहित, और तीन भाग मायारहित निरुपाधिक संसारके स्पर्शरहित अमृतरूप कैसें हो सक्ते हैं? तथा चौथा भाग जो मायावाला है, सो क्या ब्रह्मसें भिन्न है? जेकर भिन्न है, तब तो दो ब्रह्म मानने पडेंगे; एक तो तीन गुणाधिक शुद्ध ब्रह्म, और एक चतुर्थांश मायावाला. जेकर तो ये दोनों ब्रह्म अनादिसें भिन्न है, तब तो तीनों कालोंमें भी अद्वैतकी सिद्धि नही होवेगी, जेकर एकही ब्रह्मका चतुर्थांश मायावान् है, शेष तीन भाग निर्मल है, तब तो यह प्रश्न उत्पन्न होवेगा कि, यह चौथा भाग अनादिसेंही मायावान् है, वा पीछेसें मायाका संबंध हुआ है? जेकर कहोंगे कि, अनादिसेंही मायावान् है, तब तो ब्रह्म सावयव वस्तु सिद्ध होवेगा, जैसें देवदत्तके पगऊपर कुष्ठका रोग है, शेषशरीर निरोग है; ऐसेंही ब्रह्मके तीन अंश तो निर्मल हैं, और एक अंश मायासंयुक्त है, इससें ब्रह्म सावयव सिद्ध होता है. और तीन अंशोंसें तो सच्चिदानंदस्वरूपमें मग्न है, और एक अंशकरके जन्म, मरण, रोग, शोक, जरा, मृत्यु, अनिष्टसंयोग, इष्टवियोगादि अनंत दुःखोंको भोग रहा है; और सदाही जिसकी ये दो अवस्था बनी रहेगी, तो फेर मुक्तरूप कौन ठहरा? और संसाररूप कौन ठहरा? जिस मायाने ब्रह्मके चौथे अंशकी ऐसी दुर्दशा कर रक्खी है, फेर तिस मायाकों सदा न मानना यह कैसी भूल है?

जेकर कहोंगे ब्रह्मका चतुर्थांश मायासंयुक्त आदिवाला है, जब ब्रह्ममें फुरणा होती है; तब चतुर्थांश मायावान् हो जाता है, यह भी ठीक नही, क्योंकि, फुरणेसें पहिलें तो माया नही थी, तो फेर फुरणा किस निमित्तसें हुआ? जेकर कहोंगे ब्रह्मस्वभावसेंही फुरणावाला होता है, तब तो संपूर्ण ब्रह्मकों युगपत् फुरणा होना चाहिये, नतु चतुर्थांशकों. जेकर कहोंगे

चतुर्थांशमेंही फुरणा होता है, नतु तीन अशोंमें, तीन अंश तो सदा अफुरही रहते हैं, तब तो ब्रह्ममें स्वभावभेद हुआ, स्वभावभेदसेंही ब्रह्म अनित्य सिद्ध होवेगा, "स्वभावभेदो ह्यनित्यताया लक्षणमितिवचनात् "

पूर्वपक्ष—प्रलयदशामें अव्याकृत ब्रह्म है, जब सर्व जीवोंके करे हुए शुभाशुभ कर्म परिपक्व हुए थके फल देनेके उन्मुख होते हैं, तब ईश्वरकों साक्षी फलप्रदाता होनेसें सृष्टिकी इच्छा होती है

उत्तरपक्ष—इस कथनसें तो ऐसा सिद्ध होता है कि, अव्याकृत ब्रह्ममें अनंत जीव, और अनततरेंके तिन जीवोंकरके पुण्यपाप, और पच भूतोंका उपादान कारण, ये सर्व सामग्री ब्रह्ममें सूक्ष्मरूप होके लीन हुइ होइ थी, जब ऐसें था, तब तो अद्वैतकी सिद्धि कदापि नही होवेगी जेकर कहोंगे ये सर्व सामग्री ब्रह्मसें अभेदरूप होके ब्रह्मके साथ रहती थी, तब तो सर्व कुछ ब्रह्म द्वैतरूपही हुआ, जब अद्वैत ब्रह्मही था, तब तो जीव अनंत पूर्वकल्पके करे अनततरेंके पुण्यपाप और पुण्यपाप परिपक्व होके फल देनेके उन्मुख होते हैं, तब ईश्वरकों सृष्टि करनेकी इच्छा उत्पन्न होती है, यह सर्व कहना महामिथ्या सिद्ध होवेगा क्योंकि, न तो कोइ ब्रह्मसें अन्य जीव है, न शुभाशुभ कर्म है, न कर्त्ता है, न फल है, और न फल देनेके उन्मुख कर्म होते हैं क्योंकि, एक ब्रह्माद्वैतही तत्त्व है

पूर्वपक्ष—ब्रह्मही अनंत जीव है, ब्रह्मही शुभाशुभ कर्म, ब्रह्मही कर्मका कर्त्ता, ब्रह्मही कर्मफल भोक्ता, ब्रह्मही अपने करे कर्मफल भोगनेकी इच्छा करके जगत् रचता है

उत्तरपक्ष—जब तुम्हारे कहे प्रमाण सर्व कुछ ब्रह्मही है, तब तो तुम्हारे ब्रह्मसमान अज्ञानी, अविवेकी, आत्मघाती, अन्य कोइ भी नही है क्योंकि, अब नानायोनियोंमें नानाप्रकारके शीत, ताप, क्षुधा, तृषा, सयोग, वियोग, कुष्ट, अलोदर, भगदर, अप्समार, क्षयी, ज्वर, शूल, नेत्रवेदना, मस्तकवेदना, जन्म मरणादि अनत दुःख अपने करे कर्मोंसें भोगता है, तब तो पाप करनेके अवसरमें ब्रह्मकों यह मालुम नही था कि, इन

कर्मोंका मुझे महादुःखरूप फल होवेगा; इसवास्तेही पाप करे; इस हेतुसें तुह्मारा ब्रह्म अज्ञानी सिद्ध होता है. तथा जेकर ब्रह्म विवेकी होता तो, पुण्यफलरूप शुभकर्मही करता, नतु अशुभ; परंतु उसने तो शुभाशुभ दोनो प्रकारके कर्म करे हैं, इसवास्ते तुह्मारा ब्रह्म अविवेकी सिद्ध होता है. जब आपही अपने दुःख भोगनेवास्ते जगत् रचता है, तव तो अपने पगों-में आपही कुहाडा मारता है, इसवास्ते आत्मघाती भी सिद्ध होता है.

प्रलय दशामें माया, जीव, जीवोंके कर्म, सर्व सूक्ष्मरूप होके ब्रह्ममें लीन थे, जब ब्रह्मकों जीवोंके करे कर्म परिपक्व फल देनेमें सन्मुख हुए, तब परमात्माकों सृष्टि करनेकी इच्छा उत्पन्न होती है, यह कथन ४ अंककी श्रुतिमें है, इसमें हम यह पूछते हैं कि, प्रथम तो, जे शुभाशुभ कर्म जीवोंने करे थे, ते कर्म रूपी थे कि, अरूपि थे ? जेकर रूपि थे तो, क्या जड थे, वा चेतन थे ? अत्र द्वितीयपक्ष तो स्वीकारही नही है, संभव न होनेसें । अथ प्रथमपक्षः—जेकर जड थे, तव तो परमाणुयोंके कार्य थे, वा अन्य कोइ उनका सपादन कारण था ? जेकर परमाणुयोंके कार्यरूप थे, तव तो अद्वैतकी हानी सिद्ध होती है; जेकर अन्यकोइ उपादान कारण मानोंगे, सो तो है नही; क्योंकि परमाणुयोंके विना अन्य कोइ कारण, रूपी कार्यका नही है; जेकर अरूपि जड थे, तब तो सिद्ध हुआ कि, आकाशकेविना अन्य कोइ वस्तु नही थी, और आकाश कर्मोंका उपादानकारण नही सिद्ध होता है; जेकर अरूपि चेतन थे, तब तो जीव, कर्मोंका उपादान कारण सिद्ध हुआ, जब कर्म चेतन हुए, तब तो जीवोंके ज्ञान विचारोंकेही नाम कर्म हुए. अथ जो वह कर्म ज्ञानरूप है, ते परिपक्व फल देनेके उन्मुख हुए थके, क्या ब्रह्मकों खाज उत्पन्न करते हैं ? जो हम फल देनेके सन्मुख हुए है, इसवास्ते जगत् रचो ! वा अंदर कोइ कर्मकी खेती बोइ हुइ है ? जिसके देखनेसें ब्रह्मकों सृष्टि करनेकी इच्छा उत्पन्न होती है ! वा वे कर्म ईश्वरकों चुहंडीयां भरते है ? जिसमें ईश्वर जानता है कि, येह परिपक्व होके फल देनेके सन्मुख हुए हैं ! अथवा कर्म ब्रह्मकेसाथ लडाइ करते हैं ? कि, जीवोंकों तूं

हमारा फल क्यों नही देता है? इस हेतुसें ईश्वरकों सृष्टि रचनेकी इच्छा उत्पन्न भइ ? अथवा वे कर्म ईश्वरके साथ लडके ईश्वरकी आज्ञासें बाहिर हुए चाहते हैं, तिनके राजी रखनेकों ईश्वरकों सृष्टि रचनेकी इच्छा उत्पन्न होवे है? इत्यादि अनेक विकल्प कर्मोंमें उत्पन्न होते हैं परंतु प्रथम तो चारों वेदोंमें, और अन्य मतोंके शास्त्रोंमें, कर्मोंका यथार्थ स्वरूप ही कथन नही करा है जेकर कर्मोंका स्वरूप लिखा भी है, तो भी, जीव हिंसा करनी, मृषा बोलना, चोरी करनी, परस्त्रीगमन करना, क्रोध, लोभ, मद, माया, छल, दंभादि करनेका नाम कर्म लिखा है, परंतु येह तो कर्मोंके उत्पन्न करनेकी क्रिया है, नतु कर्म जैसें घट उत्पन्न करनेमें कुलालका चक्रभ्रमणादिव्यापाररूप क्रिया है, तिस क्रियासें घट उत्पन्न होता है, तैसेंही, जीवहिंसादि पूर्वोक्त सर्व कर्मोंके उत्पन्न करनेकी क्रिया है, परंतु कर्म नही तथा कितनेक कहते है, प्रारब्ध कर्म १, संचितकर्म २, और क्रियमाण कर्म ३, ये तीनप्रकारके कर्म है परंतु कर्म वस्तु क्या है? जब संचित कर्म है, वो संचयिक वस्तु क्या है? जो फल देनेमें उन्मुख होवे, सो कर्म क्या वस्तु है? जे कर्म जीवकेसाथ प्रवाहसें अनादि संबंधवाले हैं, वे क्या वस्तु है? हे ! प्रियवाचकवर्गो ! किसीमतमें भी यथार्थ कर्मोंका स्वरूप नही लिखा है, इसवास्तेही अर्हन् भगवान्के विना सर्वमतोंवाले यथार्थ कर्मस्वरूपके न जाननेसें सर्वज्ञ नही थे

पूर्वपक्ष -अर्हन भगवानने कर्मोंका कैसा स्वरूप कथन करा है ?

उत्तरपक्ष -विस्तार देखना होवे तब तो, षट्कर्मग्रंथ, पंचसंग्रह, कर्मप्रकृतिआदि शास्त्रोंको गुरुगम्यतामें पठन करो और संक्षेपसें देखना होवे तो, हमारी रची जैनप्रश्नोत्तरावलिमें कर्मोंका किंचिन्मात्रस्वरूप देख लेना

• अब हम उपर मसम मंत्रमें लिखी वेदकी श्रुतियोंकीही किंचित् परीक्षा करते है तीसरी श्रुतिमे लिखा है कि, सृष्टिसें पहिले प्रलयदशामें भूत भौतिक सर्व जगत अज्ञानरूप तम करके आच्छादित था अर्थात् आत्मतत्त्व आवरण होनेसें माया अपरमज्ञाभावरूप अज्ञान इहां तम

ऐसा कहते हैं. ॥ परीक्षा ॥ जब प्रलयदशामें भूत भौतिक जगत् अज्ञानरूप तमःकरके आच्छादित था, तब तो भूत भौतिक जगत् विद्यमान सिद्ध होता है. क्योंकि, कोइ वस्तु ढांकणेसे अभावरूप नही होती है, तब तो ब्रह्मने प्रलयकरके आपही आपना सत्यानाश करा. जैसें कोइ पुरुष नानाप्रकारकी क्रीडारंग विनोद भोग विलासादि करता हुआ, एकदम अपना सर्व ऐश्वर्य नाशकरके आंखोंके आगे पट्टी बांधकर किसी अंधकारवाली पर्वतकी गुफामें जा पडे तो, तिसकों अवश्यमेव मूर्ख कहना चाहिए. क्योंकि, जिसकों अपने आपके हितकी इच्छा नही है, तिससें अधिक अन्य कौन पुरुष मूर्ख है ? कोइ भी नही है. किंच पुरुष तो, किसी पर्वतकी गुफामें जा पडा है, परंतु सृष्टि संहारकरके ब्रह्म अज्ञानाच्छादित होके किस स्थानमें रहता था ? क्योंकि, प्रलयदशामें आकाश तो था नही; और विना आकाशके कोइ जड चेतन वस्तु रह नही सक्ती है. और विना आकाशके वस्तुका रहना मानना यह युक्तिप्रमाणसें विरुद्ध है, प्रेक्षावान् कदापि नही मानेंगे. प्रलय करेनेसें तो जगत् संहारी होनेसें ब्रह्मात्माकों निर्दय और आत्मघाती कहना चाहिए; और प्रलय न करे तो, ब्रह्मकी कुछ हानि नही है, और सृष्टि न करे तो भी कुछ हानि नही है, तो फेर, विनाप्रयोजन पूर्वोक्त काम करनेसें कौन बुद्धिमान् परमात्माकों सर्वज्ञ कृतकृत्य वीतराग करुणासमुद्र इत्यादि विशेषणोंवाला मान सक्ता है ? जेकर परमात्मा सृष्टि न रचे तो, इसमें उसकी क्या हानि है ?

पूर्वपक्षः—जेकर ईश्वर सृष्टि न रचे तो, जीवोंके करे शुभाशुभ कर्मोंका फल जीवोंके भोगनेमें क्यों कर आवे ?

उत्तरपक्षः—जेकर ईश्वर जीवोंके कर्मोंका फल न भुक्तावे तो, ईश्वरकी क्या हानि होवे ? क्योंकि तुमारे मतमूजब जीव आपतो कर्मोंका फल भोग सक्तेही नही, और ईश्वर सृष्टि रचे नही, तब तो बहुतही अच्छा काम होवे, न तो जीव पूर्वकर्मका फल भोगे, और न नवीन शुभाशुभ कर्म आगेंकों करे, सदा काल प्रलयदशामेंही परमानंदकों ब्रह्मानंदमें लय होके भोगा करे. क्योंकि, उपनिषदोंमें लिखा है कि, सुषुप्तिमें आत्मा ब्र-

ह्ममें लय होके परमानंदको भोगता है, जब सुषुप्तिमें यह दशा है तो, प्रलयरूप महासुषुप्तिमें तो परमानंदका क्या कहना है ? इससें तो जब ईश्वर सृष्टि रचता है, तब जीवोंके परमानंदका नाश करता है, यह सिद्ध होता है तो फेर, ईश्वर सृष्टि क्यों रचता है ?

पूर्वपक्ष —जेकर ईश्वर सृष्टि रचके जीवोंको कर्मफल न भुगावे, तब तो ईश्वरका न्यायशीलता गुण रहे नही, जगत्में न्यायाधीश होके जो बुरेकों सजा न देवे सो न्यायाधीश नही है

उत्तरपक्ष —वेदमतमें तो एक ब्रह्मके विना अन्य कोइ जीवात्मा है ही नही तो, क्या ब्रह्म आपही न्यायाधीश बनता है ? और आपही अशुभ कर्म करके सजाका पात्र होके दंड लेता है ? यह तो ऐसा हुआ, जैसे किसीनें आपही पापकर्म करे, और तिनके फल भोगनेवास्ते अपने हाथसेंही अपने नाक कान हाथ पग मस्तकादि छेदन कर डाले, इससें तो, ब्रह्म प्रथम पाप न करता, तथा ईश्वर अन्य जीवोंकों नवीन पाप न करने देता, तब तो सदाकाल प्रलयदशाही रहती न तो सृष्टि रचनी पडती, और न सृष्टिका संहार करना पडता, और न जीवोंकों कर्मका फल देना पडता, सदाही परमानंद भोगता रहता यह तो ब्रह्मने सृष्टि क्या रची, आपही अपने पगमें कुहाडा मारा ! ऐसे अज्ञानीकों कौन बुद्धिमान् ब्रह्मेश्वर मान सक्ता है ? इसवास्ते जो प्रलयका स्वरूप श्रुतियोंने कहा है, सो केवल प्रलापमात्र है, युक्तिविकल होनेसे ॥ इति प्रलयसमीक्षा ॥ चौथी श्रुतिमें लिखा है कि, परमात्माके मनमें सृष्टि रचनेकी इच्छा उत्पन्न भइ, यह कहना भी मिथ्या है, क्योंकि, शरीरके विना कदापि मन नही होता है शरीरविना मन है ऐसा सिद्ध करनेवाला प्रत्यक्ष, वा अनुमानादिप्रमाण नही है परंतु शरीरविना मन नही, ऐसा तो प्रत्यक्ष अनुमानसें सिद्ध हो सक्ता है और मनविना इच्छा कदापि सिद्ध नही इसवास्ते प्रलयदशामें भी ब्रह्मके शरीर होना चाहिए जेकर प्रलयदशामें भी ब्रह्मके शरीर मानोंगे, तब तो यह प्रश्न उत्पन्न होवेगा कि, शरीर ब्रह्मके साथ अनादिसें संबंधवाला है कि, आदिसंबंधवाला है ? जेकर अनादि संबंधवाला है तब

तो 'नासदासीन्नोसीत्' इत्यादि यह श्रुति मिथ्या ठहरेगी, और ब्रह्म मुक्तरूप न ठहरेगी और तीन भाग ब्रह्मके सदा निर्लेप मुक्तरूप, और चोथा भाग मायावान् यह भी सिद्ध नही होवेगा क्योंकि, एक भाग शरीरवाला, और तीन भाग शरीररहित, यह युक्तिसें विरुद्ध है; इसतें तो ब्रह्मके दो भाग हो गए, तब संपूर्ण ब्रह्म मुक्तरूप सिद्ध न हुआ. और अद्वैतमतकी तो, ऐसी जड कटेगी कि, फेर कदापि न उत्पन्न होवेगी. इसवास्ते अनादिशरीरसंबंधवाला ब्रह्म मानना यह प्रथम पक्ष मिथ्या है.

अथ दूसरा पक्ष सादिशरीसंबंधवाला ब्रह्म है, ऐसा मानोंगे, तब तो शरीर भी ब्रह्मने इच्छा पूर्वकही रचा सिद्ध होवेगा, इच्छा मनका धर्म है, और मन शरीरविना नही होता है, इसवास्ते इस शरीरसें पहिले अन्यशरीर अवश्य होना चाहिए; तिससें आगे अन्य, इसतरें माननेसें अनवस्थादूषण होवे है, इसवास्ते दूसरा पक्ष भी मानना मिथ्या है. इस कथनसें यह सिद्ध हुआ कि, प्रलयदशामें ब्रह्मके शरीर नही है, और शरीरविना मन नही हो सक्ता है, और मनविना इच्छा नही होती है और इच्छाके विना ब्रह्म कदापि सृष्टि नही रच सक्ता है.

पूर्वपक्षः—सृष्टि और प्रलय ये दोनों करनेका ईश्वरका स्वभावही है इसवास्ते सृष्टि रचता है और प्रलय करता है.

उत्तरपक्षः—एकवस्तुमें अन्योन्य विरुद्ध, दो स्वभाव नही रह सक्ते हैं.

पूर्वपक्षः—हम तो परस्पर विरुद्धस्वभाव मानते हैं.

उत्तरपक्षः—ये दोनों स्वभाव नित्य है कि, अनित्य है? ईश्वरसें भिन्न है कि, अभिन्न है? रूपी है कि, अरूपी है? जड है कि, चेतन है? जेकर ये दोनों स्वभाव नित्य हैं, तब तो ये दोनों स्वभाव युगपत् सदा प्रवृत्त होवेंगे, तव तो ईश्वर सदाही सृष्टि रचेगा, और सदाही प्रलय करेगा; तव तो, न सृष्टि होवेगी; और न प्रलय होवेगी. जैसें एक पुरुष दीपक जलाया चाहता है, तब दुसरा पुरुष जलानेके समयमेंही बुजाया करता है, तव तो दीपक न जलेगा, और न बुजेगा. इसीतरें ईश्वरका सृष्टि रचनेका स्वभाव तो सृष्टि रचेहीगा, और ईश्वरका प्रलय करनेका

स्वभाव तिस समयमेंही प्रलय करेगा, तब तो सृष्टि, और प्रलय, ये दोनोंही होवेंगी, इसवास्ते प्रथम विकल्प मिथ्या है

जेकर ये दोनों स्वभाव अनित्य है तो, क्या ब्रह्मेश्वरसें भिन्न है कि, अभिन्न है? जेकर भिन्न है तो, ईश्वरके ये दोनों स्वभाव नही है, ईश्वरसें भिन्न होनेसें जेकर अनित्य, और अभिन्न है, तब तो जेसें स्वभाव उत्पत्तिविनाशवाले है, तेसें ईश्वर भी उत्पत्तिविनाशवाला मानना चाहिए, स्वभावोंसें अभिन्न होनेसें पर ऐसें मानते नही है, इसवास्ते यह पक्ष भी मिथ्या है

जेकर स्वभाव रूपी है, तब तो ईश्वर भी रूपीहि होना चाहिए, क्यों कि, स्वभाव वस्तुसें भिन्न नही होता है तब तो ईश्वरकों रूपी होनेसें जडताकी आपत्ति होवेगी, इसवास्ते यह भी पक्ष मिथ्या है जेकर दोनो स्वभाव अरूपी है तब तो किसी भी वस्तुके कर्त्ता नही हो सके है, अरूपित्व होनेसें, आकाशवत् इसवास्ते यह भी पक्ष मानना मिथ्या है

जड पक्ष, रूपी पक्षकीतरें खंडन करना और चेतन पक्ष, नित्यानित्य, और भेदाभेद पक्षमें अवतारके उपरकीतरें खंडन जान लेना इसवास्ते स्वभाव पक्ष मानना केवल अज्ञानविजृंभित है, और श्रुतियोंमें जो सृष्टि रचनेकी इच्छा ईश्वरमें मानी है, सो भी अज्ञानविजृंभित प्रलापमात्रही है, परीक्षाऽक्षमत्वात् ॥ इतिसृष्टिरचनायामीश्वरेच्छाखंडनम् ॥

छट्टी श्रुतिमें पूर्वपक्षकी तर्फसें प्रश्न करे है कि, कौन पुरुष परमार्थसें जानता है, और कौन कह सका है कि, यह दिखलाइ देती नाना प्रकारकी सृष्टि किस उपादानकारणसें, और किस निमित्तकारणसें उत्पन्न भइ है? मनुष्य नही जानते, और नही कह सके है, परंतु देवते सर्वज्ञ हैं, वे तो जानते होवेंगे, और कह भी सके होवेंगे? इस शंकाके दूर करनेवास्ते कहते हैं, अर्वागिति। इस भौतिक सृष्टिके उत्पन्न करे पीछें सर्व देवते उत्पन्न हुए हैं, इसवास्ते देवते भी नही जान सके, और नही कह सके हैं शुक्लयजुर्वेदके १७ अध्यायकी १८।१९।२० श्रुतियोंमें भी पूर्वपक्षकी तर्फसें प्रश्न पूछे हैं। परंतु ऋगवेदमें तो यह उत्तर दिया है कि, परमात्माने अपनी सामर्थ्यसें

यह जगत् रचा है, और धारण भी परमात्माही करता है.। और यजुर्वेदमें यह उत्तर दिया है कि, और्णनाभिकीतरें जगत् रचता है.। ऋग्वेदसें यह अधिक कहा है, और्णनाभिके दृष्टांतकों तो हम ऊपर खंडन कर आए हैं, और शेष उत्तर तो, श्रुति कहनेवालेकी प्रिय स्त्रीही मानेगी परंतु प्रेक्षावान् तो कोइ भी नही मानेगा. क्योंकि, जबतांइ परमात्मा सर्व सामर्थ्यवान् उपादानादि सामग्रीविना अपनी महिमासें जगत् रचनेवाला सिद्ध न होवेगा, तबतांइ यह जगत् विना उपादान निमित्तकारणोंसे आकाशादि अपेक्षाकारणके विनाही ईश्वरका रचा हुआ है, ऐसा सिद्ध नही होवेगा. और जबतांइ यह जगत् विना उपादान निमित्तकारणोंसें आकाशादि अपेक्षाकारणके विनाही ईश्वरका रचा हुआ सिद्ध नही होवेगा, तबतांइ परमात्मा सर्वसामर्थ्यवान् उपादानादिसामग्रीविना अपनी महिमासें जगत् रचनेवाला सिद्ध नही होवेगा. यह इतरेतराश्रय दूषण है; इसवास्ते ऊपर लिखी श्रुतियोंमें जो सृष्टिबाबत कथन है, सो भी प्रलापमात्रही है.

इसवास्तेही अक्षपाद, गौतममुनिनें वेदोंकों अप्रमाणिकपणा मानकेही न्यायसूत्रोंमें, और कणादमुनिनें वैशेषिकसूत्रोंमें आकाशको नित्य, और सर्वव्यापक माना. और दिशा, आत्मा, मन, काल और पृथिवीआदि भूतोंके परमाणुयोंकों नित्य माने. इत्यादि जो वेद विरुद्ध प्रक्रिया रची, सो वेदकी प्रक्रियाकों अप्रमाणिक मानकेही रची सिद्ध होती है. और जैमिनीनें अपने मीमांसाशास्त्रमें जगत्को अनादि माना है, ईश्वर सर्वज्ञ सृष्टिका कर्त्ता मान्याही नही है. वो भी तो, श्रीव्यासजीकाही शिष्य था, और मुख्य सामवेदी यही था; तिसने तो, ईश्वरविषयक मंडल, अष्टक, अध्याय, अनुवाक, सूक्त, सर्व नवीनप्रक्षेपरूप मानके प्रमाणिक नही माने हैं. इसवास्ते वेदोक्त सृष्टि रचना अज्ञानीयोंकी कल्पना करी हुइ है, इसवास्ते वेदका कथन सत्य नही है.

अथ ऋग्वेद अष्टक ८ अध्याय ४ की श्रुतियोंमें जो सृष्टिक्रम लिखा है, तिसकी भी यत्किंचित् समीक्षा लिखते हैं. चौथे अंककी श्रुतिसें लिखा

है, जो ब्रह्मका चौथा अंश है, सो मायामें आकर देवतिर्यगादिरूपकरके विविध प्रकारका हुआ थका व्याप्त हुआ क्या करके? चेतन अचेतन रूपकरके, सोही दिखाते हैं, तिस आदि पुरुषसें विराट्, अर्थात् ब्रह्मांड उत्पन्न भया, तिसमें जीवरूपकरके प्रवेशकरके ब्रह्मांडाभिमानी देवात्मा जीव होता भया, पीछे विराट्सें व्यतिरिक्त देव तिर्यङ् मनुष्यादिरूप होता भया, पीछे देवादि जीवभावसें भूमिको सृजन करता भया, अथ भूमि सृष्टिके अनंतर तिन जीवोंके शरीर रचता भया, शरीरोंके उत्पन्न हुए थके देवते, उत्तर सृष्टिकी सिद्धिवास्ते बाह्यद्रव्यके अनुत्पन्न होनेसें हविके अंतर असंभव होनेसें पुरुषस्वरूपही मन करी हविपणे संकल्पकरके पुरुषनामक हविकरके मानस यज्ञका विस्तार करते भए, तिस अवसरमें तिस यज्ञका वसंत ऋतु घृत होता भया, ग्रीष्म ऋतु इध्म होता भया, शरद् ऋतु हवि होता भया, अर्थात् तिसकोंही पुरोडाशाभिध हविकरके कल्पन करते भए, यज्ञका साधनभूत पुरुष तिसकों पशुत्वभावनाकरके यूपमें बांधते हुए, बर्हिषि मानस यज्ञमें प्रोक्षण करता भया, कैसा पुरुष? सर्वसृष्टिसें पहिले उत्पन्न भया, तिस पशुरूप पुरुषकरके देवते पूजते भए मानस यज्ञ निष्पन्न करते भए कौन ते देवते? सृष्टिके साधन योग्य प्रजापति-प्रभृति तिनके अनुकूल ऋषिमंत्रोंके देखनेवाले यजन करते भए, सर्वहुत पुरुषसें अर्थात् मानस यज्ञसें दधिमिश्रित घृत संपादन करा, वायु देव संबंधी लोकमें प्रसिद्ध हरिणादि आरण्य पशुयोंको उत्पन्न करता भया, ग्राम्य पशु गौआदि तिनकों उत्पन्न करता भया, तिस यज्ञसें ऋच् साम उत्पन्न भए, तिससेंही गायत्र्यादि छंद उत्पन्न भए, तिस यज्ञसेंही यजुर्वेद होता भया, तिससेंही अश्व घोडे गर्दभ खच्चरां उत्पन्न भए, तिस यज्ञसें गौयां बकरीयां भेडें उत्पन्न भई, प्रजापतिके प्राणरूप देवते जब विराट्रूप पुरुषकों उत्पन्न करते भए, तब तिस पुरुषका मुख क्या होता भया? दोनों बाहु क्या होते भए? ऊरु क्या होते भए? पग क्या होते भए? (उत्तर) ब्राह्मणत्व जातिविशिष्टपुरुष मुखसें उत्पन्न हुए, क्षत्रियत्वजातिविशिष्ट पुरुष बाहोंसें उत्पन्न भए, ऊरु—साथलोंसें वैश्य, और पगोंसें शूद्र उत्पन्न भए

ऐसाही कथन यजुर्वेदमें है. प्रजापतिके मनसें चंद्रमा उत्पन्न हुआ, नेत्रोंसें सूर्य उत्पन्न भया, मुखसें इंद्र और अग्निदेवते उत्पन्न भए, प्राणोंसें वायु उत्पन्न भया, प्रजापतिकी नाभिसें आकाश उत्पन्न भया, शिरसें स्वर्ग उत्पन्न भया, पगोंसें भूमि उत्पन्न भई, और कानोंसें दिशायां उत्पन्न भई, यह ऋगुवेदके कथनानुसार सृष्टि होनेका क्रम कहा.

अब पूर्वोक्त सृष्टिक्रमको प्रमाणयुक्तिसें समीक्षापथमें लाते हैं. । प्रथम तो एक निरवयव ब्रह्मके चार अंश कथन करने मिथ्या है, एक अंशने क्या पाप करा? जो अनादि अनंत मायाकरके संयुक्त सृष्टि और प्रलय करता है, और आपही संसारी होके नानाप्रकारके जरा मृत्यु रोग शोक क्षुधा तृषा नरक तिर्यगादिरूपोंसें महासंकट दु.ख भोग रहा है; और तीन अंश सदा मुक्त ब्रह्मानंदमें मग्न हो रहे हैं, क्या एक ब्रह्ममें मुक्त और संसार एककालमें संभव हो सक्ते है? आपही सृष्टि रचके आत्मघाती है, उपदेश किसको करता है? और वेद किसवास्ते रचता है? क्योंकि, तिसकी तो सदाही दुर्दशा रहती है. और व्यास शंकरस्वामीप्रमुख सर्व वेदांती जब ब्रह्मज्ञानी होके ब्रह्ममें लीन होते हैं, तब तीन अंशोंमें लीन होते हैं कि, एक चौथे अंशमें? जेकर तीन अंशमें लीन होते हैं, तब तो यह जो श्रुतिमें लिखा है कि, त्र्यंश तो सदाही संसारकी मायासें अलग रहते हैं; तब तो वेदांतीयोंके मिलनेसें तीन अंशोंमें निर्मल ब्रह्म अधिक हो जावेगा, और चौथा मायावाला अंश न्यून हो जावेगा. जब दोनों हिस्से वधे घटेंगे, तब तो ब्रह्ममें अनित्यतारूप दूषण उत्पन्न होवेगा. जेकर मायावान् चौथे हिस्सेरूप ब्रह्ममें लीन होते हैं, तब तो गर्दभके स्नानतुल्य वेदांतीयोंकी मुक्ति सिद्ध होवेगी. जैसें किसीनें गर्दभको स्नान करवाया, तदपीछे सो गर्दभ कुरडीकी राखमें जाके फेर लौटने लगा, फेर वैसाही मलीन हो गया; ऐसेंही वेदांतियोंने प्रथम तो ब्रह्मविद्यारूप जलसें स्नान करके प्रपंच धोयके निर्मलता प्राप्त करी, फेर मायावाले ब्रह्ममें लीन होनेसें फेर वैसेही मायाप्रपंचवाले बन गए.

पूर्वपक्षः—शुद्ध ब्रह्ममेंही लीन होते हैं, नतु मायावान्में.

उत्तरपक्ष —तब तो एक २ अंशकी मुक्ति होनेसें संपूर्ण ब्रह्मकी कदापि मुक्ति नही होवेगी, इत्यादि अनेक दूषण होनेसें यह कथन भी मिथ्या है तथा ब्रह्म जो है, सो ज्ञानस्वरूप है, तिसकों जड विराट्का उपादानकारण मानना यह युक्तिप्रमाणसें विरुद्ध है क्योंकि, चैतन्यवस्तु कदापि जडका उपादन कारण नही हो सक्ता है ॥ विना परमाणुयोंके भूमिसृजन और शरीर रचे लिखा है, सो भी मिथ्या है क्योंकि, परमाणुयोंकों नित्य मानना है सो तो अद्वैतमतकी जडकों काटना है, और विनाही परमाणुयोंके जडभूमि और जीवोंके शरीरोंका उपादानकारण ज्ञानस्वरूप ब्रह्म मानना, सो तो त्रिकालमें भी युक्तिप्रमाणसें कदापि सिद्ध नही होवेगा जेकर युक्तिप्रमाणके विनाही मानोंगे, तब तो प्रेक्षावानोंकी पंक्तिसें बाहिर हो जावोगे, और चार्वाक नास्तिक मतकी प्रवृत्ति भी वेदसेंही सिद्ध होवेगी क्योंकि, पंजाब देशमें, फुल्लोरनगरके वासी, पंडित श्रद्धारामजीने सत्यामृतप्रवाह नामक ग्रंथ रचा है, तिसमें इस मतलबका लेख लिखा है—वेदमें दो तरेंकी विद्या कही है, एक अपरा और दूसरी परा, तिनमेंसें संहिता ब्राह्मण उपनिषद प्रमुखमें प्रायः अपरा विद्याही कथन करी है, और परा विद्या प्राय गुप्तही रक्खी है मेरेकों परा विद्याकी खबर बहुत दिनोंसें थी, परंतु जगत् व्यवहारीयोंकी शंकासें मैनें प्रकाश नही करी, अब मैं अंतमें परा विद्याका स्वरूप लिखता हूं यह जो ब्रह्मांड दिखलाइ देता है, यही ब्रह्म है और श्रुति भी यही बात कहती है—"सर्वं खल्विदं ब्रह्म इत्यादि—" इदं पदकरके यह दृश्यमान जगतही ग्रहण करणा, यह जो पंचभौतिक जगत् है, सोही ब्रह्म है, इससें अतिरिक्त अन्य कोइ ब्रह्म नही है, यह ब्रह्मांड अनादि अनंत पंचभूतोंका एक गोलक है, इसकों न किसीने रचा है, और न कोइ इसका प्रलय करनेवाला है, इस गोलकके अंदरही अनेक पदार्थ उत्पन्न होते हैं, और इसमेंही लय हो जाते है, जैसें समुद्रके जलमें अनंत तरंग बब्बुदबुद उत्पन्न होते हैं, और जलमेंही लय हो जाते हैं, न कोइ आता है और न कोइ जाता है, पांचभौतिक देहसें अन्य जीवना

मक कोइ पदार्थ नही है, वेदकी श्रुतिमें भी ऐसाही लेख है.--*"विज्ञानघन एव एतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्य संज्ञास्ति--" विज्ञान आत्माही इन दृश्यमान भूतोंसें उत्पन्न हो कर तिनके विनाश होते थके अनु पश्चात् विज्ञानघन भी नाशकों प्राप्त होता है, इसवास्ते प्रेत्य संज्ञा नही है, अर्थात् मरके परलोकमें कोइ जाता नही है, इसवास्ते परलोककी संज्ञा नही है--तथा हम सच कहते हैं कि, न कोइ ईश्वर है, और न कोई उसकी वाणी है, किंतु सब ग्रंथ बुद्धिमानोंने अपनी बुद्धिकी अनुसार रचे हूए हैं--पूर्वाचार्योंने ईश्वरनाम एक कल्पित शब्द मंदबुद्धोंके कानसें इस कारणसें डाला था कि उसके भय और प्रेमसें लोक शुभाचारमें प्रवृत्त और अशुभाचारसें निवृत्त हो कर परस्पर सुख लिया करें, परंतु अब इस शब्दने संसारमें बडाभारी अनर्थ कर छोडा है; इत्यादि—यदि पूर्वाचार्यों भेदवादियोंके अनर्थरूप ग्रंथ जगत्में विद्यमान न होते कि, जिनके पढनेसें लोक ईश्वरादिके बोझसें दबाये जाते, और सारा आयु उससें त्राण नही पाते तो, ऐसे (सत्यामृतप्रवाहसदृश) ग्रंथोंका लिखना आवश्यक नही था; इत्यादि परा विद्याका रहस्य लिखा है.॥ इस समयमें निर्मले साधुआदि प्रायः जे पूरेपूरे वेदांति हैं, तिनसेंसें अत्यंत वेदांतके अभ्यास करनेवालोंनें वेदांतका तत्व जानकर पंजाब देशमें रोड्डे, और चक्खुकटेके नामसें पंथ निकालके उपर कही पंडित श्रद्धारामजीवाली परा विद्याका लोकोंकों उपदेश करते फिरते हैं.। इससें यह सिद्ध हुआ कि, जे कोइ वेदमतवाले इस ब्रह्मांडका उपादान कारण ब्रह्म मानते हैं, वेही असल पूर्वोक्त नास्तिकमतके बीजभूत है. क्योंकि उपादान कारण अपने कार्यसें भिन्न नही होता है, जैसें मृत्तिका घटसें. इसवास्ते परमाणुयोंके विना भूमिसृजन, और जीवोंके शरीरादिकोंका उत्पन्न होना मानना है, सो मिथ्या है; अंत नास्तिक होनेसें.

देवतायोंने मानस यज्ञ करा तिस मानस यज्ञसें अनेक वस्तुयोंकी कल्पना उत्पत्ति लिखी है, सो भी मिथ्या है; प्रमाणयुक्तिसें बाधित होनेसें.

* बृहदारण्यके चतुर्थाध्याये चतुर्थ ब्राह्मणे ॥ १२ ॥

ब्रह्माजीके मुखसें ब्राह्मण उत्पन्न भए, इत्यादि, यह भी महाअज्ञोंका कथन है क्योंकि, अनादिकालसें जे जे योनियां जिन जिन जीवोंकी उत्पत्तिकेवास्ते नियत हैं, ते ते जीव तिन तिन योनियोंसें उत्पन्न होते हैं। यदि ब्रह्मणादि चार वर्णोंकी मुखादि योनिया थी, तब तो ब्राह्मण सदाही ब्रह्माजीके, वा अपने पिताके मुखसेंही उत्पन्न होने चाहिए, और क्षत्रिय ब्रह्माजीकी, वा अपने पिताकी बाहासें उत्पन्न होने चाहिए, ऐसेंही वैश्य, और शूद्र भी जानने और इसतरें उत्पन्न तो नही होते हैं, इसवास्ते यह प्रत्यक्षविरुद्ध वेदका कथन कौन बुद्धिमान् मानेगा ? कोइ भी नही मानेगा तथा इस कथनमें यह भी शंका उत्पन्न होती है कि, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र यह तो ब्रह्माजीके पूर्वोक्त अंगोंसें उत्पन्न भए परंतु ब्राह्मणी, क्षत्रियाणी, वाणियाणी, और शूद्रणी ये चारों कहांसें उत्पन्न हुई हैं ? क्योंकि, इनकी उत्पत्ति वास्ते ऋग्वेद यजुर्वेदके मूलपाठमें और भाष्यमें उपलक्षण भी नही लिखा है क्या ब्राह्मणादि चारोंके मुखसें, वा गुदासें ब्राह्मणी आदिकोंकी उत्पत्ति माननी चाहिए ? वा जिन स्थानोंसें ब्राह्मणादि चारोंकी उत्पत्ति हुई, वेही ब्राम्हणी आदि चारोंके उत्पत्तिस्थान मानने चाहिए ? यदि ऐसें मानोंगे, तब तो प्रथम पक्षमें तो यावत् स्त्रीजातियावच्छिन्न सर्व पुत्रीरूप होंगी और दुसरे पक्षमें भगिनी (बहिन) रूप होंगी, तो क्या पुत्री, वा बहिनसें पाणिग्रहणादि क्रिया करनेसें पूर्वोक्त माननेवालेयों लज्जा न आवेगी ? स्यात् ना भी आवे, क्योंकि, स्त्री, पुत्री, बाहिन, माता, पति, पुत्र, भ्राता, पितादि, वा स्तयिकमें हैही नही, सर्व एक ब्रह्म होनेसें वाह जी वाह ! क्या सुंदर श्रद्धा निकाली है, भला शोचो तो सही, इससें अधिक नास्तिकपणा क्या है ?

तथा तुमारे माननेपुजय न्यायकी बात तो यह है कि जैसें ब्रह्माजीके चारों अंगोंसे ब्राह्मणादि चारोंकी उत्पत्ति लिखी है, ऐसेंही ब्रह्माजीकी स्त्रीके मुखसे ब्राह्मणी बाहोंमें क्षत्रियाणी इत्यादि मानना चाहिए परंतु इसमें भी फेर टंटाही रहेगा कि, ब्रह्माजीकी स्त्री कहांसें उत्पन्न भई ?

इस कथनसें यही सिद्ध होता है कि, येह सर्व श्रुतियां अज्ञानियोंकी कथन करी हुई हैं. क्योंकि, जे जीव गर्भसें उत्पन्न होते हैं, वे सदा अनादिकालसें अपनी २ मातायोंके गर्भसेंही उत्पन्न होते चले आते हैं; और यही इस जगत्‌के अनादि होनेमें बडा दृढ प्रमाण है. नही तो, कोइ भी पूर्वोक्त गर्भज जीवोंको विनागर्भके उत्पन्न करके दिखलावे. जब एक गर्भज मनुष्य विनागर्भके उत्पन्न करके दिखलावे, तब तो हम भी मनुष्यादिकोंकी उत्पत्ति गर्भविना मान लेवे; और अनादि संसार मानना छोड देवे. नही तो, अज्ञानीयोंके प्रलापमात्रको तो, अज्ञानीही मानेंगे, नतु प्रेक्षावान्. ॥

और पुराणमें तो ऐसा लिखा है "एकवर्णमिदं सर्वं पूर्वमासीद्युधिष्ठिर। क्रिया कर्मविभागेन चातुर्वर्ण्यं व्यवस्थितम् ॥१॥ ब्राह्मणो ब्रह्मचर्येण यथा शिल्पेन शिल्पिकः। अन्यथा नाममात्रं स्यादिन्द्रगोपककीटवत्॥२॥"

भाषार्थः—हे युधिष्ठिर! पूर्वकालमें यह सर्व एकही वर्ण था, ब्राह्मणादि भेद नही थे; क्रियाकर्मके विभाग करके चार वर्णकी व्यवस्थिति पीछेसें हुई है. ब्रह्मचर्यके पालनेकरके ब्राह्मण होता है, जैसें शिल्पकरके शिल्पिक है, अन्यथा तो नाममात्रही है, इंद्रगोपक कीडेकीतरें. ॥ यह पुराणका कथन वेदके कथनसें बहुतही अच्छा मालुम देता है; क्योंकि, वेद तो सर्ववस्तुका नास्तिपणाही पुकारे है, जो कि, किसी भी प्रमाणयुक्तिसें सिद्ध नही होता है; परंतु यह पुराणका कथन वैसें नास्तिपणा नही कहता है. जैनमतमें भी वर्णव्यवस्था पीछेसें हुई लिखि है. क्योंकि, श्रीऋषभदेवजीके राज्यसमयसें पहिला इस अवसर्प्पिणीकालमें एकही जाति थी; श्रीऋषभदेवजीके राज्यसमयमें क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, और भरतचक्रवर्तीके राज्यमें ब्राह्मण, येह चार वर्ण, जैसें उत्पन्न हुए, सो कथन जैनतत्त्वादर्श ग्रंथसें देख लेना.

प्रजापतिके मनसें चंद्रमा उत्पन्न हुआ लिखा है, यह भी मिथ्या है. क्योंकि, चंद्रमा जो है, सो पृथिवीमय—पृथिवीकायके उद्योतनामकर्मके उदयवाले जीवोंके शरीरोंका पिंडरूप चंद्रमा देवतायोंके रहनेका विमान

है और मन जो है, सो ज्ञानरूप अरूपि चेतन है ज्ञानाश होनेसें तिस भावमनसें पृथिवीमय रूपी पुद्गलरूप चन्द्रमा कैसें उत्पन्न होवे? तथा नेत्रोंसें सूर्य उत्पन्न हुआ लिखा है, सो भी प्रमाण विरुद्ध है क्योंकि सूर्य भी पृथिवीमय आतपनामकर्मके उदयवाले पृथिवीके जीवोंके शरीरोंका पिंडरूप देवतायोंके रहनेका विमान है ये दोनो प्रवाह की अपेक्षा अनादि अनंत है नवीन २ जीव तैसे शरीधारले समय २ में असंख्य उत्पन्न होते हैं और समय २ में असंख्य जीव पृथिवीके मृत्यु कों प्राप्त होते हैं, परंतु चन्द्रमा सूर्य वैसेके वैसेंही रहते हैं, दीपशिखा-वत् जैसें दीपशिखामें नवीन २ अग्निके जीव उत्पन्न होते हैं, और अगले २ मृत्युको प्राप्त होते हैं विशेष इतनाही है कि, चन्द्रमासूर्यका प्रवाह अनादि अनंत है, और दीपकका प्रवाह सादि सांत है ऐसे चन्द्रमासूर्यको ब्रह्माजीके मन और नेत्रोंसें उत्पन्न हुए मानना, यह भी अज्ञानविजृंभितही है

मुखसें इन्द्र और अग्नि देवते उत्पन्न हुए, यह भी प्रमाणयुक्तिबाधित है क्योंकि, इन्द्रकी उत्पत्ति तो स्वर्गमें देवशय्यासें होती है, और अग्नि इंधनसें उत्पन्न होता है एक और भी बात है कि, यदि ब्रह्माजीके मुखसें इन्द्र उत्पन्न हुआ, तब तो ब्राह्मण और इन्द्र इन दोनोंकी एक योनि भइ, तब तो जैसें इन्द्र अमर अजर है, ऐसे ब्राह्मण भी होने चाहिये और जैसें ब्राह्मण याचक है ऐसें इन्द्रको भी भिक्षा मांगनी चाहिये !!!

प्रजापतिके प्राणोंसें वायु उत्पन्न हुआ, और नाभिसें आकाश उत्पन्न भया, यह भी कथन अज्ञानविजृंभितही है क्योंकि, जब आकाशही नही था, तब ब्रह्म कहां रहता था? आकाशनाम शून्य पोलाडका है, जब पोलाड नही थी तो, तिसका प्रतिपक्षी घनरूप कोई वस्तु होना चाहिये, सो वस्तु भी आकाशविना नही रह सक्ता है और युक्तिप्रमाणसें तो, आकाश अनादि अनंत सर्वव्यापक है जो कुछ पदार्थ है, सो सर्व इसके अंदर है और गोतम, कणाद, जैमिनी, जैन, ये सर्व आकाशको नित्य अ

नादि अनंत सर्वव्यापक मानते हैं. तो, क्या गौतमादिकोंने ये पूर्वोक्त वेदकी श्रुतियां पठन नही करी होवेंगी ? करी तो होवेंगी, परंतु युक्तिप्रमाणसें विरुद्ध मानके नवीन प्रक्रिया गौतम कणाद जैमिनीने रची मालुम होती है. प्रजापतिके कानोंसें दिशा उत्पन्न होती भई, यह भी कथन अज्ञताका है. क्योंकि, दिशा तो आकाशकाही पूर्वादि कल्पित भागविशेषका नाम है. जब नाभिसें आकाश उत्पन्न भया तो. कानोंसें दिशा क्योंकर उत्पन्न भई लिखा है ? और अरूपी दिशायोंका कोई भी उपादानकारण नही है, इसवास्ते यह भी कथन मिथ्या है. इतिसमीक्षा ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे
ऋगादिसृष्ट्यनुक्रमसमीक्षावर्णनोनामाष्टमः स्तम्भः ॥ ८ ॥

॥ अथ नवमस्तम्भारम्भः ॥

अष्टमस्तंभमें ऋगादिसृष्टिक्रमकी समीक्षा करी, अथ नवमस्तंभमें वेदके कथनकी परस्पर विरुद्धता संक्षेपरूपसें दिखाते हैं.

तमिद्गर्भम्प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे ॥
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥

॥ य० वा० सं० अ० १७ मं० ३० ॥

भाषार्थः–(अ) * (तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपः) प्रथमं अर्थात् संपूर्णसृष्टिकी आदिमें (आपः-जलानि) जल जो हैं सो वह (तमित्‌गर्भं) तिस प्राप्त गर्भकों (दध्रे) धारण करते भये कि (यत्र देवाः समगछन्त विश्वे) जिस संपूर्ण विश्वके कारणभूत गर्भरूप ब्रह्माजीमें संपूर्ण देवता उत्पन्न हो कर व्याप्त हो रहे हैं सो (अजस्य नाभावध्येकमर्पितं) जन्मादिसें जो रहित सो कहावे अज ऐसा जो परमात्मा तिसकी नाभीमें अर्पित जो कमल तिसमें संपूर्ण विश्वका

---

* जहा (अ) ऐसा संकेत होवे वहा ब्रह्मकुशलोदासीकृतऋगादिभाष्यभूमिकेंदु नाम पुस्तकका लिखित भाषार्थ जानना ॥

बीजरूप जो ब्रह्मा सो कैसे हैं कि (यस्मिन् विश्वानि भूवनानि तस्थु॰) जिसमें (विश्व) अर्थात् सपूर्ण चतुर्दश सख्याक भुवन स्थित हो रहे हैं

[समीक्षा] यह श्रुति ऋग्वेदसें विरुद्ध है क्योंकि, ब्रह्माजीकी उत्पत्तिवास्ते ऋग्वेदमें कमल नही कहा है ।१। ब्रह्माजीसें पहिले परमात्माका शरीर सिद्ध होता है, विनाशरीरके नाभिमें कमलोत्पत्तिके सिद्ध न होनेसें और परमाणुयोंके विना शरीर नाभिकमल नही हो सक्ते हैं, इत्यद्वैतहानि ।२। आकाशविना पाणीरूप गर्भ किस जगे धारण करा? और ब्रह्माजी, और कमल ये दोनों किस स्थानमें थे? ।३। इत्यादि अनेक दूषण इस श्रुतिमें हैं ॥ १ ॥

(व) † हे मनुष्यो (यत्र) जिस ब्रह्ममें (आप॰) कारणमात्र प्राण वा जीव (प्रथमम्) विस्तारयुक्त अनादि (गर्भम्) सब लोकोंकी उत्पत्तिका स्थान प्रकृतिको (दध्रे) धारण करते हुए वा जिसमें (विश्वे) सब (देवा॰) दिव्य आत्मा और अत॰करणयुक्त योगीजन (समगच्छन्त) प्राप्त होते हैं वा जो (अजस्य) अनुत्पन्न अनादि जीव वा अव्यक्त कारणसमूहके (नाभौ) मध्यमें (अधि) अधिष्ठातृपनसें सबकेउपर विराजमान (एकम्) आपही सिद्ध (अर्पितम्) स्थित (यस्मिन्) जिसमें (विश्वानि) समस्त (भूवनानि) लोकोत्पन्न द्रव्य (तस्थु॰) स्थिर होते हैं, तुमलोग (तमित्) उसीकों परमात्मा जानो ॥ ३० ॥

भावार्थ—मनुष्योंको चाहिये कि जो जगत्का आधार योगियोंको प्राप्त होनेयोग्य अतर्यामी आप अपना आधार सबमें व्याप्त है उसीका सेवन सब लोग करें ॥ ३० ॥

[समीक्षा] वाचकवर्गको मालुम होवे कि, स्वामी दयानदजीका जो लेख है, सो तो स्वतोहि खडनरूप है क्योंकि, पदार्थमें कुछ और लिखा है, और भावार्थमें औरही लिखा है तथा संस्कृतपदार्थमें और, अन्वयमें और, और भावार्थमें औरही लिखा है, तथा संस्कृत प्राकृत दोनोंमें अन्यअन्यही लिखा है, इसवास्ते स्वामीजीका लेख परस्पर विरुद्ध है, अतएव असमीचीन है

† यहां (व) एसा चिह्न होय वहां स्वामी दयानन्दसरस्वतीकृत भावार्थ जानना ॥

(क) ‡ (आपः) पाणी–जल (प्रथमं) पहिले (तमित्) तमेव–तिसही (गर्भं) गर्भकों (दध्रे) दधिरे–धारण करते भए (यत्र) जिस कारण-भूत गर्भमें (विश्वे) सर्वे (देवाः) देवते (समगच्छन्त) संगताः संभूय वर्त्तते– एकत्र हो कर वर्त्तते हैं. अब तिस गर्भका अधार कहते हैं. (अजस्य) जन्मरहित परमेश्वरके (नाभावधि) नाभिस्थानीय स्वरूप-मध्ये (एकं) विभागरहित अनन्यसदृश कुछक बीज गर्भरूपको (अर्पितं) स्थापित किया (यस्मिन्) जिस बीजमें (विश्वानि) सर्वे (भुवनानि) भूतजात (तस्थु) स्थित हुए. बीज स्थापित करनेमें स्मृतिका भी प्रमाण है —"अपएव ससर्जादौ तासु बीजमथाक्षिपत् तदण्डमभवद्धैमं सूर्यकोटिसमप्रभमिति"॥ सोही सर्वका आश्रय है, परंतु तिसका अन्य कोइ आश्रय नही है. ॥ ३० ॥

[समीक्षा] यह भाष्यकारका कथन भी प्रमाणबाधित, और ऋग्वेद अष्टक ८ के, तथा यजुर्वेद अध्याय ३१ के कथनसें विरुद्ध है. क्योंकि, वहां परमेश्वरकी नाभिमें पाणीनें बीजरूप गर्भ स्थापित किया, इत्यादि वर्णन नही है. बाकी समीक्षाप्रायः (अ) समीक्षावत् जाननी. यहां यह भी कहना योग्य है कि, वेदोंके अर्थ सर्वज्ञ कथित नही है; जिसको जैसें रुचे है, वैसेही अर्थ वह लिख देता है. माधव, महीधर, ब्रह्मकुशलोदासी, दयानंदसरस्वतीवत्। यदि वेदोंके ऊपर सर्वज्ञकथित प्राचीन अर्थ नियमानुसार होते तो, ऐसें कभी न होता. परंतु प्रथम वेदही सर्वज्ञके कथनकरे सिद्ध नही होते हैं तो, अर्थोंका तो क्याही कहना है? परस्पर विरुद्ध होनेसें. और यही असर्वज्ञकथित वेद होनेमें बडा भारी दृढ प्रमाण है. इसवास्ते सज्जन पुरुषोंको तटस्थ होकर सत्यासत्यका निर्णय करना चाहिये.

ब्रह्म ह ब्राह्मणं पुष्करे ससृजे, स खलु ब्रह्मा सृष्टश्चिंतामापेदे, केनाहमेकाक्षरेण सर्वांश्च कामान्, सर्वांश्च लोकान्, सर्वांश्च देवान्, सर्वांश्च वेदान्, सर्वांश्च यज्ञान्, सर्वांश्च शब्दान्, सर्वांश्च व्युष्टीः, सर्वाणि च

‡ (क) जहां ऐसा संकेत होवे वहां भाष्यकारका अर्थ जाणना.

भूतानि स्थावरजंगमान्यनुभवेयमिति, स ब्रह्मचर्यमचरत् स ॐमित्येत-दक्षरमपश्यत् द्विवर्णं चतुर्मात्रं सर्वव्यापी सर्वविभ्व्ययातयाम ब्रह्म व्याहृतिं ब्रह्मदैवतं तया सर्वांश्च कामान् सर्वांश्च लोकान् सर्वांश्च देवान् सर्वांश्च वेदान् सर्वांश्च यज्ञान् सर्वांश्च शब्दान् सर्वांश्च ऋद्धीः सर्वाणि च भूतानि, स्थावरजंगमान्यन्वभवत् इति ॥

गोपथ० पू० भा० प्रपा० १ ब्रा० २२ ॥

और संपूर्ण व्युष्टी अर्थात् समृद्धियें तथा (सर्वाणि च भूतानि स्थावरजंगमान्यन्वभवत्) संपूर्ण जो भूत है स्थावरजंगमादि तिनको अनुभव अर्थात् उत्पन्न करते भये इति ॥

[समीक्षा] यह कथन ऋग्वेद यजुर्वेद दोनोंसें विरुद्ध है. तथा इसमें लिखा है, ब्रह्माजी ब्रह्मचर्य धारण करते भए, ब्रह्माजीने जो ब्रह्मचर्य धारण करा तिससें पहिले क्या ब्रह्माजीके ब्रह्मचर्य नही था ? क्या ब्रह्माजी स्त्रीयोंसे भोग विलास विषय सेवन करते थे ? वा अन्यकोइ कुचेष्टा करते थे ? जिससें ब्रह्माजी ब्रह्मचारी नही थे, जो पीछेसें ब्रह्मचर्य धारण करना पडा. तथा ब्रह्माजीने चिंता करी, पीछे ॐकारको देखा, तिसके देखनेमात्रसेंही जो कुछ रचना था सो सर्व कुछ रच दिया, इत्यादि कथन ऋग्वेद यजुर्वेद इन दोनोंसेंही विरुद्ध है. क्योंकि, पूर्वोक्त वेदोंमें इस कथनका गंध भी नही है; इसवास्ते विरुद्ध है. एतावता युक्तिविरुद्ध मिथ्यारूप होनेसें त्याज्य है. ॥ २ ॥

हिरण्यगर्भःसमवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥

य० वा० सं० अ० १३ मं० ४ ॥

(अ)-(हिरण्यगर्भः) जो कि मनुस्मृतिमें लिखा है कि (अप एव ससर्जादौ तासु बीज मवासृजत् ॥ तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् । तस्मिन्नण्डे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः इति) उसीका मूलभूत यह मंत्र है सो देखिये (हिरण्यगर्भः) हिरण्य जो सुवर्ण तिसके समान वर्ण है जिसका ऐसा जो पूर्वकालमें उत्पन्न हुआ अंड तिसके गर्भमें स्थित जो ब्रह्मा सो कहा जाय हिरण्यगर्भ अर्थात् प्रजापतिः सो वह (अग्रे) अर्थात् जगदुत्पत्तिसें पहिले (समवर्तत) भलीप्रकारसें वर्तमान था. और वही (भूतस्य जातः) जातः अर्थात् उत्पन्न होकर संपूर्ण भूतप्राणियोंका (पतिरेक आसीत्) एक आपही (पतिः) अर्थात् पालक होता भया (सदाधार पृथिवीं द्या मुतेमां) सो वही पृथिवी अर्थात् अंतरिक्षलोकको और

(द्यां) अर्थात् स्वर्गलोकको तथा (उतइति वितर्के) इमां इस भूमिलो कको (दाधार) त्वजादित्वाद्दीर्घ । धारण करता भया और (पृथिवी) यह अतरिक्ष (आकाश) का नाम है सो यास्कमुनिप्रणीत निघटुके अ० १ ख० ३ में ९ नवमा नाम है (कस्मै देवाय हविषा विधेम) क नाम प्रजापतिका है इससें (कस्मै) अर्थात् प्रजापतिके लिये हम हविको (विधेम) दद्म -प्रदान करते हैं अथवा तिस हिरण्यगर्भको परित्याग कर हम (कस्मै) किसकेलिये हवि प्रदान करें यह इस प्रकार लौकिक अर्थ कर लेना ॥

[समीक्षा] यह यजुर्वेदका मत्र, ऋगूवेग यजुर्वेद गोपथब्राह्मणसें विरुद्ध है क्योंकि, इन पूर्वोक्त तीनों स्थानोंके पूर्वोक्त मन्त्रमें ब्रह्माजी अडेमें उत्पन्न हुए ऐसा नही कहा है, और इस श्रुतिमें ब्रह्माजी अडेमें उत्पन्न हुए लिखा है, इसवास्ते यह तीनों सर्वज्ञ भगवान्के कथन करे हुए नही सिद्ध होते हैं और जो इसमे कथन है, सो युक्तिप्रमाणसें विरुद्ध है, इसीवास्ते अपने २ मन कल्पित अर्थ इसके लोक करते हैं, जैसे कि, पूर्वोक्त अर्थमें ब्रह्मकुशलोदासीने करे है क्योंकि, पूर्वोक्त अर्थ भाष्यानुसार नही है जो लौकिक अर्थरूप भावार्थ उदासीजीने निकाला है, सो भाष्यकारको न पाया शोक ! ! ऐसे विरुद्ध शास्त्रोंको भी लोक परमेश्वरकेही कथन किये मानते है, यदि जिसने जो अर्थ किया सोही खरा (सर्वज्ञोक्त प्राचीन अर्थोंके न होनेसें, ओर यदि है तो, बताने चाहिए क्योंकि, साप्रत कालमें जो झगडे हो रहे हैं, प्राचीन अर्थोके न होनेसेंही हो रहे हैं यादि कहोंगे, प्राचीन अर्थ थे तो सही, परतु इस समय हे नही तो सिद्ध हुआ वेद भी नही है किसीने वेदका नाम रखके पुस्तक जगत्में प्रसिद्ध किया है, अर्थवत् यदि वेदके पुस्तक है तो, उसके अर्थ तुम नहीं जान सक्ते हो जब अर्थही नही जान सक्ते हो तो तुमको कैसें निश्चय हुआ कि यह ईश्वरोक्त है?) मानोंगे तो, यह अर्थ भी तुमको मानना पडेगा कल्पनाद्वारा अर्थ सिद्ध होनेसें--प्राचीन मुनिप्रणीत अर्थोंके न होनेसें-(उत इति वितर्के) (हिरण्यगर्भ) जो अडेसें उत्पन्न हुआ, और

जिसको प्रजापति कहते हैं, सो (अग्रे) जगदुत्पत्तिसें पहिले (समवर्तत) भलीप्रकारें वर्तमान था ? नही था; जगदभावे पाणीअंडादिकोंका भी अभाव होनेसें. तथा सो प्रजापति (जातः) उत्पन्न हो कर (भूतस्य) संपूर्ण भूतप्राणियोंका (एकः) एक आपही (पतिः) पालक (आसीत्) होता भया ? नही. जगत्के अभावसें पाणीअंडादिकोंका अभाव सिद्ध होता है, अंडेके अभावसें प्रजापतिका अंडेसें उत्पन्न होना असिद्ध है, 'मूलं नास्ति कुतः शाखेतिवचनात्.' यदि प्रजापतिका उत्पन्न होनाही संभव नही होता है तो, जगत्का पालनपणा कहांसें होवे ? असत्रूप होनेसें; शशशृंगवत्. तथा अंडजमे जगत पालनेकी शक्ति भी नही सिद्ध होती है, चटकवत्. ऐसेंही उत्तरोत्तर वितर्क जान लेने । तथा (सः) पूर्वोक्त प्रजापति (पृथिवीं) आकाशको (द्यां) स्वर्गलोकको और (इमां) इस भूमिलोकको (दाधार) धारण करता भया ? नही. पालनादिकेअसिद्ध होनेसें (कस्मै देवाय हविषा विधेम) ऐसे पूर्वोक्त प्रजापतिदेवकेलिये हम हविःप्रदान करीए ? नही. यथार्थ देवपणा सिद्ध न होनेसें. इत्यादि अनेक कल्पना पूर्वोक्त श्रुतियोंमें हो सक्ती है, और इसीवास्ते वेदके सत्यार्थका निश्चय नही हो सक्ता है. स्वामी दयानंदसरस्वतीने तो कल्पना करनेमें कसर नही रखी है, परंतु सांप्रतकालसें कइ सनातनधर्मी भी मनमाने उलट पालट अर्थ करके छपवा रहे हैं. इससें सिद्ध होता है कि, वेदका सत्यार्थ कोइ नही जानता है. और अर्थोंके निश्चयविना वेद ईश्वरोक्त सत्योपदेशक पुस्तक है, यह भी निश्चय नही हो सक्ता है.

अव पूर्वोक्त हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे इसश्रुतिका जो अर्थ स्वामीदयानंदजीने कल्पन करा है, सो लिख दिखाते हैं.

(व) हे मनुष्यो ! जैसे हमलोग जो इस (भूतस्य) उत्पन्न हुए संसारका (जातः) रचने और (पतिः) पालन करनेहारा (एकः) सहायकी अपेक्षासे रहित (हिरण्यगर्भः) सूर्यादि तेजोमय पदार्थोंका आधार (अग्रे) जगत् रचनेके पहिले (समवर्तत) वर्तमान (आसीत्) था (सः) वह (इमां) इस संसारको रचके (उत) और (पृथिवीं) प्रकाशरहित

और (द्यां) प्रकाशसहित सूर्यादिलोकोंको (दाधार) धारण करता हुआ उस (कस्मै) सुखरूप प्रजा पालनेवाले (देवाय) प्रकाशमान परमात्माकी (हविषा) आत्मादिसामग्रीसें (विधेम) सेवामें तत्पर हैं वैसें तुम लोग भी इस परमात्माका सेवन करो ॥ ४ ॥–१–

भावार्थ —हे मनुष्यो! तुमको योग्य है कि इस प्रसिद्ध सृष्टिके रचनेसें प्रथम परमेश्वरही विद्यमान था, जीव गाढनिद्रा-सुषुप्तिमें लीन थे, जगत्का कारण अत्यंत सूक्ष्मावस्थामें आकाशकेसमान एक रस स्थिर था, जिसने सब जगत्को रचके धारण किया और अल्पसमयमें प्रलय करता है, उसी परमात्माको उपासनाके योग्य मानो ॥ ४ ॥–२–

तथा सत्यार्थप्रकाशसप्तमसमुल्लासे—हे मनुष्यो! जो सृष्टिके पूर्व सब सूर्यादि तेजवाले लोकोंका उत्पत्तिस्थान आधार और जो कुछ उत्पन्न है, हुआ, था, और होगा उसका स्वामी था, है, और होगा, वह पृथिवीसें लेके सूर्यलोकपर्य्यंत सृष्टिको बनाके धारण कर रहा है, उस सुखस्वरूप परमात्माहीकी भक्ति जैसें हम करें वैसें तुम लोग भी करो ॥१॥–३–

तथाचाष्टमसमुल्लासेपि–हे मनुष्यो! जो सब सूर्यादि तेजस्वी पदार्थोंका आधार और जो यह जगत् हुआ है, और होगा उसका एक अद्वितीय पति परमात्मा इस जगत्की उत्पत्तिके पूर्व विद्यमान था और जिसने पृथिवीसें लेके सूर्यपर्य्यंत जगत्को उत्पन्न किया है, उस परमात्मा देवकी प्रेमसें भक्ति किया करें ॥ ३ ॥–४–

तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकायां सृष्टिविद्याविषये–हिरण्यगर्भ जो परमेश्वर है वही एक सृष्टिके पहिले वर्तमान था, जो इस सब जगत्का स्वामी है और वही पृथिवीसें लेके सूर्यपर्यंत सब जगत्को रचके धारण कर रहा है, इसलिये उसी सुखस्वरूप परमेश्वर देवकीही हम लोग उपासना करें, अन्यकी नहीं ॥ १ ॥ –५–

[समीक्षा] पूर्वोक्त पांचप्रकारके अर्थोंको यदि शोचे जावे तो, स्वामी दयानंदजीके अर्थ मन कल्पित गप्परूपसें और कुछ भी सिद्ध नही कर सक्के हें वाहजी! वाह !! अर्थ क्या ठहरें, गुड्डीयोंका खेल हुआ, जो मनमें

आया सो मान लिया. अपरंच स्वामी दयानंदजीने अपने मनःकल्पित मतको दृढ करनेकेलिये अर्थ तो उलटे लिये, परंतु शोचा नही कि यह अर्थ हमारे इष्टको बाधक है कि साधक? क्योंकि, दयानंदजीकी प्रतिज्ञा है कि, वेद ईश्वरोक्त है, तो, अब शोचना चाहिये कि, यदि वेद सत्य २ ईश्वरोक्तही है तो, जो दयानंदजीने श्रुतिका अर्थ लिखा है कि "हे मनुष्यो! जैसें हम सेवामें तत्पर हैं, वैसें तुम लोग भी इस परमात्माका सेवन करो." क्या दयानंदजीके ईश्वरसें भी कोइ वडा परमात्मा है? जिसकी सेवामें वेदवक्ता ईश्वर भी तत्पर है, और लोगोंको उपदेश करता है. तथा वेदके कथन करनेवाले ईश्वर भी वहोत सिद्ध होते हैं (विधेम) हम तत्पर हैं, ऐसें वहुवचन अंगीकार करनेसें. यदि कहो कि, वेद प्राप्त करनेवाले ऋषियोंका यह कहना है कि, जैसें हम परमात्माकी सेवामें तत्पर हैं, वैसें तुम लोग भी परमात्माका सेवन करो. तव तो सिद्ध हुआ कि, वेद ईश्वरोक्त नही, किंतु ऋषिप्रणित है. अपरंच ऋषियोंने पूर्वोक्त वर्णन किया कि, जो परमात्मा सृष्टिका कर्त्ता, धर्ता, और पालक है जो सृष्टिसें पहिले एक सहायकी अपेक्षारहित था इत्यादि; तो क्या ऋषियोंने यह सर्व व्यवस्था जान लीनी? यदि जान लीनी तो, वे ऋषि सर्वज्ञ हुए; यदि वे सर्वज्ञ हुए तो, फेर दयानंदजीका जो मानना है कि, ईश्वरव्यतिरिक्त कोइ भी जीव सर्वज्ञ नही हो सक्ता है, सो कैसें सत्य होगा? और यदि नही जान लीनी तो, विना जाने तिन ऋषियोंने पूर्वोक्त वर्णन कैसें करा?

तथा वेदमें, सृष्टिकी उत्पत्तिका वर्णन, सृष्टिकी उत्पत्ति करनेवालेका वर्णन, जिन ऋषियोंको वेदज्ञान प्राप्त भया, लोकोंको उपदेशादि वर्णन हैं, तो, इसमें सिद्ध हुआ कि, वेद सृष्ट्यादिके अनंतरही बने हैं. क्योंकि, स्वामी दयानंदजी सत्यार्थप्रकाशके सप्तम समुल्लासमें लिखते हैं कि— "इतिहास जिसका हो उसके जन्मके पश्चात् लिखा जाता है वह ग्रंथ भी उसके जन्मे पश्चात् होता है—इत्यादि"॥ यदि ऐसें हुआ तो, वेदोंका अनादिपणा ऐसा हुआ, जैसा कि वंध्यास्त्रीके पुत्रका विवाह होना.

तथा दयानदजी लिखते हैं कि, “इस प्रसिद्ध सृष्टिके रचनेसें प्रथम परमेश्वरही विद्यमान था जीव गाढनिद्रा—सुषुप्तिमें लीन थे और जगत्का कारण अत्यत सूक्ष्मावस्थामें आकाशकेसमान एकरस स्थिर था- इत्यादि”—अब हम पूछते हैं कि, यदि प्रथम आकाशही नही था तो, दयानदजीका परमात्मा, सुषुप्तिमें लीन होनेवाले जीव, और जगत्का कारण, यह कहां रहते थे ? आकाशविना कोई भी पदार्थ नही रह सका है और आकाशकी उत्पत्ति वेदोंमें प्रकटपणे कही है ‘नाभ्या आसीदतरिक्षमितिवचनात्’॥ * और दयानदजीने भी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकाके वेदविषय विचारके ४९ पत्रोपरि लिखा है कि “परमात्माके अनंत सामर्थ्यसें आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी आदि तत्व उत्पन्न हुए हैं—इत्यादि॥” तथा सृष्टिविद्याविषयके ११६–११७ पत्रोपरि॥ “यदा कार्य्यं जगन्नोत्पन्नमासीत्तदाऽसत्सृष्टेः प्राक् शून्यमाकाशमपि नासीत् ॥ शून्यनाम आकाश अर्थात् जो नेत्रोंसे देखनेमें नहीं आता सो भी नहीं था”॥ तथा सत्यार्थप्रकाशके सप्तम समुल्लासके लेखमें अतीतानागतवर्त्तमानकालके सर्व पदार्थोंका स्वामी परमात्माको लिखा है, अष्टम समुल्लासके लेखमें वर्तमान और अनागतकालके पदार्थोंका स्वामी लिखा है, और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकाके लेखमें वर्तमान जगत्का स्वामी परमात्माको लिखा है हम अनुमान करते हैं कि, यदि और थोडासा दिव्यज्ञान परमात्मा दयानदजीके हृदयमें स्थापन कर देता तो, फेर परमात्माको स्वामीपणा करनेकी कुछ आवश्यकता न रहती! इत्यल विस्तरेण॥

(क) हिरण्यपुरुषरूप ब्रह्मांडमें गर्भरूपकरके अवस्थित प्रजापति हिरण्यगर्भ, प्राणिजातकी उत्पत्तिसें पहिले स्वयमेव शरीरधारी होता भया, सोही उत्पन्न हुआ थका एकेलाही उत्पन्न होनेवाले सर्व जगत्का पति होता भया, सोही आकाश स्वर्गलोक और इस भूमिको अर्थात् तीनों

* सन १८८४ में छपे सत्यार्थप्रकाशके १८७ पत्रोपरि स्वमंतव्यामंतव्य प्रकाशमें भी दयानन्दजीने आकाशको नित्य वा अनादि नहीं माना है, किंतु अनादि पदार्थ तीन हैं, एक ईश्वर, द्वितीय जीव, तीसरा प्रकृति अर्थात् जगत्का कारण इत्यादि ॥

लोकोंको धारण करता है, इसवास्ते प्रजापति देवकेलिये हम हविःप्रदान करते हैं.

[समीक्षा] यह भाष्यकारका अर्थ पूर्वोक्त अर्थोंसें विलक्षणही है, तथा यजुर्वेद अध्याय १७ के मंत्रसें भी विरुद्ध है. तथा इसश्रुतिसें मालुम होता है कि, इसका कहनेवाला परमात्मा प्रजापतिसें भिन्न है. क्योंकि, इसमें लिखा है कि, जो हिरण्यगर्भ सृष्टिसें पहिले आप शरीरधारी हुआ, जो उत्पन्न होनेवाले सर्वजगत्का पति हुआ, और तीन लोककों जो धारण करता है, तिस प्रजापतिदेवकेलिये, हम, हविःप्रदान करते हैं, इत्यादि.

तथा इसी श्रुतिका अर्थ ऋग्वेद अष्टक ८। अ० ७। व० ३। मं० १०। अ० १०। सू० १२१ में सायणाचार्यने ऐसें लिखा है—हिरण्मय अंडका गर्भभूत जो प्रजापति सो कहावे हिरण्यगर्भ, तथा च तैत्तिरीयकं—" प्रजापतिर्वै हिरण्यगर्भः प्रजापतेरनुरूपत्वायेति।" अथवा हिरण्मय अंड गर्भवत् है उदरमें जिसके, ऐसा जो सूत्रात्मा, सो कहावे हिरण्यगर्भ. सो हिरण्यगर्भ (अग्रे) प्रपंचोत्पत्तिके पहिले (समवर्तत) मायावशसें सृजन करनेकी इच्छावाले परमात्मासें उत्पन्न होता भया. यद्यपि परमात्माही हिरण्यगर्भ है, तो भी, तदुपाधिभूत आकाशादि सूक्ष्मभूतोंको ब्रह्मसें उत्पन्न होनेसें तदुपहित भी उत्पन्न हुआ ऐसें कहीए हैं. सो हिरण्यगर्भ (जातः) जातमात्रही, उत्पन्न हुआ थकाही (एकः) अद्वितीय एकेलाही (भूतस्य) विकारजात ब्रह्मांडादि सर्वजगत्का (पतिः) ईश्वर (आसीत्) होता भया. नही केवल पतिही हुआ, किंतु सो हिरण्यगर्भ (पृथिवीं) वीस्तीर्ण (द्यां) स्वर्गलोकको 'उतापिच' और (इमां) हमारे दृश्यमान पुरोवर्त्तिनी इस भूमिको, अथवा 'पृथिवीं' आकाशको स्वर्गलोकको और भूमिको (दाधार) धारयति–धारण करता है (कस्मै) यहां किं शब्द अनिर्ज्ञातस्वरूपवाला होनेसें प्रजापतिमें वर्तता है। अथवा सृष्टिकेवास्ते जो कामना करे सो कहावे कः। अथवा कं-सुखं अर्थात् सुखरूप होनेसें कः कहीए हैं। अथवा इंद्रने पूछा हुआ प्रजापति, मेरा महत्त्व

तुझको देके 'अह क' मैं कैसा होऊ? ऐसा कहता हुआ, तब इन्द्रने जवाब दिया कि, जो तू यह कहता है कि, 'अह क स्यामिति' मैं क्या होऊ? तदेव सोही तु हो इस कारणसें 'क इति' क शब्दसें प्रजापति कथन करीए हैं। "इन्द्रो वै वृत्र हत्वा सर्वा विजितीर्विजित्याब्रवीत्" इत्यादि ब्राह्मणका यहा अनुसधान करना। जब सो किं शब्द तब सर्वनाम होनेसें स्मैभाव सिद्ध हैं और जब यौगिक है, तब व्यत्यय जानना क-प्रजापति (देवाय) देव—दानादिगुणयुक्त देवकों (हविषा) प्रजापतिसबधी पशुके वपारूपेण—कालेजारूपकरके, अथवा एककपालात्मक पुरोडाश करके (विधेम) वयमृत्विज —हम ऋत्विज 'परिचरेम' परिचरणकर्म करीए हैं

[समीक्षा] पूर्वोक्त अर्थोसें यह सायणाचार्यका अर्थ औरहीतरेंका है अब वाचक वर्गको हम नम्रतापूर्वक कहते हैं कि, दोनों भाष्यकारोंके अर्थोमें कितना बडा विसवाद पडता है तथा ऋग्वेदादि भाष्यभूमिकाके कर्त्ताने और भाष्यभूमिकेंदुके कर्त्ताने कैसें २ अर्थ करे हैं, सो आपही विचार कीजीए जब वेदोंके अर्थोकाही निश्चय नही होता है तो, वेद सत्योपदेष्टाके कथन करे हूए हैं, वा अनादि है, वा ऋषियोंद्वारा जगत्में प्रवर्तन हूए हैं, इत्यादि कैसें माना जावे? अब हम ज्यादा लिखना छोडकरके श्रुतियां, और सक्षेपमात्र उनोंकी समीक्षा, और परस्पर विरुद्धता मात्र लिखके अपनी नही बद होती लेखनीको, जोरावरी बद करनी चाहते हैं क्योंकि, वेदोंका बहोता फरोलना भस्मयत्नाग्नि उद्घाटनतुल्य है

सुभू स्वयम्भु प्रथमोऽन्तर्महत्यर्णवे।
दधे ह गर्भमृत्वियं यतो जातः प्रजापतिः॥

६३॥ य। वा। स। अ० २३। म० ६३॥

भावार्थ —(सुभू) सुदर है भुवन जिसका सो कहावे सुभू और (स्वयभू) जो अपनी इच्छाहीसें शरीरको धारण कर शके सो कहावे स्वयभू ऐसा जो परमात्मा सो (महत्यर्णवे) महान् जलसमूहमें (ऋत्वि

यं) प्राप्तकालमें (ह) इति प्रसिद्ध (गर्भं दधे) उसने गर्भको धारण किया. कैसा है वह गर्भ कि (यतो जातः प्रजापतिः) जिसगर्भसें प्रजापति अर्थात् ब्रह्माजी उत्पन्न हुए. ॥ ६३ ॥

[समीक्षा] प्रथम तो यह श्रुति पूर्वोक्त यजुर्वेद, ऋग्वेद, गोपथादिकी श्रुतियोंसें विरुद्ध है. तथा परमात्माका सुंदर भुवन रहनेका स्थान कहा, यह विरुद्ध है. क्योंकि, सर्वव्यापी परमात्माका कोइ भी स्थान नही सिद्ध हो सक्ता है. और तिससमयमें तो आकाश भी नही था तो, विना आकाशके परमात्माका सुंदर भुवन कहां था? तथा अपनी इच्छासें जो शरीरको धारण कर शके सो कहावे स्वयंभू, यह विशेषण प्रमाणबाधित है. क्योंकि, शरीरके विना मन और मनके विना इच्छा नही हो सक्ती है, यह प्रमाण सिद्ध है. इसवास्ते पूर्वोक्त व्युत्पत्ति स्वकपोलकल्पित है ॥ परमात्मा महाजलसमूहमें ऋतुकालमें गर्भ धारण करता भया, तिस गर्भसें प्रजापति ब्रह्माजी उत्पन्न भए इत्यादि—यह ऋग्वेद यजुर्वेद गोपथादिसें विरुद्ध है. क्योंकि, तिनमें अन्यथा कथन है, सो लिख आए हैं. । तथा परमात्माने जलसमूहमें गर्भ धारण करा, इत्यादि कहना भी महामिथ्या है. क्योंकि, उस समयमें तो न पृथिवी थी, और न आकाश था तो, जल किस वस्तुमें, और किस ऊपर ठहर रहा था? फेर जब परमात्माको ऋतुकाल आया, तब जलके बीचमें गर्भ धारण करा—क्या परमात्माको स्त्रीधर्म हुआ था? और जलके बीचमें गर्भ धारण करा, क्या गर्भ बहुत उष्ण था? जिसकी गरमीसें जल न जाऊं इस भयसें जलमें प्रवेश करके गर्भ धारण करा और सर्वव्यापी सच्चिदानंद अरूपी सर्वशक्तिमान निराकार एक परमात्मा जलमें गर्भ धारण करे, यह परस्पर विरुद्ध, और युक्तिप्रमाण बाधित नही है? तथा तिस समयमें तो काल भी नही था तो, फेर परमात्माको ऋतुकाल किसतरें प्राप्त हुआ? जेकर कहोंगे, यह तो अलंकार है, तो, ऐसे भ्रमजनक मिथ्या अलंकारके कहनेसें क्या सिद्धि भई? जेकर अलंकारही कथन करना था तब तो, परमात्माको एक सुंदर यौवनवती स्त्री कथन करना था, और

तिसका एक पति कथन करना था, ऋतुकालमें तिस परमात्मारूप स्त्रीसें भोग—वीर्यनिषेक करना, पीछे गर्भ धारण करना, पीछे प्रजापति ब्रह्मा जीका जन्म, इत्यादि कथन करते तो तुमारी कुछक किंचिन्मात्र अलंकारकी आकाक्षा भी पूर्ण होती परतु ऐसें है नही, इसवास्ते यह अलंकार भी नही है हे पाठकगणो! तुम पक्षपातको छोड कर, और जरा नेत्र उन्मीलन करके विचार तो करो कि सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, त्रैलोक्यनाथ, करुणासमुद्र, कृतकृत्य अष्टादशदूषणरहित, परमात्मा, वीतरागका उपहास्य योग्य, और युक्तिप्रमाण बाधित, ऐसा कथन हो सक्ता है? कदापि नही हो सक्ता है ऐसीर मिथ्या कल्पनाजाल खडी करके भव्य जीवोंको फसाय २ के अज्ञानीयोंने अपने वशप्राय कर लिए हैं!!!

ऊपर जो समीक्षा करी है, सो ऋगादिभाष्यभूमिकेंवुनामक पुस्तकमें लिखे अर्थानुसार है अब महीधरकृत वेददीप भाष्यमें जो अर्थ लिखा है, सो लिखते हैं

(ह) प्रसिद्धार्थमें है (प्रथम') सर्वका आदि आद्यतरहित पुरुष (महति अर्णवे) कल्पातकालसमुद्रमें (अत) मध्यमें (गर्भं दधे) गर्भको स्थापन करता भया कैसा पुरुष? (सुभू) भली भूः—उत्पत्ति होवे जिससें सो सुभू अर्थात् विश्व—जगत् उत्पन्न करनेवाला (स्वयभू') स्वयभवतीति स्वयभू स्वेच्छाधृतशरीर—अपनी इच्छासें शरीर धारण करनेवाला कैसा है गर्भ? (ऋत्विय) ऋतु प्राप्तोयस्य—ऋतु प्राप्त हुआ है जिसको अर्थात् प्राप्तकालम् (यत) जिस गर्भसें (प्रजापति) ब्रह्मा (जात) उत्पन्न भया—इति ॥ ६३ ॥ समीक्षाप्रायः पूर्ववत् ॥

अब दयानंदस्वामीका भी अर्थमात्र पूर्वोक्तश्रुतिका लिखते हैं ॥

हे जिज्ञासुजन! (यत) जिस जगदीश्वरसें (प्रजापति) विश्वका रक्षक सूर्य (जात) उत्पन्न हुआ है और जो (सुभू) सुदर विद्यमान (स्वयभू) जो अपने आप प्रसिद्ध उत्पत्ति विनाश रहित (प्रथम) सबसें प्रथम जगदीश्वर (महति) बडे विस्तृत (अर्णवे) जलोंसें सबद्ध हुए ससारके (अत) बीच (ऋत्वियम्) समयानुकूल प्राप्त (गर्भम्) बीज को (दधे) धारण करता हैं (ह) उसीकी सबलोग उपासना करें ॥ ६३ ॥

भावार्थः—यदि जो मनुष्यलोग सूर्यादिलोकोंके उत्तमकारण प्रकृतिको और उस प्रकृतिमें उत्पत्तिकी शक्तिको धारण करनेहारे परमात्माको जानें तो वे जन इसजगत्में विस्तृत सुखवाले होवें॥ ६३॥ इसकी समीक्षा करनेकी हमको कुछ आवश्यकता नही है. क्योंकि, दयानंदजीके अर्थही परस्पर समीक्षा कर रहे हैं. यदि कोइ जिज्ञासु जन अंतर्दृष्टि लगाके विचार करे तो, उसको स्वतोही मालुम हो जावे कि, दयानंदस्वामीका अर्थ निःकेवल मनःकल्पित है. और केवल वेदोंका विहुदापणा छीपानेका प्रयोजन है.

अष्टौ पुत्रासो अदितेः। ये जातास्तन्वः परि देवां३उपप्रैत् सप्तभिः।२। परा मार्ताण्डमास्यत्॥ ७॥

तैत्तिरीयेआरण्यके १ प्रपाठके १३ अनुवाके ७ मंत्रः॥

मित्रश्च वरुणश्च। धाता चार्यमा च। अꣳशश्च भगश्च। इन्द्रश्च विवस्वाꣳश्चेत्येते॥ १०॥ तै० आ० १ प्र० १३ अ० १० मंत्रः॥

भाषार्थः–(अदितेः) अदितिदेवताके (अष्टौ पुत्रासः) अष्टसंख्याकाः पुत्रा विद्यंते–आठ पुत्र हैं (ये) पुत्राः जे पुत्र (तन्वः परि) शरीरस्योपरि–शरीरके उपर (जाताः) उत्पन्न हुए हैं और सा इत्यर्थः। तिनमेसें, (सप्तभिः) सात पुत्रोंकेसाथ (देवान्) देवताओंके (उपप्रैत्) समीप प्राप्त होती भई (मार्ताण्डं) मार्तांड अर्थात् सूर्यनामा आठमे पुत्रको (परास्यत्) पराकृतवती-त्यागती भई, अर्थात् तिस एक आठमे पुत्रको त्यागके अन्य सात पुत्रोंके साथ अदिति देवलोकमें देवताओंके समीप गई.॥ ७॥

अब तिन आठे पुत्रोंके नाम अनुक्रमकरके कहते हैं. मित्र १, वरुण २, धाता ३, अर्यमा ४, अंश५, भग ६, इंद्र ७, और विवस्वान ८, (इत्येते) मित्रवरुणादि ये आठ पुत्र कहें.॥ १०॥

[समीक्षा] इसमें अदितिके आठ पुत्र लिखे हैं, जिनमें सातमा पुत्र इंद्र, और आठमा पुत्र सूर्य, लिखा है.। ऋग्वेदमें लिखा है कि, इंद्र प्रजापतिके मुखसें उत्पन्न हुआ है,। और ऋग्वेद यजुर्वेद दोनोंहीमें लिखा है कि, सूर्य प्रजापतिके नेत्रोंसें उत्पन्न हुआ है.। यह परस्पर विरुद्ध है.॥

चंद्रमा मनसो जातश्चक्षो सूर्यो॑ऽअजायत ।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥१२॥वा०१

भापार्थ—प्रजापतिके मनसें चद्रमा उत्पन्न भया, चक्षु सूर्य उत्पन्न भया, वायु, और प्राण, ये दो, कानोंसें उत्पन्न अग्नि मुखसें उत्पन्न भया ॥ १२ ॥

[समीक्षा] इस श्रुतिमें लिखा है कि, वायु और प्राण ये द अर्थात् कर्ण (कानों)सें उत्पन्न भए और ऋग्वेदके आठमे अष्ट है कि, प्राणसें वायु उत्पन्न भया । तथा इसश्रुतिमें लिखा है। अग्नि भया, और ऋग्वेदमें लिखा है कि, प्रजापतिके मुखसें अग्नि, ये दोनों उत्पन्न भए । यजुर्वेदमें इंद्रकी उत्पत्ति मुखसें नहं और ऋग्वेदमें कही है, यह परस्पर विरुद्धपणा है ॥

*अदितिर्वै प्रजाकामौदनमपचत् तत उच्छिष्टमश्न सा गर्भमधत्त । तत आदित्या अजायन्त ॥

इतिगोपथपूर्व भागे० प्र० २ ।

भापार्थ –(अदितिर्वै)वै, यह निश्चयार्थक अव्यय है, अर्थात् निश्च बोध करता है (अदितिर्वै प्रजाकामौदनमपचत्) अदितिनें प्रज संतानकी उत्पत्तिकेलिये (ओदन) अर्थात् ब्रह्मौदन पकाया (च्छिष्टमश्नात्) तिसमेंसें उच्छिष्ट अर्थात् बचा हुआ जो यज्ञका उसको (अश्नात्) उसने खा लिया (सा गर्भमधत्त) उसके अदिती गर्भको धारण करती भई (तत आदित्या अजायन्त गर्भसें द्वादश आदित्य उत्पन्न हुए इति ॥

[समीक्षा] इस श्रुतिमें लिखा है कि, अदितिनें यज्ञका रहा श भक्षण करनेसें गर्भ धारण करा, यह भी प्रमाण बाधित है । विना पतिके संयोगसें, या योनिमें वीर्यके प्रक्षेपविना, कदापि स्त्री

* इसही मन्त्रका वर्णन तैत्तिरीयब्राह्मणके १ अष्टकके १ अध्यायके ९ अनुवाकमें है।

धारण नही कर सक्ती है. और अदितिनें तो अन्नमात्रके भक्षण करनेसें गर्भ धारण करा, यह प्रमाणविरुद्ध नही तो, क्या है ? तिस अदितिके गर्भसें बारां आदित्य अर्थात् सूर्य उत्पन्न भए. ऋग्वेदयजुर्वेदमें लिखा है, प्रजापतिके नेत्रोंसें सूर्य उत्पन्न भया; यह परस्पर विरुद्ध है. ॥

यस्मादृचोअपातंक्षन्यजुर्यस्माद‍पाकंषन् । सामानि यस्य लोमानि अथर्वाङ्गिरसो मुखम्। स्कम्भन्तम् ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥

अथर्वसं०। कां० १०। प्र० २३। अ० ४। मं० २०॥

भाषार्थः--(यस्मादृचो०) जिस परमात्मासें ऋग्वेद उत्पन्न हुए हैं, और (यजुर्यस्मादपाकषन्) जिस परमात्मासें यजुर्वेद उत्पन्न हुआ है, और (सामानि यस्य लोमानि) सामवेद जिस परमात्माके रोम हैं, तथा (अथर्वाङ्गिरसो मुखम्) आंगिरस जो है अथर्ववेद सो जिसका मुख है. (स्कंभंतं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः) ऐसा जो है स्कंभ अर्थात् सबका आश्रय भूत सो (कतमः) कौन है? (ब्रूहि) कह–कथन कर (स्वित् एव सः) वही केवल एक परब्रह्म परमात्माही है, और कोइ नही. ॥

[समीक्षा] परमात्मासें ऋग्वेद उत्पन्न हुआ, और परमात्मासेंही यजुर्वेद उत्पन्न हुआ, सामवेद परमात्माके रोम है, और अथर्ववेद परमात्माका मुख है. । यदि ऋग्वेद यजुर्वेद परमात्मासें उत्पन्न हुए हैं, तो क्या सामवेद और अथर्ववेद परमात्मासें नही उत्पन्न हुए हैं? जो उनको रोम, और मुख कहा ! यदि सामवेद परमात्माके रोम, और अथर्ववेद परमात्माका मुख ऐसेंही कथन करना था तो, ऋग्वेद शिर, और यजुर्वेद बाहु, यह भी कह देना था? वा अन्य कोइ अंग कहने थे. क्योंकि, यह दोनो वेद भी तो, परमात्माके अंग होने चाहिए; सामअथर्ववेदवत्. नही तो, उन दोनोंको भी रोम मुख न कहना चाहिए; इन चारोंमें क्या विशेष है ? जो दो वेदोंको परमात्मासें उत्पन्न हुए कहे; तीसरेको रोम और चौथेको मुख कह दिया. अन्य तो किंचित् भी विशेष नही, परंतु सामव-

स्त्रीके नशेमें वा वाजपेय सौत्रामण्यादियज्ञोंमें ऋषियोंने मदिरापान करा तिसके नशेमें आ कर जो मनमें आया सो विनाविचारे उच्चारण कर दिया, यह कारण तो हो सक्ता है, अन्य नहीं होवे तो, बतला देना चाहिए तथा ऋग्वेदयजुर्वेदमें, मानस यज्ञ देवताओंने करा, तिस यज्ञसें वेदोंकी उत्पत्ति हुई लिखा है, यह परस्पर विरुद्ध है

एवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेद सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इत्यादि ॥

श०कां०१४। अ । ब्रा ४। क १०॥

इसश्रुतिका भावार्थ यह है कि, ऋगादिचारोंवेद परमात्माके उत्स्वासरूप है। अब देखीए!! ऋग्वेदयजुर्वेदमें तो लिखा है, चारों वेद मानस यज्ञसें उत्पन्न हुए, अथर्ववेदमें लिखा है, सामवेद परमात्माके रोम हैं, और अथर्ववेद परमात्माका मुख है, तथा इसश्रुतिमें चारोंकोही परमात्माके उत्स्वास कहे यह परस्पर विरुद्ध नही तो, क्या है? तथा अन्यजगें लिखा है, अग्निसें ऋग्वेद, वायुसें यजुर्वेद, और सूर्यसे सामवेद, आकर्षण करे—खेंचके निकाले इत्यादि वेदोंमें जो कथन हैं, सो प्रमाण बाधित है इसवास्तेही प्रेक्षावानोंको अंगीकार करने योग्य नही है

प्रजापतिरकामयत प्रजायेयभूयान्स्यामिती। स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वेमांल्लोकानसृजत। पृथिवीमन्तरिक्ष दिव। सतांल्लोकानभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रीणि ज्योतींष्यजायन्त। अग्निरेव पृथिव्या अजायत। वायुरन्तरिक्षात्। आदित्योदिवस्तानि ज्योतींष्यभ्यतपत् तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्त। ऋग्वेद एवाग्नेरजायत। यजुर्वेदो वायोः। सामवेद आदित्यादित्यादि ॥ ऐ० ब्रा० प० ५। क० ३२॥

भाषार्थ—(प्रजापति) प्रजापति जो ब्रह्मा सो (अकामयत) इच्छा करता हुआ कि (प्रजायेय) मैं उत्पन्न हो कर (भूयान्स्यामिति) बहुत प्रकारका होऊ ऐसे विचार कर (स तपोऽतप्यत्) सो तप करता हुआ (स तपस्तप्त्वा) सो तप करके (इमान् लोकान् असृजत) इन तीन लोकोंको उत्पन्न करता हुआ सोही दिखाते हैं (पृथिवीं) एक पृ.

थिवीलोकको (अंतरिक्षम्) दुसरे अंतरिक्ष (आकाश) लोकको, और तीसरे (दिवम्) स्वर्ग लोकको. फिर प्रजापति (तान् लोकान् अभ्यतपत्) तिन तीनो लोकोंको तप कराता हुआ (तेभ्यः अभितप्तेभ्यः त्रीणि ज्योतींषि अजायंत) तपके करनेसें तिन पृथिव्यादिकोंसे तीन ज्योति, अर्थात् प्रकाशात्मक तीन देवते उत्पन्न हुए; सोही दिखाते हैं. (अग्निरेव पृथिव्याः) अग्निदेवता पृथिवीसें (अजायत) उत्पन्न होता भया (वायुरंतरिक्षात्) अंतरिक्ष (आकाश)सें वायु, और (आदित्योदिवः) स्वर्ग लोकसें आदित्य (सूर्य) उत्पन्न हुआ. फिर प्रजापति (तानि ज्योतींषि अभ्यतपत्) तिन तीनों ज्योति अग्नि आदिको तप कराता हुआ (तेभ्यः अभितप्तेभ्यः त्रयः वेदाः अजायंत) तिन अग्न्यादिकोंसें तप करानेसें तीनों वेद उत्पन्न हुए; सोही दिखाते हैं. (ऋग्वेदः एव अग्नेः) ऋग्वेद अग्निसें (आजायत) उत्पन्न होता भया, और (यजुर्वेदः वायोः) यजुर्वेद वायुसें, और (सामवेदः आदित्यात् इति) सामवेद आदित्यसें उत्पन्न हुआ. । इति ॥

प्रजापतिर्वै इदमग्रआसीत् । एकएव । सोऽकामयत । साम्प्रजायेयेति । सोश्राम्यत् । स तपोऽतप्यत । तस्माच्छ्रान्तात्तेपानात् त्रयो लोका असृज्यन्त । पृथिव्यंतरिक्षं द्यौः ॥ १ ॥ स इमांस्त्रींल्लोकानभितताप । तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रीणि ज्योतीᳪंष्यजायन्ताग्निर्योयं पवते सूर्यः ॥ २ ॥ तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः ॥ ३ ॥

शतपथकां० ११ । अ० ५ । ब्रा० ३ । कं० १ ।२ । ३॥

भाषार्थः-(प्रजापतिर्वै) वै यह निश्चयार्थक अव्यय है (अग्रे) जगत् उत्पत्तिसें पहिले (एकः एव) एकही केवल प्रजापति (आसीत्) था, और कोइ नहीं (सः अकामयत) सो प्रजापति कामना अर्थात् इच्छा करता हुआ (सांप्रजायेयइति) कि, मैं अनेकरूपोंसें उत्पन्न होउं (सः अश्राम्यत् सः तपः अतप्यत) सो प्रजापति शांतचित्त हो कर तप करता भया (तस्मात् श्रांतात् ते पानात्) तिस चित्तकी स्थिरता और तपके करनेसें (त्रयः लोकाः

अग्न्यज्यंत) तीनों लोक उत्पन्न किये, सोही दिखाते हैं, (पृथिवी अंतरिक्ष द्यौ) एक पृथिवीलोक, दूसरा अतरिक्ष (आकाश) लोक, और तीसरा स्वर्गलोक ॥ १ ॥ इन तीनों लोकोंको उत्पन्न करके फिर (स इमान् त्रीन् लोकान् अभितताप) सो प्रजापति इन तीनों लोकोंको तप करता हुआ, तब (तेभ्य तप्तेभ्य त्रीणि ज्योतींषि अजायत) तप करनेसें तिन तीनोंसें तीन ज्योति अर्थात् प्रकाशात्मक तीन देवते उत्पन्न हुए, सोही दिखाते हैं, (अग्नि य अय पवते सूर्य्य) एक अग्नि, दूसरा जो यह सपूर्ण विश्वको पावन—पवित्र करता है सो वायु, और तीसरा सूर्य ॥ २॥ (तेभ्य तप्तेभ्य) तपके करनेसें तिन तीनों देवताओंसें (त्रय वेदा अजायत) तीनों वेद उत्पन्न होते भए, सोही दिखाते हैं (अग्ने ऋग्वेद) अग्निसें ऋग्वेद, (वायो यजुर्वेद) वायुसें यजुर्वेद, और (सूर्यात्) सूर्यसें (सामवेद) सामवेद । इति ॥

स भूयोऽश्राम्यद्भूयोऽतप्यत । भूय आत्मानं समतपत् । स आत्मत एव त्रीँल्लोकान्निरमिमत। पृथिवीमन्तरिक्ष दिवमिति। स खलु पादाभ्यामेव पृथिवीन्निरमिमतोदरादन्तरिक्ष मूर्ध्नो दिवं । स तांस्त्रीँल्लोकानभ्यश्राम्यदभ्यतपत्। तेभ्य श्रांतेभ्यस्तप्तेभ्य संतप्तेभ्यस्त्रीन् देवान्निरमिमताग्निं वायुमादित्यमिति। स खलु पृथिव्या एवाग्निं निरमिमतान्तरिक्षाद्वायु दिव आदित्यम्। सतॉस्त्रीन् देवानभ्यश्राम्यदभ्यतपत्। समतपत्। तेभ्यः श्रान्तेभ्यस्तप्तेभ्यः संतप्तेभ्यस्त्रीन् वेदान्निरमिमत। ऋग्वेदं यजुर्वेदं सामवेदमिति ॥ गो । पू । प्र० १। ब्रा० ६ ॥

भावार्थ —(स भूय अश्राम्यत्) सो प्रजापति फिर शांतचित्त होता भया (भूय अतप्यत) फिर तप करता भया (भूय आत्मान समतपत्) फिर आत्माको अच्छे प्रकारसें तपाता हुआ अर्थात् तप कराता भया तप करके (स आत्मत एव त्रीन् लोकान् निरमिमत) सो अपने आत्माहीसें तीनों लोकोंको रचता हुआ, सोही दिखाते हैं (पृथिवीं अंतरिक्ष दिव इति)

है. क्योंकि, जो पर्यालोचन करना है, सोही असर्वज्ञका लक्षण है; इसवास्ते ब्रह्माजी सर्वज्ञ नही थे, ऐसा सिद्ध हुआ, जब सर्वज्ञ नही थे तो, यथार्थ सर्व जगत्की रचना करनेमें भी समर्थ नही सिद्ध होवेंगे. और यह जो लिखा है कि, प्रजापतिनें तीनों लोकोंको तप कराया—क्या तीनों लोकोंको पंचधूणीतपनरूप तप कराया? वा ऊपर लिखे जैनमतके समान तप कराया? वा पर्यालोचनात्मक तप करवाया? वा चांद्रायणादि करवाया? जिससें तीनों लोक थक गए, तप्त संतप्त हो गए. इनमेसें किसी भी प्रकारके तप करानेका संभव नही हो सक्ता है. क्योंकि, तीनों लोक तो पंचभूतात्मक होनेसें जडरूप हैं, तो फेर, यह क्या जानके लिख दिया कि, प्रजापति तीनों लोकोंको तप कराते भए? प्रथम तो चेतनब्रह्मसें इन जडरूप तीनों लोकोंका उत्पन्न होनाही असंभव है तो, तप कराना तो दूरही रहा!!! जब तीनों लोक तप करके श्रांत तप्त संतप्त हुए, तब तिन तीनोंसें अग्नि, वायु, सूर्य, उत्पन्न करे, तिन तीनोंको तप कराके तिन तीनोंसें ऋग्वेदादि तीन वेद उत्पन्न करे. इत्यादि—क्या तिन तीनोंके अंदर वेद स्थापन करे थे, अर्थात् वेदोंके पुस्तक लिखे हुए थे? जो खेंचके निकाल लिये. तथा अग्न्यादि तीनों तो जड भौतिक लोकोंसें प्रसिद्ध हैं, इसवास्ते वे वेदका उच्चार भी नही कर सक्ते हैं. यदि कहोंगे, वे तीनों देवते होनेसें चैतन्य है, जड नही; यह भी ठीक नही है. जडरूप पृथिव्यादि उपादानसें अग्न्यादि चैतन्यकार्य कवी भी नही हो सक्ता है. तथा क्या तिन देवताओंके मुखसें ब्रह्माजीने वेदोंका प्रथम उच्चार कराया था? यदि कहोंगे उच्चार नही करवाया, किंतु तिन देवताओंसेंही प्रथम यज्ञादि करवाए. यह कहना तो, बहुतही असंगत है. क्योंकि, जिनोंसें यज्ञादि कर्म प्रथम करवाए, वे तो यज्ञादिकर्मोंकी उत्पत्तिके अपादान हो सक्ते है, परंतु वेदोंके नही. इसवास्ते वेदश्रुतिके दूषणोंको दूर करनेवास्ते अपनी कपोल कल्पनासें अटकलपच्चुके अर्थ करने, यह विद्वानोंकी मंडलीमें उपहास्यका कारण है.

पृथिवी १, पेटसें आकाश २, और मस्तकसें स्वर्ग ३ यह तीनों पुस्तकोंका कथन, ऋग्वेद यजुर्वेदादिकोंसें विरुद्ध है क्योंकि, ऋग्वेद यजुर्वेदमें प्रजापतिने तप करा ऐसा कथन नही है और यहां है यह परस्पर विरुद्ध । १ । तथा ऋग्वेद यजुर्वेदमें प्रजापतिके पगोंसें भूमी, नाभिसें आकाश, और मस्तकसें स्वर्ग, ऐसा उत्पत्तिक्रम लिखा है, और यहां पेटसें आकाशकी उत्पत्ति लिखी है यह परस्परविरुद्ध । २ ।

फिर प्रजापतिने पूर्वोक्त पृथिवीआदि तीनों लोकोंको तप करायके उनोंसें तीन देवते उत्पन्न किये, पृथिवीसें अग्नि १, आकाशसें वायु २ और स्वर्गसें सूर्य ३, ऋग्वेद यजुर्वेदमें लिखा है कि, प्रजापतिके मुखसें अग्नि १, ऋग्वेदमें प्रजापतिके प्राणसें वायु, और यजुर्वेदमें प्रजापतिके कानोंसें वायु २, और दोनोंमेंही प्रजापतिके नेत्रोंसें सूर्य ३, ऐसे इन देवताओंकी उत्पत्ति लिखी है, यह परस्पर विरुद्ध । ३ ।

फिर प्रजापतिने पूर्वोक्त अग्नि आदिक देवताओंको तप करायके उनोंसें तीनोंही वेद उत्पन्न करे, अग्निसें ऋग्वेद १, वायुसें यजुर्वेद २, और आदित्य (सूर्य) सें सामवेद ३ । ऋग्वेदयजुर्वेदमें चारों वेदोंकी उत्पत्ति मानसनामा यज्ञसें लिखी है, तथा अथर्ववेदमें लिखा है, ऋग्वेद और यजुर्वेद परमात्मासें उत्पन्न हुआ है, सामवेद परमात्माके रोम है, और अथर्ववेद परमात्माका मुख है ॥ शतपथमें लिखा है, चारों वेद परमात्माके निश्वास रूप है । यह परस्परविरुद्ध ॥ ४ ॥

तथा प्रजापतिने तप करा—क्या प्रजापतिने जैनीयोंकीतरें उपवास, छट्ठ, अट्ठम, दशम, द्वादशम, अर्द्धमासक्षपण, मासक्षपणादि, वा रत्नावलि, कनकावलि, मुक्तावलि, घन, प्रतर, लघुसिंहनिक्रीडित, बृहत्सिंहनिक्रीडित, आचाम्लवर्द्धमानादि तीनसोसाठ प्रकारके तपमेंसें कोइ तप करा था ? वा चांद्रायणादि ?

पूर्वपक्ष—प्रजापतिने पर्यालोचनात्मक तप करा था

उत्तरपक्ष—ब्रह्माजी प्रजापतिको तो, वेदोंमें सर्वज्ञ लिखे हैं। प्रथम तो सर्वज्ञको पर्यालोचन करना लिखा है, यह सर्वज्ञताको हानिकारक

व्युत्पत्तिकरके पृथिवीका भूमि, नाम हुआ.। तिस भूमिको गीली देखके सुकानेकेलिये चार दिशाओंको रच कर प्रजापति अपने संकल्पसें उत्पन्न हुए पवनको चलाता भया, शुष्क होती हुई तिस भूमिको प्रजापति सूक्ष्म पाषाण करके दृढ करता भया, दृढ करके 'नोऽस्माकं शं सुखमभूदित्युवाच' हमको सुख भया ऐसे उच्चार करा, तिस कारणसें 'शं सुखं कृतं आभिः' इस व्युत्पत्तिकरके शर्करा (कंकरी) यह नाम हुआ. ॥ इत्यादि ॥

[समीक्षा]–सृष्टिसें पहिले कुछ भी नही था, एक केवल जलमात्रही था, तब प्रजापतिने जगत् उत्पन्न करनेके निमित्त विचार करा कि, यह जगत् कैसें उत्पन्न होवे? इत्यादि–प्रथम तो इस लेखसें प्रजापति अज्ञानी असर्वज्ञ सिद्ध हुआ. क्योंकि, विचार करना यह असर्वज्ञका लक्षण है. सर्वज्ञको तो,सर्व पदार्थ हस्तस्थामलकवत् प्रत्यक्ष भासमान होता है, तो फेर सर्वज्ञ होके प्रजापतिमें विचार करना कैसे संभव होवे? तथा सृष्टिसें पहिले यदि कुछ भी नही था तो, तुमारा माना जल कहां रहा था? विना आकाश पृथिवी आदिके जल कबी भी नही ठहर सक्ता है.

पूर्वपक्षः–वो पृथिवी अन्य थी, और यह दृश्यमान अन्य है. क्योंकि, श्रुतिमें लिखा है कि, गोता लगानेसें प्रजापति नीचेकी पृथिवीको प्राप्त हुआ, यदि दूसरी पृथिवी न होती तो, किसको प्राप्त होता? और किसमेसें मृत्तिका ले आता? इसवास्ते सिद्ध हुआ कि, नीचे भूमि थी, जब भूमि हुई तो जलके रहनेमें क्या बाध है?

उत्तरपक्षः—हे मित्र! हमको तो कुछ भी बाध नही है. क्योंकि, हम तो ऐसे असत् कथनको कबी भी मानना नही चाहते हैं. परंतु आप लोग मनःकल्पित कल्पना करके पूर्वोक्त कथनको सत्य करना चाहते हो, इसीवास्ते वदतोव्याघातदूषणरूप असवार आपके तर्फ दृष्टि करता है. क्योंकि, तुमने प्रथम कहा कि, जलके विना और कुछ भी नही था, और उसी समय पृथिवी तो तुमनेही सिद्ध करी, तो फेर ऐसें कहना चाहिये था कि, "सलिलं भूमिं चासीत्" जल और भूमि यह दो पदार्थ सृष्टिसें पहिले विद्यमान थे. ऐसा कहनेसें भी छूट नही सक्ते हो. क्यों-

आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत्। तेन प्रजापतिरश्राम्यत्॥५॥ कथमिदꣳ स्यादिति। सोऽपश्यत् पुष्करपर्णं तिष्ठत्। सोऽमन्यत्। अस्ति वै तत्। यस्मिन्निदमधितिष्ठतीति। स वराहो रूपं, कृत्वोपन्यमज्जत्। स पृथिवीमधआर्च्छत्। तस्या उपहत्योदमज्जात्। तत्पुष्करपर्णे प्रथयत्। यदप्रथयत ॥६॥ तत् पृथिव्यै पृथिवित्व। अभूद्वा इदमिति तद्भूम्यै भूमित्व। ता दिशोनुवात समवहत्। ता शर्कराभिरदꣳहत्। शं वै नोऽभूदिति। तच्छर्कराणाꣳशर्करत्व॥ इत्यादि॥

तैत्तिरीयब्रा० १ अष्ट० १। अध्या० ३। अनु०॥

भापार्थ —(इदम्) यह जो कुछ गिरिनदीसमुद्रादिक स्थावर, और मनुष्यगवादिक जगम दिखलाइ देता है, सो (अग्रे) सृष्टिसे पूर्व नही था, किंतु केवल (सलिल आसीत्) जलमात्रही था तव (प्रजापति) ब्रह्मा (तेन) जगत्सृजननिमित्तकरके (अश्राम्यत्) पर्यालोचनरूप तप करता भया, कैसें यह जगत् होवे अर्थात् रचा जाय ऐसा विचार करके तिस पाणीके मध्यमें दीर्घनालके अग्रभागमें स्थित एक पद्म—कमलके पत्रको देखता भया, तिसको देखके प्रजापति मनमें शोचता—विचारकरता भया कि, जिस आधारमें यह नालसहित पद्मपत्र आश्रित हो कर स्थित है—रहा है सो वस्तु कुछक अवश्यमेव नीचे है ऐसें विचार कर प्रजापति वराहरूप हो कर तिस पद्मपत्रनालके समीपही जलमें गोता लगाता भया, गोता लगानेसें प्रजापति नीचे भूमिको प्राप्त हुआ तिस भूमिमेंसे कितनीक गीली मृत्तिका अपनी दाढाके अग्रभागमें रख कर पाणीके ऊपर उछलता भया, ऊपरको आ कर तिस मृत्तिकाको तिस कमलके पत्रके ऊपर फैलाता भया, जिसवास्ते यह मृत्तिका फैलाई, (प्रथिता) तिसवास्ते इसका पृथिवी नाम रक्खा गया तदपीछे सतुष्ट होके यह स्थावरजगमका आधारभृत स्थान हुआ, ऐसा कथन करता हुआ, तिसवास्ते भवति इस

व्युत्पत्तिकरके पृथिवीका भूमि, नाम हुआ.। तिस भूमिको गीली देखके सुकानेकेलिये चार दिशाओंको रच कर प्रजापति अपने संकल्पसें उत्पन्न हुए पवनको चलाता भया, शुष्क होती हुई तिस भूमिको प्रजापति सूक्ष्म पाषाण करके दृढ करता भया, दृढ करके 'नोऽस्माकं शं सुखमभूदित्युवाच' हमको सुख भया ऐसे उच्चार करा, तिस कारणसें 'शं सुखं कृतं आभिः' इस व्युत्पत्तिकरके शर्करा (कंकरी) यह नाम हुआ. ॥ इत्यादि ॥

[समीक्षा]–सृष्टिसें पहिले कुछ भी नही था, एक केवल जलमात्रही था, तब प्रजापतिने जगत् उत्पन्न करनेके निमित्त विचार करा कि, यह जगत् कैसें उत्पन्न होवे? इत्यादि–प्रथम तो इस लेखसें प्रजापति अज्ञानी असर्वज्ञ सिद्ध हुआ. क्योंकि, विचार करना यह असर्वज्ञका लक्षण है. सर्वज्ञको तो,सर्व पदार्थ हस्तस्थामलकवत् प्रत्यक्ष भासमान होता है, तो फेर सर्वज्ञ होके प्रजापतिमें विचार करना कैसे संभव होवे? तथा सृष्टिसें पहिले यदि कुछ भी नही था तो, तुमारा माना जल कहां रहा था? विना आकाश पृथिवी आदिके जल कबी भी नही ठहर सक्ता है.

पूर्वपक्षः–वो पृथिवी अन्य थी, और यह दृश्यमान अन्य है. क्योंकि, श्रुतिमें लिखा है कि, गोता लगानेसें प्रजापति नीचेकी पृथिवीको प्राप्त हुआ, यदि दूसरी पृथिवी न होती तो, किसको प्राप्त होता? और किसमेसें मृत्तिका ले आता? इसवास्ते सिद्ध हुआ कि, नीचे भूमि थी, जब भूमि हुई तो जलके रहनेमें क्या बाध है?

उत्तरपक्षः—हे मित्र! हमको तो कुछ भी बाध नही है. क्योंकि, हम तो ऐसे असत् कथनको कबी भी मानना नही चाहते हैं. परंतु आप लोग मनःकल्पित कल्पना करके पूर्वोक्त कथनको सत्य करना चाहते हो, इसीवास्ते वदतोव्याघातदूषणरूप असवार आपके तर्फ दृष्टि करता है. क्योंकि, तुमने प्रथम कहा कि, जलके विना और कुछ भी नही था, और उसी समय पृथिवी तो तुमनेही सिद्ध करी, तो फेर ऐसें कहना चाहिये था कि, "सलिलं भूमिं चासीत्" जल और भूमि यह दो पदार्थ सृष्टिसें पहिले विद्यमान थे. ऐसा कहनेसें भी छूट नही सक्के हो. क्यों-

कि, फेर वराहावतार धारणकरके मृत्तिका ले आया, यह कैसें सिद्ध होगा? यदि कहोंगे कि, यह जो दृश्यमान पृथिवी है, सो प्रथम नही थी, प्रजापतिने नीचेकी मृत्तिकामेंसें लायके बनाई है, तो जिस भूमि मेंसें प्रजापति वराहरूपकरके मृत्तिका ले आया, वो भूमि किसकी बनाइ हुई थी? और वो जगत्में है कि, जगत्सें बाहेर है? तथा यजुर्वेदमें लिखा है कि, प्रलयदशामें जल भी नही था, और इसश्रुतिसें जल भूमि कमलपत्र आकाशादि सिद्ध होते हैं, यह परस्पर विरुद्ध है प्रजापति विचार करके एक नालसहित कमलपत्रको देखता भया इति—जब केवल जलही था तो यह नालसहित कमल पत्र कहासें निकल आया?

कमलपत्रको देखके प्रजापतिने विचार करा कि, जिसके आधार यह नालसहित कमलपत्र स्थित है, वो कुछ वस्तु होना चाहिये? ऐसा विचार कर कमलपत्रके समीपही गोता लगाता भया, गोता लगानेसें नीचे भूमिको प्राप्त हुआ, तिस भूमिमेंसें गीली मृत्तिका अपनी दाढामें रखके पाणीके ऊपर आकर कमलपत्रके ऊपर सुकानेकेलिये मृत्तिकाको फैलाई दीनी इत्यादि—इससें तो प्रजापतिके असर्वज्ञ होनेमें कुछ भी संदेह नही है क्योंकि, प्रजापतिनें अनुमानसें विचारा कि, यह कुछ वस्तु होना चाहिये परंतु प्रत्यक्ष नही देखा यदि प्रत्यक्ष देखता तो, गोता न लगाता, विना गोतेके लगायेही वहांसें मृत्तिका काढ लेता क्योंकि, वो तो सर्व शक्तिमान् था तथा यह दृश्यमान सारी पृथिवी कमलपत्रके ऊपर सुकाई तो, वो कमलपत्र कितनाक वडा था? पृथिवीसें तो अधि कही वडा होना चाहिये कि, जिसके ऊपर सारी पृथिवी फैलाई गई भला नीचेसें तो वराहरूप करके प्रजापति मृत्तिका ले आये, परंतु सुकाये पीछे कमलपत्रके ऊपरसें किसरूप करके प्रजापतिने पृथिवी उचक लीनी? और वो कमलपत्र कहां गया? क्योंकि, उस कमलप त्रका तो कधी भी नाश न होना चाहिये प्रलय दशामें भी विद्यमान होनेसें, ईश्वरवत्

जब कमलपत्रके उपर फेलानेमें भी नही सुकी, तब प्रजापतिने दिशा और वायुका संकल्प करा जिससें वायु प्रचलित हुआ, तब सुकती हुई

तिस पृथिवीमें कंकरी सिलाके प्रजापतिने पृथिवीको दृढ करी, इत्यादि—अब विचारना चाहिये कि, जिसने संकल्पमात्रसेंही वायु दिशादि प्रकट करे, वो क्या पृथिवीको स्वतोही नही बना सक्ता था ? जिसवास्ते इतना टंटा अपने गलेमें डाल लिया. तथा यह कथन ऋग्वेदयजुर्वेदसें विरुद्ध है. क्योंकि, उनमें लिखा है कि, भूमि प्रजापतिके पगोंसें उत्पन्न भई, दिशा प्रजापतिके कानोंसें, और वायु ऋग्वेदमें प्रजापतिके प्राणोंसें, और यजुर्वेदमें प्रजापतिके कानोंसें उत्पन्न भया. इति—और यहां प्रजापति मृत्तिका ले आया, उससें पृथिवी उत्पन्न भई, और प्रजापतिके संकल्पमात्रसें वायुदिशादि उत्पन्न भए, यह परस्पर विरुद्ध. ॥

और तैत्तिरीयसंहिता कां० ७। प्र० १। अनु० ५। में लिखा है ॥

आपो वा इदमग्रे सलिलम् आसीत्।
तस्मिन् प्रजापतिर्वायुर्भूत्वाऽचरत्।
स इमामपश्यत् तां वराहो भूत्वाऽऽहरत्। इति ॥

भावार्थः–(अग्रे) अर्थात् सृष्टिकी उत्पत्तिसें पहिले जलही जल था, तिस जलमें प्रजापति वायुरूप हो कर फिरता हुआ, पर्य्यटन अर्थात् चारोंओर घूम कर सो प्रजापति, (इमां) इस पृथिवीको देखता भया, तब (तां) तिस पृथिवीको वराहरूप हो कर प्रजापति जलके ऊपर ले आता भया—इति ॥ देखिये इसमें पर्यालोचनरूप तपका कथन नही है, प्रजापतिने वायुरूप हो कर और घूम कर जलमें पृथिवीको देखा, सो भी इसही पृथिवीको देखा, नतु अन्यको, तथा पुष्करपर्ण (कमलपत्र) आदिका वर्णन भी इस मूल श्रुतिमें नही है; यह परस्पर विरुद्ध. ॥

अब वाचकवर्गको विचारना चाहिये कि, जिन पुस्तकोंमें अपने जगत् कर्ता ईश्वररूप इष्टतत्त्वमेंही पूर्वोक्त विरोधसमूह होवे, वे पुस्तक सर्वज्ञ वीतराग अष्टादशदूषणरहित परमात्माके कथन करे सिद्ध हो सक्ते हैं ? कबी भी नही. क्योंकि, जैसा परमेश्वर और परमेश्वरके कृत्योंका स्वरूप वेदादि पुस्तकोंमें कथन करा है, वो कथन सर्वज्ञ परमात्माका है, वा यह कृत्य परमेश्वरके हैं, ऐसा थोडी बुद्धिवाला पुरुष भी नही कह सक्ता है. जैसें

कि, बृहदारण्यकके तीसरे अध्यायके चौथे ब्राह्मणमें लिखा है—आत्माही प्रथम सृष्टिके पहिले था, सो प्रजापतिरूप पुरुष हुआ, सो एकेला होनेसें डरने लगा, और अरति-दिलगिरीको प्राप्त हुआ, सो प्रजापति तिस अरतिकों दूर करनेकेवास्ते दूसरे अरति दूर करनेमें समर्थ स्त्रीवस्तुको इच्छता भया, अर्थात् वृद्धि करता भया, तिसको ऐसें स्त्रीविषे वृद्धि होनेसें स्त्रीके साथ मिलेहूएकीतरें प्रजापतिके आत्माका भाव होता भया, अर्थात् जैसें लोकमें स्त्री पुरुष अरति दूर करनेकेवास्ते परस्पर मिले हुए, जिस परिमाणवाले होते हैं, प्रजापति भी अपने आत्माके स्त्रीपुरुषरूप दो भाग करके तिस परिमाणवाला होता भया जिसवास्ते अपने अर्द्ध अग शरीरकी स्त्री बनाई, इसीवास्ते जगत्में स्त्रीको अर्द्धांगना कहते हैं सो प्रजापति शतरूपा नामा अपनी पुत्रीको स्त्रीपणे मानी हुईको प्राप्त होता भया, अर्थात् तिससें मैथुन सेवता हुआ, तिससें मनुष्य उत्पन्न हुए। पीछे शतरूपा पुत्री पिताके गमनसें पीडित हुई विचार करती भई, दुहित (पुत्री) का गमन करना यह अकृत्य है, और यह प्रजापति निर्घृण (घृणारहित) है इसवास्ते में जात्यतर हो जाऊ, ऐसा विचार कर सो शतरूपा, गो हो गई तब प्रजापति ऋषभ (बैल) हुआ, उनोंके संगमसें गौयां उत्पन्न हुई। शतरूपा वडवा (घोडी) हुई, प्रजापति घोडा हुआ, शतरूपा गर्दभी (गधी) हुई, प्रजापति गर्दभ (गधा) हुआ, उनोंके संगमसें एक खुरवाले घोडे, खचरां, और गधे, यह तीन उत्पन्न भए। शतरूपा बकरी हुई, प्रजापति बकरा हुआ, शतरूपा अवि (भेड-घेटी) हुई, प्रजापति मेष (मींढा-घेटा,) हुआ, उनोंके सगमसें अजा, अवि उत्पन्न भए। ऐसें पिपीलिका (कीडी) पर्यंत जो जो स्त्री पुरुषरूप जोडा है, सो सर्व इसी न्यायकरके जानना-इत्यादि ॥ यह हमने किंचिन्मात्र लिख दिखाया है, यदि यह पूर्वोक्त कृत्योंका कर्त्ता ईश्वर सिद्ध होवे तो, वेदादिकोंका वक्ता भी ईश्वर सिद्ध होवे परतु पूर्वोक्त कृत्य ईश्वर परमात्मामें कबी भी सिद्ध नही हो सक्ते हैं यदि पूर्वोक्त कृत्योंके करनेवालेको तुम ईश्वर, परमात्मा

सर्वज्ञ, निर्विकारी, निरवयव, ज्योतिःसरूप, सच्चिदानंद, मानोंगे तब तो विद्वत्सभामें अवश्यमेव हास्यके पात्र होवोंगे; और तुमारा ईश्वर नालायक सिद्ध होवेगा. तब तो, वेदादिशास्त्रोंका वक्ता भी वैसाही होगा. जब कि, हम संसारी जीवोंकों तारनेवाले ईश्वर परमात्माकीही यह पूर्वोक्त विटंवना हो रही है तो, वो हमको किसतरें तार सक्ता है? वा सत्पथको प्राप्त करा सक्ता है? इसवास्ते वेदादिशास्त्र, सर्वज्ञप्रणीत नही है. किंतु अज्ञानीयोंके प्रलापमात्र हैं; परस्पर विरुद्ध, और युक्तिप्रमाणसें वाधित होनेसें. यह थोडासा वेदोंका परस्पर विरुद्धपणा बताया, इसीतरें और भी विरुद्धपणा अपनी बुद्धिद्वारा विचार लेना. इत्यलं बहुपल्लवितेन विद्वद्वर्येषु ॥

इतिश्वेताम्वराचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे वेदानां परस्परविरुद्धतावर्णनो नाम नवमस्तम्भः ॥ ९ ॥

॥ अथदशमस्तम्भारम्भः ॥

नवम स्तंभमें वेदोंका परस्पर विरुद्धपणा कथन करा, अथ दशम स्तंभमें वेदकी ऋचायोंसेंही वेद ईश्वरोक्त नही हैं, ऐसा सिद्ध करेंगे.

ऋग्वेदसंहिता अष्टक ३। अध्याय २॥ वर्ग १२। १३। १४॥

अतीतकालमें पैजवनके सुदासराजाका विश्वामित्र नामा पुरोहित होता भया, तिसने पुरोहित होनेसें बहुत धन पाया, सो सर्व धन लेके शतद्रू और विपाट अर्थात् सतलुज और वियासानदीयोंके संगमऊपर आया. अथ विश्वामित्र तिनसें पार उतरनेकी इच्छावंत, नदीयोंको अगाध जलवाली देखके उतरनेवास्ते आदिकी तीन ऋचायोंकरके तिन नदीयोंकी स्तुति करता भया. और ४। ६। ८। १०। इन चार ऋचायोंमें नदीयोंने जो कुछ विश्वामित्रकेतांइ कहा, तिसका कथन है. छठी सातमीमें इंद्रकी स्तुति है. इतिभाष्यकारः। प्रपर्वतानामुशतीइत्यादि १३ ऋचा है॥ सोही लिख दिखाते हैं. ॥

॥ अथप्रथमा ॥

प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वे इव विषिते हासमाने ।
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे विपाट्छुतुद्री पयसा जवेते ॥ १ ॥

॥ अथद्वितीया ॥

इन्द्रेषिते प्रसव भिक्षमाणे अच्छा समुद्रं रथ्येव याथः ।
समाराणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने अन्या वामन्यामप्येति शुभ्रे ॥ २ ॥

॥ अथतृतीया ॥

अच्छा सिन्धुं मातृतमामयासं विपाशमुर्वी सुभगामगन्म ।
वत्समिव मातरा संरिहाणे समानं योनिमनु संचरन्ती ॥ ३ ॥

॥ अथचतुर्थी ॥

एना वयं पयसा पिन्वमाना अनु योनिं देवकृतं चरन्तीः ।
न वर्तवे प्रसवः सर्गतक्तः किंयुर्विप्रो नद्यो जोहवीति ॥ ४ ॥

॥ अथपचमी ॥

रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः ।
प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषावस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः ॥५॥ १२॥

॥ अथषष्ठी ॥

इन्द्रो अस्माँ अरदद्वज्रबाहुरपाहन्वृत्रं परिधिं नदीनाम् ।
देवोनयत्सविता सुपाणिस्तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः ॥६॥

॥ अथसप्तमी ॥

प्रवाच्यं शश्वधा वीर्यं तदिन्द्रस्य कर्म यदहिं विवृश्चत ।
वि वज्रेण परिषदो जघानायन्नापोयनमिच्छमानाः ॥७॥

॥ अथाष्टमी ॥

एतद्वचो जरितर्मापि मृष्ठा आ यत्ते घोषानुत्तरा युगानि ।
उक्थेषु कारो प्रति नो जुषस्व मा नो नि कः पुरुषत्रा नमस्ते ॥ ८ ॥

॥ अथनवमी ॥

ओ षु स्वसारः कारवे शृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन ।
नि षू नमध्वं भवता सुपारा अधोअक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः ॥ ९ ॥

॥ अथदशमी ॥

आ ते कारो शृणवामा वचांसि ययाथ दूरादनसा रथेन ।
नि ते नंसै पीप्यानेव योषा मर्यायेव कन्या शश्वचै ते ॥ १० ॥ १३ ॥

॥ अथैकादशी ॥

यदङ्ग त्वा भरताः संतरेयुर्गव्यन्ग्राम इषित इन्द्रजूतः ।
अर्षादह प्रसवः सर्गतक्त आ वो वृणे सुमतिं यज्ञियानाम् ॥ ११ ॥

॥ अथद्वादशी ॥

अतारिषुर्भरता गव्यवः समभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम् ।
प्र पिन्वध्वमिषयन्तीः सुराधा आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीभम् ॥ १२ ॥

॥ अथत्रयोदशी ॥

उद्व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत ।
माटुष्कृतौ व्येनसाघ्न्यौ शूनमारताम् ॥ १३ ॥ १४ ॥

ऋ० । सं० । अ० ३ । अ० २ । व० १२ । १३ । १४ ॥

ऊपर लिखी ऋचायोंका तात्पर्य यह है कि, विश्वामित्रऋषि सोमवल्ली लेनेकेवास्ते पंजाबदेशमें आए, जहां शतद्रू और वियासा नदीयां मिलती हैं; अर्थात् जहां बैठके मैं यह ग्रंथ रचता हुं, तिस जीरे गामसें तेरा (१३) मीलके फासलेपर जो हरिकापत्तन कहाता है, तिस जगे विश्वामित्र

॥ अथप्रथमा ॥

प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वे इव विषिते हासमाने ।
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे विपाट्छुतुद्री पयसा जवेते ॥ १ ॥

॥ अथद्वितीया ॥

इन्द्रेषिते प्रसव भिक्षमाणे अच्छा समुद्रं रथ्येव याथ ।
समाराणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने अन्या वामन्यामप्येति शुभ्रे॥ २ ॥

॥ अथतृतीया ॥

अच्छा सिन्धु मातृतमामयास विपाशमुर्वी सुभगामगन्म ।
वत्समिव मातरा सरिहाणे संनान योनिमनु सचरन्ती ॥ ३ ॥

॥ अथचतुर्थी ॥

एना वय पयसा पिन्वमाना अनु योनिं देवकृत चरन्तीः ।
न वर्तवे प्रसव सर्गतक्त किंयुर्विप्रो नद्यो जोहवीति ॥ ४ ॥

॥ अथपञ्चमी ॥

रमध्व मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवै ।
प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषावस्युरह्वे कुशिकस्य सूनु ॥५॥ १२॥

॥ अथषष्ठी ॥

इन्द्रो अस्माँ अरदद्वज्रबाहुरपाहन्वृत्र परिधि नदीनाम् ।
देवोनयत्सविता सुपाणिस्तस्य वय प्रसवे याम उर्वी ॥६॥

॥ अथसप्तमी ॥

प्रवाच्य शश्वधा वीर्य‌ं तदिन्द्रस्य कर्म यदहि विवृश्चत् ।
वि वज्रेण परिषदो जघानायन्नापोयनमिच्छमाना ॥७॥

मांगता है तो, ऋचा परमेश्वरकृत कैसें सिद्ध होवेंगी ? और ऋषि तिन ऋचायोंके कैसें सिद्ध होवेंगे ? जेकर वेद अपौरुषेय है, तब तो किसीके भी रचे सिद्ध नही होवेंगे; जेकर कहोंगे ब्रह्माजीने प्रथम वेदका उच्चार करा, इसवास्ते ब्रह्माजीके रचे वेद हैं, तब तो, यह जो कथन वेदोंमें है कि, मानसयज्ञसें ऋगादिवेद उत्पन्न भए, तथा अग्नि वायु सूर्यसें तीन वेद ब्रह्माजीने खैंचके काढे, इत्यादि मिथ्या सिद्ध होवेगा. इसवास्ते येह सर्व वेद ब्राह्मणोंकी स्वकपोलकल्पनासें रचे गए हैं, नतु ईश्वर प्रणित; परस्पर विरुद्ध, और युक्तिप्रमाणसें बाधित होनेसें.

तथा ऋग्वेदसंहिताष्टक ३, अध्याय ३, वर्ग २३, में लिखा है—अतीतकालमें विश्वामित्रका शिष्य सुदा नाम राजऋषि होता भया, सो किसी कारणसें वसिष्ठजीका द्वेषी होता भया, तब विश्वामित्र स्वशिष्यकी रक्षावास्ते इन ऋचायोंकरके शाप देता भया. येह जो शापरूप ऋचायों है, तिनकों वासिष्टके संप्रदायी नही सुनते हैं । इतिभाष्यकारः । वे ऋचायों येह हैं.—

तत्राद्या सूक्ते एकविंशी ॥

इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य याच्छ्रेष्ठाभिर्मघवञ्छूर जिन्व ।
यो नो द्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ॥२१॥

॥ अथद्वाविंशी ॥

परशुं चिद्वि तपति शिंबलं चिद्वि वृश्चति ।
उखा चिं दिन्द्र येषन्ती प्रयस्ता फेनमस्याति ॥ २२ ॥

॥ अथत्रयोविंशी ॥

न सायकस्य चिकिते जनासो लोधं नयन्ति पशु मन्यमानाः ।
नावाजिनं वाजिना हासयन्ति न गर्दभं पुरो अश्वान्नयन्ति ॥२३॥

आए मालुम होते हैं क्योंकि, इसी पत्तन (घाट) में शतद्रू और वियासा नदिया मिलती हैं बहुत अगाध पाणी देखके तीन ऋचायोंसें नदीयोंकी स्तुति करी कि, मेरे उतरनेको मार्ग देओ, तब नदीयोंने कहा कि, हमको इंद्रकी आज्ञा निरंतर वहनेकी है, इसवास्ते हम चलनेसें बंध नही होवेंगी इसतरें परस्पर नदीयोंका और विश्वामित्रका वार्तालाप हुआ, और विश्वामित्रने नदीयोंकी स्तुति करी, तब विश्वामित्रके रथकी धुरीसें भी हेठां पाणी होगया तब विश्वामित्र सोमवल्लीके लेनेवास्ते पार उतरके आगे गया शतद्रू और विपाट् इनका नाम मूलश्रुतिमें है इति॥

अब हे पाठकगणो! तुम विचार करो कि, वेद ईश्वर वा ब्रह्मा वा परब्रह्मका रचा वा अनादि अपौरुषेय किसतरें सिद्ध हो सक्ता है? क्योंकि सर्वसूक्तोंके न्यारे २ ऋषि है, और जिन २ ऋचायोंके जे जे ऋषि हैं, तिन २ ऋषियोंनें तप करके ऋचायें प्राप्त करी हैं, और प्रथम गायन करी हैं, तिन २ ऋचायोंके ते ते ऋषि हैं, ऐसा भाष्यमें लिखा है और दशो मंडलोंके द्रष्टा दश ऋषियोंके नाम लिखे हैं। जितनी ऋचा जिस मंडलमें हैं तिन सर्वका स्वरूप जिसने मंडलरूप सें पहिले देखा, सो मंडलका द्रष्टा है विश्वामित्रने, जे नदीयोंकी स्तुतिकी ऋचायों पठण करी वे ऋचायों परमेश्वरकी रची क्योंकर सिद्ध हो सक्ती हैं? ऐसेंही नदीयोंने गायन करी ऋचायों—इसीतरें संपूर्ण ऋग्वेद भरा है जेकर कहोंगे, अग्नि, सूर्य, अश्विनौ, यम, ऋभुव, उषा, वायु, वरुण, मैत्रावरुण, इंद्रादि ये सर्व ब्रह्मरूप है, इसवास्ते जो इनकी स्तुति है, सो सर्व ब्रह्मकीही स्तुति है तब तो कुत्ते, बिल्ले, गधे, सूयर, गदकीके कीडे, इत्यादि सर्व जंतुयोंकी स्तुति वेदमें क्यों नही करी? और जगे जगे यह लिखा है कि, हे इंद्र! तू हमारे शत्रुयोंका नाश कर, असुरोंका नाश कर, और हमको धन दे, गौया दे, पुत्र दे, परिवार दे, राज्य दे, स्वर्ग दे, इत्यादि वस्तुयों कौन मागता है? परमेश्वर किससें मागता है? और कृतकृत्य परमेश्वरको पूर्वोक्त वस्तुयोंसे क्या प्रयोजन है? वीतराग और निरुपाधि मुक्तरूप होनेसे जेकर कहोंगे, परमेश्वर नही मागता है, किंतु यजमान

तथा ऋ० सं० अष्टक ४ अध्याय ४ वर्ग २० में लिखा है कि—सप्तवध्रिनामा ऋषि था, तिसके भतीजे तिसको पेटीमें घालके मुद्रा करके वडे यत्नसें अपने घरमें स्थापन करते हुए; जैसें रात्रिमें अपनी स्त्रीसें विषय सेवन न करे, तैसें करते हुए. सवेरे २ तिस पेटीको उघाडके तिसको मारपीटके फिर पेटीमें घालके रखते भए. ऐसें चिरकालतक सो कृश और दुःखी तिस पेटीमें रहा, चिरकालतक मुनिने तिस पेटीसें निकलनेका उपाय चिंतन करा, तव हृदयमें निश्चय करके अश्विनौ देवतायोंकी स्तुति करता भया; तव अश्विनौ आए, पेटी उघाडके तिसको निकालके शीघ्र अदृष्ट हो गए. सो ऋषि भार्यासें विषय सेवन करके तिनके भयसें सवेरे पेटीमें प्रवेश करके पूर्वकीतरें स्थित रहा; तिस ऋषिने पेटीके निवास समयमें येह दो ऋचायों देखी, जो आगे कहेंगे. ॥ इतिभाष्यकारः ॥ अव श्रुतियां लिखते हैं.

॥ प्रथमा ॥

वि जिंहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्या इव।
श्रुतं मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुञ्चतम्॥ १ ॥ ५ ॥

॥ अथद्वितीया ॥

भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये।
मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चांचथः॥ २ ॥ ६ ॥

भावार्थः—हे वनस्पतिके विकाररूप पेटी! तूं स्त्रीकी योनिकीतरें चौडी हो जा, जैसें स्त्रीकी योनि संतानके जननेके समयमें चौडी हो जाती है, तैसें तूं भी हो जा. हे अश्विनौ! तुम सप्तवध्रिकी विनती सुनके मूल सप्तवध्रिको छुडावो! निकलते हुए डरतेको, और निकलना वांछतेको, हे अश्विनौ! ऐसे मूझ सप्तवध्रिको इस पेटीसें निकालनेको आओ. ॥

अब वाचकवर्गो! तुम देखो कि, यह परमेश्वरकी कैसी भक्तवत्सलता है कि, पेटीमें बैठे अपने भक्त सप्तवध्रि ऋषिको कैसी ज्ञानरसकी भरी

॥ अथचतुर्विंशी ॥

इम इन्द्र भरतस्य पुत्रा अपपित्वं चिकितुर्न प्रपित्वम्।
हिन्वन्त्यश्वमरणं न नित्यं ज्यावाजं परि णयन्त्याजौ ॥२४॥

ऋ० स० अ० ३॥

इन चारों ऋचायोंमें यह भावार्थ है कि, विश्वामित्रने शाप देते हुए, प्रथमार्द्ध ऋचामें तो, आत्मरक्षा करी है, आगे शाप दिया तू पतत् होवे, तू मर जावे, इत्यादि। फिर इन्द्रको संबोधन करा कि, हे इन्द्र! मेरा शत्रु मेरे मन्त्रकी शक्तिसें प्रहत होके पडो, और मुखसें फेन (झाग) वमन करो। प्रथम मेरा तप क्षय न हो जावे इसवास्ते शाप देनेसें हट कर मौनकर बैठे विश्वामित्रको वसिष्टके पुरुष बांध पकडके ले चले, तब विश्वामित्र तिनको कहता है, हे लोको! नाश करनेवाले विश्वामित्रके मन्त्रोंका सामर्थ्य तुम नही जानते हो! शाप देनेसें मेरा तप न क्षय हो जावे, ऐसें विचारके मुझे मौनव्रतको पशुसमान जानके बांधके इष्टस्थानमें ले जाते हो, ऐसें स्वसामर्थ्य दिखलाके कहता है कि, क्या वसिष्ठ मेरी बराबरी कर सक्ता है? तिसके साथ स्पर्द्धा करनेसें विद्वान् लोक मेरी हांसी न करेंगे? इसवास्ते मैं वसिष्ठके साथ स्पर्द्धा नही करता हु। हे इंद्र! भरतके वशके होके, क्या विश्वामित्र इनके साथ स्पर्द्धा करेंगे? येह तो विचारे ब्राह्मणही है ॥

अब पाठकगणो! विचारो कि, येह श्रुतिया परमेश्वरने रची है? क्या वसिष्ठके शाप देनेवास्ते परमेश्वरने येह श्रुतिया विश्वामित्रको दीनी थी? क्योंकि, इस सूक्तका ऋषि विश्वामित्रही है, विश्वामित्रने तप करके ईश्वरके अनुग्रहसें येह ऋचायों संपादन करी है!! क्या कहना है दयालु परमेश्वरका!!! जिसने विश्वामित्रके तपसें संतुष्टमान होके, अपूर्वज्ञान रससें भरी हुइ ऐसी २ ऋचायों प्रदान करी लज्जा भी कहनेवालेको नही आती कि, वेद परमेश्वरके रचे हुए है! इसवास्ते किसी प्रमाणसें भी वेद ईश्वरका रचा सिद्ध नही होता है

मैं तेरा बहुमान करुंगी. ऐसें इंद्रको कहके फिर अपाला विचार करती है कि, इहां आया यह इंद्रही है, अन्य नही. ऐसा निश्चय करके अपने मुखमें डाले सोमको कहती है, हे सोम ! तूं आए हुए इंद्रकेतांइ पहिले हलवे २, तदपीछे जलदी २, सर्वओरसें स्त्रव. तदपीछे इंद्र तिसको वांछके अपालाके मुखमें रहे दाढोंसें पीसे हुए सोमको पीता हुआ. तदपीछे इंद्रके सोम पीया हुआं, त्वग्दोषके रोगसें मुझको मैरे पतिने त्याग दीनी है, अब मैं इंद्रको सम्यक् प्रकारे प्राप्त हुई हुं; ऐसें अपालाके कहे हुए इंद्र अपालाको कहता हुआ कि, तूं क्या वांछती (चाहती) है? मैं सोही करुं. इंद्रके ऐसें कहे थके अपाला वर मांगती है कि, मेरे पिताका शिर रोमरहित (टट्टरीवाला) है।१। मेरे पिताका खेत उषर (फलादिरहित) है।२। और मेरा गुह्यस्थान भी रोमरहित है। ३। येह पूर्वोक्त तीनों रोम फलादियुक्त कर दे. ऐसे अपालाके कहे हुए तिसके पिताके शिरकी टट्टरी दूर करके, और खेतको फलादियुक्त करके, अपालाके त्वग्दोषके दूर करनेकेवास्ते अपने रथके छिद्रमें गाडेके और युगके छिद्रमें अपालाको तीन वार तारकीतरें खैंचता हुआ, तिस अपालाकी जो पहिली वार चमडी उतरी तिससें शल्यक (मयना), दूसरी चमडीसें गोधा (गोह) हुई, और तीसरी वेर उतरी चमडीसें किरले (कांकडे) होते भए. तिसपीछे इंद्र तिस अपालाको सूर्यसमान चमकती हुई चमडीवाली करता हुआ. यह इतिहासिक कथा है. और यह, कथा, शाट्यायन ब्राह्मणमें स्पष्टपणे कही है. और यही ऊपर लिखा हुआ अर्थ, कन्यावार इत्यादि सात ऋचायोंमें कथन करा है; वे ऋचायें येह हैं.

॥ प्रथमा ॥

कन्या३ वारवायती सोममपि स्रुताविदत्।
अस्तं भरन्त्यब्रवीदिन्द्राय सुनवै त्वा शक्राय सुनवै त्वा॥१॥

॥ अथद्वितीया ॥

असौ य एषि वीरको गृहंगृहं विचाकशत्।
इमं जम्भसुतं पिब धानावन्तं करम्भिणमपूयवन्तमुक्थिनम्।२॥

ऋचायों प्रदान करी कि, जिनके पढनेसें अश्विनौने आकर तिसको पेटीसें बाहिर काढा। और तिस ऋषिने भतीजोंके भयसें रात्रिको छाना निकलके स्वभार्यासें सपूर्ण रात्रिमें विषय भोग करके सवेरेको फिर पेटीमें प्रवेश कर जाना। वाह!!! बलिहारि है, ऐसे ऋषि महात्मायोंकी कि जिनकी अतिदुष्कर तपस्यासें तुष्टमान होके पेटीमें बैठेको दो ऋचायों प्रदान करी, जिससें सप्तवध्रि निहाल हो गया। पाठकवर्गो! परमेश्वर विना ऐसा दयालु कौन होवे? कोइ भी नही इसवास्तेही तो पढितलोक ऋग्वेदको प्रधान वेद कहते हैं कि, जिसमें ऐसा २ अत्यद्भुत ज्ञान भरा है!!!

तथा ऋ० स० अष्टक ६ अध्याय ६ वर्ग १४ में लिखा है॥ अतीतकालमें अत्रिऋषिकी पुत्री अपालानामा ब्रह्मवादिनी किसीकारणसें त्वग्रोगसयुक्त थी, इसवास्तेही पतिने तिसको दुर्भगा जानके त्याग दीनी थी, सा अपाला अपने पिताके आश्रममें त्वग्दोषके दूर करनेवास्ते चिरकाल तक इन्द्रको आश्रित्य होके तप करती हुई सा कदाचित् इन्द्रको सोमवल्ली प्रियकर है, इसवास्ते मैं सोमवल्लीको इन्द्रकेतांई दुगी, ऐसी बुद्धि करके नदीके कांठेउपर जाती हुई, तहां स्नान करके, और रस्तेमें मिली सोमवल्लीको लेके, अपने घरको आती हुई रस्तेमेंही तिस सोमको अपाला खाने लगी, तिसके भक्षणकालमें दांतोंके घसनेसें शब्द उत्पन्न हुआ, तिस शब्दको पत्थरोंसें पीसते हुए सोमके समान ध्वनि जानकर तिस अवसरमेंही इन्द्र तहां आता हुआ आयके, तिस अपालाको कहता हुआ कि, क्या इहां पत्थरोंसें सोमवल्ली पीसते हैं? अपाला कहती है, अत्रिकी कन्या स्नानकेवास्ते आकर सोमवल्लीको देखके तिसका भक्षण करती है, तिसके भक्षण करनेकाही यह ध्वनि है, नतु पत्थरोंसें पीसते सोमका तैसें कहा हुआ इन्द्र, पीछे जाने लगा, जाते हुए इन्द्रको अपाला कहती है, किसवास्ते तू पीछे जाता है? तू तो सोमके पीनेवास्ते घरघरमें जाता है, तब तो इहां भी मेरी दाढोंकरके चावी हुई सोमवल्लीको तू पी (पानकर) और धानादिको भक्षण कर अपाला ऐसें इन्द्रको अनादर करती हुई फिर कहती है, इहां आए तुझको मैं इन्द्र नही जानती हु, तू मेरे घरमें आवे तो,

होनेसें त्रिकालमें हैही नही; एकशुद्ध ब्रह्मही था. तो फिर, इंद्रको उद्देश्यके तप काहेको करती थी? इंद्र भी तो मायाकी भ्रांतिरूपही था; जब अपालाने नदीऊपरसें सोम लेके चर्वण करा, तिसके दांतोंका शब्द सुनके इंद्रने जाना कि, पत्थरोंसें सोमके पीसनेका यह शब्द है; इंद्रको ऐसी भ्रांति हुई—क्या इंद्र महाराज स्वर्गके सुखोंको छोडके तिस जगे भटकता फिरता था? तथा इंद्रको तो ऋग्वेदादिमें परमेश्वरकाही स्वरूप लिखा है तो, क्या ऐसे ज्ञानवान् इंद्रको अपालाके दांतोंका शब्द पत्थरोंका शब्द मालुम हुआ? इसमें सिद्ध होता है कि, तुमारा माना वेदादिकोंका वक्ता ईश्वर भी ऐसाही ज्ञानवान् होगा.—तथा पत्थरोंसें जगत्में लोक सोमरसही पीसते हैं? अन्य नही? जो सोमही पीसनेका शब्द है, अन्यका नही. तहां यज्ञशाला भी नही थी कि, जिससें सोम पीसनेकाही निश्चय होवे.

तथा अपाला ब्राह्मणी कोइ ऊंटणी थी, वा राक्षसणी थी? कि जिसके दांतोंका शब्द पत्थरोंके शब्दसमान इंद्रको मालुम पडा! क्या इंद्र भिक्षाचरोंकीतरें घरघरमें सोमरस पीता फिरता था? और अपाला बडी नालायक थी? कि जिसने अपने मुखमें चर्वण करी अपने मुखकी लाला और श्लेष्मयुक्त जुगुप्सनीय मलीन ऐंठी चगली हुई सोमकी निमंत्रणा इंद्रको करी? इंद्र भी क्या तिसविना मरा जाता था? जिससें पूर्वोक्त चावी हुई लाला थूकयुक्त सोमवाले अपालाके मुखको अपने मुखसें चूसके सोमका सर्व रस पी गया!

वेदांतीसाहबः—तुम नही जानते, अपालाने भक्तिसें इंद्रको सोमकी आमंत्रणा करी, और इंद्रने भक्तिवश होके चगला हुआ भी सोमरस पी लीया, इसमें क्या दोष है?

उत्तरः—तुमारा कोइ भक्त, जो तुमको अत्यंत अच्छी लगती होवे ऐसी मिठाइ मुखमें चावके तुमको कहे कि, मेरे मुखसें मुख लगाके तुम यह मिठाइ चूसके पी लो, तो क्या तुम पी लोगे? नही. तो इंद्रने किसतरें चगल पी लीनी?

॥ अथतृतीया ॥

आ चन त्वांचिकित्सामोधि चन त्वा नेमसि ।
शनैरिव शनकैरिवेन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ३ ॥

॥ अथचतुर्थी ॥

कुविच्छकत्कुवित्करत्कुविन्नो वस्यसस्करत् ।
कुवित्पतिद्विषो यतीरिन्द्रेण संगमामहै ॥ ४ ॥

॥ अथपंचमी ॥

इमानि त्रीणि विष्टपा तानीन्द्र वि रोहय ।
शिरस्ततस्योर्वरामादिदं म उपोदरे ॥ ५ ॥

॥ अथषष्ठी ॥

असौ च या न उर्वरादिमां तन्व१ मम ।
अथो ततस्य यच्छिरः सर्वा ता रोमशा कृधि ॥ ६ ॥

॥ अथसप्तमी ॥

खे रथस्य खेनसः खे युगस्य शतक्रतो ।
अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्व्यकृणोः सूर्यत्वचम् ॥ ७ ॥

ऋ० स० अष्टक ६ । अ० ६ ॥

अब वाचकवर्गो ! विचार करो कि, यह कथन परमेश्वर सर्वज्ञका सिद्ध हो सक्ता है ? प्रथम तो इस सूक्तका अपाला स्त्रीही ऋषि है, और परमेश्वरने तिसके तपसें तुष्टमान होके तिसको यह अपूर्व ज्ञानरससें भरा सूक्त दीना । तिसमें पूर्वोक्त कथन होनेसें, वेद, अनादि अपौरुषेय कैसें सिद्ध हो सक्ता है ? और अपाला तो, ब्रह्मवादिनी थी, तिसको पिताके शिरकी टट्टरी, उपरक्षेत्र, गुह्यस्थानोपरि केश न होने, इनकी चिंता क्यों हुई, क्योंकि, तिसके ज्ञानमें तो ये तीनों वस्तुयों माया (भ्रांति) रूप

होनेसें त्रिकालमें हैही नही; एकशुद्ध ब्रह्महीं था. तो फिर, इंद्रको उद्देश्यके तप काहेको करती थी ? इंद्र भी तो मायाकी भ्रांतिरूपही था; जब अपालाने नदीऊपरसें सोम लेके चर्वण करा, तिसके दांतोंका शब्द सुनके इंद्रने जाना कि, पत्थरोंसें सोमके पीसनेका यह शब्द है; इंद्रको ऐसी भ्रांति हुई—क्या इंद्र महाराज स्वर्गके सुखोंको छोडके तिस जगे भटकता फिरता था ? तथा इंद्रको तो ऋग्वेदादिमें परमेश्वरकाही स्वरूप लिखा है तो, क्या ऐसे ज्ञानवान् इंद्रको अपालाके दांतोंका शब्द पत्थरोंका शब्द मालुम हुआ ? इसमें सिद्ध होता है कि, तुमारा माना वेदादिकोंका वक्ता ईश्वर भी ऐसाही ज्ञानवान् होगा.—तथा पत्थरोंसें जगत्‌में लोक सोमरसही पीसते हैं ? अन्य नही ? जो सोमही पीसनेका शब्द है, अन्यका नही. तहां यज्ञशाला भी नही थी कि, जिससें सोम पीसनेकाही निश्चय होवे.

तथा अपाला ब्राह्मणी कोइ ऊंटणी थी, वा राक्षसणी थी ? कि जिसके दांतोंका शब्द पत्थरोंके शब्दसमान इंद्रको मालुम पडा ! क्या इंद्र भिक्षाचरोंकीतरें घरघरमें सोमरस पीता फिरता था ? और अपाला बडी नालायक थी ? कि जिसने अपने मुखमें चर्वण करी अपने मुखकी लाला और श्लेष्मयुक्त जुगुप्सनीय मलीन ऐंठी चगली हुई सोमकी निमंत्रणा इंद्रको करी ? इंद्र भी क्या तिसविना मरा जाता था ? जिससें पूर्वोक्त चावी हुई लाला थूकयुक्त सोमवाले अपालाके मुखको अपने मुखसें चूसके सोमका सर्व रस पी गया !

वेदांतीसाहबः—तुम नही जानते, अपालाने भक्तिसें इंद्रको सोमकी आमंत्रणा करी, और इंद्रने भक्तिवश होके चगला हुआ भी सोमरस पी लीया, इसमें क्या दोष है ?

उत्तरः—तुमारा कोइ भक्त, जो तुमको अत्यंत अच्छी लगती होवे ऐसी मिठाइ मुखमें चावके तुमको कहे कि, मेरे मुखसें मुख लगाके तुम यह मिठाइ चूसके पी लो, तो क्या तुम पी लोगे ? नही. तो इंद्रने किसतरें चगल पी लीनी ?

वेदांती —इसका तात्पर्य तुम नही जानते, इसका तात्पर्य यह है कि, इन्द्र भी ब्रह्मज्ञानी था, और अपाला भी ब्रह्मज्ञानिनीथी, इसवास्ते तिन के ज्ञानमें ब्रह्मविना अन्य कुछ भी नही था, इसवास्तेही तिसके मुखसें मुख लगाके सोमरस इन्द्रने चूसा ब्रह्मसें ब्रह्म मिल गया, इसमें क्या दोष है ?

उत्तर —इसकालमें कितनेक वेदांती परस्त्रीयोंसें भोग करते हैं, तिन स्त्रीयोंके मुखकी लाला चाटते (चूसते) हैं, क्या वे भी ऐसा ब्रह्म एकत्व समझकरकेही करते होवेंगे ?

वेदांती —हा

उत्तर —तब तो माता, बहिन, बेटीके गमन करनेमें भी कुछ दोष नही होना चाहिए

वेदांती —है तो ऐसेंही, परतु जगत्व्यवहार उल्लघन करना न चाहिए

उत्तर —जबतक ब्रह्मज्ञानी जगत्व्यवहार मानेंगे, और माता, बहिन, बेटीको अगम्य जानेंगे, तबताइ तिनकी माया (भ्रांति) दूर नही होने सें तिनको ब्रह्मज्ञान नही होवेगा असल ब्रह्मज्ञानी तो ब्रह्माजी थे, जिनोंने सर्व जगत्को ब्रह्मरूप अपनाही स्वरूप जानकर अपनी पुत्रीसेंही सभोग करा, यही प्राय सर्ववेदांतियोंका तात्पर्य (सिद्धांत) है

और अपालाके पिताके शिरमें टहरी होनेसें अपालाके बापको क्या दु ख था ? क्या उसको जान चढना था ? और अपालाके गुह्यस्थानमें रोम नही थे सो, तिसको क्या दु ख था ? हां, जेकर इन्द्रसें यह मागती कि, मेरे शरीरका तू रोग दूर कर, सो तो वर मागा नही वो तो इन्द्रने आपही मुखकी चगल सोमरस पीके सतुष्ट होके तिसको यन्त्रमेंसें खेंचके छील छालके अच्छी (चगी) कर दीनी इस पूर्वोक्त श्रुतियोंके कथनमें सत्य कितना है, और झूठ कितना है, सो वाचकवर्ग आपही विचार लेवेंगे क्योंकि, मनुष्यकी चमडीसें भी क्या सयना (शल्यक), गोह, और किरले, उत्पन्न हो सक्ते हैं ? कदापि नही हो सक्ते हैं इसवास्ते वेद ईश्वरके कथन करे नही सिद्ध होते हैं, किंतु ब्राह्मणोंकी स्वकपोलकल्पना सिद्ध होती है इति ॥

तथा ऋ० सं० अष्टक ७ अध्याय ६ वर्गमें यम और यमीका संवाद है. विवस्वतके पुत्रपुत्री युगल प्रसूत हुए, जब वे यौवनवंत हुए तब यमी बहिन, अपने यमनामक भाइको देखके कामातुर होके तिसकेसाथ भोग करनेकी इच्छावंत हुई; और यमको कहने लगी कि, तूं मेरेसाथ मैथुन करके मुझे तृप्त कर. तब यमने कहा कि, बहिन और भाइका मैथुन (विषय) महापापका हेतु है; इसवास्ते मैं यह काम कदापि नही करुंगा. तब यमीने, यमको समझाने, और तिसकेसाथ संभोग (विषय) सेवनेकेवास्ते अनेक युक्तियां, और दृष्टांत दीए हैं. परंतु यमने तिसको उत्तर देके तिसका कहना स्वीकार नही करा. यह कथन चतुर्दश (१४) ऋचायोंमें है, और इस सूक्तके ऋषि भी यम और यमी है. यह सूक्त यमयमीऊपर संतुष्टमान होके परमेश्वरने तिनको प्रदान करा था! अब वाचकवर्गके वाचनेवास्ते नमूनेमात्र दो ऋचायों अर्थसहित लिख दिखाते हैं.

उशन्ति घा ते अमृता स एतदेकस्य चित्त्यजसं मर्त्यस्य।

नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्व१मा विविश्याः ॥३॥

ऋ० अ० ७। अ० ६॥

भाष्यानुसारभाषार्थः—पुनरपि फिर यमी यमप्रतें कहती है। (घा) ऐसा निपात अपि अर्थमें है, हे यम! (ते) प्रसिद्ध-वे-(अमृतासः) प्रजापतिआदि देवते भी (एतत्) ईदृशं-शास्त्रने जो अगम्य कही है (त्यजसं) त्यागीए हैं, परकेतांइ देइए हैं, ऐसी जो स्वबेटी बहिनादि स्त्रीजात तिनको (उशन्ति) कामयन्ते अर्थात् तिनकेसाथ पूर्वोक्त देवते भोग करनेकी इच्छा करते हैं। (एकस्याचित्) एकही सर्व जगत्का मुख्य प्रजापति ब्रह्मादि देवतायोंका भी अपनी बेटी भगिनीके साथ संबंध है। इसकारणसें (ते) तेरा (मनः) चित्त (अस्मे) मेरे (मनसि) चित्तमें (निधायि) स्थापन कर, अर्थात् जैसें मैं तेरेको भोगेच्छा करके वांछती हुं, तैसें तूं भी मुझको वांछ,—मेरेसें भोग करनेकी इच्छा कर.

अपिच एक अन्य बात यह है कि, (जन्यु) यह लुप्तोपमा है जन्युरिव जैसें जननेवाला पिता प्रजापति ब्रह्मा अपनी पुत्रीका भर्ता–पति होके अपनी बेटीके शरीरको सभोग करके विषय सेवन करता भया, तैसें तू भी (पति) मेरा पति होकर (तन्व) मेरे शरीरको (आविविश्या) सभोग करके 'आविश' योनिमें प्रजनन प्रक्षेप, उपगूह चुंबनादि करके मुझको अच्छीतरेसें भोग इत्यर्थ ॥ ३ ॥

यह सुन कर यम यमीको उत्तर देता है

न यत्पुरा चकृमा कद्ध नूनमृता वदन्तो अनृत रपेम ।
गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नो नाभिःपरम जामि तन्नौ ॥४॥

अ० ७ । अ० ६ । व० ६ ॥

भावार्थ –(पुरा) पहिले प्रजापतिने (यत्) जो अगम्य गमन करा था, अर्थात् अपनी पुत्रीसें जो सभोग करा था, सो अपरिमित प्रमाण रहित सामर्थ्यवत होनेसें करा था, तैसें हम (न चकृम) नही कर सक्ते हैं । हम (ऋता) सत्य बोलते हुए (अनृत) असत्य (कद्ध) कवी (नून) निश्चयकरके (रपेम) बोलते हैं ? कवी भी नही अर्थात् हम कयी भी अगम्य गमन नही करेंगे अपिच (अप्सु) अतरिक्षमें स्थित (गन्धर्व) किरणोंके, वा पानीके धारण करने वाला आदित्य, और (अप्या) अतरिक्षस्था सा प्रसिद्धा–आदित्य (सूर्य) की भार्या (स्त्री) सरण्यू, ये दोनों (नो) अपने दोनोंके (नाभि) उत्पत्तिस्थान अर्थात् मातापिता हे (तत्) तिस कारणसें (नो) अपने दोनोंका उत्कृष्ट (जामि) बांधवपणेका–भाइबहिनका सबध हे, तिसकारणसें पूर्वोक्त अगम्यगमनरूप अयोग्य कार्य, मे नही करुगा इत्यभिप्राय ॥ ४ ॥ *

* त्वष्टा नामक देवता, अपनी सरण्यूनामा पुत्रीका सूर्यकसाइ देता भया, तिनोंके संयोगसें यम और यमी उत्पन्न भए [illegible] अपने सदृश रूपके साथ पुत्रपुत्रीका स्थापन करके सरण्यु, घोडीका रूप करके उत्तरकुरुको चली गई । अब सूर्य तिस अश्वस्त्रीको सरण्यू मानके तिसकेसाथ विषय

समीक्षाः—इसमें हम यह कहना चाहते हैं कि, यमयमीने जब तप-करके यह सूक्त प्राप्त करा था, तब परमेश्वरने तुष्टमान होकर यह सूक्त दीना; और पूर्वोक्त कथन परमेश्वरने यमीके मुखसें करवाया कि, तूं अपने भाइ यमसें विषयसंभोग करनेकेवास्ते प्रार्थना कर कि, हे यम! तूं मेरेसाथ भोग कर. वाह!!! परमेश्वरकी लीला कि, जिसने भाइकेसाथ बहिनको मैथुनकी प्रार्थना करवाई! और यमसें ऋचाद्वाराही विषय सेवनकी नही करवाइ; क्या वाचकवर्गो! परमेश्वर ऐसे २ ही काम करता रहता है? और ऐसे २ कथनोंकी उत्तमतासेंही वेद परमेश्वरके रचे माने जाते हैं? और यही वेदका अपौरुषेयत्व अनादित्व है? जिनमें ऐसा २ कथन है.

और यमने जो कहा कि, " प्रजापति ब्रह्माजी अपरिमित सामर्थ्यवाले थे, इसवास्ते उनोंने अगम्य गमन करा अर्थात् अपनी पुत्रीसें विषय सेवन करा. " क्या अपरिमित सामर्थ्यवाले, ऐसे २ अनुचित काम करते हैं? जो सर्व जगत् और तत्ववेत्तायोंके निंदनीय होते हैं. जेकर प्रजापति अपरिमित सामर्थ्यवाले थे तो क्या तिनसें काम न जीता गया? कि, जिसको यमसरीखे वा साधारण जन भी जीतते हैं, और जीत शक्ते हैं. यदि कहो कि, यह प्रजापतिकी लीला है तो, क्या पुत्रीकेसाथ विषय सेवन करना यही लीला रह गई थी? अन्यलीला करनेका अवसर नहीं था? जिससें पुत्रीगमनरूप लीला कर दिखलाई? क्या ऐसी लीला करे विना प्रजापतिका सामर्थ्य, और यश जगत्में प्रगट नही होता था? जिससें ऐसी लीला करी? वाहजी वाह!!! जगत् सृजनहारे पितामहके कर्म!!! इन ब्राह्मणऋषियोंने बडे २ महात्मायोंको भी, अपने लेखसें दूषित करे हैं; इसवास्ते यह वेदोंकी रचना सर्व ब्राह्मणोंकी स्वकपोलकल्पना है.

सेवन करता भया, तिससें मनुनामा राजऋषि उत्पन्न भया,। तदपीछे यह सरण्यू नहीं है, ऐसा जानके सूर्य घोडा बनके तिस घोडीकेसाथ जाके विषय सेवन करता भया, तिन दोनोंके क्रिडा करते हुए वीर्य पृथिवीउपर पडा, तिसको गर्भकी इच्छा करके घोडीने सूंघा तिस घोडीसें दोनों अश्विनीकुमार उत्पन्न हुए। इति। ऋ०-स० अष्टक ७। अ०६। व० २२॥

तया–

नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु।
येऽअन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥६॥
या इषवो यातुधानानां ये वा वनस्पतीँ॥रनु।
ये वावटेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ७॥
ये वामी रोचने दिवो ये वा सूर्यस्य रश्मिषु।
येषामप्सु सदस्कृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ८॥

॥ यजुर्वेदाध्याय १३ ॥

भाषार्थ–'येकेच' जे केइ 'सर्पन्ति सर्पा लोका पृथिवीमनु गता प्राप्ता' तिनसर्पोको नमस्कार होवे, जे सर्प अंतरिक्ष लोकमें वर्तमान है, और जे सर्प 'दिवि' स्वर्गलोकमें वर्तमान है, तिन सर्पोकेताइ अर्थात् तीनों लोकोंके सर्पोको नमस्कार होवे, सर्पशब्दकरके लोक कहते हैं।६। जे दुःखों को धारण करे, ते यातुधाना–राक्षसादि, तिनोंकी जे जातिया, 'इषव' बाणरूप करके वर्ते हैं, अर्थात् नागपाशबाणरूप जे सर्पोकी जातियां हैं, तिनकेताइ, जे अन्य चंदनादि वनस्पतिको वेष्टन करके स्थित रहे हैं, तिन केताइ, और जे अन्य बिलोंमें वास करते हैं, तिन सर्पोकेताइ नमस्कार होवे।७। देवलोकके दीप्तस्थानमें जे हमारे अदृश्यमान सर्प हैं, जे सर्प सूर्यकी किरणोंमें वसते हैं, और जिन सर्पोका जलमें स्थान है, तिन सर्व सर्पोकेताइ नमस्कार होवे ॥ ८ ॥

समीक्षा—छट्टी श्रुतिका भाष्यमें सर्पशब्दकरके सर्वलोक ग्रहण करे हैं, परंतु यह अर्थ अगली दोनों ऋचायोंसें विरुद्ध है क्योंकि, अगली ऋचायोंमें सर्पशब्दकरके जे जगत्व्यवहारमें सर्प है, तिनकाही ग्रहण कीया है, नतु लोक इसवास्ते इन तीनों ऋचायोंमें सर्पोकोही नमस्कार करा है अब पाठकवर्गो! विचार करो कि, जब परमेश्वरने वेद रचे हैं तो, क्या परमेश्वर सर्पोको नमस्कार करता है? वा ब्रह्माजी सर्पोको नमस्कार

है? क्योंकि, जो ऋचायोंका कर्त्ता है, सोही सर्पोंको नमस्कार करता है. जेकर कहो कि, यजमान सर्पोंको नमस्कार करता है, तब तो ऋचायोंका भी कर्त्ता यजमानही सिद्ध होवेगा, नतु परमात्मा. जेकर परमात्माही यजमानसें सर्पोंको नमस्कार करवाता है, तब तो परमात्माही अज्ञानका पोषक, और तिर्यंचादिकोंको नमस्कार करानेसें असमंजसकारी है; इसवास्ते वेद परमात्माके रचे हुए नही हैं.

तथा यजुर्वेदके १९ मे अध्यायमें सौत्रामणी यज्ञका वर्णन है, जिससें भी यही सिद्ध होता है कि, वेद अनादि, वा ईश्वरकृत नही है; किंतु अज्ञानीयोंका अज्ञान विजृंभित है. सो जो कोइ पक्षपातरहित होकर वांचेगा, और शोचेगा, तो उसको मालुम हो जायगा. यद्यपि इस अध्यायमें विस्तारपूर्वक वर्णन है, और कुछ भी परमार्थ सिद्ध नही कर सक्ता है, तथापि भव्य जीवोंको वेदकी लीला जाननेकेवास्ते संक्षेपमात्रसें भावार्थमात्र लिखते हैं. ॥ श्रुति १२ में भाष्यकार महीधरजी लिखते हैं— अनुपहूत सोमके पीनेसें भ्रष्ट हुए इंद्रका वीर्य, नमुचिनामा असुर पीता भया, तब देवताओंनें इंद्रका भेषज्य करा, तिसमें अश्विनीकुमार, और सरस्वती, ये तीन भिषज अर्थात् वैद्य हुए. और सौत्रामणी औषध हुआ; इत्यादि—अब श्रुतिका अर्थ लिखते हैं—देवता सौत्रामणीनामा यज्ञ इंद्रके औषधरूप भेषजको विस्तारते हुए, तिससमयमें अश्विनीकुमार, और सरस्वती, ये तीन इंद्रकेतांइ सामर्थ्यके देनेवाले वैद्य होते भए.

श्रुति ३४—नमुचिने इंद्रका वीर्य पीया, तिसको मारनेसें रुधिरमिश्र सोम उत्पन्न हुआ, तिसको देवते पीते हुए.—असुरपुत्र नमुचिके पाससें अश्विनीकुमार सोम हरते भए, और इंद्रके वीर्यकेवास्ते सरस्वती, तिस अश्विनीकुमारके लाए हुए सोमको पीसती हुई. तिस अश्विनीकुमारके हरे हुए, और सरस्वतीके पीसे हुए, इस सोमको इहां यज्ञमें मैं भक्षण करूं. कैसा है सोम? रुधिरकरकेरहित रसवाला, और परमैश्वर्य देनेवाला है.

श्रुति ३५—इन्द्र सुरा लगा हुआ सोमका अंश, कर्मोंकरके शुद्ध करके पीता हुआ —इस यज्ञमें प्राय सुरा (मदिरा) ही की मुख्यता होती है

३६—पिता, पितामह, प्रपितामहोंको नमस्कार, और विनती है। पितृभ्य स्वधायिभ्य स्वधानम इत्यादि—

३७—पुनन्तु मा पितर —हे पितरो! मैंनु (मुझको) शुद्ध करो इत्यादि—

३८—हे अग्ने! तू हमारेवास्ते व्रीहिआदि धान्य, और दधिआदि दे, जीवनेका हेतु होनेसें, और हे अग्ने! कुत्तेसदृश दुर्जनोंका नाश कर इत्यादि—

३९—हे देवानुगामीजन! हे बुद्धे! (बुद्धि!) हे विश्व जगत्! हे अग्ने! तुम मुझको पवित्र करो—

४०—४१—अग्निकी प्रार्थना—पवित्रेण पुनीहि मा इत्यादि—

४२—वायुकी प्रार्थना—पवमान सो अद्य न इत्यादि—

४३—सूर्यकी प्रार्थना—उभाभ्या देवसवितरित्यादि—

४४—वैश्वदेवीकी सुराकुमीकी उपमाद्वारा स्तुति—वैश्वदेवी पुनती इत्यादि—

४५—४६—पित्रोंको और गोत्रियोंको प्रार्थना—

४७—मरनेवाले प्राणियोंके दो मार्ग, मैं सुनता हुआ, एक देवताओंका मार्ग, और दूसरा पितृमार्ग (पितरोंका मार्ग)—द्वे सृतीऽअशृणवमित्यादि—

४८—हवि और अग्निकी प्रार्थना—इद हवि प्रजननं मेऽअस्तु इत्यादि—

४९—५०—५१—पितरोंको प्रार्थना—इस लोकमें स्थित पितरो! तुम उर्द्धलोकमें जावो—परलोकमें स्थित पितरो तिस स्थानसें भी परले स्थानमें जावो—अंगिरसके वहुते अपत्य (संतान) अथर्वणमुनिके संतान, भृगुके अपत्य, ये जो हमारे पितर वे हमको सुबुद्धिवाले करो—वसिष्ठके अपत्य जो हमारे पूर्वपितर, जो कि देवताओंको सोम प्राप्त करते हुए उन पितरोंकेसाथ प्रीयमाण हुआ थका यम, हवियोंको भक्षण करो—उदीरता मवरे—अंगिरसो न पितर —ये नः पूर्वे पितरः इत्यादि—

५३–हे सोम! हमारे धीर पूर्वज पितरहि जिस कारणसें तेरेवास्ते यज्ञादि करते भए, इस कारणसें मैं तेरी प्रार्थना करता हूं कि, जे यज्ञके उपद्रव करनेहारे हैं, उनकों तूं दूर कर. इत्यादि–

५६–मैं पितरोंको जानता हुआ.

५७–ते पितर इस यज्ञमें आओ, हमारे वचन सुनो, सुनके पुत्रोंको कहनेयोग्य जो होवे, सो कहो. तथा ते पितर, हमारी रक्षा (पालना) करो.

५८–हमारे पितर इस यज्ञमें देवयानोंकरके आओ.

५९–हे पितरः! हम पुरुषभावकरके चलचित्तवाले होनेकरके तुम्हारा अपराध करते हैं तो भी तुम हमारी हिंसा मत करो.

६०–हे आदित्यलोकमें रहनेवाले पितरः! हवि देनेवाले मनुष्यकेतांइ तुम धन देवो. तथा हे पितरः! पुत्रोंकेतांइ, यजमानोंकेतांइ, अभीष्ट धन देवो. क्योंकि, पितरोंके यजमान पुत्रही होते हैं. हे पितरः! तुम इस हमारे यज्ञमें रस स्थापन करो.

६७–जे पितर इस लोकमें हैं, जे इस लोकमें नही हैं, जिन पितरोंको हम जानते हैं, और जिन पितरोंको हम नही जानते हैं, हे जातवेदः–अग्नि! ते पितर जितने हैं, तिन सर्वको तूं जानता है. इत्यादि.

६८–जे पितर पूर्वे स्वर्गको गए, जे पितर कृतकृत्य होकर ब्रह्मलोकको प्राप्त हुए, जे पितर अग्निमें बैठे हुए हैं, और जे पितर यजमानरूप प्रजामें बैठे हुए हैं, तिन चारों प्रकारके पितरोंकेतांइ आजादिन यह यज्ञनिमित्त अन्न होवे.

८१ सें ९२ श्रुतिपर्यंत—आश्विनीकुमार, और सरस्वती इन तीनोंने जिन जिन वस्तुओंसें इंद्रका रूप बनाया तिनका वर्णन है–यथा–शष्पविरूढव्रीहि (धान्यविशेष) करके इंद्रके रोम बनाए, विरूढयवोंकरके त्वक्–चमडी बनाई, लाजाका मांस बनाया, मासर शष्पादिचूर्ण चरुनिःस्रावोंकरके हाड बनाए, मदिराका लहु बनाया, इंद्रका शरीर रंगनेवास्ते; इसीवास्ते वेदोंमें इंद्रका नाम रोहित लिखा है. दूधसें इंद्रका वीर्य बनाया,

मदिरासें मूत्र बनाया, तथा आमाशयगत अन्न ऊवध्य, पक्वाशयगत अन्न सव्य, और नाडीगत वात, ये भी मदिरासें बनाए पुरोडाश देवताके हृदय करके इन्द्रका हृदय उत्पन्न करा, सविता पुरोडाशकरके इन्द्रका सत्य उत्पन्न करा, वरुण इन्द्रकी चिकित्सा करता हुआ, यकृत् कालखंड और गलनाडिका उत्पन्न करता हुआ, वायव्यसामिकौर्द्धपात्रोंकरके हृदयके दोनों पासोंके हाड और पित्त बनाए, मधु सिंचन करती स्थालिया (हाडीया) इन्द्रकी आन्त्रे (नशा) बनी, पात्र गुदाके स्थान हुए, धेनु गुदा हुई, श्येनका पत्र प्लीहा हृदयके वामेपासे रहनेवाला शिथिल मांसपिंड हुआ, शचीयांकरके जननीस्थानीय (मातासदृशी) आसदी, और नाभि तथा उदर हुए सुराधानकुंभने (शचीयों) कर्मोंकरके स्थूल आंत्रा (नशा) उत्पन्न करी, सतपात्रविशेष इन्द्रका मुख, और शिर हुआ पवित्र जिव्हा हुई अश्वि नीकुमार और सरस्वती मुखमें हुए, चप्य पायु (गुदा) इन्द्रिय हुआ, बाल सुरा छाणनेका वस्त्र, इन्द्रका वैद्य गुदा और वीर्यके वेगवाला लिंग हुआ, अश्वियाकरके इन्द्रके चक्षु, ग्रह आश्विदेवत्याकरके चक्षुओंका अन श्वरपणा, छाग (बकरा) रूप पक्व हविकरके चक्षुसनधि तेज, गोधूम (गेंहू) करके नेत्रके रोम, वेराकरके चक्षुनिर्विष्ट लोम (रोम) और नेत्र गत श्वेत और कृष्णरूप अश्विनीकुमार करते भये अवि और मेष ये दोनों वीर्यकेवास्ते इन्द्रके नाकमें स्थित हुए, ग्रह सारस्वतोंकरके प्राणवा युका अनश्वर रस्ता करा, सरस्वतीने यवके अंकुरोंकरके इन्द्रका व्यानवा यु करा, वेरोंसें नाशिकाके रोम करे बलकेवास्ते ऋषभ इन्द्रका रूप कर ता भया, ग्रह ऐन्द्रोंने भूत भविष्यत् वर्तमान शब्दग्राहि श्रोत्रेंद्रिय (कर्ण) स्थापित करे, यव और बर्हि भ्रुवोंके रोम हुए, और बेर मुखसे मधुतुल्य लाला श्लेष्मादि हुए,–वृकके रोमसें शरीरके ऊपरके और गुह्यस्थानके रोम हुए, व्याघ्रके रोमसें मुखके ऊपरके दाढीमूछके रोम हुए, तथा यश केवास्ते शिरके ऊपर केश, शोभाकेवास्ते शिखा–चोटी, कांति, और इन्द्रिया, ये सर्व सिंहके लोम (रोम) सें बने–इत्यादि–

९३–अश्विनीकुमार आत्माके अवयवोंको जोडते हुए, तिनको सरस्वती अंगोंकरके धारण करती भई इत्यादि–

९४–सरस्वती अश्विनीकुमारकी स्त्री होके, इंद्ररूप सुंदर गर्भको धारण करती है.

९५–अश्विनीकुमार और सरस्वतीने वीर्यवत्, पशुओंके संबंधि हविष् लेके, तथा मदिरा, दूध और मधुको लेके इंद्रकेवास्ते दूध स्रावित करते हुए. तथा मदिरा और दूधसें अमृतरूपवाले, और ऐश्वर्य देनेवाले सोमको दोहन करते भए. ऐसें जिन सरस्वति और अश्विनीकुमारोंने नाना द्रव्योंसें नाना रस ग्रहण करके इंद्रकेवास्ते उपकार करा, तिन सौत्रामणीके *द्रष्टाओंकेतांइ नमस्कार होवे–इति ॥

पूर्वोक्त सर्व वृत्तांत महीधरकृत वेददीपकभाष्यके अनुसार लिखा है. अब वाचकवर्गको विचार करना चाहिये कि, इसमें ईश्वरप्रणीत तत्त्वज्ञान कौनसा है? यह तो निःकेवल युक्तिप्रमाणबाधित अप्रमाणिक अज्ञानीयोंकी स्वकपोलकल्पना है. तथा इन श्रुतियोंको देखके, डा० मोक्ष मूलरका कहना–वेदोंका कथन ऐसा है, जैसा कि अज्ञानीयोंके मुखसें अकस्मात् वचन निकले होवे–सत्य २ प्रतीत होता है.

तथा—

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ॥
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥ १४ ॥
मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः ॥
मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ॥ १५ ॥

यजुर्वेदाध्याय ३२ ॥

इन श्रुतियोंका भावार्थ यह है कि–हे अग्ने! देवसमूह, और पितृगण (पितर) जिस बुद्धिकी उपासना (पूजा) करते हैं, तिस बुद्धिकरके आज मुझकों बुद्धिवाला कर; अर्थात् देवपितृमान्य बुद्धि हमारी भी होवे.। वरुण, अग्नि, प्रजापति, इंद्र, वायु और धाता, ये मुझे बुद्धि देवे।

* सौत्रामणी, यज्ञविशेष है, जिसमें ब्राह्मणोंको भी सुरा (मदिरा) पानकी आज्ञा लिखी है–'सौत्रामण्यां सुरात्' पिवेइति श्रुति –॥

इत्यादि–अब वाचकवर्गको विचारना चाहिये कि, वेद ईश्वरोक्त कैसें सिद्ध हो सक्ते हैं? क्या ईश्वर बुद्धिहीन था, और अग्निवरुणादि बुद्धि सहित थे? जो उनोंसें बुद्धिकी याचना करे! इससें सिद्ध होता है कि, यह बात ईश्वरने नही कही, किंतु किसी मनुष्यने कही है, जो बुद्धिसें हीन था बुद्धिकेवास्ते अग्निवरुणादिकी प्रार्थना करता है यदि कहो ईश्वरने अपनेवास्ते नही कही, किंतु श्रुतिद्वारा मनुष्योंको यह शिक्षा करता है कि, तुम वरुणादिकोंकेपास बुद्धिकेवास्ते प्रार्थना करो तो वैसा वेदकी श्रुतिका पाठ सुनाना चाहिये कि, जहां ईश्वरने कहा हो कि, हे मनुष्यो! में ईश्वर तुमको शिक्षा करता हू कि, तुम वरुणादिकोंसें बुद्धि मागो। तथा इस कथनमें एक और भी शका उत्पन्न होवे है कि, ईश्वर सर्वज्ञ, अग्नि वायु आदि जडरूप पदार्थोंसें क्यों प्रार्थना करवावे? इसीवास्ते वेद सर्वज्ञोक्त नही है, किंतु अज्ञानीयोंका अज्ञानविजृंभित है

तथा यजुर्वेद अध्याय ४० में जो लिखा है, तिससें नि सदेह सिद्ध होता है कि, वेद ईश्वरके रचे नही हैं

अन्यदेवाहु संम्भवादन्यांदहुरसंभवात् ॥
इतिं शुश्रुम धीरांणा ये नस्तद्विंचचक्षिरे॥१०॥

यजु० अ० ४० ॥

तृतीयपादभाष्यम् —"इत्येवविध धीराणा विदुषा वच शुश्रुम वय श्रुतवन्त ये धीरा नोऽस्माक तत्पूर्वोक्त सम्भूत्यसम्भूत्युपासनाफल विचचक्षिरे व्याख्यातवन्त"॥

भाषार्थ —ऐसें पूर्वोक्तविध धीर पडितोंका वचन हम सुनते हुए, जे धीर पडित हमको तत् पूर्वोक्त सभूति असभूति उपासनाका फल कथन करते हुए –क्या वेद रचनेवाले ईश्वर कहते हैं? कि, हमने धीर पडितोंसें ऐसे दोप्रकार उपासनाका फल सुना है, जिनोंने हमको पूर्वोक्त उपासनायोंका स्वरूप कहा है। क्या ईश्वरोंने अन्य बहुत ईश्वरोंसें सुना है? तब तो, वेद कहनेवाले बहुत ईश्वर प्रथम अपठित सिद्ध होवेंगे,

ऐसे वेद रचनेवाले बहुत अपाठित ईश्वर बहुत ईश्वरोंके छात्र सिद्ध होवेंगे.। ऐसाही कथन १३ मंत्रमें है; इससें यही सिद्ध होता है कि, वेदरचना ईश्वरकृत नही है, किंतु ब्राह्मण और ऋषियोंकी स्वकपोलकल्पना है. इति ॥

तथा तैत्तिरीयब्राह्मणमें ऐसे लिखा है.—

प्रजापतिः सोमं राजानमसृजत। तं त्रयो
वेदा अन्वसृज्यन्त । तान् हस्तेऽकुरुत ।

इत्यादि—तैत्तिरीयब्राह्मणे २ अष्टके ३ अध्याये १० अनुवाके ॥

भाषार्थः—प्रजापति—ब्रह्मा, सोमराजाको उत्पन्न करके पीछे तीन वेदोंको उत्पन्न करते भए; सो सोमराजा, तिन तीनों वेदोंको अपने हाथकी मुट्ठीमें छिपा लेता भया.—इत्यादि—क्या जब ब्रह्माजीने वेद उत्पन्न करे थे, तबही किसी ताडपत्रादिउपर लिखे गये थे ? नही. तो ब्रह्माजीने तो वेद मुखसे उच्चारे होवेंगे; जब तो वेद जो ज्ञानरूप मानीये, तब तो वेद ब्रह्मात्माका ज्ञान होनेसें सोमराजाने अपने हाथकी मुट्ठीमें वेदोंको कैसें छिपा लीया ? जेकर शब्दरूप कहो, तब भी शब्द मुट्ठीमें कैसें आ गया ? जेकर लिखितपत्रमय वेद मानोंगे, तब भी इतना बडा पुस्तक मुट्ठीमें कैसे समा सक्ता है ? इसवास्तेही वेदके सर्वरचनेवाले सर्वज्ञ नही सिद्ध होते हैं. विशेष वेदोंका पोल और हिंसकपणा देखना होवे तो, अस्मत्प्रणीत अज्ञानतिमिरभास्करसें देख लेना; पढनेकी शक्ति होवे तो, वेदभाष्य, सायणाचार्यादिका करा पढके देख लेना; परंतु दयानंदसरस्वतीजीका करा भाष्य कदापि सत्य नही मानना. क्योंकि, दयानंदसरस्वतीजीने जो वेदभाष्यभूमिका, सत्यार्थप्रकाश, यजुर्वेदभाष्य, ऋग्वेदभाष्यादिमें जे अर्थ वेदकी श्रुतियोंके करे हैं, वे सर्व प्रायः प्राचीनवेदमत और वेदभाष्यसें विरुद्ध है. यद्यपि मीमांसावार्त्तिककार कुमारिलभट्टने, तथा शंकरस्वामीने, सायणाचार्यने, महिधरादिकोंने कितनीक वेदकी श्रुतियोंके अर्थ अपने मतानुसार उलट पुलट करे हैं; तो भी दयानंदसरस्वतीजीने जितने

गप्पाष्टकरूप अर्थ श्रुतियोंके करे हैं, तेसे अर्थ आजतक प्राय किसी भी मतवालेने नही करे हैं

पूर्वपक्ष —दयानदसरस्वतीजीके अर्थ, वा प्राचीन वेदभाष्यकारोंके अर्थ, वा वेदग्रथ, जैनी प्रमाणभूत नही मानते हैं क्योंकि, जैनमतवाले तो वेदोंकोही हिंसकशास्त्र और अज्ञोंकी कल्पनारूप मानते हैं तो दयानद सरस्वतीजीने गप्पाष्टकरूप अर्थ लिखे हैं, इसमें आपको क्या दु ख है ? यदि गर्दभ (गधा) किसीके द्राक्षामडपको खावें तो, रस्ते चलनेवाले माध्यस्थ पुरुपको क्या दु ख है ?

उत्तरपक्ष —दु ख तो नही, परतु यह काम अयोग्य है, इसवास्ते माध्यस्थके मनमें भी किंचिन्मात्र पीडा होती है तैसेंही दयानद सरस्वतीजीने प्राचीन चलते हुए वेदार्थोंको भ्रष्ट करे हैं, तिनको देखके माध्यस्थ पुरुषोंको भी दयानदसरस्वतीजीकी बालक्रीडा देखके मनमें दया आती है कि, इस विचारेके कैसा मिथ्यात्वमोहनीय कर्मका दृढ उदय हुआ है कि, जिससें तिसने कैसा अज्ञानरूप नाटक रचा है ! ! ! और तिसको देखके, कितनेही जीव मोहित होके गाढ मिथ्यात्वके वश होगये हैं दयानदसरस्वतीजी तो, अज्ञानरूप नाटक रचके चले गए, परतु तिनके मतवालोंकी मट्टी खराब, सनातनधर्मावेवाले कर रहे हैं, तिसका दयानदसरस्वतीजीको तो दु ख नही, परतु पडित भीमसेनादिके गलेमें उलूयोंकी माला पडी है, सो देखिए कैसें निकालते हैं ! !

तथा दयानदीयोंको मृषा बोलना तो बहुतही प्रिय है, जैसें सवत् १९५१ मेंही इलाहबादका पायोनीयर पत्रमें बडीभारी गप्प छप चाइ है—एक दयानदसरस्वतीजीकी विथा पढनेवालेने छपवाया है कि, ऋग्वेदका भाष्यकार सायणाचार्य तो जैनमती था, तिसने तो वेदोंके सबे अर्थ, तथा वेदोंके नाश करनेवास्ते जानवूझके वेदोंके अर्थ विपर्यय लिखे हैं, इसवास्ते तिसका करा भाष्य हमको प्रमाण नही है—अब वाचकवर्गो! तुम विचार करो कि, दयानदीयोंके विना ऐसी अनघड गप्प कोइ मार सक्ता है ? दयानदसरस्वतीजीके रचे पुस्तकोंके, वाचनेका यही रहस्य है

कि, जो मनमें आवे सोही गप्प ठोक देनी—हां दयानंदसरस्वतीजीने मृषा बोलने और लिखनेमें किंचित् न्यूनता नही रक्खी है तो, तिनके शिष्य गप्पें मारे और लिखे, लिखावें, इसमें क्या आश्चर्य है? क्योंकि गुरुका ज्ञान जैसा होता है, तिनके शिष्योंका भी प्रायः तैसाही ज्ञान होता है. क्या जैनमती वा सनातनवेदधर्मी, हजारों पंडितोंमेंसें कोइ भी कह सक्ता वा मान सक्ता है? कि, सायणमाधवाचार्य जैनमती था. क्योंकि, तिसके रचे भाष्य, शंकरविजय सर्वदर्शनसंग्रहादि ग्रंथोंके वांचनेसें स्पष्ट मालुम होता है कि, वो जैनमतसें विपरीतमतवाला था; बलकि जैनमतके खंडन करनेमें तत्पर था.

यद्यपि उनोंनें वेदभाष्यमें अपने मतानुसार श्रुतियोंके अर्थ, और कितनेक अटकलपञ्चुके अर्थ, और कितनेक यथार्थ अर्थ लिखे हैं, तो भी सायणमाधवकी विद्वत्ता आगे दयानंदसरस्वतीकी पंडिताइ ऐसी है, जैसा मेरुआगे सरसव. जेकर सायणाचार्यका भाष्य न होता तो, हम देखते कि, दयानंदसरस्वतीजी कैसे भाष्य रचे लेते? यह तो तिनके भाष्यकोंही देखके दयानंदसरस्वतीजीने अपनी बुद्धिका अजीर्ण दिखाया है. जेकर सायणाचार्य जैनमती होता तो, सर्ववेदोंके अर्थ जैनमतानुयायी कर दिखलाता. क्योंकि, जैनमतके आचार्योंकी ऐसी विद्वत्ता थी कि, जो वे इच्छते तो सर्ववेदोंके अर्थ उलटाके जैनमतानुयायी कर देते; परंतु तिनको क्या आवश्यकता थी, जो हिंसकपुस्तकोंके अर्थ उलटाके जैनमतानुयायी करते? जैनीयोंके सर्वज्ञोंके कथन करे हुए ऐसे २ अद्भुत पुस्तक हैं कि, जिनके आगे वेदवेदांतके पुस्तक क्या वस्तु है? थोडासा जैनमतके आचार्योंकी बुद्धिका वैभव हम वाचकवर्गके जाननेवास्ते, अगले स्तंभमें लिखेंगे. इत्यलं बहुपल्लवितेन ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे, वेदानामीश्वरकर्तृत्वनिषेधवर्णनो नाम दशमः स्तम्भः ॥ १० ॥

॥ अथैकादशस्तम्भारम्भः ॥

दशमस्तंभमें वेद ईश्वरोक्त नही है, यह सिद्ध किया अथ एकादश स्तंभमें जैनाचार्योंका यत्किंचित् बुद्धिका वैभव दिखाते हैं, जो कि दशमस्तंभमें प्रतिज्ञात है

चिदात्मदर्शसंक्रान्त लोकालोकविहायसे ॥
परेवाग्वृत्तिरूपाय प्रणम्य परमात्मने ॥ १ ॥
गम्भीरार्थामपि श्रुत्वा किंचिद्गुरुमुखाम्बुजात् ॥
परेषामुपयोगाय गायत्रीं विवृणोम्यहम् ॥ २ ॥
इमा ह्यनादिनिधना ब्रह्मजीवानुवेदिन ॥
आमनन्ति परे मन्त्रं मननत्राणयोगत ॥३॥
गायन्त त्रायते यस्मात् गायत्रीति ततः स्मृता ॥
आचारसिद्धावप्यस्या इत्यन्वर्थ उदाहृत ॥ ४ ॥

ऋ० स० अष्टक ३ अध्याय ४ वर्ग १० में गायत्री है, और यजुर्वेदके ३६ मे अध्यायमें भी गायत्री है, ऋग्वेदमें–"तत्सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो न प्रचोदयात्"–यजुर्वेदमें–"भूर्भुव स्वस्तत्सवितुर्वरेण्य मित्यादि"–और शंकरभाष्यमें ओंकारपूर्वक है–तैत्तिरीयआरण्यकके २७ अनुवाकमें भी "ॐतत्सवितु" रित्यादि है तब तो–"ॐभूर्भुव स्वस्तत्स वितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो न प्रचोदयात्"–ऐसा गायत्री मंत्र हुआ अथ इस पूर्वोक्त गायत्रीमंत्रका सर्वदर्शनके अभिप्रायकरके व्याख्यान करते हैं, तिनमेंसें भी प्रथम जैनमतानुयायी अर्थात् जैनमतके अभिप्रायकरके अर्थ लिखते हैं

ॐ भूर्भुव स्वस्तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गोदे वस्यधीमहि ॥
धियोयो नः प्रचोदयात् ॥ १ ॥

ॐ। भूर्भुव स्वस्तत्। सवितु । वरेण्यम्। भर्गोदे। वसि। अधीमहि। धिय। अयो। न । प्रच । उदयात् ॥ १ ॥

भाषार्थः–(ॐम्) यह ॐकार पंच परमेष्ठीको कहता है, कैसें कहता है? सोही कहते हैं 'अर्हन्तः' इस पदका आद्य अक्षर अकार है, 'अशरीराः'–सिद्धाः–इस पदका आद्य अक्षर अकार है 'आचार्यः' इसका आद्य अक्षर आकार है, 'उपाध्यायाः' इसका आद्य अक्षर उकार है, 'मुनिः' इसका आद्य व्यंजन स्वररहित मकार है, इन सर्वका संधि होनेसें 'ॐ' सिद्ध होता है. * पदके एक देशमें भी पदका उपचार होनेसें ऐसी उक्ति है. सोही ॐकार असाधारण गुणसंपदाकरके विशेषण वाला कथन करिये हैं (भूर्भवःस्वस्तत्) 'भूः' यह अव्यय भूलोकका वाचक है 'भुवः' पाताललोकका, और 'स्वः' स्वर्गलोकका, तीनोंका द्वंद्व-समास होनेसें 'भूर्भुवःस्वः' अर्थात् अधोलोक, तिर्यग्लोक, और स्वर्ग-लोकरूप तीनों लोकोंको, 'तत्' 'तनोति–ज्ञानात्मना व्याप्नोति' ज्ञानात्मा-करके व्यापक होवे, सो 'भूर्भुवःस्वस्तत्' अर्हत् सिद्धोंको सर्व द्रव्यपर्याय-विषयिक केवलज्ञानात्माकरके तीनों लोकोंमें व्याप्त होना प्रसिद्धही है। ज्ञान और आत्माका 'स्यादभेदात्' कथंचित् अभेद होनेसें. शेष आचा-र्यादि तीनोंको भी, श्रद्धानविषयकरके सर्वव्यापित्व है, 'सव्वगयं सम्मत्त-मितिवचनात्' अथवा सामान्यरूप ज्ञानकरके सर्वव्यापित्व है। इसवास्ते-ही (सवितुः वरेण्यम्) सहस्त्ररश्मीयोंवाले सूर्यसें भी प्रधानतर है, सूर्यके उद्योतको देशविषयक होनेसें, और इन अर्हदादि पांचों संबंधि भावउद्योतको सर्वविषयक होनेसें.। आहुश्च पूज्याः। चंदाइच्चगहाणं पहा पयासेइ परिमियं खित्तं।केवलियनाणलंभो लोगालोगं पयासेइ॥१॥ +

ऐसें न कहना कि,आचार्यादि तीनोंको केवलज्ञानका लाभ नही है तो, तिनको व्यापित्व कैसें है? क्योंकि तिनको भी कैवलिकज्ञानोपलब्ध पदा-

---

* ॥ अरिहता असरीरा आयरिया उवज्झाया मुणिणो। पंचरकरनिप्पन्नो ॐकारो पचपरमेट्ठी॥१॥ इतिवचनात्॥

+ [चन्द्रादित्यग्रहाणां प्रभा प्रकाशयति परिमित क्षेत्रम्। कैवलिकज्ञानलाभो लोकालोक प्रकाशयति]

भावार्थः–चद्रसूर्यग्रहोंका प्रकाश, प्रमाणसंयुक्त क्षेत्रको प्रकाश करता है, और केवलज्ञान, लोकालोकको प्रकाश करता है, इसवास्ते सूर्यके प्रकाशसें केवलज्ञानका प्रकाश प्रधानतर है।इति॥

योंका सामान्यप्रकारें ज्ञानका सद्भाव होनेसें, क्षति नही है । (भर्गोदे) 'भर्ग' ईश्वर, 'उ' ब्रह्मा, 'द' विष्णु [दयते–पालयति जगदिति दो विष्णु] लोकमेंही, रजोगुणाश्रितब्रह्मा जगत्को उत्पन्न करता है, सत्त्वगुणाश्रित विष्णु स्थापन करता है, और तमोगुणाश्रित ईश्वर संहार करता है । भर्गश्च उश्च दश्चेति भर्गोद द्वन्द्वैकवद्भावात् तस्मिन् भर्गोदे अर्थात् ईश्वर ब्रह्मा विष्णुमध्ये । कैसें ईश्वरादि (वसि) वसतीति वस् तस्मिन् वसि, (अधीमहि) अस्यापत्य इ काम 'अ' विष्णु तिसका पुत्र 'इ' कामदेव तिसकी मह्यो-भूमय –भूमिया कामिन्य –स्त्रीया तिनको अंगीकार करके 'अधीमहि' स्त्रीयोंविषे तिष्ठमान अर्थात् स्त्रीयोंके वशीभूत जिनोंका आत्मा है । ईश्वरब्रह्माविष्णुविषे स्त्रीयोंके परवशपणा यह तो प्रसिद्धही है । पार्वतीके राजी रखनेवास्ते ईश्वर ताडवाडंबर करता है । ब्रह्माजीकेवास्ते वेदमें भी कहा है । "प्रजापति स्वां दुहितरमकामयदिति" ब्रह्मा अपनी पुत्रीके साथ भोग करनेकी इच्छा करता हुआ । और विष्णुका तो स्त्री वशपणा गोप्यादिवल्लभपणेके उपदर्शक तिस २ वचनोंके श्रवण करनेसें प्रतीत होता है । पठ्यते च ॥ राधा पुनातु जगदच्युतदत्तदृष्टिर्मंथानक विदधती दधिरिक्तभांडे । तस्या स्तनस्तवकलोलविलोचनालिर्देवोपि दो हनधिया वृषभं निरुंधन् ॥ १ ॥ इत्यादि ॥

भावार्थ –कामके वश होके कृष्णजीमें स्थापन करी है दृष्टि जिसने, इसीवास्ते अर्थात् काम परवश होनेसें दधिविना खाली भांडेमें जो मथानक धारण कर रही है, अर्थात् कामके वश हुई यह नही जानती है कि, में दधि रिडकती हूं कि खाली भांडा, ऐसे विशेषणोंवाली राधा, (लक्ष्मी) जगत्को पवित्र करो । अपिच तस्या –तिस राधाके स्तनस मूहऊपर चंचलनेत्रालि (नेत्रपंक्ति) स्थापन करी है जिसने, इसीवास्ते काम परवश होनेसें दोहनक्रियाकी बुद्धिकरके गौके बदले बेलको रोकता हुआ, ऐसे विशेषणोंवाला देव कृष्ण–विष्णु भी जगत्को पवित्र करो ॥१॥ इत्यादि ॥

अव शिष्यप्रति शिक्षा कहते हैं–(नः) हे नः नृशब्दके आमंत्रणविषे यह रूप सिद्ध है, तव हे नः हे पुरुष! वहुमानसहित आमंत्रित शिष्य प्रारंभित अर्थके श्रवण करनेसें उत्साहवान् होता है, इसवास्ते विशेषण कहते हैं.।(धियोयो) युकू मिश्रणे ऐसा धातु है, इस धातुको अन्य अमिश्रणार्थ भी कहते हैं, इसवास्ते 'यौति पृथग् भवति' जो पृथक् हो सो कहावे 'युः' छांदस होनेसें गुण नही हुआ, 'न युः अयुः' तिसका आमंत्रण हे अयो! हे अपृथक्! किससें? 'धियः' वुद्धिसें जिसवास्ते तूं वुद्धिसें अपृथग्भूत हैं अर्थात् वुद्धिमान् प्रेक्षा पूर्वकारी है, इसवास्ते तेरेको शिक्षा देते हैं.। प्रेक्षावान्के विना तो, रागी द्वेषी मूढ पूर्वव्युद्ग्राहितादिकोंको अयोग्य होनेसें, तिनमें जो उपदेश करना है, सो अंधकारमें नृत्य करनेसमान प्रयास है.। फिर वलिव्युत्पाद्यकाही विशेषणांतर कहते हैं, (प्रचः) 'प्रकृष्टं चरतीति प्रचः' प्रकृष्ट–अधिक जो चरे–प्रवर्ते सो प्रचः प्रकृष्टाचार मार्गानुसारिप्रवृत्तिरितियावत् प्रकृष्ट आचारवालेहीमें उपदेश दिया सफल होता है, और आचारपराङ्मुखोंको शास्त्रका सद्भाव प्रतिपादन (कथन) करना प्रत्युत (उलटा) प्रत्यपाय (कष्ट–पाप) का संभव होनेसें ठीक नही है.। किं–क्या शिक्षा देते हैं? सोही कहे हैं.। (उदयात्) उदयं प्राप्तं उदय प्राप्त अनन्यसामान्य गुणातिशय संपदाकरके प्रतिष्ठित आराध्यत्वकरके परमेष्ठिपंचकही है, इत्यर्थः ॥

यहां यह तात्पर्यार्थ है कि, ईश्वर ब्रह्मा विष्णु उपलक्षणसें कपिलसुगतादि देवतायोंके मध्यमें भो पुरुष! ज्ञानवन्! प्रकृष्टाचार! पूर्वे दिखलाए लेशमात्र गुणातिशयके योगसें आराध्यताकरके परमेष्ठिपंचकही प्रतिष्ठित है. इसवास्ते वेही आराधनेयोग्य हैं, वेही उपासना करनेयोग्य हैं, वेही शरणकरके अंगीकार करनेयोग्य हैं, तिनकी आज्ञारूप अमृतरसही आस्वादनीय है, पंचपरमेष्ठीसें अतिरिक्त अन्य कोइ आराधने योग्य न होनेसें. जेकर है, तो भी वे आराधनेयोग्य नही है. क्योंकि, तिनके दूषण (दोष) यहांही पहिले निर्णय करनेसें. जेकर दूषणोंवालोंको भी आराध्यता होवे, तब तो अतिप्रसंगदूषण होवे.। उक्तंच। "कामानुष-

कस्य रिपुप्रहारिण प्रपञ्चतोनुग्रहशापकारिण । सामान्यपुवर्गसमानधर्मिणो महत्वक्लृप्तौ सकलस्य तद्भवेत् ॥ १ ॥" भावार्थः । काममें रक्त, प्रपचसें शत्रुओंको प्रहार करनेवाला, अनुग्रह और शाप करनेवाला, ऐसें सामान्य पुरुषवर्गके सदृश कृत्यके करनेवालेको महत्वकी कल्पना करे हुए, सर्वप्राणियोंमें भी महत्वकी कल्पना होवेगी अर्थात् ब्रह्माका भी, विष्णु छलकरके शत्रुओंको मारनेवाला, और महादेव तुष्टमान रुष्टमान होने वाला, यदि इत्यादिकोंमें महत्वकी कल्पना होवे तो, तादृश सर्व प्राणियोंमें भी होनी चाहिए ॥ १ ॥ पुन यहा 'अधीमहि' और 'वसि' ये विशेषण तिनके रागके सूचकही नही है, किंतु साहचर्यसें द्वेष और मोह भी जान लेने, तिनके पास शस्त्रादिके सद्भावसें, तिनमें द्वेष सिद्ध होता है, और पूर्वापर व्याहत अर्थवाला आगम कहनेसें मोह अज्ञानका सद्भाव सिद्ध होता है ॥ यदुक्त ॥ "रागोङ्गनासगमनानुमेयो द्वेषो द्विपदारणहेतिगम्य । मोहः कुवृत्तागमदोषसाध्य" इत्यादि ॥ भावार्थ ॥ राग तो स्त्रीसगमनसें अर्थात् स्त्रीसें भोगविलासममतादिसें अनुमेय है, द्वेष वैरीयोंके मारनेवास्ते शस्त्रोंके रखनेसें अनुमेय है, और कुत्सित आचरण और पूर्वापरव्याहतिवाला शास्त्र कथन करनेसें मोह–अज्ञान अनुमेय है, इत्यादि ॥ आचार्यादिकोंके तो सर्वथा रागादि क्षय नही है, ऐसे मत कहना क्योंकि, तिनको भी आप्तके उपदेशसें रागादिके क्षयवास्तेही प्रवृत्त होनेसें, तथाविध रागादिके असद्भावसें, और तिस रागादिकका आगामि कालमें क्षय होनेसें भाविनिभूतवदुपचारात्–तिनको भी वीतरागताही हे यहा भावाचार्यादिकोंकरकेही अधिकार है, इसवास्ते सर्व समजस हे ॥ इत्यार्हताभिप्रायेण मत्रव्याख्या ॥ १ ॥

अथाक्षपादाभिप्रायेण व्याख्यायते तत्रादौ मन्त्र ॥

ॐ । भूर्भुव स्वस्तत्सवितुर्वरेण्य भर्गोदेव स्य धीमहिधियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १ ॥ २ ॥

ॐ । भूर्भुव स्वस्तत् । सवितु । वरेण्य । भर्ग । उदे । अव । स्य । धीम् । अहिधिय । अयो । न । प्रचोदया । अत् ॥ २ ॥

भाषार्थः—अथ अक्षपाद जे हैं, वे अपने महेश्वरदेवको नमस्कार करते हुए प्रार्थनापूर्वक ॐभूर्भुव इत्यादि उच्चारण करते हैं। (ॐ) ऐसा सर्व विद्यायोंका आद्य वीज है, सर्व आगमोंका उपनिषद्भूत है, संपूर्ण विघ्नविघातका हननेवाला है, और संपूर्ण दृष्टादृष्ट फल संकलपको कल्पद्रुम समान है, इसवास्ते इस प्रणिधानका आदिमें उपन्यास (स्थापन) करना परम मंगल है. नही इससें व्यतिरिक्त अन्य कोई वस्तु तत्त्व है. इति ॥ (भूर्भुवःस्वस्तत्) हे लोकत्रयव्यापिन्! अक्षपादोंके मतमें शिवही सर्वगत है। तथा (सावितुर्वरेण्यं) हे सूर्यसें प्रधानतर! सर्वज्ञ होनेसें 'वरेण्यं' इस स्थानपर हे वरेण्य! ऐसे जानना। अनुनासिक इतस्तु। 'अइउवर्णस्यांतेऽनुनासिकोनीदादेरिति' लक्षणवशात्। * इति। अव विशेष्य कहते हैं। (भर्ग) हे भर्ग ईश्वर! (उदे) उत्कृष्ट है 'इ' काम जिसके सो कहिए 'उदिः' तिसका आमंत्रण हे उदे अर्थात् हे उत्कृष्टकामिन्! अर्वाचीन अवस्थाकी अपेक्षाकरके यह विशेषण है। अव प्रार्थना कहते हैं। (अव—स्य) ये दोनों क्रियापद यथासंख्य उत्तरपद दोनोंके साथ जोडने, सोही दिखावे हैं 'अव' रक्ष—पालय—वर्द्धय। इतियावत्। पालन कर, रक्षाकर, वृद्धिकर, इत्यर्थः। किसकी। (धीम) धी वुद्धि ज्ञान तत्त्वाधिगम (तत्त्वका जानना) ये सर्व एकार्थिक है। धियः ईःश्रीः धीः बुद्धिकी जो लक्ष्मी सो कहिए धीः तां धीम्। अर्थात् वुद्धिकी लक्ष्मीकी वृद्धि कर। ज्ञानकी प्रार्थना ईश्वरसें करनी योग्यही है। 'ईश्वरात् ज्ञानमन्विच्छेदिति वचनात्' तथा 'स्य' षोंच् अंतकर्मणि! इस धातुका यह रूप है नाश कर। किसका (अहिधियः) सर्पकीतरें जे वुद्धियां क्रूरतादि जे परको अपकार करनेवाली, तिनोंका नाश कर। (नो) हमारी 'धीम्' 'अव' बुद्धिकी वृद्धि कर, और 'अहिधियः' 'स्य' क्रूरतादिबुद्धियोंका विनाश कर, इत्यर्थः। फिर विशेष कहते हैं। (यो) हे यो! मिश्रितसंवंध।। किसकेसाथ? सो कहे हैं. (प्रचोदया) चुदण् संचोदने ततश्चोदनं चोदः श्रृंगारभावसूचनं प्रकृष्टश्चोदो यस्याः सा प्रचोदा अर्थात् पार्वती तया सहेति वाक्यशेषः।

---

*आचार्यश्रीहेमचन्द्रानुस्मृते सिद्धहेमचंद्रनाम्नि शब्दानुशासने प्रथमाध्याये द्वितीये पादे ॥१-२-४१.

कस्य रिपुप्रहारिण प्रपञ्चतोनुग्रहशापकारिण । सामान्यपुवर्गसमानध र्मिणो महत्वक्लृप्तौ सकलस्य तत्ववेत् ॥ १ ॥" भावार्थ । काममें रक्त, प्रपचसें शत्रुओंको प्रहार करनेवाला, अनुग्रह और शाप करनेवाला, ऐसें सामान्य पुरुषवर्गके सदृश कृत्यके करनेवालेको महत्वकी कल्पना करे हुए, सर्वप्राणियोंमें भी महत्वकी कल्पना होवेगी अर्थात् ब्रह्माका भी, विष्णु छलकरके शत्रुओंको मारनेवाला, और महादेव तुष्टमान रुष्टमान होने वाला, यदि इत्यादिकोंमें महत्वकी कल्पना होवे तो, तादृश सर्व प्राणि योंमें भी होनी चाहिये ॥ १ ॥ पुन यहा 'अधीमहि' और 'वसि' ये विशे षण तिनके रागके सूचकही नही है, किंतु साहचर्यसें द्वेष और मोह भी जान लेने, तिनके पास शस्त्रादिके सद्भावसें, तिनमें द्वेष सिद्ध होता है, और पूर्वापर व्याहत अर्थवाला आगम कहनेसें मोह अज्ञानका सद्भाव सिद्ध होता है ॥ यदुक्त ॥ "रागोऽङ्गनासगमनानुमेयो द्वेपो द्विपद्दारणहे तिगम्य । मोहः कुवृत्तागमदोपसाध्य" इत्यादि ॥ भावार्थ ॥ राग तो स्त्रीसगमनसें अर्थात् स्त्रीसें भोगविलासममतादिसें अनुमेय है, द्वेष वैरी योंके मारनेवास्ते शस्त्रोंके रखनेसें अनुमेय है, और कुत्सित आचरण और पूर्वापरव्याहतिवाला शास्त्र कथन करनेसें मोह–अज्ञान अनुमेय है, इत्यादि ॥ आचार्यादिकोंके तो सर्वथा रागादि क्षय नही है, ऐसे मत कहना क्योंकि, तिनको भी आप्तके उपदेशसें रागादिके क्षयवास्तेही प्रवृत्त होनेसें, तथाविध रागादिके असद्भावसें, और तिस रागादि कका आगामि कालमें क्षय होनेसें भाविनिभूतवदुपचारात्–तिनको भी वीतरागताही है यहा भावाचार्यादिकोंकरकेही अधिकार है, इसवास्ते सर्व समजस है ॥ इत्यार्हताभिप्रायेण मन्त्रव्याख्या ॥ १ ॥

अथाक्षपादाभिप्रायेण व्याख्यायते तत्रादौ मन्त्र ॥

ॐ । भूर्भुव स्वस्तत्सवितुर्वरेण्य भर्गोदेव स्य धीमहिधियो
यो न प्रचोदयात् ॥ १ ॥ २ ॥

ॐ । भूर्भुय स्वस्तत् । सवितु । वरेण्य । भर्ग । उदे । अय । स्य । धीम् । अदिधिय । अयो । न । प्रचोदया । अत् ॥ २ ॥

भाषार्थः—अथ अक्षपाद जे हैं, वे अपने महेश्वरदेवको नमस्कार करते हुए प्रार्थनापूर्वक ॐभूर्भुव इत्यादि उच्चारण करते हैं। (ॐ) ऐसा सर्व विद्यायोंका आद्य बीज है, सर्व आगमोंका उपनिषद्भूत है, संपूण विघ्नविघातका हननेवाला है, और संपूर्ण दृष्टादृष्ट फल संकल्पको कल्पद्रुम समान है, इसवास्ते इस प्रणिधानका आदिमें उपन्यास (स्थापन) करना परम मंगल है. नही इससें व्यतिरिक्त अन्य कोई वस्तु तत्त्व है. इति ॥ (भूर्भुवःस्वस्तत्) हे लोकत्रयव्यापिन्! अक्षपादोंके मतमें शिवही सर्वगत है। तथा (सावितुर्वरेण्यं) हे सूर्यसें प्रधानतर! सर्वज्ञ होनेसें 'वरेण्यं' इस स्थानपर हे वरेण्य! ऐसे जानना। अनुनासिक इतस्तु। 'अइउवर्णस्यांतेऽनुनासिकोनीदादेरिति' लक्षणवशात्। * इति। अव विशेष्य कहते हैं। (भर्ग) हे भर्ग ईश्वर! (उदे) उत्कृष्ट है 'इ' काम जिसके सो कहिए 'उदिः' तिसका आमंत्रण हे उदे अर्थात् हे उत्कृष्टकामिन्! अर्वाचीन अवस्थाकी अपेक्षाकरके यह विशेषण है। अव प्रार्थना कहते हैं। (अव—स्य) ये दोनों क्रियापद यथासंख्य उत्तरपद दोनोंके साथ जोडने, सोही दिखावे हैं 'अव' रक्ष—पालय—वर्द्धय। इतियावत्। पालन कर, रक्षाकर, वृद्धिकर, इत्यर्थः। किसकी। (धीम्) धी बुद्धि ज्ञान तत्त्वाधिगम (तत्त्वका जानना) ये सर्व एकार्थिक है। धियः इःश्रीः धीः बुद्धिकी जो लक्ष्मी सो कहिए धीः तां धीम्। अर्थात् बुद्धिकी लक्ष्मीकी वृद्धि कर। ज्ञानकी प्रार्थना ईश्वरसें करनी योग्यही है। 'ईश्वरात् ज्ञानमन्विच्छेदिति वचनात्' तथा 'स्य' षोंच् अंतकर्मणि! इस धातुका यह रूप है नाश कर। किसका (अहिधियः) सर्पकीतरें जे बुद्धियां क्रूरतादि जे परको अपकार करनेवाली, तिनोंका नाश कर। (नो) हमारी 'धीम्' 'अव' बुद्धिकी वृद्धि कर, और 'अहिधियः' 'स्य' क्रूरतादिबुद्धियोंका विनाश कर, इत्यर्थः। फिर विशेष कहते हैं। (यो) हे यो! मिश्रितसंबंध!। किसकेसाथ? सो कहे हैं. (प्रचोदया) चुदण् संचोदने ततश्चोदनं चोदः शृंगारभावसूचनं प्रकृष्टश्चोदो यस्याः सा प्रचोदा अर्थात् पार्वती तया सहेति वाक्यशेषः।

*आचार्यश्रीहेमचन्द्रानुस्मृते सिद्धहेमचन्द्रनाम्नि शब्दानुशासने प्रथमाध्याये द्वितीये पादे ॥१-२-४१.

पार्वतीकेसाथ इत्यर्थः । अर्वाचीन अवस्थामें पार्वतीके पीन (कठन) पयोधर (स्तन) के ऊपर प्रणयी स्नेहवान् इत्यभिप्राय । और परमपद अवस्थाकी अपेक्षा तो 'प्रचोदया' पार्वतीके साथ 'यो' अमिश्रित ऐसें व्याख्यान करना । 'षडिंद्रियाणि षट् विषया षट् बुद्धयः सुख दुःख शरीर चेत्येकविंशतिप्रभेदभिन्नस्य दुःखस्यात्यतोच्छेदो मोक्ष इति नैयायिकवचन प्रामाण्यात्'। इंद्रिया ६ विषय ६ बुद्धिया ६ सुख १ दुःख १ और शरीर १ ये एकवीस (२१) प्रभेद भिन्न दुःखोंका जो अत्यंत उच्छेद (नाश) सो मोक्ष, ऐसे नैयायिकोंके वचनप्रमाणसें । तथा 'उदे' यह प्राचीनावस्थाका भी विशेषण जानना, और अर्थ ऐसें करना । 'उत्' यह तकारांत उपसर्ग प्राबल्य अर्थमें है, तब तो उत् प्राबल्य अतिशयकरके 'ए' कामादिशुद्धि करी है जिसने सो कहिए उदे तिसका आमंत्रण हे उदे ! अर्थात् हे कामादिशुद्धिकारक !। तथा (अत्) यह भी विशेषण है । अत्ति–भक्षयति जगदिति अत्। जो जगतको भक्षण करे उसको अत् कहिए, सृष्टिका संहार करनेवाला होनेसें यह विशेषण ईश्वरका सिद्ध है । उक्तंच अक्षपादमते देवः सृष्टिसंहारकृच्छिवः । विभुर्नित्यैकसर्वज्ञो नित्यबुद्धिसमाश्रितः ॥१॥ * इतिनैयायिकाभिप्रायेण मन्त्रव्याख्या॥२॥

अथ वैशेषिकके अभिप्रायकरके भी इसीतरें व्याख्या जाननी, तिनको भी शिवजीकोही देवकरके अंगीकार करनेसें परंतु इतना विशेष है कि वैशेषिकके मतमें परमपद अवस्थाका स्वरूप ऐसा माना है। बुद्धि १ सुख २ दुःख ३ इच्छा ४ द्वेष ५ प्रयत्न ६ धर्म ७ अधर्म ८ और संस्काररूप ९, नव विशेष गुणोंका अत्यंत उच्छेद होना मोक्ष है ।

---

* भावार्थ —ॐ हे तीन जगत्में व्यापिन् परमेश्वर ! हे सूर्यसें भी प्रधान ! हे भर्ग ईश्वर ! हे उद अर्वाचीनावस्थापेक्षया उमास्तनशायिन् कामशत्रो ! प्राचीनावस्थापेक्षासें हे अतिशयकरके कामादिकी शुद्धि करनेवाला ! हे पार्वतीकेसाथ संबंधवाला ! परम पदकी अपेक्षासें हे पार्वतीसें अभिभिन्न ! हे सृष्टिको भक्षण करनेवाला ! पूर्वोक्त विशेषणविशिष्ट हे भर्ग ईश्वर परमेश्वर ! तूं हमारी बुद्धिको दूर कर, और संसार करनेवाली बुद्धियोंका विनाश कर इति ॥

मंत्रश्चायं ॥

ॐ भूर्भुवःस्वस्तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेव स्य
धीमहिधियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १ ॥ ३ ॥

ॐ। भूर्भुवःस्वस्तत्। सवितुः। वरेण्यं। भर्ग। उदे। अव। स्य। धीम्। अहिधियः। यो। नः। प्रचोदया। अत् ॥ ३ ॥

व्याख्यापूर्ववत् ॥ इति वैशेषिकाभिप्रायेण मंत्रव्याख्या ॥ ३ ॥

अथ सांख्यमतवाले अपने कपिलदेवको नमस्कार करते हुए, यह कथन करते हैं ॥

मंत्रः ॥

ॐ भूर्भुवःस्वस्तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य
धीम हि धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ १ ॥ ४ ॥

ॐ। भूर्भुवःस्वस्तत्। सवितुः। वरेण्यं। भर्। गोदेवस्य। धीम। हि। धियः। यो। नः। प्रचोदय। अत् ॥ ४ ॥

व्याख्याः-(धीम) धीनाम वुद्धितत्त्वका है, तिसको मिमीते शब्दयति प्ररूपयतीति-कथन करे प्ररूपे सो 'धीमः' भगवान् कपिल इत्यर्थः तिसका आमंत्रण हे धीम! अर्थात् हे भगवन् कपिल! (ॐ भूर्भुवःस्वस्तत्) इसका अर्थ पूर्ववत् जान लेना।" अमर्त्तश्चेतनो भोगी नित्यः सर्वगतोक्रियः। अकर्त्ता निर्गुणः सूक्ष्म आत्मा कपिलदर्शने ॥ १ ॥" असूर्त्त, चेतन, भोगी, नित्य, सर्वव्यापक, अक्रिय, अकर्त्ता, निर्गुण, सूक्ष्म, कपिलमुनिके मतमें ऐसें लक्षणोंवाला आत्मा माना है।।१। इसवचनसें तीन लोकमें व्यापित्व सिद्ध है। (सवितुर्वरेण्यं) इसका अर्थ अक्षपादवत् जानना। अब कपिलकोही उपयोग संपदाकरके विशेष करते हैं। (भर्) डुभृंग्-क् पोषणे च बिभर्तीति भर् पोषकः पोषणकरनेवाला। किसका सो कहे हैं, (गोदेवस्य) गोशब्दकरके यहां खुर ककुद सास्ना लांगूल (पूंछ) विषाण (शृंग) आदि अवयवसंयुक्त पशु कहिए हैं, तिसकीतरें विधेयताकरके लखिये हैं, इसवास्ते गौकीतरें विधेयानि वश्यानि देवानि इंद्रियाणि वशीभूत हैं

इंद्रिया जिसके, सो गोदेव तिसका अर्थात् जितेंद्रियका। नही गोविधे यता कवियोंके रूढि नही है, अपितु है 'गोरिवेति विधेयतामित्यादि' लक्ष्यके देखनेसें 'धीम' इसका व्याख्यान प्रथम कर दिया है। (हि)। स्फुटार्थे है। (धियोयो) हे बुद्धितत्त्वसें पृथग्भूत! प्रकृतिपुरुषका विवेक पृथक्पणा देखनेसें, प्रकृतिके निवृत्त (दूर) हुआ पुरुषका जो अपने स्वरूपमें अवस्थान (रहना) है सो मोक्ष है इसवचनसें। प्रकृतिके वियोगसें बुद्धिआदिकोंका भी विगम (नाश) होनेसें क्योंकि, कारणके अभावसें कार्यका भी अभाव होता है। 'धिय' इस पचम्यत पदको पुनरावृत्तिकरके 'प्रचोदय' इसपदके साथ संबध करिये है, तब तो 'धियः' बुद्धितत्त्वसें (न) अस्मानपि हमको भी (प्रचोदय) प्रेरय व्यपनय–दूर कर इत्यर्थ। अथवा 'धिय' षष्ठयतपद जानना, और षष्ठीविभक्ति जो है, सो 'कर्मणि शेषजा' है। यथा माषाणामश्नीयात्। तथा। न केवल यो महता विभापते। तब तो 'न' हमारी भी 'धिय' प्रकृतिहेतुक बुद्धिको दूर कर। आप मुक्त हो, हमको भी मुक्त करो इत्यर्थ। (अत्) अद् ऐसा दकारात अव्यय आश्चर्यार्थमें है, तब तो 'अद्' आश्चर्यरूप, तिसके कारणमें अनिवृत्त होनेसें। तिसका 'अद्शब्दका' आमत्रण है अद्! 'विरामे वा' इस सूत्रकरके दकारका तकार हुआ, तब हे अत्! हे आश्चर्यरूप! इत्यर्थ ॥ ॰ इति सांख्याभिप्रायतो मन्त्रव्याख्या ॥ ४ ॥

अथवा वैष्णव अपने देव हरिको नमस्कार करते हुए, यह कहते हैं ॥ मंत्र ॥

ॐ भूर्भुव स्वस्तत्सवितुर्वरेण्य भर्गोदेव स्य
धीमहि धियो योन प्रचोदयात् ॥ १ ॥ ५ ॥

ॐ। भूर्भुव स्वस्तत्। 'अथवा' भू। भुव। स्वस्तत्। सवितु। वरेण्य। भर्गोदेव। स्य। धीमहि। धिय। यो। अ। नः। प्रचोदयात् ॥ ५ ॥

॰ भावार्थ – हे सम्यग्गमें व्यापिन! हे सूर्यमें मगान! हे जितेंद्रियता धारक! हे बुद्धितत्त्व को कम्पन करनेवाला! हे बुद्धितत्त्वमें पृथग्भूत! हे आश्चर्यरूप शक्ति भगवन! तू हमारी बुद्धितत्त्वमें दूर कर, तू आप मुक्त हुआ है, और हमको भी मुक्त कर इति ॥

व्याख्याः-(ॐ) इसका अर्थ प्राग्वत् जानना (भूर्भुवःस्वस्तत्) हे लोकत्रयव्यापिन् विष्णो कृष्ण! "जले विष्णुः स्थले विष्णुर्विष्णुः पर्वतमस्तके। जीवमालाकुले विष्णुस्तस्माद्विष्णुमयं जगत्॥ १॥" इस वचनसें। अथवा (भूः) भूःनाम आश्रयका है, किसका आश्रय? (भुवः) पृथिव्याः अर्थात् हे पृथिवीका आश्रय!। (स्वस्तत्) 'स्वर्गे परे च लोके स्वः' इति अमरकोशके वचनसें 'स्वः' परलोकको तनोति इति स्वस्तत् परलोकहेतु इत्यर्थः। गातिमिच्छेज्जनार्दनात्' इस वचनसें.।यहां 'भव' इस क्रियाका अध्याहार करना। तथा (नः) इस अगले पदका यहां संबंध करनेसें हे पृथिवीका आश्रय! हे परलोकका हेतुभूत! 'नः' हम आराधकोंको परलोकके सुखोंकी प्राप्तिवाला हो. इत्यर्थः। तथा (सवितुर्वरेण्यं) सवितुर्जनकात्-पितासें भी, वरेण्यं-प्रधानतर! प्रजाको आगामि सुखोंकरके पालनेसें पितासें अधिकतर प्रेमवान्! इत्यर्थः। अनुनासिक प्राग्वत् जानना। तथा (भर्गोदेव) भर्गश्च उश्च तयोरपि देवः महादेव और ब्रह्माका भी देव! पूज्य होनेसें.। बाणाहवादिमें पार्वतीके पति महादेवका पराजय श्रवण करनेसें, और हरिके नाभिकमलकरके ब्रह्माके जन्मकी प्रसिद्धि होनेसें, विष्णु, महादेव और ब्रह्माका पूज्य है. पूज्य होनेसें, विष्णु, ईश्वर और ब्रह्माका देव सिद्ध हुआ. 'भर्गोदेवः' तिसका आमंत्रण हे भर्गोदेव! तथा (स्य) त्यत् शब्दका तत्शब्दके अर्थके आमंत्रणमें यह प्रयोग है, तब तो हे स्य!। हे स!। स्मृतिप्रविष्ट होनेसें इसप्रकार विशेषणका उपन्यास है। संस्कारके प्रबोधसें उत्पन्न अनुभूत अर्थविषय तत् (सो यह) ऐसे आकारवाला जो ज्ञान सो स्मरण कहिये। ऐसा स्मृतिका लक्षण होनेसें। इसकरके प्रणिधानमें एकाग्रता कथन करिये हैं। तथा (धीमहि) मतुप्के लोप होनेसें अथवा अभेदोपचारसें 'धियः-पंडिताः' 'अर्ह मह पूजायामिति धातोः क्विबंतस्य मह्इतिरूपं महतीति मह् पूजक-आराधक इति यावत्, धियां मह् धीमह्, विद्वज्जनपर्युपासकः पुरुषस्तस्मिन् आधारे।' अर्ह और मह धातु पूजार्थमें है, तिसमेंसें महधातुका क्विप्प्रत्ययांत मह् ऐसा रूप होता है, जो पूजा करे उसको मह् कहिये, अर्थात् पूजक-आराधक यह तात्पर्यः।

बुद्धियोंका (पंडितोंका) जो पूजक होवे, सो कहिये 'धीमह' अर्थात् विद्वज्जनोंका उपासक पुरुष तिस पुरुषरूप आधारविषे जो बुद्धि (ज्ञान) है, तिस बुद्धिसें जो अपृथग्भूत तिसका आमंत्रण 'हे धियो–यो' सद्गुरुकी सेवामें तत्पर जे पुरुष तिनोंकी बुद्धिके गोचर इत्यर्थ । क्योंकि जिनोंनें सद्गुरुयोंकी उपासना नही करी है, ऐसे लोकायतिक (नास्तिक) आदिकोंके ज्ञानगोचर परमात्मा प्राप्त नही होता है । 'यो–न' इन दोनोंके बीचमें अकारका प्रक्षेप करनेसें 'हे अ–विष्णो' न ।यह योजन कराही है ।(प्रचोदयात्)प्रकृष्टश्चोदः(शृंगारभावसूचन) यस्या सा प्रचोदा। प्रचोदा चासौ या च लक्ष्मीश्च प्रचोदया, तां अतति सातत्येन गच्छति प्रचोदयात्, तस्यामंत्रण हे प्रचोदयात्।' प्रकृष्ट शृंगारभावसूचन है जिसका सो कहिये प्रचोदा, प्रचोदा सोहीं जो लक्ष्मी सो कहिये प्रचोदया तिस प्रचोदयाको (लक्ष्मीको) जो निरंतर प्राप्त होवे, सो कहिये प्रचोदयात् तिसका आमंत्रण 'हे प्रचोदयात्'।।अथवा प्रथम 'न' यह योजन करिये हैं। न अस्माक यह तो सामर्थ्यसेंही प्रतीत होनेसें। तब तो 'आन प्रचोद' ऐसें जानना योग्य है। हे अ! हे अन प्रचोद! अन शकट गाडेको प्रचोदयति प्रेरयति जो प्रेरणा करे सो 'अन प्रचोद' कहिये तिसका आमंत्रण 'हे अन प्रचोद' 'शैशवे हि विष्णुना चरणेन शकट पर्यस्तमिति श्रुते'। बालपणेमें विष्णुने चरण करके गाडेको प्रेरा था दूर करा था इस श्रुतिसें । तत । समानाना तेन दीर्घ । इस सूत्रसें संधिके हुए 'आनप्रचोद' ऐसा सिद्ध होता है । शंका । 'यो' इस पदसें परे 'आन प्रचोद' पदके हुआं 'यवान प्रचोद' ऐसा होना चाहिये, तो यहा 'योन प्रचोद' यह कैसे हुआ?

उत्तर। जैसें तुम कहते हो, तैसें नही है। कातंत्रव्याकरणमें "एदोत्पर. पदांते लोपमकार" इस सूत्रमें "एदोत्पर्या" इतने मात्रसें सिद्ध हुआ भी, जो परग्रहण है, सो इष्टार्थ है, तिससें किसी स्थानपर आकारका भी लोप हो जाता है तिसवास्ते यहा आकारलोपसें सिद्ध है 'योनःप्रचोद' इति। ऐसें न कहना कि, इसप्रकारके प्रयोग उपलभ नही होते हैं। क्योंकि, "मधुप्रिय मधुजनोऽऽजुहाव" इत्यादि महाकवियोंके प्रयोग देखनेसें।

अथवा 'स्वस्तत्इति' विशेषण कहते हैं। 'प्रचोद' यह क्रियापद। 'अनः' यह कर्मपद। अंतरात्मारूप सारथिकरके प्रवर्तनीय होनेसें, अनःकीतरें अनः शरीर, तिसको 'प्रचोद' चुदण् संचोदने तस्य चुरादेर्णिचोऽनित्यत्वात्तदभावे ह्यौ रूपं। संचोदनं च नोदनमिति धातुपारायणकृता तथैव व्याख्यानात्। तब तो 'प्रचोद' प्रकर्षकरके नुद स्फोटय फोड इत्यर्थः। नही इस दग्धकाय मलीनशरीरके त्यागेविना कहिं भी परम सुखका लाभ होता है। वेदमें भी कहा है। "अशरीरं वा वसंतं प्रियाप्रिये न स्पृशतः। नहि वै सशरीरस्य प्रियाप्रिययोरपहतिरस्तीति॥" इतिवैष्णवाभिप्रायेण मंत्रव्याख्या॥ ५॥

अथवा सौगत (बुद्ध) अपने देव बुद्धभट्टारकको प्रणिधान करते हुए ऐसें कहते हैं॥

मंत्रः॥

ॐ भूर्भुवः स्वस्तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य
धीम हि धियो यो नः प्रचोदयात्॥ १॥ ६॥

ॐ। भूः। भुवः। स्वस्तत्। सवितुः। वरेण्यं। भर्। गोदेवस्य। धीम। हि। धियो। यो। नः। प्रचोदय। अत्॥ ६॥

व्याख्याः– (ॐ) इसका अर्थ पूर्ववत् जानना (भूः) हे भूः हे आधार! किसका? (भुवः) भव्यलोकस्य–भव्यलोकका, (स्वस्तत्) स्वः–परलोकको तनोति-विस्तारयति-प्रज्ञापयति कथन करे जणावे सो 'स्वस्तत्' तिसका संबोधन 'हे स्वस्तत्' इत्यर्थः। आत्माकी नास्ति मानके परलोकको अंगीकार करनेसें। 'आत्मा नास्ति पुनर्भावोस्तीत्यादिवचनात्'। आत्माका नास्तिपणा ऐसें है। हे भिक्षवः! यह पांच संज्ञामात्र है, संवृतिमात्र है, व्यवहारमात्र है; कौनसे वे पांच? अतीतकाल १, अनागतकाल २, प्रतिसंख्यानिरोध ३, आकाश ४, और पुद्गल ५, इस बुद्धके वचनसें। यहां पुद्गलशब्दकरके आत्माका ग्रहण है। इति। (सवितुर्वरेण्यं) हे सूर्यसें प्रधान बुद्ध भगवन्! अर्क बांधव होनेसें, शाक्यसिंहनामा सप्तम बुद्धका यह आमंत्रण है। (भर्) बिभर्तीति भर् हे पोषक! किसका? (गोदेवस्य)

गो-यथार्थ अर्थ गर्भितवाणीकरके दीव्यति स्तौति—स्तुति करता है सो कहिये 'गोदेव' तस्य गोदेवस्य—तिस गोदेवका पोषक इत्यर्थ । यदि अनजान बालकने भी धूलकी मुट्ठी भरके भगवान् बुद्धकेतांइ कहा कि लीजीए महाराज ! यह आपका हिस्सा (भाग) है, तिससेंही तिसको राज्यप्राप्तिरूप फल हुआ तो, क्या आश्चर्य है कि, जे भावसें बुद्ध भगवान्‌की स्तुति करनेमें तत्पर हैं, तिनके मनवांछित प्रयोजनको सिद्ध करे । तथा (धीम) धिय ज्ञानमेव मिमीयते—शब्दयति—प्ररूपयति ज्ञानकोंही जो कथन करता है, सो 'धीम' तिसका आमन्त्रण 'हे धीम' ! जे बाह्यार्थाकार घटपटादिरूप हैं तिनको अविद्यादर्शित होनेसें अवस्तु होनेकरके असत्‌रूप है, ज्ञानाद्वैतकोही तिसके (बौद्धके) मतमें प्रमाणता होनेसें । बुद्धके चरणोंकी सेवा करनेवालोंने ऐसा कहा है। "ग्राह्यग्राहकनिर्मुक्तं विज्ञानं परमार्थसत्। नान्योनुभावो बुध्याऽस्ति तस्यानानुभवोपर ॥ १॥ ग्राह्यग्राहकवैधुर्यात् स्वयं सैव प्रकाश्यते। बाह्यो न विद्यते ह्यर्थो यथा बालैर्विकल्प्यते ॥२॥ वासनालुठितं चित्तमर्थाभासे प्रवर्त्तते। इत्यादि"। यहां बहुत कहनेयोग्य है, सो तो ग्रंथ गौरवताके भयसें नही कहते हैं,। गमनिकामात्र फल होनेसें, प्रयास (उद्यम) का। (हि) स्फुट प्रकट (यो) पदके एकदेशमें पदसमुदायके उपचारसें हे योगिन्। "बुद्धे तु भगवान् योगी" इति अभिधानचिंतामणि शेषनाममालावचनसें योगी नाम बुद्धका है, तिसका आमन्त्रण हे योगिन् ! (बुद्ध) — (न) हमारी (धिय) बुद्धियोंको अभिप्रेत तत्त्वज्ञानप्रति प्रेर, युक्त कर इति (अत्) अतति सातत्येन गच्छतीति अत्। गत्यर्थधातुओंको सर्वज्ञानार्थ होनेसें 'हे अत्' हे सर्वज्ञ' ! इत्यर्थ ॥ इति बौद्धाभिप्रायेण मन्त्रव्याख्या ॥ ६ ॥

अथ जैमिनिमुनिके मतवाले तो, सर्वज्ञको देवताकरके मानतेही नही हैं, किंतु, नित्य वेदवाक्योंसेंही तिनको तत्त्वका निश्चय है । साक्षात् अतींद्रिय अर्थके देखनेवाले किसीका भी तिनके मतमें भाव न होनेसें । "यदुक्त । " अतींद्रियाणामर्थानां साक्षाद्द्रष्टा न विद्यते । वचनेन हि

नित्येन यः पश्यति स पश्यति ॥ १ ॥ इसवास्ते, वे वेदवाक्यके प्रमाणसें-ही गुरुताकरके अग्निहीकी पर्युपासना करते हैं,। तिस अग्निके प्रणिधानार्थ वेद स्तुतिगर्भित यह पढते हैं.॥

मंत्रः ॥

ॐ भूर्भुवःस्वस्तत्सवितुर्व रेण्यं भर्गोदे वस्य
धीमहि धियोयो नः प्रचोदयात् ॥ १ ॥७ ॥

ॐ। भूर्भुःस्वस्तत्। सवितुः। व। रे। आण्यं। भर्गोदे। वस्य। धीमहि। धियः। अयः। नः। प्रचोदयात् ॥७॥

व्याख्या ॥ (धियः) बुद्धियां (नः) हमारी—भवंत्विति वाक्यशेषः—होवें कैसी बुद्धियां होवें? (अयः) अयंति गच्छंतीति अयः अर्थात् गमन करनेवाली। कहां?। (रे) अग्निविषे। अग्निशब्दकरके यहां तिसकी (अग्निकी) आराधना ग्रहण करनी। तब तो अग्निआराधनादिमें हमारी बुद्धियां प्रवर्त्तनेवाली होवें, यह अर्थ संपन्न हुआ. इति। किंविशिष्टे रे। कैसे अग्निविषे? (भर्गोदे) अवतीति ऊः दाहक इत्यर्थः, अवतिधातुको श्री सिद्धहेमधातुपाठमें दहनार्थताकरके पठन करनेसें। 'भर्ग' ईश्वर, सो 'ऊ' दाहक है जिसका, सो कहिये 'भर्गोः' काम इत्यर्थः। "यत्कालिदासः।" क्रोधं प्रभो संहर संहरेति यावद्गिरः खे मरुतां चरंति। तावत्स वन्हिर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार ॥१॥ तं तिस कामको, जो ददात्याराधकेभ्यः देवे आराधकोंकेताइ, सो कहिए 'भर्गोदः' तस्मिन् 'भर्गोदे' कामको देनेवाले अग्निविषे इत्यर्थः। अग्नि तर्पियांके शास्त्रमें अग्नितर्प्पणसें संपत्की संप्राप्ति कथन करनेसें, और संपदाको कामका हेतुत्व होनेसें, कामकी प्राप्ति सिद्ध है.। 'तथा च शिवधर्मोत्तरसूत्रं'।'पूजया विपुलं राज्यमग्निकार्येण संपदः। तपःपापविशुद्ध्यर्थं ज्ञानं ध्यानं च मुक्तिदम्' ॥ १ ॥ पुनः किंविष्टे रे—फिर कैसे अग्निविषे? (धीमहि) धियः-पंडिता महः-पूजका यस्य स तथा तत्र। पंडित पूजक हैं जिसके, ऐसे अग्निविषे.। क्या स्वच्छंदेकरके हमारि बुद्धियां प्रवर्त्तती हैं? नहीं. सोही कहे हैं.। (प्रचोदयात्) चोदनं-चोदया

चोदनेत्यर्थ । चोदना नाम प्रेरणा जो है, सो क्रियाप्रति प्रवर्त्तकका वच न है । यथा । 'अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामइति' । जो स्वर्गका कामी होवे सो अग्निहोत्र करे इति । सोही कथन करते हुए षट्दर्शनसमुच्चयके करनेवाले। "चोदनालक्षणो धर्मश्चोदना तु क्रियां प्रति प्रवर्त्तकं वच प्राहु स्व कामोऽग्निं यथार्पयेत् । १।इति ।" प्रकर्षेण चोदया प्रचोदयाऽस्मिन्नस्ती ति । अभ्रादिभ्य इति बहुवचनस्याकृतिगणज्ञापनार्थत्वात् अप्रत्यये प्रचो दयो वेद तस्मात् 'प्रचोदयात्' वेदसें वेदोपदेशको आश्रय लेके इत्यर्थ गम्ययप कर्माधारे पंचमी । किंविशिष्टात् वेदात् । कैसे वेदसें? (सवितुः) 'व' शब्दको—कादंबखंडितदलानि व पंकजानि इत्यादि स्थानोंमें उप मानार्थ रूढ होनेसें 'सवितु व' आदित्यादिव । समस्त अर्थोंकी प्रका शकता करके भास्करतुल्य इत्यर्थ । तिस वेदसें हमारी मतियां—बुद्धियां अग्निआराधनादिविषे प्रवृत्त होवें । यत्र । जहा—जिस वेदमें (ॐ) ॐ ऐसा अक्षर विद्यमान है । ॐकारको वेदके आदिभूत होनेसें । कैसा सो ॐकार (भूर्भुव स्स्तत्) भुवनत्रयव्यापि । तब तो किंचित् अभिधेयस त्तासमाविष्ट वस्तु गुरुसंप्रदाययुक्तिकरके अन्वेषण करे मंत्र ॐकारशब्द प्रर्यायमेंही प्राप्त होता है । सर्वही प्रवादियोंने अनिंदितकरके इस ॐ कारको संपूर्ण भुवनत्रयकमलाधिगममें बीजभूतकरके वर्णन करनेसें, यह ॐकार ऐसे विचारने योग्य है, इसवास्तेही इसका असाधारण विशेष णांतर कहते हैं । (आण्य) आण्यते उच्चार्यते इति आण्य प्रणिधेय प्र णिधान करनेयोग्य । किसको (वस्य) 'उ' ब्रह्मा 'ऊ' शंकर 'अ' पुरुषोत्तम संधिके वशसें 'व' ब्रह्मामहादेवविष्णुरूप पुरुषत्रय, तिनोंने भी ध्येय है, अर्थात् पूर्वोक्त तीनों पुरुषोंको भी ॐकार ध्यावने योग्य है । 'वस्येति कर्त्तरि षष्ठी कृत्यस्य वेति लक्षणात् । अथवा वेदात् वेदसें । कैसें वेदसें 'सवितु' उत्पादयितु उत्पन्न करनेवालेसें । किसको उत्पन्न करनेवाला? 'ॐ' ॐकारको शेष पूर्ववत् ॥ इतना विशेष है 'य' शब्द वाक्यालंकारमें जानना । 'रे' आण्य 'रेण्य' यहा आकारका लोप पूर्वो क्तवचनयुक्तिसें जानना । तब तो यह समुदायार्थ होता है । जिस वेद

आदिमेंही अस्खलित जगत्त्रयव्यापी तीनों देवोंके भी प्रणिधेय ऐसा ॐकार है, और जो वेद उद्गीय है, और जो वेद समस्त अर्थके प्रकाशनेमें एक सूर्यसमान है, तिस वेदके उपदेशको आश्रित्य होकरके कामसंपदा करणहार पंडितजनोंके पूजनीय ऐसे अग्निआराधनविषे, हमारी बुद्धियां प्रवृत्त होवें, ॥ इतिभट्टदर्शने मंत्रव्याख्या ॥ ७ ॥

अथ सामान्यकरके सर्वप्रवादियोंके संवादिस्वरूप परमेश्वरका प्रणिधानरूप यह गायत्रीमंत्र है. ॥

मंत्रः ॥

ॐ भूर्भुवःस्वस्तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेव स्य
धीमहिधियो योनः प्रचोदयात् ॥ १ ॥ ८ ॥

ॐ भूर्भुवःस्वस्तत् सवितुः वरेण्यं भर्गोदेव स्य धीम् अहिधियः। योनः प्रचोदय अत् ॥ ८ ॥

व्याख्या (ॐ) पूर्ववत् (भूर्भुवःस्वस्तत्) हे सर्वव्यापिन्! परमेश्वर! वेदमें भी कहा है। 'पुरुषएवेदमिति'। (वरेण्यं) पूर्वोक्त अनुनासिकरीतिकरके हे वरेण्य 'सवितुः' सूर्यसें भी प्रधान इति। (भर्गोदेव) 'भर्ग' ईश्वर 'उ' ब्रह्मा 'ऊ' शंकर तिनोंका भी देव 'भर्गोदेव' हे भर्गोदेव! अर्थात् हे विष्णु! ब्रह्मामहादेवका आराध्य! ऐसे नही कहना कि, तिनोंका आराध्य कोई नही है.। क्योंकि, वे भी संध्यादि करते हैं; ऐसा सुननेसें.। तथा। "अष्टवर्गातगं बीजं कवर्गस्य च पूर्वकं। वह्निनोपरि संयुक्तं गगनेन विभूषितम्। १। एतदेवि परं तंत्रं योभिजानाति तत्त्वतः। संसारबंधनं छित्वा स गच्छेत् परमां गतिम्। २। इत्यादिवचनप्रामाण्यात् ॥" (स्य) अंतय अंत कर। किसका सो कहे हैं, (धीम्) धीश्चित्तं धीनाम मनका है तस्या इः कामः तिस धी मनका जो इ—काम सो कहिये 'धी' तं 'धीम्' अर्थात् मनोगत कामका। मनोगत कामके नष्ट हुए तत्त्वसें वचनकायाके कामका ध्वंस होही गया। तथा। (अहिधियः) क्रूरता आदि जे हैं, तिनोंका भी ध्वंस (विनाश) कर। तथा। (योनः) योनि सचित्तादि चौरासी (८४)लक्ष संख्याका विभाग जो करे,

सो "प्यंतात् किपि णिलुकि" 'योन्' ससार, तस्मात् 'योन' संसार समुद्रसें (प्रचोदय) पार होनेवास्ते हमको प्रेरणा कर, कामक्रोधादि ध्वसनपूर्वक हमको मुक्तिको प्राप्त कर इत्यभिप्रायः। 'योन प्रचोदय' इसके कहनेसें कामादिका ध्वसही अर्थापन्न मुक्तताका जानना, परतु धनका नही, मुक्तताविषे अतरीय ध्वस होनेसें। 'धीमहि धिय' इसकर केही सिद्ध था, ऐसे न कहना क्योंकि, मुक्त्यर्थिपुरुषको प्रथम कामा दिका विजय करना चाहिये, ऐसें उपायउपेयभाव जनावनेसें दोष नही है। तथा। (अत्) इसका अर्थ सौगत (बौद्ध) पक्षवत् जानना। इति सर्वदर्शनसम्मत मत्रव्याख्या ॥ ८ ॥

अथ यह गायत्री सर्व बीजाक्षरका निधान है, ऐसे ब्राह्मणोंके प्रवाद को आश्रित्य हो कर कितनेकमत्राक्षरोंके बीजोंको दिखाते हैं। तद्यथा॥ ॐ ॥ ऐसा बीजाक्षर अक्षपादके पक्षमें सक्षेपमात्रसें प्रभावसहित दिखा या है सो ही जान लेना। और तहा। भर्गोदे। इसकरके ध्यान करनेकी अपेक्षा वर्णका सूचन है, सोही दिखाते हैं। 'भर्ग' ईश्वर, तिसकरके श्वेतवर्ण। शातिक पौष्टिकादिमें। 'उ' ब्रह्मा, पीतवर्ण। स्तंभनादिमें। पीत और रक्तको कवियोंकी रूढिसें एकता होनेसें रक्तका भी ग्रहण कर ना। वशीकरण आकर्षणादिमें। 'द' कृष्ण, तिसकरके कृष्णवर्ण। विद्वेष उच्चाटन अवसानादिमें॥ इत्यादि और भी इस बीजाक्षरका प्रणिधान विधि यथागुरुसप्रदायसें जानना ॥ यदि वा। 'ॐ' इसकरके। "दह कला अरिहता निउणा सिद्धा य लोढकलसूरी। उवज्झाया सुद्धकला दोह कला साहुणो सुहया। १।" इस गाथोक्तरहस्यकरके परमेष्ठिपचक ही महानदार्थि पुरुषको ध्यावने योग्य है ॥ अथवा। 'भू' पृथिवीतत्व 'भुव' वायु, और आकाश, तिनमें 'भु' वायुतत्व और 'व' आकाश तत्व 'स्वर्' उर्ध्वलोक सुखमसाकरूप तिसको तनोति प्राप्त होवे, सो 'स्वस्तत्' जल और अग्नि। न्याय इनका ॥ "तत्वपचकमिद विधियो गात् स्मर्यमाणमघजातिविघाति। कल्पवृक्ष इव भक्तिपराणा पूरयत्यभि मतानि न कानि। १" भावार्थ—यह पांच तत्व विधियोगसें (अर्ह

दादि पांच क्रमसें) स्मरण करते हुए कल्पवृक्षकीतरें भक्तिमें तत्पर। पुरुषोंको क्या क्या मनवांच्छित पूर्ण नही करता है? अपितु सर्व करता है.। कैसा है तत्वपंचक? पापकी जातिका नाश करनेवाला। इति ॥ अथवा॥ 'रेण्यं' 'धीमहि' इहां 'हि' का 'ह्'। 'रे' का 'र्'।'धी' का दीर्घ 'ई'। और 'ण्यं' का 'ँ' बिंदु। इन सर्वके एकत्र जोडनेसें मायाबीज होता है। अर्थात् 'ह्रीं' कार होताहै। सो भी अचिंत्य शक्तियुक्त है, सर्व मंत्रोंमें राजा समान होनेसें. यही। उद्गीथादिक (सामवेदावयवविशेष) है 'महिधियोयोनः' नकारसे परे जो विसर्ग है तिसको मकारसें परे जोडनेसें 'नमः' होनेसें। सन्मंत्र है। तदन्तःसन्मंत्रो वर्ण्यतेति। इत्यादि वचन प्रमाणसें। तथा। 'वरेण्यं' वकारस्थित अकार और रगत (रकारमें रहे) एकारको–अ+ए=ऐदैौचूसूत्रकरके 'ऐ' कारके हुए 'ण्यं' ण्यकारमें स्थित बिंदुको ऐकारके साथ जोडनेसे वाग्बीज "ऐं" सिद्ध होता है.। 'अधीमहि' अर्हत्पक्षके व्याख्यानमें 'इः' नाम कामका कथन करा है, इसवास्ते स्मरबीज श्रीबीजादि अक्षरोंके संयोग श्री पद्मावती त्रिपुरादि देवताराधन महामंत्रसिद्धिके निबंधन होते हैं, इसप्रकारसें विद्वानोंको अपनी बुद्धिके अनुसार कहना योग्य है। स यौगिक येह अर्थ है, जेकर ऐसें कहोगे तो कौन कहता है? कि, सयौगिक नही है. क्योंकि, सर्वही महामंत्र सयौगिक ही है. तथाचाधीयते। "अमंत्रमक्षरं नास्ति नास्ति मूलमनौषधम्। अधना पृथिवी नास्ति संयोगाः खलु दुर्लभाः॥ १" ॥ भावार्थः॥ विना मंत्रके कोइ अक्षर नही है, विना औषधिके कोइ जडी नही है, विना धनके कोइ पृथिवी नही है, परंतु निश्चय उनोंका संयोग दुर्लभ है.॥ ऐसें रक्षादि यंत्र भी जैसें तीन मायाबीज है। तिनके ऊपर यंत्रका न्यास करिये है, सो वशीकरणयंत्र है.। तथा तैसें वश्यादि प्रयोग भी इहां जानने। जैसें भर्गोशब्दसें गोरोचन। 'महि' मनःशिल। 'देव' 'प्रचोदयात्' दकारसें दल (पत्र) इनोंकरके। 'सवितुः' विशब्दसें त्रिशेषक विलेपन वा। 'यो' योशब्दसें विशेष योनिमती स्त्रीयोंको। 'नः' नः शब्दसें पुरुषोंको प्रीति-

कर है। तथा 'प्रचोदया' प्रदीयमान विपका असाध्य निदान है इत्यादि॥ 'अधीमहि' अकारसें अजा मेपशृंगी (मेपके शृंगसमान फलवाला वृक्ष) तिसके 'प्रचोदयात' दकारसें दल (पत्र)। भा १। 'भर्गोदेव' गोशब्दसें गेंहूके सत्तु। भा १। 'महि' मकारसें मधुलि। भा २। 'सवितु' सका रसें सर्पिषा सह–घृतके साथ 'भर्गो' भशब्दसें भक्षण करे 'वरेण्य' वकारसें बलवीर्य करे 'प्रचोद' प्रसें प्रभजन (वायु) तिसकों हरे, इत्यादि औपध विधिया भी इहा जाननीया ॥

आर्यावृत्तम् ॥

चक्रे श्रीशुभतिलकोपाध्याये स्वमतिशिल्पकल्पनया॥
व्याख्यान गायत्र्या क्रीडामात्रोपयोगमिदम् ॥ १ ॥

अनुष्टुप् ॥

तस्याय स्तवकार्थस्तु परोपकृतिहेतवे ॥
कृत परोपकारिभिर्विजयानदसूरिभि ॥ १ ॥

॥ इतिगायत्रीमन्त्रव्याख्यास्तवकार्थ ॥

श्रीशुभतिलक उपाध्यायजी अपने करे गायत्रीव्याख्यानमें कहते हैं कि, मैने येह पूर्वोक्त गायत्रीके जे अर्थ करे हैं, ते सर्व क्रीडामात्र हैं "क्रीडामात्रोपयोगमिदमितिवचनात्' इससे यह सिद्ध होता है कि, येह पूर्वोक्त सर्व अर्थ गायत्रीके सच्चे हैं, यह नही समझना किंतु सत्यार्थ तो वो है कि, जिस ऋपिने जिस अर्थके अभिप्रायसें गायत्रीमंत्र रचा है। परतु तिस ऋपिके कथन करे अर्थकी परपरायसे धारणा आजतक चली आइ होवे, और तैसें ही अर्थ भाष्यकारोने लिखे होवें, यह किसीतरे भी सिद्ध नही होता है, सो अग्रिम स्तभसें जान लेना इत्यलम् ॥

इतिश्रीमद्विजयानदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे जैनाचार्य
बुद्धियैभववर्णनो नामैकादशस्तभ ॥ ११ ॥

॥ अथ द्वादशस्तम्भारम्भः ॥

एकादशस्तंभमें जैनाचार्यकृत गायत्रीका व्याख्यान करा, अथ द्वादश स्तंभमें गायत्रीके माननेवालोंका करा व्याख्यान लिखते हैं. जो कि, परस्पर विरुद्ध है; तथाविध संप्रदायके अभावसें. । तत्रादौ सायणाचार्यकृत भाष्यका व्याख्यान करते हैं. ॥

तत्स॑वि॒तुर्वरे॑ण्यं॒ भर्गो॑ दे॒वस्य॑ धीमहि ॥
धियो॒ यो नः॑ प्रचो॒दया॑त् ॥ १० ॥

व्याख्या—जो सवितादेव (नो) हमारें (धियः) कर्मोंको, वा धर्मादिविषयबुद्धियोंको (प्रचोदयात्) प्रेरयेत् प्रेरणा करे (तत्) तिस सर्व श्रुतियोंमें प्रसिद्ध (देवस्य) प्रकाशमान (सवितुः) सर्वान्तर्यामि होनेकरके प्रेरक जगत्स्रष्टा परमेश्वरका आत्मभूत (वरेण्यं) सर्व लोकोंको उपास्यताकरके और ज्ञेयताकरके सम्यक् प्रकारसें भजने योग्य है (भर्गः) अविद्या और तिसके कार्यको भर्जन (दग्ध) करनेसें स्वयंज्योतिः परब्रह्मात्मक तेजकों (धीमहि) तत्। जो मैं हूं सोइ वोह है और जो वोह है सोइ मैं हूं ऐसे हम ध्यावते हैं। अथवा 'तत्' ऐसा भर्गका विशेषण है, सवितादेवकें तैसें भर्गको हम ध्यावे हैं 'यः' लिंगव्यत्यय होनेंसे 'यत्' जो भर्गः हमारे 'धियः' कर्मादिकोंको 'प्रचोदयात्' प्रेरणा करे 'तत्' तिस भर्गको हम ध्यावे हैं इति समन्वयः। अथवा। (यः) जो सविता सूर्य (धियः) कर्मोंको (प्रचोदयात्) प्रेरयति प्रेरणा करता है (तस्य) (सवितुः) तिस सर्वकी उत्पत्ति करनेवाले (देवस्य) प्रकाशमान सूर्यके (तत) सर्वको दृश्यमान होनेसें प्रसिद्ध (वरेण्यं) सर्वको संभजनीय (भर्गः) पापोंको तपानेवाले तेजोमंडलको (धीमहि) ध्येयताकरके मनसें हम धारण करते हैं ॥ अथवा। भर्गशब्दकरके अन्न कहिये है। (यः) जो सवितादेव (धियः) कर्मोंको (प्रचोदयात्) प्रेरणा करता है, तिसके प्रसादसें (भर्गः) अन्नादिलक्षण फलको (धीमहि) धारण करते हैं, तिसके आधारभूत हम होते हैं. इत्यर्थः। भर्गशब्दको

अन्नपरत्व और धीशब्दको कर्मपरत्व अथर्वण कहता है । तथा च श्रुति । "वेदांश्छदांसि सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य कवयोऽन्नमाहु ।कर्माणि धियस्त दुते प्रब्रवीमि प्रचोदयन्त्सविता याभिरेतीति" ॥ ये तीनतरेंके अर्थ गायत्रीके सायणाचार्यने ऋगूवेदभाष्यमें करे हैं ॥

तथा तैत्तिरीये आरण्यके १० प्रपाठके २७ अनुवाके । गायत्रीमंत्रका ऐसा अर्थ सायणाचार्यनेही करा है ॥ (सवितु) प्रेरक अंतर्यामी (देवस्य) देवके (वरेण्य) वर्णीय श्रेष्ठ (तत्) (भर्ग) तिस भर्गको–तेजको (धीमहि) हम ध्यावे हैं । (यः) जो सविता परमेश्वर (नः) हमारी (धियः) बुद्धिवृत्तियोंको (प्रचोदयात्) प्रकर्षकरके तत्त्वबोधमें प्रेरणा करे, तिसके तेजको हम ध्यावे हैं इत्यर्थ ॥

तथा महीधरकृत यजुर्वेदभाष्यमें तीसरे अध्यायमें ऐसे लिखा है ॥

(तत्) तस्य–तिस (देवस्य) प्रकाशक (सवितु) प्रेरक अंतर्यामि विज्ञानानंदस्वभाव हिरण्यगर्भ उपाधिकरके अवछिन्न वा आदित्यांतरपुरुष वा ब्रह्मके (वरेण्य) सर्वको प्रार्थनीय (भर्ग) सर्व पापोंको और संसारको दग्ध करनेमें समर्थ तेज सत्य ज्ञानादि जो वेदांतकरके प्रतिपाद्य है तिसको (धीमहि) हम ध्यावते हैं। अथवा मंडल, पुरुष, और किरणां, ये तीन भर्ग शब्दके वाच्य जानने अथवा भर्गनाम वीर्यका जानना। "वरुणाद्ध वा अभिषिषिचानाद्भर्गोऽपचक्राम वीर्यं वै भर्ग इति श्रुते "॥ तस्य कस्य–तिसका किसका ? । (य) जो सविता (न) हमारी (धियः) बुद्धियोंको, वा हमारे कर्मोंको (प्रचोदयात्) सत्कर्मानुष्ठानकेवास्ते प्रकर्षकरके प्रेरता है । अथवा वाक्यभेदकरके योजना करते हैं, सवितु देवके तिस वरणीय भर्ग –तेजको हम ध्यावते हैं, और जो हमारी बुद्धियोंको प्रेरता है, तिसको भी हम ध्यावते हैं, और सोसविताही है ।इत्यादि॥

अथ शंकरभाष्यव्याख्यान लिखते हैं । अथ सर्वदेवात्मक, सर्वशक्तिरूप, सर्वावभासक, प्रकाशक, तेजोमय, परमात्माको सर्वात्मकपणे प्रकाशनेके अर्थे सर्वात्मकत्व प्रतिपादक गायत्रीमहामंत्रका उपासनप्रकार (विधि) प्रकट करते हैं । तहां गायत्रीकों प्रणवादि सात व्याहृतीयां

(ॐभूरित्यादिमंत्रविशेष) और शिरः (ॐ आप इत्यादिमंत्रविशेष) करके संयुक्तको सर्व वेदोंका सार कहते हैं, ऐसी गायत्री प्राणायाम करके उपासना करने योग्य है, प्रणव (ॐ) सहित तीन व्याहृतीयां संयुक्त प्रणवांतक गायत्रीजपादिकों करके उपासना करने योग्य है; तहां शुद्धगायत्री प्रत्यक् ब्रह्मैक्यताकी बोधिका है. 'धियो यो नः प्रचोदयादिति' हमारी बुद्धियोंको जो प्रेरता है, ऐसा सर्वबुद्धिसंज्ञा अंतःकरणप्रकाशक सर्वसाक्षी प्रत्यक् आत्मा कहीये है, तिस प्रचोदयात् शब्दकरके कहे आत्माका स्वरूपभूत परं ब्रह्म तिसकों 'तत्सवितुः' इत्यादिपदोंकरके कथन करिये है. तहां "ॐतत्सदितिनिर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः" इति ॐ। तत्। सत्। ये तीन प्रकारका ब्रह्मका निर्देश कहा है, इसवास्ते 'तत्' शब्दकरके प्रत्यगूभूत स्वतः सिद्ध परंब्रह्म कहिये है 'सवितुः' इसशब्दसें सृष्टिस्थितिलयलक्षणरूप सर्व प्रपंचका समस्त द्वैतरूप विभ्रमका अधिष्ठान आधार लखिये है। 'वरेण्यं' सर्ववरणीय निरतिशय आनंदरूप। 'भर्गः' अविद्यादिदोषोंका भर्जनात्मक ज्ञानैकविषयत्व। 'देवस्य' सर्वद्योतनात्मक अखंड चिदेकरस 'सवितुः देवस्य' इहां षष्ठीविभक्तिका अर्थ राहुके शिरवत् औपचारिक जानना, बुद्धिआदि सर्व दृश्य पदार्थोंका साक्षीलक्षण जो मेरा स्वरूप है, सो सर्व अधिष्ठानभूत परमानंदरूप निरस्त—दूर करे है समस्त अनर्थ जिसने, तद्रूप प्रकाश चिदात्मक ब्रह्मही है. ऐसें (धीमहि) हम ध्यावते हैं. ऐसे हुआ ब्रह्मके साथ अपने विवर्त जड प्रपंचकरके रज्जुसर्पन्यायकरके अपवाद सामानाधिकरण्यरूप एकत्व है, सो यह है, इस न्यायकरके सर्वसाक्षी प्रत्यगू आत्माका ब्रह्मके साथ तादात्म्यरूप एकत्व होता है. इसवास्ते सर्वात्मक ब्रह्मका बोधक यह गायत्रीमंत्र है ऐसें सिद्ध होता है ॥

सात व्याहृतियोंका यह अर्थ है ॥ 'भूः' इससें सन्मात्र कहिये है ॥ १ ॥ 'भुवः' इससें सर्व भावयाति प्रकाशयति इस व्युत्पत्तिसें चिद्रूप कहिये है ॥ २ ॥ सुन्नियते इस व्युत्पत्तिसें 'स्वर्' इति। सुष्ठु भलीप्रकारे सर्वकरके न्नियमाण सुखस्वरूप कहिये है ॥ ३ ॥ 'महः' महीयते पूज्यते

इस व्युत्पत्तिसें सर्वातिशयत्व कहिये है ॥ ४ ॥ 'जन' जनयतीति जनः सकलवस्तुयोंका कारण कहिये है ॥ ५ ॥ 'तपः' सर्व तेजोरूपत्व ॥ ६ ॥ 'सत्यम्' सर्वबाधारहित ॥ ७ ॥ यह तात्पर्य है कि–जो इस लोकमें सद्रूप है सो सर्व ॐकारका वाच्यार्थ ब्रह्मही है, इस आत्माको सत्चिद्रूप होनेसें। अथ भूआदिक सर्वलोक ॐकारके वाच्य सर्व ब्रह्मात्मक है, तिससें व्यतिरिक्त कुछ भी नही है। व्याहृतिया भी सर्वात्मक ब्रह्मकी ही बोधिका हैं। गायत्रीके शिरका भी यही अर्थ है। 'आपः' व्याप्नोति इस व्युत्पत्तिसें व्यापित्व कहिये है। 'ज्योति' प्रकाशरूपत्व। 'रस' सर्वातिशयत्व। 'अमृत' मरणादिससारनिर्मुक्तत्व, सर्वव्यापि, सर्वप्रकाशक, सर्वोत्कृष्ट, नित्यमुक्त, आत्मरूप, सच्चिदानदात्मक, जो ॐकारवाच्य ब्रह्म है, सो मैं हू ॥ इतिगायत्रीमत्रस्यार्थः ॥

अथ स्वामी दयानदसरस्वतीजीकृत गायत्रीव्याख्यान लिखते हैं। यथा यजुर्वेदभाष्ये तृतीयाध्याये ॥

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ॥
धियोयोनः प्रचोदयात् ॥३५॥

पदार्थः–हम लोग। (सवितु) सब जगतके उत्पन्न करने वा। (देवस्य) प्रकाशमय शुद्ध, वा सुख देनेवाले परमेश्वरका जो। (वरेण्यम्) अतिश्रेष्ठ (भर्ग) पापरूप दुःखोंके मूलको नष्ट करनेवाला (तेज) स्वरूप है। (तत्) उसको। (धीमहि) धारण करें, और। (य) जो अंतर्यामी सब सुखोंका देनेवाला है, वह अपनी करुणाकरके। (न) हम लोगोंकी। (धिय) बुद्धियोंको उत्तम २ गुणकर्मस्वभावोंमें। (प्रचोदयात्) प्रेरणा करें ॥ ३५ ॥

भावार्थ–मनुष्योंको अत्यत उचित है कि, इस सब जगतके उत्पन्न करने वा सबसे उत्तम सब दोषोंके नाश करनेवाले तथा अत्यत शुद्ध परमेश्वरहीकी स्तुति प्रार्थना और उपासना करें। किस प्रयोजनकेलिये? जिससे वह धारण वा प्रार्थना किया हुआ, हम लोगोंको खोटे २ गुण

और कर्मोंसे अलग करके अच्छे२ गुण कर्म और स्वभावोंमें प्रवृत्त करे, इसलिये। और प्रार्थनाका मुख्य सिद्धांत यही है कि, जैसी प्रार्थना करनी, वैसाही पुरुषार्थसें कर्मका आचरण भी करना चाहिये ॥३५॥

तथा सन १८७५ ई० छापेके सत्यार्थप्रकाशके तृतीय समुल्लासमें ऐसे लिखा है ॥ गायत्रीमंत्रमें जो प्रथम ॐकार है उसका अर्थ प्रथम समुल्लासमें लिखा है, वैसाही जान लेना ॥ 'भूरिति वै प्राणः। भुवरित्यपानः। स्वरिति व्यानः यह तैत्तिरीयोपनिषद्का वचन है ॥ प्राणयति चराचरं जगत् स प्राणः। जो सब जगत्के प्राणोंका जीवन कराता है, और प्राणसे भी जो प्रिय है, इस्से परमेश्वरका नाम प्राण है; सो भूः शब्द प्राणका वाचक है. और भुवः शब्दसें अपान अर्थ लिया जाता है. अपानयाति सर्वं दुःखं सोऽपानः। जो मुमुक्षुओंको और मुक्तोंको सब दुःखसें छोडाके आनंदस्वरूप रक्खे, इस्से परमेश्वरका नाम अपान है. सो अपान भुवः शब्दका अर्थ है. व्यानयति स व्यानः। जो सब जगत्के विविध सुखका हेतु, और विविध चेष्टाका भी आधार, इस्से परमेश्वरका नाम व्यान है. सो व्यान अर्थ स्वः शब्दका जानना। तत् यह द्वितीयाका एकवचन है. सवितुः षष्ठीका एकवचन है। वरेण्यं द्वितीयाका एकवचन है। भर्गः द्वितीयाका एकवचन है। देवस्य षष्ठीका एकवचन है। धीमहि क्रियापद है। धियः द्वितीयाका बहुवचन है। यः प्रथमाका एकवचन है। नः षष्ठीका बहुवचन है। प्रचोदयात् क्रियापद है ॥ सविताशब्दका और देवशब्दका अर्थ प्रथम समुल्लासमें कह दिया है, वहीं देख लेना ॥ वर्तुमर्हं वरेण्यं। नाम अतिश्रेष्ठम्। भर्गो नाम तेजः, तेजोनाम प्रकाशः, प्रकाशो नाम विज्ञानम्, वर्तुं नाम स्वीकार करनेकों जो अत्यंत योग्य उसका नाम वरेण्य है, और अत्यंत श्रेष्ठ भी वह है, धीनाम बुद्धिका है, नः नाम हम लोगोंकी, प्रचोदयात् नाम प्रेरयेत्. हे परमेश्वर! हे सच्चिदानंदानंतस्वरूप! हे नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव! हे कृपानिधे! हे न्यायकारिन्! हे अज! हे निर्विकार! हे निरंजन! हे सर्वांतरयामिन्! हे सर्वाधार! हे सर्वजगत्पितः! हे सर्वजगदुत्पादक! हे अनादे! हे विश्वंभर! सवितुर्देवस्य तव यद्ध-

रेण्य भर्गं तद्दय धीमहि तस्य धारण वय कुर्वीमहि। हे भगवन्! य' सविता देव परमेश्वर स भवान् अस्माक धिय प्रचोदयादित्यन्वय॰॥ हे परमेश्वर! आपका जो शुद्धस्वरूप ग्रहण करनेके योग्य जो विज्ञानस्वरूप उसको हम लोग सब धारण करें, उसका धारणज्ञान उसके ऊपर विश्वास और दृढ निश्चय हम लोग करें, ऐसी कृपा आप हम लोगोंपर करें, जिस्से कि, आपके ध्यानमें और आपकी उपासनामें हम लोग समर्थ होंय, और अत्यत श्रद्धालु भी होंय जो आप सविता और देवादिक अनेक नामोंके वाच्य अर्थात् अनत नामोंके अद्वितीय जो आप अर्थ हैं नाम सर्वशक्तिमान् सो आप हम लोगोंकी बुद्धियोंको धर्म विद्या मुक्ति और आपकी प्राप्तिमें आपही प्रेरणा करें कि, बुद्धिसहित हम लोग उसी उक्त अर्थमें तत्पर और अत्यत पुरुषार्थ करनेवाले होंय इस प्रकारकी हम लोगोंकी प्रार्थना आपसें है, सो आप इस प्रार्थनाको अगीकार करें, यह सक्षेपसें गायत्री मत्रका अर्थ लिख दिया, परतु उस गायत्रीमत्रका वेदमें इसप्रकारका पाठ है॥ "*ॐभूर्भुव॰स्व ॥ तत्सवितुर्वरेण्यभर्गोदेवस्यधीमहि॥* धियोयोन॰ प्रचोदयात् ॥ इति ॥ तथा सन १८८९ ई० के छापेके सत्यार्थ प्रकाश, और सस्कारविध्यादिग्रथोंमें भी, प्राय॰ इसीतरेंका अर्थ लिखा है, परतु किसी २ स्थानमें फरक भी मालुम होता है॥

इन पूर्वोक्त अर्थोसें सिद्ध होता है कि, वेदपुस्तक, और वेदोंके अर्थ ईश्वरोक्त नही है, किंतु, ब्राह्मण ऋषियोंकी स्वकपोलकल्पना है, परस्पर विरुद्ध होनेसें

तथा ऋग्वेदका भाष्य सायणाचार्यके भाष्यविना कोइ भी प्राचीन भाष्य इस देशमें सुननेमें नही आता है। और जो ऋग्वेदादिका रावण॰ भाष्य सुननेमें आता है, और तिसका करनेवाला वो रावण था कि, जिसको श्रीरामचद्र लक्ष्मणजीने मारा था यह कथन तो, महा मिथ्या है क्यों कि, श्रीरामचद्रजी तो श्रीकृष्णजीसें लाखों वर्ष पहिलां होगए है, और वेदोंकी सहिता तो श्रीकृष्णजीके समयमें व्यासजीनें ऋषियों पाससें सर्वश्रुतियां लेके एकत्र करके बांधी, तिसका नाम वेदसहिता

कहते हैं. और ऋग्, यजुः, साम, अथर्व, ये नाम भी व्यासजीनेही रक्खे हैं; ऐसा कथन महीधरकृत यजुर्वेदभाष्यमें लिखा है.

जब वेदका एक पुस्तकही रावणके समयमें नही था तो, तिसऊपर रावणने भाष्य रचा किसतरे माना जावे? जेकर किसी ब्राह्मणका नाम रावण होवे, और तिसने वेदोंपर भाष्य रचा होवे, यह तो मान भी सकते हैं. परंतु वो भाष्य कब रचा गया? और कहां गया? क्यों कि, सायणाचार्यने ऋग्वेदके भाष्य रचते हुएने, यह नही लिखा है कि, मैं अमुक भाष्यके अनुसारे नवीन भाष्य रचता हूं; जैसें महीधरने वेददीपमें लिखा है कि मैं माधव उव्हटादिके भाष्यानुसार रचना करता हूं.। या तो सायणाचार्यकों प्राचीन कोइ भाष्य नही मिला होवेगा। और जे कर मिला होवेगा तो तिसके अर्थ सायणाचार्यको सम्मत नही होवेंगे, इसवास्ते अपने मतानुसार नवीन भाष्य रचके प्राचीन भाष्य लोप करदिया होवेगा; इसवास्ते ही वेदवेदांतके पुस्तकोंके भाष्यमें बहुत गडबड है. कोइ किसीतरेंके अर्थ करता है, और कोइ उससें अन्यतरेंके, कोइ उससें भी अन्यतरेंके; जैसें व्याससूत्रोपरि आठ आचार्योंने आठ तरेंके भाष्योंमें अन्य २ प्रकारके अर्थ लिखे हैं.। शंकर १, आनंदतीर्थ २, निंबार्क ३, भास्कर ४, रामानुज ५, शैवमतप्रवर्तक ६, वल्लभ ७, भिक्षु ८.। इनके रचे भाष्यके मत यथाक्रमसें जान लेने.। केवलाद्वैत १, द्वैत २, द्वैताद्वैत ३, द्वैताद्वैत ४, विशिष्टाद्वैत ५, विशिष्टाद्वैत ६, शुद्धाद्वैत ७, अविभागाद्वैत ८.॥ इसवास्ते वेदवेदांतके पुस्तकोंके प्राचीन भाष्य, और टीका नही मालुम होते हैं;। इसवास्ते सर्व भाष्यकारादिकोंने अपने २ मतानुसार अपनी २ अटकलपच्चीसें अर्थ लिखे हैं. मीमांसाके वार्तिककार कुमारिलभट्टवत्. आधुनिक भाष्यकर्त्ता स्वामिदयानंदसरस्वतीवच्च.। इसवास्ते इन सर्व ग्रंथोंसें प्रमाणिक अर्थ नही सिद्ध होता है.

और माधवाचार्य अपने रचे शंकरदिग्विजयमें लिखते हैं कि, शंकराचार्यकों व्यासजी साक्षात् मिले, तब उनोने व्यासजीसें कहा कि, मेरे रचे अर्थ कैसे हैं? तब व्यासजीने कहा कि, तेरे अर्थ सर्व प्रमाणिक

है । इससे भी यही सिद्ध होता है कि, शकरस्वामीने भी अपने मतानु सार अटकलपच्चूसें अर्थ लिखे हैं, नतु प्राचीनग्रथानुसार इसवास्ते य सर्व ग्रथ अप्रमाणिक है, भिन्न २ रचना होनेसें । और जो शकरभाष्यकी सम्मति आप व्यासजीने शकरस्वामीको दीनी लिखी है, सो शकरभाष्यकी उत्तमता प्रसिद्ध करनेवास्ते है, सो तो स्वमतानुरागी विना अन्य कोइ भी प्रेक्षावान् नही मानेंगे क्यों कि, सांप्रतकालमें अनेक जन वेदोंके अर्थोका सत्यानाश कर रहे हैं तो, क्या व्यासजी सूते पडे हैं। जो सांप्रतिकालमें आयके किसीको भी वेदोंके सच्चे अर्थ नहीं बतलाते हैं । ! ! हमने जो वेदोंकी बाबत समीक्षा लिखी है, सो अपने मतके अनुराग, और वेदोंके ऊपर द्वेषकरके नही लिखी है किंतु, यथार्थ सर्वज्ञके रचे हुए वेदपुस्तक है कि, नही ? इस बातके निर्णयवास्ते हमने इतना परिश्रम उठाया है

पूर्वपक्ष —मनुजी तो मनुस्मृतिके दुसरे अध्यायमें लिखते हैं कि। "योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विज । स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दक ॥ ११ " ॥ अर्थ ॥ जो ब्राह्मण, हेतुशास्त्र (तर्कशास्त्र) आश्रयसें श्रुतिस्मृतिको न माने, अनादर करे, तिसको साधु पुरुषोंने बहिर निकाल देना क्यों कि, वेदका जो निंदक है, सो नास्तिक है इसवास्ते तुम भी नास्तिकही हो, वेदोंके निंदक होनेसें

उत्तरपक्ष —इस कथनसें तो जैन, बौद्ध, ईसाइ, मुसलमान, यहूदी, पारसी, आदिमतोंवाले सर्व नास्तिक ठहरेंगे क्यों कि, येह सर्व वेदोंको नही मानते हैं तथा कितनेक वेदांती, और कितनेक सनातन धर्मीआदि भी नास्तिक ठहरेंगे, वेदोक्त यजन याजनादिके न माननेसें तथा ऋग्वेद तो, अग्नि, इन्द्र, वरुण, सोम, यम, उषा, सूर्य, मैत्रावरुण, अश्विनौ, वायु, नदीया, समुद्र, इत्यादिककी स्तुति प्रार्थना और घोडेका यज्ञ इत्यादिसें प्राय भरा है और यजुर्वेद प्राय हिंसक यज्ञोंके विधिसेंही भरा है साम और अथर्व भी वैसे ही हैं । और उपनिषदोंमें प्रायः एक ब्रह्मही की सिद्धिकेवास्ते सर्व प्रयत्न करा है, एक ऋग्वेदके पुरुषसूक्तमें, मा

यजुर्वेदके ४० मे अध्यायमें सृष्टिकर्त्ता ईश्वरादिका कथन है. इसकेविना अन्य कौनसा अतिउत्तम, जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्षादितत्त्वोंका, वा देव गुरु धर्मादि तत्त्वोंका कथन वेदोंमें है ? जिसके निंदने, और न माननेसें नास्तिक कहे गए ? दूसरे मतवाले भी अपने पुस्तकोंमें ऐसा लिख सकते हैं। यथा। "योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः ॥ स साधुभिः सदा श्लाघ्यो नास्तिको वेदस्थापकः" ॥ अर्थः ॥ जो ब्राह्मण, 'उपलक्षणसें अन्यका भी ग्रहण जानना' तर्कशास्त्रके आश्रयसें वेदस्मृतिका अनादर करे, सो साधु पुरुषोंकरके सदा श्लाघनीय होता है. क्यों कि, जो वेदका स्थापक है, सो नास्तिक है. क्यों कि, वेद महाहिंसक पुस्तक है. । उक्तं च। "पसुवहाय सव्वे वेया" अर्थात् पशुयोंके वध करनेकेवास्तेही सर्व वेदोंके पुस्तक हैं, सो कथन अज्ञानतिमिरभास्करसें देख लेना. । तथा महाभारतके शांतिपर्वके १०९ अध्यायमें लिखा है। "अहिंसार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतं। यः स्यादहिंसासंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः ॥ १२ ॥ श्रुतिधर्मइति ह्येके नेत्याहुरपरे जनाः"। इत्यादि। अर्थः ॥ भूतजीवोंकी अहिंसा दयाकेवास्ते धर्मप्रवचन करा है, इसवास्ते जो अहिंसासंयुक्त धर्म होवे, सोइ धर्म है, ऐसा निश्चय है. ॥ [श्रुतीति श्रुत्युक्तोर्थः सर्वो धर्म इत्यपि न श्येनादेर्धर्मत्वाभावात्। 'फलतोपि च यत्कर्म नानर्थेनानुबध्यते। केवलं प्रीतिहेतुत्वात्तद्धर्म इति कथ्यते' इतिवचनात्, श्येनादिफलस्य शत्रुवधादेरनर्थत्वादुक्तलक्षण एव धर्म इत्यर्थः। इतिटीकायाम् ॥] श्रुतिमें जो अर्थ कथन करा सोइ धर्म है, ऐसे कितनेक कहते हैं; परंतु, अपर कितनेक जन कहते हैं कि, श्रुत्युक्त जो अर्थ है, सो धर्म नही है; श्येनादि यज्ञोंको धर्मके अभाव होनेसें. फलसें भी, जो कर्म अनर्थके साथ संबंधवाला न होवे, किंतु केवल प्रीतिहेतु होवे, सो धर्म कहिए. इस वचनसें, श्येनादिके फलकों शत्रुवधादि अनर्थरूप होनेसें, उक्तलक्षण अर्थात् अहिंसालक्षणरूप धर्मही है. । इत्यादि।

तथा महाभारतके शांतिपर्वमें १७५ अध्यायमें पितापुत्रके संवादमें ऐसा लिखा है. यथा। "पशुयज्ञैः कथं हिंस्रैर्मादृशो यष्टुमर्हति।इत्यादि।" भावार्थ इसका यह है कि, युधिष्टिर भीष्मजीसें पृच्छा करते हैं कि, इस

सर्वभूतोंके क्षय करनेवाले जरारोगादिकरके पुरुषोंको दुःख देनेवाले कालमें श्रेय (कल्याण) कारी क्या पदार्थ है? तिसको हे पितामह! आप कहो, जिससें हम उसको अंगीकार करे तब भीष्म पितामह, पुरातन इतिहास कथन करते हुए, जिसमें मेधावीनामा पुत्रके धर्ममार्गके पूछा हूआँ, पिताने कहा अग्निहोत्रादि यज्ञ कर, तब तिसके उत्तरमें पुत्र जवाब देता है । पशुयज्ञैरित्यादि । मादृशः मेरेसरिखा मोक्षार्थका ज्ञान कार हिंसक पशुयज्ञोंकरके यज्ञ करनेको कैसें योग्य है? अपि तु कदापि नही अर्थात् मेरेसरिखे जानकारको ऐसे हिंसक पशुयज्ञ करने योग्य नही है । इत्यादि ॥

इसवास्ते वेदोंके पुस्तक अप्रमाणिक है, युक्तिप्रमाणसें बाधित होनेसें सो कथन सक्षेपसें ऊपर लिख आए हैं इसवास्ते यह कथन युक्तियुक्त है कि, जो वेदोंका स्थापक है, सोइ नास्तिक है अन्य नही और यदि वेदोंके निंदकहीको नास्तिक मानोंगे, तब तो, वेदव्यास, युधिष्ठिर, भीष्म पितामह, मेधावी आदि भी नास्तिक ठहरेंगे, वेदोक्त यज्ञको न माननेसें तथा मत्स्यपुराण, जो कि वेदव्यासका रचा कहा जाता है, और जिसका नाम महाभारतमें सक्षेपरूप वर्णनसहित लिखा है, उसमें ऐसे लिखा है ॥

(ऋषयऊचु)

कथं त्रेतायुगमुखे यज्ञस्यासीत् प्रवर्त्तनम् ॥
पूर्वे स्वायंभुवे सर्गे यथावत् प्रब्रवीहि नः ॥ १ ॥
अतर्हितायां सध्याया सार्द्ध कृतयुगेन हि ॥
कालाख्याया प्रवृत्ताया प्राप्ते त्रेतायुगे तथा ॥ २ ॥
औषधीषु च जातासु प्रवृत्ते वृष्टिसर्जने ॥
प्रतिष्ठितायां वार्त्तायां ग्रामेषु च पुरेषु च ॥ ३ ॥
वर्णाश्रमप्रतिष्ठान कृत्वा मत्रैश्च तै पुन ॥
सहितास्तु सुसंहृत्य कथं यज्ञ प्रवर्तित ॥
एतच्छ्रुत्वाब्रवीत् सूत श्रूयता तत् प्रचोदितम् ॥ ४ ॥

(सूतउवाच)

मंत्रान् वै योजयित्वा तु इहामुत्र च कर्मसु॥
तथा विश्वभुगिंद्रस्तु यज्ञं प्रावर्तयत् प्रभुः॥५॥
दैवतैः सह संहृत्य सर्वसाधनसंवृतः॥
तस्याश्वमेधे वितते समाजग्मुर्महर्षयः॥६॥
यज्ञकर्मण्यवर्तंत कर्मण्यग्रे तथर्त्विजः॥
हूयमाने देवहोत्रे अग्नौ बहुविधं हविः॥७॥
संप्रतीतेषु देवेषु सामगेषु च सुस्वरम्॥
परिक्रांतेषु लघुषु अध्वर्युपुरुषेषु च॥८॥
आलब्धेषु च मध्ये तु तथा पशुगणेषु वै॥
आहूतेषु च देवेषु यज्ञभुक्षु ततस्तदा॥९॥
यइंद्रियात्मका देवा यज्ञभागभुजस्तु ते॥
तान् यजंति तदा देवाः कल्पादिषु भवंति ये॥१०॥
अध्वर्युप्रैषकाले तु व्युत्थिता ऋषयस्तथा॥
महर्षयश्च तान् दृष्ट्वा दीनान् पशुगणांस्तदा॥
विश्वभुजं ते त्वपृच्छन् कथं यज्ञविधिस्तव॥११॥
अधर्मो बलवानेष हिंसाधर्मेप्सया तव॥
नवः पशुविधिस्त्विष्टस्तव यज्ञे सुरोत्तम॥१२॥
अधर्मो धर्मघाताय प्रारब्धः पशुभिस्त्वया॥
नायं धर्मो ह्यधर्मोयं न हिंसाधर्म उच्यते॥
आगमेन भवान् धर्मं प्रकरोतु यदीच्छवन्तरे॥१३॥

ततस्ते ऋषयो दृष्ट्वा हृतं धर्म बलेन ते ॥
वसोर्वाक्यमनादृत्य जग्मुस्ते वै यथागतम् ॥ ३६ ॥
गतेषु ऋषिसंघेषु देवा यज्ञमवाप्नुयु ॥
श्रूयन्ते हि तप सिद्धा ब्रह्मक्षत्रादयो नृपा ॥ ३७ ॥
प्रियव्रतोत्तानपादौ ध्रुवो मेधातिथिर्वसु ॥
सुधामा विरजाश्चैव शखपाद्राजसस्तथा ॥ ३८ ॥
प्राचीनबर्हि पर्जन्यो हविर्धानादयो नृपा ॥
एते चान्ये च बहवस्ते तपोभिर्दिव गता ॥ ३९ ॥
राजर्षयो महात्मानो येषा कीर्ति प्रतिष्ठिता ॥
तस्माद्विशिष्यते यज्ञात्तप सर्वैस्तु कारणै ॥ ४० ॥
ब्रह्मणा तमसा स्पृष्ट जगद्विश्वमिद पुरा ॥
तस्मान्नाप्नोति तद्यज्ञात्तपोमूलमिद स्मृतम् ॥ ४१ ॥
यज्ञप्रवर्तन ह्येवमासीत्स्वायंभुवेन्तरे ॥
तदाप्रभृति यज्ञोऽय युगै सार्द्ध प्रवर्तित ॥ ४२ ॥

अध्याय ॥ ४२ ॥

भापार्थ ॥ ऋषियोंनें पूछा, हे सूतजी! त्रेतायुगकी आदिमें स्वायंभुव मनुके सर्गमें यज्ञोंकी प्रवृत्ति कैसें होती भयी? यह आप हमकों समझाइये । जब सत्ययुगकी सध्या समाप्त होजानेपर त्रेतायुगकी प्राप्ति होती है, तब बहुतसी औषध उत्पन्न होती हैं, अधिक वर्षा होती है, ग्रामपुरआदिकोंमें उत्तम प्रतिष्ठित वार्ते होने लगती है, उस समय सब वर्णाश्रम इकठे होकर अन्नको इकट्टा करके वेदसहिताओंसें यज्ञोंकी कैसे प्रवृत्ति करते हैं? ऋषियोंके इन वचनोंको सुनकर सूतजीने कहा कि, हे ऋषिलोगो!—इस ससारके, और परलोकके कर्मोंमें मन्त्रोंको युक्त करके विश्वका भोगनेवाला इन्द्र सर्वसाधनों और देवताओंसे युक्त होकर, जब यज्ञ करता भया, तब उस यज्ञमें बडे २ ऋषिलोग आये । ऋत्विक् भा

ह्मण यज्ञोंके कर्मोंको करके उस बडे यज्ञकी अग्निमें बहुत प्रकारसें हवन करते भये,। सामवेदी ब्राह्मण तो उच्चस्वरसें पाठ करते भये, अध्वर्यु आदिक अन्य ब्राह्मण अपने कर्म करने लगे, यज्ञमें कहे हुए पशुओंका आलंभन होने लगा, यज्ञभोक्ता ब्राह्मण और देवता आने लगे, हे ऋषि-यो! जो इंद्रियोंके भोगकी इच्छा करनेवाले देवता हैं, वही यज्ञके भागको भोगते हैं; अन्य सब देवता उन्हींका पूजन करते हैं. वेही फिर कल्पकी आदिमें उत्पन्न होते हैं. । उस यज्ञमें जब अध्वर्युके प्रेरणेका समय आया, तब ऋषिलोग खडे हो गये; और उन दीन पशुओंको देख कर विश्वभुक् देवताओंसें यह वचन बोले कि, तुम्हारे इस यज्ञका कैसा विधि है? इस हिंसा करनेका महा अधर्म है; और हे इंद्र! तेरे इस यज्ञमें यह विधि उत्तम नही है,। तैंने पशुओंके मारनेकरके यह अधर्म प्रारंभ किया है, इस हिंसारूपी यज्ञसें धर्म नही होता है; किंतु महा अधर्म होता है. जो तुम उत्तम कर्म चाहते हो तो, शास्त्रोंके अनुसार धर्म करो.। हे इंद्र तैंने त्रिवर्गकी नाश करनेवाली महादुर्व्यस-नरूप हिंसासंबंधी विधियोंकरके अपने यज्ञको रचा है. इसप्रकार ऋषि-योंसे शिक्षा किया हुआ भी इंद्र अपने अभिमानसें मोहको प्राप्त हो कर, उन तत्त्वदर्शी ऋषियोंके वचनको नही ग्रहण करता भया.। उस समय उन ऋषियोंका और इंद्रका यह बडा भारी विवाद होता भया कि, यज्ञ जंगम पशुओंसें होना चाहिये, अथवा स्थावर वस्तुओंके शाकल्या-दिकोंसें होना चाहिये। वह बडे २ शक्तिमान् महर्षि उस विवादसें महादुःखित हो कर, आकाशमें विचरनेवाले वसुराजाको इंद्रकेही समान जान कर उससें यह पूछने लगे कि, हे महाप्राज्ञ तुमने यज्ञकी विधि देखी है? जो देखी होय तो, हमारे संदेहको दूर करो.। सूतजी कहते हैं कि, वह वसुराजा ऋषियोंके वचनको सुन कर बलाबलको न विचार, वेदशास्त्रको स्मरण कर, यज्ञके तत्त्वको कहने लगा कि, शास्त्रमें यज्ञके योग्य उत्तम पशुओंकरके, अथवा मूलफलादिकोंकरके यथार्थ विधिसें यज्ञ करना चाहिये.। यज्ञका हिंसाही स्वभाव है, इसीसें वेदमें हिंसको

चिन्हवाले मत्र कहे हैं, यह मैंने तत्त्वज्ञ ऋषियोंकेही प्रमाणसें कहा है इसको आप क्षमा करियेगा, हे द्विजोत्तमलोगो! तुम जो अपनेही वचन और मत्रोंको मुख्य मानते हो तो, अन्यथाही यज्ञ करो, मेरे वचनोंको सत्य मत जानो। जब उसने ऐसा उत्तर दिया, तब वह ऋषि अपने आत्माको तपोबुद्धिकरके युक्त कर, और अवश्यभावीको देख कर उस वसुको नीचे जानेका शाप देते भये। उससमय वह वसुराजा पाताललोकमें प्राप्त होता भया ऋषियोंके शापसें ऊपरके लोकोंका भी विचरनेवाला हो कर, नीचेके लोकोंको प्राप्त होता भया। उस वचनके कहनेसें वह धर्मज्ञ भी राजा पातालमें प्राप्त होता भया इस हेतुसें अकेले बहुत जाननेवाले भी पुरुषको बहुतसी धारणावाले धर्मका खडन करना योग्य नही है क्योंकि, धर्मकी बडी सूक्ष्म गति है। इसकारणसें किसी पुरुषको भी निश्चयकरके कोइ धर्म न कहना चाहिये क्योंकि, देवता और ऋषियोंके प्रति स्वायभुवमनुके विना दूसरा कोइ पुरुष भी कहनेको नही समर्थ है। ऋषिलोग यज्ञमें कभी हिंसा नही करते, और किरोडों ऋषि तपस्याहीके प्रभावसें स्वर्गमें प्राप्त हुए हैं। इसीहेतुसें बडे महात्मा ऋषि हिंसाधर्मकी प्रशसा नही करते हैं तपोधन ऋषि, शिलोंछवृत्ति, मूल, फल, शाक, जल और पात्र, इनहीके दान करनेसें स्वर्गमें प्राप्त हुए हैं द्रोह मोहसें रहित, जितेंद्री, भूतोंपर दया, शाति, ब्रह्मचर्य, तप, शौच, क्रोध न करना, क्षमा और धृति, यह सब सनातन धर्मके मूल हैं द्रव्य तो मत्रात्मक यज्ञ है, तप समतात्मक यज्ञ है, यज्ञोंसेंही देवयोनि प्राप्त होती हैं, तपकरके विराट शरीर प्राप्त होता है कर्मोंके त्याग करनेसें ब्रह्माके शरीरको प्राप्त होता है, वैराग्यसें मायाका नाश होता है, और ज्ञानसें कैवल्य मोक्ष प्राप्त होता है यह पांच गति कही है। प्रथम स्वायभुवमनुके अतरमें ऐसे यज्ञके प्रवृत्त होनेमें, ऋषियोंका और देवतायोंका बडा विवाद हुआ है। इसपिछे पीछे वह ऋषि बलसें हत हुए धर्मको देख कर, राजा वसुका अनादर कर, अपने स्थानमें जाते भये।

जब ऋषि चले गये, तब देवतालोग यज्ञको प्राप्त होते भये. यह भी हमने सुना है कि, राजा प्रियव्रत, उत्तानपाद, ध्रुव, मेधातिथि, वसु, सुधामा, विरजा, शंखपाद, राजस्, प्राचीनबर्हि और हविर्धान, इत्यादि राजा, और अन्य भी अनेक राजा तपकरकेही स्वर्गको प्राप्त होते भये। जो राजऋषि महात्मा भये हैं, उनकी कीर्ति आजतक पृथिवीपर स्थित हो रही है, इसीसें अनेक कारणोंकरके यज्ञोंसे तपकोंही अधिक कहा है(१). इसीतपके प्रभावसें ब्रह्माजीने भी सृष्टिकी रचना करी है, इसी कारण यज्ञसें अधिक तप है; सब पदार्थोंका मूल तप है.। इसीरीतिसें स्वायंभु मुनिके अंतरमें यज्ञ प्रवृत्त हुए हैं; तभीसें ले कर यह यज्ञ सब युगोंमें प्रवृत्त हो रहा है.॥ ४२॥ इतिमत्स्यपुराणे १४२ अध्यायः॥

इस पूर्वोक्त लेखसें भी यही सिद्ध है कि, जो वेदोंका स्थापक है, सोही नास्तिक है; अधोगति जानेसें, वसुराजावत्; नतु निंदक, ऊर्ध्व स्वर्गगति जानेसें, पूर्वोक्त महर्षियोंवत्.। तथा जैनी लोक जो मानते हैं कि, प्रायः हिंसक यज्ञ वसुराजाके समयमें सुरु हुए हैं(२), तिसको भी यह पूर्वोक्त लेख सिद्ध करे है. अपरं च स्वायंभु मुनिके अंतरमें इन हिंसक यज्ञोंकी प्रवृत्ति महर्षियोंका कहना न मान कर इंद्रने अभिमानके वश हो कर करी है, तब तो सिद्ध हुआ कि, प्रथम हिंसक यज्ञ नही होते थे, और हिंसक यज्ञके न होनेसें हिंसक यज्ञोंके प्रतिपादक वेदादिशास्त्र, जो कि सांप्रति विद्यमान है, और जिनमें हिंसक यज्ञोंका मेघ वर्षाया है, तिनोंका अभाव सिद्ध हुआ; तब तो सांप्रति कालके विद्यमान वेदादि शास्त्र अनादि नही, किंतु बनावटी सिद्ध हुए.। यदि कहो कि, प्राचीन वेद नष्ट हो गये, और यह हिंसक श्रुतियों बनाके एकत्र करके वेदकेही नामसें पुस्तक प्रसिद्ध हुआ, यह तो हम मानतेही हैं, तथा हमको बडा दुःख होता है कि वसुराजा 'यज्ञके योग्य उत्तम पशुओंकरके यज्ञ

---

(१) इस कथनसें 'स तपोऽतप्यत्' इत्यादि स्थानपर भाष्यकारने आलोचनात्मक तप करा लिखा है, सो असत्य भासन होता है

(२) देखो जैनतत्त्वादर्शका एकादश (११) परिच्छेद.

करना चाहिये' इस वचनके कहनेमात्रसेंही, अधोगतिको प्राप्त हुआ तो, जो लोक वेदशास्त्र और धर्मके नामसें दीन अनाथ निराधार बकरे गाय घोडे आदि पशुओंको यज्ञमें हवन करके निर्दय हो कर यज्ञशेषको खाते हैं, वा खाते थे, उन विचारोंकी क्या गति होगी? अपशोस!!! कोइ नही विचारते हैं कि, आस्तिकनास्तिकके क्या क्या लक्षण है?

पूर्वपक्ष—आपका कहना तो ठीक है, परंतु महाभारत जिसको हम लोग पांचमा वेद मानते हैं, तिसमें ऐसा लेख है॥

पुराणं मानवो धर्मः सांगो वेदश्चिकित्सितम्॥
आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हंतव्यानि हेतुभिः॥

अर्थ—पुराण, मनुस्मृति, षडंगवेद अर्थात् ऋग्, यजु, साम, अथर्व, यह चार वेद, और शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छंद, ज्योतिष, निरुक्त, यह षडंग, तथा सुश्रुतचरकादि चिकित्साशास्त्र, ये सर्व आज्ञासिद्ध हैं अर्थात् जो कुछ इनमें लिखा है, सो सर्व सत्य २ करके मान लेना, परंतु इनको युक्तिप्रमाणोंसें खंडित न करना इति॥

उत्तरपक्ष—वाहजीवाह!! क्याही काबुलके उजडूयोंके घोडेका अंडा है! जिसकी किसीसें भी परीक्षा न करानी, और न किसीको दिखलाना(१), जैनोंका तो, इस पूर्वोक्त भारतके कथन उपर यह कहना है॥

अस्तिवक्तव्यता काचित्तेनेदं न विचार्यते॥
निर्दोषं काञ्चनं चेत्स्यात् परीक्षाया बिभेति किम्॥१॥

अर्थ—जो लोग यह कहते हैं कि, अमुक २ ग्रंथ आज्ञासिद्ध है, तिसको प्रमाणयुक्तिसें विचारना नही, किंतु तिन ग्रंथोंमें जो लिखा है

(१) सुनते हैं कि, कितनेक काबुली दिल्ली शहरमें आये थे, वहां उन्होंने पेठेका फल देखा, उस बडे फलको देखके पूछने लगे कि, यह क्या है? तब उन उजडोंको देखके कमलासन कहा, यह घोडेका अंडा है, तब उन्होंने पूछा इसमेंसें कैसा घोडा निकलता है? कमलासन कहा दरीयाई घोडा निकलता है, तब उन्होंने सस्ते इक घोडेका अंडा मानके पेठा (कुष्मांडफल) मोल लेलिया कमलासनेने कहा, खांसाहब! इस अंडेको जमीन ऊपर नही रखना, और किसीको दिखाना नहीं यदि पूर्वोक्त काम करोगे तो, तुमारा अंडा गंद जायगा!!! इत्यादि॥

सो सर्व सत्य करके मान लेना; तो हम कहते हैं कि, तिन पुस्तकोंमें ऐसी कोइ वक्तव्यता है, जो कि प्रमाणयुक्तिद्वारा विचार करनेसें बाधित हो जावे; इसवास्तेही तुम कहते हो कि, प्रमाणयुक्तिसें तिसकी परीक्षा नही करनी? जेकर सुवर्ण निर्दोष है तो, तिसको सराफकी परीक्षाका क्या भय है? खोटेकोही परीक्षाका भय है, खरेको नही.। इससें पूर्वोक्त ग्रंथ खोटसंयुक्त है, तिनके खोट छिपानेकेवास्तेही तुमारे मतमें ऐसे २ श्लोकरूप जाल बनाके लिख गए हैं कि, जिसमें अज्ञानी पुरुषरूप मत्स्य फसके मर रहे हैं. सर्वज्ञोंका कहना तो यह है कि, परीक्षाकरके वस्तुतत्त्व ग्रहण करना चाहिये. हां. जो वस्तु प्रत्यक्ष अनुमानका विषय न होवे, तिसको आगमप्रमाणसें मानना चाहिये; परंतु आगम भी कैसा? जो आप्तप्रणीत होवे. आप्त कौन? जिसके अष्टादश (१८) दूषण अत्यंत दूर हो गये होवें; और आप्तका निर्दोषपणा तिसके संपूर्ण जन्मचरितके सुननेसें, और तिसकी मूर्तिके देखनेसें सिद्ध होता है; सो तो, प्रेक्षावानही कर सकते हैं, न तु मूढ कदाग्रही व्युद्ग्राहित. सो विस्तारपूर्वक देखके परीक्षा करनी होवे, उसने तिन २ आप्तोंके चरित वांचने. और संक्षेपरूप तो इसीग्रंथमें लिख आये हैं. इसवास्ते जिस शास्त्रका कथन युक्तिप्रमाणसें बाधित न होवे, सो मानना चाहिये.

तथा मनुजीके कथन करे श्लोकसें यह भी सिद्ध होता है कि, मनुजीके समयमें भी वेदोंके निंदक थे, जिनको मनुजीने नास्तिक कहा है. परंतु यह कहना मिथ्या है; क्योंकि, जेकर तो वेदोंका कथन प्रमाणयुक्तिसें बाधित न होवे, तब तो सत्य है कि, जो वेदोंका निंदक है सो नास्तिक है. और जेकर वेदोंका कथन युक्तिप्रमाणसें बाधित है, तब तो, वेदोंके माननेवाले और आप्तप्रणीत सत्य शास्त्रोंको मिथ्या शास्त्र कहनेवाले, और सत्य शास्त्रोंके माननेवालोंको नास्तिक कहनेवालेही नास्तिक हैं.

पूर्वपक्षः—जैन मतके मूल आगमग्रंथोंमें गृहस्थधर्मके पच्चीस वा सोलां संस्कार नही है, इसवास्ते जैनशास्त्र माननेयोग्य नही है.

उत्तरपक्ष —ऐसा माननेसें तो चारों वेद भी माननेयोग्य सिद्ध नही होवेंगे, क्योंकि, तिनमें भी सपूर्ण सस्कार वर्णन नही है अपर च ये पच्चीस वा सोलां सस्कार प्राय ससारव्यवहारमेंही दाखिल है, और जैनके मूल आगममें तो नि केवल मोक्षमार्गकाही कथन है, और जहां कहीं चरितानुवादरूप ससारव्यवहारका कथन भी है तो, ऐसा है कि, जब स्त्री गर्भवती होवे तब गर्भको जिन २ कृत्योंके करनेसें तथा आहार व्यवहार देशकालोचितसें विरुद्ध करनेसें गर्भको हानि पहुचे सो नही करती है, और पुत्रके जन्म हुआपीछे प्रथमदिनमें लौकिक स्थिति मर्यादा करते हैं, तीसरे दिन चद्रसूर्यका पुत्रको दर्शन कराते हैं, छट्ठे दिनमें लौकिक धर्मजागरणा करते हैं, और ११ मे दिन अशुचि कर्म, अर्थात् सूति कर्मसें निवृत्त होते हैं, और विविधप्रकारके भोजन उपस्कृत करके न्याती वर्गादिको भोजन जिमाते हैं, और तिनके समक्ष पुत्रका नाम स्थापन करते हैं, जब आठ वर्षका होता है, तब तिसको लिखितगणितादि बहत्तर (७२) कला पुरुषकी पुत्रको, और चौसठ (६४) कला स्त्रीकी कन्याको सिखलाते हैं, तदपीछे जब तिसके नव अग सूते प्रबोध होते हैं, और यौवनको प्राप्त होता है, तब तिसके कुल, रूप, आचारसदृश कुलकी निर्दोष कन्याके साथ विवाहविधिसें पाणिग्रहण करवाते हैं, पीछे ससारके यथा विभवसें भोगविलास करता है, पीछे साधुके जोग मिलें गृहस्थधर्म वा यतिधर्म अगीकार करता है, धर्म पालके पीछे विधिसें प्राण त्याग करता है, इतना विधि गृहस्थ व्यवहारादिकका श्रीआचारांग, विवाहप्रज्ञप्ति (भगवती), ज्ञाता धर्मकथा, दशाश्रुत स्कंधके आठमे अध्ययनादिमें चरितानुवादरूप प्रतिपादन करा है तीर्थंकरके जन्म हुये तिनके मातापिता जे कि श्रावक थे, तिनोंने भी यह पूर्वोक्त विधि करा है इसवास्ते मूल आगमोंमें चरितानुवादकरके गृहस्थव्यवहारका विधि सूचन करा है, परतु विधिवादसें कथन करा हुआ हमको मालुम नही होता है पर आदि जगत् व्यवहार आदीश्वर श्रीऋषभदेवजीनेही चलाया था, तिनके चलाये व्यवहारकाही ब्राह्मणोंने उलटपलट घालमेल करके २५ वा १६

संस्कार जगत्में प्रसिद्ध करे हैं, ऐसें जैनमतवाले मानते हैं. तथापि पूर्वोक्त आगमकी सूचनाअनुसार, और परंपरायसें चले आए जगत्व्यवहारधर्मके सोलां संस्कार श्रीवर्द्धमानसूरिजीने आचारदिनकर नामा शास्त्रमें लिखे हैं, वह अग्रिमतन स्तंभोंमें लिखेंगे. इति. ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रंथे वेदभाष्यादीनामप्रमाणत्ववर्णनोनामद्वादशस्तम्भः ॥ १२ ॥

॥ अथत्रयोदशस्तम्भारम्भः ॥

अथ त्रयोदश (१३) स्तंभमें संस्कारोंका वर्णन लिखते हैं. ॥

तत्त्वज्ञानमयो लोके य आचारं प्रणीतवान् ॥
केनापि हेतुना तस्मै नम आद्याय योगिने ॥ १ ॥

श्रीवर्द्धमानसूरिजीने आचारदिनकर नामा ग्रंथ बनाया है, जिसके ४० उदय हैं. जिनमेंसें गर्भाधानादि षोडश (१६) उदयोंका वर्णन यहां लिखते हैं, प्रकृतोपयोगित्वात्. तत्रादौ प्रथम गर्भाधानसंस्कारका वर्णन इस त्रयोदशस्तंभमें करते हैं. और संस्कारोंका वर्णन भी उत्तरोत्तर स्तंभोंमें करेंगे. ॥ क्योंकि, समस्त परमार्थके जाणकार भगवान् अर्हन् भी गर्भसें लेकर राज्याभिषेकपर्यंत संस्कारोंको अपने देहमें धारण करते हुए, तथा देशविरतिरूप गृहस्थधर्ममें प्रतिमावहन सम्यक्त्वारोपणरूप आचार आचरण करते हुए, तथा निमेषमात्र शुक्लध्यानकरके प्राप्य केवल ज्ञानकेवास्ते दीर्घ कालतक यतिमुद्रातपः चरणादि धारण करते हुए, तथा केवलज्ञान हुए बाद परकी उपेक्षाकरके रहित चिदानंदरूप भी भगवान् समवसरणमें विराजमान हो कर धर्मदेशना, गण, गणधरस्थापना और संशयव्यवच्छेद (संशयका दूर करना) इत्यादि करते हुए, तथा तिस भगवान्के निर्वाण बाद इंद्रादि देवते प्राणरहित कर्तृकर्मकरके रहित भी तिस भगवान्के शरीरका संस्कार करते हैं, तथा स्तूपादि करतै हैं. तिसवास्ते आर्हत्के मतमें लोकोत्तर पुरुषोंके आचीर्ण होनेसें आचार प्रमाणभूत है.

इसीवास्ते आचारका वर्णन करते हैं यद्यपि ॥ "नाण सवच्छ मूलं च साहा खधो य दसण। चारित्त च फल तस्स रसो मुक्खो जिणोइओ॥१॥" अर्थः ॥ सर्वत्र मूलसमान ज्ञान है, और दर्शन (श्रद्धा) शाखा और खधसमान है, तिस वृक्षका फल चारित्र है, और चारित्ररूप फलका रस जिनोदित भगवान्का कहा मोक्ष है ॥ इसवास्ते सिद्धातमहोदधि (समुद्र) के कल्लोलरूप चारित्रका व्याख्यान कोइ भी नही कर सकते हैं, तो भी, श्रुतकेवलीप्रणीतशास्त्रार्थलेशको अवलबन करके किंचित् आचारयोग्य वचन कथन करते हैं ॥ प्रथम आचार दोप्रकरका है, यत्याचार —यतियोंका आचार १, और गृहस्थाचार —गृहस्थोंका आचार २
॥ यदुक्तम् ॥

सावज्जजोगपरिवज्जणाओ सव्वुत्तमो जईधम्मो ॥
बीओ सावगधम्मो तईओ संविग्गपरकपहो॥१॥ *

जिनमें यति (साधु) धर्म तो, महाव्रत समिति गुप्तिका धारण करना, परीषह उपसर्गोंका सहन करना, कषाय विषयोंका जीतना, श्रुतज्ञानका धारण करना, बाह्य अभ्यतर द्वादश प्रकार तपका करना, इत्यादि योगों करके मोक्षका देनेवाला, अर्थात् मोक्षका रस्ता है पर है दु प्राप्य, अर्थात् यतिधर्म प्राप्त करना मुश्किल है ।१। और गृहस्थधर्म, परिग्रह धारण करना, सुखासिका यथेष्ट विहारभोगोपभोगादिकोंकरके औदारिक सुख लेशका देनेवाला है, पर मोक्ष देनेमें समर्थ नही है तो भी वह गृहस्थ धर्म द्वादश (१२) व्रतोंका धारण करना, यतिजनोंकी उपासना सेवा करनी, अर्हन् भगवान्का अर्चन (पूजन) करना, दान देना, शील पालना, तप करना, भावना भावनी, इत्यादिकोंकरके उपचीयमान पुष्ट हुआ थका, परपराकरके मोक्ष देनेको समर्थ है । यत उक्तमागमे ॥

विसमो वि निअडगमणो मग्गो मुक्खस्स इह जईधम्मो ।
सुगमो वि दूरगमणो गिहत्थधम्मो वि मुक्खपहो ॥१॥

* सावद्य योगोंके त्यागनेसें सर्वोत्तम यतिधर्म कहाता है दूसरा श्रावकधर्म और तीसरा संविग्न पक्षीमार्ग कहाता है परमार्थमें संविग्नपक्षीमार्गका यतिश्रावकधर्ममें ही अंतर्भाव होजाता है

भावार्थः—इसका यह है कि, यतिधर्म जो है सो विषम है, तो भी मोक्षका निकट मार्ग है. और गृहस्थधर्म जो है सो सुगम है, तो भी मोक्षका दूर मार्ग अर्थात् चिर पाकर मोक्षको प्राप्त होता है. ॥ तथा जैसें खद्योत (टटाणा) और सूर्य, सर्षप और मेरुपर्वत, घडी और वर्ष, यूका और गज, इनोंमें वडा भारी अंतर है; तैसें गृहस्थधर्म, और यतिधर्ममें अंतर जानना. ।

यत उक्तमागमे ॥

जह मेरुसरिसवाणं खद्योयरवीण चंदताराणं ॥
तह अंतरं महंतं जइधम्मगिहच्छधम्माणं ॥१॥

आगममें भी कहा है । जैसें मेरु और सरिसव, खद्योत और सूर्य, चंद्र और तारे, इनमें अंतर है, तैसें यतिधर्म और गृहस्थधर्ममें महत् अंतर है. । इसीवास्ते यतिधर्म ग्रहणके पूर्व साधनभूत, अनेक सुरासुर यति लिंगियोंको प्रीणन (पुष्ट—तृप्त) करनेवाला, भगवान्का पूजन, साधुओंकी सेवा, इत्यादि सत्कर्म करके पवित्र, ऐसे गृहस्थधर्मको कहते हैं. तिस गृहस्थधर्ममें भी, प्रथम व्यवहारका कथन जानना, और पीछे धर्मका व्यवहार भी प्रमाणही है. क्योंकि, ऋषभादि अरिहंत भी गर्भाधान जन्मकाल आदि व्यवहारोंको आचरण करते हैं. ।

यत उक्तमागमे—जो कहा है आगममें ॥

तएणं समणस्सणं भगवओ महावीरस्स अम्मापिउणो पढमे दिवसे ठिइवडियं करंति तइय दिवसे चंदसूरदंसणं कुणांति छठे दिवसे धम्मजागरियं जागरंति संपत्ते बारसाहदिवसे विरए इत्यादि ॥

व्यवहारकर्म भगवान् भी आचरण करनेकेवास्ते आगममें कहते हैं. ॥ यतः ॥

व्यवहारो विहु बलवं जं वंदइ केवली वि छनुमच्छं ॥
आहाकम्मं भुंजइ तो ववहारं पमाणं तु ॥१॥

भावार्थ —व्यवहार भी बलवान् है, जिसवास्ते जबतक छद्मस्थको मालुम न होवे, और ना न कहे, तबतक केवली भी छद्मस्थ गुरुको वदना करता है, और छद्मस्थका ल्याया आहार यद्यपि छद्मस्थ अपनी जाणमें शुद्ध जाणकर ल्याया है, परतु केवली केवलज्ञानकरके आधाकर्मादि दूपणसयुक्त जानते हैं,तो भी व्यवहार प्रमाण रखनेकेवास्ते तिस आहारको भक्षण करते हैं, इसवास्ते व्यवहार प्रमाण है

लौकिक मतमें भी कहाहै ॥

चतुर्णामपि वेदाना धारको यदि पारग ॥
तथापि लौकिकाचार मनसापि न लङ्घयेत् ॥ १ ॥

यदि चारों वेदोंका धारक, और पारगामी होवे, तो भी लौकिका चारको मनकरके भी लघन न करे ॥ इसीवास्ते प्रथम गृहस्थधर्मके पोडश १६ सस्कार कहते हैं ।

तद्यथा श्लोका ॥

गर्भाधान पुसवन जन्मचन्द्रार्कदर्शनम् ॥
क्षीराशन चैव षष्ठी तथा च शुचि कर्म च ॥ १॥
तथा च नामकरणमन्नप्राशनमेव च ॥
कर्णवेधो मुण्डन च तथोपनयन परम् ॥ २ ॥
पाठारम्भो विवाहश्च व्रतारोपोन्तकर्म च ॥
अमी षोडशसंस्कारा गृहिणा परिकीर्त्तिता ॥३॥

भावार्थ —गर्भाधान १, पुसवन २, जन्म ३, चन्द्रसूर्यदर्शन ४, क्षीरा शन ५, षष्ठी ६, शुचिकर्म ७, नामकरण ८, अन्नप्राशन ९, कर्णवेध १०, मुडन ११, उपनयन १२, पाठारभ १३, विवाह १४, व्रतारोप १५, अतकर्म १६, येह सोला सस्कार गृहस्थीके कथन करे । इन पोडश (१६) सस्कारोंमें सें व्रतारोपसस्कारको वर्जके, शेप १५ पदरां संस्कार, यतिसाधुने गृह स्थीको नही करणे

जिसवास्ते कहा है आगममें. ॥

विद्ययं जोइसं चेव कम्मं संसारिअं तहा ॥
विद्या मंतं कुणंतो य साहू होइ विराहओ ॥१॥

अर्थः—वैदक, ज्योतिष्य, सांसारिक कर्म, विद्या, मंत्र, ये सर्व कृत्य, जो साधु गृहस्थको करे, सो साधु जिनाज्ञाका विराधक होता है. ॥

पूर्वपक्षः—तब येह व्रतारोपवर्जित १५ संस्कार किसने करने ?

उत्तरपक्षः—

अर्हन्मंत्रोपनीतश्च ब्राह्मणः परमार्हतः ॥
क्षुल्लको वाऽऽप्तगुर्वाज्ञो गृहिसंस्कारमाचरेत् ॥१॥

अर्थः—अर्हन्मंत्रोपनीत परमार्हत (परमश्रावक) ब्राह्मण, और प्राप्त करी है गुरुकी आज्ञा जिसने ऐसा क्षुल्लक श्रावक विशेष, जिसका स्वरूप १८ उदयमें लिखा है; इन दोनोंमेंसें कोइ एक गृहस्थोंको संस्कार करे.। तिनमें प्रथम गर्भाधान संस्कारका विधि लिखते हैं. ॥ जब गर्भाधान (गर्भधारण) को पांच मास होवे, तब गर्भाधानविधि, गृहस्थगुरुयों (श्रावक ब्राह्मणों) ने करना. । गर्भाधान १, पुंसवन २, जन्म ३, नाम ४ और अंत ५, इन पांच संस्कारोंमें अवश्य कर्मके हुए, मास दिनादिकोंकी शुद्धि न देखनी. । श्रवण, हस्त, पुनर्वसु, मूल, पुष्य, मृगशीर्ष, येह नक्षत्र और रवि, मंगल, बृहस्पति, येह वार पुंसवनादिकर्मोंमें कहे हैं. । इसवास्ते पांचमे माससें शुभ तिथि, वार, नक्षत्रके दिनमें पतिको बलवान् चंद्रादि देखकर, देशविरतिगुरु जिसने स्नान करा है, चोटी बांधी है, उपवीत और उत्तरासंग धारण करा है, श्वेतवस्त्र पहिना है, पंचकक्षा धारण करा है, मस्तकमें चंदनका तिलक करा है, सुवर्णमुद्रासहित दक्षिणकर सावित्रीक प्रकोष्ठबद्ध पंचपरमेष्ठि मंत्रोद्दिष्ट पांच ग्रंथियुक्त दर्भसहित कौसुंभ सूत्रका कंकण है जिसके, तथा जिसने रात्रिमें ब्रह्मचर्य पाला है, सेवन किया है; जिसने उपवास (व्रत) आचाम्ल (आंबल) निर्विकृति एकाशनादि प्रत्याख्यान करा है, संप्राप्तकरी है आजन्मसें यतिगुरुकी

आज्ञा जिसने, अर्थात् गुरुकी आज्ञाका करनेवाला, ऐसे पूर्वोक्त विशेषणों वाला जैनब्राह्मण, अथवा क्षुल्लक, गृहस्थोंके संस्कारकर्म करणेके योग्य होता है ।

उक्त च ॥

शांतो जितेंद्रियो मौनी दृढसम्यक्त्ववासन ॥
अर्हत्साधुकृतानुज्ञ कुप्रतिग्रहवर्जित इत्यादिश्लोक ॥४॥

भावार्थः—शांत, जितेंद्रिय, मौनी, दृढसम्यक्त्ववान्, अर्हन् और साधुकी आज्ञा करनेवाला, बुरा दान न लेवे, क्रोध मान माया लोभका जीपक, कुलीन, सर्व शास्त्रोंका जानकार, अविरोधी, दयावान्, राजा और रंकको समदृष्टिसें देखनेवाला, प्राणोंके नाश होते भी अपने आचारको न त्यागे, सुंदर चेष्टावाला होवे, अंगहीन न होवे, सरल होवे, सदा सद्गुरुकी सेवा करने वाला होवे, विनीत, बुद्धिमान्, क्षांतिमान्, कृतज्ञ, दोप्रकारसें द्रव्यभावसें शुचि होवे, गृहस्थोंके संस्कार करनेमें ऐसा गुरु चाहिये ॥

सो पूर्वोक्त विशेषणविशिष्ट गुरु, गर्भाधान कर्ममें प्रथम गर्भवतीके पतिकी आज्ञा लेवे । और सो गर्भवतीका पति, नखसें लेके शिखा (चोटी) पर्यंत स्नान करके, शुचि वस्त्र पहिनके निज वर्णानुसार उपवीत उत्तरीय वस्त्र उत्तरासंग करके, प्रथम शास्त्रोक्त बृहत्स्नात्रविधिसें अर्हत्प्रतिमाका स्नात्र करे । और तिस स्नात्रके पाणीको शुभ भाजनमें स्थापन करे । तिसपीछे शास्त्रोक्त विधिसें गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, गीत, वादित्रोंकरके जिन प्रतिमाकी पूजा करे । पूजाके अंतमें गुरु, गर्भवंतीको, अविधवायोंके हाथोंकरी स्नात्रोदककरके सिंचनरूप अभिषेक करवावे । पीछे सर्व जला शयोंके जलोंको एकत्र मिलाके, सहस्रमूलचूर्ण तिसमें प्रक्षेप करके, तिस जलको शांतिदेवीके मंत्रकरके, अथवा शांतिदेवीके मंत्रगर्भित स्तोत्र करके मंत्रे ॥

शांतिदेवीमंत्रो यथा ॥

"ॐ नमो निश्चितवचसे। भगवते । पूजामर्हते ।जयवते। यशस्विने । यतिस्वामिने । सकलमहासंपत्तिसमन्विताय ।

त्रैलोक्यपूजिताय।सर्वासुरामरस्वामिपूजिताय।अजिताय। भुवनजनपालनोद्यताय। सर्वदुरितौघनाशनकराय। सर्वाशिवप्रशमनाय। दुष्टग्रहभूतपिशाचशाकिनीप्रमथनाय। यस्येतिनाममंत्रस्मरणतुष्टा। भगवती। तत्पदभक्ता। विजयादेवी ॐ ह्रीं नमस्ते। भगवति। विजये। जय २। परे। परापरे। जये। अजिते। अपराजिते। जयावहे। सर्वसंघस्य भद्रकल्याणमंगलप्रदे। साधूनां शिवतुष्टिपुष्टिप्रदे। जय २ भव्यानां कृतसिद्धे। सत्वानां निर्वृतिनिर्वाणजननि। अभयप्रदे। स्वस्तिप्रदे भक्तानां जंतूनां शुभप्रदानाय नित्योद्यते। सम्यग्दृष्टीनां धृतिरतिमतिबुद्धिप्रदे। जिनशासनरतानां शांतिप्रणतानां जनानां श्रीसंपत्कीर्त्तियशोवर्द्धिनि। सलिलात् रक्ष २। अनिलात् रक्ष २। विषात् रक्ष २। विषधरेभ्यो रक्ष २। दुष्टग्रहेभ्यो रक्ष २। राजभयेभ्यो रक्ष २। रोगभयेभ्यो रक्ष २। रणभयेभ्यो रक्ष २। राक्षसेभ्यो रक्ष २। रिपुगणेभ्यो रक्ष २। मारिभ्यो रक्ष २। चौरेभ्यो रक्ष २। ईतिभ्यो रक्ष २। श्वापदेभ्यो रक्ष २। शिवं कुरु २। शांतिं कुरु २। तुष्टिं कुरु २। पुष्टिं कुरु २। स्वस्तिं कुरु २। भगवति। गुणवति। जनानां शिवशांतितुष्टिपुष्टिस्वस्तिं कुरु २ ॐ नमो हूँ ह्रः यः क्षः ह्रीं फुट् २ स्वाहा"॥ इति॥

अथवा॥

"ॐ नमो भगवतेऽर्हते। शांतिस्वामिने। सकलातिशेषकमहासंपत्समन्विताय। त्रैलोक्यपूजिताय। नमः शांतिदेवाय। सर्वामरसमूहस्वामिसंपूजिताय। भुवनपालनो-

द्यताय । सर्वदुरितविनाशनाय । सर्वाशिवप्रशमनाय सर्व-दुष्टग्रहभूतपिशाचमारिडाकिनीप्रमथनाय । नमो भगवति । विजये । अजिते । अपराजिते ।जयति । जयावहे । सर्वसंघस्य । भद्रकल्याणमंगलप्रदे । साधूनां शिवशांतितुष्टिपुष्टिस्वस्तिदे । भव्यानां सिद्धिवृद्धिनिर्वृतिनिर्वाणजननि । सत्वानां अभयप्रदाननिरते। भक्तानां शुभावहे । सम्यग्दृष्टीनां धृतिरतिमतिबुद्धिप्रदानोद्यते । जिनशासननिरतानां श्रीसंपत्यशोवर्द्धिनि । रोगजलज्वलनविषविषधरदुष्टज्वरव्यंतरज्वरराक्षसरिपुमारिचौरेतिश्वापदोपसर्गादिभयेभ्यो रक्ष २ ।शिवं कुरु २। शांतिं कुरु २। तुष्टिं कुरु २। पुष्टिं कुरु २।स्वस्ति कुरु २।भगवति श्रीशांतितुष्टिपुष्टिस्वस्ति कुरु २। ॐ नमो नमो हूँ हः य क्ष ह्रीं फट् २ स्वाहा" ॥ इति ॥

इस मंत्रकरके अथवा पूर्वोक्त मंत्रकरके, सहस्रमूलचूर्णकरी संयुक्त सर्वजलाशयोंके जलको सातवार मंत्रके, पुत्रवाली सधवा स्त्रीयोंके हाथोंकरी मंगलगीतोंके गातेहुए गर्भवतीको स्नान करवावे तदपीछे गर्भवतीको सुगंधका अनुलेपन करी सदश वस्त्र पहिराके, संपत्तिअनुसार आभरण धारण करवाके, पतिके साथ वस्त्रांचलका ग्रंथिबंधन करके, पतिके वामेपासे शुभ आसनके ऊपर स्वस्तिक मंगलकरके, गर्भवतीको बिठलावे

ग्रंथियोजनमंत्रो यथा ॥

ॐअर्हं। स्वस्ति संसारसंबंधबद्धयो पतिभार्ययो ॥
युवयोरवियोगोस्तु भवत्रासातमाशिषा ॥ १ ॥

विवाहकी तरें सर्वत्र इसीमंत्रकरके दंपतीका (स्त्रीभर्त्ताका) ग्रंथिबंधन करना । तदपीछे गुरु निस गर्भवतीके आगे शुभ पट्ट ऊपर पद्मासन लगाके बैठके, मणिस्वर्णरूप्यताम्रपत्रके पात्रोंमें जिनस्नात्रके

जलसंयुक्त तीर्थोदकको स्थापन करके, आर्यवेदमंत्र पढकरके, कुशाग्र बिंदुयोंकरके, गर्भवंतीको अभिषेचन करे.

आर्यवेदमंत्रो यथा ॥

"ॐ अर्हं । जीवोसि । जीवतत्त्वमसि । प्राण्यसि । प्राणोसि । जन्मासि । जन्मवानसि । संसार्यसि । संसरन्नसि । कर्मवानसि । कर्मबद्धोसि । भवभ्रांतोसि । भवविभ्रमिषुरसि । पूर्णाङ्गोसि । पूर्णपिण्डोसि । जातोपाङ्गोसि । जायमानोपाङ्गोसि । स्थिरो भव । नन्दिमान् भव । वृद्धिमान् भव । पुष्टिमान् भव । ध्यातजिनो भव । ध्यातसम्यक्त्वो भव । तत्कुर्या येन न पुनर्जन्मजरामरणसंकुलं संसारवासं गर्भवासं प्राप्नोषि । अर्हं ॐ ॥"

इस मंत्रकरके दक्षिणहाथसें धारण करे कुशाग्र तीर्थोदक बिंदुयोंकरके गर्भवंतीके शिर और शरीरऊपर सातवार अभिषेक करे. । तदपीछे पंच परमेष्ठिमंत्र पठनपूर्वक दंपतीको आसनसें उठायकरके, जिनप्रतिमाके पास लेजाके 'नमुत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं' इत्यादि शक्रस्तव पाठ करके जिनवंदन करवावे. । यथाशक्ति फलमुद्रा वस्त्र स्वर्णादि जिनप्रतिमाके आगे ढोवे. । तदपीछे गर्भवंती स्वसंपत्तिके अनुसार वस्त्राभरण द्रव्य सुवर्णादिदान देवे. । तदपीछे गुरु, पतिसहित गर्भवंतीको आशीर्वाद देवे.

यथा ॥

ज्ञानत्रयं गर्भगतोपि विंदन् संसारपारैकनिबद्धचित्तः ॥
गर्भस्य पुष्टिं युवयोश्च तुष्टिं युगादिदेवः प्रकरोतु नित्यम् ॥१॥

तदपीछे आसनसें उठायके ग्रंथिवियोजन करे.

ग्रंथिवियोजनमंत्रो यथा ॥

ॐ अर्हं । ग्रंथौ वियोज्यमानेऽस्मिन् स्नेहग्रंथिः स्थिरोस्तु वां ॥
शिथिलोस्तु भवग्रंथिः कर्मग्रंथिदृढीकृतः ॥ १ ॥

इस मन्त्रकरके ग्रंथि खोलके धर्मागारमें दंपतीको लेजाके सुसाधु (गुरु) को वंदना करवावे, और साधुयोंको निर्दोष भोजन वस्त्र पात्रादि दिलवावे ॥ इति गर्भाधानसंस्कारविधि ॥

तदपीछे स्वकुलाचारयुक्तिकरके कुलदेवता, गृहदेवता, पुरदेवतादि पूजन जानना। यहां जो कहा है कि, जैनवेदमंत्र, सो कथन करते हैं यथा आदिदेव (ऋषभदेव) का पुत्र, अवधिज्ञानवान्, आदिचक्री, भरत राजा, श्रीमदादिजिनरहस्योपदेशसें प्राप्त किया है सम्यक् श्रुतज्ञान जिसने–सो भरतराजा–सांसारिक व्यवहारसंस्कारकी स्थितिकेवास्ते, अर्हन्की आज्ञा पाकरके, धारे हैं ज्ञानदर्शनचारित्ररत्नत्रय, करणा करावणा अनुमतिसें त्रिगुणरूप तीनसूत्र–मुद्राकरके चिन्हितवक्षःस्थलवाले ब्राह्मणोंको माहनोंको पूज्यतरीके मानता हुआ, और तिस अवसरमें अपनी वैक्रियलब्धिसें चार मुखवाला होके, चार वेदोंको उच्चारण करता भया तिनके नाम–संस्कारदर्शन १, संस्थापनपरामर्शन २, तत्त्वावबोध ३, विद्याप्रबोध ४, । सर्व नयवस्तु कथन करनेवाले इन चारों वेदोंको, माहनोंको पठन करता हुआ। तदपीछे वह माहन, सात तीर्थंकरोंके तीर्थतक अर्थात् चंद्रप्रभतीर्थंकरके तीर्थतक सम्यक्त्वधारी रहे, और आर्हं तश्रावकोंको व्यवहार दिखाते रहे, तथा धर्मोपदेशादि करते रहे। तदपीछे नवमे तीर्थंकर श्रीसुविधिनाथपुष्पदंतके तीर्थके व्यवच्छेद हुए, तिस बीचमें तिन माहनोंने परिग्रहके लोभी होके, स्वच्छंदसें तिन आर्यवेदों की जगे कुछक सुनी सुनाइ बातों लेके नवीन श्रुतियां रचीं, तिनमें हिंसक यज्ञादि और अनेक देवतायोंकी स्तुति प्रार्थना रचीं (क्रमसें ऋग्, यजु, साम, अथर्व, नाम कल्पना करके, मिथ्यादृष्टिपणेको प्राप्त करे) तब व्यवहारपाठसें पराङ्मुख अर्थात् परमार्थरहित मन कल्पित हिंसक यज्ञप्रतिपादक शास्त्रोंसें पराङ्मुख, ऐसे श्रीशीतलनाथादिके साधुयोंने तिन हिंसक वेदोंको छोडके, जिनप्रणीत आगमकोंही प्रमाणभूत माने। तिन ब्राह्मणोंमेंसें भी, जिन माहनोंने (ब्राह्मणोंने) सम्यक्त्व न त्यागन करा, अर्थात् जे माहन पुनः तीर्थंकरोंके उपदेशसें

दयः। ततः शांतिः पुष्टिः तुष्टिर्वृद्धिर्ऋद्धिः कांतिः सनातनी अर्हं ॐ॥"

इस वेदमंत्रको आठवार पढता हुआ, गर्भवंतीको अभिषेचन करे.। तदपीछे गर्भवंती आसनसें ऊठके सर्वजातिके आठ २ फल, स्वर्णरूप्यमयी मुद्रा आठ, प्रणाम (नमस्कार) पूर्वक जिनप्रतिमाके आगे ढोवे.। तदपीछे गुरुके चरणोंको नमस्कार करके, दो वस्त्र, सोनेरूपेकी आठ मुद्रा, और तंबोलसहित आठ क्रमुक गुरुको देवे.। तदपीछे धर्मागार (पोषधशाला) में जाकर साधुयोंको वंदना नमस्कार करे, और साधुयोंको यथाशक्तिसें शुद्ध अन्न वस्त्र पात्र देवे.। कुलवृद्धोंको नमस्कार करे.॥ इति पुंसवनसंस्कारविधिः॥ तदपीछे स्वकुलाचारकरके कुलदेवतादिपूजन जानना.॥

पंचामृत १, स्नात्रवस्तु २, स्त्रीके नवीन वस्त्र ३, नवीन वस्त्रयुगल ४, स्वर्णकी आठ मुद्रा ५, रूपेकी आठ मुद्रा ६, सोनेकी ८ और रूपेकी ८ एवं षोडश (१६) मुद्रा और ७, फलकी जाति ८, कुशा ९, तांबूल १०, सुगंध पदार्थ ११, पुष्प १२, नैवेद्य १३, सधवा स्त्रीयां १४, गीतमंगल १५, इतनी वस्तु पुंसवनसंस्कारमें चाहिये.॥ इत्याचार्यश्रीवर्द्धमानसूरिकृताचारदिनकरस्य गृहिधर्मप्रतिबद्धपुंसवनसंस्कारकीर्त्तननामद्वितीयोदयस्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिकृतो बालावबोधस्समाप्तस्तत्समाप्तौ च समाप्तोयं चतुर्दशस्तम्भः॥ २॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रन्थे द्वितीयपुंसवनसंस्कारवर्णनो नाम चतुर्दशस्तम्भः॥ १४॥

॥ अथपञ्चदशस्तम्भारम्भः॥

अथ पंचदश स्तंभमें जन्मसंस्कारनामा तृतीय संस्कारका वर्णन करते हैं॥

जन्मसमय हुए, गुरु, ज्योतिषिकसहित, सूतिकागृहके निकट गृहमें एकांतस्थानमें जहां रौला न सुनाइ देवे, स्त्री, बाल, पशु, जहां न आवे,

गर्भसें आठ मास व्यतीत हुए, सर्व दोहदोंके पूर्ण हुए, सांगोपांग गर्भके उत्पन्न हुए, तिसके शरीरमें पूर्णीभाव प्रमोदरूप स्तनोंमें दूधकी उत्पत्तिका सूचक, पुसवन कर्म करे । मूल, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, मृगशिर, श्रवण, येह नक्षत्र, और मगल, गुरु, आदित्य, येह वार, पुसवन कर्ममें समत है । रिक्ता, दग्धा, क्रूरा, तीन दिनको स्पर्शनेवाली, अवम् (टूटी हुई,) षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी, अमावास्या, ये तिथियां वर्जके, गडातकरके उपहत, और अशुभ नक्षत्रवर्जित, पूर्वोक्त वारनक्षत्रसहित दिनमें पतिको चद्रमाके बल हुए, पुसवनका आरभ करे, सो ऐसें है । पूर्वोक्त भेष, और स्वरूपवाला गुरु पतिके समीप हुए, अथवा न हुए, गर्भाधान कर्मके अनतर, जो वस्त्रवेष, और केशवेष धारण करे हैं, तिसही वस्त्रवेष और केशवेषवाली गर्भवतीको, रात्रिके चोथे प्रहरमें तारेसहित आकाश होवे तब मगलगी तगानपूर्वक आभरणसहित अविधवा स्त्रीयोंकरके, अभ्यग उद्वर्त्तन जला भिषेकोंकरके स्नान करवावे । तदपीछे प्रभात हुए नवीन वस्त्र गधमाल्य भूषित गर्भवतीको साक्षिणी करके, घरदेहरामें अर्हत्प्रतिमाको तिसका पति, वा तिसका देवर, वा तिसके कुलका पुरुष, वा गुरु, आप पचामृतकरके बृहत्स्नात्रविधिसें स्नान करवावे । तदपीछे सहस्रमूलीस्नात्र प्रतिमाको करे, पीछे तीर्थोदकस्नात्र करे । पीछे सर्वस्नात्रोदकोंको सुवर्णरूप्यताम्रादि भाजनमें स्थापन करके, शुभासन ऊपर बैठी हुई साक्षीभूत करे है पति देवरादि कुलज जिसने, ऐसी गर्भवतीको, दक्षिणहस्तमें कुशा धारण करके, कुशाग्रबिंदुयोंकरके स्नात्रोदकसें गर्भवतीके शिरस्तनउदरको सिंचन करता हुआ, इस वेदमत्रको पढे ॥

"॥ ॐ अर्ह । नमस्तीर्थकरनामकर्मप्रतिबधसप्राप्तसुरासुरेद्र- पूजायार्हते । आत्मन् त्वमात्मायुः कर्मबधप्राप्य मनुष्यजन्म- गर्भावासमवाप्नोपि । तद्भव जन्मजरामरणगर्भवासविच्छित्त ये प्राप्तार्हद्धर्म अर्हद्भक्त सम्यक्त्वनिश्चल कुलभूषणः । सुखेन तव जन्मास्तु । भवतु तव त्वन्मातापित्रो कुलस्याभ्यु-

अश्विन्यादिभमण्डलं तदपरो मेषादिराशिक्रमः
कल्याणं पृथुकस्य वृद्धिमधिकां संतानमप्यस्य च ॥ १ ॥

तदपीछे लग्न धारण करके, ज्योतिषिके स्वघर गये हुए, गुरु सूतिकर्मकेवास्ते कुलवृद्धा स्त्रीयोंको, और दाईयोंको निर्देश करे। अन्य घरमें रहाही बालकको स्नान करानेवास्ते जलको मंत्रके देवे ॥

जलाभिमंत्रणमंत्रो यथा ॥

" ॥ ॐ अर्हं । नमोर्हत्सिध्दाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः ॥ "

वृत्तम् ॥

क्षीरोदनीरैः किल जन्मकाले यैर्मेरुशृङ्गे स्नपितो जिनेन्द्रः ॥
स्नानोदकं तस्य भवत्विदं च शिशोर्महामङ्गलपुण्यवृध्दै ॥१॥

इस मंत्रकरके सात वार जलको मंत्रें, तिस जलकरके कुलवृद्धा स्त्रीयों बालकको स्नान करावे. । और अपने २ कुलाचारके अनुसार नालच्छेद करे. तदपीछे गुरु स्वस्थानमें वैठाही चंदन, रक्तचंदन, बिल्वकाष्ठादि दग्ध करके भस्म करे; तिस भस्मको श्वेतसर्षप और लवणमिश्रित करके पोट्टलिकामें बांधे.

रक्षाभिमंत्रणमंत्रो यथा ॥

"ॐ ह्रीँ श्रीअंबे जगंदबे शुभे शुभंकरे अमुं बालं भूतेभ्यो रक्ष २ । ग्रहेभ्यो रक्ष २ । पिशाचेभ्यो रक्ष २ । वेतालेभ्यो रक्ष २ । शाकिनीभ्यो रक्ष २ । गगनदेवीभ्यो रक्ष २ । दुष्टेभ्यो रक्ष २ । शत्रुभ्यो रक्ष २ । कार्मणेभ्यो रक्ष २ । दृष्टिदोषेभ्यो रक्ष २ । जयं कुरु । विजयं कुरु । तुष्टिं कुरु । पुष्टिं कुरु । कुलवृद्धिं कुरु । श्रीँ ह्रीँ ॐ भगवति श्रीआंबिके नमः ॥

तहां घटिकापात्र (घडी–कलाक) सहित उपयोगसहित चित्तवाला होकर, परमेष्टिजापमें तत्पर हुआ थका रहे । यहां पहिला तिथि वार नक्षत्रादि देखना न चाहिये क्योंकि, यह जीव कर्म और कालके अधीन है ॥

यत ॥

जन्म मृत्युर्द्धन दौस्थ्य स्वस्वकाले प्रवर्त्तते ॥
तदस्मिन् क्रियते हत चेताश्चिंता कथ त्वया ॥ १ ॥

उक्तं चागमे श्रीवर्द्धमानस्वामिवाक्यम् ॥ गाथा ॥

समयं जम्मणकालं काल मरणस्स कमइ सुरनाह ॥
सपत्तजोगहत्ती न अइसया विअराएहिं ॥ २ ॥

इसवास्ते बालकके जन्म हुए समीप रहा हुआ गुरु, ज्योतिषिको जन्मक्षण जाननेके वास्ते आज्ञा करे तिसने भी सम्यग् जन्मकाल, करगोचर करके धारण करना तदपीछे बालकके पिता, पितृव्य (चाचा-काका) पितामहोंनें, नाल विना छेद्या गुरुका, और ज्योतिषिका बहुत वस्त्र आभूषणवित्तादिसें पूजन करना क्योंकि, नाल छेद्यांपीछे सूतक हो जाता है । गुरु बालकके पिता, पितामह (दादा), आदिकको आशीर्वाद देवे ।

यथा ॥

" ॐ अर्हं कुलं वो वर्द्धता । संतु शतश पुत्रप्रपौत्रा ।
अक्षीणमस्त्वायुर्द्धन यश च अर्हं ॐ ॥" इति वेदाशी ॥

तथा । वृत्तम् ॥

यो मेरुशृंगे त्रिदशाधिनाथैर्दैत्याधिनाथैस्सपरिच्छदैश्च ॥
कुभामृतै संस्नपितस्सदेव आद्यो विदध्यात् कुलवर्द्धनंच ॥१॥

ज्योतिषिकाशीर्वादो यथा शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् ॥

आदित्यो रजनीपति क्षितिसुत सौम्यस्तथा वाक्पतिः
शुक्र सूर्यसतो विधुंतुदशिखिश्रेष्ठा ग्रहा पातु व ॥

जिसने दोनों हाथोंमें बालकको धारण किया है ऐसीको प्रत्यक्ष सूर्यके सन्मुख लेजाके, वेदमंत्रको उच्चारण करता हुआ, माता पुत्रको सूर्यका दर्शन करवावे. ॥

सूर्यवेदमंत्रो यथा ॥

"॥ ॐ अर्हं। सूर्योऽसि। दिनकरोऽसि। सहस्रकिरणोऽसि। विभावसुरसि। तमोपहोऽसि। प्रियंकरोऽसि। शिवंकरोऽसि। जगच्चक्षुरसि। सुरवेष्टितोऽसि। मुनिवेष्टितोऽसि। विततविमानोऽसि। तेजोमयोऽसि। अरुणसारथिरसि। मार्त्तंडोऽसि। द्वादशात्माऽसि। चक्रबांधवोऽसि। नमस्ते भगवन् प्रसीदास्य कुलस्य तुष्टिं पुष्टिं प्रमोदं कुरु २ सन्निहितो भव अर्हं ॥"

ऐसें गुरुके पठन करे हुए, सूर्यको देखके, माता पुत्रसहित, गुरुको नमस्कार करे. गुरु पुत्रसहित माताको आशीर्वाद देवे.।

यथा। आर्या ॥

सर्वसुरासुरवंद्यः कारयिता सर्वधर्मकार्याणाम् ॥
भूयात्रिजगच्चक्षुर्मंगलदस्ते सपुत्रायाः ॥ १ ॥

सूतकमें दक्षिणा नही है.। तदपीछे गुरु स्वस्थानमें आयकर जिन प्रतिमाको और स्थापित सूर्यको विसर्जन करे. माता और पुत्रको सूतकके भयसें तहां जिनप्रतिमाके पास न लावे.। तिस दिनमेंही संध्याकालमें गुरु जिनपूजापूर्वक जिनप्रतिमाके आगे स्फटिकरूप्यचंदनमयी चंद्रमाकी मूर्त्ति स्थापन करे, तिस चंद्रमाकी मूर्त्तिका शांतिकादिक प्रक्रमोक्त विधिकरके पूजन करे. तदपीछे तैसेंही सूर्यदर्शनरीतिसें चंद्रमाके उदय हुए प्रत्यक्ष चंद्रसन्मुख माता और पुत्रको ले जाके, वेदमंत्र उच्चार करता हुआ, मातापुत्र दोनोंको चंद्रका दर्शन करावे. ॥

इस मन्त्रकरकें सातवार मंत्रित रक्षापोट्टलीको काले सूत्रसें बांधके लोहेका टुकडा, वरुणमूलका टुकडा, रक्तचंदनका टुकडा और कोडी, इनोंसहित रक्षापोट्टलिको कुलवृद्धा स्त्रीयोंके पास बालकके हाथ ऊपर बंधवावे ॥

सांवत्सर (पचांग) घटीपात्र, चंदन, रक्तचंदन, समीपमें एकांत घर, सरसव, लवण, कौशेय कृष्णसूत्र, कोडी, गीतमंगल, लोहा, रक्षा, वस्त्र, दक्षिणावास्ते धन, सूतिका, कुलवृद्धा, सर्व जलाशयका जल, जन्मसंस्कारमें इतनी वस्तु चाहिये ॥ इतिजन्म सं० विधि ॥ अथ कदाचित् अश्लेषामें, ज्येष्ठामें, मूलमें, गंडांतमें, भद्रामें, बालकका जन्म होवे तो बालकको, बालकके मातापिताको, बालकके कुलको, दुःख, दारिद्र, शोक, मरणादि कष्ट होवे, इसवास्ते बालकका पिता और कुलज्येष्ठ (कुलका बडा) शांतिकविधिमें कहे विधानके करेविना बालकका मुख न देखे ॥ * इत्याचार्यश्रीवर्द्धमानसूरिकृताचारदिनकरस्य गृहिधर्मप्रतिबद्धजातकर्मसंस्कारकीर्त्तननामतृतीयोदयस्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिकृतो बालावबोधस्समासस्तत्समाप्तौ च समाप्तोयं पंचदशस्तंभ ॥ ३ ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्वनिर्णयप्रासादग्रंथेतृतीयजातकर्मसंस्कारवर्णनो नाम पञ्चदशस्तम्भ ॥ १५ ॥

॥ अथषोडशस्तम्भारम्भः ॥

अथ षोडशस्तंभमें चौथा सूर्यचंद्रदर्शन संस्कारका वर्णन करते हैं ॥

जन्मदिनसें दो दिन व्यतीत हुए, तीसरे दिन गुरु समीपके घरमें अर्हत्पूजनपूर्वक जिनप्रतिमाके आगे स्वर्णताम्रमयी वा रक्तचंदनमयी सूर्यकी प्रतिमा स्थापन करे तिसका अर्चन, शांतिक पौष्टिक विधिकरके करे + तदपीछे स्नानकरके सुवस्त्राभरणकरके अलंकृत बालककी माताको

---

* शांतिकविधिका वर्णन आचारदिनकरके ३४ मे उदयमें है वहांसें जानना

\+ शांतिकपौष्टिकका विधि आचारदिनकरके ३४ मे और ३५ मे उदयमें है

जिसने दोनों हाथोंमें बालकको धारण किया है ऐसीको प्रत्यक्ष सूर्यके सन्मुख लेजाके, वेदमंत्रको उच्चारण करता हुआ, माता पुत्रको सूर्यका दर्शन करवावे. ॥

सूर्यवेदमंत्रो यथा ॥

"॥ ॐ अर्हं। सूर्योऽसि। दिनकरोऽसि। सहस्रकिरणोऽसि। विभावसुरसि। तमोपहोऽसि। प्रियंकरोऽसि। शिवंकरोऽसि। जगच्चक्षुरसि। सुरवेष्टितोऽसि। मुनिवेष्टितोऽसि। विततविमानोऽसि। तेजोमयोऽसि। अरुणसारथिरसि। मार्त्तंडोऽसि। द्वादशात्माऽसि। चक्रबांधवोऽसि। नमस्ते भगवन् प्रसीदास्य कुलस्य तुष्टिं पुष्टिं प्रमोदं कुरु २ सन्निहितो भव अर्हं ॥"

ऐसें गुरुके पठन करे हुए, सूर्यको देखके, माता पुत्रसहित, गुरुको नमस्कार करे. गुरु पुत्रसहित माताको आशीर्वाद देवे.।

यथा ॥ आर्या ॥

सर्वसुरासुरवंद्यः कारयिता सर्वधर्मकार्याणाम् ॥
भूयात्रिजगच्चक्षुर्मंगलदस्ते सपुत्रायाः ॥ १ ॥

सूतकमें दक्षिणा नही है.। तदपीछे गुरु स्वस्थानमें आयकर जिन प्रतिमाको और स्थापित सूर्यको विसर्जन करे. माता और पुत्रको सूतकके भयसें तहां जिनप्रतिमाके पास न लावे.। तिस दिनमेंही संध्याकालमें गुरु जिनपूजापूर्वक जिनप्रतिमाके आगे स्फटिकरूप्यचंदनमयी चंद्रमाकी मूर्त्ति स्थापन करे, तिस चंद्रमाकी मूर्त्तिका शांतिकादिक प्रक्रमोक्त विधिकरके पूजन करे. तदपीछे तैसेंही सूर्यदर्शनरीतिसें चंद्रमाके उदय हुए प्रत्यक्ष चंद्रसन्मुख माता और पुत्रको ले जाके, वेदमंत्र उच्चार करता हुआ, मातापुत्र दोनोंको चंद्रका दर्शन करावे. ॥

चन्द्रस्य वेदमंत्रो यथा ॥

"॥ ॐ अर्हं । चंद्रोऽसि । निशाकरोऽसि । सुधाकरोऽसि । चंद्रमा असि । ग्रहपतिरसि । नक्षत्रपतिरसि । कौमुदीपतिरसि । निशापतिरसि । मदनमित्रमसि । जगज्जीवनमसि । जैवातृकोऽसि । क्षीरसागरोद्भवोऽसि । श्वेतवाहनोऽसि । राजाऽसि । राजराजोऽसि । औषधीगर्भोऽसि । वंद्योऽसि । पूज्योऽसि । नमस्ते भगवन् अस्य कुलस्य ऋद्धिं कुरु । वृद्धिं कुरु । तुष्टिं कुरु । पुष्टिं कुरु । जय विजयं कुरु । भद्रं कुरु । प्रमोदं कुरु । श्रीशशांकाय नमः । अर्हं ॥ "

ऐसें पढता हुआ, माता पुत्रको चंद्र दिखलाके खडा रहे । माता पुत्र सहित गुरुको नमस्कार करे । गुरु आशीर्वाद देवे ॥

यथा । वृत्तम् ॥

सर्वौषधीमिश्रमरीचिजालः सर्वापदां संहरणप्रवीणः ॥
करोतु वृद्धिं सकलेपि वंशे युष्माकमिन्दुः सततं प्रसन्नः ॥ १ ॥

तदपीछे गुरु जिनप्रतिमा, और चंद्रप्रतिमा दोनोंको विसर्जन करे । इसमें इतना विशेष है । कदाचित् तिस रात्रिके विषे चतुर्दशी अमावास्याके वशसें वा बादलसहित आकाशके होनेसें चंद्रमा न दिखलाइ देवे तो भी पूजन तो तिस रात्रिकीही संध्यामें करना, और दर्शन तो और रात्रिमें भी चंद्रमाके उदय हुए हो सक्ता है ॥ सूर्य और चंद्रमाकी मूर्ति, तिसकी पूजाकी वस्तु, सूर्यचंद्रदर्शनसंस्कारमें चाहिये ॥ इत्याचार्यश्रीवर्द्धमानसूरिकृताचारदिनकरस्य गृहिधर्मप्रतिबद्धसूर्येंदुदर्शनसंस्कारकीर्त्तननामचतुर्थोदयस्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिकृतो बालावबोधस्समाप्तस्तत्समाप्तौ च समाप्तोयं षोडशस्तंभः ॥ ४ ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचिते तत्वनिर्णयप्रासादग्रन्थे चतुर्थसूर्येन्दुदर्शनसंस्कारवर्णनो नाम षोडशस्तम्भः ॥ १६ ॥

॥ अथसप्तदशस्तम्भारम्भः ॥

अथ सप्तदशस्तंभमें क्षीराशननामा पांचमा संस्कारका स्वरूप लिखते हैं. तिसही जन्मसें तीसरे, चंद्रसूर्यके दर्शनके दिनमेंही, बालकको क्षीराशनसंस्कार करना । तद्यथा । पूर्वोक्त वेषधारी गुरु, अमृतमंत्रकरके एकसौ आठ वार मंत्रित तीर्थोदकसें बालकको, और बालककी माताके स्तनोंको अभिषेक करके, माताकी गोदी (अंक) में स्थित बालकको दूध पावे. पूर्णांगनाशिकासंबंधि स्तन्य पहिलां चुंघावे, स्तन्य (दूध) पीते हुए बालकको गुरु आशीर्वाद देवे ॥

यथा वेदमंत्रः ॥

"॥ ॐ अर्हँ । जीवोऽसि । आत्माऽसि । पुरुषोऽसि । शब्दज्ञोऽसि । रूपज्ञोऽसि । रसज्ञोऽसि । गंधज्ञोऽसि । स्पर्शज्ञोऽसि । सदाहारोऽसि । कृताहारोऽसि । अभ्यस्ताहारोऽसि । कावलिकाहारोऽसि । लोमाहारोऽसि । औदारिकशरीरोऽसि । अनेनाहारेण तवांगं वर्द्धतां । बलं वर्द्धतां । तेजोवर्द्धतां । पाटवं वर्द्धतां । सौष्ठवं । वर्द्धतां पूर्णायुर्भव । अर्हं ॐ ॥ "

इस मंत्रकरके तीन वार आशीर्वाद देवे ॥

अमृतमंत्रो यथा ॥

" ॐ ॥ अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृतं श्रावय २ स्वाहा ॥"

इत्याचार्यवर्द्धमानसूरिकृताचारदिनकरस्य गृहिधर्मप्रतिबद्धक्षीराशनसंस्कारकीर्त्तननामपंचमोदयस्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिकृतो बालावबोधस्समाप्तस्तत्समाप्तौ च समाप्तोयं सप्तदशस्तम्भः ॥ ५ ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रन्थे पञ्चमक्षीराशनसंस्कारवर्णनोनाम सप्तदशस्तम्भः ॥ १७ ॥

॥ अथाष्टादशस्तम्भारम्भः ॥

अथाष्टादशस्तममें षष्ठीसंस्कारनामा छट्ठे संस्कारका स्वरूप लिखते हैं ॥ छट्ठे दिनमें संध्याके समयमें गुरु प्रसूतिघरमें आकरके षष्ठीपूजन विधिका आरंभ करे, षष्ठीपूजनमें सूतक नही गिणना

यत उक्तम् ।

स्वकुले तीर्थमध्ये च तथावश्ये बलादपि ॥
षष्ठीपूजनकाले च गणयेन्नैव सूतकम् ॥ १ ॥

इसवचनसें ॥ सूतिकागृहकी भींत और भूमि दोनोंको सधवायोंके हाथसें गोबरकरके लेपन करवावे, । तदपीछे दृश्य शुक्रबृहस्पतिके वर्त्तनेवाली दिशाके भींतभागको खडी आदिकरके धवल (श्वेत) करवावे, और भूमिभागको चौकमंडित करवावे । तदपीछे श्वेत भींतभागके ऊपर संधवाके हाथेंकरी कुंकुमहिंगुलादिवर्णोंकरके आठ माताओंको उर्द्ध्वा (खडीया) लिखावे, आठ बैठी हुई, और आठ सुती हुई भी लिखवावे कुलक्रमांतरमें गुरुक्रमांतरमें षट् (६) षट् (६) लिखनीया । तदपीछे सधवा स्त्रीयोंके गीतमंगल गाते हुए चौकमें शुभासनके ऊपर बैठा हुआ गुरु, अनंतरोक्त पूजाक्रम करके मातायोंको पूजे

यथा ॥

"॥ ॐ ह्रीँ नमो भगवति । ब्रह्माणि । वीणापुस्तकपद्माक्षसूत्रकरे । हंसवाहने । श्वेतवर्णे । इह षष्ठीपूजने आगच्छ २ स्वाहा ॥" तीनवार पढके पुष्पकरके आव्हान करे ॥

तदपीछे ॥

"॥ ॐ ह्रीँ नमो भगवति । ब्रह्माणि । वीणापुस्तकपद्माक्षसूत्रकरे । हंसवाहने । श्वेतवर्णे । मम सन्निहिता भव २ स्वाहा ॥" तीनवार पढके सन्निहित करे ॥

तदपीछे ॥

"॥ ॐ ह्रीँ नमो भगवति । ब्रह्माणि । वीणापुस्तकपद्माक्षसूत्रकरे । हंसवाहने । श्वेतवर्णे । इह तिष्ठ २ स्वाहा ॥"

इति । तीनवार पढके स्थापन करे ॥

तदपीछे

"॥ॐ ह्रीँ नमो भगवति । ब्रह्माणि । वीणापुस्तकपद्माक्षसूत्रकरे । हंसवाहने । श्वेतवर्णे । गंधं गृह्ण २ स्वाहा ॥"

चंदनादि गंध चढावे ॥

"ॐ ह्रीँ नमो भगवति । ब्रह्माणि । वीणापुस्तकपद्माक्षसूत्रकरे । हंसवाहने । श्वेतवर्णे । पुष्पं गृह्ण २ स्वाहा ॥"

इसीतरें मंत्रपूर्वक ।

"धूपं गृह्ण २ । ' दीपं गृह्ण २ ।' 'अक्षतान् गृह्ण २ ।' 'नैवेद्यं गृह्ण २ स्वाहा ॥"

ऐसें एकएकवार मंत्रपाठपूर्वक इन पूर्वोक्त गंधादिवस्तुयोंकरके भगवतीको पूजे. ॥ ऐसेंही अन्य सात मातायोंकी पूजा करणी. ।

विशेष मंत्रोंमें है, सो लिखते हैं. ॥

"॥ ॐ ह्रीँ नमो भगवति । माहेश्वरि । शूलपिनाककपालखट्वांगकरे । चंद्रार्द्धललाटे । गजचर्मावृते । शेषाहिबद्धकांचीकलापे । त्रिनयने । वृषभवाहने । श्वेतवर्णे । इह षष्ठीपूजने आगच्छ २ ॥" शेषंपूर्ववत् ॥ २ ॥

"॥ ॐ ह्रीँ नमो भगवति । कौमारि । षण्मुखि । शूलशक्तिधरे । वरदाभयकरे । मयूरवाहने । गौरवर्णे । इह षष्ठीपूजने आगच्छ २ ॥" शेषं पूर्ववत् ॥ ३ ॥

"॥ ॐ ह्रीँ नमो भगवति । वैष्णवि । शंखचक्रगदासारंगख-

ङ्गकरे। गरुडवाहने। कृष्णवर्णे। इह षष्ठीपूजने आगच्छ २॥"
शेष पूर्ववत् ॥ ४ ॥

"॥ ॐ ह्रीँ नमो भगवति। वाराहि। वराहमुहि। चक्रखड्गहस्ते। शेषवाहने। श्यामवर्णे। इह षष्ठीपूजने आगच्छ २॥"
शेष पूर्ववत् ॥ ५ ॥

"॥ ॐ ह्रीं नमो भगवति। इंद्राणि। सहस्रनयने। वज्रहस्ते। सर्वाभरणभूषिते। गजवाहने। सुरांगनाकोटिवेष्टिते। काचनवर्णे। इह षष्ठीपूजने आगच्छ २॥" शेष पूर्ववत् ॥ ६ ॥

"॥ ॐ ह्रीँ नमो भगवति। चामुंडे। शिराजालकरालशरीरे। प्रकटितदशने। ज्वालाकुंतले। रक्तत्रिनेत्रे। शूलकपालखड्गप्रेतकेशकरे। प्रेतवाहने। धूसरवर्णे। इह षष्ठीपूजने आगच्छ २॥"
शेष पूर्ववत् ॥ ७ ॥

"॥ ॐ ह्रीँ नमो भगवति। त्रिपुरे। पद्मपुस्तकवरदाभयकरे। सिंहवाहने। श्वेतवर्णे। इह षष्ठीपूजने आगच्छ २॥"
शेष पूर्ववत् ॥ ८ ॥

एव जैसें उर्ध्व (खडी) मातृयांका पूजन करे, तैसेंही बैठी और सुप्त मातृयांका भी पूर्वोक्त मत्रोंसेंही तीनवार पूजन करे, । कितनेक चामुंडा, त्रिपुरा, दोनोंको वर्जके षट्मातृकाही पूजन करते हैं ॥

मातृका पूजन करके ऐसें पढे ॥

ब्रह्माद्यामातरोप्यष्टौ स्वस्वायुधवलवाहना ॥
षष्ठीसपूजनात्पूर्वं कल्याण ददता शिशो ॥ १ ॥

तदपीछे मातृस्थापनाकी अग्रभूमिमें चंदनलेपस्थापना करके, अंबा रूप षष्ठीको स्थापन करे । और तिस स्थापनाको गंधि, चंदन, अक्षत, दूर्वादिकरके पूजे ।

तदपीछे गुरु हस्तमें पुष्प लेके ॥

"॥ ॐ ऐं ह्रीँ षष्ठि। आम्रवनासीने। कदंबवनविहारे। पुत्रद्वययुते। नरवाहने। श्यामाङ्गि। इह आगच्छ २ स्वाहा ॥"

मातृवत् इसकी भी पूजा करणी.। तदपीछे बालकमातासहित अविधवा कुलवृद्धा स्त्रीयां मंगलगीतगानमें तत्पर वाजंत्रोंके वाजते हुए षष्ठीरात्रिको जागरणा करे.।

तदपीछे प्रातःकालमें ॥

"॥ ॐ भगवति माहेश्वरि पुनरागमनाय स्वाहा ॥"

ऐसें प्रत्येक नामपूर्वक गुरु, मातृको और षष्ठीको विसर्जन करे। तदपीछे गुरु, बालकको पंचपरमेष्ठिमंत्रपवित्रित जलकरके अभिषेक करता हुआ, वेदमंत्रकरके आशीर्वाद देवे.॥

यथा ॥

"॥ ॐ अर्हं जीवोऽसि। अनादिरसि। अनादिकर्मभागसि। यत्त्वया पूर्वं प्रकृतिस्थितिरसप्रदेशैराश्रववृत्त्या कर्मबद्धं तद्बन्धोदयोदीरणासत्ताभिः प्रतिभुङ्क्ष्व। मा शुभकर्मोदयफलभुक्तेरुच्छेकं दध्याः। नचाशुभकर्मफलभुक्त्या विषादमाचरेः। तवास्तु संवरवृत्त्या कर्मनिर्जरा अर्हं ॐ ॥"

सूतकमें दक्षिणा नही है.॥ चंदन, दधि, दूर्वा, अक्षत, कुंकुम, लेखिनी, हिंगुलादिचर्ण, पूजाके उपकरण, नैवेद्य, सधवा स्त्रीयां, दर्भ, भूमिलेपन, इतनी वस्तुयां षष्ठीजागरणसंस्कारमें चाहिये. ॥ इत्याचार्यवर्द्धमानसूरिकृताचारदिनकरस्य गृहिधर्मप्रतिबद्धषष्ठीजागरणसंस्कारकीर्त्तननामषष्ठोदयस्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिकृतो बालावबोधस्समाप्तस्तत्समाप्तौ च समाप्तोयमष्टादशस्तम्भः ॥ ६ ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रन्थे षष्ठीजागरणनामषष्ठसंस्कारवर्णनो नामाष्टादशस्तम्भः ॥ १८ ॥

॥ अथैकोनविंशस्तम्भारम्भः ॥

अथैकोनविंशस्तंभमें शुचिकर्मसम्कारका वर्णन करते हैं ॥ यहा शुचिकर्म स्वस्ववर्णानुसार करके दिनोंके व्यतीत हुए करणा

तद्यथा ॥

शुद्ध्येद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन बाहुज ॥
वैश्यस्तु षोडशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ १ ॥
कारूणा सूतक नास्ति तेषा शुद्धिर्न चापिहि ॥
ततो गुरुकुलाचारस्तेषु प्रामाण्यमिच्छति ॥ २ ॥

तिस कारणसें स्वस्ववर्णकुलानुसार करके दिनोंके व्यतीत हुए, गुरु सर्वही, सोला पुरुषयुगसें उरे, तिस कुलवर्गकों बुलवावे क्योंकि, सूतक सोला पुरुषयुगसें उरे ग्रहण करिये हैं ॥

यदुक्त ॥

नृषोडशकपर्यन्त गणयेत् सूतक सुधी ॥
विवाह नानुजानीयाद्गोत्रे लक्षनृणा युगे ॥ १ ॥

भावार्थ —सोला पुरुषपर्यंत सुधी पुरुष सूतक गिणे,। परतु एकगोत्रमें लक्ष पुरुषयुग व्यतीत हुए भी, विवाह नही करे, न माने । तिसवास्ते तिन गोत्रजको बुलवायके तिन सर्वको सागोपाग स्नान और वस्त्रक्षालन करनेको कहे । स्नान करके शुचि वस्त्र पहिनके गुरुको साक्षी करके, वे सर्व गोत्रज विविध प्रकारकी पूजासें जिन प्रतिमाका पूजन करे । तदपीछे बालकके माता पिता पचगव्यकरके अतस्नान करे । पुत्रसहित नरवच्छेदनकरके गाठ जोडी दपती जिनप्रतिमाको नमस्कार करे, सधवा स्त्रीयांके मगलगीत गाने वाजत्रोके वाजने हुए । और सर्व चैत्योंमे पूजा नैवेद्य ढौकन करे । साधुयोंको यथाशक्ति चतुर्विध आहार वस्त्र पात्र देवे,।और सस्कार करनेवाले गुरुको वस्त्र ताबूल भूषण द्रव्यादिदान देवे तथा। जन्म, चद्रसूर्यदर्शन, क्षीराशन, षष्ठी, इनसबधिनी दक्षिणा तिस दिनमें

स्कारगुरुकेतांइ देणी.। और सर्व गोत्रज स्वजन मित्रवर्गोंको यथाशक्ति
ाजन तांबूल देना.। तथा गुरु तिस कुलके आचारानुसारकरके पंचग-
य, जिनस्नात्रोदक, सर्वौषधिजल और तीर्थजल, इनोंकरके स्नान कराये
ए बालकको वस्त्राभरणादि पहिनावे.॥ तथा स्त्रीयोंको सूतकदिनोंके
ूर्ण हुए भी, आर्द्र नक्षत्रोंमें, और सिंह गजयोनि नक्षत्रोंमें, सूतकस्नान
नही करवावणा.। आर्द्र नक्षत्र दश है.। कृत्तिका १, भरणी २, मूल ३,
आर्द्रा ४, पुष्य ५, पुनर्वसु ६, मघा ७, चित्रा ८, विशाखा ९, श्रवण १०,
ये दश आर्द्र नक्षत्र हैं; इनमें स्त्रीको सूतकस्नान न करावे. यदि स्नान
करे तो, फिर प्रसूति न होवे.॥ धनिष्ठा १, पूर्वाभाद्रपदा २, ये दो सिंह-
योनि नक्षत्र जाणने; और भरणी १, रेवती २, ये दो नक्षत्र गजयोनि
जाणने.॥ कदाचित् सूतक पूर्ण हुए दिनमें इन पूर्वोक्त नक्षत्रोंमेंसें कोइ
नक्षत्र आवे, तव एक एक दिनके अंतरे शुचिकर्म करणा.॥ पूजावस्तु,
पंचगव्य, स्वगोत्रज जन, तीर्थोदक, शुचिकर्मसंस्कारमें चाहिये.॥
इत्याचा० श्रीव० गृहिधर्मप्रतिबद्धशुचिसंस्कारकीर्त्तननामसप्तमोदयस्या-
चार्यश्रीमद्वि० बा० स० तत्त्स० समाप्तोयमेकोनविंशस्तंभः॥ ७॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रंथे
सप्तमशुचिकर्मसंस्कारवर्णनो नामैकोनविंशस्तम्भः॥ १९॥

॥ अथविंशस्तम्भारम्भः॥

अथ विंशस्तम्भमें नामकरणसंस्काराविधि लिखते हैं.॥

मृदु, ध्रुव, क्षिप्र और चर, इन नक्षत्रोंमें पुत्रका जातकर्म करना. अ-
थवा गुरु वा शुक्र, चतुर्थ स्थित होवे, तब नाम करना, सज्जन पुरुषोंको
सम्मत है.॥ शुचिकर्मदिनमें अथवा तिसके दूसरे वा तीसरे शुभ दिनमें
बालकको चंद्रमाके बल हुए, ज्योतिषिकसहित गुरु तिसके घरमें शुभस्था-
नमें शुभासनके ऊपर बैठा हुआ, पंचपरमेष्ठिमंत्रको स्मरण करता हुआ
रहे.। तिस अवसरमें बालकके पिता, पितामहादि, पुष्प फलकरके हाथ

परिपूर्ण करके ज्योतिपिकसहित गुरुको साष्टाग नमस्कार करके ऐसें क
ह भगवन् ! पुत्रका नामकरण करो । तव गुरु तिन पितापितामहादिको
तिसके कुलके पुरुषोंको, और कुलवृद्धा स्त्रीयोंको, आगे बैठाके, ज्योति
पिको जन्मलग्न कहनेकेवास्ते आदेश करे । तव ज्योतिपिक शुभपट्ट
ऊपर खटिका (खडी) करके तिस बालकके जन्मलग्नको लिखे, स्थान न
में ग्रहोंको स्थापन करे । तब बालकके पितापितामहादि जन्मलग्नकी
पूजा करे । तिसमें स्वर्णमुद्रा १२, रूप्यमुद्रा १२, ताम्रमुद्रा १२, क्रमुक
(सुपारी) १२, अन्य फलजाति १२, नालिकेर १२, नागवल्लीदल (पान)
१२, इनोंकरके द्वादश लग्नका पूजन करे । इनही नव नव वस्तुयोंकरी नव
ग्रहोंका पूजन करे ऐसें लग्नके पूजे हुए, तिनोंके आगे ज्योतिपिक लग्न
विचार कहे वे भी उपयोगसहित सुणे । तदपीछे व्यावर्णनसहित लग्नको
ज्योतिपिक कुकुमाक्षरोंकरके पत्रेमें लिखके, कुलज्येष्ठको सौंप देवे । बाल
कके पितादिकोंने ज्योतिपिका निवाप (पितृउद्देशपूर्वक) वस्त्र स्वर्णदान
करके सन्मान करणा । और ज्योतिपिक भी तिनोंके आगे जन्मनक्षत्रा
नुसारे, नामाक्षरको प्रकाश करके, स्वघरको जावे । तदपीछे गुरु, सर्व
कुलपुरुषोंको और कुलवृद्धा स्त्रीयोंको, आगे स्थापन करके (बिठलाके)
तिनोंकी सम्मतिसें हाथमें दूर्वा लेके परमेष्ठिमन्त्रपठनपूर्वक कुलवृद्धाके
कानमें जातिगुणोचित नाम सुणावे । तिसपीछे कुलवृद्धा नारीया गुरुके
साथ पुत्र गोदीमें लीयां तिसकी माता शिबिकादि नरवाहनमें बैठी हुई,
या पादचारिणी अविधवायोंके गीत गाते हुए, वाजत्र बाजते हुए, जिन
मंदिरमें जावे । तहा मातापुत्र दोनों जिनको नमस्कार करे, माता बी
बीस २ सुवर्णमुद्रा, रूप्यमुद्रा, फलनालिकेरादिकरके जिनप्रतिमाके आगे
ढौकनिका करे । तदपीछे देवके आगे कुलवृद्धा स्त्रीयां बालकका नाम
प्रकाश करे चैत्य न होवे तो, घरदेरासरकी प्रतिमाके आगे यह विधि करना
तदपीछे तिसही रीतिसें पौपधशालामें आवे, तहां प्रवेश करके मंडलीमंडली
स्थानमें मंडलीपट्ट स्थापन करके तिसकी पूजा करे मंडलीपूजाका विधि यह
है पुत्रकी माता " श्रीगौतमाय नमः " ऐसा उच्चार करती हुई, गंध, अक्षत,

पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य करके मंडलीपट्टकी पूजा करे. मंडलीपट्टोपरि स्वर्णमुद्रा १०, रूप्यमुद्रा १०, क्रमुक १०८, नालिकेर २९, वस्त्रस्त २९, स्थापन करे.। तदपीछे पुत्रसहित माता तीन प्रदक्षिणा करके यतिगुरुको नमस्कार करे.। नव सोनेरूपेकी मुद्रा करके गुरुके नवांगकी पूजा करे.। निरुंछना और आरात्रिका (आरती) करके क्षमाश्रमणपूर्वक हाथ जोडके, "वासरकेवंकरेह" ऐसा पुत्रकी माता कहे. तब यतिगुरु वासक्षेपको, ॐकार ह्रींकार श्रींकार सन्निवेशकरके कामधेनुमुद्राकरके, वर्द्धमान विद्याकरके जपके, मातापुत्र दोनोंके शिरपर क्षेप करे. तहां भी तिनके शिरमें ॐ ह्रीँ श्रीँ अक्षरोंका सन्निवेश करे.। तदपीछे बालकका अक्षतसहित चंदनकरके तिलक करके, कुलवृद्धाके अनुवादकरके, नाम स्थापन करे.। तदपीछे तिसही युक्तिकरके सर्व अपने घरको आवे.। यतिगुरुयोंको शुद्ध आहार वस्त्र पात्रका दान देवे.। और गृहस्थगुरुको वस्त्र अलंकार स्वर्णदान देवे.॥ नांदी, मंगलगीत, ज्योतिषिकसहित गुरु, प्रभूत फल, और मुद्रा, विविधप्रकारके वस्त्र, वास, चंदन, दूर्वा, नालिकेर, धन, इतनी वस्तु नामसंस्कारकार्यमें चाहिये. ॥ इत्याचार्यश्रीवर्द्धमानसूरिकृताचारदिनकरस्य गृहिधर्मप्रतिबद्धनामकरणसंस्कारकीर्त्तननामाष्टमोदयस्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिकृतो बालावबोधस्समाप्तस्तत्समाप्तौ च समाप्तोयं विंशस्तम्भः ॥ ८ ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रंथेऽष्ट
नामकरणसंस्कारवर्णनो नाम विंशस्तम्भः ॥ २० ॥

॥ अथैकविंशस्तम्भारम्भः ॥

अथ २१ मे स्तंभमें अन्नप्राशनसंस्कारविधि लिखते हैं. ॥ रेवती, श्रवण, हस्त, मृगशीर्ष, पुनर्वसु, अनुराधा, अश्विनी, चित्रा, रोहिणी, उत्तरात्रय, धनिष्ठा, पुष्य, इन निर्दोष नक्षत्रोंमें और रवि, चंद्र, बुध, शुक्र, गुरु वारोंमें पुरुषोंको नवीन अन्नप्राशन (खाना) श्रेष्ठ है.। और बालकोंको

अन्नभोजन रिक्तादि कुतिथीया और कुयोगोंको वर्जके श्रेष्ठ है । पुत्रको छट्टे मासमें, और कन्याको पाचमे मासमें अन्नप्राशन, सत्पुरुषोंने कहा है । जे नक्षत्र कहे तिनमें और पूर्वोक्त वारमें सद्ग्रहोंके विद्यमान हुए अमावासी और रिक्ता, तिथीको वर्जके शुभ तिथीमें करणा क्योंकि, लग्नमें रवि होवे तो, कुष्टी होवे, मगल होवे तो, पित्तरोगी होवे, शनि होवे तो, वातव्याधि होवे, क्षीणचद्र होवे तो, भीख मांगनेमें रत होवे, वुध होवे तो, ज्ञानी होवे, शुक्र होवे तो, भोगी होवे, बृहस्पति होवे तो, चिरायु होवे, और पूर्ण चद्रमा होवे तो, यज्ञ करनेवाला और दान देनेवाला होवे । कटक ४ । ७ । १० । अत्य १२ । निधन ८ । त्रिकोण ५ । ९ । इन घरोंमें पूर्वोक्त ग्रह होवे तो, शरीरमें शुभ फल देते हैं । छट्टे और आठमे घरमें चद्रमा अशुभ होता है, । केंद्र १ । ४ । ७ । १० । त्रिकोण ५ । ९ । इन घरोंमें सूर्य होवे तो, अन्ननाश होवे ॥ तिसवास्ते छट्टे मासमें वालकको, और पांचमे मासमें कन्याको पूर्वोक्त तिथी वार नक्षत्र योगोंमें वालकको चद्रवलके हुए अन्नप्राशनका आरंभ करे । तद्यथा । पूर्वोक्त वेषधारी गुरु, तिसके घरमें जाके सर्वदेशोत्पन्न अन्नोंको एकत्र करे, देशोत्पन्न और अन्य नगरोंमेंसें जे प्राप्त होवे, तिन सर्व फलोंको, और षट्विकृतियोंको स्थाग करे । तदपीछे सर्व अन्नोंको, सर्व शाकोंको, सर्व विकृतीयोंको, घृत, तैल, इक्षुरस, गोरस, जल, इत्यादिकोंसें पकाये हुए बहुतप्रकारके पदार्थोंको पृथक् न्यारे २ करे । तदपीछे अर्हत्प्रतिमाका बृहत्स्नात्रविधिसें * पचामृतस्नात्र करके पृथक् पात्रोंमें तिन अन्न शाक विकृति पाकादिकोंको जिनप्रतिमाके आगे अर्हत्कल्पोक्त + नैवेद्यमंत्रकरके ढोवे सर्वजातके फल भी ढोवे । तदपीछे वालकको अर्हत्स्नात्रोदक पिलावे । फिर जिनप्रतिमाके नैवेद्यसें उद्धरित वची हुइ तिन सर्ववस्तुयोंको सूरिमत्रके मध्यगत अमृताश्रवमत्रकरके श्रीगौतम प्रतिमाके आगे ढोवे, । तिससें उद्धरित वस्तुयोंको कुलदेवताके मंत्रकरके

---

* बृहत्स्नात्रविधि आचारदिनकरर ११ मे उदयमें है ।

+ अर्हत्कल्पोक्त पूजाविधि इसीग्रंथके २७ म स्तंभमें है

गोत्रदेवीकी प्रतिमाके आगे चढावे,। तदपीछे कुलदेवीके नैवेद्यमेंसें योग्य आहार मंगलगीत गाते हुए माता पुत्रके मुखमें देवे.। और गुरु यह वेदमंत्र पढे.॥

यथा॥

"॥ॐ अर्हँ भगवानर्हन् त्रिलोकनाथस्त्रिलोकपूजितः सुधाधारधारितशरीरोपि कावलिकाहारमाहारितवान्। तपस्यन्नपि पारणाविधाविक्षुरसपरमान्नभोजनात् परमानंदादाप केवलं तद्देहिन्नौदारिकशरीरमाप्तस्त्वमप्याहारय आहारं तत्ते दीर्घमायुरारोग्यमस्तु अर्हँ ॐ॥"

यह मंत्र तीनवार पढे.। तदपीछे साधुयोंको षट्विकृतियांकरके षट्रससंयुक्त आहार देवे, यतिगुरुके मंडलीपट्टोपरि परमान्नपूरित सुवर्णपात्र चढावे, गृहस्थगुरुको द्रोण द्रोण प्रमाण सर्वजातका अन्नदान करे,। तुला २ प्रमाण सर्व घृत, तैल, गुड लवणादि दान करे,। सर्वजातके एक सौ आठ २ फल देवे,। तांबेका चरु, कांश्यक थाल, और वस्त्रयुगल देवे.। सर्वजातिके अन्न, सर्वजातिके फल, सर्व विकृतियां, स्वर्ण, रूप्य, ताम्र, कांश्य, इनोंके पात्र (भाजन) इतनी वस्तुयां इस संस्कारमें चाहिये.॥ इत्याचार्यश्रीवर्द्धमानसुरिकृताचारदिनकरस्य गृहिधर्मप्रतिवद्ध अन्नप्राशनसंस्कारकीर्तननाम नवमोदयस्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिकृतो बालावबोधस्समाप्तस्तत्समाप्तौ च समाप्तोयमेकविंशस्तम्भः॥९॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रंथे नवमान्नप्राशनसंस्कारवर्णनो नामैकविंशस्तम्भः॥ २१॥

॥ अथद्वाविंशस्तम्भारम्भः॥

अथ २२ मे स्तंभमें कर्णवेधसंस्कारविधि लिखते हैं.॥ उत्तरात्रय, हस्त, रोहिणी, रेवती, श्रवण, पुनर्वसू, मृगशीर्ष, पुष्य, इन नक्षत्रोंमें।

रेवती, श्रवण, हस्त, अश्विनी, चित्रा, पुष्य, धनिष्ठा, पुनर्वसू, अनुराधा, चंद्रसहित इन नक्षत्रोंमें कर्णवेध करना, मुनिजन कहते हैं । लाभ ११, तृतीय ३, घरमें शुभ ग्रहोंकरके संयुक्त होवे, शुभराशि लग्नमें क्रूर ग्रहों करके रहित बृहस्पतिके लग्नाधिप, वा लग्नमें हुए कर्णवेध करणा जिसमें चंद्र नक्षत्र, पुष्य, चित्रा, श्रवण, रेवती, जाणने । मंगल, शुक्र, सूर्य, बृहस्पति, इन वारमें शुभ तिथीमें शुभ योगमें बालक और कन्याका कर्णवेध करणा ॥ इन निर्दोष तिथि वार नक्षत्रमें बालकको चंद्रबलके हुए कर्णवेध आरंभ करे । उक्तं च । "गर्भाधान, पुंसवन, जन्म, सूर्य चंद्रदर्शन, क्षीराशन, षष्ठी, शुचि, नामकरण, अन्नप्राशन, मृत्यु, इन संस्कारोंमें अवश्य कार्य होनेसें पंडित पुरुषोंने वर्षमासादिकी शुद्धि न देखणी । कर्णवेधादिक अन्य संस्कारोंमें विवाहकीतरें वर्ष मास दिन नक्षत्रादिकोंकी शुद्धि अवश्यमेव विलोकन करणी । यथा । तीसरे पांचमे सातमे निर्दोष वर्षमें बालकको बलवान सूर्य होवे, तिस मासमें इष्ट दिनमें, गुरु, बालकको और बालककी माताको अमृतामंत्र अभिमंत्रित जलकरके मंगलगानपूर्वक अविधवायोंके हाथोंकरी स्नान करावे । और तहा कुलाचारसंपदा अतिशय विशेषकरके तैलनिषेकसहित तीन पांच सात नव इग्यारह दिनातक स्नानका विधि जाणना, । तिसके घरमें पौष्टिकाधिकारमें कहे सर्व पौष्टिकको करणा, षष्ठीको वर्जके मात्रष्टकपूजन पूर्ववत् करणा, । तदपीछे स्व २ कुलानुसार अन्य ग्राममें कुलदेवताके स्थानमें पर्वतउपर नदीतीरे वा घरमें कर्णवेधका आरंभ करे । तहा मोदक नैवेद्यकरण गीतगान मंगलाचारादि स्व २ कुलागत रीतिकरके करणा । तदपीछे बालकको पूर्वाभिमुख आसनऊपर बिठलाके तिसके कर्णवेध करे तहा गुरु यह वेदमंत्र पढे ।

यथा ॥

"॥ ॐ अर्हं श्रुतेनाङ्गोपाङ्गै, कालिकैरुत्कालिकैः पूर्वगतैश्चू-लिकाभिः परिकर्मभिः सूत्रैः पूर्वानुयोगैः छन्दोभिर्लक्षणैर्नि-रुक्तैर्धर्मशास्त्रैर्विद्धकर्णो भूयात् अर्हं ॐ ॥"

शुद्रादिकोंको ॥ '॥ॐ अर्हँ तव श्रुतिद्वयं हृदयं धर्माविद्धमस्तु ॥'

ऐसें कहना. ॥

तदपीछे बालकको यानमें बैठाके, वा नर नारी उत्संगमें लेके धर्मागारमें लेइ जावे; तहां पूर्वोक्त विधिसें मंडलीपूजा करके बालकको गुरुके चरणांआगे लोटावे. तव यतिगुरु विधिसें वासक्षेप करे.। तदपीछे बालकको घरमें ल्याके गृहस्थगुरु कर्णाभरण पहिनावे.। यतिगुरुयोंको शुद्ध चार प्रकारका आहार वस्त्र पात्र देवे. । गृहस्थगुरुको वस्त्र स्वर्णदान देवे. ॥ इत्याचार्यश्रीवर्द्धमानसूरिकृताचारदिनकरस्य गृहिधर्मप्रतिबद्धकर्णवेधसंस्कारकीर्त्तननामदशमोदयस्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिकृतोबालावबोधस्समाप्तस्तत्समाप्तौ च समाप्तोयं द्वाविंशस्तम्भः ॥ १० ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रन्थे
दशमकर्णवेधसंस्कारवर्णनो नाम द्वाविंशस्तम्भः ॥ २२ ॥

॥ अथ त्रयोविंशस्तम्भारम्भः ॥

अथ २३ मे स्तंभमें चूडाकरणसंस्काराविधि लिखते हैं. ॥ हस्त, चित्रा, स्वाति, मृगशीर्ष, ज्येष्ठा, रेवती, पुनर्वसू, श्रवण, धनिष्ठा, इन नक्षत्रोंमें।१।२।३।५।७।१३।१०।११। इन तिथियोंमें। शुक्र, सोम, बुध, इन वारोंमें चंद्र वा तारेके बल हुए, क्षौरकर्म करणा. । पर्वके दिनोंमें, यात्रामें, स्नानसेंपीछे, भोजनसेंपीछे, विभूषापीछे, तीन संध्यामें, रात्रिमें, संग्राममें, क्षयतिथिमें, पूर्वोक्त तिथिवारसें अन्य तिथिवारमें, और अन्य भी मंगलकार्यमें क्षौरकर्म न करणा. ॥ क्षौरनक्षत्रोंमें स्वकुलविधिकरके चूडाकरण करणा मुनींद्र कहते हैं; परं गुरु, शुक्र और बुध यह तीन ग्रह केंद्रमें १।४।७।१० होने चाहिये.। यदि केंद्रमें सूर्य होवे तो ज्वर होवे; मंगल होवे तो शस्त्रसें नाश होवे; शनि होवे तो पंगुपणा होवे; क्षीण चंद्र होवे तो नाश होवे.। षष्ठी (६), अष्टमी (८), चतुर्थी (४), सिनीवाली (चतुर्द्दशीयुक्तअमावास्या), चतुर्द्दशी (१४), नवमी (९), इन तिथीयोंमें और रवि, शनि, मंगल, इन वारोंमें क्षौरकर्म न करावणा.। धन २, व्यय १२,

त्रिकोण ५ । ९, इन घरोंमें असद्ग्रह होवे तो, मृत्यु हुए भी क्षुरक्रिया सुदर नही होवे, और इनही घरोंमें शुभ ग्रह होवे तो क्षुरक्रिया पुष्टिकी करणहार जाणनी । तिसवास्ते बालकको सूर्यबलयुक्त मासके हुए, चंद्र ताराबलयुक्त दिनमें, पूर्वोक्त तिथिवारनक्षत्रमें कुलाचारानुसार कुलदेवताकी प्रतिमाके पास अन्य ग्राममें, वनमें, पर्वतके ऊपर, वा घरमें शास्त्रोक्त रीतिसें प्रथम पौष्टिक करे । तदपीछे षष्ठीपूजावर्जित मातृपूजा पूर्ववत् । तदपीछे कुलाचारानुसार नैवेद्य देवपकान्नादि करणा । तदपीछे सुस्नात गृहस्थगुरु बालकको आसनऊपर बैठाके बृहत्स्नात्रविधिकृत जिनस्नात्रोदकसें शांतिदेवीके मन्त्रकरके सिंचन करे । तदपीछे कुलक्रमागत नापित (नाइ) के हाथसें मुंडन करवावे । तीन वर्णके शिरके मध्यभागमें शिखा स्थापन करे । और शूद्रको सर्वमुंडन । चूडाकरण करते हुए यह वेदमन्त्र पढे ॥

यथा ॥

"॥ ॐ अर्हं ध्रुवमायुर्ध्रुवमारोग्यं ध्रुवा श्रीयो ध्रुव कुलं ध्रुव यशो ध्रुव तेजो ध्रुव कर्म्म ध्रुवा च गुणसंततिरस्तु अर्हं ॐ ॥"

यह सातवार पढता हुआ बालकको तीर्थोदककरके सींचे । गीत वा जत्र सर्वत्र जाणने । तदपीछे पंचपरमेष्ठिपाठपूर्वक बालकको आसनसें उठायकर स्नान करावे । चंदनादिकरके लेपन करे । श्वेतवस्त्र पहिनावे । भूषणोंकरके भूषित करे । तदनंतर धर्मागारमें लेजावे । तदपीछे पूर्वरीतिसें मंडलीपूजा गुरुवंदना वासक्षेपादि । तदपीछे साधुयोंको शुद्ध वस्त्र, अन्न, पात्र और षड्रस विकृति दान देवे । गृहगुरुको वस्त्र स्वर्ण दान देवे । नापितको वस्त्र कंकण दान देवे ॥ इत्याचार्यश्रीवर्द्धमानसूरिकृताचारदिनकरस्य गृहिधर्मप्रतिबद्धचूडाकरणसंस्कारकीर्त्तननामैकादशोदयस्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिकृतो बालावबोधस्समाप्तस्तत्समाप्तौ च समाप्तोयं त्रयोविंशस्तम्भ ॥ ११ ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रंथे एकादशचूडाकरणसंस्कारवर्णनो नाम त्रयोविंशस्तम्भः ॥ २३ ॥

॥ अथ चतुर्विंशस्तम्भारम्भः ॥

अथ २४ मे स्तंभमें उपनयनसंस्कारविधि लिखते हैं. ॥ तहां उपनयन नाम मनुष्योंको वर्णक्रममें प्रवेश करणेवास्ते संस्कारही वेषमुद्राके उद्वहनसें स्व २ गुरुयोंके उपदेशो धर्ममार्गमें निवेश (प्रवेश) करता है. ।

यदुक्तमागमे ॥

धम्मायारे चरिए वेसो सवच्छ कारणं पढमं ॥
संजमलज्जाहेऊ साड्डाणं तहय साहूणं ॥१॥

अर्थः—धर्माचारके आचरण करते हुए वेष जो है, सो सर्वत्र प्रथम कारण है. श्रावक तथा साधुयोंको संजमलज्जाका हेतु है. ॥

तथा च श्रीधर्मदासगणिपादैरुपदेशमालायामप्युक्तम् ॥

यथा ॥

धम्मं रक्खइ वेसो संकइ वेसेण दिक्खिओमि अहं ॥
उम्मग्गेण पडंतं रक्खइ राया जणवऊव्व ॥१॥

अर्थः—वेष धर्मकी रक्षा करता है. क्योंकि, वेष होनेसें अकार्य करता हुआ मनमें शंका करता है कि, मैं दीक्षितवेषवाला हूं, मुझको देखके लोक निंदा करेंगे, इसवास्ते उन्मार्गमें पडते हुएकी भी वेष रक्षा करता है, जैसें राजा देशकी रक्षा करता है. ॥ तथा इक्ष्वाकुवंशी, नारदवंशी, वैश्य, प्राच्य, उदीच्य, इन वंशोंके जैन ब्राह्मणको उपनयन और जिनोपवीत धारण करणा. । तथा क्षत्रीयवंशमें उत्पन्न हुए जिन, चक्रि, बलदेव, वासुदेवोंको, श्रेयांसकुमार दशार्णभद्रादि राजायोंको, हरिवंश, इक्ष्वाकुवंश, विद्याधरवंश, इन वंशोंमें उत्पन्न हुएको भी, उपनयन जिनोपवीतधारण विधि है. । जिसवास्ते कहा है, आगममें,

"देवाणुप्पिआ, न एअं भूअं, न एअं भव्वं, न एअं भविस्सं, जन्नं, अरहंता वा, चक्कवट्टी वा, बलदेवा वा, वासुदेवा वा, अंतकुलेसु वा, पंतकुलेसु वा, किविणकुलेसु वा, तुच्छकुलेसु वा, दरिद्दकुलेसु वा, भिरकागकुलेसु वा, माहणकुलेसु वा, आयाइंसु वा आयाइंति वा, आयाइस्संति वा,

एष खलु, अरहता वा, चक्कवलवासुदेवा वा, उग्गकुलेसु वा, भोगकुलेसु वा, राइन्नकुलेसु वा, खत्तियकुलेसु वा, इरकागकुलेसु वा, हरिवसकुलेसु वा, अन्नयरेसु वा, तहप्पगारेसु विसुद्ध जाइकुलवसेसु आया इसु वा, आया ईति वा, आयाइस्सति वा, अच्छि पुण एसेवि भावे, लोगच्छेयभूए, अणताहिं उसप्पिणि ऊसप्पिणीहिं वइक्कताहिं, समुपच्चइ, नामगुत्तस्स वा, कम्मस्स, अरकीणस्स, अवेइयस्स, अणिाचिणस्स, उदण्णं, जन्न, अरहता वा, चक्कवलवासुवेवा वा, अतकुलेसु वा, पतकिविणतुच्छदरिद्द मिरकागमाहणकुलेसु वा, आयाइसु वा, आयाइति वा, आयाइस्सति वा, नो चेव ण, जोणीजम्मणनिरकमणेण निरकर्मिसु वा, निक्खमति वा, निक्खमिस्सति वा तं जीअमेअ, तीअपच्चुप्पन्नमणागयाण सक्काण, देविंदाण, देवराईण, अरहते भगवते, तहप्पगारेहिंतो, अतकुलेहिंतो, पंत कुलेहिंतो, तुच्छदरिद्दकिविण भिक्खागमाहणकुलाहिंतो, तहप्पगारेसु उग्गभोगरायन्नखत्तियइरकागहरिवसकुलेसु वा, अन्नयरेसु वा, तहप्पगारेसु विसुद्धजाइकुलवसेसु साहरावित्तए ॥" * तिसवास्ते कार्तिकशेठ कामदेवा दिवैश्योंको भी उपनयन जिनोपवीत धारण करणा । आनदादि शुद्रोंको भी उत्तरीय धारण करणा । शेष वणिगादिकोंको उत्तरासगकी अनुज्ञा है जिनोपवीत जो है सो भगवान् जिनकी गृहस्थपणेकी मुद्रा है । सर्व बाह्य अभ्यतर कर्मविमुक्त निर्ग्रंथ यतियोंको तो, नव ब्रह्मगुप्तिगुप्ता ज्ञानदर्शनचारित्ररत्नत्रयी, हृदयमेंही है क्योंकि, मुनिजन सर्वदा तद्भाव नाभावितही होते हैं' इसवास्ते नवब्रह्मगुप्तियुक्तरत्नत्रयी सूत्ररूप बाह्यमु द्राको नही धारण करते हैं, तन्मय होनेसें नही समुद्र, जलपात्रको हस्तमें करता है । नही सूर्य दीपकको धारण करता है

यत उक्तम् ॥

अग्नौ देवोस्ति विप्राणा हृदि देवोस्ति योगिनाम् ॥
प्रतिमास्वल्पबुद्धीना सर्वत्र विदितात्मनाम् ॥ १ ॥

* इस पाठका भावार्थ यह है कि पूर्वोक्त अंतादिकुलमें अरिहंतादि नहीं उत्पन्न होते हैं, किंतु उग्रादि उत्तमधर्मादिसयुक्त कुलमें उत्पन्न होते हैं, शुद्ध होनेसें ॥

अर्थः—अग्निहोत्रि ब्राह्मणोंका तो, अग्निही देव है, अर्थात् अग्निविषेही देवबुद्धि है; और योगिजनोंके हृदयमेंही देव है; क्योंकि, योगाभ्यासी मुनिजन तो, अपने पिंडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ, रूपातीत, ध्यानके बलसें अपने हृदयमेंही देवका स्वरूप ध्याय सकते हैं; और जो अल्पबुद्धि अर्थात् गृहस्थधर्मी श्रावकादि हैं, तिनोंको भगवान्की प्रतिमाही देव है; तिसकेही पूजन, ध्यान, प्रभावना, उत्सव, रथयात्रा, करनेसें कल्याण है. और जिनोंने आत्मस्वरूप जाना है, ऐसें यति, ऋषि, मुनियोंको तो सर्वजगें देव मालुम होता है; अर्थात् ध्याता, ध्येय, ध्यान, ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान रूपकरके सर्व देवस्वरूपही है. ॥ इसवास्ते शिखासूत्रविवर्जित ब्रह्मगुप्तिरत्नत्रय करण कारण अनुमतिमें सदैव आदरवाले यतिजन हैं. । और गृहस्थी, ब्रह्मगुप्तिरत्नत्रयलेशश्रवणस्मरणमात्रसें ब्रह्मगुप्तिरत्नत्रयको सूत्रमुद्राकरके हृदयमें धारण करते हैं. । 'प्रतिमास्वल्पबुद्धीनां' इसवचनसें॥

तदात्मकत्वके न हुए मुद्राका धारण है. । जैसें छद्मस्थको बाह्य अभ्यंतर तपःका करणा है. । तथा नवतंतुगर्भत्रिसूत्रमय एक अग्र ऐसें तीन अग्र ब्राह्मणको, दो अग्र क्षत्रियको, एक अग्र वैश्यको, शूद्रको उत्तरीयक, और अपरको उत्तरासंगकी अनुज्ञा है. । ऐसा विशेष क्यों है? सोही कहते हैं. । ब्राह्मणोंने नवब्रह्मगुप्तियुक्त ज्ञानदर्शनचारित्ररूप रत्नत्रय आप पालन करणे, अन्योंसें करावणे, अन्य करतांको अनुमति देणी. ॥ ब्रह्मगुप्तिगुप्ताइति । ब्राह्मण आप रत्नत्रयीको अध्ययन सम्यक्दर्शन चारित्र क्रियायोंकरके आचरते हैं, अन्योंसें अध्यापन सम्यक्त्वोपदेश आचार प्ररूपणाकरके रत्नत्रयीका आचरण करवाते हैं, और ज्ञानोपाशन सम्यग्दर्शन धर्मोपाशनादिकोंकरके श्रद्धा करनेवाले और अनुज्ञा मांगनेवाले अन्योंको अनुज्ञा देते हैं, इसवास्ते नवब्रह्मगुप्तिगर्भ रत्नत्रय करण कारण अनुमतिवाले ब्राह्मणोंको जिनोपवीतमें तीन अग्र. । और क्षत्रियोंको आप रत्नत्रयका आचरण करणा, और निजशक्तिसें न्यायप्रवृत्तिकरके अन्योंसें आचरण करावणा योग्य है, परंतु तिन क्षत्रियोंको अन्य जनोंको अनुज्ञा देनी योग्य नही है. क्योंकि, वे ठकुराइवाले प्रभु

होनेसें अन्योंविषे नियमादिकी अनुज्ञा नही देते हैं, इसवास्ते क्षत्रियोंको जिनोपवीतमें दो अग्र । वैश्योंने ज्ञानभक्तिकरके सम्यक्त्व धृतिकरके उपासकाचारशक्तिकरके स्वयमेव रत्नत्रय आचरणा, । तिन वैश्योंको असामर्थ्य होनेसें अनुपदेशक होनेसें रत्नत्रयका करावणा, और अनुमतिका देणा योग्य नही है, इसवास्ते वैश्योंको जिनोपवीतमें एक अग्र । शूद्रोंको तो ज्ञानदर्शनचारित्ररूप रत्नत्रयके करणेमें आपही अशक्त है तो करावणा और अनुमतिका देणा तो दूरही रहा । तिनोंको अधम जाति होनेसें, नि सत्त्व होनेसें और अज्ञान होनेसें, इसवास्ते तिनोंको जिनाज्ञारूप उत्तरीयका धारण है। तिनसें अपरवणिगादिकोंको देवगुरुधर्मकी उपासनाके अवसरमें जिनाज्ञारूप उत्तरासगमुद्रा है ॥ जिनोपवीतका स्वरूप यह है ॥ स्तनांतरमात्रको चौराशीगुणा करिये तब एकसूत्र होवे, तिसको त्रिगुणा करणा, तिसको भी त्रिगुणा करके वर्त्तन करणा (वटना), ऐसें एक ततु हुआ, इसी रीतिसें दो ततु और योजन करिये, तब तीनो तंतु मिलाके एक अग्र होवे है । तहा ब्राह्मणको तीन अग्र, क्षत्रियको दो और वैश्योंको एक । परमतमें तो ऐसा कथन है॥

" कृते स्वर्णमय सूत्र त्रेताया रौप्यमेव च ॥
द्वापरे ताम्रसूत्रं च कलौ कार्प्पासमिष्यति ॥ १ ॥

कृतयुगमें स्वर्णमयसूत्र, त्रेतायुगमें रूपेका, द्वापरयुगमें तांबेका और कलियुगमें कपासका यज्ञोपवीत ॥ " परतु जिनमतमें तो, सर्वदा ब्राह्मणोंको सौवर्णसूत्र, * और क्षत्रियवैश्योंको सदा कार्पास सूत्रही है ॥ इतिजिनोपवीतयुक्ति ॥

अथ उपनयनविधि कहते हैं—उपनीयते वर्णक्रमारोहयुक्तिकरके प्राणीको पुष्टिको प्राप्त करिये, इत्युपनयन । श्रवण, धनिष्ठा, हस्त, मृगशिर, अश्विनी, रेवती, स्वाति, चित्रा, पुनर्वसू । तथा च ।

* आगमपवेराग्डुर्स ॥ स न (भरत) पाणिणीरत्नन तान [illegible]-भारिस्पगमणु मा [illegible] नामीत मुरगमयानि [illegible] । महापन प्रभृनयस्तु येषन रूप्यमयानि के भिर् विभिन्नसहसूत्रमयानीस्य यज्ञोपवीतनाधिदि ॥

मृगशिर, रेवती, श्रवण, धनिष्ठा, हस्त स्वाति, चित्रा, पुष्य, अश्विनी, इन नक्षत्रोंमें मेखलाबंध, और मोक्ष करणा, आचार्यवर्य्य कहते हैं. । गर्भाधानसें वा जन्मसें आठमे वर्षमें ब्राह्मणोंको मौंजीबंध कथन करते हैं, क्षत्रियोंको इग्यारह (११) वर्षमें, और वैश्योंको बारमे वर्षमें. । वर्णाधिपके बलवान हुए उपनीतिक्रिया हितकारिणी होती है, अथवा सर्व वर्णोंको गुरु चंद्र सूर्य बलवान् हुए, हित हैं. । बृहस्पतिवार होवे, बृहस्पति बलवान् होवे, वा केंद्रगत होवे, तो, द्विजोंको उपनयन श्रेष्ठ है. और बृहस्पति तथा शुक्र नीच घरमें होवे, शत्रुके घरमें होवे, वा पराजित होवे तो, श्रवणविधीमें स्मृतिकर्म हीन होवे । लग्नमें बृहस्पति होवे, त्रिकोणमें शुक्र होवे, और शुक्रांशमें चंद्रमा होवे तो वेदवित् होवे; शुक्रसहित सूर्य लग्नमें शनिके अंशमें स्थित होवे, तदा प्रोज्झितविद्याशील कृतघ्न होवे. । केंद्रमें बृहस्पति होवे तो, स्वअनुष्ठानमें रक्त होवे, प्रवरमतियुत होवे. शुक्र होवे तो, विद्या सौख्य अर्थयुक्त होवे. बुध होवे तो, अध्यापक होवे, सूर्य होवे तो, राजाका सेवक होवे, मंगल होवे तो, शस्त्रवृत्तिवाला होवे. चंद्रमा होवे तो, वैश्यवृत्तिवाला होवे. शनि होवे तो, अंत्यजोंका सेवक होवे. । शनिके अंशमें मूर्खता उदय होवे, सूर्यके भागमें क्रूरपणा होवे, मंगलके अंशमें पापबुद्धि होवे, चंद्रांशमें अतिजडपणा होवे, बुधांश होवे तो पटुपणा होवे, गुरुशुक्रके भागमें सुज्ञपणा होवे. । सूर्यसहित बृहस्पति होवे तो निर्गुण होवे अर्थहीन होवे, मंगलसहित सूर्य होवे तो क्रूर होवे, बुधसहित होवे तो पटु होवे, शनिसहित होवे तो आलसु और निर्गुण होवे, शुक्र और चंद्रमासहित होवे तो बृहस्पतिवत् जाणना. । पूर्वोक्त निर्दोष नक्षत्रोंमें मंगलविना अन्यवारोंमें सुतिथिमें दिनशुद्धिमें दिनसें शुभग्रहयुक्त लग्नसें । विवाहवत् त्याज्य नक्षत्रदिनमासादिको वर्ज देवे. ग्रहनिर्मुक्त पांचमे लग्नसें व्रत आचरे. ॥

प्रथम यथासंपत्तिकरके उपनेय पुरुषको सात, नव, पांच वा तीन, दिनतक सतैल निषेक स्नान करावे तदपीछे लग्नदिनसें गृह्यगुरु, तिसके घरमें ब्राह्म मुहूर्त्तमें पौष्टिक करे. तदनंतर उपनेयके शिरपर शिखावर्जके वपन मुंडन करावे, पीछे वेदी स्थापन करे. तिसके मध्यमें वेदीचतुष्किका चौ-

कीरूप वेदी करणी, अर्थात् चौतडा करणा, वेदीप्रतिष्ठा विवाहाधिकारसें जाणनी तिस वेदीचतुष्किकाके ऊपर समवसरणरूप चतुर्मुख जिनबिंब अर्थात् चौमुखा स्थापन करे, तिसको पूजके गुरु, जिसने सदश श्वेतवस्त्र पहिना है, वस्त्रका उत्तरासंग करा है, अक्षत नालिकेर क्रमुक हाथमें लिये हैं, ऐसे उपनेयको समवसरणको तीन प्रदक्षिणा करवावे । तदपीछे गुरु उपनेयको वामे पासे स्थापके, पश्चिमदिशाके सन्मुख जिसका मुख है, तिस जिनबिंबके सन्मुख बैठके प्रथम ऋषभ अर्हत् देवस्तोत्रयुक्त शक्रस्तव पढे । फेर तीन प्रदक्षिणाकरके उत्तराभिमुख जिनबिंबके सन्मुख तैसेंही शक्रस्तव पढे, । ऐसेंही, त्रिप्रदक्षिणांतरित पूर्वाभिमुख, दक्षिणाभिमुख, जिनबिंबोंके आगे भी शक्रस्तव पढे मंगलगीतवाजत्रादिकोंका तिसवखत विस्तार करणा । तदपीछे तहां आचार्य उपाध्याय, साधु, साध्वी, श्रावक श्राविकारूप श्रीश्रमणसंघको एकत्र करे तदपीछे प्रदक्षिणा शक्रस्तवपाठके अनंतर एकगुरु, उपनयनके प्रारंभवास्ते वेदमंत्रका उच्चार करे और उपनेय जो है, सो दूर्वाफलादिकरके हस्तपूर्ण करके जिन आगे हाथ जोडके अर्थात् अंजलिकरके खडा होके श्रवण करे ॥

उपनयनारंभ वेदमंत्रो यथा ॥

"ॐ अर्हं अर्हद्भ्योनमः । सिद्धेभ्योनमः । आचार्येभ्योनमः । उपाध्यायेभ्यो नमः । साधुभ्यो नमः । ज्ञानाय नमः । दर्शनाय नमः । चारित्राय नमः । संयमाय नमः । सत्याय नमः । शौचाय नमः । ब्रह्मचर्याय नमः । आकिंचन्याय नमः । तपसे नमः । शमाय नमः । मार्दवाय नमः । आर्जवाय नमः । मुक्तये नमः । धर्माय नमः। संघाय नमः। सैद्धांतिकेभ्यो नमः । धर्मोपदेशकेभ्यो नमः । वादिलब्धिभ्यो नमः । अष्टांगनिमित्तज्ञेभ्यो नमः । तपस्विभ्यो नमः । विद्याधरेभ्यो नमः । इहलोकसिद्धेभ्यो नमः । कविभ्यो नमः । लब्धिमद्भ्यो नमः । ब्रह्मचारिभ्यो नमः ।

निष्परिग्रहेभ्यो नमः । दयालुभ्यो नमः । सत्यवादिभ्यो नमः । निःस्पृहेभ्यो नमः । एतेभ्यो नमस्कृत्यायं प्राणी प्राप्तमनुष्यजन्मा प्रविशति वर्णक्रमं अर्हं ॐ ॥"

ऐसें वेदमंत्रका उच्चार करके फिर भी पूर्ववत् तीन २ प्रदक्षिणा करके चारों दिशामें युगादिदेव स्तवसंयुक्त शक्रस्तव पाठ करे । तिस दिनमें, जल जवान्न भोजन करके आचाम्लका प्रत्याख्यान उपनेयको करावे । तदपीछे उपनेयको वामे पासे स्थापके सर्वतीर्थोंदकोंकरके अमृतामंत्रकरके कुशाग्रोंसें सिंचन करे. ।

तदनंतर परमेष्ठिमंत्र पढके

"नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्व्वसाधुभ्यः"

ऐसा कहके, जिन प्रतिमाके आगे उपनेयको पूर्वाभिमुख बैठावे; तदपीछे गृह्यगुरु, चंदनमंत्रकरके अभिमंत्रण करे. ॥

चंदनमंत्रो यथा ॥

"॥ॐ नमो भगवते,चंद्रप्रभजिनेंद्राय, शशांकहारगोक्षीरधवलाय, अनंतगुणाय, निर्म्मलगुणाय, भव्यजनप्रबोधनाय, अष्टकर्म्ममूलप्रकृतिसंशोधनाय, केवलालोकावलोकितसकललोकाय; जन्मजरामरणविनाशनाय सुमंगलाय, कृतमंगलाय,प्रसीद भगवन् इह चंदनेनामृताश्रवणं कुरु २ स्वाहा॥"

इस मंत्रकरके चंदनको मंत्रके हृदयमें जिनोपवीतरूप, कटिमें मेखलारूप और ललाटमें तिलकरूप, रेखाकरे, तदपीछे उपनेय "नमोस्तु २" ऐसें कहता हुआ, गुरुके चरणोंमें पडके खडा होके हाथ जोडके ऐसें कहे. ।

"॥ भगवन् वर्णरहितोऽस्मि । आचाररहितोऽस्मि । मंत्ररहितोऽस्मि । गुणरहितोऽस्मि । धर्म्मरहितोऽस्मि । शौचरहितोऽस्मि । ब्रह्मरहितोऽस्मि । देवर्षिपितृातिथिकर्म्मसु नियोजय मां ॥"

ऐसें कहकर फिर "नमोस्तु २" ऐसें कहता हुआ, गुरुके चरणोंमें पडे, गुरु भी इस मत्रको पढके उपनेयको चोटीसें पकडके खडा करे। मन्त्रो यथा ॥

"॥ ॐ अर्हं देहिन् निमग्नोऽसि भवार्णवे तत्कर्षति त्वा भगवतोऽर्हत प्रवचनैकदेशरज्जुना गुरुस्तदुत्तिष्ठ प्रवचनादानाय श्रद्धाहि अर्हं ॐ ॥"

ऐसें पढके उपनेयको खडा करके अर्हत्प्रतिमाके आगे पूर्वाभिमुख खडा करे तदपीछे गृह्यगुरु, सिततुवर्त्तित–तीन ततुकी त्रुणी, एकाशीति (८१) हाथ प्रमाण, मुजकी मेखलाको अपने दोनों हाथोंमें लेके, इस वेदमत्रको पढे ॥

"॥ ॐ अर्हं आत्मन् देहिन् ज्ञानावरणेन बद्धोऽसि दर्शनावरणेन बद्धोऽसि । वेदनीयेन बद्धोऽसि । मोहनीयेन बद्धोऽसि । आयुषा बद्धोऽसि । नाम्ना बद्धोऽसि । गोत्रेण बद्धोऽसि । अतरायेण बद्धोऽसि । कर्माष्टकेन प्रकृतिस्थितिरसप्रदेशैश्च बद्धोऽसि ।तन्मोचयाति त्वा भगवतोऽर्हत प्रवचनचेतना तद्बुध्यस्व मामुहः मुच्यता तव कर्म्मबधनमनेन मेखलाबधेन अर्हं ॐ ॥"

ऐसा पढके उपनेयकी कटिमें नवगुणी मेखलाको बांधे । तदपीछे उपनेय 'नमोस्तु २' कहता हुआ, गृह्यगुरुके पगोंमें पडे । मेखलाको एकाशी (८१) हाथपणा विप्रको एकाशीततुगर्भ जिनोपवीत सूचनकेवास्ते, क्षत्रियको चोपन (५४) हाथ तावत्प्रमाणततुगर्भ जिनोपवीत सूचनकेवास्ते, और वैश्यको सत्ताइस (२७) हाथ तद्गर्भसूत्रसूचनकेवास्ते है। ब्राह्मणको नवगुणी क्षत्रियको छीगुणी, और वैश्यको त्रिगुणी, मेखला बाधनी । तथा मौजी, कौपीन, जिनोपवीत, इनोंका पूजन, गीतादिमगल, निशाजागरण, तिसके पूर्वदिनकी रात्रिमे करणा । मेखलाबधनके पीछे फेर गृह्यगुरु, उपनेयके

विलस्तप्रमाण पृथुल (चौडा) और तीन विलस्तप्रमाण दीर्घ (लंबा) कौपिन दोनों हाथोंमें लेके ॥

"॥ ॐ अर्हं आत्मन् देहिन् मतिज्ञानावरणेन श्रुतज्ञानावरणेन अवधिज्ञानावरणेन मनःपर्यायावरणेन केवलज्ञानावरणेन इंद्रियावरणेन चित्तावरणेन आवृतोऽसि तन्मुच्यतां तवावरणमनेनावरणेन अर्हं ॐ ॥"

इस वेदमंत्रको पढता हुआ, उपनेयके अंतःकक्षको कौपीन पहरावे। तदपीछे उपनेय 'नमोस्तु २' कहता हुआ, फिर भी गुरुके पगोंमें पडे। फिर तीन २ प्रदक्षिणा करके चारों दिशामें शक्रस्तवपाठ करे.॥

तदनंतर लग्नवेलाके हुए गुरु, पूर्वोक्त जिनोपवीतको अपने हाथमें लेवे पीछे उपनेय फेर खडा होकर हाथ जोडके ऐसें कहे ॥

"॥ भगवन् वर्णोज्झितोऽस्मि। ज्ञानोज्झितोस्मि। क्रियोज्झितोस्मि। तज्जिनोपवीतदानेन मां वर्णज्ञानक्रियासु समारोपय॥"

ऐसें कहके 'नमोस्तु २' कहता हुआ गृह्यगुरुके पगोंमें पडे गुरु फिर पूर्वोक्त उत्थापनमंत्रकरके तिसको उठाके खडा करे। तदपीछे गुरु दक्षिण हाथमें जिनोपवीत रखके ॥

"॥ ॐ अर्हं नवब्रह्मगुप्तीः स्वकरकारणानुमतीर्धारयेः तदक्षयमस्तु ते व्रतं स्वपरतरणतारणसमर्थो भव अर्हं ॐ॥"

क्षत्रियको

"॥ करणकारणाभ्यां धारयेः स्वस्य तरणसमर्थो भव ॥"

वैश्यको

"॥ करणेन धारयेः स्वस्य तरणसमर्थो भव ॥"

शेषं पूर्ववत् ॥

इस वेदमत्रकरके पच परमेष्ठिमत्र पढता हुआ उपनेयके कठमें जिनो पवीत स्थापन करे । पीछे उपनेय तीन प्रदक्षिणा करके 'नमोस्तु २' कहता हुआ, गुरुको नमस्कार करे गुरु भी " निस्तारगपारगो भव " ऐसा आशीर्वाद कहे । तदपीछे गृहगुरु पूर्वाभिमुख होके, जिनप्रतिमाके आगे शिष्यको वामेपासे बैठाके, सर्व जगत्में सार, महा आगमरूप क्षीरोदधि का माखण, सर्ववांछितदायक, कल्पद्रुम कामधेनु चिंतामणिके तिरस्कार का हेतु, निमेषमात्र स्मरण करनेसें मोक्षका दाता, ऐसें पचपरमेष्ठिमत्रको गधपुष्पपूजित शिष्यके दक्षिणकानमें तीनवार सुणावे पीछे तीनवार तिसके मुखसें उच्चारण करावे ॥

यथा ॥

" ॥ नमो अरिहताण । नमो सिद्धाण । नमो आयरियाणं ।
नमो उवज्झायाण । नमो लोए सव्वसाहूणं ॥ "

पीछे उपनेयको मत्रका प्रभाव सुणावे ॥

तथथा ॥

सोलससु अरकरेसु इकिक अक्खर जगुज्जोअं ॥
भवसयसहस्स महणो जम्मि ठिउ पच नवकारो ॥ १ ॥

थभेइ जल जलण चिंतियमत्तो इ पच नवकारो ॥
अरिमारिचोरराउलघोरुवसग्ग पणासेइ ॥ २ ॥

एकत्र पचगुरुमत्रपदाक्षराणि ।
विश्वत्रय पुनरनंतगुण परत्र ॥
यो धारयेत्किल तुलानुगत ततोऽपि ।
वंदे महागुरुतर परमेष्ठिमत्रम् ॥ ३ ॥

ये केचनापि सुखमायरका अनता ।
उत्सार्पिणीप्रभृतयः प्रययुर्विवर्त्ता ॥

तेष्वप्ययं परतरः प्रथितः पुराऽपि ।
लब्ध्वैनमेव हि गताः शिवमत्र लोकाः ॥ ४ ॥
जग्मुर्जिनास्तदपवर्गपदं यदैव ।
विश्वं वराकमिदमत्र कथं विनास्मान् ॥
एतद्विलोक्य भुवनोद्धरणाय धीरैः ।
मंत्रात्मकं निजवपुर्निहितं तदाऽत्र ॥ ५ ॥
इंदुर्दिवाकरतया रविरिंदुरूपः ।
पातालमंबरमिलासुरलोक एव ॥
किंजल्पितेन बहुना भुवनत्रयेऽपि ।
तन्नास्ति यन्न विषमं च समं च तस्मात् ॥ ६ ॥
सिद्धांतोदधिनिर्म्मथान्नवनीतमिवोद्धृतम् ॥
परमेष्ठिमहामंत्रं धारयेत् हृदि सर्वदा ॥ ७ ॥
सर्वपातकहर्त्तारं सर्ववांछितदायकम् ॥
मोक्षारोहणसोपाने मंत्रे प्राप्नोति पुण्यवान् ॥ ८ ॥
धार्योयं भवता यत्नात् न देयो यस्य कस्यचित् ॥
अज्ञानेषु श्राविताेयं शपत्येव न संशयः ॥ ९ ॥
* न स्मर्त्तव्योऽपवित्रेण न जने नाऽन्यसंश्रये ॥
नाऽविनीतेन नो दीर्घशब्देनाऽपि कदाचन ॥ १० ॥
न बालानां नाऽशुचीनां नाऽधर्म्मीणां न दुर्दृशाम् ॥
+ न प्लुतानां न दुष्टानां दुर्ज्जातीनां न कुत्रचित् ॥ ११ ॥
अनेन मंत्रराजेन भूयास्त्वं विश्वपूजितः ॥
प्राणांतेऽपि परित्यागमस्य कुर्यान्न कुत्रचित् ॥ १२ ॥

---

* न स्मर्त्तव्योपवित्तेन न शठेनान्यसंश्रये इति पुस्तकांतरे ॥ तथा अन्येषु श्राद्धदिनकृतश्राद्धविधिकौमुदीपचाशकादिषु शास्त्रेष्वेवमुक्तं यथा सा काप्यवस्था नास्ति यस्यां नमस्कारो न स्मर्त्तव्य इति ॥

+ नाऽपूतानां न दुष्टानां दुर्ज्जनानां न कुत्राचित् । इति पुस्तकांतरे ॥

गुरुत्यागे भवेद्दु ख मंत्रत्यागे दरिद्रता ॥
गुरुमंत्रपरित्यागे सिद्धोऽपि नरक व्रजेत् ॥ १३ ॥
इति ज्ञात्वा सुगृहीत कुर्या मंत्रममु सदा ॥
सेत्स्यंति सर्वकार्याणि तवास्मान्मत्रतो ध्रुवम् ॥ १४ ॥

गुरुने ऐसे शिक्षा दिया हुआ उपनेय तीन प्रदक्षिणा करके "नमोस्तु २" ऐसें कहता हुआ, गुरुको नमस्कार करे पीछे गुरुको स्वर्णका जिनोपवीत, श्वेत वस्त्र रेशमी, और स्वर्णमौंजी स्वसपदानुसारें देवे और सर्वसघको भी ताबूल वस्त्रादि देवे ॥ इत्युपनयने व्रतवधविधि ॥

अथ व्रतादेशविधि लिखते हैं ॥ तिसही अवसरमें, तिसही सघके सगममें, तिसही गीतवाजत्रादि उत्सवमें, तिसही वेदचतुष्किकामें, प्रतिमास्थापन सयोगमें, व्रतादेशका आरभ करे तिसका यह क्रम है। गृह्यगुरु, उपनीत पुरुषके कार्पास रेशमी अतरीय उत्तरीय वस्त्र दूर करके मौंजी जिनोपवीत कौपीन येह वस्तुयों तिसकी देहमें तैसेंही स्थापके, तिसके ऊपर कृष्णसाराजिन (कालामृगचर्म) वा, वृक्षके वल्कलका वस्त्र पहिरावे । हाथमें पलाशका दडा देवे और इस मत्रको पढे

" ॥ ॐ अर्हं ब्रह्मचार्यसि। ब्रह्मचारिवेषोऽसि अवधिब्रह्मचर्योसि। धृतब्रह्मचर्योसि । धृताजिनदंडोसि। बुद्धोऽसि। प्रबुद्धोऽसि। धृतसम्यक्त्वोऽसि। दृढसम्यक्त्वोसि। पुमानसि। सर्वपूज्योऽसि । तदवधिब्रह्मव्रत आगुरुनिदेश धारये अर्हं ॐ ॥ "

ऐसें पढके व्याघ्रचर्ममय आसनके ऊपर, वा कल्पित काष्ठमय आसनके उपर उपनीतकों थिठलावे तिसके दक्षिण हाथकी प्रदेशिनी अगुलीमें दर्भसहित कांचनमयी षोडश १६ मासे प्रमाण (पाच गुजाका एक मासा जाणना) पवित्रिका मुद्रा पहरावे ।

पवित्रिका परिधापनमंत्रो यथा ॥

"पवित्रं दुर्ल्लभं लोके सुरासुरनृवल्लभम् ॥
सुवर्णं हंति पापानि मालिन्यं च न संशयः ॥ १ ॥"

तदपीछे उपनीत, मुखसें पंचपरमेष्ठिमंत्र पढता हुआ, गंध पुष्प अक्षत धूप दीप नैवेद्यकरके चारों दिशामें जिनप्रतिमाको पूजे। तदपीछे जिनप्रतिमाको प्रदक्षिणाकरके और गुरुको प्रदक्षिणा करके 'नमोस्तु २' कहता हुआ, हाथ जोडके ऐसें कहे ॥ "भगवन् उपनीतोहं" गुरु कहे "सुष्ठूपनीतो भव।" फेर उपनीत 'नमोस्तु' कहता हुआ नमस्कार करके कहे। "कृतो मे व्रतबंधः।" गुरु कहे। "सुकृतोऽस्तु।" फेर 'नमोस्तु' कहके नमस्कार करके शिष्य कहे "। भगवन् जातो मे व्रतबंधः।" गुरु कहे "। सुजातोऽस्तु।" फेर नमस्कार करके शिष्य कहे। "जातोऽहं ब्राह्मणः। क्षत्रियो वा। वैश्यो वा।" गुरु कहे। "दृढव्रतो भव। दृढसम्यक्त्वो भव।" फेर शिष्य नमस्कार करके कहे। "भगवन् यदि त्वया कृतो ब्राह्मणोऽहं तदादिश कृत्यं।" गुरु कहे "अर्हद्गिरा दिशामि।" फेर नमस्कार करके शिष्य कहे। "भगवन् नवब्रह्मगुप्ति गर्भं रत्नत्रयंममादिष्टं।" गुरु कहे। "आदिष्टं। फेर नमस्कार करके शिष्य। "भगवन् नवब्रह्मगुप्तिगर्भं रत्नत्रयं मम समादिश।" गुरु कहे। "समादिशामि।" फेर नमस्कार करके शिष्य कहे। "भगवन् नवब्रह्मगुप्तिगर्भं रत्नत्रयं मम समादिष्टं।" गुरु कहे। "समादिष्टं।" फेर नमस्कार करके शिष्य कहे। "भगवन् नवब्रह्मगुप्तिगर्भं रत्नत्रयं ममानुजानीहि।" गुरु कहे। "अनुजानामि" फेर नमस्कार करके शिष्य कहे। "भगवन् नवब्रह्मगुप्तिगर्भं रत्नत्रयं ममानुज्ञातं।" गुरु कहे। "अनुज्ञातं"। फेर नमस्कार करके शिष्य कहे। "भगवन् नवब्रह्मगुप्तिगर्भं रत्नत्रयं मया स्वयं करणीयं।" गुरु कहे। "करणीयं" फेर नमस्कार करके शिष्य कहे। "भगवन् नवब्रह्मगुप्तिगर्भं रत्नत्रयं मया अन्यैः कारयितव्यं।" गुरु कहे। "कारयितव्यं।" फेर नमस्कार करके शिष्य कहे। "भगवन् नवब्रह्मगुप्तिगर्भं रत्नत्रयं कुर्वतोऽन्ये मया अनु-

ज्ञातव्या । " गुरु कहे । " अनुज्ञातव्या " क्षत्रियको यह विशेष है 'भगवन् अह क्षत्रियो जात ' आदेश समादेश दोनों कहने, अनुज्ञा न कहनी करणकारणमें ' कर्त्तव्य ' ' कारयितव्य ' ऐसें कहना, ' अनुज्ञातव्य ' ऐसे न कहना । और वैश्यको आदेश ही कहना, समादेश अनुज्ञा यह दोनों न कहने । ' कर्त्तव्य ' कहना, ' कारयितव्य ' ' अनुज्ञातव्य ' यह न कहने । तदपीछे उपनीत हाथ जोडके कहे । ' हे भगवन् ! आदिश्यता व्रतादेश । ' तब गुरु आदेश करे अर्थात् व्रतादेश कथन करे । तहा प्रथम ब्राह्मणप्रति व्रतादेश कहते हैं ।

यथा ॥ ॥ मूलम् ॥

परमेष्ठिमहामन्त्रो विधेयो हृदये सदा ॥
निर्ग्रंथाना मुनींद्राणा कार्यं नित्यमुपासनम् ॥ १ ॥
त्रिकालमर्हत्पूजा च सामायिकमपि त्रिधा ॥
शक्रस्तवैस्सप्तवेळ वदनीया जिनोत्तमा ॥ २ ॥
त्रिकालमेककाल वा स्नान पूतजलैरपि ॥
मद्य मास तथा क्षौद्र तथोदुवरपचकम् ॥ ३ ॥
आमगोरससपृक्त द्विदल पुष्पितौदनम् ॥
सधानमपि सम्त्यक्त तथा वै निशि भोजनम् ॥ ४ ॥
शूद्रान्न चैव नैवेद्य नाश्नीयान्मरणेऽपि हि ॥
प्रजार्थ गृहवासेऽपि सभोगो न तु कामत ॥ ५ ॥
आर्यवेदचतुष्क च पठनीय यथाविधि ॥
कर्षण पाशुपाल्य च सेवावृत्ति विवर्जये ॥ ६ ॥
सत्य वच प्राणिरक्षामन्यस्त्रीधनवर्जनम् ॥
कषायविषयत्याग निदध्या शौचभागपि ॥ ७ ॥
प्राय क्षत्रियवैश्याना न भोक्तव्य गृहे त्वया ॥
ब्राह्मणानामार्हताना भोजन युज्यते गृहे ॥ ८ ॥

स्वज्ञातेरपि मिथ्यात्ववासितस्य पलाशिनः ॥
न भोक्तव्यं गृहे प्रायः स्वयंपाकेन भोजनम् ॥ ९ ॥
आमान्नमपि नीचानां न ग्राह्यं दानमंजसा ॥
भ्रमता नगरे प्रायः कार्यः स्पर्शो न केनचित् ॥ १० ॥
उपवीतं स्वर्णमुद्रां नांतरीयमपि त्यजेः ॥
कारणांतरमुत्सृज्य नोष्णीषं शिरसि व्यधाः ॥ ११ ॥
धर्म्मोपदेशः प्रायेण दातव्यः सर्वदेहिनाम् ॥
व्रतारोपं परित्यज्य संस्कारान् गृहमेधिनाम् ॥ १२ ॥
निर्ग्रंथगुर्वनुज्ञातः कुर्याः पंचदशापि हि ॥
शांतिकं पौष्टिकं चैव प्रतिष्ठामर्हदादिषु ॥ १३ ॥
निर्ग्रंथानुज्ञया कुर्याः प्रत्याख्यानं च कारयेः ॥
धार्य च दृढसम्यक्त्वं मिथ्याशास्त्रं विवर्ज्जयेः ॥ १४ ॥
नानार्यदेशे गंतव्यं त्रिशुद्ध्याशौचमाचरेः ॥
पालनीयस्त्वया वत्स व्रतादेशो भवावधिः ॥ १५ ॥

॥ इतिब्राह्मणव्रतादेशः ॥

[भाषार्थः] परमेष्टिमहामंत्र सदा हृदयमें धारण करना, निर्ग्रंथ मुनींद्रोंकी नित्य उपासना करनी। तीन कालमें अरिहंतकी पूजा करनी, तीनवार सामायिक करनी, शक्रस्तवसें सातवार चैत्यवंदना करनी। छाने हुए शुद्ध जलसें त्रिकालमें वा, एककालमें स्नान करना, मदिरा, मांस, मधु, माखण * पांच जातिके उडुंबरफल, आमगोरससंयुक्त अर्थात् कच्चे विना गरम करे गोरस दूध दही छाछके साथ द्विदल अन्न, जिसपर नीली फूली आजावे सो अन्न जीवोत्पत्तिसंयुक्त संधान अर्थात् तीन दिन

* तक्रमें पडा हुआ माखण औषधादिकमें ग्राह्य होनेसे सूत्रकारने लिखा नही है, तथापि तक्रनिर्गत अंतर्मुहूर्त्तानंतर अभक्ष्य ही जाणना ॥

उपरातका आचार, रात्रिभोजन, शूद्रका अन्न, देवके आगे चढा नैवेद्य इन पूर्वोक्त वस्तुयोंको मरणातमें भी न खाना। सतानोत्पत्तिकेवास्ते ऋतु वासमें स्त्रीसें सभोग करना न तु कामासक्त होके। चारों आर्यवेद विधिसें पढने, खेती, पशुपालपणा और सेवावृत्ति (नौकरी) येह नही करने। शुचिमान् ऐसे तैनें सत्य वचन बोलना, प्राणिकी रक्षा करनी, अन्य स्त्री और अन्य धन येह वर्जने, कषाय विषयको त्यागने, प्राय क्षत्रिय और वैश्योंके घरमें तैनें भोजन न करना, आर्हत् ब्राह्मणोंके घरमें भोजन करना तुझको योग्य है। अपनी ज्ञातिका जो मिथ्यात्ववासित होवे, और मा साहारी होवे तिसके घरमें भी भोजन नही करणा। प्राय आपही पकाके भोजन करना। कच्चे अन्नका भी दान नीचोंका न ग्रहण करणा, नगरमें भ्रमण करता किसीका भी प्राय स्पर्श न करना। उपवीत, स्वर्णमुद्रा और अतरीय, इनको त्याग न करने कारणांतरको वर्जके शिरके ऊपर उष्णीष धारण न करना। प्राय सर्व मनुष्योंको धर्मोपदेश देना, व्रतारो पको वर्जके निर्ग्रंथ गुरुकी आज्ञासें पचदश १५ सस्कार गृहस्थोंको करने, तथा शातिक, पौष्टिक, जिनप्रतिमाकी प्रतिष्ठादि करावने। निर्ग्रंथकी आज्ञासें प्रत्याख्यान करना, और अन्यको करावना, सम्यक्त्वको दृढ धारण करना, मिथ्याशास्त्रकी श्रद्धा वर्जनी। अनार्य देशमें जाना नही, तीनों शुद्धियां करके शौच आचरण करना, हे वत्स! तैनें पूर्वोक्त व्रता देश जबतक ससारमें रहे तबतक पालना ॥ १५ ॥ इतिब्राह्मणव्रतादेशः ॥

अथक्षत्रियव्रतादेश ॥

॥ मूलम् ॥

परमेष्ठिमहामत्र स्मरणीयो निरतरम् ॥
शक्रस्तवैस्त्रिकाल च वदनीया जिनेश्वराः ॥ १ ॥
मद्य मास मधु तथा सधानोदुबरादि च ॥
निशि भोजनमेतानि वर्जयेदतियत्नत ॥ २ ॥
दुष्टनिग्रहयुद्धादिवर्जयित्वा वधोंगिनाम् ॥
न विधेय स्थूलमृषावादस्त्यक्तव्य एव च ॥ ३ ॥

परनारीं परधनं त्यजेदन्यविकत्थनम् ॥
युक्त्यासाधूपासनं च द्वादशव्रतपालनम् ॥ ४ ॥
विक्रमस्याविरोधेन विधेयं जिनपूजनम् ॥
धारणं चित्तयत्नेन स्वोपवीतांतरीययोः ॥ ५ ॥
लिंगिनामन्यविप्राणामन्यदेवालयेष्वपि ॥
प्रणामदानपूजादि विधेयं व्यवहारतः ॥ ६ ॥
सांसारिकं सर्वकर्म्म धर्मकर्म्माणि कारयेत् ॥
जैनविप्रैश्च निर्ग्रंथैर्दृढसम्यक्त्ववासितः ॥ ७ ॥
रणे शत्रुसमाकीर्णे धार्यो वीररसो हृदि ॥
युद्धे मृत्युभयं नैव विधेयं सर्वथापि हि ॥ ८ ॥
गोब्राह्मणार्थे देवार्थे गुरुमित्रार्थ एव च ॥
स्वदेशभंगे युद्धेत्र सोढव्यो मृत्युरप्यलम् ॥ ९ ॥
ब्राह्मणक्षत्रियोर्नैव क्रियाभेदोस्ति कश्चन ॥
विहायान्यव्रतानुज्ञाविद्यावृत्तिप्रतिग्रहान् ॥ १० ॥
दुष्टनिग्रहणं युक्तं लोभं भूमिप्रतापयोः ॥
ब्राह्मणव्यतिरिक्तं च क्षत्रियोदानमाचरेत् ॥ ११ ॥

॥ इतिक्षत्रियव्रतादेशः ॥

अथ क्षत्रियव्रतादेश कहते हैं. ॥ परमेष्ठिमहामंत्र निरंतर स्मरण करना शक्रस्तवोंकरके त्रिकाल जिनेश्वरको वंदन करना. । मद्य, मांस, मधु, संधान, पांच उडुंबरादि, आदिशब्दसें आमगोरससंयुक्त द्विदल, पुष्पितौदन, ग्रहण करना, और रात्रिभोजन, इनको यत्नसें वर्जे । दुष्टका निग्रह करना, और युद्धादि वर्जके प्राणियोंका वध न करना, स्थूलमृषावादत्याग करना, न वोलना इत्यर्थः। परस्त्रीका और परधनका त्याग करना; परकी निंदाका त्याग करे, युक्तिसें साधुयोंकी उपासना करे, और बारां व्रत पालन करे । अपनी शक्ति अनुसार जिनपूजन करना चित्तयत्नसें

अर्थात् उपयोगर्से स्वउपवीत, और अत्तरीयको धारण करना। लिंगियोंको, अन्य ब्राह्मणोंको, और अन्यदेवालयोंमें भी, प्रणाम दान पूजादि काम पडे तो, लोकव्यवहारसें करने। ससारिक सर्व कर्म जैनब्राह्मणों और धर्म कर्म निर्ग्रंथों करके करवावे दृढसम्यक्त्वकी वासनावाला होवे। शत्रुयोंकरके समाकीर्ण रणमें हृदयके विषे वीररस धारण करना, युद्धमें मृत्युका भय सर्वथा नही करना। गौ ब्राह्मणके अर्थें, देवके अर्थें, गुरु और मित्रके अर्थें, स्वदेशके भग होते, और युद्धमें, मृत्यु भी सहन करना योग्य है। ब्राह्मण और क्षत्रियकी क्रियामें कुछ भी भेद, नही है, पर अन्यको व्रतअनुज्ञा देनी, विद्यावृत्ति प्रतिग्रह (स्वीकार—दान) इनको वर्जके दुष्टोंका निग्रह करना योग्य है, भूमि और प्रतापका लोभ करना, ब्राह्मणसें व्यतिरिक्त क्षत्रिय दान आचरण करे ॥ ११ ॥ इति क्षत्रियव्रतादेश ॥

अथ वैश्यव्रतादेश ॥

॥ मूलम् ॥

त्रिकालमर्हत्पूजा च सप्तवेल जिनस्तव ॥
परमेष्ठिस्मृतिश्चैव निर्ग्रंथगुरुसेवनम् ॥ १ ॥
आवश्यक द्विकाल च द्वादशव्रतपालनम् ॥
तपोविधिर्गृहस्थार्हो धर्मश्रवणमुत्तमम् ॥ २ ॥
परनिंदावर्जन च सर्वत्राप्युचितक्रम ॥
वाणिज्यपाशुपाल्याभ्या कर्षणेनोपजीवनम् ॥ ३ ॥
सम्यक्त्वस्यापरित्याग प्राणनाशेपि सर्वथा ॥
दान मुनिभ्य आहारपात्राच्छादनसद्मनाम् ॥ ४ ॥
कर्म्मादानविनिर्मुक्त वाणिज्य सर्वमुत्तमम् ॥
उपनीतेन वैश्येन कर्त्तव्यमिति यत्नत ॥ ५ ॥

॥ इतिवैश्यव्रतादेश ॥

अथ वैश्यव्रतादेश कहते हैं ॥ त्रिकाल अर्हत्पूजा करनी, सातवार जिनस्तव चैत्यवंदन करना, पंचपरमेष्ठिमंत्रका स्मरण करना, निर्ग्रंथ गुरुकी सेवा करनी. । दो कालमें (प्रातः कालमें और सायं कालमें) आवश्यक (प्रतिक्रमणादि) करना. बारां व्रत पालने, गृहस्थोचित तपोविधि करना, उत्तम धर्म श्रवण करना, परकी निंदा वर्जनी, सर्वत्र उचित काम करना, वाणिज्य, पशुपालन और खेती करके आजीविका करनी. । सर्वथाप्रकारे प्राणोंका नाश होवे तो भी, सम्यक्त्व नही त्यागना; मुनियोंको आहार, पात्र, वस्त्र, मकान (उपाश्रय) का दान करना. । कर्मादानसें रहित सर्व उत्तम वाणिज्य (व्यापार) करना, उपनीत वैश्यको ये पूर्वोक्त यत्नसें करणे योग्य हैं. ॥ इतिवैश्यव्रतादेशः ॥

अथ चातुर्वर्ण्यस्य समानो व्रतादेशः ॥

॥ मूलम्म् ॥

निजपूज्यगुरुप्रोक्तं देवधर्म्मादिपालनम् ॥
देवार्चनं साधुपूजा प्रणामोविप्रलिंगिषु ॥ १ ॥
धनार्जनं च न्यायेन परनिंदाविवर्जनम् ॥
अवर्णवादो न क्वापि राजादिषु विशेषतः ॥ २ ॥
स्वसत्त्वस्यापरित्यागो दानं वित्तानुसारतः ॥
आयोचितो व्ययश्चैव काले काले च भोजनम् ॥ ३ ॥
न वासोऽल्पजले देशे नदीगुरुविवर्जिते ॥
न विश्वासो नरेन्द्राणां नागरीयनियोगिनाम् ॥ ४ ॥
नारीणां च नदीनां च लोभिनां पूर्ववैरिणाम् ॥
कार्यं विना स्थावराणामहिंसा देहिनामपि ॥ ५ ॥
नासत्याहितवाक् चैव विवादो गुरुभिर्न च ॥
मातापित्रोर्गुरोश्चैव माननं परतत्त्ववत् ॥ ६ ॥

शुभशास्त्राकर्णनं च तथा नाऽभक्ष्यभक्षणम् ॥
अत्याज्याना न च त्यागोप्यऽघात्यानामघातनम् ॥ ७ ॥
अतिथौ च तथा पात्रे दीने दान यथाविधि ॥
दरिद्राणा तथाधानामापद्धारभृतामपि ॥ ८ ॥
हीनाङ्गाना विकलाना नोपहास कदाचन ॥
समुत्पन्नक्षुत्पिपासाघृणाक्रोधादिगोपनम् ॥ ९ ॥
अरिषड्वर्गविजय पक्षपातो गुणेषु च ॥
देशाचाराऽऽचरण च भय पापापवादयो ॥ १० ॥
उद्वाहः सदृशाचारै समजात्यन्यगोत्रजै ॥
त्रिवर्गसाधन नित्यमन्योन्याप्रतिबधत ॥ ११ ॥
परिज्ञान स्वपरयोर्देशकालादिचिंतनम् ॥
सौजन्य दीर्घदर्शित्व कृतज्ञत्व सलज्जता ॥ १२ ॥
परोपकारकरणं परपीडनवर्जनम् ॥
पराक्रम परिभवे सर्वत्र क्षातिरन्यदा ॥ १३ ॥
जलाशयश्मशानाना तथा दैवतसद्मनाम् ॥
निद्राहाररतादीना सध्यासु परिवर्जनम् ॥ १४ ॥
प्रवेशोल्लघन चैव तटे शयनमेव च ॥
कूपस्य वर्जन नद्यालघन तरणीं विना ॥ १५ ॥
गुर्वासनादिशय्यासु तालवृक्षे कुभूमिषु ॥
दुर्गोष्टिषु कुकार्येषु सदैवासनवर्जनम् ॥ १६ ॥
न लघन च गर्त्तादेर्नदुष्टस्वामिसेवनम् ॥
न चतुर्थीदुनभश्चीशक्रचापविलोकनम् ॥ १७ ॥
हस्त्यश्वनखिना चापवादिना दूरवर्जनम् ॥
दिवासभोगकरण वृक्षस्योपासन निशि ॥ १८ ॥

कलहे तत्समीपं च वर्जनीयं निरंतरम् ॥
देशकालविरुद्धं च भोज्यं कृत्यं गमागमौ ॥ १९ ॥
भाषितं व्यय आयश्च कर्त्तव्यानि न कर्हिचित् ॥
चातुर्वर्ण्यस्य सर्वस्य व्रतादेशोयमुत्तमः ॥ २० ॥

इतिचातुर्वर्ण्यस्यसमानोव्रतादेशः ॥

अथ चारों वर्णोंका समान व्रतादेश कहते हैं. ॥ अपने पूज्य गुरुके कहे देवधर्मादिका पालना, देवपूजा करनी, साधुकी यथायोग्य पूजा करनी, ब्राह्मण और लिंगधारीको प्रणाम करना. । न्यायसें धन उपार्जन करना. परकी निंदा वर्जनी, किसीका भी अवर्णवाद न बोलना, राजादि-विषयक तो विशेषसें अवर्णवाद न बोलना. । अपने सत्वको छोडना नही, धनके अनुसार दान देना, लाभानुसार खरच करना, भोजनके कालमें भोजन करना. । थोडे जलवाले देशमें वसना नही, नदी और धर्मगुरुवर्जित देशमें भी नही वसना. । राजा, राज्याधिकारी, स्त्री, नदी, लोभी, पूर्ववैरी, इनोंका विश्वास नही करना. । कार्यविना स्थावर जीवोंकी भी हिंसा नही करनी. । असत्य अहितकारि वचन नही बोलना, गुरुओं (वडों) के साथ विवाद नही करना. माता, पिता और गुरु, इनको उत्कृष्ट तत्त्वकीतरें मान सत्कार करना. । शुभ अष्टादश दूषणरहित सर्वज्ञोक्त शास्त्रका श्रवण करना; अभक्ष्य (नही खाने योग्य) का भक्षण नही करना; जे त्यागने योग्य नही है, उनका त्याग नही करना; जे मारणे योग्य नही है, तिनको मारणा नही. अतिथि, सुपात्र, और दीन, इनको यथाविधि यथायोग्य दान देना; दरिद्र, अंधे, दुःखी, इनको भी यथाशक्ति दान देना. । हीन अंगवालोंको, और विकलोंको कदापि हसना नहीं. । भूख, तृषा, घृणा, क्रोधादि उत्पन्न हुए भी, गोपन करने. । षट् (६) अरिवर्गका विजय करना, गुणोंमें पक्षपात करना, देशाचार आचरण करना, पाप और अपवादका भय करना. । सदृश आचारवाले, समजाति, और अन्य गोत्रजोंके साथ विवाह करना; धर्म अर्थ कामको निरंतर परस्पर अप्रतिबंधसें साधन करना. । अपने और परायेका ज्ञान

करना, देशकालादिका चिंतन करना, सौजन्य धारण करना, दीर्घदर्शी होना, कृतज्ञ होना, लज्जालु होना परोपकार करना, परको पीडा न करनी, अपना परिभव (तिरस्कार) होवे तब पराक्रम दिखाना, अन्यत्र सर्वत्र क्षाति करनी। जलाशय, श्मशान, देवल, इनमें और तीन संध्यामें निद्रा, आहार, मैथुनादि वर्जना। कूपमें प्रवेश करना, कूपको उल्लंघन करना, कूपकाठेपर शयन करना, इन सर्वको वर्जना, तथा नावाविना नदीका लंघना वर्जना। गुरुके आसनशय्यादिके ऊपर, ताडवृक्षके हेठें, वुरी भूमिमें, दुर्गोष्टिमें, कुकार्यमें, वैठना सदाही वर्जना। खाड कूदनी नही, दुष्ट स्वामीकी सेवा नही करनी, चौथका चंद्र, नग्न स्त्री, इंद्रधनु, इनको देखना नही। हाथी, घोडा, नखांवाला, और निंदक, इनको दूरसें वर्जना। दिनमें संभोग (मैथुन) न करना, रात्रिको वृक्षका सेवन न करना। कलह, और कलहका समीप, निरंतर वर्जना। देशकाल विरुद्ध, भोजन, कार्य, गमन, आगमन, भाषण, व्यय (खरच) और आय (लाभ) ये कदापि न करने यह पूर्वोक्त उत्तम व्रतादेश चारों वर्णोंका है ॥ २० ॥ इति चातुर्वर्ण्यस्य समानोव्रतादेश ॥

गृहस्थगुरु, पूर्वोक्त प्रकारसें शिष्यको व्रतादेश करके, आगे करके जिन प्रतिमाको तीन प्रदक्षिणा करावे फिर पूर्वाभिमुख होके शक्रस्तव पढे। तदपीछे गृहस्थगुरु, आसन ऊपर वैठ जावे, और शिष्य 'नमोस्तु' कहता हुआ गुरुके पगोंमें पडके ऐसें कहे, "भगवन् भवद्भिर्मम व्रतादेशो दत्त" तव गुरु कहे, "दत्त सुगृहीतोस्तु सुरक्षितोस्तु स्वयं तर परं तारय संसारसागरात्" ऐसें कहके नमस्कार पढता हुआ ऊठके दोनों गुरु, शिष्य चैत्यवदन करें तदपीछे ब्राह्मणने, विप्र क्षत्रिय वैश्यके घरमें भिक्षाटन करना, क्षत्रियने शस्त्र ग्रहण करना, और वैश्यने अन्नदान करना ॥

इत्युपनयने व्रतादेश ॥

अथ व्रतविसर्ग कथ्यते –अथ व्रतविसर्ग कहते है ॥ ब्राह्मणने आठ वर्षसें लेके सोला वर्षपर्यंत, दंड और अजिन धारण करके, भिक्षावृत्ति

करके भोजन करना, यह उत्तम पक्ष है. क्षत्रियने दंड अजिन धारण करके दश वर्षसें लेके सोलां वर्ष पर्यंत आपही पाक करके, देवगुरुकी सेवामें तत्पर होके, भोजन करना; और वैश्यने दंड अजिन धारण करके स्वकृत भोजन करके बारां वर्षसें लेके सोलां वर्ष पर्यंत भोजन करना; यह उत्तम पक्ष है. । यदि कार्यव्यग्रतासें तितने दिन न रह सके तो, छ (६) मास पर्यंत रहना. तदभावे एक मास पर्यंत, तदभावे पक्ष पर्यंत, तदभावे तीन दिन रहना. यदि तीन दिन भी न रह सके तो, तिसही उपनयन-व्रतादेशके दिनमेंही विसर्ग करिये, सोही कहे हैं. । उपनीत, तीन २ प्रद-क्षिणा करके चारों दिशायोंमें जिनप्रतिमाके आगे पूर्ववत् युगादिजिनस्तोत्र सहित शक्रस्तव पढे. तदपीछे आसनपर बैठे गुरुके आगे नमस्कार करके हाथ जोडके ऐसें कहे ॥ "भगवन् देशकालाद्यपेक्षया व्रतविसर्गमादिश" ॥ गुरु कहे ॥ "आदिशामि ॥" फिर नमस्कार करके शिष्य कहे॥ "भगवन् मम व्रतविसर्ग आदिष्टः ॥" गुरु कहे ॥ 'आदिष्टः॥" फिर नमस्कार करके शिष्य कहे ॥ "भगवन् व्रतबंधो विसृष्टः ॥" गुरु कहे ॥ "जिनोपवीतधारणेन अविसृष्टोस्तु स्वजन्मतः षोडशाब्दीं ब्रह्मचारी पाठधर्मनिरतस्तिष्ठेः ॥ तदपीछे पंचपरमेष्ठिमंत्र पढता हुआ शिष्य, मौंजी, कौपीन, वल्कल, दंड, इनको दूर करके, गुरुके आगे स्थापन करे; और आप जिनोपवीत-धारी श्वेतवस्त्र उत्तरीय होके गुरुके आगे नमस्कार करके बैठे, तब गुरु तिस बारां तिलकधारी उपनीतके आगे उपनयनका व्याख्यान करे. ।

तद्यथा ॥ आठ वर्षके ब्राह्मणको, दश वर्षके क्षत्रियको, और बारां वर्षके वैश्यको, उपनयन करना तिसमें गर्भमास भी बीचमेंही गिणने ।

तथाच ॥

"जिनोपवीतमिति जिनस्य उपवीतं मुद्रासूत्रमित्यर्थः ॥"

जिनका उपवीत अर्थात् मुद्रासूत्र सो कहावे जिनोपवीत. । नवब्रह्मगु-प्ति गर्भरत्नत्रय, येह पुरा, श्रीयुगादिदेवने गृहस्थीवर्णत्रयको अपनी मुद्राका धारण करना यावत् जीवतांइ कहा था. । तदपीछे तीर्थके व्यवच्छेद हुए,

मिथ्यात्वको प्राप्त हुए ब्राह्मणोंनें हिंसा प्ररूपणेसें चारों वेदको मिथ्या पथमें प्राप्त करे हुए, पर्वत और वसुराजासें प्राय हिंसक यज्ञके प्रवृत्त हुए, 'यज्ञोपवीत' ऐसा नाम धारण करा मिथ्यादृष्टि यथेच्छासें प्रलाप करो! परंतु जिनमतमें तो, जिनोपवीतही नाम है, नतु यज्ञोपवीत तिसवास्ते तैनें इस जिनोपवीतको अच्छीतरें धारण करना, मासमासपीछे नवीन धारण करना, प्रमादसें जिनोपवीत जाता रहे, वा टुट जावे तो, तीन उपवास करके नवीन धारण करना प्रेतक्रियामें दक्षिण स्कंधके ऊपर, और वाम कक्षाके हेठें, ऐसें विपरीत धारण करना क्योंकि, सो विपरीत कर्म है । मुनि भी, मृत मुनिके त्यागनमें तथाविध विपरीतही वस्त्र पहेनते हैं, जिसवास्ते, तू पुरा जन्मकरके शूद्र होता भया, सांप्रत संस्कारविशेषकरके ब्रह्मगुप्तिके धारणेसें ब्राह्मण, वा क्षता त्राणेन-त्राणकरके क्षत्रिय, वा न्यायधर्ममें प्रवेश करनेसें वैश्य हुआ है, तिसवास्ते, क्रियासहित इस जिनोपवीतको अच्छीतरें ग्रहण करना, अच्छीतरें रखना तेरेको सद्धर्मवासना उपनयनविधि क्षयरहित होवे ऐसें व्याख्यान करके परमेष्टिमंत्र पढकर [दोनों गुरु शिष्य खडे होवे पीछे चैत्यवंदन, और साधुवंदन करे ॥ इत्युपनयने व्रतविसर्गविधिः ॥

अथ गोदानविधिर्यथा ॥

अथ गोदानविधि लिखते हैं ॥ तदा व्रतविसर्गके अनंतर शिष्यसहित गुरु, जिनको तीन २ प्रदक्षिणा करके पूर्ववत् चारों दिशामें शक्रस्तवका पाठ करे पीछे पयगुरु, आसनपर बैठे तब शिष्य गुरुको तीन प्रदक्षिणा करके नमस्कार करके हाथ जोडके खडा होके, गुरुको विज्ञापना करे

यथा ॥

" ॥ भगवन् तारितोहं निस्तारितोहं उत्तम कृतोहं सत्तम कृतोहं पूत कृतोहं पूज्य कृतोहं तद्भगवन्नादिश प्रमाद-बहुले गृहस्थधर्म्मे मम किंचनापि रहस्यभूत सूक्त ॥ "

हे भगवन्! तारा मुझको, निस्तारा मुझको, उत्तम करा मुझको, अतिशयसाधु (श्रेष्ठ) करा मुझको, पवित्र करा मुझको, पूज्य करा मुझको, तिसवास्ते हे भगवन्! प्रमादबहुल गृहस्थधर्ममें मेरेको कुछक रहस्यभूत सुकृत कथन करो.॥

तब गुरु कहे ॥

"॥ वत्स सुष्ठ्वनुष्ठितं सुष्ठु पृष्टं ततः श्रूयताम् ॥"

हे वत्स अच्छा करा, भला पूछा, तिसवास्ते तूं श्रवण कर.॥

दानं हि परमो धर्म्मो दानं हि परमा क्रिया ॥
दानं हि परमो मार्ग्गस्तस्माद्दाने मनः कुरु ॥ १ ॥
दया स्यादभयं दानमुपकारस्तथाविधः ॥
सर्वो हि धर्म्मसंघातो दानेन्तर्भावमर्हति ॥ २ ॥
ब्रह्मचारी च पाठेन भिक्षुश्चैव समाधिना ॥
वानप्रस्थस्तु कष्टेन गृही दानेन शुद्ध्यति ॥ ३ ॥
ज्ञानिनः परमार्थज्ञा अर्हन्तो जगदीश्वराः ॥
व्रतकाले प्रयच्छन्ति दानं सांवत्सरं च ते ॥ ४ ॥
गृह्णतां प्रीणनं सम्यक् ददतां पुण्यमक्षयम् ॥
दानतुल्यस्ततो लोके मोक्षोपायोऽस्ति नाऽपरः ॥ ५ ॥

अर्थः—दानही परम उत्कृष्ट धर्म है, दानही परमा क्रिया है, दानही परम मार्ग है, तिसवास्ते दान देनेमें मन कर.। अभयदानसें दया होवे है, दानसेंही तथाविध उपकार होवे है, सर्वही धर्मसमूह दानमें अंतर्भाव हो सक्ता है। ब्रह्मचारी पाठ करके, साधु समाधि करके, वानप्रस्थ कष्ट करके, और गृहस्थी दान करके शुद्ध होता है.। तीन ज्ञानके धर्त्ता परमार्थके जाणकार, ऐसें अर्हंत भगवंत जगदीश्वर भी व्रतसमयमें सांवत्सर दान देते हैं.। दान ग्रहण करनेवालेको तो, दान तृप्त करता है; और देनेवालेको अक्षय पुण्य प्राप्त कराता है; तिसवास्ते दानके समान दूसरा कोई मोक्षका उपाय लोकमें नही है.॥ ५ ॥ जिसवास्ते हे वत्स! तैनें ब्राह्मण-

पणा, वा क्षत्रियपणा, वा वैश्यपणा प्राप्त करा है, अगीकार करा है, तिस वास्ते हे वत्स! तू गृहस्थधर्ममें मोक्षके सोपानरूप दान देनेका प्रारंभ कर। तब नमस्कार करके शिष्य कहे, हे भगवन्! मुझको दानका विधी कहो। गुरु कहे 'आदिशामि' कहता हूं।

यथा ॥

गावो भूमि सुवर्ण च रत्नान्यन्न च नक्तका ॥
गजाश्वाद्यति दान तदष्टधा परिकीर्त्तयेत् ॥ १ ॥
एतच्चाष्टविध दान विप्राणा गृहमेधिनाम् ॥
देय न चापि यतयो गृह्णन्त्येतच्च नि स्पृहा ॥ २ ॥
यतिभ्यो भोजन वस्त्र पात्रमौषधपुस्तके ॥
दातव्य द्रव्यदानेन नौ द्वौ नरकगामिनौ ॥ ३ ॥

अर्थ—गौ १, भूमि २, सुवर्ण ३, रत्न ४, अन्न ५, नक्तक* ६, हाथी ७, और घोडा ८, येह आठ प्रकारका दान कहिये। येह पूर्वोक्त आठ प्रकारका दान, गृहस्थी ब्राह्मणगुरुयोंको देना और नि स्पृह यति साधु मुनिराज, इस दानको नही लेते हैं। यतियोंको तो, भोजन, वस्त्र, पात्र, औषध, पुस्तक, इनका दान देना यतिको द्रव्य (धन) का दान देनेसें, देनेलेनेवाले दोनोंही नरकगामी होते हैं ॥ ३ ॥ तिसवास्ते प्रथम गोदान ग्रहण करना उपनीत, वछडेसहित कपिला, वा पाटला, वा श्वेतरगकी, स्नापित, चर्चित, भूषित, धेनुको, आगे स्थापके, पूछसे पकडके, रूप्यमय खुरा हैं जिसके, स्वर्णमय शृंग हैं जिसके, ताम्रमय पृष्ठ है जिसकी, कांस्यमय दोहपात्र है जिसका, ऐसी धेनु, गृहगुरुकेताइ देवे। गुरु तिस गौकी पूछको हाथमें धारण करके, यह वेदमंत्र पढे।

यथा ॥

"॥ॐ अर्हं गौरियं धेनुरियं प्रगाम्यपशुरियं सर्वोत्तमक्षीरदधि घृतेयं पवित्रगोमयमूत्रेयं सुधास्त्राविणीयं रसोद्भाविनीयं

* नक्तकाशीलवस्त्र

पूज्येयं हृद्येयं अभिवाद्येयं तद्दत्तेयं त्वया धेनुः कृतपुण्यो भव प्राप्तपुण्यो भव अक्षयं दानमस्तु अर्हं ॐ ॥ "

यह कहकर गृह्यगुरु, धेनुको ग्रहण करे. शिष्य तिस गौकेसाथ द्रोणप्रमाण सात धान्य, तुलामात्र षट् (६) रस और पुरुषतृप्तिमात्र षट् (६) विकृती (विगय) देवे ॥ इतिगोदानम् ॥

अन्य सर्व भूमिरत्नादिदानोंविषे यह मंत्र पढना. ।

यथा ॥

"॥ ॐ अर्हं एकमस्ति दशकमस्ति शतमस्ति सहस्रमस्ति अयुतमस्ति लक्षमस्ति प्रयुतमस्ति कोट्यस्ति कोटिदशकमस्ति कोटिशतकमस्ति कोटिसहस्रमस्ति कोट्ययुतमस्ति कोटिलक्षमस्ति कोटिप्रयुतमस्ति कोटाकोटिरस्ति संख्येयमस्ति असंख्येयमस्ति अनंतमस्ति अनंतानंतमस्ति दानफलमस्ति तदक्षयं दानमस्तु ते अर्हं ॐ ॥ "

इति परेषां दानानां मंत्रपाठः ॥

यहां उपनयनमें गोदानकाही निश्चय है, शेष दान क्रमकरके अन्यदा भी देना. गोदानादि दान गृह्यगुरु ब्राह्मणोंकोही देना. निःस्पृह यतियोंको न देना. तथा तिन यतियोंको, अन्न, पान, वस्त्र, पात्र, भेषज, वसति, पुस्तकादि दानमें 'धर्मलाभः' यही मंत्र जाणना. । अथ गृह्यगुरु, उपनीतसें गोदान लेके, पर्णानुज्ञा देके, चैत्यवंदन, और साधुवंदन करायके, तैसेंही संघके मिले हुए, मंगलगीतवाजंत्रोंके वाजते हुए, शिष्यको साधुयोंकी वसतिमें (उपाश्रयमें) ले जावे. तहां मंडलीपूजा, वासक्षेप, साधुवंदनादि सर्व पूर्ववत् करना. । तदपीछे चतुर्विध संघकी पूजा, और मुनियोंको वस्त्र, अन्न, पात्रादि दान करे. ॥ इति गोदानविधिः ॥ संपूर्णोयं चतुर्विधउपनयनविधि : ॥

अथ शूद्रस्योत्तरीयकन्यासविधिः—अथ शूद्रको उत्तरीयकन्यासविधि लिखते हैं. ॥सात दिन तैलनिषेकस्नान पूर्ववत् जाणना. । तदनंतर यथाविधि

पौष्टिक, सर्व शिरका मुंडन, वेदिकरण, चतुष्किकाकरण, जिनप्रतिमास्थापन, पूर्ववत् । तदपीछे गृहगुरु, जिनेश्वरकी अष्टप्रकारी पूजा करे चारों दिशायोंमें शक्रस्तव पाठ करे पीछे गुरु आसनऊपर बैठ जावे तब शिष्य श्वेत वस्त्र पहिरके, उत्तरासंगकरके समवसरण और गुरुको, प्रदक्षिणा करके, 'नमोस्तु २' कहता हुआ, गुरुको नमस्कार करके, हाथ जोडके, खडा होयके कहे "॥ भगवन् प्राप्तमनुष्यजन्मार्यदेशार्यकुलस्य मम बोधिरूपां जिनाज्ञां देहि ॥" गुरु कहे "॥ ददामि ॥" शिष्य फिर नमस्कार करके कहे "॥ न योग्योहमुपनयनस्य तज्जिनाज्ञां देहि ॥" गुरु कहे "॥ ददामि ॥" तदपीछे द्वादश (१२) गर्भततुरूप, जिनोपवीतप्रमाण दीर्घ (लंबा) कार्प्पासका, वा रेशमका, उत्तरीयक, परमेष्ठिमंत्र पढता हुआ, जिनोपवीतवत् पहिरावे पीछे गुरु, पूर्वाभिमुख शिष्यको चैत्यवंदन करवावे । तदपीछे शिष्य 'नमोस्तु २' कहता हुआ, सुखसें बैठे गुरुके पगोंमें पडके, फिर खडा होके, हाथ जोडके, ऐसें कहे "॥ भगवन् उत्तरीयकन्यासेन जिनाज्ञामारोपितोहं ॥" गुरु कहे "॥ सम्यगारोपितोसि तर भवसागरम् ॥" तदपीछे गुरु सन्मुख बैठे शूद्रके आगे व्रतानुज्ञा देवे ॥

यथा ॥

सम्यक्त्वेनाधिष्ठितानि व्रतानि द्वादशैव हि ॥
धार्याणि भवता नैव कार्यं कुलमदस्त्वया ॥ १ ॥
जैनर्षीणां तथा जैनब्राह्मणानामुपासनम् ॥
विधेयं चैव गीतार्थाचीर्णं कार्यं तपस्त्वया ॥ २ ॥
न निंद्यः कोपि पापात्मा न कार्यं स्वप्रशंसनम् ॥
ब्राह्मणेभ्यस्त्वया मानं दातव्यं हितमिच्छता ॥ ३ ॥
शेषं चतुर्वर्णशिक्षाश्लोकव्याख्यानमाचरेत् ॥
उत्तरीयपरिभ्रंशे भंगे वाप्युपवीतवत् ॥ ४ ॥
कार्यं व्रतं प्रेतकर्मकरणं वृपल त्वया ॥
युक्तिरेषोत्तरासंगानुज्ञाया च विधीयते ॥ ५ ॥

क्षात्राणामथ वैश्यानां देशकालादियोगतः ॥
त्यक्तोपवीतानां कार्यमुत्तरासंगयोजनम् ॥ ६ ॥
धर्मकार्ये गुरोर्दृष्टौ देवगुर्वालयेऽपि च ॥
धार्यस्तथोत्तरासंगः सूत्रवत् प्रेतकर्मणि ॥ ७ ॥
अन्येषामपि कारूणां गुर्वानुज्ञां विनापि हि ॥
गुरुधर्मादिकार्येषु उत्तरासंग इष्यते ॥ ८ ॥

अर्थः—सम्यक्त्वके संयुक्त द्वादश व्रत तैने धारण करने, और कुलका मद न करना.। जैन ऋषियोंकी, और जैन ब्राह्मणोंकी उपासना करनी; तथा गीतार्थाचीर्ण तप करना.। किसी पापात्माको निंदना नही, अपनी प्रशंसा न करनी, हित इच्छके ब्राह्मणोंको मान देना.। शेष चतुर्वर्णशिक्षाश्लोकमें कहे आचारको आचरण करना; उत्तरीयके परिभ्रंशमें, वा भंगमें उपवीतवत् जाणना.। व्रत करना, प्रेतकर्म करना, हे वृषल-शूद्र ! उत्तरासंगकी अनुज्ञामें तैने यह युक्ति करनी.। देशकालादियोगसें त्याग न किया है उपवीत जिनोंनें, वैसे क्षत्रिय और वैश्योंको, उत्तरासंग योजन करना.। धर्मकार्यमें, गुरुकी दृष्टिमें, देव और गुरुके मकानमें, तथा प्रेतकर्ममें, सूत्रकीतरें उत्तरासंग धारण करना.। और भी कारुयोंको गुरुकी आज्ञाके विना भी गुरुधर्मादिकार्योंमें उत्तरासंग इच्छते हैं.॥ ऐसा व्याख्यान करके गुरु शिष्यको चैत्यवंदन करवावे.। परमेष्ठिमंत्रका उच्चार और मंत्रव्याख्यान पूर्ववत्.। इतना विशेष है. शूद्रादिकोंको ‘ नमो ’ के स्थानमें ‘णमो’ उच्चारण कराना. इतिगुरुसंप्रदायः। तदपीछे शिष्यसहित गुरु, उत्सव करते हुए धर्मागारमें जावे. तहां मंडलीपूजा, गुरुनमस्कार, वासक्षेपादि पूर्ववत्.। तदपीछे मुनियोंको अन्न, वस्त्र, पात्र दान देवे. और चतुर्विध संघकी पूजा करे.॥ इति उपनयने शूद्रादीनां उत्तरीयकन्यासोत्तरासंगानुज्ञाविधिः ॥

अथ बटूकरणविधिः—अथ बटूकरणविधि लिखते हैं.॥ जिसवास्ते सम्यक् उपनीत, वेदविद्यासंयुक्त, दुःप्रतिग्रहवर्जित, अशूद्रान्नभोजन कर-

नेवाले, माहनोंके आचारमें रक्त, सर्व गृहसस्कारप्रतिष्ठादिकर्मोके कराने वाले, ऐसें ब्राह्मण, पूज्य होते हैं । नही, वे पूर्वोक्त ब्राह्मण, क्षत्रियादि राजायोंको, सेवा, अन्नपाक, तिसके आज्ञा करनी, अभ्युत्थान, चाटु—मनो हर वचन, प्रशसा, विना नमस्कारके आशीर्वाद देना, विज्ञानकर्म, कृपिवाणिज्यकरण, तुरगवृपभादि शिक्षाकरण, इत्यादिवास्ते जोडने कल्पते हैं इसवास्ते तथाविध पूर्वोक्त कर्मोमें, वटूकृत ब्राह्मण, भोजन करने योग्य होते हैं इसवास्ते तिन ब्राह्मणोंको वटू करनेका विधि कहते हैं

उक्त च यतः ॥

च्युतव्रताना व्रात्याना तथा नैवेद्यभोजिनाम् ॥
कुकर्म्मणामवेदानामजपाना च शस्त्रिणाम् ॥ १ ॥
ग्राम्याणा कुलहीनाना विप्राणा नीचकर्म्मणाम् ॥
प्रेतान्नभोजिना चैव मागधाना च वदिनाम् ॥ २ ॥
घाटिकाना सेवकाना गधतावूलजीविनाम् ॥
नटाना विप्रवेपाणा पर्शुरामान्ववायिनाम् ॥ ३ ॥
अन्यजात्युद्भवाना च वदिवेपोपजीविनाम् ॥
इत्यादिविप्ररूपाणा वटूकरणमिष्यते ॥ ४ ॥

अर्थ—व्रतसें भ्रष्ट हुए, सस्कारहीन, नैवेद्यका भोजन करनेवाले, कुकर्मके करनेवाले, वेदको नही जाणनेवाले, वेद मन्त्रोंका जप न करने वाले, शस्त्रको धारण करनेवाले, ग्रामके वसनेवाले, कुलहीन, नीच कर्मके करनेवाले, प्रेतके अन्नका भोजन करनेवाले, मागध—स्तुतिपाठ पढनेवाले वदी—राजादिकी स्तुति पढनेवाले, घाटिका वजानेवाले, सेवा करनेवाले, गधतांबूलकरके आजीविका करनेवाले, विप्रवेप धारण करनेवाले नट, पर्शुरामके सतानीय, अन्य जातिसें उत्पन्न हुए, वदिवेपसें आजीविका करनेवाले, इत्यादि विप्ररूपको वटूकरण इच्छते हैं । तिसका यह विधि है प्रथम तिसके घरमें गृहगुरु, यथोक्त विधिसें पौष्टिक करे पीछे तिसको

शिखावर्जके मुंडन करवावे, तदपीछे तिसको तीर्थोदक मंत्रोंकरके मंत्रित जलकरके स्नान करवावे.।

तीर्थोदकाभिमंत्रणमंत्रोयथा ॥

"॥ॐ वं वरुणोसि वारुणमासि गांगमासि यामुनमासि गौदावरमासि नार्म्मदमासि पौष्करमासि सारस्वतमासि शातद्रवमासि वैपाशमासि सैंधवमासि चांद्रभागमासि वैतस्तमासि ऐरावतमासि कावेरमासि कारतोयमासि गौमतमासि शैतमसि शैतोदमासि रोहितमासि रोहितांशमासि सारेयवमासि ह्वारिकांतमासि ह्वारिसलिलमासि नारिकांतमासि नारकांतमासि रौप्यकूलमासि सौवर्णकूलमासि सालिलमासि रक्तवतमसि नैमग्नसलिलमासि उन्मग्नसलिलमासि पाद्ममासि महापाद्ममसि तैगिच्छमासि कैशरमसि जीवनमसि पवित्रमसि पावनमासि तदमुं पवित्रय कुलाचाररहितमपि देहिनं ॥"

इस मंत्रसें कुशाग्रकरी सात वार अभिसिंचन करे. पीछे नदीकांठे वा तीर्थऊपर, वा मंदिरमें, वा पवित्र गृहस्थानमें तिस बटूकरण योग्यको, प्रथम तीनगुणी कुशमेखला, तीन प्रकारसें बांधे.।

मेखलाबंधमंत्रो यथा ॥

"॥ ॐ पवित्रोसि प्राचीनोसि नवीनोसि सुगमोसि अजोसि शुद्धजन्मासि तदमुं देहिनं धृतव्रतमव्रतं वा पावय पुनीहि अब्राह्मणमपि ब्राह्मणं कुरु ॥ "

इस मंत्रका तीन वार पाठ करे. ॥ पीछे कौपीन पहिरावे.।

कौपीनमंत्रो यथा ॥

ॐ अब्रह्मचर्यगुप्तोपि ब्रह्मचर्यधरोपि वा ॥
व्रतः कौपीनबंधेन ब्रह्मचारी निगद्यते ॥ १ ॥

ऐसें तीन वार पढके कौपीन पहिरावणा. । तदपीछे पूर्वोक्त ब्राह्मणसमान उपवीत, मंत्रपूर्वक पहिरावे.।

मन्त्रो यथा ॥

"॥ॐ सधर्म्मोसि अधर्मोसि कुलीनोसि अकुलीनोसि सब्रह्मच र्योसि अब्रह्मचर्योसि सुमनाअसि दुर्म्मनाअसि श्रद्धालुरसि अश्रद्धालुरसि आस्तिकोसि नास्तिकोसि आर्हतोसि सौग तोसि नैयायिकोसि वैशेषिकोसि साख्योसि चार्वाकोसि सलिंगोसि अलिंगोसि तत्त्वज्ञोसि अतत्त्वज्ञोसि तन्नव ब्राह्मणोऽमुनोपवीतेन भवंतु ते सर्वार्थसिद्धयः ॥"

इस मन्त्रको नव वार पढके उपवीत स्थापन करे । पीछे तिसके हाथमें पलाशका दंड देवे, और मृगचर्म तिसको पहिरावे, और भिक्षा मांगनी करवावे भिक्षामार्गणकेपीछे उपवीतको वर्जके, मेखला, कौपीन, चर्मदंडादि दूर करे ।

तदपनयनमन्त्रो यथा ॥

"॥ ॐ ध्रुवोसि स्थिरोसि तदेकमुपवीत धारय ॥"

ऐसें तीन वार पढे । पीछे गुरु, धारण किया है श्वेतवस्त्रका उत्तरासंग जिसने, ऐसे तिसको, आगे बिठलाके, शिक्षा देवे ।

यथा ॥

परनिंदा परद्रोहं परस्त्रीधनवांछनम् ॥
मांसाशनं म्लेच्छकंदभक्षणं चैव वर्जयेत् ॥ १ ॥
वाणिज्ये स्वामिसेवायां कपटं मा कृथा क्वचित् ॥
ब्रह्मस्त्रीभ्रूणगोरक्षां देवर्षिगुरुसेवनम् ॥ २ ॥
अतिथीनां पूजनं च कुर्य्याद्दानं यथा धनम् ॥
अथात्मघातं मा कुर्या मा वृथा परतापनम् ॥ ३ ॥
उपवीतमिदं स्थाप्यमाजन्मविधिवत्त्वया ॥
शेषः शिक्षाक्रमः कथ्यश्चातुर्वर्ण्यस्य पूर्ववत् ॥ ४ ॥

अर्थः—परनिंदा, परद्रोह, परस्त्री, परधनकी वांछा, मांसभक्षण, म्लेच्छकंद—लशुनादिभक्षण, इनको वर्जना. । वाणिज्यमें, स्वामीकी सेवामें, कदापि कपट न करना; ब्राह्मण, स्त्री, गर्भ और गौ, इन चारोंकी रक्षा करनी; देव, ऋषि और गुरुकी सेवा करनी. । अतिथीयोंका पूजन करना, धनके अनुसार दान देना, आत्मघात नही करना, परको पीडा न करनी. । जन्मपर्यंत यावज्जीवे तबतक विधिपूर्वक उपवीत धारण करना, शेष शिक्षाक्रम पूर्ववत् चारों वर्णोंका कथन करना. ॥ पीछे सो बटूकृत, गुरुको स्वर्ण, वस्त्र, धेनु, अन्न, दान करे. । यहां बटूकरणमें वेदी, चतुष्किका, समवसरण, चैत्यवंदन, व्रतानुज्ञा, व्रतविसर्ग, गोदान, वासक्षेपादि नही है. ॥ इति बटूकरणविधिः ॥ इत्याचार्यश्रीवर्द्धमानसूरिकृताचारदिनकरस्य गृ० उपनयनादिकीर्त्तननामद्वादशमोदयस्याचार्यश्रीमद्वि० बा० स० त० समाप्तोयं २४ स्तम्भः ॥ १२ ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रंथे द्वादशमोपनयनादिसंस्कारवर्णनोनाम चतुर्विंशस्तम्भः ॥ २४ ॥

॥ अथपञ्चविंशस्तम्भारम्भः ॥

अथ पंचविंश स्तंभमें अध्ययनारंभविधि लिखते हैं ॥ अश्विनी, मूल, पूर्वा ३, मृगशीर्ष, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, हस्त, शतभिषक्, स्वाति, चित्रा, श्रवण, धनिष्ठा, येह नक्षत्र और बुध, गुरु, शुक्र, येह वार विद्यारंभमें शुभ है. अर्थात् इनोंमें आरंभ करी विद्या प्राप्त होती है. रवि और चंद्र, मध्यम है. मंगल और शनिवार, त्यागने योग्य है. । अमावास्या, अष्टमी, प्रतिपत् (एकम), चतुर्दशी, रिक्ता, षष्ठी, नवमी, येह तिथियां विद्यारंभमें सदाही वर्जनी. ।

अथ उपनयनसदृश दिन और लग्नमें विद्यारंभसंस्कारका आरंभ करिये, तिसका यह विधि है. । गृह्यगुरु प्रथम विधिसें उपनीत पुरुषके घरमें पौष्टिक करे; पीछे गुरु, मंदिरमें, वा उपाश्रयमें, वा कदंबवृक्षकेतले,

कुशाके आसनउपर आप बैठके, शिष्यको वामेपासे कुशासनोपरि बिठलाके तिसके दक्षिण कानको पूजके तीनवार सारस्वत मत्र पढे पीछे गुरु अपने घरमें वा अन्य उपाध्यायकी शालामें, वा पौषधागारमें, शिष्यको पालखी, वा घोडेपर चढायके मगलगीतोंके गाते हुए, दान देते हुए, वाजंत्र वाजते हुए, यति गुरुकेपास लेजाके मडलीपूजापूर्वक वासक्षेप करवाके, पाठशालामें लेजावे पीछे गुरु शिष्यको आगे विठलाके येह शिक्षाश्लोक पढे ।

यथा ॥

अज्ञानतिमिराधाना ज्ञानाजनशलाकया ॥
नेत्रमुन्मीलित येन तस्मै श्रीगुरवे नम ॥ १ ॥
यासा प्रसादादधिगम्य सम्यक् शास्त्राणि विदन्ति पर पद ज्ञा ॥
मनीपितार्थप्रतिपादकाभ्यो नमोस्तु ताभ्यो गुरुपादुकाभ्य ॥२॥
सत्येतस्मिन्नरतिरतिद गृह्यते वस्तु दूरा-
दप्यासन्नेप्यसति तु मनस्याप्यते नैव किंचित् ॥
पुसामित्यप्यवगतवतामुन्मनीभावहेता-
विच्छा वाढ भवति न कथ सद्गुरूपासनायाम् ॥ ३ ॥
इति मत्वा त्वया वत्स त्रिशुद्ध्योपासन गुरो ॥
विधेय येन जायते गोधीकीर्त्तिधृतिश्रिय ॥ ४ ॥

ऐसें शिष्यको शिक्षा देके, और तिससें स्वर्ण वस्त्र दक्षिणा लेके, गुरु अपने घरको जावे पीछे उपाध्याय, सर्वको पहिले मातृका पढावे, पीछे विप्रको प्रथम आर्यवेद पढावे, पीछे षडगी, पीछे पुराणादि धर्मशास्त्र पढावे, क्षत्रियको भी ऐसेंही चतुर्दश विद्या पढावे पीछे आयुर्वद, धनुर्वेद दडनीति और आजीविकाशास्त्र पढावे वैश्यको धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, कामशास्त्र और अर्थशास्त्र पढावे शूद्रको नीतिशास्त्र और आजीविकाशास्त्र पढावे, कारुयोंको तिनके उचित विज्ञानशास्त्र पढावे पीछे साधुयोंको चतुर्विध

आहार वस्त्र पात्र पुस्तक दान देवे. । इत्याचार्यश्रीवर्द्धमानसूरिकृताचारदिनकरस्यगृहिधर्मप्रतिबद्धविद्यारंभसंस्कारकीर्त्तननामत्रयोदशमोदयस्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिकृतोबालावबोधस्समाप्तस्तत्समाप्तौ च समाप्तोयं पंचविंशस्तम्भः ॥ १३ ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रंथे त्रयोदशमविद्यारंभसंस्कारवर्णनोनामपंचविंशस्तम्भः ॥ २५ ॥

अथषड्विंशस्तम्भारम्भः ॥

अथ २६ मे स्तंभमें विवाहविधि लिखते हैं ॥ विवाह जो है सो समकुलशीलवालोंकाही होता है.

यतउक्तं ॥

> ययोरेव समं शीलं ययोरेव समं कुलम् ॥
> तयोर्मैत्री विवाहश्च न तु पुष्टविपुष्टयोः ॥ १ ॥

तिसवास्ते समकुलशील, समजाति, जाने है देशकृत्य जिनोंके, तिनका विवाहसंबंध जोडना योग्य हैं; तिसवास्ते जो अविकृत है, तिसनें विकृतकुलकी कन्या ग्रहण नही करनी । विकृतकुलं यथा । जिनके कुलमें शरीरऊपर रोम बहुत होवे, अर्शरोग होवे, दाद होवे, चित्रकुष्टि होवे, नेत्ररोग होवे, उदररोग होवे, ऐसे वंशोंकी कन्या न ग्रहण करनी. विकृत कुल होनेसें. । कन्या विकृता यथा। वरसें लंबी होवे, हीन अंगवाली होवे, कपिला होवे, ऊंची दृष्टिवाली होवे, जिसका भाषण और नाम भयानक होवे, ऐसी कन्या विचक्षणोंको त्यागने योग्य है. तथा देवता, ऋषि, ग्रह, तारा, अग्नि, नदी, वृक्षादिकके नामसें जो कन्या होवे, तथा जिसके शरीरऊपर बहुत रोम होवे, पिंगाक्षी और घरघरास्वरवाली, ऐसी कन्या भी पाणिग्रहणमें वर्जनी. ॥ कन्यादाने वरस्य विकृतं कुलं यथा ॥ हीन होवे, क्रूर होवे, वधूसहित होवे, दरिद्री होवे, व्यसन (कष्ट) संयुक्त होवे, कन्यादानमें ऐसें कुल, और पुरुषको वर्जना. मूर्ख, निर्धन, दूर देशमें रहनेवाला,

शूर योद्धा सूरमा, मोक्षाभिलाषी, कन्यासें तीनगुणी अधिक ६ इनको भी कन्या न देनी तिसवास्ते दोनों अविकृत कुलोंका, और विकृत कुलवालोंका विवाहसंबंध योग्य है तथा पांच शुद्धियों वधूवरका संयोग करना, सोही दिखाते हैं राशि १, योनि २ नाडी ४ और वर्ग ५, येह पांच शुद्धियां दोनोंकी देखके पूर्ण करना। कुल १, शील २, स्वामिपणा ३, विद्या ४, धन ५, शरीर ६ वय ७, येह सातो गुण वरमें देखने अर्थात् येह सात गुण वरमें कन्या देनी आगे जो होवे, सो कन्याका भाग्य है गर्भसें आठ वर्षसें इग्यारह वर्षताइ कन्याका विवाह करना * तिसके उपरांत ... होती है तिसको राका भी कहते हैं तिसका विवाह शीघ्र होना ... वरको पाकरके चंद्रबलके हुए, तुच्छ महोत्सवके भी हुए, उचित है

यतउक्तम् ॥

वर्षमासदिनादीना शुद्धिं राकाकरग्रहे ॥
नालोकयेच्चंद्रबलं वरं प्राप्य विधापयेत् ॥ १ ॥

*पुरुषका आठ वर्षसें लेके ८० वर्षके बीच २ विवाह होना चाहिये क्योंकि, अस्सीवर्ष उपरांत प्राय पुरुष शुक्ररहित होता है ।

विवाह दो प्रकारके होते हैं, आर्यविवाह १, और पापविवाह २ । विवाहके चार भेद हैं ब्राह्म्यविवाह १, प्राजापत्यविवाह २, आर्षविवाह ३, और दैवतविवाह ४ ये चारों विवाह मातापिताकी आज्ञासें होनेसें लौकिक व्यवहारमें धार्मिक विवाह गिने जाते हैं पापविवाहके भी चार भेद हैं गांधर्वविवाह १, आसुरविवाह २, राक्षसविवाह ३, और पैशाच विवाह ४ ये चारों करनेसें स्वेच्छानुसार पापविवाह हैं ।

---

* यह कथन प्राय लौकिकव्यवहारानुसार है क्योंकि, जैनागममें तो "जोव्वणगमणमणुपत्ता" इतिवचनात्, जब वरकन्या योवनको प्राप्त होवे, तब विवाह करना और 'प्रवचनसारोद्धार'में लिखा है कि, सोलां वर्षकी स्त्री, और पचीस वर्षका पुरुष, तिनके संयोगसें जो संतान उत्पन्न होवे, वह बलिष्ठ होवे है इत्यादि मूलागमसें तो बालसमयका और वृद्धके विवाहका निषेध सिद्ध होता है

प्रथम ब्राह्म्यविवाहविधि लिखते हैं.। शुभ दिनमें, शुभ लग्नमें, पूर्वोक्त गुणसंयुक्त वरको बुलवाके स्नान अलंकार करके संयुक्त हुए तिस वरकेताइ, अलंकृत कन्या देवे.।

मंत्रो यथा ॥

"॥ ॐ अर्हं सर्वगुणाय सर्वविद्याय सर्वसुखाय सर्वपूजिताय सर्वशोभनाय तुभ्यं वस्त्रगंधमाल्यालंकारालंकृतां कन्यां ददामि प्रतिगृह्णीष्व भद्रं भव ते अर्हं ॐ ॥"

इस मंत्रकरके बद्धांचलदंपती—स्त्रीभर्ता, अपने घरमें जावे.॥ इति धार्म्यो ब्राह्म्यविवाहः ॥ १ ॥

प्राजापत्य विवाह जगत्में प्रसिद्ध है, इसवास्ते विस्तारसें कहेगें.॥ २॥

आर्ष विवाहमें वनमें रहनेवाले मुनि, ऋषि, गृहस्थ अपनी पुत्रीको, अन्यऋषिके पुत्रकेतांइ, गौ बैलके साथ देते हैं. तहां अन्य कोइ उत्सवादि नही होते हैं, इस विवाहका मंत्र जैनवेदोंमें नही है. जैन वेदकरके वर्णादिको आश्रित हुए जनोंके आचार कथन करनेसें, जैनोंको ऐसें विवाहके अकृत्य होनेसें.। दैवतविवाहमें भी ऐसेंही जाणना.। इन दोनों विवाहोंके मंत्र परसमयसें जाणने.॥ इति धार्म्य आर्षविवाहः ॥ ३ ॥

दैवत विवाहमें तो, पिता, अपने पुरोहितकेतांइ इष्ट पूर्त्त कर्मके अंतमें ·पनी कन्याको दक्षिणाकीतरें देवे. ॥ इति दैवतो धार्म्य विवाहः ॥ ४ ॥

ये चार धार्म्यविवाह हैं. ॥

पितादिके प्रमाणविना, अन्योन्यप्रीतिकरके जो उद्यम होना, सो ·ांधर्वविवाह.। १।

पणबंधके विवाह करना, सो आसुरविवाह. ॥ २ ॥

हठसें कन्याको ग्रहण करे, सो राक्षसविवाह. ॥ ३ ॥

सुप्त, और प्रमत्तकन्याको ग्रहण करनेसें, पैशाच विवाह कहा जाता है. ॥ ४ ॥ माता, पिता, गुरु, आदिकी आज्ञा न होनेसें इन चारों विवाहोंको ·ानमें ·त पुरुष पापविवाह कहते हैं. ॥ तथा ब्राह्म्य १, आर्ष २, और दैवत ३,

येह तीन विवाह दुःखमकालकलियुगमें प्रवर्त्तते नही हैं । * चारों पाप विवाहोंका वेदोक्तविधि भी नही है अधर्म होनेसें ॥

सप्रति वर्त्तमान प्राजापत्य विवाहका विधि कहते हैं ॥ मूल, अनुराधा, रोहिणी, मघा, मृगशिर, हस्त, रेवती, उत्तरा ३, स्वाति, इन नक्षत्रोंमें करग्रहण करना । वेध, एकार्गल, लत्ता, पात, उपग्रहसयुक्त नक्षत्रोंमें विवाह नही करना । तथा युतिमें, और क्राति साम्य दोषमें भी नही करना । तीन दिनको स्पर्शनेवाली तिथिमें, अवम् (क्षय) तिथिमें, क्रूर तिथिमें, दग्ध तिथिमें, रिक्ता तिथिमें, अमावास्या, अष्टमी, षष्ठी, द्वादशी इनमें विवाह नही करना । भद्रामें, गडांतमें, दुष्टनक्षत्र तिथि वार योगोंमें, व्यतिपातमें, वैधृतिमें और निंद्य वेलामें, विवाह नही करना । सूर्यके क्षेत्रमें बृहस्पति होवे, और बृहस्पतिके क्षेत्रमें सूर्य होवे तो, दीक्षा, प्रतिष्ठा, विवाह प्रमुख वर्जने । चौमासेमें, अधिमासमें, गुरु शुक्रके अस्त हुए, मल मासमें, और जन्ममासमें, विवाहादि न करना । मासांतमें, सक्रांतिमें, सक्रातिके दूसरे दिनमें, ग्रहणादि सात दिनोंमें भी, पूर्वोक्त कार्य नही करना । जन्मके तिथि, वार, नक्षत्र, लग्नमें, राशि और जन्मके ईश्वरके अस्त हुए, और क्रूर ग्रहोंकरके हत हुए भी, विवाह नही करणा । जन्मराशिमें, जन्मराशि और जन्मलग्नसें बारमें और आठमेमें, और लग्नके अंशके आधिपके छट्ठे, और आठमे घरमें गए हुए, लग्न नही करना । स्थिर लग्नमें, वा द्विस्वभावलग्नमें, वा सद्गुण करी सयुक्त चर लग्नमें, उदयास्तके विशुद्ध हुए, विवाह करना परतु उत्पातादिकरके विदूषितमें नही करना । लग्न और सप्तम घर, ग्रहकरके वर्जित होवे, तीसरे, छट्ठे, और इग्यारमे घरमें, रवि, मगल और शनि होवे । छट्ठे और तीसरे घरमें, तथा पापग्रहवर्जित पाचमें घरमें राहु होवे, लग्नमें तथा पांचमे, चौथे, दशमे, और नवमे घरमें बृहस्पति होवे । ऐसेंही शुक्र, बुध, होवे, लग्न, छट्ठे, आठमे, बारमे घरसें, अन्यत्र चद्रमा होवे, सो भी पूर्ण होवे । क्रूरकरके दृष्ट, और क्रूरसयुक्त चद्र वर्जना, क्रूर, और अतरस्थ लग्न और चद्र वर्जने । इत्यादि गुणसयुक्त, दोष विवर्जित लग्नमें, शुभ

---

* गोमधनरमधाद्या यना पाणिग्रहत्रय ॥ गुनाश्च गोत्रमगुरोर्न मतीति कलौ युगे ॥ इतिवचनात् ॥

अंशमें, शुभ ग्रहोंकर दृष्ट हुए, पाणिग्रहण शुभ है. ॥ इत्यादि श्रीभद्रबाहु, वराह, गर्भ, लल्ल, पृथुयशः, श्रीपति, विरचितविवाहशास्त्रके अवलोकनसें शुभ लग्न देखके विवाहका आरंभ करना. ॥

श्लोकः ॥

ततश्च कुलदेशादि गुरुवाक्यविशेषतः ॥
अनुज्ञातं विवाहादि गर्ग्गादिमुनिभिः पुरा ॥ १ ॥

वृत्तम् ॥

सूर्यः षट् त्रिदशस्थितस्त्रिदशषट्सप्ताद्यगश्चंद्रमा
जीवः सप्तनवद्विपंचमगतो वक्रार्कजौ षट्त्रिगौ ॥
सौम्यः षट्द्विचतुर्दशाष्टमगतः सर्वेप्युपांते शुभाः
शुक्रः सप्तमषट्दशाष्टरहितः शार्दूलवत्रासकृत् ॥ १ ॥ "

स्त्रीयोंको बृहस्पति बलवान् होवे, पुरुषोंको सूर्य बलवान् होवे, और दंपतीको चंद्र बलवान् होवे तो, लग्न शोधना. ॥

प्रथम कन्यादानविधि कहते हैंः—पूर्वोक्त समान कुलशीलवाले, अन्य गोत्रीसें कन्या मांगनी. । पूर्वोक्त गुणविशिष्ट वरकेतांइ कन्या देनी. । कन्याके कुलज्येष्ठने वरके कुलज्येष्ठको, नालिकेर, क्रमुक (सुपारी) जिनोपवीत, व्रीही, दूर्वा, हरिद्रा अपने २ देशकुलोचित वस्तु दानपूर्वक कन्यादान करना.

तदा गृह्यगुरु वेदमंत्र पढे । स यथा ॥

"॥ ॐ अर्हं परमसौभाग्याय परमसुखाय परमभोगाय परमधर्म्माय परमयशसे, परमसन्तानाय भोगोपभोगांतरायव्यवच्छेदाय इमां अमुकनाम्नीं कन्यां अमुकगोत्रां अमुकनाम्ने वराय अमुकगोत्राय ददाति गृहाण अर्हं ॐ ॥"

पीछे सर्व लोकोंकेतांइ कन्याके पक्षी तांबूल देवे. । तथा दूर रहे विवाहकालमें वरके जीते हुए, सा कन्या अन्यको न देनी.

उक्तंच ॥

सकृज्जल्पन्ति राजानस्सकृज्जल्पन्ति पण्डिता ॥
सकृत् प्रदीयते कन्या त्रीण्येतानि सकृत् सकृत् ॥ १ ॥

राजाओं एकवार बोलते हैं, पंडित जन एकवार बोलते हैं, कन्या एकवार देइये हैं पूर्वोक्त तीन कार्य एकएकहीवार होते हैं ॥ तथा वर भी, तिस कन्याको वस्त्र, आभरण, गधादिउत्सवसहित, तिसके पिताके घरमें देवे । कन्याका पिता भी, परिजनसयुक्त वरको, महोत्सवसहित वस्त्र मुद्रिकादि देवे ।

लग्नदिनसें पहिले मासमें, वा पक्षमें वैयम्यानुसारें दोनों पक्षोंके स्वजनोंको एकठे करके, सावत्सर—ज्योतिषिकको उत्तम आसनऊपर विठलाके, तिसके हाथसें विवाहलग्न भूमिके ऊपर लिखवावे, और रूप्य, स्वर्णमुद्रा, फल, पुष्प, दूर्वा करके जन्मलग्नवत् विवाहलग्नको पूजे । पीछे ज्योतिषिकको दोनों पक्षोंके वृद्धनें वस्त्रालंकार तांबूलदान देवें

इति विवाहारंभः ॥

तदपीछे कोरे शरावलोंमें यव बोवने । पीछे कन्याके घरमें मातृस्थापना, और षष्ठीस्थापना, षष्ठी आदि प्रक्रमोक्त प्रकारसें करना । वरके घरमें जिनसमयानुसारियोंको मातृस्थापन, और कुलकरस्थापन करना । परमतमें गणपति, कदर्प स्थापन करते हैं सो सुगम, और लोक प्रसिद्ध है ॥

अथ कुलकर स्थापनविधि कहते हैं ॥ गृहगुरु भूमिपर पडे गोमय (गोबर) करके लीपी हुई भूमिमें, स्वर्णमय, रूप्यमय, ताम्रमय, वा श्रीपर्णीकाष्ठमय, पट्टा, स्थापन करे । पट्टकस्थापन मत्र

“॥ ॐ आधाराय नम आधारशक्तये नम । आसनाय नम ॥”

इस मत्रकरके एकवार मत्रके पट्टेको स्थापन करके, तिस पट्टेको अमृतामत्रकरके तीर्थजलोंसें अभिषिंचन करे । पीछे चदन, अक्षत, दूर्वाकरके पट्टेको पूजे । पीछे आदिमें

"॥ ॐ नमः प्रथमकुलकराय कांचनवर्णाय श्यामवर्ण चंद्रयशःप्रियतमासहिताय हाकारमात्रोच्चारख्यापितन्याय्यपथाय विमलवाहनाभिधानाय इह विवाहमहोत्सवादौ आगच्छ २ इह स्थाने तिष्ठ २ सन्निहितो भव २ क्षेमदो भव २ उत्सवदो भव २ आनंददो भव २ भोगदो भव २ कीर्तिदो भव २ अपत्यसंतानदो भव २ स्नेहदो भव २ राज्यदो भव २ इदमर्घ्यं पाद्यं बलिं चर्चां आचमनीयं गृहाण २ सर्वोपचारान् गृहाण २ ॥ "

तदपीछे—

" ॥ ॐ गंधं नमः । ॐ पुष्पं नमः । ॐ धूपं नमः । ॐ दीपं नमः । ॐ उपवीतं नमः । ॐ भूषणं नमः । ॐ नैवेद्यं नमः । ॐ तांबूलं नमः ॥ "

पूर्व मंत्रकरी आव्हान करके, संस्थापन करके, सन्निहित करके, अर्घ्य, पाद्य, बलि, चर्चा, आचमनीय, दान देवे. अन्य ॐकारादिमंत्रोंकरके, गंध दो तिलक, दो पुष्प, दो धूप, दो दीप एक उपवीत, दो स्वर्णमुद्रा, दो नैवेद्य, दो तांबूल, देवे. ॥ १ ॥

पीछे दूसरे स्थानमें ॥

"॥ ॐ नमो द्वितीयकुलकराय श्यामवर्णाय श्यामवर्णचंद्रकांताप्रियतमासहिताय हाकारमात्रख्यापितन्याय्यपथाय चक्षुष्मदभिधानाय ॥ " शेषं पूर्ववत् ॥ २ ॥

"॥ॐ नमस्तृतीयकुलकराय श्यामवर्णाय श्यामवर्णसुरूपाप्रियतमासहिताय माकारमात्रख्यापितन्याय्यपथाय यशस्व्यभिधानाय ॥ " ॥ शेषं पूर्ववत् ॥

" ॥ ॐ नमश्चतुर्थकुलकराय श्वेतवर्णाय श्यामवर्णप्रतिरूपा प्रियतमासहिताय माकारमात्रख्यापितन्याय्यपथाय अभिचंद्रा-भिधानाय ॥ " शेषं पूर्ववत् ॥

"॥ॐ नम पचमकुलकराय श्यामवर्णाय श्यामवर्णचक्षुःकांता-प्रियतमासहिताय धिक्कारमात्रख्यापितन्याय्यपथाय प्रसेनजिद-भिधानाय ॥ " शेप पूर्ववत् ॥ ५ ॥

"॥ॐ नम षष्ठकुलकराय स्वर्णवर्णाय श्यामवर्णश्रीकांता-प्रियतमासहिताय धिक्कारमात्रख्यापितन्याय्यपथाय मरुदे-वाभिधानाय ॥ " शेप पूर्ववत् ॥ ६ ॥

"॥ॐ नम सप्तमकुलकराय काचनवर्णाय श्यामवर्णमरुदे-वाप्रियतमासहिताय धिक्कारमात्रख्यापितन्याय्यपथाय ना न्यभिधानाय ॥ " शेप पूर्ववत् ॥ ७ ॥ इतिकुलकरस्थापन पूजनविधि ॥

यह कुलकरस्थापना ओर परसमयमें गणेशमदनस्थापना, विवाहके पीछे भी सात अहोरात्रपर्यंत रखनी चाहिये । पीछे वरके घरमें शांतिक, पौष्टिक करे और कन्याके घरमें मातृपूजा पूर्ववत् । तदपीछे विवाहका लसें पूर्व सात, नव, इग्यारह, वा तेरह, दिनोंमें वधूवरको अपने २ घरमें, मगलगीतवाजत्रपूर्वक, तैलाभिषेक ओर स्नान, नित्य विवाहपर्यंत कराना । प्रथमतैलाभिषेकदिनमें, वरके घरसें कन्याके घरमें, तैल, शिर प्रसाधनगधद्रव्य, द्राक्षादि खाद्य शुष्कफल, भेजने । नगरकी ओरतें वरके घरमें, और कन्याके घरमें, तैल, धान्य, ढोकन करें । वधूवरके घरकी वृद्ध नारीयों तिन तैल धान्यढोकनेवाली नारीयोंको, पूडे आदि पक्वान्न देवें । तहा धारणादि देशाचार, कुलाचारोंसें करना । तैलाभिषेक, कुलकर गणेशादि स्थापन, ककणबध, अन्यविवाहके उपचारादिक सर्व, वधूवरको चद्रबलके हुए, विवाहवाले नक्षत्रमें करना । तथा धूलिभक्त, कोरभक्त, सौभाग्यजलस्थापन प्रमुख, कर्म, मगलगीतवाजत्रादिसहित

देशाचार कुलाचार विशेषसें करना. ...के प्रवेशमार्ग... जो, अन्य ग्रामांतर, नगरांतर, वा देशांतरमें होवे तो, तिसकी गमनयात्रा * कन्याके निवासस्थानप्रति करनी; तिसका विधि यह है. ॥

प्रथम एक दिनमें मातृपूजापूर्वक सर्व लोकोंको भोजन देना; पीछे दूसरे दिन सुस्नात होके, चंदनका लेपन करके, वस्त्रगंधमाल्यादिकरके अलंकृत होके, मुकुटकरके भूषित शिरको करके, घोडेपर, वा हाथीपर, वा पालखीमें आरूढ होके, वर चले. । तिसके समीप, अच्छे वस्त्रोंवाले, प्रमोदसहित, पानबीडे चावे हुए, संबंधी ज्ञातिजन, अपनी २ संपदानुसार घोडेआदि ऊपर चढे हुए, वा पगोंसें चलते हुए, वरकेसाथ चलें. । दोनों पासे, मंगलगानमें प्रसक्त ऐसी ज्ञातिकी नारीयां चलें और आगे ब्राह्मणलोक, गृह्यशांतिमंत्र पढते हुए चलें. ॥

स यथा ॥

"॥ॐ अर्हँ आदिमोऽर्हन् आदिमो नृपः आदिमो यंता आदिमो नियंता आदिमो गुरुः आदिमः स्रष्टा आदिमः कर्त्ता आदिमो भर्त्ता आदिमो जयी आदिमो नयी आदिमः शिल्पी आदिमो विद्वान् आदिमो जल्पकः आदिमः शास्ता आदिमो रौद्रः आदिमः सौम्यः आदिमः काम्यः आदिमः शरण्यः आदिमो दाता आदिमो वंद्यः आदिमः स्तुत्यः आदिमो ज्ञेयः आदिमो ध्येयः आदिमो भोक्ता आदिमः सोढा आदिम एकः आदिमोऽनेकः आदिमः स्थूलः आदिमः कर्म्मवान् आदिमोऽकर्म्मा आदिमो धर्म्मवित् आदिमोऽनुष्ठेयः आदिमोऽनुष्ठाता आदिमः सहजः आदिमो दशावान् आदिमः सकलत्रः आदिमो निःकलत्रः आदिमो विवोढा आदिमः ख्यापकः आदिमो ज्ञापकः आदिमो विदुरः आ-

* जान—जनेत—वरातइतिलोकप्रसिद्ध. ॥

दिम कुशल आ[illegible]क आदिम सेव्य आदिमो-
गम्य आदिमो विमृश्य आदिमो विम्रष्टा सुरासुरनरोरग-
प्रणत प्राप्तविमलकेवलो यो गीयते सकलप्राणिगणहि-
तो दयालुरपरापेक्षापरात्मा परज्योतिः पर ब्रह्म परमैश्व-
र्यभाक् परंपर परापरो जगदुत्तम सर्वग सर्ववित् सर्व-
जित् सर्व्वीय सर्व्वप्रशस्य सर्ववद्य सर्वपूज्य सर्वात्माऽसं-
सारोऽव्ययोऽवार्यवीर्य श्रीसश्रय श्रेयः संश्रय विश्वाव-
श्यायहृत् सशयहृत् विश्वसारो निरजनो निर्म्ममो निःक-
लंको नि पाप्मा नि पुण्य निर्मना निर्वाचा निर्देहो नि सं-
शयो निराधारो निरवधि प्रमाणं प्रमेय प्रमाता जीवाजी-
वाश्रवबधसवरनिर्जरावधमोक्षप्रकाशक स एव भगवान्
शान्ति करोतु तुष्टिं करोतु पुष्टिं करोतु ऋद्धिं करोतु वृद्धिं
करोतु सुख करोतु सौख्य करोतु श्रियं करोतु लक्ष्मीं
करोतु अर्हं ॐ ॥"

ऐसें आर्यवेदके पाठी ब्राह्मण, आगे चलें । तवपीछे इसी विधिसें महोत्सवकरके, चैत्यपरिपाटी, गुरुवदन, मडलीपूजन, नगरदेवतादिपूजन करके, नगरके समीप रहे, पीछे पथमें चलें । तथा इसीरीतिसें कन्या धिष्ठित नगरमें प्रवेश करना । तिसही नगरमें विवाहकेवास्ते चले हुए वरका भी, यही विधि जाणना । तथा नित्यस्नानके अनतर कौसुमसूत्र करके वधूवरके शरीरका माप करना । तवपीछे विवाहदिनके आये हुए, विवाहलग्नसें पहिले, तिसही नगरका वासी, वा अन्यदेशसें आया वर, तिसही पूर्वोक्त विधिसें, पाणिग्रहणकेवास्ते चले तिसकी बहिनां विशेष करके लूणआदि उत्तारण करे । पीछे वर, आडघर और ब्रह्मगुरुसहित कन्याके घरके द्वारमें आवे तहां खडे हुए वरको, तिसके सासुजन, कर्पूरवी पकादिकरके आरात्रिक (आरति) करे । तवपीछे अन्य स्त्री, जलते हुए अगारे, और लवणकरके सयुक्त, त्रट त्रट ऐसे शब्द करते हुए,

सरावसंपुटको, वरको निरुंछन करके, प्रवेशमार्गके वामे पासे स्थापन करे.। तदपीछे अन्य स्त्री कौसुंभसूत्रसें अलंकृत, मंथानको लाके, तिसकरके तीन वार वरके ललाटको स्पर्श करे.। पीछे वर, वाहनसें नीचे उतरके, वामे पग करी तिस अग्निलवणगर्भसंपुटको खंडित करे (तोडे).। पीछे वरकी सासु, वा कन्याकी मामी, वा कन्याका मामा, कौसुंभवस्त्रको वरके कंठमें डालके, खेंचता हुआ वरको मातृघरमें ले जावे. तहां विभूषाकरके, कौतुकमंगलकरके, प्रथम आसनऊपर बैठी हुई कन्याके वामे पासे, मातृदेवीके सन्मुख, वरको बिठलावे.। तदपीछे गृह्यगुरु लग्नवेलामें शुभांशके हुए, पीसी हुई समी (खेजडी) की छाल, और पीपकी छाल, चंदनद्रव्यमिश्रितकरके, तिससें लीपे हुए, वधूवरके दोनों दक्षिण हाथ जोडे.। उपर कौसुंभसूत्रसें बांधे.॥

हस्तबंधनमंत्रः॥

"॥ ॐ अर्हं आत्मासि जीवोसि समकालोसि समचित्तोसि समकर्म्मासि समाश्रयोसि समदेहोसि समक्रियोसि समस्नेहोसि समचेष्टितोसि समाभिलाषोसि समेच्छोसि समप्रमोदोसि समविषादोसि समावस्थोसि समनिमित्तोसि समवचाअसि समक्षुत्तृष्णोसि समगमोसि समागमोसि समविहारोसि समविषयोसि समशब्दोसि समरूपोसि समगंधोसि समस्पर्शोसि समेंद्रियोसि समाश्रवोसि समबंधोसि समसंवरोसि समनिर्जरोसि सममोक्षोसि तदेह्येकत्वमिदानीं अर्हं ॐ॥" इति हस्तबंधनमंत्रः॥

यहां समयांतरमें वैदिक मतमें मधुपर्क*भक्षण, देशांतरमें वरको दो गौयां देनी, और कुलांतरमें कन्याको आभरण पहिरावणे, इत्यादि करते

*ऋग्वेदके आश्वलायनसूत्रके दूसरे हिस्से गृह्यसूत्रके प्रथम अध्यायकी चौवीसमी कंडिकामें मधुपर्कका विधि लिखा है, तिसके सूत्र नीचे प्रमाणे हैं.॥

हैं । तदपीछे वधुवरको मातृघरमें बैठे हुए, कन्याके पक्षी, वेदिकी रचना करें, तिसका विधि यह है ॥ कितनेक काष्ठस्तंभ काष्ठाच्छादनों करके चौकूणी वेदी करते हैं, और कितनेक चारों कूणोंमें स्वर्ण, रूप्य, ताम्र, वा माटीके सात सात कलशोंको ऊपर लघु लघु, अर्थात् प्रथम घडा उसके ऊपर छोटा, उसके ऊपर फिर छोटा, एवं स्थापन करके चारों पासे चार चार आर्द्र वांसोंसें बांधके वेदि करते हैं चारों वारणोंमें वस्त्रमय, वा काष्टमय तोरण, और वदनमालिका बांधते हैं, और अंदर त्रिकोण अग्निका कुंड करते हैं । वेदी बनाया पीछे गृहगुरु, पूर्वोक्त वेष धारण करके वेदिकी प्रतिष्ठा करे । तिसका विधि यह है ॥

---

१ ऋत्विजो वृत्वा मधुपर्कमाहरेत् ।१।२४।१॥ २ स्नातकायोपस्थिताय ।१।२४।२॥ ३ राज्ञे च ।१।२४।३॥ ४ आचार्यश्वशुरपितृव्यमातुलानां च ।१।२४।४॥ ५ आचान्तोदकाय गां वेदयन्ते ।१।२४।२३॥ ६ हतो मे पाप्मा पाप्मा मे हत इति जपित्वोंकुरुतेति कारयिष्यन् ।१।२४।२५॥ नारायणवृत्ति—इमं मंत्रं जपित्वा ओम् कुरुतेति ब्रूयात् यदि कारयिष्यन् मारयिष्यन् भवति तदा च दाय... ७ नामांसो मधुपर्को भवति ॥१।२४।२६॥ [नारायणवृत्ति—मधुपर्काङ्गभोजनं अमांसं न भवतीत्यर्थः । पशुकरणपक्षे तन्मांसेन भोजनं उत्सर्जनपक्षे मांसान्तरेण]—अर्थ ॥ यज्ञ करनेवास्ते ऋत्विज खडा करते वखत तिसको मधुपर्क देना चाहिये । इसीतरें विवाहवास्ते जो वर घरमें आवे तिसको, और राजा घरमें आवे तिसको मधुपर्क देना चाहिये । आचार्य, गुरु, श्वशुर, चाचा, मामा, येह घरमें आवे तो तिनको भी मधुपर्क देना चाहिये । मुख साफ करनेवास्ते पाणी देकर तिनके आगे गाय खडी रखनी चाहिये । पूर्वोक्त मंत्र पढके ओम कहके घरके स्वामिने गौका वध करना । मधुपर्काङ्गभोजन, विनामांसके नही होता है, इसवास्ते पशुका वधपूर्वक मधुपर्क करा होवे तो, तिसही पशुका मांस भोजनके काममें आवे, और पशुको छोड दीया होवे तो और मांससें भोजन करना चाहिये ॥

तथा मणिलाल नभुभाइ द्विवेदी सिद्धान्तसारमें लिखते हैं ॥ "विवाहके संबंधमें मधुपर्ककी बात कहते हैं, जैसा है एसा समाचार है कि आये हुए अतिथिके वास्ते मधुपर्क करना चाहिये वह भी अतिथि है अस्तु जैसे यज्ञकर्मों गोवध विहित था, वैसें मधुपर्कवास्ते भी गौका या बैलका वध विहित था. संमतिसे मधुपर्क नहीं ऐसे आश्वलायन कहता है और नाटकादिकोंमें मालुम होता है, कि वाल्मीकि महर्षिको वसिष्ठ भी मधुपर्कमें गाय दिया है अथर्ववेदमें कहा है, कि जो गौ मांस बहुत पवित्र गिनी जाती है, जिसका दर्शन स्वप्नमें दशदान तथा मधुपर्कवास्ते मारनेका रिवाज था । हाल तो मधुपर्कमें फक्त दधि मधु और घृत नहीं बनाते हैं"—ऐसे आप ग्रंथोंमें लिखके किया कथन करा है, वैसे आर्य वेदोंमें नही है । अरु मधुपर्कमें तथा यज्ञोंमें प्रथम जीववध करा हुआ है सो भी जैन, बौद्ध, वैष्णवादि संप्रदायोंके जोर (बल) का फल है मणिलाल नभुभाइ सिद्धान्तसारमें लिखते हैं ॥ "पाटण, खंभात, जैसलमेर आदि स्थानोंमें जैनभंडार बडे पुस्तकोंसे भरपूर हैं, और तिनके बडे भंडारक हैं इनमें एक

वास पुष्प अक्षतों करके हाथ भरके ॥

"॥ ॐ नमः क्षेत्रदेवतायै शिवायै क्षाँ क्षीँ क्षूँ क्षौँ क्षः इह विवाहमंडपे आगच्छ २ इह बलिपरिभोग्यं गृह्ण २ भोगं देहि सुखं देहि यशो देहि संततिं देहि ऋद्धिं देहि वृद्धिं देहि बुद्धिं देहि सर्वसमीहितं देहि २ स्वाहा ॥"

ऐसें पढके चारों कोणोंमें न्यारे न्यारे वास, माल्य, अक्षत, क्षेप करना; तोरणकी प्रतिष्ठा भी ऐसेंही करनी.

तन्मंत्रो यथा ॥

"॥ ॐ ह्रीँ श्रीँ नमो द्वारश्रिये सर्वपूजिते सर्वमानिते सर्वप्रधाने इह तोरणस्थासर्वसमीहितं देहि २ स्वाहा ॥"

॥ इतितोरणप्रतिष्ठा ॥

तदपीछे वेदिके मध्यमें अग्निकोणेमें अग्निकुंडमें मंत्रपूर्वक अग्निको स्थापन करे. ।

अग्निन्यासमंत्रो यथा ॥

"॥ ॐ रं रां रीं रूं रौं रः नमोऽग्नये नमो बृहद्भानवे नमोनंततेजसे नमोनंतवीर्याय नमोनंतगुणाय नमो हिरण्यरेतसे नमश्छागवाहनाय नमो हव्यासनाय अत्र कुंडे आगच्छ २ अवतर २ तिष्ठ २ स्वाहा ॥"

मूल डालके चला हुआ यह अहिंसारूप परम धर्म अपनी दृष्टिके आगे अद्यापि भी है. ब्राह्मणोंके धर्मको वेदमार्गको तथा यज्ञमें होती हिंसाको–खरा धक्का इसी धर्मने लगाया है. बुद्धके धर्मने वेदमार्गकाही इनकार किया था तिसको अहिंसाका आग्रह नही था यह महादयारूप, प्रेमरूप धर्म, तो जैनकाही हुआ सारे हिंदुस्थानमेंसें पशुयज्ञ निकल गया है, फक्त छेक दाक्षिणमें, जहा बौद्ध के जैनकी छाया बराबर पड शकी नही है, तहाही चालु है इतनाही नही परंतु उपनिषदोंका ज्ञानमार्ग सर्वथा सतेज होके, जैनोंके जीवाजीव तथा कर्म धर्मरूप वादपरत्वे, वहोत वहार आया है ऐसें शकारूप, बौद्ध तथा जैन धर्मोने दर्शनोंके परम धर्मका रस्ता किया है, तत्त्वदृष्टिको खरे रूपमें प्रवर्त्तनेका मार्ग किया है, और वर्ण जाति सब भूलाके, मनुष्यमात्रको परम प्रेममें एकात्मभाव प्राप्त करणहार ब्रह्मज्ञानका उदय सूचन किया है" यद्यपि सांप्रत कितनेक अज्ञानी कदाग्रही पुन हिंसक क्रियाको उत्तेजन कर रहे है, तथापि तिसका सार्वत्रिक होना असंभव है, प्रतिपक्षियोंकेविद्यमान होनेसें. ॥

समयातरमें, देशातरमें वा कुलातरमें, वेध्यतरमेंही, हस्तलेपन करते हे वेश कुलाचारादिमें मधुपर्क प्राशनके अनतर, वेदि, और हस्तलेपसें पहिले परस्पर कथायुद्ध, वधूवरास्फालन, वेडानयन, मणिग्रथन, स्नान, श्राद्दकर्म, पर्याणकर्म्म, वस्त्रकौसुभसूत्रात कर्पणप्रमुख, कर्म्म करते हैं वे देशविशेषलोकोंसें जाण लेने व्यवहार शास्त्रोंमें नही कहे हैं परतु स्त्रीयोंको सौभाग्यप्राप्तिवास्ते, शौक आदि न होवे तिसके वास्ते, वरको वशीभूत करनेकेवास्ते करते हैं ॥

तदपीछे युक्त हाथवाले, नारी और नरकी कटीउपर चढे हुए वधूवर दोनोंको, गीतवाजआदि बहुत आडंबरसें दक्षिण द्वारसें प्रवेश कराके वेदिके मध्यमे लावे । तदपीछे देशकुलाचारसें काष्ठासनोंके ऊपर, वा वेत्रासनोंके ऊपर, वा सिंहासनके ऊपर, वा अधोमुखी शरमय खारीके उपर, वधूवरको पूर्वसन्मुख निठलावे । तथा हस्तलेपमें, और वेदिकर्ममें [illegible]चारके अनुसार दसिया सहित कोरवस्त्र, वा कौसुभवस्त्र, वा स्वभाववस्त्र वधूवरको पहिरावे हे । तदपीछे गृह्यगुरु, उत्तरसन्मुख मृगचर्म ऊपर बैठाहुआ शमी, पिप्पल, कपित्थ (कवठ—कपतवेल) कुटज (कुडची—जिस वृक्षका फल इद्रयव होता हे), बिल्व, आमलकके इधनकरके अग्निको जगावे, इस मत्रकरके घृत मधु तिल यव नाना फलोंका हवन करे ॥

मत्रो यथा ॥

"॥ ॐ अर्हं अग्ने प्रसन्न सावधानो भव तवायमवसरः तदाह्वारयेंद्र यम नैर्ऋत वरुण वायु कुवेरमीशान नागान् ब्रह्माणं लोकपालान् ग्रहाश्च सूर्यशशिकुजसौम्यबृहस्पतिकविशनिराहुकेतून् सुराश्चासुरनागसुपर्णविद्युदग्निद्वीपोदधिदिक्कुमारान् भुवनपतीन् पिशाचभूतयक्षराक्षसकिन्नरकिंपुरुषमहोरगगधर्वान् व्यतरान् चद्रार्कग्रहनक्षत्रतारकान् ज्योतिष्कान् सौधर्म्मेशान् * सनत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मलातकशुक्रसहस्रारा-

* [illegible]

नतप्राणतारणाच्युतग्रैवेयकानुत्तरभवान् वैमानिकान् इंद्रसामानिकपार्षद्यत्रायस्त्रिंशल्लोकपालानीकप्रकीर्णकलौकांतिकाभियोगिकभेदभिन्नांश्चतुर्णिकायानपि सभार्यान् सायुधबलवाहनान् स्वस्वोपलक्षितचिह्नान् अप्सरसश्च परिगृहितापरिगृहितभेदभिन्नाः ससाखिकाः सदासिकाः साभरणा रुचकवासिनीर्दिक्कुमारिकाश्च सर्वाःसमुद्रनदीगिर्याकरवनदेवतास्तदेतान् सर्वान् सर्वाश्च इदमर्घ्यं पाद्यमाचमनीयं बलिं चरुं हुतं न्यस्तं ग्राहय २ स्वयं गृहाण २ स्वाहा अर्हं ॐ॥"

तदपीछे अच्छीतरें हुत करके प्रदीप्त अग्निके हुए, गृह्यगुरु, तहांसें उठके दक्षिणपासे स्थित हुई वधूके सन्मुख बैठके, ऐसा कहे.॥

"॥ ॐ अर्हं इदमासनमध्यासीनौ स्वध्यासीनौ स्थितौ सुस्थितौ तदस्तु वां सनातनः संगमः अर्हं ॐ॥"

ऐसें कहके कुशाग्रतीर्थोदककरके दोनोंको सींचन करे.। पीछे वधूका पितामह, वा पिता, वा चाचा, वा भाइ वा मातामह, वा कुलज्येष्ठ, धर्मानुष्ठान करके उचित वेषवाला, वधूवरके आगे बैठे.। शांतिक पौष्टिकसें आरंभके विवाहसें मासपर्यंत, मंगलगान, वादित्रवादन, भोजन तांबूल वस्त्र सामग्री, सदैव गवेसीये हैं.॥

तदपीछे गृह्यगुरु॥

"॥ ॐ नमोर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः॥"

ऐसें कहके, प्रथम अक्षतपूर्ण हाथवाला होके वधूवरके आगे ऐसा कहे.॥

"विदितं वां गोत्रं संबंधकरणेनैव ततः प्रकाश्यतां जनाग्रतः"

जाना है तुमारा गोत्र, संबंध करनेसेंही; तिसवास्ते प्रकाश करो, लोकोंके आगे.। तब प्रथम वरके पक्षीय, अपने गोत्र, अपनी प्रवर, ज्ञाति और अपने अन्वय-वंशको प्रकाश करे,। पीछे वरकी माताके पक्षीय,

गोत्र, प्रवर, ज्ञाति, और अन्वयको प्रकाश करे । तदपीछे कन्याके पक्षीय, अपने गोत्र, प्रवर, ज्ञाति, अन्वयको प्रकाश करे । फिर कन्याकी माताके पक्षीय, गोत्र, प्रवर, ज्ञाति, अन्वयको प्रकाश करे ।

तदपीछे गृह्यगुरु ॥

"॥ॐ अर्हं अमुकगोत्रीयः इयत्प्रवर अमुकज्ञाति अमुकान्वय अमुकप्रपौत्र अमुकपौत्र अमुकपुत्र अमुकगोत्रीय इयत्प्रवर अमुकज्ञातीय अमुकान्वय अमुकप्रदौहित्रःअमुकदौहित्र अमुक सर्ववरगुणान्वितो वरयिता अमुकगोत्रीया इयत्प्रवरा अमुकज्ञा[illegible]ीया अमुकान्वया अमुकप्रपौत्री अमुकपौत्री अमुकपुत्री अमुकगोत्रीया इयत्प्रवरा अमुक ज्ञातीया अमुकान्वया अमुकप्रदौहित्री अमुकदौहित्री अमुका वर्य्या तदेतयोर्वर्य्यावरयोर्वरवर्य्ययोर्निबिडोविवाहसंबंधोस्तु शांतिरस्तु तुष्टिरस्तु पुष्टिरस्तु धृतिरस्तु वृद्धिरस्तु धनसंतानवृद्धिरस्तु अर्हं ॐ॥" ऐसें कहे ॥

तदपीछे गृह्यगुरु, वरवधूके पाससें गंध, पुष्प, धूप, नैवेद्य करके अग्निकी पूजा करवावे । पीछे वधू लाजांजलिको अग्निमें निक्षेप करे । तदपीछे फिर तैसेंही दक्षिण पासे वधू, और वामे पासे वर बैठे । पीछे गृह्यगुरु वेदमंत्र पढे

"॥ॐ अर्हं अनादिविश्वमनादिरात्मा अनादिकाल अनादिकर्म्म अनादिसंबंधो देहिनां देहानुमतानुगतानां क्रोधाहंकारछद्मलोभैः संज्वलनप्रत्याख्यानावरणाप्रत्याख्यानानंतानुबंधिभिः शब्दरूपरसगंधस्पर्शैरिच्छानिच्छापरिसंकलितैः संबंधोनुबंधः प्रतिबंधः संयोगः सुगमः सुकृतः स्वनुष्ठितः सुनिवृत्तः सुप्राप्तः सुलब्धो द्रव्यभावविशेषेण अर्हं ॐ॥"

यह मंत्र पढके फेर ऐसा कहे.

"॥ तदस्तु वां सिद्धप्रत्यक्षं केवलिप्रत्यक्षं चतुर्णिकायदेवप्रत्यक्षं विवाहप्रधानाग्निप्रत्यक्षं नागप्रत्यक्षं नरनारीप्रत्यक्षं नृपप्रत्यक्षं जनप्रत्यक्षं गुरुप्रत्यक्षं मातृप्रत्यक्षं पितृप्रत्यक्षं मातृपक्षप्रत्यक्षं पितृपक्षप्रत्यक्षं ज्ञातिस्वजनबंधुप्रत्यक्षं संबंधः सुकृतः सदनुष्ठितः सुप्राप्तः सुसंबद्धः सुसंगतः तत्प्रदक्षिणीक्रियतां तेजोराशिर्विभावसुः ॥"

ऐसें कहके तैसेंही ग्रथित अंचल वरवधू, अग्निकी प्रदक्षिणा करें. तैसें प्रदक्षिणाकरके तैसेंही पूर्वरीतिसें बैठे. लाजा तीनकी तीनों प्रदक्षिणामें आगे वधू और पीछे वर होवे. दक्षिण पासे वधूका आसन, और वामे पासे वरका आसन. ॥ इति प्रथमलाजाकर्म ॥

तदपीछे वरवधूके आसन ऊपर बैठे हुए, गुरु वेदमंत्र पढे.

"॥ ॐ अर्हं कर्म्मास्ति मोहनीयमस्ति दीर्घस्थित्यस्ति निबिडमस्ति दुःछेद्यमस्ति अष्टाविंशतिप्रकृत्यस्ति क्रोधोस्ति मानोस्ति मायास्ति लोभोस्ति संज्वलनोस्ति प्रत्याख्यानावरणोस्ति अप्रत्याख्यानोस्ति अनंतानुबंध्यस्ति चतुश्चतुर्विधोस्ति हास्यमस्ति रतिरस्ति अरतिरस्ति भयमस्ति जुगुप्सास्ति शोकोस्ति पुंवेदोस्ति स्त्रीवेदोस्ति नपुंसकवेदोस्ति मिथ्यात्वमस्ति मिश्रमस्ति सम्यक्त्वमस्ति सप्तति कोटाकोटिसागरस्थित्यस्ति अर्हं ॐ ॥"

यह वेदमंत्र पढके ऐसा कहे.

"॥ तदस्तु वां निकाचितनिविडबद्धमोहनीयकर्मोदयकृतः स्नेहः सुकृतोस्तु सुनिष्ठितोस्तु सुसंबंधोस्तु आभवमक्षयोस्तु तत् प्रदक्षिणीक्रियतां विभावसुः ॥"

फेर भी तैसेंही अग्निकी प्रदक्षिणा करे ॥ इति द्वितीयलाजाकर्म्म ॥

चारोंही लाजामें प्रदक्षिणाके प्रारभमें वधू, अग्निमें लाजामुष्टि प्रक्षेप करे तदपीछे तिन दोनोंके, तैसेंही बैठे हुए, गुरु, ऐसा वेदमत्र पढे

" ॥ ॐ अर्हं कर्म्मास्ति वेदनीयमस्ति सातमस्ति असातमस्ति सुवेद्य सातं दुर्वेद्यमसात सुवर्गणाश्रवण सात दुर्वर्गणाश्रवणमसात शुभपुद्गलदर्शन सात दु पुद्गलदर्शनमसातं शुभषड्रसास्वादन सात अशुभषड्रसास्वादनमसातं शुभगधाघ्राण सात अशुभगधाघ्राणमसात शुभपुद्गलस्पर्श सात अशुभपुद्गलस्पर्शोऽसात सर्व सुखकृत् सातं सर्वं दु खकृदसात अर्हं ॐ ॥ "

इस वेदमत्रको पढके ऐसें कहे

" ॥ तदस्तु वा सातवेदनीय माभूदसातवेदनीयं तत् प्रदक्षिणीक्रियता विभावसु ॥ "

इति पुन अग्निको प्रदक्षिणा करके वधूवर दोनों, तैसेंही बैठ जावे ॥ इति तृतीयलाजाकर्म ॥

तदपीछे गृह्यगुरु ऐसा वेदमंत्र पढे

" ॥ ॐ अर्हं सहजोस्ति स्वभावोस्ति सर्वधोस्ति प्रतिबन्धोस्ति मोहनीयमस्ति वेदनीयमस्ति नामास्ति गोत्रमस्ति आयुरस्ति हेतुरस्ति आश्रवबद्धमस्ति क्रियाबद्धमस्ति कायबद्धमस्ति सासारिकसंबंध अर्हं ॐ ॥ "

ऐसा वेदमत्र पढके, कन्याके पिताके, चाचेके, भाइके वा कुलज्येष्ठके, हाथको तिलयवकुशदूर्वासयुक्त जलसें पूरके, ऐसें कहे

" ॥ अद्य अमुकसवत्सरे अमुकायने अमुकऋतौ अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवारे अमुकनक्षत्रे अमुक-

योगे अमुककरणे अमुकमुहूर्त्ते पूर्वकर्मसंबंधानुबद्धवस्त्रगंध-माल्यालंकृतां सुवर्णरूप्यमणिभूषणभूषितां ददात्ययं प्रतिगृह्णीष्व ॥"

ऐसें कहके वधूवरके योजित हाथमें जलक्षेप करे.। तब वर कहे. "प्रतिगृह्णामि" तदनंतर गुरु कहे.

"॥ सुप्रतिगृहीतास्तु शांतिरस्तु पुष्टिरस्तु ऋद्धिरस्तु वृद्धिरस्तु धनसंतानवृद्धिरस्तु ॥"

तदपीछे प्रथम तीन लाजामें वरके हाथ ऊपर रहे कन्याके हाथको नीचे करे, और वरके हाथको ऊपर करे.। पीछे वरवधूको आसनसें ऊठाकर वरको आगे करे, और वधूको पीछे करे.। पीछे लाजाकी मुष्टि अग्निमें प्रक्षेप करके गुरु ऐसें कहे. "प्रदक्षिणीक्रियतां विभावसुः" वर-वधूको प्रदक्षिणा करते हुए, कन्याका पिता, यावत् कन्याका कुलज्येष्ठ, वा वरवधूके देनेयोग्य वस्त्र, आभरण, स्वर्ण, रूप्य, रत्न, ताम्र, कांश्य, भूमि, निःक्रय, हाथी, घोडा, दासी, गौ, बैल, पल्यंक, तूलिका, उत्सीर्षक, दीप, शस्त्र, पाकके भांडे, आदि सर्व वस्तुको वेदिमें ल्यावे.। और भी तिसके भाइ, संबंधी, मित्रादि, स्वसंपदाके अनुसारसें पूर्वोक्त वस्तुयों वेदिमें ल्यावें.। तदपीछे प्रदक्षिणाके अंतमें वरवधू, तैसेंही आसन ऊपर बैठें.। नवरं इतना विशेष हैं कि, चतुर्थ लाजाके अनंतर वरका आसन दक्षिण पासे, और वधूका आसन वामे पासे करणा.। तदपीछे गृह्यगुरु, कुश दूर्वा अक्षत वास करके हस्त पूर्ण हुआ थका, ऐसें कहे.

"॥ शक्रादिदेवकोटिपरिवृतो भोग्यफलकर्मभोगाय संसारिजीवव्यवहारमार्गसंदर्शनाय सुनंदासुमंगले पर्यणैषीत् ज्ञातमज्ञातं वा तदनुष्ठानमनुष्ठितमस्तु ॥"

ऐसें कहके वास, दूर्वा, अक्षत, कुशको वरवधूके मस्तक ऊपर क्षेप करे.। तदपीछे गृह्यगुरुके कहनेसें वधूका पिता, जल, यव, तिल, कुशको

हाथमें लेके, वरके हाथमें देके, ऐसें कहे "सुदाय ददामि प्रतिगृह्हाण" तब वर कहे " प्रतिगृह्णामि प्रतिगृहीत परिगृहीत " गुरु कहे " सुगृहीतमस्तु सुपरिगृहीतमस्तु " पुन तैसेंही वस्त्र, भूषण, हस्ति, अश्वादि दाय, देनेमें वधूके पिताका, और वरका यही वाक्य, और यही विधि है । तदपीछे सर्व वस्तुके दीए हुए गुरु ऐसें कहे

"॥ वधूवरौ वा पूर्वकर्म्मानुबंधेन निविडेन निकाचितबद्धेन अनुपवर्त्तनीयेन अपातनीयेन अनुपायेन अश्लथेन अवश्यभोग्येन विवाह प्रतिबद्धो बभूव तदस्त्वखंडितोऽक्षयोऽव्ययो निरपायो निर्व्याबाध सुखदोस्तु शांतिरस्तु पुष्टिरस्तु ऋद्धिरस्तु वृद्धिरस्तु धनसंतानवृद्धिरस्तु ॥ "

ऐसा कहके तीर्थोदकोंकरके कुशाग्रसें सिंचन करे । फेर गुरु तैसेंही वधूवरको उठाके मातृघरमें ले जावे, तहा ले जाके वधूवरको ऐसें कहे

॥ अनुष्ठितो वा विवाहो वत्सौ सस्नेहौ सभोगौ सायुषौ सधर्मौ समदुःखसुखौ समशत्रुमित्रौ समगुणदोषौ समवाङ्मनःकायौ समाचारौ समगुणौ भवतां ॥ "

तदपीछे कन्याका पिता, करमोचनेकेवास्ते गुरुप्रतें कहे । तब गुरु ऐसा वेदमंत्र पढे

" ॥ ॐ अर्हं जीवस्त्वं कर्मणा बद्ध ज्ञानावरणेन बद्ध दर्शनावरणेन बद्ध वेदनीयेन बद्ध मोहनीयेन बद्ध आयुषा बद्ध नाम्ना बद्ध गोत्रेण बद्ध अंतरायेण बद्ध प्रकृत्या बद्ध स्थित्या बद्ध रसेन बद्ध प्रदेशेन बद्ध तदस्तु ते मोक्षो गुणस्थानारोहक्रमेण अर्हं ॐ ॥ "

इस वेदमंत्रको पढके फेर ऐसें कहे

" ॥ मुक्तयो करयोरस्तु वा स्नेहसंबंधोऽखंडित ॥ "

ऐसें कहके करमोचन करे.। कन्याका पिता करमोचनपर्वमें जामातृ (जमाइ) के मांगेप्रमाण, स्वसंपत्तिके अनुसार बहुत वस्तु देवे.। दानविधि, पूर्वयुक्तिसेंही है.। तदपीछे मातृघरसें ऊठके, फेर वेदिघरमें आवें. तदपीछे गृह्यगुरु, आसनऊपर बैठे दोनोंको ऐसें कहे.

"॥ वृत्तम्। पूर्वं युगादिभगवान् विधिनैव येन विश्वस्य कार्यकृतये किल पर्यणैषीत्॥ भार्याद्वयं तदमुना विधिनास्तु युग्ममेतत्सुकामपरिभोगफलानुबंधि॥ १॥"

ऐसें कहके पूर्वोक्त विधिसें अंचलमोचन करके "वत्सौ लब्धविषयौ भवतां" ऐसें गुरुअनुज्ञात दोनो दंपती–स्त्रीभर्त्ता, विविध विलासिनीयोंके गणकरी वेष्टित, शृंगारगृहमें प्रवेश करें.। तहां पूर्वस्थापित मदनकी कुलवृद्धानुसार करी मदनपूजा करे.। पीछे तहां वधूवरको समहीकालमें क्षीरान्नभोजन कराना. तदपीछे यथायुक्तिकरके सुरतका प्रचार.। *

तदपीछे तिसही आगमनरीतिकरके उत्सवसहित अपने घरको जावे.। पीछे वरके मातापिता, वरको निरुंछनमंगलविधी स्वदेशकुलाचारकरके करे.। कंकणबंधन, कंकणमोचन, द्यूतक्रीडा, वेणीग्रंथनादि, सर्व कर्म भी, तिस २ देशकुलाचारकरके करणे चाहिये.। विवाहसें पहिलें वधूवर दोनोंके पक्षमें भोजन देना.। तदनंतर धूलिभक्त, जन्यभक्त, आदि देशकुलाचारसें करणे.। तदपीछे सात दिनके अनंतर वरवधू विसर्जन करना, तिसका विधि यह है.। सात दिनतक विविध भक्तिसें पूजित जमाइको, पूर्वोक्त रीतिसें अंचलग्रंथन करके अनेक वस्तुदानपूर्वक तिसही आडंबरसें स्वगृहको पहुंचावे.। पीछे सात रात्रपर्यंत, वा मासपर्यंत, वा छ मासपर्यंत, वा वर्षपर्यंत स्वकुलसंपत्तिदेशाचारानुसार महोत्सव करना. सात रात्रके अनंतर, वा मासअनंतर,कुलाचारानुसारकरके कन्याके पक्षमें पूर्वोक्त रीतिकरके मातृविसर्जन करना.– गणपतिमदनादिविसर्जन विधि लोकमें प्रसिद्ध है.–और वरपक्षमें कुलकर विसर्जनविधि कहते हैं.।

* इस कथनसें भी यही सिद्ध होता है कि, योवनप्राप्तोंकाही विवाह होना चाहिये. कामक्रीडाकरणात्.॥

कुलकरस्थापनानंतर, नित्य कुलकरकी पूजा करनी । विसर्जनकालमें कुलकरोंका पूजन करके, गुरु पूर्ववत् "ॐ अमुककुलकराय" इत्यादि संपूर्णमंत्र पढके "पुनरागमनाय स्वाहा" ऐसें सर्वकुलकरोंको विसर्जन करे ॥ पीछे यह पढे

"आज्ञाहीनं क्रियाहीनं मंत्रहीनं च यत्कृतं ॥
तत्सर्वं कृपया देव क्षमस्व परमेश्वर ॥ १ ॥ "

इतिकुलकरविसर्जनविधि ॥

तदपीछे मंडलीपूजा, गुरुपूजा, वासक्षेपादि पूर्ववत् । साधूओंको वस्त्र पात्र देना । ज्ञानपूजा करणी । ब्राह्मणोंको, बंदिजनोंको, अपर मांगनेवालोंको, यथासंपत्तिसें दान करणा ।

तथा देशकुलसमयांतरमें विवाहलग्नके प्राप्त हुए, वरको स्वसुरके घरको प्राप्त हुए, षट् (६) आचार करते हैं प्रथम अंगणमें आसन देना । स्वसुर कहे "विष्टर प्रतिगृहाण" तब वर कहे "ॐ प्रतिगृह्णामि" ऐसें कहके आसन ऊपर बैठे । १ । पीछे स्वसुर वरके पग प्रक्षालन करे । २ । पीछे दाहिं चंदन अक्षत दूर्वा कुश पुष्प स्वेतसरसों और जलकरके स्वसुर जमाइको अर्घ देवे । ३ । पीछे आचमन देवे । ४ । पीछे गंधअक्षतसें तिलक करे । ५ । पीछे वरको मधुपर्क प्राशन करावे । ६ । पीछे गृहके अंदर वधूवरका परस्पर दृष्टिसंयोग, और परस्पर दोनोंका नामग्रहण, शेष पूर्ववत् ॥ इत्याचार्यश्रीवर्द्धमानसूरिकृताचारदिनकरस्यगृहिधर्म्मप्रतिबद्धविवाहसंस्कारकीर्त्तननामचतुर्दशोदयस्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिकृतोबालावबोधस्समाप्तस्तत्समाप्तौचसमाप्तोयंषड्विंश स्तंभ ॥ १४ ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचिततत्वनिर्णयप्रासादग्रन्थेचतुर्दशविवाहसंस्कारवर्णनोनामषड्विंश स्तम्भ ॥ २६ ॥

॥ अथसप्तविंशस्तम्भारम्भः ॥



ॐ अर्हं



अथ व्रतारोपसंस्कारविधि लिखते हैं. । इहां जैनमतमें गर्भाधानसें लेके विवाहपर्यंत चतुर्दश १४ संस्कारोंकरके संस्कृत भी पुरुष, व्रतारोपसंस्कारविना इस जन्मसें श्लाघा श्रेयः लक्ष्मीका पात्र नही होता है. और परलोकमें आर्यदेशादिभावपवित्रित मनुष्यजन्म स्वर्गमोक्षादिका भाजन नही होता हैं. इसवास्ते व्रतारोपही, मनुष्योंको परमसंस्कार है. यत उक्तमागमे ।

" बंभणो खत्तिओ वावि वेसो सुद्दो तहेवय ॥
पयई वावि धम्मेण जुत्तो मुक्खस्स भायणं ॥ १ ॥ "

अर्थः–ब्राह्मण, वा क्षत्रिय, वा वैश्य, वा शूद्र, धर्मसें युक्त हुआ, मोक्षका भाजन होता है. ॥ १ ॥

अपिच गाथा. ॥

" बाहत्तरिकलकुसला विवेयस हिया न ते नरा कुसला ॥
सव्वकलाण य पवरं जेधम्मकलं न याणंति ॥ १ ॥ "

अर्थः––बहत्तर कलाकुशल भी, विवेकसहित भी होवे, तो भी ते नर कुशल नही हैं; जे, सर्वकलायोंमें प्रधान जो धर्मकला तिसको नही जाणते हैं. ॥ १ ॥ परमतमें भी कहा है । ' उपनीतोपि पूज्योपि कलावानपि मानवः । न परत्रेह सौख्यानि प्राप्नोति च कदाचन ॥ १ ॥ ' इसवास्ते सर्वसंस्कार प्रधानभूत व्रतसंस्कार कहते हैं. । तिसका विधि यह है.

पीछले विवाहपर्यंत संस्कार गृह्यगुरु जैन ब्राह्मणने वा क्षुल्लकने करवावने. परंतु व्रतारोपसंस्कार तो, निर्ग्रंथ यतिनेही करावना. प्रथम गुरुकी गवेषणा करणी.

यथा ॥

" पंचमहव्वयजुत्तो पंचविहायारपालणसमच्छो ॥
पंचसमिओ तिगुत्तो छत्तीसगुणो गुरु होइ ॥ १ ॥
पडिरूवो तेअस्सी जुगप्पहाणागमो महुरवक्को ॥
गंभीरो धीमंतो उवएसपरो य आयरिओ ॥ २ ॥
अपरिस्सावी सोमो संग्रहसीलो अभिग्रहमईय ॥
अविकच्छणो अचवलो पसंतहियओ गुरु होइ ॥ ३ ॥
कइयावि जिणवरिंदा पत्ता अयरामर पहं दाउ ॥
आयरिएहि पवयण धारिज्जइ संपय सयलं ॥ ४ ॥ "

अर्थ —पांच महाव्रतयुक्त, ५, पांच प्रकारके आचार पालनेमें समर्थ, ५, पांच समिति, ५, और तीन गुप्तिसहित, ३, एवं छत्तीस गुणोंवाला गुरु होता है । *प्रतिरूप, तेजस्वी, युग प्रधान, आगमका जानकार, मधुर वाक्यवाला, गंभीर, बुद्धिमान्, उपदेश देनेमें तत्पर, ऐसा आचार्य होता है । किसीका आलोचित दूषण अन्यआगे प्रकाशे नही, सोमप्रकृतिवाला होवे, शिष्यादिका संग्रह करनेवाला होवे, द्रव्यादि अभिग्रहमें जिसकी मति होवे, किसीके दूषण न बोले, चपल न होवे, प्रशांतहृदयवाला होवे, ऐसें गुणोंयुक्त गुरु होता है । कितनेही जिनवरेंद्र अजरामर पदका पथ दिखाके मोक्षको प्राप्त हुए है, पर संप्रति कालमें तो, जिनप्रवचन, आचार्योंनेही धारण करा है ॥

अब प्रकारांतरकरके गुरुके छत्तीस गुण कहते हैं । आचारविनय, श्रुतविनय, विक्षेपनाविनय, दोषका परिघात, एवं चार प्रकारके विनयकी प्रतिपत्ति करनेवाले गुरु होवे । अथवा सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र, इन

* पंचिंदियसंवरणो तह नवविहबंभचेरगुत्तिधरो । चउविहकसायमुक्को इअ अट्ठारसगुणेहिं संजुत्तो ॥ १ ॥ पांच इंद्रियको रोकनार, नवविध ब्रह्मचर्यगुप्तिके धरनार, चतुर्विध कषायसें मुक्त, एवं अठारा गुणोंकरी संयुक्त । इस पाठको गिणनेसें ३६ गुण पूर्ण होते हैं ॥ पंच महाव्रतानिआचारात्तानामपि स्वयंकरणात्पचार णतो द्विगुणेन षट्त्रिंशद्गुणो गुरुर्भवतीति तु सम्यक्त्वसप्ततौ ॥

प्रत्येकके आठ २ भेद हैं; एवं २४, और तपके द्वादश १२ भेद हैं, ऐसें आचार्यके छत्तीस गुण होते हैं.।

अथवा आचारादि आठ ८, और दश प्रकारका स्थितकल्प १० द्वादश १२ तप, और षडावश्यक ६, येह छत्तीस गुण आचार्यके हैं.। *

अथवा संविग्न होवे १, मध्यस्थ होवे २, शांत होवे ३, मृदु—कोमलस्वभाववाला होवे ४. सरल होवे ५, पंडित होवे ६, सुसंतुष्ट होवे ७, गीतार्थ होवे ८, कृतयोगी होवे ९, श्रोताके भावको जाननेवाला होवे १०, व्याख्यानादिलब्धिसंपन्न होवे ११, उपदेशदेनेमें निपुण होवे १२, आदेयवचन होवे १३, मतिमान् होवे १४, विज्ञानी होवे १५, निरुपपाति होवे १६, नैमित्तिक होवे १७. शरीरका बलिष्ठ होवे १८, उपकारी होवे १९, धारणाशक्तिवाला होवे २०, बहुत कुछ जिसने देखा होवे २१, नैगमादि नयमतमें निपुण होवे २२, प्रियवचनवाला होवे २३, अच्छे मधुर गंभीर स्वरवाला होवे २४, तप करणेमें रक्त होवे २५, सुंदर शरीरवाला होवे २६, शुभ भली प्रतिभावाला होवे २७, वादीयोंको जीतनेवाला होवे २८, परिषदादिको आनंदकारक होवे २९, शुचि—पवित्र होवे ३०, गंभीर होवे ३१, अनुवर्त्ती होवे ३२, अंगीकार करेका पालनेवाला होवे ३३, स्थिरचित्तवाला होवे ३४, धीर होवे ३५, उचितका जाननेवाला होवे ३६, येह पूर्वोक्त ३६, गुण आचार्यके सूत्रमें कहे हैं.॥

ऐसें पितापरंपरायसें माने गुरुके प्राप्त हुए, वा, तिसके अभावमें पूर्वोक्त गुणयुक्त अन्यगच्छीय गुरुके प्राप्त हुए, गृहस्थको व्रतारोपविधि योग्य है, सो विधि यह है.॥ चतुर्दश संस्कारोंकरके संस्कृत ऐसा गृहस्थी गृहस्थधर्मको अंगीकार करने योग्य होता है.।

---

* आचारसंपत् १ श्रुतसपत् २ शरीरसपत् ३ वचनसपत् ४ वाचनासपत् ५ मतिसंपत् ६ प्रयोगमतिसंपत् ७ संग्रहपरिज्ञासपत् ८ इत्याचारसपदादि अष्ट। और दशप्रकारका स्थित कल्प तथाहि आचेलक्य १ औद्देशिक २ शय्यातरपिंड ३ राजपिंड ४ कृतिकर्म ५ व्रत ६ ज्येष्ठरत्नाधिकपणा ७ प्रतिक्रमण ८ मासकल्प ९ पर्य्यूषणाकल्प १० येह दशप्रकारका स्थित कल्प जैन मतमे प्राय प्रासिद्ध हैं.॥

यत उक्तमागमे ॥

धम्मरयणस्स जुग्गो अक्खुद्दो रूवव पगईसोमो ॥
लोअप्पिउ अकूरो भीरू असढो सुदक्खिणो ॥ १ ॥
लज्जालुओ दयालू मज्झच्छो सोमदिठ्ठी गुणरागी ॥
सक्कह सपक्खजुत्तो सुदीहदसी विसेसन्नू ॥ २ ॥
वुड्ढाणुगो विणीओ कयन्नुओ परहिअच्छकारीअ ॥
तहचेव लद्धलक्खो इगवीसगुणो हवइ सड्ढो ॥ २ ॥

अर्थः—अक्षुद्र १, रूपवान् २, प्रकृतिसौम्य ३, लोकप्रिय ४, अक्रूरचित्त ५, भीरु ६, अशठ ७, सुदाक्षिण्य ८, लज्जालु ९, दयालु १० मध्यस्थ सोमदृष्टि ११, गुणरागी १२, सत्कथी १३, सुपक्षयुक्त १४, सुदीर्घदर्शी १५, विशेषज्ञ १६, वृद्धानुग १७ विनीत १८, कृतज्ञ १९, परहितार्थकारी २०, और लब्धलक्ष २१, इन इकीस गुणोंवाला श्रावक धर्मरत्नके योग्य होता है, अर्थात् इकीस गुण जिस जीवमें होवे, अथवा प्राय नवीन उपार्जन करे, तिस जीवमें उत्कृष्ट योग्यता जाननी और थोडेसें थोडे इकीस गुणोंमेंसें चाहो कोइ दश गुण जीवमें होवे, तिसको जघन्य योग्यतावाला जानना, ११-१२-१३-१४-१५-१६-१७-१८-१९-२० शेष गुणवालेको मध्यमयोग्यतावाला जानना इन इकीस गुणोंका विस्तारसहित वर्णन अज्ञानतिमिरभास्करके द्वितीय खंडके ४६ पृष्ठसें लेके ८३ पृष्ठपर्यंत हमने लिखा है, इसवास्ते इहा नही लिखते है

योगशास्त्रे श्रीहेमचंद्राचार्योक्तिर्यथा ॥

न्यायसंपन्नविभव शिष्टाचारप्रशंसक ॥
कुलशीलसमै सार्द्ध कृतोद्वाहोऽन्यगोत्रजे ॥ १ ॥
पापभीरु प्रसिद्ध च देशाचार समाचरन् ॥
अवर्णवादी न कापि राजादिषु विशेषत ॥ २ ॥
अनतिव्यक्तगुप्ते च स्थाने सुप्रातिवेश्मिके ॥

अनेकनिर्गमद्वारविवर्जितनिकेतनः ॥ ३ ॥
कृतसंगः सदाचारैर्मातापित्रोश्च पूजकः ॥
त्यजन्नुपप्लुतं स्थानमप्रवृत्तश्च गर्हिते ॥ ४ ॥
व्ययमायोचितं कुर्वन् वेषं वित्तानुसारतः ॥
अष्टविधागुणैर्युक्तः शृण्वानो धर्ममन्वहं ॥ ५ ॥
अजीर्णे भोजनत्यागी काले भोक्ता च साम्यतः ॥
अन्योन्याप्रतिबंधेन त्रिवर्गमपि साधयन् ॥ ६ ॥
यथावदतिथौ साधौ दीने च प्रतिपत्तिकृत् ॥
सदानभिनिविष्टश्च पक्षपाती गुणेषु च ॥ ७ ॥
अदेशाकालयोश्चर्यां त्यजन् जानन्बलाबलं ॥
वृत्तस्थज्ञानवृद्धानां पूजकः पोष्यपोषकः ॥ ८ ॥
दीर्घदर्शी विशेषज्ञः कृतज्ञो लोकवल्लभः ॥
सलज्जः सदयः सौम्यः परोपकृतिकर्मठः ॥ ९ ॥
अंतरंगारिषड्वर्गपरिहारपरायणः ॥
वशीकृतेंद्रियग्रामो गृहिधर्माय कल्पते ॥ १० ॥

अर्थः——न्यायसें धन उपार्जन करनेवाला, शिष्टाचारकी प्रशंसा करनेवाला, जिनका कुलशील अपने समान होवे, ऐसे अन्य गोत्रवालेके साथ विवाह किया है जिसने; पापसें डरनेवाला, प्रसिद्ध देशाचारको करनेवाला, अर्थात् देशाचारका उल्लंघन नही करनेवाला, किसी जगे भी अवर्णवाद नही बोलनेवाला, राजादिकोंमें विशेषसें अवर्णवाद वर्जनेवाला; । अतिप्रकट, वा अति गुप्त स्थानमें नही रहनेवाला, अच्छा पाडोसी होवे तिस घरमें रहनेवाला, जिस मकानके अनेक आनेजानेके रस्ते होवें तिस घरको वर्जनेवाला; । सदाचारोंसें संग करनेवाला, मातापिताकी पूजा भक्ति करनेवाला, उपद्रवसंयुक्त स्थानको त्यागनेवाला,

जगत्में जो कर्म निंदनीक होवे तिसमें प्रवृत्त नही होनेवाला, । अपनी आमदनीअनुसार खर्च करनेवाला, अपने धनके अनुसार वेष रखनेवाला, बुद्धिके आठ गुणोंकरी संयुक्त निरंतर धर्मोपदेश श्रवण करनेवाला, अजीर्णमें भोजनका त्यागी, वखतसर सात्म्यतासें भोजन करनेवाला, एक दूसरेकी हानी न करे इस रीतिसें धर्म अर्थ कामको सेवनेवाला, । यथायोग्य अतिथि साधु और दीनकी प्रतिपत्ति करनेवाला, सदा आग्रहरहित, गुणोंका पक्षपाती, । देशकालविरुद्धचर्या त्यागनेवाला, । कोइ भी कार्य करनेमें अपना बलाबल जाननेवाला, जे पांच महाव्रतमें स्थित होवे और ज्ञानवृद्ध होवे तिनकी पूजा भक्ति करनेवाला, पोषणेयोग्यका पोषण करनेवाला, । दीर्घदर्शी, विशेषज्ञ, कृतज्ञ, लोकवल्लभ, लज्जालु, दयालु, सौम्य, परोपकार करणेमें समर्थ, काम, क्रोध, लोभ, मान, मद, हर्ष, इन षट् ६ अंतरंग वैरीयोंके त्याग करनेमें तत्पर, पांच इन्द्रियोंके ग्रहको वश करनेवाला, ऐसा पुरुष गृहस्थधर्मके वास्ते कल्प ता है ॥ १० ॥

एस पुरुषको व्रतारोप करिये हैं । प्राय करके व्रतारोपमें गुरु शिष्यके वचन प्राकृत भाषामें होते हैं, क्यों कि गर्भाधानादि विवाहपर्यंत संस्कारोंमें प्राय करके गुरुकेही वचन हैं शिष्यके नहीं और गुरु प्रायः शास्त्रविद होते हैं, इसवास्ते संस्कृतही बोलते हैं । इहां व्रतारोपमें बाल, स्त्री, मूर्ख शिष्योंका क्षमाश्रवणदानपूर्वक वचनाधिकार है, तिसवास्ते तिनको संस्कृत उच्चार असामर्थ्य होनेसें प्राकृत वाक्य हैं तिसकी साहचर्यतासें तिनके प्रबोधवास्ते, गुरुके वचन भी, प्राकृतही हैं ॥

यतउक्तमागमे ॥

"॥ मुत्तूण दिठ्ठिवायं कालियउक्कालियंगसिद्धंत ॥
थीबालवायणत्थं पाइयमुइयं जिणवरेहिं ॥ १ ॥"

अर्थ —दृष्टिवादको वर्जके कालिक उत्कालिक अंगसिद्धांतको स्त्री बालकोंके वाचनार्थ जिनवरोंने प्राकृत कथन करे हैं ॥

तथाच ॥

बालस्त्रीवृद्धमूर्खाणां नृणां चारित्रकांक्षिणाम् ॥
उच्चारणाय तत्त्वज्ञैः सिद्धांतः प्राकृतः कृतः ॥ १ ॥

और दृष्टिवाद बारमा अंग, परिकर्म १ सूत्र २ पूर्वानुयोग ३, पूर्वगत ४, चूलिकारूप ५ पंचविध संस्कृतमेंही होता है, सो बालस्त्रीमूर्खको पठनीय नही है. संसारपारगामी तत्त्वउपन्यासके वेत्ता गीतार्थोंनेही पठनीय है. शेष एकादशांग कालिक उत्कालिकादिशास्त्र योगवाहि साधु साध्वी और संयमिबालकोंके पढने योग्य हैं. इसवास्तेही अरिहंत भगवंतोंनें एकादशांगादि शास्त्र प्राकृतमें करे हैं. तिसवास्ते व्रतारोपमें भी, गृहस्थ बाल स्त्री मूर्ख अवस्थाधारीयोंके, और तैसें यतियोंके भी, वचन, प्राकृतमें है. ॥

अथ मृदु, ध्रुव, चर, क्षिप्र नक्षत्रोंमें प्रथम भिक्षा, तप, नंदि, आलोचनादि कार्य करणे शुभ है. और मंगल, शनि, विना सर्व वारोंमें. । वर्ष, मास, दिन, नक्षत्र, लग्न शुद्धिके हुए, विवाहदीक्षा प्रतिष्ठावत्, शुभ लग्नमें गुरु तिसके घरमें शांतिक पौष्टिक करके, फेर देवघरमें, शुभ आश्रममें, अन्यत्र, वा, यथाकल्पित समवसरणको स्थापन करे. । तदपीछे स्नान करके स्वघरमें महोत्सवसाहित आये हुए श्रावकको पूर्वाभिमुख गुरु, अपने वामे पासें स्थापके ऐसें कहे—कैसे श्रावकको—सकक्ष श्वेत वस्त्र और श्वेत उत्तरासंग धारण किया है जिसने, तथा मुखवस्त्रिका हाथमें धारण करी है जिसने, तथा जिसकी चोटी बांधी हुई है, चंदनका मस्तकमें तिलक करा है जिसने, स्ववर्णानुसार जिनोपवीत, वा उत्तरीय, वा उत्तरासंग धारण किया है जिसने ऐसे श्रावकको—क्या कहे सो कहते हैं।

" सम्मत्तंमि उ लद्धे टइयाइं नरयतिरियदाराइं ॥
दिव्वाणि माणुसाणि अमुरखसुहाइं सहीणाइं ॥ १ ॥ "

अर्थ —सम्यक्त्वके लाभ हुए, नरकतिर्यंचगतिके द्वार ढांके है, और देवता मनुष्य मोक्षके सुख स्वाधीन है । तदपीछे गुरुकी आज्ञासें श्राद्धजन, नालिकेर अक्षत सुपारी करके पूर्ण हस्त करके परमेष्ठिमंत्र पढता हुआ समवसरणको तीन प्रदक्षिणा करे । तदपीछे गुरुके पास आयकर, गुरु श्राद्ध दोनोंही इर्यापथिकीपडिक्कमे । पीछे आसन उपर बैठे गुरुके आगे, श्राद्धजन ऐसें कहे ॥

" इच्छामि खमासमणो वंदिउ जावणिज्जाए निसीहिआए मच्छएण वंदामि ॥ भगवन् इच्छाकारेण तुब्भे अम्ह सम्मत्ताइतिगारोवणिअं नंदिकड्ढावणिय वासक्खेव करेह ॥"

तदपीछे गुरु, वासाको, सूरिमंत्रसें, वा, गणिविद्या अर्थात् वर्द्धमान विद्यासें, अभिमंत्रके, परमेष्ठि और कामधेनु दोनों मुद्राकरके, पूर्वाभिमुख खडा होके, वामे पासे रहे श्रावकके शिरमें निक्षेप करे । तिसके मस्तकके उपर हाथ रखके, गणधर विद्यासें रक्षा करे । तदपीछे गुरु आसनउपर बैठ जावे, और श्राद्ध पूर्ववत् समवसरणको प्रदक्षिणा करके, गुरु आगे क्षमाश्रमण देके कहे

" ॥ इच्छाकारेण तुब्भे अम्ह सम्मत्ताइतिगारोवणिअं चेइआइ वंदावेह ॥ "

तदपीछे गुरु और श्रावक दोनो, चार वर्द्धमानस्तुतियों करके चैत्यवंदन करें । जे छंदसें वर्द्धमान होवे, और चरम जिनकी प्रथम स्तुतिवालीयां होवे, तिनको वर्द्धमानस्तुति कहते हैं । पीछे चार स्तुतिके अंतमें "श्रीशांतिदेवताराधनार्थं करेमि काउसग्ग वंदणवत्तियाए पूअणवत्तियाए सक्कारव० स० जावअप्पाण वोसिरामि" सत्ताइस उत्स्वास प्रमाण अर्थात् 'सागरवरगंभीरा' तक चतुर्विंशतिस्तव चिंतवन करे । तदपीछे 'नमो अरिहंताणं' कहके पारे । पारके-' नमोर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्य ' यह कहके स्तुति पढे ।

यथा ॥

" श्रीमते शांतिनाथाय नमः शांतिविधायिने ॥
त्रैलोक्यस्यामराधीशमुकुटाभ्यर्चितांघ्रये ॥ १ ॥ "

अथवा ॥

" शांतिः शांतिकरः श्रीमान् शांतिं दिशतु मे गुरुः ॥
शांतिरेव सदा तेषां येषां शांतिर्गृहे गृहे ॥ १ ॥ "

पीछे

"॥ श्रुतदेवताराधनार्थं करेमि काउसग्गं अन्नत्थ उससिएणं---यावत्-अप्पाणं वोसिरामि ॥ "

कायोत्सर्गमें एक नवकार चिंतन करे. पीछे 'नमो अरिहंताणं' कहके पारे, पारके 'नमोर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः' ऐसा कहके स्तुति (थूइ) पढे।

यथा ॥

" ॥ सुअदेवया भगवई नाणावरणीयकम्मसंघायं ॥
तेसिं खवउ सययं जेसिं सुयसायरे भत्ती ॥ १ ॥"

अथवा ॥

" श्वसितसुरभिगंधालब्धभृंगी कुरंगं सुखशशिनमजस्रं
बिभ्रति या बिभर्ति ॥ विकचकमलमुच्चैः सास्त्वचिंत्यप्र-
भावासकलसुखविधात्री प्राणभाजां श्रुतांगी ॥ १ ॥ "

पुनरपि ॥

" ॥ क्षेत्रदेवताराधनार्थं करेमि काउसग्गं अन्नत्थ उससिएणं-यावत्---अप्पाणं वोसिरामि ॥ "

कायोत्सर्गमें एक नमस्कार चिंतन करे, पीछे 'नमो अरिहंताण' कहके पारे, पारके 'नमोर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्य' कहके थुई पढे।

यथा ॥

यस्या क्षेत्र समाश्रित्य साधुभि साध्यते क्रिया ॥
सा क्षेत्रदेवता नित्य भूयान्न सुखदायिनी ॥ १ ॥

पुनरपि ॥

"॥ भुवनदेवताराधनार्थं करेमि काउसग्ग अन्नच्छ उससिएण—
यावत्—अप्पाण वो।रामि ॥"

कायोत्सर्गमें एक नमस्कार चिंतन करे, पीछे 'नमोअरिहंताण' कहके पारे, पारके 'नमोर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्य' कहके स्तुति पढे।

यथा ॥

ज्ञानादिगुणयुक्ताना नित्य स्वाध्यायसयमरताना ॥
विदधातु भुवनदेवी शिव सदा सर्वसाधूनाम् ॥ १ ॥"

पुनरपि ॥

"शासनदेवताराधनार्थं करेमि काउसग्ग अन्नच्छ०" कायोत्सर्गमें एक नमस्कार चिंतन करे, पीछे 'नमोअरिहंताण' कहके पारे, पारके 'नमोर्हत्सिद्धा०' कहके स्तुति पढे

यथा ॥

"या पाति शासने जैन सद्य प्रत्यूहनाशिनी ॥
साभिप्रेतसमृद्ध्यर्थ भूयाच्छासनदेवता ॥ १ ॥"

पुनरपि ॥

"समस्तवैयावृत्यकराराधनार्थं करेमि काउसग्ग अन्नच्छ०" कायोत्सगमें एक नमस्कार चिंतन करे, पीछे 'नमो अरिहंताण' कहके पारे, पारके 'नमोर्हत्सिद्धा०' कहके स्तुति पढे

यथा ॥

" ये ये जिनवचनरता वैयावृत्त्योद्यताश्च ये नित्यम् ॥
ते सर्वे शांतिकरा भवंतु सर्वाणुयक्षाद्याः ॥ १ ॥ "

पीछे. ॥

'नमो अरिहंताणं' कहके बैठके "नमुथ्थुणं॰ जावंतिचेइयाइं॰",
और "अर्हणादिस्तोत्र" पढे.

यथा ॥

आरिहाण नमो पूअं अरहंताणं रहस्स रहिआणं ॥
पयओ परमिट्ठीणं अरुहंताणं धुअरयाणं ॥ १ ॥
निद्दड्ढअट्ठकम्मिंधणाण वरनाणदंसणधराणं ॥
मुत्ताण नमो सिद्धाणं परमपरमिट्ठिभूयाणं ॥ २ ॥
आयारधराण नमो पंचविहायारसुट्ठियाणं च ॥
नाणीणायरियाणं आयारुवएसयाण सया ॥ ३ ॥
बारसविहं अपूव्वं दिंताण सुअं नमो सुंअहराणं ॥
सययमुवज्झायाणं सज्झायज्झाणजुत्ताणं ॥ ४ ॥
सव्वेसिं साहूणं नमो तिगुत्ताण सव्वलोएवि ॥
तवनियमनाणदंसणजुत्ताणं बंभयारीणं ॥ ५ ॥
एसो परमिट्ठीणं पंचन्हवि भावओ नमुक्कारो ॥
सव्वस्स कीरमाणो पावस्स पणासणो होइ ॥ ६ ॥
भुवणेवि मंगलाणं मणुयासुरअमरखयरमहियाणं ॥
सव्वेसिमिमो पढमो होइ महामंगलं पढमं ॥ ७ ॥
चत्तारि मंगलं मे हुंतु अरहा तहेव सिद्धा य ॥
साहू य सव्वकालं धम्मो य तिलोयमंगल्लो ॥ ८ ॥

चत्तारि चेव ससुरासुरस्स लोगस्स उत्तमा हुति ॥
अरिहंत सिद्ध साहू धम्मो जिणदेसियमुयारो ॥ ९ ॥
चत्तारिवि अरिहंते सिद्धे साहू तहेव धम्मं च ॥
ससारघोररक्खसभएण सरण पवज्जामि ॥ १० ॥
अह अरहओ भगवओ महइ महा वद्धमाणसामिस्स ॥
पणयसुरेसरसेहरवियालियकुसुमच्चयकमस्स ॥ ११ ॥
जस्स वरधम्मचक्क दिणयरबिंबव्व भासुरच्छायं ॥
तेएण पज्जलंत गच्छइ पुरओ जिणदस्स ॥ १२ ॥
आयास पायाल सयल महिमंडल पयासंत ॥
मिच्छत्तमोहतिमिर हरेइ तिण्हपि लोयाण ॥ १३ ॥
सयलमिवि जियलोए चिंतियमित्तो करेइ सत्ताण ॥
रक्ख रक्खसडाइणिपिसायगहभूअजक्खाणं ॥ १४ ॥
लहइ विवाए वाए ववहारे भावओ सरतो अ ॥
जूए रणे अ रायगणे अ विजय विसुद्धप्पा ॥ १५ ॥
पच्चूसपओसेसु सययं भव्वो जणो सुहज्झाणो ॥
एअं झाएमाणो मुक्ख पइ साहगो होइ ॥ १६ ॥
वेआलरुद्दाणवनारिंदकोहडिरेवईणं च ॥
सव्वेसिं सत्ताण पुरिसो अपराजिओ होइ ॥ १७ ॥
विज्जुव्व पज्जलंती सव्वेसुवि अक्खरेसु मत्ताओ ॥
पंचनमुक्कारपए इक्किक्के उवरिमा जाव ॥ १८ ॥
ससिधवलसलिलनिम्मलआयारसह च वन्निय बिंदु ॥
जोयणसयप्पमाण जालासयसहस्सदिप्पंत ॥ १९ ॥
सोलससु अक्खरेसु इक्किक्क अक्खरं जगुज्जोअ ॥
भवसयसहस्समहणो जंमि ठिओ पच नवकारो ॥ २० ॥

जो गुणइ हु इक्कमणो भविओ भावेण पंच नवकारं ॥
सो गच्छइ सिवलोयं उज्जोअंतो दसदिसाओ ॥ २१ ॥
तवनियमसंजमरहो पंचनमोक्कारसारहिनिउत्तो ॥
नाणतुरंगमजुत्तो नेइ फुडं परमनिव्वाणं ॥ २२ ॥
सुद्धप्पा सुद्धमणा पंचसु समिईसु संजय तिगुत्तो ॥
जे तम्मि रहे लग्गा सिग्घं गच्छंति सिवलोअं ॥ २३ ॥
थंभेइ जलं जलणं चिंतियमित्तोवि पंच नवकारो ॥
अरिमारिचोरराउलघोरुवसग्गं पणासेइ ॥ २४ ॥
अट्ठेवय अट्ठसयं अट्ठसहस्सं च अट्ठकोडीओ ॥
रक्खंतु मे सरीरं देवासुरपणमिआ सिद्धा ॥ २५ ॥
नमो अरहंताणं तिलोयपुज्जो अ संथुओ भयवं ॥
अमरनररायमहिओ अणाइनिहणो सिवं दिसउ ॥ २६ ॥
निट्ठविअ अट्ठकम्मो सिवसुहभूओ निरंजणो सिद्धो ॥
अमरनररायमहिओ अणाइनिहणो सिवं दिसउ ॥ २७ ॥
सव्वे पओसमच्छरआहिअहिअया पणासमुवयंति ॥
दुगुणीकयधणुसद्धं सोउपि महाधणुसहस्सं ॥ २८ ॥
इय तिहुअणप्पमाणं सोलसपत्तं जलंतदित्तसरं ॥
अट्ठारअट्ठवलयं पंचनमुक्कारचक्कमिणं ॥ २९ ॥
सयलुज्जोइअभुवणं निद्दाविअसेससत्तुसंघायं ॥
नासिअमिच्छत्ततमं विअलियमोहं गयतमोहं ॥ ३० ॥
एयस्स य मज्झत्थो सम्मदिट्ठीवि सुद्धचारित्ती ॥
नाणी पवयणभत्तो गुरुजणसुस्सूसणापरमो ॥ ३१ ॥
जो पंच नमुक्कारं परमो पुरिसो पराइ भत्तीए ॥
परियत्तेइ पइदिणं पयओ सुद्धप्पओगप्पा ॥ ३२ ॥

अट्ठेवय अट्ठसया अट्ठसहस्सं च अट्ठलक्खं च ॥
अट्ठेवय कोडीओ सो तइयभवे लहइ सिद्धिं ॥ ३३ ॥
एसो परमो मतो परमरहस्स परपरं तत्तं ॥
नाण परम णेअं सुद्ध ज्झाण परं ज्झेय ॥ ३४ ॥
एव कवयमभेय खाइयमच्छं पराभुवणरक्खा ॥
जोईसुन्नं विंदु नाओ तारालवो मत्ता ॥ ३५ ॥
सोलसपरमक्खरबीअविंदुगप्भो जगुत्तमो जोओ ॥
सुअबारसगसायरमहच्छपुव्वच्छपरमच्छो ॥ ३६ ॥
नासेइ चोरसावयविसहरजलजलणबंधणसयाई ॥
चिंतिज्जतो रक्खसरणरायभयाइ भावेण ॥ ३७ ॥

॥ इतिअरिहणादिस्तोत्रम् ॥

इस अरिहणादि स्तोत्रको पढके " जय वीयराय जगगुरु० " इत्यादि गाथा पढे । पीछे आचार्य उपाध्याय गुरु साधुयोंको वंदना करे । यह शक्रस्तवविधि, गुरु और श्रावक दोनोंही करे । चैत्यवंदनके अनंतर श्राद्ध, क्षमाश्रमणदानपूर्वक कहे

" ॥ भगवन् सम्यक्त्वसामायिकश्रुतसामायिकदेशविरतिसाम यिकआरोवणिअ नंदिकट्ठावणिअ काउसग्गं करेमि ॥ "

गुरु कहे " करेह " तब श्रावक "सम्मत्ताइतिगारोवणिअ करेमि क. सग्ग अनच्छ० " इत्यादि कहके सत्ताइस ऊसास प्रमाणअर्थात् 'साग घरगंभीरा लग कायोत्सर्ग करे । पीछे नमो अरिहंताण कहके पारके चतु- र्विंशतिस्तव अर्थात् लोगस्स संपूर्ण पढे । पीछे मुखवस्त्रिका प्रतिलेखन पूर्वक श्रावक द्वादशावर्त्त वंदन करे, फिर क्षमाश्रमण देके कहे " भगवन् सम्मत्ताइतिग आरोवेह " गुरु कहे " आरोवेमि " पीछे श्रावक गुरुके आगे खडा होके, अंजलि करी, मुखवस्त्रिकासें मुखाच्छादन करी, तीन वार परमेष्ठिमंत्र पढे । पीछे सम्यक्त्वदंडक पढे

सयथा ॥

"॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे मिच्छत्ताओ पडिक्कमामि सम्मत्तं उवसंपज्जामि। तंजहा दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ। दव्वओणं मिच्छत्तकारणाइं पच्चक्खामि सम्मत्तकारणाइं उवसंपज्जामि नो मे कप्पइ अद्यप्पभिई अन्नउच्छिए वा अन्नउच्छिअदेवयाणि वा अन्नउच्छियपरिग्गहियाणि अरिहंतचेइआणि वंदित्तए वा नमंसित्तए वा पुव्विं अणालत्तेणं आलवित्तए वा संलवित्तए वा तेसिं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा दाउं वा अणुप्पयाउं वा। खित्तओणं इहेव वा अन्नच्छ वा। कालओणं जावज्जीवाए। भावओणं जाव गहेणं न गहिज्जामि जाव छलेणं न छालिज्जामि जाव सान्निवाएणं नाभिभाविस्सामि जाव अन्नेण वा केणइ परिणामवसेण परिणामो मे न परिवडइ ताव मे एअं सम्मदंसणं अन्नच्छ रायाभिओगेणं बलाभिओगेणं गणाभिओगेणं देवयाभिओगेणं गुरुनिग्गहेणं वित्तीकंतारएणं वोसिरामि ॥"

ऐसें तीनवार दंडक पाठ कहना ॥ अन्ये तु दंडकमिच्छमुच्चारयंति ॥ यथा ॥

"॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे मिच्छत्ताओ पडिक्कमामि सम्मत्तं उवसंपज्जामि नो मे कप्पइ अज्जप्पभिई अन्नउच्छिए वा अन्नउच्छियदेवयाणि वा अन्नउच्छियपरिग्गहियाणि चेइआणि वंदित्तए वा नमंसित्तए वा पुव्विं अणालत्तेणं आलवित्तए वा संलवित्तए वा तेसिं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा दाउं वा अणुप्पयाउं वा अन्नच्छ

रायाभिओगेण गणाभिओगेणं बलाभिओगेण देवयाभिओगे-
ण गुरुनिग्गहेण वित्तीकतारेण त चउव्विहं। तजहा। दवओ खित्तओ कालओ भावओ। दव्वओण दसणदव्वाइं अंगीकयाइं। खित्तओण उद्दलोए वा अहोलोए वा तिरिअलोए वा। काल-लओण जावज्जीवाए। भावओण जावगहेण न गहिज्जामि जाव छलेण न छलिज्जामि जाव सन्निवाएण नाभिभवि-स्सामि अन्नेण वा केणइ परिणामवसेण परिणामो मे न परिवडइ ताव मे एसा दमणपडिवत्ती ॥"

इति गुरुविशेषेण द्वितीयो दडक ॥ प्रथम दडक, वा यह दंडक दोनोंमेंसें कोइ एक दडक तीन वार उच्चारण करे ।

पीछे गाथा ॥

"इअ मिच्छाओ विरमिअ सम्मं उवगम्म भणइ गुरुपुरओ॥
अरिहतो निस्सगो मम देवो दक्खणा साहू ॥ १ ॥"

गुरु तीन वार यह गाथा पढके श्राद्धके मस्तकोपरि वासक्षेप करे पीछे गुरु, निषद्याऊपर बैठे, बैठके गध अक्षत वासांको सूरिमन्त्रसें गणिविद्यासें मन्त्रे । पीछे तिन गधाक्षत वासांको हाथमें लेके चरणोंको स्पर्श करावे । पीछे तिनको साधु, साध्वी, श्रावक, श्रा-ओंको देवे ते साधुआवि, मुट्ठीमें लेलेवे । पीछे श्राद्ध आसनोपरि गुरुके आगे क्षमाश्रमण देके कहे ॥ "भयव तुम्भे अम्ह सम्मत्ताइस माइं आरोवेह ।" गुरुकहे "आरोवेमि" फिर श्रावक क्षमाश्रमण देके कहे "सदिसह किं भणामि" गुरु कहे "वदित्तु पवेयह" फिर श्रावक क्षमा-श्रमण देके कहे "भयव तुज्झेहिं अम्ह सामाइयतिअमारोविअ" गुरु कहे "आरोवियं २ खमासमणेणं हत्थेणं सुत्तेणंअत्थेणंतदुभएणं गुरु-गुणेहिं वद्धाहि निच्छारगपारगो होहि" श्रावक कहे "इच्छामो अणुसट्ठिं" पुन: श्रावक क्षमाश्रमण देके कहे "तुम्हाण पवेइय संदिसह साहूण

पएवेमि " गुरु कहे " पवेयह " तदपीछे श्रावक परमेष्ठिमंत्र पढता हुआ, समवसरणको प्रदक्षिणा करे.। और संघ पूर्वं दीने हुए वासांको, तिसके मस्तकोपरि क्षेपण करे.। गुरु निषद्याऊपर बैठे, वहांसें लेके वासक्षेपपर्यंत क्रिया, तीन वार इसहि रीतिसें करना.। फिर श्रावक क्षमाश्रमण देके कहे " तुम्हाणं पवेइयं " फिर क्षमाश्रमण देके कहे " साहूणं पवेइयं संदिसह काउसग्गं करेमि " गुरु कहे "करेह" पीछे श्रावक–सम्मत्ताइतिगस्स थिरीकरणच्छं करेमि काउसग्गं अन्नच्छ०–सागरवरगंभीरातक कायोत्सर्ग करे. पारके संपूर्ण लोगस्स कहे.। पीछे चारथुइवर्जित शक्रस्तवसें चैत्यवंदन करे.। तदपीछे श्रावक, गुरुको तीन प्रदक्षिणा देवे. पीछे निषद्याऊपर बैठा हुआ गुरु, श्रावकको आगे बिठाके नियम देवे.॥

नियमयुक्तिर्यथा। गाथा ॥

पंचुंबरि चउ विगई अणायफलकुसुम हिम विस करे अ ॥
मट्टि अ राइभोयण घोलवडा रिंगणा चेव ॥ १ ॥
पंपुट्टय सिंघाडय वायंगण कायंबाणि य तहेव ॥
बावीसं दव्वाइं अभक्खणीआइं सड्ढाणं ॥ २ ॥

अर्थः–गुलर, प्लक्षण, काकोदुंबरि, वट और पिप्पल, येह पांच जातिफल ५. मांस, मदिरा, माखण और मधु, ये चार विकृति ४–एवं ९ अज्ञात फल १०, अज्ञात पुष्प ११, हिम (बरफ) १२, विष १३, करहे (ओले–गडे) १४, सर्वसच्चित्तमिट्टी १५, रात्रिभोजन १६, घोलवडा–काचे दूध दहीं छाछमें गेरा हुआ विदल १७, बइंगण १८, पंपोटा–खसखसका दोडा १९, सिंघाडे २०, * वायंगण २१, और कायंबाणि २२, येह बावीस द्रव्य श्रावकोंको भक्षण करने योग्य नही हैं.॥

* यद्यपि सिंघाडे अनतकाय नही है, तथापि कामवृद्धिजनक होनसें वर्जनीय है। तथा पुस्तकातरमें अन्यप्रकारसें २२ अभक्ष्य लिखे हैं। यथा ॥ पचुबरि ५, चउविगई ४, हिम १०, विस ११, करगे अ १२, सवमट्टी अ १३, राइभोयणग चिय १४, बहुवीय १५, अणत १६, सधाणा १७, घोलवडा १८, विइगण १९, अमुणियनामाणि फुल्लफलयाणि २०, तुच्छफल २१, चलियरस २२, वज्जेअ अभक्ख वावीस ॥ इनका विस्तारसहित अर्थ जैनतत्त्वादर्शके अष्टम परिच्छेदसें जाण लेना

ऐसें नियम देके यह गाथा उच्चारण करवावे ॥

" अरिहंतो मह देवो जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो ॥
जिणपणत्तं तत्तं इअ समत्तं मए गहिअं ॥ १ ॥ "

सुगमा ॥

तदनंतर अरिहंतको वर्जके अन्यदेवको नमस्कार करनेका, जिनयति महाव्रतधारी शुद्ध प्ररूपकको वर्जके अन्य यति विप्रादिकोंको भावसें अर्थात् मोक्षलाभ जानके वंदना करनेका, और जिनोक्त सप्त तत्त्वको वर्जके + तत्त्वांतरकी श्रद्धा करनेका, नियम करना

अन्य देव और अन्य लिंगि विप्रादिकोंको नमस्कार और दान, लोकव्यवहारकेवास्ते करना और अन्यमतके शास्त्रका श्रवण ऐसेंही जानना । तदपीछे गुरु सम्यक्त्वकी देशना करे ।

सा यथा ॥

मानुष्यमार्यदेशश्च जातिः सर्वाक्षपाटवम् ॥
आयुश्च प्राप्यते तत्र कथंचित्कर्मलाघवात् ॥ १ ।
प्राप्तेषु पुण्यतः श्रद्धा कथकः श्रवणेष्वपि ॥
तत्त्वनिश्चयरूपं तद्बोधिरत्नं सुदुर्लभम् ॥ २ ॥

गाथा ॥

कुसमयसुईण महणं सम्मत्तं जस्स सुट्ठिअं हियए ।
तस्स जगुज्जोयकरं नाणं चरणं च भवमहणं ॥ १ ॥

अर्थ —मनुष्यजन्म १, आर्यदेश २, उत्तमजाति ३, सर्वइंद्रि संपूर्ण ४ आयु ५, येह कथंचित् कर्मकी लाघवतासें प्राप्त होवे हैं । पुण्योदयसें पूर्वोक्त प्राप्ति हुये भी श्रद्धा १, शुद्ध प्ररूपकका जोग २, और सुणनेसें तत्त्वनिश्चयरूप बोधिरत्न सम्यक्त्व ३, येह अतिही दुर्लभ हैं ॥ कुत्सितसमयएकांतवादियोंके शास्त्र तिनकी श्रुतियोंको मथन करनेवाला सम्यक्त्व,

+ पुण्य और पापको आश्रवादिक भेदगत गिणनेमें सप्त तत्त्व, अन्यथा नव तत्त्व जाणने जिनोक्त तत्त्व जैनतत्त्वादर्शके प्रथम परिच्छेदमें ?

जिसके हृदयमें अच्छीतरें स्थित है. तिस पुरुषको जगत्के उद्योत करनेवाले, और भव-संसारको मथनेवाले, ज्ञान और चारित्र प्राप्त होते हैं. ॥

॥ श्लोकाः ॥

या देवे देवताबुद्धिर्गुरौ च गुरुतामतिः ॥
धर्मे च धर्मधीः शुद्धा सम्यक्त्वमिदमुच्यते ॥ १ ॥
अदेवे देवबुद्धिर्या गुरुधीरगुरौ च या ॥
अधर्म्मे धर्म्मबुद्धिश्च मिथ्यात्वं तद्विपर्ययात् ॥ २ ॥
सर्वज्ञो जितरागादिदोषस्त्रैलोक्यपूजितः ॥
यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हन् परमेश्वरः ॥ ३ ॥
ध्यातव्योयमुपास्योयमयं शरणमिष्यताम् ॥
अस्यैव प्रतिपत्तव्यं शासनं चेतनाऽस्ति चेत् ॥ ४ ॥
ये स्त्रीशस्त्राक्षसूत्रादिरागाद्यंककलंकिताः ॥
निग्रहानुग्रहपरास्ते देवा स्युर्न मुक्तये ॥ ५ ॥
नाट्याट्टहाससंगीताद्युपप्लवविसंस्थुलाः ॥
लंभयेयुः पदं शांतं प्रपन्नान् प्राणिनः कथं ॥ ६ ॥
महाव्रतधरा धीरा भैक्ष्यमात्रोपजीविनः ॥
सामायिकस्था धर्मोपदेशका गुरवो मताः ॥ ७ ॥
सर्वाभिलाषिणः सर्वभोजिनः सपरिग्रहाः ॥
अब्रह्मचारिणो मिथ्योपदेशा गुरवो न तु ॥ ८ ॥
परिग्रहारंभमग्नास्तारयेयुः कथं परान् ॥
स्वयं दरिद्रो न परमीश्वरी कर्त्तुमीश्वरः ॥ ९ ॥
दुर्गतिप्रपतत्प्राणिधारणाद्धर्म उच्यते ॥
संयमादिर्दशविधः सर्वज्ञोक्तो विमुक्तये ॥ १० ॥

अपौरुषेय वचनमसभवि भवेद्यदि ॥
न प्रमाणं भवेद्वाचा ह्याप्ताधीना प्रमाणता ॥ ११ ॥
मिथ्यादृष्टिभिराम्नातो हिंसाद्यै कलुषीकृत ॥
स धर्म इति वित्तोपि भवभ्रमणकारणम् ॥ १२ ॥
सरागोपि हि देवश्चेद्गुरुरब्रह्मचार्यपि ॥
कृपाहीनोपि धर्म स्यात् कष्ट नष्ट हहा जगत् ॥ १३ ॥
शमसवेगनिर्वेदानुकंपास्तिक्यलक्षणै ॥
लक्षणै पचभि सम्यक् सम्यक्त्वमुपलक्ष्यते ॥ १४ ॥
स्थैर्य प्रभावनाभक्ति कौशल जिनशासने ॥
तीर्थसेवा च पचास्य भूषणानि प्रचक्ष्यते ॥ १५ ॥
शका काक्षा विचिकित्सा मिथ्यादृष्टिप्रशसनम् ॥
तत्सस्तवश्च पचापि सम्यक्त्व दूषयत्यमी ॥ १६ ॥

अर्थ —साचे देवके जो देवपणेकी बुद्धि, साचे गुरुके विषे गुरुपणेकी बुद्धि और साचे धर्मके विषे धर्मकी बुद्धि, कैसी बुद्धि ? शुद्धा सूधी निश्चल सदेहरहित, इसको सम्यक्त्व कहिये हैं । ऐसी सम्यक्त्वकी बुद्धि थोडे वखत भी जिसको आजावेगी, सो प्राणि अर्द्धपुद्गलपरावर्तकालमेंही ससारसें निकलके मोक्षको प्राप्त होगा, यह निश्चय जाणना

यत उक्तम् ॥

अतोमुहुत्तामित्तपि फासिय जेहिं हुज्ज सम्मत्तं ॥
तेसिं अवड्ढ पुग्गलपरिअट्टो चेव ससारो ॥ १ ॥

भावार्थ —अतर्मुहूर्तमात्र भी जिनोंनें सम्यक्त्व स्पर्श किया है, तिनोंका अर्द्धपुद्गलपरावर्त्तंही उत्कृष्ट ससार जाणना, तदनतर अवश्यमेव मोक्षको प्राप्त होवे इति सम्यक्त्वस्वरूपम् ॥ १ ॥

अथ मिथ्यात्वस्वरूपमाह ॥ जिसमें देवके गुण नही हैं, ऐसे अदेवमें देवकी बुद्धि—जैसें तममें उद्योतकी बुद्धि । जिसमें गुरुके गुण नहीं हैं,

ऐसें अगुरुमें गुरुकी बुद्धि—जैसें नींबमें आम्रकी बुद्धि। अधर्म यागादिमें जीवहिंसादिक, तिसके विषे धर्मकी बुद्धि—जैसें सर्पके विषे पुष्पमालाकी बुद्धि, सो मिथ्यात्व है. सम्यक्त्वसें विपर्यय होनेसें, अर्थात् साचे देवके ऊपर अदेवपणेकी बुद्धि, जैसें कौशिक (घूअड) की सूर्यके तेजऊपर अंधकारकी बुद्धि, साचे गुरुऊपर अगुरुपणेकी बुद्धि, जैसें फूलमालाके ऊपर सर्पकी बुद्धि। और साचे धर्मके ऊपर अधर्मपणेकी बुद्धि, जैसें श्वेतशंखके ऊपर काचकामलरोगवालेकी नीलशंखकी बुद्धि। तिसको मिथ्यात्व कहिये हैं.। सो मिथ्यात्व पांच प्रकारका है. १ आभिग्रहिक, २ अनाभिग्रहिक, ३ आभिनिवेशिक, ४ सांशयिक, ५ अनाभोगिक.॥

(१) प्रथम आभिग्रहिकमिथ्यात्व, सो, जो जीव मिथ्या कुशास्त्रोंके पढनेसें कुदेव कुगुरु कुधर्मके ऊपर आस्था करके दृढ हुआ है, और ऐसा जानता है कि, जो कुछ मैने समझा है सोही सत्य है, औरोंकी समझ ठीक नही है, जिसको सच्चजूठकी परीक्षा करनेका मन भी नहीं है, और जो सच्चजूठका विचार भी नही करता है. यह मिथ्यात्व, दीक्षित शाक्यादि अन्यमतममत्वधारीयोंको होता है. वे अपने मनमें ऐसें जानते हैं कि, जो मत हमने अंगिकार किया है, वोही सत्य है; और सर्व मत झूठे हैं. ऐसें जिसके परिणाम होवे, सो आभिग्रहिक मिथ्यात्व है.

(२) दूसरा अनाभिग्रहिकमिथ्यात्व, सो सर्व मतोंको अच्छा जाणे, सर्व मतोंसें मोक्ष है, इसवास्ते किसीको बुरा न कहना, सर्व देवोंको नमस्कार करना, ऐसी जो बुद्धि, तिसको अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व कहते हैं. यह मिथ्यात्व जिनोंने कोइ दर्शन ग्रहण नहीं करा ऐसें जो गोपाल बालकादि तिनको है. क्योंकि, यह अमृत और विषको एकसरिखे जाननेवाले हैं.

(३) तीसरा आभिनिवेशिक मिथ्यात्व, सो जो पुरुष जानकरके झूठ बोले, प्रथम तो अज्ञानसें किसी शास्त्रार्थको भूल गया, पीछे जब कोइ विद्वान् कहे कि, तुम इस विषयमें भूलते हो, तब अपने मनमें

सत्य विषयको जाणता हुआ भी, झूठे पक्षका कदाग्रह, ग्रहण करे, जात्यादि अभिमानसें कहना, न माने, उलटी स्वकपोलकल्पित कुयुक्तियों बनाकरके अपने मनमाने मतको सिद्ध करे, वादमें हार जावे तो भी न माने, ऐसा जीव, अतिपापी, और बहुल ससारी होता है ऐसा मिथ्यात्व, प्राय जो जैनी, जैन मतको विपरीतकथन करता है, उसमें होता है, गोष्ठमाहिलादिवत् ॥

(४) चौथा साशयिकमिथ्यात्व, सो देव गुरु धर्म जीव काल पुद्ग लादिक पदार्थोंमें यह सत्य है कि, यह सत्य है? ऐसी बुद्धि, तिसको साशयिकमिथ्यात्व कहते हैं यथा क्या वह जीव असख्य प्रदेशी है? वा नही है? इसतरें जिनोक्त सर्व पदार्थमें शंका करनी। "सांशयिकं मिथ्यात्व तदशेषया शका सदेहो जिनोक्ततत्त्वेष्वितिवचनात् ॥"

(५) पाचमा अनाभोगिकमिथ्यात्व, सो जिन जिवोंको उपयोग नही कि धर्म अधर्म क्या वस्तु है? ऐसें जे एकेंद्रियादि विशेषचैतन्यरहित जीव तिनको अनाभोगमिथ्यात्व होता है ॥ २ ॥

अथदेवलक्षणमाह ॥ देव सो कहिये, जो सर्वज्ञ होवे, परतु जैसें लौकिक मतमें विनायकका मस्तक ईश्वरने छेदन कर दिया, पीछे पार्व तीके आग्रहसें सर्वत्र देखने लगा, पर किसी जगे भी मस्तक न देखा, तब हाथीके मस्तकको ल्यायके विनायकके मस्तकके स्थानपर चेप दिया, जिसवास्ते विनायकका (गणेशका) नाम "गजानन" प्रसिद्ध हुआ इत्यादि—यदि ईश्वर (महादेव) सर्वज्ञ होवे तो, पार्वतीका पुत्र जाणके विनायकका मस्तक कभी न छेदन करे यदि छेदे, तो जगत्में विद्य मान तिस मस्तकको क्यों न देखे? इसवास्ते ऐसें अधूरेज्ञानवालेको देव न कहिये । तथा 'जितरागादिदोष' जे ससारके मूलकारण राग द्वेष काम क्रोध लोभ मोहादिक दोष, तिन सर्वको जिसने जीते हैं, निर्मूल किये हैं, तिसको देव कहिये जिसमें रागादि दोष होवे, तिसको अस्मदादिवत् ससारी जीवही कहिये, तिसमें देवपणा न होवे । तथा

'त्रैलोक्यपूजितः' स्वर्गमर्त्यपातालके स्वामी इंद्रादिक परम भक्तिकरके जिसको वांदे, पूजे, नमस्कार करे, सेवे, सो देव कहिये. परंतु कितनेक इस लोकके अर्थीयोंके वांदनेसें, वा पूजनादिकसें देवपणा नही होवे है.। तथा 'यथास्थितार्थवादी' जो यथास्थित सत्यपदार्थका वक्ता, सो देव कहिये, परंतु जिसका कथन पूर्वापरविरोधि होवे, और विचारते हुए सत्य २ मिले नही, सो देव न कहिये. ॥ देवोर्हन् परमेश्वरः ॥ येह पूर्वोक्त चार गुण पूर्ण जिससें होवे, सो अरिहंत, वीतराग, परमेश्वर, देव, कहिये. इससें अन्य कोइ देव नही है. ॥ ३ ॥

ऐसा पूर्वोक्त साचा देव, पिछाणके आराधना, सोही कहते हैं। ध्यातव्योयमित्यादि–पूर्वे जे देवके लक्षण कहे, तिन लक्षणोंकरी संयुक्त जो देव, तिसको एकाग्र मन करी ध्यावना, जैसें श्रेणिक महाराजने श्रीमहावीरजीका ध्यान किया.। तिस ध्यानके प्रभावसें आगामी चउवीसीमें श्रेणिक महाराज, वर्ण, प्रमाण, संस्थान, अतिशयादिकगुणोंकरके श्रीमहावीरस्वामिसरिषा 'पद्मनाभ,' इस नामकरके प्रथम तीर्थंकर होगा. इसीतरें औरोनें भी तल्लीनपणे देवका ध्यान करना, तथा 'उपास्योयम्' ऐसे पूर्वोक्त देवकी सेवा करनी श्रेणिकादिवत्.।तथा इसी देवका, संसारके भयको टालनहार जाणके, शरण वांछना.। इसी देवका शासन, मत, आज्ञा, धर्म, अंगीकार करना.। 'चेतनास्ति चेत्' जो कोइ चेतना चैतन्यपणा है तो, सचेतन सजाण जीवको उपदेश दिया सार्थक होवे, परंतु अचेतन अजाणको दिया उपदेश क्या काम आवे ? इसवास्ते 'चेतनास्ति चेत्' ऐसें कहा. ॥ ४ ॥

अथादेवत्वमाह ॥ अथ देवके लक्षण कहते है.॥ ये स्त्री० जिनके पास स्त्री (कलत्र) होवे तथा खड्ग धनुष्य चक्र त्रिशूलादिक शस्त्र (हथियार) होवे, तथा अक्षसूत्र जपमाला आदि शब्दसें कमंडलुप्रमुख होवे, येह कैसें है ? रा० रागादिकके अंक–चिन्ह है, सोही दिखावे हैं. स्त्री रागका चिन्ह है,। जो पासे स्त्री होवे तो जाणना कि, इसमें राग है.। शस्त्र द्वेषका चिन्ह है, जो पासे हथियार देखीए तो. ऐसा जाणिये कि तिसने किसी

वैरीको मारना, चूरना है, अथवा किसीका भय है, जिस वास्ते शस्त्रधारण किये हैं। अक्षसूत्र असर्वज्ञपणेका चिन्ह है, जो हाथमें माला धारण करे तो जाणिये कि, इसमें सर्वज्ञपणा नही है यदि होवे तो, मणके विना गिणतीकी सख्या जाणलेवे अथवा तिससें अधिक बडा अन्य कोइ है, जिसका वो जाप करता है यदि अन्य कोई नही है तो, जपमालासें किसका जाप करता है ? । कमडलु अशुचिपणेका चिन्ह है, यदि हाथमें कमडलु पाणीका भाजन देखीए तो, ऐसा जाणिये कि, यह अशुचि है शौच करणेके वास्ते यह कमडलु धारण करता है ।

यत उक्तम् ।

स्त्रीसंग काममाचष्टे द्वेषं चायुधसग्रह ॥
व्यामोह चाक्षसूत्रादिरशौच च कमडलु ॥ १ ॥

इन पूर्वोक्त दोषोंकरके जे कलकित दूषित है, तथा निग्रहा० जिसके उपर अप्रमान होवे, तिसको निग्रह (वधनमरणादिक) करे, और जिसके ऊपर तुष्मान होवे, तिसको अनुग्रह (राज्यादिकके वर) देवें, तेदेवा० जे ऐसें रागादिकोंकरके दूषित हैं, वे देव, मुक्तिके हेतु नही होते हैं ॥ ५ ॥

ऐसे पूर्वोक्त देव अपने सेवकोंको मोक्ष नही दे सकते हैं, सोही वात फिर कहते हैं । नाट्याट्ट० जे देव नाटकके रसमें मग्न हैं, अट्टाट्टहास करते हैं, वीणा लेके सगीत गानादिक करते हैं, इत्यादि उपप्लव ससार की चेष्टा तिनोंकरके जे विसस्थुल नि.प्रतिष्ठ अस्थिर है, लभयेयु—जे आपही ऐसे हैं, वे देव, अपने प्रपन्न आश्रित सेवकोंको शांतपद, ससार चेष्टारहित मुक्ति केवलज्ञानादिकपद, कैसें प्राप्त कर सकते हैं ? जैसें एरडवृक्ष कल्पवृक्षकीतरें इच्छा नही पूर सकता है, यदि किसी मूढ पुरुषने एरडको कल्पवृक्ष मान लिया तो, क्या वो कल्पवृक्षकीतरें मनोवांछित दे सकता है ? ऐसेंही किसी मिथ्या दृष्टीनें पूर्वोक्त दूषणोंवाले कुदेवोंको देव मान लिये तो, क्या वे देव परमेश्वर मोक्षदाता हो सकते हैं ? कदापि नही हो सकते हैं ॥ ६ ॥

अथगुरुलक्षणमाह ॥ अथ गुरुके लक्षण कहते हैं ॥ महाव्र० अहिंसादि पांच महाव्रतके धारने पालनेवाले होवे, और आपदा आ पडे तव धीर साहसिक होवे, अपने व्रतोंको विराधे नही, कलंकित करे नही। बेंतालीश (४२) दूषणरहित भिक्षावृत्ति माधुकरी वृत्ति करी अपने चारित्रधर्मके तथा शरीरके निर्वाहवास्ते भोजन करे, भोजन भी ऊनोदरतासंयुक्त करे, भोजनकेवास्ते अन्न पाणी रात्रिको न राखे, धर्मसाधनके उपकरणविना और कुछ भी संग्रह न करे, तथा धन, धान्य, सुवर्ण, रूपा, मणि, मोती, प्रवालादि परिग्रह, न राखे.। सामा० रागद्वेषके परिणामरहित मध्यस्थ वृत्ति होकर सदा सामायिकमें वर्त्ते.। धर्मोप० जो धर्म जीवोंके उद्धारवास्ते सम्यग् ज्ञानदर्शनचारित्ररूप परमेश्वर अरिहंत भगवंतने स्याद्वाद अनेकांतस्वरूप निरूपण किया है, तिस धर्मका जे भव्य जीवोंकेतांइ उपदेश करे, परंतु ज्योतिषशास्त्र, अष्टप्रकारका निमित्त शास्त्र, वैद्यशास्त्र, धन उत्पन्न करनेका शास्त्र, राजसेवादि अनेकशास्त्र, जिनसें धर्मको बाधा पहुंचे तिनका उपदेश न करे; ऐसे गुरु कहियें.। काष्ठमय बेडीसमान आप भी तरें, और औरोंको भी तारें. ॥ ७ ॥

अथागुरुलक्षणमाह ॥ अथ अगुरुके लक्षण कहते हैं ॥ सर्वा० स्त्री, धन, धान्य, हिरण्य, रूपादि सर्व धातु, क्षेत्र, हाट, हवेली, चतुःपदादिक अनेक प्रकारके पशु, इन सर्वकी अभिलाषा है जिनको, वे सर्वाभिलाषिणः। सर्वभोजिनः। मधु, मांस, मांखण, मदिरा, अनंतकाय, अभक्ष्यादिक सर्व वस्तुके भोजन करनेवाले होवे, किसी भी वस्तुको वर्जें नही,। सपरिग्रहाः। जे पुत्र, कलत्र, धन, धान्य, सुवर्ण, रूपा, क्षेत्रादिककरीसहित हैं,। अब्रह्म० तथा अब्रह्मचारी हैं। मिथ्यो० मिथ्या वितथ झूठे धर्मका उपदेश करें, झूठाधर्म प्रकाशें, ज्योतिष, निमित्त, वैदक, मंत्र तंत्रादिकका उपदेश देवें, वे गुरु नही. लोहमय वेडी (नावा) समान, आप भी डूबें, और औरोंको भी डोवें. ॥ ८ ॥

पूर्वोक्त वातही कहते हैं ॥ परिग्रहा० स्त्री, घर, लक्ष्मी आदि परिग्रह, और क्षेत्र, कृषी, व्यवसायादि आरंभ इनमें जे मग्न है, आपही

भवसमुद्रमें डूबे हुए है, ता० ये, किसनरेंसें दूसरे जीवोंको ससार सागरसें तार सकते हैं? इसवातमें दृष्टात कहते है । जो पुरुष आपही दरिद्री है, सो परको ईश्वर लक्ष्मीवत करनेको समर्थ नही है, तैसेंही ये कुगुरु, आपही ससारमें डूबे हुए, पर अपने सेवकोंको कैसें तार सके? ॥ ९ ॥

धर्मलक्षणमाह ॥ सत्य धर्मका स्वरूप कहते हैं ॥ दुर्गति० नरक, तिर्यंच, कुमनुष्य, कुदेवत्वादि दुर्गतिमें गिरते हुए प्राणिकी रक्षा करे, गिरने न देवे, इसवास्ते धारण करनेसें धर्म कहिये सो, सयमादि दशप्रकार सर्वज्ञका कथन करा हुआ धर्म, पालनेवालेको मोक्षकेवास्ते होता है । सयमादि दश प्रकार येह हैं सयम जीवदया १, सत्यवचन २, अदत्तादानत्याग ३, ब्रह्मचर्य ४, परिग्रहत्याग ५, तप ६, क्षमा ७, निरहकारता ८ सरलता ९, निर्लोभता १० ॥ इससें उलटा हिंसादिमय असर्वज्ञोक्त धर्म, दुर्गतिकाही कारण है ॥ १० ॥

अधर्मस्वमाह ॥ अपोरुषेय० अपौरुषेय वचन, असभवि–सभवरहित है क्योंकि, जो वचन है, सो किसी पुरुषके बोलनेसेंही है, विना बोले नही वच् परिभाषणे इति वचनात् और अक्षरोत्पत्तिके आठ स्थान नियत है, सो भी पुरुषोंकोही होते हैं इसवास्ते वचन पुरुषके विना सभवे नही । भवेयदि–न प्रमाण । यहि होवे तो, वेदको प्रमाणता नही क्योंकि, । भवेद्वाचा ह्याप्ताधीना प्रमाणता । वचनोंकी प्रमाणता, आप्त पुरुषोंके अधीन है ॥ ११ ॥

असर्वज्ञोक्त धर्म प्रमाण नही यह कहते हैं ॥ मिथ्या० मिथ्यादृष्टि असर्वज्ञोंने अपनी बुद्धिसें कहा हुआ, पशुमेध, अश्वमेध, नरमेधादि यज्ञोंके कथनसें, और अपुत्रस्य गतिर्नास्ति इत्यादि कथनसें, जीववधादिकोंकरके जो धर्म मलीन है, सधर्म० सो धर्म है, अर्थात् यज्ञादि हिंसा धर्मही है, ऐसा अजाण लोकोंमें विशेष प्रसिद्ध है तो भी, भवभ्रमण (ससारभ्रमण) का कारण है यथार्थ धर्मके अभावसें ॥ १२ ॥

कुदेवकुगुरुकुधर्मनिंदामाह ॥ सरागोपि॰ यदि जगत्में सरागः रागद्वेषादेकरी सहित भी देव होवे, अब्रह्मचारी मैथुनाभिलाषी भी गुरु होवे, और दयाहीन भी धर्म होवे, तो, हाहा ! इति खेदे बडा भारी कष्ट है, संसारलक्षण जगत् नष्ट हुआ, दुर्गतिमें पडनेसें. क्योंकि, पूर्वोक्त देव गुरु धर्मकरके डूबनाही होवे. ।

यत उक्तम् ॥

राागी देवो दोसी देवो नामिसूमंपि देवो रत्ता मत्ता कंता सत्ता जे गुरू तेवि पुज्जा । मज्जे धम्मो मंसे धम्मो जीव हिंसाइ धम्मो हाहा कट्ठं नट्ठो लोओ अट्टमट्टं कुणंतो ॥ १ ॥ १२ ॥

ऐसें पूर्वोक्त अदेव, अगुरु, अधर्मका परित्याग करके, सत्य देव, गुरु, धर्मकी, आस्था करनी, तिसका नाम सम्यक्त्व है. अर्थात् आत्माका जो शुभ परिणाम है, सोही सम्यक्त्व है. सो सम्यक्त्व हृदयमें है, ऐसा पांच लक्षणोंकरके मालुम होता है, वे पांच लक्षण कहते हैं. ॥

शमसं॰--जिस जीवमें अनंतानुबंधि क्रोध मान माया लोभका उपशम देखिये, अर्थात् अपराध करनेवालेके ऊपर जिसको तीव्र कषाय उत्पन्न होवेही नही, यदि उत्पन्न होवे तो, तिस क्रोधादिको निष्फल कर देवे, इस शमरूप लक्षणसें जाणिये कि, इस जीवमें सम्यक्त्व है। १। संवेग--जिसके हृदयमें संवेग संसारसें वैराग्यपणा होवे, तिस जीवमें संवेगरूप लक्षणसें सम्यक्त्व जाणिये हैं. । २। संसारके सुखों ऊपर द्वेषी, वैराग्यवान्, परवशपणेसें कुटुंबादिकके दुःखसें गृहस्थपणेमें रहा हुआ मोक्षाभिलाषी, जो जीव है, तिसमें निर्वेदरूप लक्षणसें सम्यक्त्व है. । ३। जिसके हृदयमें दुःखिजीवोंको देखके अनुकंपा (दया) उत्पन्न होवे, दुःखिजीवोंके दुःखोंको दूर करनेका जिसका मन होवे, जो दुःखिजीवको देखके अपने मनमें दुःखी होवे, शक्तिअनुसार दुःखिजीवके दुःखोंको दूर करे, तिसमें अनुकंपारूप लक्षणसें सम्यक्त्व उपलब्ध होता है. । ४। जिनोक्त तत्त्वोंमें आस्ति-

भासका होना, सो आस्तिक्य । ५ । एतावता शम १, सवेग २, निर्वेद ३, अनुकपा ४, और आस्तिक्य ५, इन पाचों लक्षणोंसें हृदयगत सम्यक्त्व जाणिये हैं ॥ १४ ॥

सम्यक्त्वस्य पचभूपणान्याह ॥ अथ सम्यक्त्वके पाच भूपण कहते हैं ॥ स्थैर्यं०—स्थैर्य जिनधर्मकेविषे स्थिरता । १ । जिनधर्मकी प्रभावना । २ । जिनधर्ममें भक्ति । ३ । जिनशासनमें कुशलता । ४ । और तीर्थसेवा । ५ । येह पाच सम्यक्त्वके भूपण हैं ॥ १५ ॥

सम्यक्त्वस्य पचदूपणान्याह ॥ अथ सम्यक्त्वके पांच दूषण कहते हैं ॥ शका०—शका धर्म है, वा नहीं ? इत्यादि सदेह । १ । आकाक्षा—अन्य २ धर्मकी अभिलाषा । २ । विचिकित्सा—धर्मके फलका सदेह । ३ । मिथ्यादृष्टिकी प्रशसा । ४ । और मिथ्यादृष्टियोंका परिचय । ५ । येह पाच सम्यक्त्वों दूपित करते हैं ॥ १६ ॥

ऐसें पूर्वोक्त उपदेशकरके श्रेणिक, सप्रति, दशार्णभद्रादि सम्यक्त्वसें रक्त राजायोंके चरित्रोंके व्याख्यान करे । उस दिनमें श्रावक एकभक्त आचाम्लादि तप करे । साधुयोंको अन्न, वस्त्र, पुस्तक, वसति, यथायोग्य देना । मडलीपूजा करनी । चतुर्विधसघवात्सल्य करना । और सघपूजा करनी ॥

इतिव्रतारोपसस्कारे सम्यक्त्वसामायिकारोपणविधिः ॥
इत्याचार्यश्रीमद्विजयानदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे पचद
शव्रतारोपसस्कारातर्गतसम्यक्त्वसामायिकारोपणविधिवर्ण
नोनाम सप्तविंश स्तम्भ ॥ २७ ॥

॥ अथाष्टाविंशस्तम्भारम्भः ॥

अथ अष्टाविंश (२८) स्तभमें व्रतारोपसस्कारातर्गत देशविरतिसामायिकारोपणविधि लिखते हैं ॥ तद्यथा—सम्यक्त्व सामायिकारोपणानतर तत्कालही, तिसकी वासनानुसारें, वा मास वर्षादिके अतिक्रम हुए, देशविरतिसामायिक आरोपण करिये हैं । तहा नदि, चैत्यवदन, कायोत्सर्ग

वासक्षेप, क्षमाश्रमणआदि, पूर्ववत् जानने. परंतु सर्वत्र सम्यक्त्वसामायिकके स्थानमें देशविरतिसामायिकका नाम ग्रहण करना.। सर्वत्र तैसें करके फिर दूसरी नंदि दंडकोच्चारणसें प्रथम करनी.। व्रतोच्चारकालमें नमस्कार तीन पाठानंतर, हाथमें ग्रहण करे परिग्रह परिमाण टिप्पनक (फहरिस्त–नोंध) ऐसे श्रावकको, गुरु, देशविरतिसामायिकदंडक उच्चरावे.॥

सयथा ॥

"॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे थूलगं पाणाइवायं संकप्पओ बीइंदिआइजीवनिकायनिग्गहनियट्टिरूवं निरावराहं पच्चक्खामि जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि तस्स भंते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥"

यह पाठ तीनवार कहना ॥ १ ॥ इसीतरें सर्व व्रतोंमें तीन २ वार पाठ पढना.॥

"॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे थूलगं मुसावायं जीहाच्छेयाइनिग्गहहेऊअं कन्नागोभूमिनिक्खेवावहारकूडसक्खाइपंचविहं दक्खिन्नाइअविसए अहागहिअभंगएणं पच्चक्खामि जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं० ॥ २ ॥"

"॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे थूलगं अदिन्नादाणं खत्तखणणाइचोरकारकरं रायनिग्गहकरं सच्चित्ताचित्तवत्थुविसयं पच्चक्खामि जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं० ॥ ३ ॥"

"॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे थूलगमेहुणं उरालियवेउव्वियभेअं अहागहिअभंगएणं तत्थ दुविहं तिविहेणं दिव्वं एगविहं तिविहेणं तेरिच्छं एगविहमेगविहेणं माणुस्सं पच्चक्खामि जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं० ॥ ४ ॥"

"॥ अहण्णं भंते तुम्हाणं समीवे अपरिमिअं परिग्गहं धण-धन्नाइनवविहवत्थुविसयं पच्चक्खामि इच्छापरिमाणं अहागहिअभंगएण उवसंपज्जामि जावज्जीवाए दुविहं तिविहेण० ॥ ५ ॥"

"॥ अहण्ण भंते तुम्हाणं समीवे पढमं गुणव्वय दिसिपरिमाणरूव पडिवज्जामि जावज्जीवाए दुविहं तिविहेण० ॥ ६ ॥"

"॥अहण भंते तुम्हाण समीवे उवभोगपरिभोगवयं भोयणओ अणंतकायबहुबीयराईभोयणाइबावीसवत्थुरूवंकम्मणापन्नरसकम्मादाणइंगालकम्माइबहुसावज्जंखरकम्माइरायनिओग च परिहरामि परिमिअ भोगउवभोग उवसपज्जामि जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं० ॥ ७ ॥"

"॥ अहण भंते तुम्हाण समीवे अणत्थदण्डगुणव्वय अट्टरुद्दज्झाणपावोवएसहिंसोवयारदाणपमायकरणरूवं चउव्विहं जहासत्तीए पडिवज्जामि दुविह तिविहेणं० ॥ ८ ॥"

"॥ अहण्णं भंते तुम्हाणं समीवे सामाइय जहासत्तीए पडिवज्जामि जावज्जीवाए दुविह तिविहेण० ॥ ९ ॥"

"॥ अहण भंते तुम्हाण समीवे देसावगासिअ जहासत्तीए पडिवज्जामि जावज्जीवाए दुविह तिविहेण० ॥ १० ॥"

"॥ अहण भंते तुम्हाण समीवे पोसहोववास जहासत्तीए पडिवज्जामि जावज्जीवाए दुविह तिविहेण० ॥ ११ ॥"

"॥ अहण भंते तुम्हाण समीवे अतिहिसंविभाग जहासत्तीए पडिवज्जामि जावज्जीवाए दुविह तिविहेण० ॥ १२ ॥"

" ॥ इच्चेयं सम्मत्तमूलं पंचाणुव्वइयं तिगुणव्वइयं चउ-
सिक्खावइयं दुवालसविहं सावगधम्मं उवसंपज्जित्ताणं
विहरामि ॥ इति ॥ "

दंडकोच्चारणानंतर कायोत्सर्ग, वंदनक, क्षमाश्रमण, प्रदक्षिणा, वास-
क्षेपादिक पूर्ववत्.

परिग्रहप्रमाणटिप्पनकयुक्तिर्यथा ॥

पणमिअ अमुगजिणंदं अमुगा सड्ढी य अमुग सड्ढो वा॥
गिहिधम्मं पडिवज्जइ अमुगस्स गुरुस्स पासंमि ॥ १ ॥
अरहंतं मुत्तूणं न करेमि अ अन्नदेवयपणामं ॥
मुत्तूणं जिणसाहू न चेव पणमामि धम्मत्थं ॥ २ ॥
जिणवयणभाविआइं तत्ताइं सच्चमेव जाणामि ॥
मिच्छत्तसत्थसवणे पढणे लिहणे अ मे नियमो ॥ ३ ॥
परतित्थिआण पणमण उब्भावण थुणण भत्तिरागं च ॥
सक्कारं सम्माणं दाणं विणयं च वज्जेमि ॥ ४ ॥
धम्मत्थमन्नतित्थे न करे तवदाणन्हाणहोमाई ॥
तेसिं च उचियकम्मे करणिज्जे होउ मे जयणा ॥ ५ ॥
तिअपंचसत्तवेलं चियवंदणयं जहाणुसत्तीए ॥
इगदुन्निअवाराओ सुसाहूनमणं च संवासो॥ ६ ॥
इगदुन्नितिन्निवेलं जिणपूआ निच्च पव्वन्हवणं च ॥
जयणा य कुलायारे पाणवहं सव्वजीवाणं ॥ ७ ॥
न करेमि अकज्जेणं कज्जे एगिंदिआण मह जयणा ॥
कन्नाईविसयअलियं वज्जेमि अ पंच नियमेणं ॥ ८ ॥
वज्जेमि धणं चोरंकारकरं रायनिग्गहकरं च ॥
दुविहतिविहेण दिव्वं एगविहं तिविहतेरिच्छं ॥ ९ ॥

नियमुत्ति अणुभवेणं वंभवय नियमणामि धारेमि ॥
माणुस्से जाजीव काएण मेहुण वज्जे ॥ १० ॥
परनारिं परपुरिस वज्जेमि अ अन्नओ अ जयणा मे ॥
अह य परिग्गहमखा परिग्गहे नवविहे एसा ॥ ११ ॥
इत्तिअमित्ता टका इत्तिअमित्ताइ अहव दम्मा वा ॥
तेसिं च वत्थुगहणे इत्तिअमित्ताइ सखा वा ॥ १२ ॥
इत्तियमित्ताण टकयाण गणिमस्स वत्थुणो गहणं ॥
तुलिमस्स इत्तिआण य मेअस्स य इत्तिआण च ॥ १३॥
हत्थंगुलमेयाण इत्तिअमित्ताण मज्झ सगहण ॥
तहदिठ्ठिमुल्लयाण इत्तिअमित्ताण टकाण ॥ १४ ॥
इत्तिअखारी अन्नाण इत्तिअ मह परिग्गहे भूमी ॥
पुरगामहट्टगेहा खित्ता मह इत्तिअपमाणा ॥ १५ ॥
इत्तिअमित्त कणयं इत्तिअमित्तं तहेव रूप्प च ॥
कस तव लोह तउ सीस इत्तिय च घरे ॥ १६ ॥
इत्तिअमित्ता दासा दासीओ इत्तिआओ मह सखा ॥
सखा सेवयचेडाण इत्तिआण च मह होउ ॥ १७ ॥
इत्तिअमित्ता करिणो इत्तिअ तुरया य इत्तिआ वसहा ॥
इत्तिअ करहा य सगडा गोमहिसीओ इअपमाणा ॥ १८ ॥
इत्तिअमित्ता मेसा इत्तिअ छगलाओ इत्तिआ य हला ॥
अमुगस्स य अमुगस्स य कम्मस्स उ होइ मे नियमो ॥ १९ ॥
दससुवि दिसासु इत्तिअजोअणगमण च जावजीव मे ॥
अप्पस्स वसेण चिअ जयणा पुण तित्थजत्तासु ॥ २० ॥
कम्मे भोगुनभोगे खरकम्म कम्मदाणपनरसग ॥
दुप्पोलाहार चिअ अण्णायपुप्फ फल वज्जे ॥ २१ ॥

पंचुंबरि चउ विगई हिम विस करगे अ सव्वमट्टी अ ॥
राईभोयणगं चिय बहुबीअ अणंत संधाणा ॥ २२ ॥
घोलवडा वायंगण अमुणिअनामाइं पुप्फफलयाइं ॥
तुच्छफलं चलिअरसं वज्जे वज्जाणि बावीसं ॥ २३ ॥
एआइं मुत्तूणं अन्नाण फलाण पुप्फपत्ताणं ॥
एआइं एआइं पाणंतेवि हु न भक्खेमि ॥ २४ ॥
इत्तिअमित्तअणंते फासुअरईएण होउ मे जयणा ॥
इत्तिअफले अपक्के अखंडिएवि हु न भक्खेमि ॥ २५ ॥
आजम्मं सच्चित्ता इत्तिअमित्ता य भक्खणिज्जा मे ॥
इत्तिअमित्ता दव्वा वंजणघिअदुद्धदहिपभिई ॥ २६ ॥
इत्तिअमित्ता विगई इत्तिअमित्ता य मे पइत्ताणा ॥
इत्तिअमित्ता गयतुरयरहवरा हुंतु जयणा मे ॥ २७ ॥
इत्तिअमित्ता पूगा इत्तिअमित्ता लवंग पत्ता य ॥
एला जाइफलाइ अ मह निच्चं इत्तिअपमाणा ॥ २८ ॥
चउविहवत्थाणंपि अ इत्तिअमत्ताण मज्झ परिहाणं ॥
इअजाई इअसंखा पुप्फाणं अंगभोगे मे ॥ २९ ॥
आसंदी सीहासण पीढय पट्टा य चउक्किआओ अ ॥
इत्तिअमित्ता पल्लंक तूलिया खट्टमाईओ ॥ ३० ॥
कप्पूरागरुकच्छूरिआओ सिरिहंडकुंकुमाई अ ॥
इत्तिअमित्ता मह अंगलेवणे पूयणे जयणा ॥ ३१ ॥
इत्तिअमित्ता नारीओ मज्झ संभोगमित्तिअं कालं ॥
इत्तिअघडेहि पूएहि फासुएहिं च मे न्हाणं ॥ ३२ ॥
इत्तिअवारा इत्तिअतिल्लेहिं इत्तिअप्पयारेहिं ॥
इत्तिअमित्तं भत्तं इत्तिअवाराइं भुंजामि ॥ ३३ ॥

इअ जावज्जीवं चिय सचित्ताईण भोगपरिभोगा ॥
एएसिं पुण सख दिवसे दिवसे करिस्सामि ॥ ३४ ॥
इत्तिअमित्त मणिकणयरूप्पमुत्ताइभूसण अंगे ॥
इत्तिअमित्त गीअ नट्ट वज्ज च उवभुज्ज ॥ ३५ ॥
वज्जेमि अट्टरुद्द झाण अरिघायवयरमाईय ॥
दक्खिन्नाविसए पुण सावज्जुवएसदाण च ॥ ३६ ॥
तह दक्खिणाविसए हिंसगगेिहोवगरणाइदाण च ॥
तह कामसत्थपढण जूय मज्ज परिहरेमि ॥ ३७ ॥
हिंडोलायविणोअ भत्तित्थीदेसरायथुइनिंद ॥
पसुपक्खिजोहण चिय अकालनिद्द सयलरयणी ॥ ३८ ॥
इच्चाइपमायाइ अणत्थदडे गुणव्वए वज्जे ॥
वरिसे इत्तिअसामाइआइ तह पोसहाइ इत्ताइ ॥ ३९ ॥
इत्ताइ जोअणाइ मह दिवसे दसदिसासु गमणं च ॥
साहूण सविभाग भोयणवत्थाइसु करेमि ॥ ४० ॥
पढम जईण दाउण अप्पणा पणमिऊण पारेमि ॥
असईइ सुविहिआण भुजेमि अ कयदिसालोओ ॥ ४१ ॥
इअ नारसविहमिमिणा विहिणा पालेमि सावग धम्म ॥
अगलिअजलस्सपाण न्हाण मरणेवि वज्जेमि ॥ ४२ ॥
कटप्पदप्पनिट्ठीवणाइ सुअण चउव्विहाहार ॥
सजिणजिणमडयते विग्गह कलह च मुचामि ॥ ४३ ॥
अमुगंमि महागच्छे अमुगस्स गुरुस्स सूरिसताणे ॥
अमुगस्स सीसपासे पायते अमुगसूरिस्स ॥ ४४ ॥
अमुगम्मि गच्छे अमुगमासि अमुगम्मि पक्खसमयंमि ॥
अमुगतिथि अमुगवारे अमुगे रिक्खे अ अमुगपुरे ॥४५॥

अमुगस्स सुओ अमुगो सड्ढो गिण्हेइ इत्थ गिहिधम्मं ॥
अमुगस्स अमुगकंता अमुगा वा साविआ चेव ॥ ४६ ॥
जुज्झंमि गोगहम्मि अ चेइअगुरुसाहुसंघउवसग्गे ॥
तह दुट्ठनिग्गहे चिअ जीवविघाए न मह दोसो ॥ ४७ ॥
जणदेसरक्खणत्थं हणणे मह सीहवग्घसत्तूणं ॥
नहु दोसो जलपिअणे गलणं अन्नत्थ जहसत्ती ॥ ४८ ॥
इत्थेव पमाएणं घुरुवयणेणं इमं तवं कुव्वे ॥
अप्पबहुभंगएणं तेणं जायइ मह विसोही ॥ ४९ ॥

भाषार्थः—अमुक जिनेंद्रको नमस्कार करके, अमुक श्राविका, वा अमुक श्रावक अमुक गुरुके पासे, गृहस्थधर्मको अंगीकार करता है. ॥ १ ॥

श्री अरिहंतको वर्जके अन्य देवको नमस्कार न करुं, जिनमतके सुसाधुको छोडके अन्य लिंगिको धर्मार्थे नमस्कार न करुं. । २ । जिन वचन स्याद्वादयुक्त जो सप्त वा नव तत्त्व तिनको सत्य करी जानता हुं, मिथ्याशास्त्रोंके श्रवण पठन लिखनेका मुझको नियम होवे. । ३ । परतीर्थियांको प्रणाम, उद्भावन, स्तवन, भक्ति, राग, सत्कार, सन्मान, दान, विनय, वर्जुं—न करुं. । ४ । धर्मकेवास्ते अन्य तीर्थमें तप, दान, स्नान, होमादिक नही करुं. तिनके उचित करने योग्य कर्ममें जयणा मुझको होवे. । ५ । तीन, वा पांच, वा सातवार यथाशक्तिसें चैत्यवंदन करुं; एक, वा दो वा तीन वार, प्रतिदिन सुसाधुको नमस्कार करुं, और तिसकी सेवा करुं. । ६ । एक, वा दो, वा तीनवार प्रतिदिन जिनपूजा करुं; और पर्वदिनमें स्नात्रादि अधिक अधिकतर पूजा करुं. इतिसम्यक्त्वम् ।

कुलाचार विवाहादि कृत्यमें जीववध होते जयणा करुं । ७ । विना प्रयोजन एकेंद्रियका भी वध न करुं, प्रयोजनके हुए जयणा करुं. । इतिप्रथमव्रतम् ।

कन्या आदि पांच प्रकारका मृषावाद, नियमकरके वर्जता हुं । इति-द्वितीयव्रतम् ।

जिससें चोर नाम पडे, और राजदंड होवे, ऐसा धन वर्जुं, अर्थात् चोरी वर्जुं । इतितृतीयव्रतम् ।

दो करण तीन योगसें देवतासबंधि, एकविध त्रिविधें करी तिर्यंच संबंधि मैथुनका नियम करता हु ।९। अनुभव करके स्तंभसमान ब्रह्म व्रतको अपने मनमें धारण करु, और जावजीव मनुष्यसबंधि मैथुन कायाकरके वर्जुं ।१०। परनारीको, और परपुरुषको (स्त्री व्रतग्राहिता आश्रित) वर्जुं इनके उपरांत अन्यकी मुझको जयणा । इतिचतुर्थव्रतम् ।

अथ च नव प्रकारके परिग्रहमें परिग्रहकी संख्याका प्रमाण यह है ।११। इतने मात्र रूप्यक, इतने द्रम्म, तिनसें वस्तुका ग्रहण करना, इतने मात्र गिणतिमें ।१२। इतने गिणतिमें रूप्यक, यह गणिमवस्तुका ग्रहण है ॥ तोलमें इतनी वस्तु और मापसें इतनी वस्तु ।१३। हाथ अंगुलसें मेय वस्तुका इतने प्रमाण मात्रसें मुझको संग्रह करना कल्पे, तथा दृष्टिसें देखके जिनका मोल करा जावे ऐसे पदार्थ इतने रूपइयाक मालके रखने ।१४। इतनी खारीयां अन्नकी एक वर्षमें रखनी, इतनी मुझको परिग्रहमें भूमि रखनी कल्पे, इतने पुर, इतने गाम, इतनी हट्टा, इतने घर, और इतने प्रमाण क्षेत्र, मुझको कल्पे ।१५। इतने सेर, वा इतने तोले प्रमाण सोना, इतने मात्र रूपा, इतना कांसा, इतना ताम्र (तांबा), इतना लोहा, इतना तरुया, इतना सीसा, अपने घरमें रखना ।१६। इतने दास, इतनी दासी, इतने सेवक—नोकर और इतने दासचेटकोंकी संख्या मुझको रखनी कल्पे ।१७। इतने हाथी, इतने घोडे, इतने बलद, इतने ऊंट, इतने गाडे, इतनी गौयां, इतनी महिषीया (भैंसा)।१८। इतनी बकरीया, इतनी मेडें, और इतने हल रखने मुझको कल्पे और अमुक अमुक कर्मका मुझको नियम होवे ।१९। इति पंचमव्रतम् ।

दसोंही दिशायोंमें अपने वशसें इतने योजन प्रमाण जावजीव गमन करना, और तीर्थयात्रामें जानेकी जयणा ।२०। इतिषष्ठव्रतम् ।

कर्ममें भोगोपभोगमें, खरकर्ममें, पंदरा कर्मादानमें, दुष्पोल आहार अज्ञात फूल फल इनको वर्जुं.। २१। पांच ऊंबर ५, चार महाविगइ ४, हिम १०, विष ११, करक १२, सर्व जातकी मट्टी १३, रात्रिभोजन १४, बहुबीजा १५, अनंतकाय १६, संधान (आचार) १७.। २२। घोलवडां (विदल) १८, वृंताक १९, अज्ञात फल फूल २०, तुच्छ फल २१, और चलितरस २२, येह बावीस वस्तुयोंको वर्जु.। २३। इनको वर्जके अन्य फल फूल पत्रमेसें अमुक अमुक प्राणांतमें भी, भक्षण न करुं. २४। इतने मात्र प्रासुक अनंतकी मुझको जयणा होवे, इतने अपक्क फल और अखंडित भी भक्षण न करुं.। २५। आ जन्मतांइ इतनी सच्चित्त वस्तुयों मेरेको भक्षण करने योग्य है, इतने पुष्टिकारक द्रव्य, और इतने व्यंजन शाकादि मुझको कल्पे; तथा घृत, दुग्ध, दहि प्रभृति-। २६। इतनी विगइयां मुझको कल्पे. इतने पियादे, इतने गज, इतने तुरग और इतने प्रधान रथोंकी मुझको जयणा होवे.। २७। इतने पूगफल (सुपारी), इतने लवंग, इतने पत्र, इतने एलाफल (इलायची) जायफल आदि मेरेको नित्य इतने प्रमाण कल्पे.। २८। सौत्र, कौशेय, औणर्ण, तार्ण्ण, इन चार प्रकारके वस्त्रोंमें भी इतने वस्त्र पहिरने मुझको कल्पे; और इतनी जातिके फूल मेरे अंगके भोगवास्ते कल्पे.। २९। आसंदी, सिंहासण, पीढ़ी, पट्टे, चौकीयां, पल्लंक, तुलिका (तूलाई) और खाट आदि, येह सर्व इतने प्रमाण मुझको कल्पे.। ३०। कर्पूर, अगर, कस्तूरी, श्रीखंड, कुंकुमादि इतने मात्र मेरे अंगके लेपवास्ते कल्पे; और पूजामें जयणा.। ३१। इतनी नारीयां मेरे संभोगमें इतने कालमात्र, इतने घडे, छाणे हुए जलके और प्रासुक जलके मेरेको स्नानवास्ते कल्पे.। ३२। इतनी वार दिनमें इतनी जातिके तेल अभ्यंग (मर्दन) वास्ते, इतने प्रकारके भात रोटी आदिक भोजन, और दिनमें इतनी वार भोजन करना.। ३३। यह सच्चित्तादिका भोग परिभोग जावजीवतांइ है, इनका भी फेर प्रमाण दिनदिनमें करुं. *। ३४। इतने मात्र मणि, कनक, रूपा, मोती भूषण,

* दिन २ में जो प्रमाण करना है, सो दशम देसावकाशिकव्रतांतर्गत जाणना. ॥

अगऊपर धारण करु इतने मात्र गीत, नृत्य, वाजत्र, मुझको उपभोग वास्ते कल्पे । ३५ ॥ इतिसप्तमव्रतम् ॥

वैरिका घात वैर लेना इत्यादिक आर्त्त रौद्र ध्यान अदाक्षिण्यताविषे पापोपदेशका देना, इनको वर्जु । ३६ । अदाक्षिण्यताविषे हिंसाकारी गृहोपकरणादि देना तथा कामशास्त्रका पढना, जूया खेलना, मद्य पीना, इनको परिहरु । ३७ । हिंडोलेका विनोद, भक्त (भोजन), स्त्री, देश, और राजा, इनकी स्तुति, वा निंदा, पशु पक्षीका युद्ध, अकालमें नींद लेनी, सपूर्ण रात्रिमें सोना, । ३८ । इत्यादि प्रमादस्थानक, अनर्थादडना मक गुण व्रत में वर्जु । इत्यष्टमव्रतम् ॥

एक वर्षमें इतने सामायिक करु । इतिनवमव्रतम् ॥

इतने योजन मेरेको दिन, वा रात्रिमें दशोदिशायोंमें जाना कल्पे । इतिदशमव्रतम् ।

एक वर्षमें इतने पौषध करु । इत्येकादशव्रतम् ॥

साधुयोंको सविभाग भोजन वस्त्र आदिकसें करु । ४० । प्रथम यतिका देके और नमस्कार करके पीछे आप पारणा करु, जेकर सुविहित साधुयाका योग न होवे तो, दिशावलोकन करके भोजन करु । ४१। इतिद्वादशव्रतम् ॥

यह द्वादश व्रतरूप श्रावकधर्म, पूर्वोक्त विधिसें पालु, विना छाण्या जलका पान और स्नान, मरणातमें भी न करु । ४२ । कदर्प, दर्प, थूकना, सोना, चार प्रकारका आहार करना, विकथा, कलह, इत्यादि जिनमडपमें वर्जु । ४३ ।

अमुक महागच्छमें, अमुक गुरु सूरिके सतानमें,अमुकके शिष्यके पास, अमुक सूरिके पादातमें । ४४ ।अमुक सवत्सरमें, अमुक मासमें, अमुक पक्षमें, अमुक तिथिमें, अमुक वारमें, अमुक नक्षत्रमें, अमुक नगरमें। ४५ । अमुकका पुत्र, अमुक नामका श्रावक, यहा गृहस्थधर्म ग्रहण करता है अमुककी पुत्री, अमुककी भार्या, अमुक नामकी श्राविका, या व्रत ग्रहण करती है । ४६ ।

नवरं क्षत्रियकेवास्ते प्राणातिपात स्थानमें प्रथम व्रतमें ४७ । ४८ । यह दो गाथा, अधिक जाननी.। युद्धमें, कोइ गौयांको चुरा ले जाता होवे तिसके हटानेमें, चैत्य, गुरु, साधु, संघको उपसर्ग हुए. उपसर्ग देनेवालेको हटानेमें तथा दुष्टके निग्रहमें, जीवके बध हुए मुझको दोष नही ।४९। जनोंके, और देशके रक्षणवास्ते सिंह, वाघ, शत्रुयोंके हननेमें मुझको दोष नही; अर्थात् इन कामोंके करनेसें मेरा व्रत भंग न होवे.। जल पीनेमें छाणना, अन्यत्र स्नानादिमें यथाशक्ति.। ४८। इनमें प्रमादके होनेसें, गुरुके वचनसें यह तप करुं; अल्प वहुत भांगेसें, तिससें मेरी विशुद्धि होवे. । ४९ ॥ इति परिग्रहप्रमाणटिप्पनकाविधिः ॥

इन बारांही व्रतोंमेंसें कोइ कितनेही व्रत अंगीकार करे, तिसको तितनेही उच्चार करावने.। जिसको छ मासिक सामायिक व्रत आरोपीये हैं, तिसका यह विधि है. ॥ चैत्यवंदना, नंदि, क्षमाश्रमणादि सर्व, पूर्ववत् सामायिकके अभिलाप करके; । और विशेष यह है; । कायोत्सर्गके अनंतर तिसके हस्तगत नूतन मुखवस्त्रिकाके ऊपर वासक्षेप करना.। तिसही मुखवस्त्रिकाकरके षट् (६) मासपर्यंत उभयकाल सामायिक ग्रहण करे. । पीछे तीनवार नमस्कारका पाठ करके दंडक पढावे.

सयथा ॥

"॥ करेमि भंते सामाइयं सावज्जं जोग पच्चक्खामि जावनियमं पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि तस्स भंते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि । से सामाइए चउव्विहे तंजहा दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ दव्वओणं सामाइअं पडुच्च खित्तओणं इहेव वा अन्नत्थ वा कालओणं जाव च्छम्मासं भावओणं जाव गहेणं न गहिज्जामि जाव छलेणं न छलिज्जामि जाव सन्नि वाएणं नाभिभविज्जामि ताव मे एसासामाइयपडिवत्ती ॥ "

ऐसें तीनवार पढावना । मस्तकोपरि वासक्षेप करना, अक्षतवासोंका अभिमत्रणा, और संघके हाथमें वासक्षेप देना, यहां नहीं है परंतु प्रदक्षिणा तीन, करवावनी । इतिषाणमासिक सम्यक्त्वारोपणाविधि ॥

इसीतरें सम्यक्त्वका, और द्वादश व्रतोंका भी इसही दंडकसें तिस २ अभिलापसें मास, षट् (६) मास, वा वर्ष पर्यंत, सम्यक्त्व व्रतोंका उच्चारण करना । नवर सम्यक्त्वका सम्यक्त्वदंडसें उच्चार करना नवर इतना विशेष है कि, सम्यक्त्वकी अवधिमें 'जावज्जीवाए' यह पाठ न कहना किंतु, 'मास छम्मास वरिस' इत्यादि कहना शेष व्रतोंमें भी जावज्जीवाएके स्थानमें 'मास छम्मास वरिस' इत्यादि कहना ॥

अथ प्रतिमोद्वहनविधि ॥ यावज्जीवताइ नियम स्थिरीकरण प्रतिज्ञा जो है, तिसको प्रतिमा कहते हैं तिनमें कालादिमें नियमव्यवच्छेद नहीं है । ते प्रतिमा एकादश (११) गृहस्थोंकी हैं ।

तद्यथा ॥

"॥ दंसण १, वय २, सामाइय ३, पोसह ४, पडिमाय ५,
बंभ ६, अचित्ते ७,॥ आरंभ ८, पेस ९, उद्दिठवज्जए १०,
समणभूए य ११, ॥१॥"

अर्थ —तहां जिस प्रतिमामें मासताइ श्रावक निःशंकितादि सम्यग्दर्शनवाला होवे, सा प्रथमदर्शनप्रतिमा १ व्रतधारी द्वितीया २ कृतसामायिक तृतीया ३ अष्टमी चतुर्दश्यादिमें चतुर्विध पोषध करना, चतुर्थी ४ पोषधकालमें, रात्रिकी आदि प्रतिमा, अंगीकार करनी, अस्नान, प्रासुकभोजी, दिनमें ब्रह्मचारी, रात्रिमें परिमाण करे, और कृतपोषध तो, रात्रिमें भी ब्रह्मचारी, इति पंचमी ५ सदा ब्रह्मचारी षष्ठी ६ सचित्ताहारवर्जक सप्तमी ७ आप आरंभ नहीं करना अष्टमी ८ नोकरासें आरंभ नहीं करावना नवमी ९ उद्दिष्टआहारवर्जक, क्षुरमुंडित, शिखासहित, वा निराधारीगुप्तधनका, पुत्रादिकोंका बतलानेवाला, इतिदशमी १०

क्षुरमुंडित, लुंचितकेश, वा रजोहरणपात्रधारी, साधुसमान, निर्ममत्व, अपनी जातिमें आहारादिकेवास्ते विचरे, इत्येकादशी. ॥ ११ ॥

यहां पहिली एक मास, दूसरी दो मास, तीसरी तीन मास, एवं यावत् इग्यारहमी इग्यारह मास पर्यंत. तथा जो अनुष्ठान पूर्व प्रतिमामें कहा है, सोही अनुष्ठान, आगेकी सर्व प्रतिमायोंमें जानना. इनमें वितथ प्ररूपणा श्रद्धानादि करना, सो अतिचार है. । तिनमें पहिली 'दर्शन प्रतिमा' तिसमें नंदि, चैत्यवंदन, क्षमाश्रमण, वासक्षेप, इनोंका विधि दर्शनप्रतिमाके अभिलापसें सोही पूर्वोक्त जानना.

और दंडक ऐसें हैं।

"॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे मिच्छत्तं दव्वभावभिन्नंपच्चक्खामि दंसणपडिमं उवसंपज्जामि नो मे कप्पइ अज्जप्पभिई अन्नउत्थिए वा अन्नउत्थिअदेवयाणि वा अन्नउत्थिअपरिग्गहिआणि वा अरिहंतचेइआणि वा वंदित्तए वा नमंसित्तए वा पुव्विंअणालत्तेणं आलवित्तए वा संलवित्तए वा तेसिं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा दाउं वा अणुप्पयाउं वा तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि तहा अईअं निंदामि पडुप्पन्नं संवरेमि अणागयं पच्चक्खामि अरिहंतसक्खिअं सिद्धसक्खिअं साहुसक्खिअं अप्पसक्खिअं वोसिरामि तहा दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ दव्वओणं एसा दंसणपडिमा खित्तओणं इहेव वा अन्नत्थ वा कालओणं जाव मासं भावओणं जाव गहेणं न गहिज्जामि जाव छलेणं न छलिज्जामि जाव सन्निवाएणं नाभिभविज्जामि ताव मे एसा दंसणपडिमा ॥ "

शेषं पूर्ववत्। प्रदक्षिणात्रयादिक, दर्शनप्रतिमास्थिरीकरणार्थ कायोत्सर्गादि. यहां अभिग्रह मासतक यथाशक्ति आचाम्लादि प्रत्याख्यान

करना तीनों सध्यामें विधिसें देवपूजन करणा पार्श्वस्थाविवंदनका हार करना शकादि पाच अतिचारोंका त्याग करना राजाभियोगादि (६) कारणोंसें भी यह दर्शनप्रतिमा नही त्यागनी ॥ इतिदर्शनप्रतिमा

अथ दूसरी व्रतप्रतिमा, सा, मास दोतक यावत् निरतिचार पांच अणुव्रत पालनविषया, गुणव्रत ३, शिक्षाव्रत ४, इनका पालना भी सा जानना अर्थात् दो मासपर्यंत निरतिचार द्वादश (१२) व्रतोंका पाल यहा नंदिक्षमाश्रमणादि तिसतिस प्रतिमाके अभिलापसें पूर्ववत् । प्र ख्यान नियमचर्यादि सर्व तैसेंही जानने दडक भी तिसके अभिलाप सोही जानना ॥ इतिव्रतप्रतिमा ॥ २ ॥

अथ तीसरी सामायिक प्रतिमा, सा, तीन मासतक उभयसध्या सामायिक करनेसें होती है शेष नंदीनियम व्रतादिविधि सोइ अर्थात् पूर्वोक्तही जानना ओर दडक सामायिकके अभिलापसें कहना ॥ इति सामायिकप्रतिमा ॥ ३ ॥

अथ चौथी पोषधप्रतिमा, सा, चार मास यावत् अष्टमी चौदशको चार प्रकारके आहारके त्यागमें रहको चार प्रकारके पोषधके करनेसें होवे है द्व्यादिभेदसें दो आदि मासपर्यंत इस कथनसें यथाशक्ति सूचन किइ गइ यहां नंदिव्रत नियमादिविधि सोही सोही ओर दडक तिसके (पोषधप्रतिमाके) अभिलापसें कहना ॥ इतिपोषधप्रतिमा ॥४॥

ऐसें पाचमासादिकालवालीया शेषप्रतिमायोंमें भी यही पूर्वोक्त विधि है नंदिक्षमाश्रमण दडकादि तिसतिस प्रतिमाके अभिलापसें व्रतचर्या सोही है, पर सप्रतिकालमें, पर्यायसें, वा सहननकी शिथिलतासें, पाचमी प्रतिमासें लेके इग्यारहमीताइ प्रतिमाके अनुष्ठानका विधि शास्त्रोंमें नही दीखता है प्रतिमाका आरभ शुभ मुहूर्त्तमें करना ॥ इतिव्रतारोपसस्कारे देशविरतिसामायिकारोपणविधि ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे पचदश
व्रतारोपसस्कारांतर्गतदेशविरतिसामायिकारोपणविवर्णनो
नामाष्टाविंश स्तम्भ ॥ २८ ॥

॥ अथैकोनत्रिंशस्तम्भारम्भः ॥

अथ एकोनत्रिंशस्तंभमें व्रतारोपसंस्कारांतर्गत श्रुतसामायिकारोपण- विधि कहते हैं. ॥ तहां यति (साधु)योंको श्रुतसामायिकारोपण, योगोद्वहनविधिकरके होता है. और श्रुतारोपण, आगम पाठसें होता है. और योगोद्वहन आगमपाठ रहित गृहस्थोंको, श्रुतसामायिकारोपण, उपधानोद्वहनकरके होता है. और सुधारोपण, परमेष्ठिमंत्र, ईर्यापथिकी, शक्रस्तव, चैत्यस्तव, चतुर्विंशतिस्तव, श्रुतस्तव, सिद्धस्तवादि पाठकरके होता है. ॥

उपधीयते ज्ञानादि परीक्ष्यते अनेनेत्युपधानं—जिससें ज्ञानादिकी परीक्षा करिये, तिसको उपधान कहते हैं. अथवा चार प्रकारके संवर समाधिरूप सुखशय्यामें उत्तम होनेसें उत्सीर्षक स्थानमें उपधीयते स्थापन करिये, तिसको उपधान कहिये. तिस उपधानमें छ (६) श्रुतस्कंधोंका उपधान होता है, सोही दिखाते हैं. परमेष्ठिमंत्रका १, ईर्यापथिकीका २, शक्रस्तवका ३, अर्हत् चैत्यस्तवका ४, चतुर्विंशतिस्तवका ५, श्रुतस्तवका ६.

सिद्धस्तवकी वाचना उपधानविना होवे है.

प्रथम परमेष्ठिमंत्र महाश्रुतस्कंधके पांच अध्ययन हैं, और एक चूलिका है. दो दो पदके आलापक (आलावे) पांच हैं, सात २ अक्षरके अर्हत् आचार्य उपाध्याय नमस्कृति (नमस्कार) रूप तीन पद हैं, सिद्धनमस्कृतिरूप दूसरा पद पांच अक्षरोंका है, साधुयांको नमस्काररूप पांचमा पद नव अक्षरोंका है, एवं पांच पद. तिसके पीछे चूलिका, तिसमें दो पदरूप प्रथम आलापक सोलां (१६) अक्षरोंका है, तृतीय पदरूप दूसरा आलापक आठ (८) अक्षरोंका है, और चौथे पदरूप तीसरा आलापक नव (९) अक्षरोंका है. तहां पंचपरमेष्ठिमंत्रमें पांचो पदोंमें तीन उद्देशे है, और चूलिकामें भी उद्देशे तीन है, एवं उद्देशे ६. ॥ प्रथमके पांचो पदोंमें पैंतीस (३५) अक्षर है, और चूलिकामें तेतीस (३३) अक्षर है.

पाच अध्ययन ऐसें है ॥

नमो अरिहताण १ । नमो सिद्धाण २ । नमो आयरिआ-
ण ३ । नमो उवज्झायाण ४ । नमो लोए सव्वसाहूण ॥५॥

एका चूलिका यथा ॥

एसो पच नमुक्कारो सव्वपावप्पणासणो मगलाण च सव्वे-
सिं पढम हवइ मगल ॥ १ ॥

दो दो पदके आलापक यह है ॥

नमो अरिहताण । नमोसिद्धाण । इत्येक आलापक ॥ १ ॥
नमो आयरिआण नमो उवज्झायाणं । इति द्वितीयालापक ॥२॥
नमो लोए सव्वसाहूणं । इतितृतीयालापक ॥ ३ ॥
एसो पच नमुक्कारो सव्वपावप्पणासणो। इति चतुर्थालापक॥४॥
[illegible]गाण च सव्वेसिं पढम हवइ मगल । इतिपचमालापक॥५॥

[illegible] अक्के तीन पद यह है॥

न[illegible]रिहताण । ७ । नमो आयरिआण । ७ ।
नमो उ[illegible]ायाण । ७ । यह एक उद्देशक है ॥ १ ॥

पाच अक्षरोंका दूसरा पद नमो सिद्धाण। इति द्वितीय उद्देशक ॥२॥

पाचमा पद नव अक्षरप्रमाण नमो लोएसव्वसाहूण । इति तृतीय उद्देशक ॥ ३ ॥

चूलिकामें सोला (१६) अक्षरप्रमाण प्रथम आलापक ॥

एसो पच नमुक्कारो सव्वपावप्पणासणो । इति चूलिकायां प्रथम उद्देश ॥ १ ॥

चूलिकामें आठ अक्षरप्रमाण दूसरा आलापक ॥

मगलाणं च सव्वेसिं । इति चूलिकाया द्वितीय उद्देशक ॥ २ ॥

चूलिकामें नव अक्षरप्रमाण तीसरा आलापक॥

पढम हवइ मगल । इति चूलिकाया तृतीय उद्देश ॥ ३ ॥

सर्व अक्षर अडसठ (६८) तिसका उपधान ऐसें है. ॥

नंदि, देववंदन, कायोत्सर्ग, क्षमाश्रमण, वंदनक, प्रमुख नमस्कारश्रुतस्कंधके अभिलापसें पूर्ववत् जाणना. और अभिमंत्रित वासक्षेप भी पूर्ववत् जाणना. । तहां पूर्वसेवामें एकभक्तके अंतरे उपवास पांच, एवं दिन ११, तहां प्रथम नंदिदिनमें एकभक्त, वा निविगइ, दूसरे दिन उपवास, तीसरे दिन एकभक्त, चौथे दिन उपवास, पांचमे दिन एकभक्त, छठे दिन उपवास, सातमे दिन एकभक्त, आठमे दिन उपवास, नवमे दिन एकभक्त, दशमे दिन उपवास, एकादशमे दिन एकभक्त. ऐसें द्वादशम तप पूर्व सेवामें करना. । तहां पंचपरमेष्ठि पदांकी वाचना नंदिविना भी देनी. शक्रस्तवका पढना, वासक्षेपपूर्वक तीन नमस्कारोंका पढना, सर्व वाचनायोंमें जाणना. । तहां श्रेणिबद्ध आठ आचाम्ल करने, ऐसें एकोनविंशति (१९) दिन. तदपीछे वीसमे दिन एकभक्त, इकवीसमे दिन उपवास, बावीसमे दिन एकभक्त, तेइवीसमे दिन उपवास, चौवीसमे दिन एकभक्त, पच्चीसमे दिन उपवास. । ऐसें अष्टम तप उत्तर सेवामें. ।

तदपीछे चूलिकाकी वाचना ॥

एसो पंच यहांसें लेके हवइ मंगलं । इति नमस्कारस्योपधानं ॥

तदपीछे तिसकी वाचना, तिसका विधि यह है. ॥ पहिलां सामाचारीका पुस्तक पूजना, पीछे मुखवस्त्रिकासें मुख ढांकके ऐर्यापथिकी (इरियावहियं) पडिक्कमके क्षमाश्रमणपूर्वक कहें. ॥

"॥ भगवन् नमुक्कारवायणासंदिसावणियं वायणाले-
वावणियं वासक्खेवं करेह । चेइयाइं च वंदावेह ॥"

ऐसें नंदि करके छव्वीसमे दिनमें एकभक्त करें, वाचना देनी. चूलिकाके चारों पदोंके सर्व उपधानोंमें प्रतिदिन अव्यापार पौषध करना, सवेरे २ पौषध पारके पुनः २ (फिर २) नित्य पौषध ग्रहण करना, और नमस्कार सहस्र गुणना. ॥ इतिप्रथमसुपधानम् ॥ १ ॥

ऐर्यापथिकीका भी उपधान ऐसेंही है आदिकी, और अतकी, दोनोंही नदि तिसके–ऐर्यापथिकीके अभिलापसें करनी । तहां वाचनामें आठ अध्ययन, और वाचना दो,–एक पाच पदोंकी और दूसरी तीन पदोंकी, पाच पदोंकी एक चूलिका ॥

" ॥ इच्छामि पडिक्कमिउ इरिआवहिआए विराहणाए। १। गमणागमणे । २। पाणक्कमणे, बीयक्कमणे, हरियक्कमणे । ३। ओसाउर्त्तिंगपणगदगमट्टीमक्कडासंताणासंकमणे । ४। जे मे जीवा विराहिया । ५। यह एक वाचना, द्वादशम तपके पीछे देते हैं ॥ १ ॥

" ॥ एगिंदिया, वेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पचिंदिया । ६। अभिहया, वत्तिया, लेसिया, संघाइया, सघट्टिया, परियाविया, किलामिया, उद्दविया, ठाणाओ ठाणं सका-[illegible] जीवियाओ ववरोविया, तस्स मिच्छामि दुक्कड । ७। तस्स [illegible]करणेण, पायच्छित्तकरणेण, विसोहीकरणेण, विसल्लीकरणेण पावाण कम्माण निग्घायणट्ठाए, ठामि का-उस्सग्ग । ८ ॥ " यह दूसरी वाचना, आठ आचाम्लके अतमें देनी ॥ २ ॥

इसके पीछे ॥

"॥अन्नथ्थ उससिएण, नीससिएण, खासिएण, छीएणं, जभाइएण उड्डुएण, वायनिसग्गेण, भमलिए, पित्तमुच्छाए । १। सुहुमेहिं अगसचालेहिं, सुहुमेहिं खेलसचालेहिं, सुहुमेहिं दिट्ठिसचालेहिं । २। एवमाइएहिं, आगारेहिं, अभग्गो, अविराहिओ, हुज्ज मे काउस्सग्गो । ३ । जाव अरिहंताण, भगवताण, न मुक्कारेण, न पारेमि । ४। ताव काय, ठाणेण, मोणेण, झाणेण, अप्पाण वोसिरामि । ५॥" यह चूलिकाकी

वाचना, अंत दिनमें देनी. ॥ इत्यैर्यापथिक्याउपधानम् ॥ २ ॥

अथ शक्रस्तवका उपधान कहते हैं. ॥ तहां नंदिआदि सर्व शक्रस्तवके अभिलापसें पूर्ववत्. । तथा प्रथम दिनमें एकभक्त, दूसरे दिन उपवास, तीसरे दिन एकभक्त, चौथे दिन उपवास, पांचमे दिन एकभक्त, छट्टे दिन उपवास, सातमे दिन एकभक्त; । तहां तीन संपदायोंकी प्रथम वाचना देते हैं. ॥

यथा ॥

"॥ नमुथ्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं । १ । आइगराणं तित्थयराणं सयंसंबुद्धाणं । २ । पुरिसुत्तमाणं पुरिससीहाणं पुरिसवरपुंडरीआणं पुरिसवरगंधहथ्थीणं । ३ । इत्येका वाचना।

यह एक वाचना। नमुथ्थुणं । यह पद भिन्न है. । तीनोंही संपदा अनुक्रमे दो, तीन, चार पदवाली है. । तद्पीछे एकश्रेणिकरके निरंतर सोलां (१६) आचाम्ल करने. । तिसमें पांच २ पदोंवाली तीन संपदाकी वांचना देते हैं. ॥

यथा ॥

॥ लोगुत्तमाणं लोगनाहाणं लोगहिआणं लोगपईवाणं लोगपज्जोअगराणं । ४ । अभयदयाणं चक्खुदयाणं मग्गदयाणं सरणदयाणं बोहिदयाणं । ५ । धम्मदयाणं धम्मदेसियाणं धम्मनायगाणं धम्मसारहीणं धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं । ६ । यह दूसरी वाचना ॥ २ ॥

तदपीछे फिर भी तिसही श्रेणिकरके सोलां आचाम्ल करने. । तिसमें दो तीन पदोंवाली तीन संपदाकी वाचना देनी. ॥

यथा ॥

॥ अप्पडिहयवरनाणदंसणधराणं विअट्टछउमाणं । ७ । जिणाणं जावयाणं तिन्नाणं तारयाणं बुद्धाणं बोहयाणं मुत्ताणं

मोअगाण । ८ । सव्वन्नूणं सव्वदरिसिणं सिवमयलमरु-अमणतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावितिसिद्धिगइनामधेयंठाणं संपत्ताण नमो जिणाण जिअभयाण । ९ ॥ " यह तीसरी वाचना ॥ ३ ॥

"॥ जे अ अईआ सिद्धा जे अ भविस्सतिणागए काले ॥ सपइ अ वट्टमाणा सव्वे तिविहेण वदामि ॥" इस अंतिमगाथाकी वाचना भी, तीसरी वाचनाके साथही देनी ॥ इतिशक्रस्तवोपधानम् ॥ ३ ॥

अथ चैत्यस्तवका उपधान कहते हें ॥ नदिआदिपूर्ववत् । प्रथम दिने एक भक्त, दूसरे दिन उपवास, तीसरे दिन एक भक्त, तदपीछे ...के लगतमार तीन आचाम्ल करने अतमें तीनोंही अध्ययनोंकी ...ही साथ एक वाचना देनी ॥

यथा ॥

"॥ अरिहतचेइआण करेमि काउस्सग्ग वदणवत्तिआए पूअणवत्तिआए सक्कारवत्तिआए सम्माणवत्तिआए बोहिलाभवत्तिआए निरुवसग्गवत्तिआए । १ । सद्धाए मेहाए धीईए धारणाए अणुप्पेहाए वड्ढमाणीए ठामिकाउस्सग्ग । २ । अन्नथ्थउससिएण—यावत्—वोसिरामि । ३ ॥" यह एकही वाचना हे ॥ इति चैत्यस्तवोपधानम् ॥ ४ ॥

अथ चतुर्विंशतिस्तवका उपधान कहते हें ॥ नदि, दो पूर्ववत् । प्रथम दिने एकभक्त, दूसरे दिन उपवास, तीसरे दिन एकभक्त, चौथे दिन उपवास, पांचमे दिन एकभक्त, छट्टे दिन उपवास, सातमे दिन एकभक्त । ऐसें अष्टम तप । अतमें प्रथम गाथाकी एक वाचना ॥

यथा ॥

"॥ लोगस्स उज्जोअगरे धम्मतित्थयरे जिणे। अरिहंते कित्त- इस्सं चउवीसंपि केवली । १ ।" यह एक वाचना. ॥ १ ॥

तदपीछे श्रेणिकरकेही बारां (१२) आचाम्ल करने. तिसके अंतमें तीन गाथाकी वाचना. ॥

यथा ॥

॥ उसभमजियं च वंदे संभवमभिणंदणं च सुमइं च । पउमप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वंदे । २ । सुविहिं च पुप्फदंतं सीअलसिज्जंसवासुपुज्जं च। विमलमणंतं च जिणं धम्मं संतिं च वंदामि । ३ । कुंथुं अरं च मल्लिं वंदे मुणि- सुव्वयं नमिजिणं च वंदामिरिट्ठनेमिं पासं तह वद्धमाणं च।४। यह दूसरी वाचना. ॥ २ ॥

तदपीछे तिस श्रेणिकरकेही तेरा (१३) आचाम्ल करने. तिसके अंतमें तीसरी वाचना ॥

यथा ॥

॥ एवं मए अभिथुआ विहुरयमला पहीणजरमरणा चउवी- संपि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु।५। कित्तियवंदिय- महिया जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा । आरुग्गबोहिलाभं समाहिवरमुत्तमं दिंतु । ६ । चंदेसु निम्मलयरा आइच्चेसु अहियं पयासयरा । सागरवरगंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥ ७ ॥ " यह तीसरी वाचना. ॥ ३ ॥ इति चतुर्विंशतिस्त- वोपधानम् ॥ ५ ॥

अथ श्रुतस्तवका उपधान कहते हैं. । नंदि, दो पूर्ववत्. । प्रथमदिने एकभक्त, दूसरे दिन उपवास, तीसरे दिन एकभक्त, पीछे श्रेणिकरके पांच आचाम्ल करने. तिसके अंतमें दो गाथायोंकी, और दोनों वृत्तोंकी

समकालही वाचना । तिसमें पाच अध्ययन है । तिसमें प्रथमकी दो गाथायोंके दो अध्ययन ॥

यथा ॥

"॥ पुक्खरवरदीवड्ढे धायइसंडे अ जंबुदीवेअ। भरहेरवय-विदेहे धम्माइगरे नमंसामि । १ । तमतिमिरपडलविद्धंस-णस्स सुरगणनरिंदमहिअस्स । सीमाधरस्स वंदे पप्फोडि-अमोहजालस्स। २ ।

तीसरा अध्ययन वसततिलका वृत्तसें । यथा ॥

॥ जाईजरामरणसोगपणासणस्स कल्लाणपुक्खलविसालसु-हावहस्स । को देवदाणव । नरिंदगणच्चिअस्स धम्मस्स सारसुवलब्भ करे पमाय । ३ ।

चौथा अध्ययन शार्दूलविक्रीडितवृत्तके पूर्वार्द्धसें । यथा ॥

॥ सिद्धे भो पयओ णमो जिणमए नंदीसयासंजमे देवनाग-सुवन्नकिन्नरगणस्सब्भूयभावच्चिए । ४ ।

पाचमा अध्ययन शार्दूलविक्रीडितवृत्तके उत्तरार्द्धसें । यथा ॥

॥ लोगो जत्थ पइठिओ जगमिण तेलुक्कमच्चासुर धम्मो वड्ढउ सासओ विजयओ धम्मुत्तरं वड्ढउ । ४ । –५ ॥ " इति श्रुतस्तवोपधानम् । ६ । इति षडुपधानानि ॥

तथा सिद्धस्तवमें प्रथम तीन गाथाकी वाचना यथा ॥

" ॥ सिद्धाणं बुद्धाणं पारगयाणं परंपरगयाणं । लोअग्ग मुवगयाणं नमो सया सव्वसिद्धाणं । १ । जो देवाणविदे-वो जं देवा पंजली नमंसंति । नं देवदेवमहिअं सिरसा वंदे महावीरं । २ । इक्कोवि नमुक्कारो जिणवरवसहस्स । वद्ध-माणस्स । संसारसागराओ तारेइ नरं व नारिं वा ॥३॥ "

शेष दो गाथा । यथा ॥

॥ उज्जिंतसेलसिहरे दिक्खा नाणं च निसीहिआ जस्स। तं धम्मचक्कवट्टिं अरिट्ठनेमिं नमंसामि ।४। चत्तारि अट्ठ दस दो अ वंदिआ जिणवरा चउव्वीसं। परमट्ठनिट्ठिअट्ठा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥५॥" इत्युपधानवाचनास्थितिः ॥

अथ विस्तार, निशीथसिद्धांतसें उध्धृत उपधानप्रकरणसें जानना.। सयथा ॥

पंचनमुक्कारे किल दुवालसतवो उ होइ उवहाणं ॥
अट्ठ य आयामाइं एगं तह अट्ठमं अंते ॥ १ ॥
एवंचिय नीसेसं इरियावहिआइ होइ उवहाणं ॥
सक्कच्छयंमि अट्ठममेगं बत्तीस आयामा ॥ २ ॥
अरिहंतचेइअथए उवहाणमिणं तु होइ कायव्वं ॥
एगं चेव चउथ्थं तिन्नि अ आयंबिलाणि तहा ॥ ३ ॥
एगंचिय किर छट्ठं चउथ्थमेगं तु होइ कायव्वं ॥
पणवीसं आयामा चउवीसथ्थयम्मि उवहाणं ॥ ४ ॥
एगं चेव चउथ्थं पंच य आयंबिलाणि नाणथए ॥
चिइवंदणाइसुत्ते उवहाणमिणं विणिदिट्ठं ॥ ५ ॥
अव्वावारो विकहा विवज्जिओ रुद्दझाणपरिमुक्को ॥
विस्सामं अकुणंतो उवहाणं कुणइ उवउत्तो ॥ ६ ॥
अह कहवि हुज्ज बालो बुट्ठो वा सत्तिवज्जिओ तरुणो ॥
सो उवहाणपमाणं पूरिज्जा आयसत्तीए ॥ ७ ॥
राईभोयणविरई दुविहं तिविहं चउव्विहं वावि ॥
नवकारसहिअमाई पच्चक्खाणं विहेऊणं ॥ ८ ॥
एगेए सुद्धआयंबिलेण इयरेहिं दोहिं उववासो ॥
नवकारस्सहिएहिं पणयालीसाइं उववासो ॥ ९ ॥

पोरसिचउवीसाए होइ अवट्टेहिं दसहिं उववासो ॥
विगईचाएहिं तिहिं एगट्ठाणेहि अ चऊहिं ॥ १० ॥
आयरणाओ नेअ पुरिमट्टा सोलसेहिं उववासो ॥
एगासणगा चउरो अट्ठ य वेकासणा तहय ॥ ११ ॥
भयव बहू अ कालो एव कारिंतस्स पाणिणो हुज्जा ॥
तो कहवि हुज्ज मरण नवकारविवज्जिअस्सावि ॥ १२ ॥
नवकारवज्जिओ सो निव्वाणमणुत्तर कह लभिज्जा ॥
तो पढम चिअ गिएहओ उवहाण होओ वा मा वा ॥१३॥
गोअम ज समय चिअ सुओवयार करिज्ज जो पाणी
त समय चिअ जाणसु गहिअगयट्ठ जिणाणाए ॥ १४ ॥
एव कयउवहाणो भवतरे सुलहवोहिओ होज्जा ॥
एअज्झवसाणोविहु गोअम आराहओ भणिओ ॥ १५ ॥
जो उ अकाऊणमिण गोअम गिह्णिज्ज भत्तिमतोवि ॥
सो मणुओ दट्ठव्वो अगिएहमाणोण सारिच्छो ॥ १६ ॥
जागायइ तित्थयर तवुयण सघगुरुजण चेव ॥
आसायणवहुलो सो गोयम ससारमणुगामी ॥ १७ ॥
पढम चिअ कन्नाहेडएण ज पचमगलमहीअ ॥
तस्सवि उवहाणपरम्मि सुलहिआ बोहि निद्दिट्ठा ॥ १८ ॥
इअ उवहाणपहाण निउण सयलपि वदण विहाण ॥
जिणपूआपुव्व चिअ पढिज्ज सुअभणिअनीईए ॥ १९ ॥
त सरवजणमत्ता विदुपयच्छेअठाणपरिसुद्ध ॥
पढिऊण चिइचदणसुत्त अत्थ वियाणिज्जा ॥ २० ॥
तत्थ य जत्थेग सिआ सदेहो सुत्तअत्थविसयम्मि ॥
त बहुसो वीमसिअ सयल निस्सकिय कुज्जा ॥ २१ ॥

अह सोहणतिहिकरणे मुहुत्तनरकत्तजोगलग्गंमि ॥
अणुकूलंमि ससिबले सस्से सस्से अ समयम्मि॥ २२ ॥
नियविहवाणुरूवं संपाडिअभुवणनाहपूएण ॥
परमभत्तीइ विहिणा पडिलाभिअसाहुवग्गेण ॥ २३ ॥
भत्तिभरनिप्भरेणं हरिसवसुल्लसिअबहलपुलएणं ॥
सद्धासंवेगविवेगपरमवेरग्गजुत्तेणं ॥ २४ ॥
विणिहयघणरागदोसमोहमिच्छत्तमलकलंकेणं ॥
अइउल्लसंतनिम्मल अज्झवसाणेण अणुसमयं ॥ २५ ॥
तिहुअणगुरुजिणपडिमाविणिवेसिअनयणमाणसेण तहा ॥
जिणचंदवंदणाओ धन्नोहं मन्नमाणेणं ॥ २६ ॥
नियसिरिरइयकरकमलमउलिणा जंतुविरहिओगासे ॥
निस्संकं सुत्तत्थं पए पए भावयंतेण ॥ २७ ॥
जिणनाहदिट्ठगंभीरसमयकुसलेण सुहचारित्तेणं ॥
अपमायाईबहुविहगुणेण गुरुणा तहा सद्धिं ॥ २८ ॥
चउविहसंघजुएणं विसेसओ नियबंधुसहिएणं ॥
इअविहिणा निउणेणं जिणबिंबं वंदणिज्जंति ॥ २९ ॥
तयणंतरं गुणड्ढे साहू वंदिज्ज परमभत्तीए ॥
साहम्मियाण कुज्जा जहारिहं तह पणामाई ॥ ३० ॥
जावय महग्घ मुकिङ्ग चुक्खवत्थप्पयाणपुव्वेणं ॥
पडिवत्तिविहाणेणं कायव्वा गरुअसम्माणो ॥ ३१ ॥
एआवसरे गुरुणा सुविइअगंभीरसमयसारेण ॥
अक्खेवणिविक्खेवणि संवेइणिपमुहाविहिणा उ ॥ ३२ ॥
भवनिव्वेअपहाणा सद्धासंवेगसाहणे णिउणा ॥
गरुएण पबंधेणं धम्मकहा होइ कायव्वा ॥ ३३ ॥

सद्धासवेगपर सूरी नाऊण त तओ भव्व ॥
चिइवदणाइकरणे इअ वयण भणइ निउणमई ॥ ३४ ॥
भो भो देवाणुपिया सपाविअ निययजम्मसाफल्ल ॥
तुमए अज्जप्पभिई तिक्काल जावजीवाए ॥ ३५ ॥
वदेअव्वाइ चेइआइ एगग्गसुथिरचित्तेण ॥
खणभगुराओ मणुअत्तणाओ इणमेव सारति ॥ ३६ ॥
तथ्थ तुमे पुव्वण्हे पाणपि न चेव ताव पायव्व ॥
नो जाव चेइआइ साहूविअ वदिआ विहिणा ॥ ३७ ॥
मज्झण्हे पुणरवि वदिऊण निअमेण कप्पए भुत्तु ॥
अवरण्हे पुणरवि वदिऊण निअमेण सुअणाति ॥ ३८ ॥
एवमभिग्गहवध काउ तो वद्धमाणविज्जाए ॥
अभिमतिऊण गिण्हइ सत्त गुरु गधमुट्ठीओ ॥ ३९ ॥
तस्सुत्तमगदेसे निथ्थारगपारगो हविज्ज तुम ॥
उच्चारेमाणोविअ निक्खिवइ गुरु सपणिहाण ॥ ४० ॥
एआए विज्जाए पभावजोगेण एस किर भव्वो ॥
अहिगयकज्जाण लहु निथ्थारगपारगो होउ ॥ ४१ ॥
अह चउविहोवि सघो निथ्थारगपारगो हविज्ज तुम ॥
धन्नो सलक्खणो जपिरोत्ति निक्खिवइ से गधे ॥ ४२ ॥
तत्तो जिणपडिमाए पुआदेसाओ सुरभिगधड्ढ ॥
अमिलाण सिअदाम गिण्हिअ गुरुणा महथ्थेण ॥ ४३ ॥
तस्सोभयखधेसु आरोवतेण सुद्धचित्तेण ॥
निस्सदेह गुरुणा वत्तव्व एरिस वयण ॥ ४४ ॥
भो भो सुलद्धनिअजम्म निचिअअइगरुअपुन्नपब्भार ॥
नारयतिरिअगईओ तुज्झावस्स निरुद्धाओ ॥ ४५ ॥

नो बंधगोसि सुंदर तुममित्तो अयसनीअगुत्ताणं ॥
नो दुल्लहो तुह जम्मंतरेवि एसो नमुक्कारो ॥ ४६ ॥
पंचनमुक्कारपभावओ अ जम्मंतरेवि किर तुज्झ ॥
जाईकुलरूवारुग्गसंपयाओ पहाणाओ ॥ ४७ ॥
अन्नं च इमाओच्चिय न हुंति मणुआ कयावि जीअलोए ॥
दासा पेसा दुभगा नीआ विगलिंदिआ चेव ॥ ४८ ॥
किं बहुणा जे इमिणा विहिणा एअं सुअं अहिजित्ता ॥
सुअभणिअविहाणेणं सुद्धे सीले अभिरमिज्जा ॥ ४९ ॥
नो ते जइ तेणं चिअ भवेण निव्वाणमुत्तमं पत्ता ॥
तोणुत्तरगेविज्जाइएसु सुइरं अभिरमेउं ॥ ५० ॥
उत्तमकुलम्मिउक्किट्ठलठ्ठसव्वंगसुंदरा पयडा ॥
सव्वकलापत्तट्ठा जणमणआणंदणा होउं ॥ ५१ ॥
देविंदोवमरिद्धी दयावरा दाणविणयसंपन्ना ॥
निव्विणकामभोगा धम्मं सयलं अणुट्ठेउं ॥ ५२ ॥
सुहज्झाणानलनिदड्ढघाइकम्मिंधणा महासत्ता ॥
उप्पन्नविमलनाणा विहुयमला झत्ति सिज्झंति ॥ ५३ ॥
इअ विमलफलं मुणिउं जिणस्स महमाणदेवसूरिस्स ॥
वयणा उवहाणमिणं साहेह महानिसीहाओ ॥ ५४ ॥

॥ इत्युपधानप्रकरणम् ॥

भावार्थः—पांच नमस्कारमें पांच उपवासका उपधान होता है, आठ आचम्ल तथा अंतमें एक अष्टमतप. । ऐसेंही संपूर्ण उपधान इरियावहिका है; शक्रस्तवमें एक अष्टमतप, और बत्तीस आचाम्ल. चैत्यस्तवमें एक उपवास, और तीन आचाम्ल करणे. । चतुर्विंशतिस्तवमें एक षष्ठ-

तप, एक उपवास, और पचवीस (२५) आचाम्ल करणे । श्रुतस्तवमें एक उपवास, और पाच आचाम्ल । चैत्यवंदनादि सूत्रमें यह उपधान कथन करा है । तीर्थंकर गणधरोंने ॥ ५ ॥ व्यापाररहित, विकथाविवर्जित, रौद्र ध्यानकरके रहित, विश्राम नही करता हुआ, उपयोगसहित, उप धान करे ॥ ६ ॥ यह उत्सर्ग कहा अब अपवाद कहते हैं । अथ कदापि उपधानवाही बालक होवे, वा वृद्ध होवे, वा शक्तिरहित तरुण (युवा) होवे तो, सो अपनी शक्तिप्रमाण उपधानप्रमाण पूर्ण करे । रात्रिभोज नकी विरति, चतुर्विधाहार, वा त्रिविधाहार, वा द्विविधाहार प्रत्याख्यान रूप करे, नवकारसहिआदि पच्चक्खाण करके । एक शुद्ध आंबिलकरके, और इतर दो आंबिलकरके, एक उपवास होता है पणतालीस (४५) नव कारसहि करनेसें एक उपवास होता है चौवीस (२४) पोरसि करनेसें, और दश (१०) अपार्द्ध करनेसें, एक उपवास होता है तीन निविकृति करनेसें, और चार एकलठाणे करनेसें, एक उपवास होता है आचरणासें सोला (१६) पुरिमार्द्ध करनेसें उपवास होता है चार एकासनेसें, और आठ बिया सण करनेसें भी, उपवास होता है अर्थात् उपवासका जो फल है, सोही प्राय पूर्वोक्त तपका फल है इसवास्ते जिसकी पूर्वोक्त उपधानकी शक्ति न होवे सो इन तपोंमेंसें किसी भी तपके करनेसें उपधान प्रमाण पूर्ण करे ॥ ११ ॥

गौतमस्वामी कहते हैं हे भगवन् ! ऐसें करतेहुए प्राणीको बहोत काल होवे तो, कदापि नवकारवर्जित भी, तिसका मरण हो जावे, और नवकारवर्जित सो प्राणी अनुत्तर निर्वाण कैसें प्राप्त करे ? तिसवास्ते नव कार प्रथमही ग्रहण करो, उपधान होवे, वा न होवे ॥ १३ ॥

महावीर स्वामी कहते हैं हे गौतम ! जो प्राणी जिस समयमें व्रतो पचार (उपधान) करे, तिसही समयमें, तू जिनाज्ञाकरके ग्रहण करा है व्रतार्थ जिसनें, ऐसा तिसको जाण ॥ १४ ॥ ऐसें जिसने उपधान करा है, सो प्राणी भवांतरमें सुलभबोधि होवे है और इसके (उपधानके) अध्यवसायवालेको भी, हे गौतम ! आराधक कहा है परंतु हे गौतम !

भक्तिवाला भी जो प्राणी, उपधानविना श्रुतको ग्रहण करे, तिसको नहीं ग्रहण करनेवालेके सदृश जाणना. तथा सो जीव, तीर्थंकरकी, तीर्थंकरके वचनोंकी, संघकी, और गुरुजनकी, आशातना करता है. सो आशातना बहुल प्राणी, हे गौतम संसारमें भ्रमण करता है. प्रथमही जिसने सुणके, पांच मंगल पढ लिया है, तिसको भी उपधानमें तत्पर होनेसें बोधि, जिनधर्मप्राप्ति, सुलभ कही है. यह उपधानकरके प्रधान, निपुण, संपूर्ण भी वंदनविधान, जिनपूजा, पूर्वकही श्रुतोक्त नीतिकरके पढना. तिस पंच मंगलको स्वर, व्यंजन, मात्रा, बिंदु, पदच्छेद, स्थानों-करके शुद्ध पढके, चैत्यवंदन सूत्रको, और अर्थको विशेषकरके जाणे. तिसमें जहां सूत्रविषे, वा अर्थविषे, संदेह होवे तो, तिसको बहुशः विचारके संपूर्ण निःशंक संदेहरहित करना. ॥ २१ ॥

अथ शुभतीथि, करण, मुहूर्त्त, नक्षत्र, जोग, लग्नमें, चंद्रबलके अनुकूल हुए, कल्याणकारी प्रशस्त समयमें, अपने विभवानुसार भगवान्का पूजन करा है जिसने, परम भक्तिसें विधिपूर्वक साधुवर्गको प्रतिलंभ करा है जिसने, भक्तिके अतिसमूहकरके सहित, हर्षवशसें खिडे हैं, बहोत पुलक (रोम) जिसके, श्रद्धासंवेगाविवेक परम वैराग्ययुक्त, दूर करे हैं, निविडरागद्वेषमोहमिथ्यात्वमलरूप कलंक जिसने, अति उल्लसायमान निर्मल अध्यवसाय करके, अनुसमय, त्रिभुवनगुरु जिन भगवान्की प्रति-मामें स्थापन किये हैं, नेत्र, और मन, जिसने, तथा जिन चंद्रको वंदना करनेसें मैं धन्य हूं ऐसें मानते हुए, अपने मस्तकके ऊपर रचा है, कर-कमलरूप मुकुट जिसने, जंतुरहित स्थानमें पदपदमें निःशंक सूत्रार्थको भावते (विचारते) हुए, ऐसें पूर्वोक्त विशेषणवाले उपधानवाहिने, जिनना-थके कथन करे गंभीर समयसिद्धांतमें कुशल, शुभचारित्रसंयुक्त, अप्रमादादि बहुविध गुणोंकरी संयुक्त, ऐसें गुरुके साथ, चतुर्विध संघसंयुक्त, विशेषसें निजवंधुसहित, इस निपुणविधिकरके जिनबिंबको वंदना करनी. ॥ २९ ॥

तदनंतर उपधानवाही, गुणाढ्यसाधुयोंको परम भक्तिसें वंदना करे. तथा साधर्मियोंको यथायोग्य प्रणामादि करे. पीछे जितने बहुमोलके

उत्कृष्ट चोक्ष वस्त्र तिनके प्रदानपूर्वक भक्तिविधानकरके उपधानवाहिने, श्रीसंघका भारी सन्मान करना ॥ ३१ ॥

इस अवसरमें अच्छीतरें जान्या है गभीर समयसिद्धांतका सार जिसने, ऐसे गुरुने, आक्षेपिणी, विक्षेपिणी, सवेदिनी, और निर्वेदिनी, यह चार प्रकारकी धर्मकथा श्रद्धासंवेग साधनेमें निपुण भारी प्रबंध करके करनी ॥ ३३ ॥

तदपीछे तिस भव्यजीवको श्रद्धासंवेगमें तत्पर जाणके, निपुणमति आचार्य, चैत्यवंदनादि करनेमें यह वचन कहे ॥ ३४ ॥

भो भो देवानुप्रिय! निज जन्म साफल्यताको प्राप्त करके तैंनें आजसें लेके जावजीवपर्यंत तिनोंही कालमें एकाग्र सुस्थिर चित्तकरके अर्हत्प्र तिमायोंको वंदना करनी क्योंकि, क्षणभगुर मनुष्यपणेसें यही सार है, तहां तैंने पुर्वान्हमें जबतक जिनप्रतिमाको और साधुयोंको वंदना विधि पूर्वक नही करी है, तबतक पानी भी नही पीना मध्यान्हमें फिर वंदना करकेही भोजन करना कल्पे, और अपरान्हमें भी फिर वंदना करकेही सोना कल्पे अन्यथा नही ॥ ३८ ॥

एम ।भिग्रहबंधन करके पीछे वर्द्धमान विद्यासें अभिमंत्रके गुरु सात मुट्ठीप्रमाण गंध (वासक्षेप) ग्रहण करे पीछे तिस उपधानवा हीके मस्तकऊपर निथ्थारगपारगो हविज्ज तुम" ऐसें उच्चारण करता हुआ गुरु, नमस्कारपूर्वक निक्षेप करे (डाले) इस विद्याके प्रभावके जोगसें निश्चय यह भव्य अधिकृत प्रा।भित कार्योंका शीघ्र निस्तार करनेवाला, और पार होनेवाला होवे ॥ ४१ ॥

अथ चतुर्विध संघ, तु, निस्तारक पारग हो, तू धन्य है, सलक्षण है, इत्यादि बोलता हुआ, तिसके मस्तकऊपर वासक्षेप करे ॥ ४२ ॥

तदपीछे जिनप्रतिमाके पूजादेशसें सुरभिगंधसयुक्त अम्लान श्वेत माला ग्रहण करके, गुरु अपने हाथोंसें तिस उपधानवाहीके दोनों स्कंधोंऊपर आरोपण करता हुआ, शुद्ध चित्तकरके निसंदेह ऐसा वचन कहे ॥ ४४ ॥

अच्छीतरें प्राप्त किया निज जन्म जिसने, तथा संचय करा है अतिभारी पुण्यका समूह जिसने, ऐसें भो भो भव्य ! तेरी नरकगति, और तिर्यग्गति, अवश्यमेव बंद होगई. हे सुंदर ! आजसें लेके, तूं, अपजस, नीच गोत्रोंका बंधक नही है. तथा जन्मांतरमें भी, यह पंचनमस्कार तुझको दुर्लभ नही है. पांच नमस्कारके प्रभावसें जन्मांतरमें भी तुझको प्रधान जाति, कुल, आरोग्य संपदाएं प्राप्त होंगी. और इसके प्रभावसें मनुष्य कदापि संसारमें दास, प्रेष्य, दुर्भग, नीच, और विकलेंद्रिय नही होते हैं. किं बहुना. जे इस विधिसें इस श्रुतज्ञानको पढके श्रुतोक्त विधिसें शुद्ध शील आचारमें रमे—क्रिडा करे, वे, यदि तिसही भवमें उत्तम निर्वाणको प्राप्त न होवे तो, अनुत्तर ग्रैवेयकादि देवलोकोंमें चिरकाल क्रीडा करके उत्तम कुलमें उत्कृष्ट प्रधान सर्वांगसुंदर प्रकट सर्वकला प्राप्त करे हैं, अर्थ जिनोंने, ऐसें लोकोंके मनको आनंद देनेवाले होयके, देवेंद्रसमान ऋद्धिवाले, दयामें तत्पर, दानविनयसंयुक्त, कामभोगोंसें निर्विन्न-विरक्त संपूर्ण धर्मका अनुष्ठानकरके शुभ ध्यानरूप अग्निकरके चार घातिकर्मरूप इंधनको दग्ध किये हैं—जला दिये हैं जिनोंनें, ऐसें महासत्त्व, उत्पन्न हुआ है, विमल निर्मल केवल ज्ञान जिनोंको, सर्व मलकर्मसें राहित होकर शीघ्र सिद्ध होते हैं. ॥ ५३ ॥ यह निर्मल फल जाणके बहोत मान देने योग्य जो देव, सोही भये सूरि, ऐसें जो जिन तिनके वचनसें यह उपधान महानिशीथ सूत्रसें सिद्ध करो.—इस अंतिम गाथामें प्रकरणकर्त्ता श्रीमान देवसूरिने भगवान्के 'महमाणदेवसूरिस्स' इस विशेषणद्वारा अपना भी नाम, सूचन करा है. ॥ ५४ ॥ इत्युपधानप्रकरणभावार्थः ॥

॥ इत्युपधानविधिः ॥

अथ उपधान तपके उद्यापनरूप मालारोपणका विधि कहते हैं. ॥ तहां पिछलाही नंदि क्रम जाणना. । और इतना विशेष हे कि, मालारोपण उपधानतपके पूर्ण हुए तत्कालही, वा दिनांतरमें होता है. तहां यह विधि है. ॥ मालारोपणसें पहिले दिनमें साधुयोंको अन्न पान वस्त्र पात्र वसति पुस्तक दान देवे, संघको भोजन देवे, वस्त्रादिकसें संघकी

पूजा करे, तिस दिनमें शुभ तिथि वार नक्षत्र लग्नमें दीक्षाके उचित दिनमें परम युक्तिसें बृहत्स्नात्रविधिसें जिनपूजा करे, माता पिता परिजन साधर्मिकाविकोंको एकट्ठे करे, तदपीछे मालाग्राही कृतउचितवेष कृतधम्मिल उत्तरासगवाला निजवर्णानुसारसें जिनोपवीत उत्तरीयादि धारी सज करके प्रचुरगधादि उपकरण अक्षत नालिकेर हाथमें लेके पूर्ववत् समवसरणको तीन प्रदक्षिणा करे । तदपीछे गुरुके समीपे क्षमाश्रमणपूर्वक कहे ॥ "इच्छाकारेण तुम्भे अम्ह पचमंगलमहासुअक्खध इरिआवहिआसुअक्खधसक्कथ्थयसुअक्खधचेइअथ्थयसुअक्खध चउवीसथ्थय सुअक्खध सुयथ्थयसुअक्खध अणुजणावणिअ वासक्खेव करेह"॥ तदपीछे गुरु भी अभिमत्रित वासक्षेप करे । फिर श्राद्ध क्षमाश्रमणपूर्वक कहे "चेइआइ च वदावेह" तदपीछे वर्द्धमानस्तुतियोंसें चैत्यवदन करना, शाति देवादि स्तुतिया पूर्ववत् फिर शक्रस्तव अर्हणादि स्तोत्र कहना पूर्ववत् । तदपीछे उठके "पचमगलमहासुअक्खध पडिक्कमणसुअक्खध भावारिह [illegible]थ्थय ठवणारिहतथ्थय चउवीसथ्थय नाणथ्थय सिद्धथ्थय अणुजाणाव [illegible]रेमि काउस्सग अन्नथ्थ उससिएण—यावत्—अप्पाण वोसिरामि" [illegible]गनिस्तव चिंतन करे, पारके प्रकट चतुर्विंशतिस्तव पढे । गुरु तीनवार [illegible]मत्र पढके निपद्याऊपर बैठ जावे, सघ और परिजनसहित श्राद्धको

भो भो देवाणुपिया सपाविअ निययजम्मसाफल्लं ॥
तुमए अज्जप्पाभिई तिक्काल जावजीवाए ॥ १ ॥
वदे अवाइ चेइआइ एगग्गसुथिरचित्तेण ॥
खणभगुराओ मणुअत्तणाओ इणमेव सारति ॥ २ ॥
तथ्थ तुमे पुव्वण्हे पाणपि न चेव ताव पायव्व ॥
नो जाव चेइआइ साहूविअ वदिआ विहिणा ॥ ३ ॥
मज्झण्हे पुणरवि वदिऊण नियमेण कप्पए भुत्तु ॥
अवरण्हे पुणरवि वदिऊण नियमेण सुअणति ॥ ४ ॥

इत्यादि महानिशीथमध्यगत वीस गाथामें कही हुई देशना देके, तीन संध्यामें चैत्यवंदन साधुवंदन करनेके अभिग्रह विशेषोंको देवे.। तदपीछे वासमंत्रके सात गंधकी मुष्टी "निथ्थारगपारगो होहि" ऐसें कहता हुआ गुरु, तिसके शिरमें प्रक्षेप करे.। तदपीछे अक्षतसाहित वासक्षेपको मंत्रे। तिस समयमें सुरभिगंध अम्लान श्वेत पुष्पोंके समूहसें ग्रंथन करी हुई मालाको जिनप्रतिमाके पगोंऊपर स्थापन करे। सूरि खडा होके अभिमंत्रित वासांको जिनपगोंके ऊपर क्षेप करे, पास रहे साधु साध्वी श्रावक श्राविका जनको गंधाक्षत देवे.। श्राद्ध नमस्कारअनुज्ञाकेवास्ते तीन प्रदक्षिणा देवे.। तब गुरु "निथ्थारगपारगो होहि गुरुगुणेहिं वुड्ढाहि" ऐसें कहे. और जन (संघ) "पूर्णमनोरथवाला तूं हुआ है, तूं धन्य है, तूं पुण्यवान् है" ऐसें कहे.। ऐसें कहते हुए क्रमसें गुरुसंघादि वासक्षेप करे। तदपीछे फिर श्राद्ध समवसरणको तीन प्रदक्षिणा देवे। पीछे गुरुको तीन प्रदक्षिणा देवे। पीछे गुरुसाहित समवसरणको तीन प्रदक्षिणा देवे। पीछे गुरुसंघसाहित समवसरणको तीन प्रदक्षिणा देवे, पीछे नमस्कारादिश्रुतस्कंध अनुज्ञापनार्थ कायोत्सर्ग करे, चतुर्विंशातिस्तव चिंतन करे, पारके प्रकट लोगस्स कहे.। तदपीछे माला धारण करनेवाले तिसके स्वजनोंकेसाथ प्रतिमाके आगे जाके शक्रस्तव पढके "अणुजाणउ मे भयवं अरिहा" ऐसें कहके जिनपादऊपरि पूर्व स्थापित मालाको लेके निजबंधुके हाथमें स्थापन करके नंदिके समीप आय कर, श्राद्ध, मालाको गुरुसें मंत्रण करावे.। पीछे गुरु खडा होकर उपधानविधिका व्याख्यान करे. सो श्राद्ध भी, खडा होकर श्रवण करे. "परमपयपुरिपथ्थि" इत्यादि मालोबृंहण गाथायोंकरके गुरु देशना करे.।

तदनु ॥

तत्तो जिणपडिमाए पूआदेसाओ सुरभिगंधड्ढं ॥
अमिलाण सिअदामं गिण्हिअ गुरुणा सहथ्थेणं ॥ १ ॥
तस्सोभयखंधेसुं आरोवंतेण सुद्धचित्तेणं ॥
निस्संदेहं गुरुणा वत्तव्वं एरिसं वयणं ॥ २ ॥

मो भो सुलद्धनिअजम्म निचिअअइगरुअपुन्नपप्भार ॥
नारयतिरिअगईओ तुज्झावस्स निरुद्धाओ ॥ ३ ॥
नो बधगोसि सुदर तुममित्तो अयकनीअगुत्ताण ॥
नो दुल्लहो तुह जम्मतरेवि एसो नमुक्कारो ॥ ४ ॥
पचनमुक्कारभावओ अ जम्मतरेवि किर तुज्झ ॥
जाईकुलरूवाग्गसपयाओ पहाणाओ ॥ ५ ॥
अन्न च इमाओच्चिअ न हुति मणुआ कयावि जीअलोए ॥
दासा पेसा दुभगा नीआ विगलिंदिआ चेव ॥ ६ ॥
किं बहुणा जे इमिणा विहिणा एअ सुअ अहिजित्ता ॥
सुअमणि अविहाणेण सुद्धे सीले अभिरमिज्जा ॥ ७ ॥
नो ते जइ तेणचिअ भवेण निव्वाणमुत्तम पत्ता ॥
तोणुत्तर गेविज्जाइएसु सुइर अभिरमेउ ॥ ८ ॥
उत्तमकुलम्मि उक्किठलठ्ठसव्वगसुदरापयडा ॥
मव्वकलापतद्वा जणमणआणंदणा होउं ॥ ९ ॥
देविंदोवमरिद्धी दयावरा दाणविनयसपन्ना ॥
निव्विणकाममोगा धम्मं सयलं अणुठ्ठेउ ॥ १० ॥
सुहज्झाणानलनिदद्धघाइकम्मिंधणा महासत्ता ॥
उप्पन्नविमलनाणा विहुयमला झत्ति सिज्झंति ॥ ११ ॥

यह गाथा तीनवार गुरु कहे । इन गाथायोंका भावार्थ उपधानप्रकरणभाषार्थमें लिख दिया है ॥

तदपीछे तिसके स्कंधमें मालाप्रक्षेप करनी ॥ पीछे श्राद्धवर्ग आरात्रिक (आरती) गीतनृत्यादि बहुत करे । उपधानवाही श्रावकने तिस दिनमें आचाम्लादि तप करना, यदि पौषधशालामें मालारोपण होवे, तदा संघसहित जिनमंदिरमें जावे, चैत्यवंदना करके फिर पौषधागारमें आयकर मंडलीपूजादि करे ॥ इस उपधानविधिको निशीथ, महानिशीथ,

सिद्धांतके पढनेवालोंने श्रुतसामायिककरके माना है. और निशीथ महा-निशीथके तिरस्कार करनेवालोंने नही अंगीकार करा है. तिनोंने तो प्रतिमोद्वहनविधिकोही श्रुतसामायिककरके कथन करा है. ॥ माला भी कितनेक कौशेयपट्टसुत्रमयी (रेशमी) स्वर्ण, पुष्प, मोति, माणिक्य गर्भित, आरोपते हैं. और कितनेक श्वेत पुष्पमयी आरोपते हैं. तिसमें तो, अपनी संपत्तिही प्रमाण है. ॥ इतिव्रतारोपसंस्कारे श्रुतसामायिकारोपणविधिः ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे पंचदशव्रतारोपसंस्कारांतर्गतश्रुतसामायिकारोपणवि-धिवर्णनोनामैकोनत्रिंशःस्तंभः ॥ २९ ॥

॥ अथत्रिंशस्तम्भारम्भः ॥

अथ त्रिंशस्तंभमें व्रतसंस्कारांतर्गत प्रसंगसें कथन करी [illegible] दिनचर्या कहते हैं. दो मुहुर्त्त शेष रात्रि रहे श्रावक [illegible] मूत्रकी शंका दूर करे, और शुचि होकर पवित्र आसन[illegible] यथाविधिसें परमेष्ठि महामंत्रका जाप करे. पीछे कुलका, [illegible] श्रद्धाका, विचार करके, और स्तोत्रपाठसंयुक्त चैत्यवंदन [illegible] घरमें, वा धर्मघर (पौषधशालादि) में स्थित होकर, [illegible] क्रमणादि) करे. । तदपीछे प्रत्युष कालमें अपने [illegible] शुचि होके, शुचि वस्त्र पहिरके, भोग संसारिक सुख, [illegible] ऐसें अरिहंतकी पूजा करे. । तिसवास्ते जिनार्चनविधि, [illegible] नानुसारें कहते हैं. सोयथा ॥ श्राद्ध केवल दृढसम्यक्[illegible] निजघरमें, वा चैत्यमें अर्थात् बडे मंदिरमें, धार्मिक [illegible] शुचि वस्त्र पहरि, उत्तरासंग करी, स्ववर्णानुसारक[illegible] रीय, उत्तरासंगधारी, मुखकोश बांधी, एकाग्रचित्त [illegible] जिनपूजन, करे. । प्रथम जल, पत्र, पुष्प, अक्षत, [illegible] गंधादिकोंको निःपापता करे. ॥

"॥ ॐ आपोऽप्कायाः एकेंद्रिया जीवा निरवद्यार्हत्पूजाया निर्व्यथा सतु निरपाया सतु सद्गतय सतु न मेस्तु सघ-ट्टनहिंसापापमर्हदर्चने ॥" इति जलाभिमंत्रणम् ॥

"॥ ॐ वनस्पतयो वनस्पतिकाया जीवा एकेंद्रिया निरवद्या-र्हत्पूजाया निर्व्यथा सतु निरपाया सतु सद्गतय सतु न मेस्तु सघट्टनहिंसापापमर्हदर्चने ॥" इतिपत्रपुष्पफलधूपचंदनाद्यभिमंत्रणम् ॥

"॥ ॐ अग्नयोऽग्निकायाजीवा एकेंद्रिया निरवद्यार्हत्पूजायां निर्व्यथा सतु निरपाया सतु सद्गतय सतु न मेस्तु सघट्टनहिंसापापमर्हदर्चने॥" इति वन्हिदीपाद्यभिमंत्रणम् ॥

सर्वका अभिमंत्रण वासक्षेपसें तीन तीन वार करना ॥

तदपीछे। पुष्पगंधादि हाथमें लेके।

॥ ॐ त्रसरूपोहं संसारिजीव सुवासन सुमेध एकचित्तो [illegible]र्हदर्चने निर्व्यथो भूयासं निःपापो भूयासं निरु-प[illegible]स मत्म श्रिता अन्येपि संसारिजीवा निरव-द्यार्हदर्चने निर्व्यथा भूयासु निःपापाभूयासु ॥"

ऐसें कहके अपने आपको तिलक करना, पुष्पादिकरके अपना शिर अर्चन करना।

फिर पुष्प अक्षतादि हाथमें लेके।

"॥ ॐ पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसकाया एकद्वित्रिचतुपचेंद्रियास्तिर्यङ्मनुष्यनारकदेवगतिगताश्चतुर्दशरज्ज्वा-त्मकलोकाकाशनिवासिन इह जिनार्चने कृतानुमोदनाः संतु निःपापा संतु निरपाया संतु सुखिन संतु प्राप्तकामाः संतु मुक्ता संतु बोधमाप्नुवंतु ॥"

ऐसें पढके दशों दिशायोंमें गंध, जल, अक्षतादि क्षेप करना.

तदपीछे ।

शिवमस्तु सर्वजगतः परहितनिरता भवंतु भूतगणाः ॥
दोषा प्रयांतु नाशं सर्वत्र सुखीभ्रवंतु लोकाः ॥ १ ॥
सर्वेपि संतु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः ॥
सर्वे भद्राणि पश्यंतु मा कश्चिद्दुःखभाग् भवेत् ॥ २ ॥

यह आर्या और अनुष्टुप् छंद पढने. ।

तदपीछे ।

"॥ ॐ भूतधात्री पवित्रास्तु अधिवासितास्तु सुप्रोषितास्तु ॥"

ऐसें पढके प्रथम लीपी हुई भूमिमें जलसें प्रोक्षण (सेचन) करे. ।

तदपीछे ।

"॥ ॐ स्थिराय शाश्वताय निश्चलाय पीठाय नमः ॥"

ऐसें पढके धोयके चंदनसें लेपन करके स्वस्तिक करके अंकित (चिन्हित) ऐसा पूजापट्टस्थालादि स्थापन करे, और चैत्यमें तो स्थिरबिंब होनेसें इन दोनों मंत्रोंकरी तिसके भूमिजलपट्टादिकोंको अधिवासन करने. ।

तदपीछे ।

"॥ ॐ अत्र क्षेत्रे अत्र काले नामार्हंतो रूपार्हंतो द्रव्यार्हंतो भावार्हंतः समागताः सुस्थिताः सुनिष्ठिताः सुप्रतिष्ठिताः संतु ॥"

ऐसें पढके अर्हत् प्रतिमाको स्थापन करे निश्चलबिंबके हुए, चरण अधिवासन करे. ॥

तदपीछे अंजलिके अग्रभागमें पुष्प लेके ।

"॥ ॐ नमोर्हद्भ्यः सिद्धेभ्यस्तीर्णेभ्यस्तारकेभ्यो बुद्धेभ्यो बोधकेभ्यः सर्वजंतुहितेभ्यः इह कल्पनबिंबे भगवंतोर्हंतः सुप्रतिष्ठिताः संतु ॥"

ऐसें मौन करके कहके भगवत्के चरणोपरि पुष्प स्थापन करे । फिर भी जलार्द्र फूलोसें पूजापूर्वक कहे ॥

यथा ॥

" ॥ स्वागतमस्तु सुस्थितमस्तु सुप्रतिष्ठास्तु ॥ "

तदपीछे फिर पुष्पाभिषेक करके।

" ॥ अर्घ्यमस्तु पाद्यमस्तु आचमनीय मस्तु सर्वोपचारैः पूजास्तु॥ "

इन वचनोंकरके वारवार जिनप्रतिमाके ऊपर जलार्द्र पुष्पारोपण करे ।

तदपीछे जल लेके ।

ॐ अर्हं व। जीवन तर्पण हृद्य प्राणद मलनाशन॥
जल जिनार्च्चनेत्रैव जायता सुखहेतवे ॥ १ ॥

यह मंत्र पढके जलकरके प्रतिमाको भिषेक और स्नपन (स्नात्र) करे ॥

तदपीछे चदन कुकुम कर्पूर कस्तूरी आदि सुगध हाथमें लेके।

ॐ अर्हं ल। इद गंध महामोद बृहण प्रीणन सदा ॥
जिनार्चने च सत्कर्म्मसंसिद्ध्यै जायता मम ॥ १ ॥

यह मंत्र पढके विविध गधकरी जिनप्रतिमाको विलेपन करे ॥

तदपीछे पुष्पपत्रादि हाथमें लेके ।

ॐ अर्हं क्ष । नानावर्ण महामोद सर्वत्रिदशवल्लभ ॥
जिनार्चनेत्र ससिद्ध्यै पुष्प भवतु मे सदा ॥ १ ॥

यह मंत्र पढके जिनप्रतिमाके ऊपर सुगधमय विविध वर्णके पुष्प चढावे ॥

तदपीछे अक्षत (चावल) हाथमें लेके।

ॐ अर्हं तं। प्रीणन निर्मल बल्य मांगल्य सर्वसिद्धिद ॥
जीवन कार्यससिद्ध्यै भूयान्मे जिनपूजने॥ १ ॥

यह मंत्र पढके जिनप्रतिमाके ऊपर अक्षत आरोपण करे ॥

तदपीछे पूग (सुपारी) जायफल आदि वा वर्त्तमान ऋतुके (मौसमी) फल हाथमें लेके ।

ॐ अर्हँ फुं । जन्मफलं स्वर्गफलं पुण्यमोक्षफलं फलं ॥
दद्याज्जिनार्च्चनेत्रैव जिनपादाग्रसंस्थितम् ॥ १ ॥

यह मंत्र पढके जिनपादाग्रे फल ढोवे. ॥

तदपीछे धूप लेके ।

ॐ अर्हँ रं । श्रीखंडागरुकस्तूरीद्रुमनिर्याससंभवः ॥
प्रीणनः सर्व देवानां धूपोस्तु जिनपूजने ॥ १ ॥

यह पढके अग्निमें धूपक्षेप करे. ॥

पीछे फूल लेके ।

ॐ अर्हँ रं। पंचज्ञानमहाज्योतिर्म्मयाय ध्वांतघातिने ॥
द्योतनाय प्रतिमायादीपो भूयात्सदार्हते ॥ १ ॥

यह पढके दीपमध्ये पुष्प स्थापन करे. ॥

तदपीछे फुलोंको लेके ।

"॥ ॐ अर्हँ भगवद्भ्योर्हद्भ्यो जलगंधपुष्पाक्षतफलधूपदीपैः संप्रदानमस्तु ॐ पुण्याहं पुण्याहं प्रीयंतां प्रीयंतां भगवंतोर्हंतस्त्रिलोकस्थिताः नामाकृतिद्रव्यभावयुताः स्वाहा ॥" यह पढके फिर जिनपूजन करे. ॥

तदपीछे वासक्षेप लेके ।

"॥ ॐ सूर्यसोमांगारकबुधगुरुशुक्रशनैश्चरराहुकेतुमुखाग्रहाः इह जिनपादाग्रे समायांतु पूजां प्रतीच्छंतु ॥" ऐसें पढके जिनपादसें नीचे स्थापित ग्रहोंके ऊपर, वा स्नानपट्टके ऊपर वासक्षेप करे. ॥

तदपीछे ।

"॥ आचमनमस्तु गंधमस्तु पुष्पमस्तु अक्षतमस्तु फलमस्तु धुपोस्तु दीपोस्तु ॥" ऐसें पढके क्रमसें जल, गंध, पुष्प, अक्षत,

फल, धूप, दीपसें ग्रहोंका पूजन करे ॥

तदपीछे अंजलिअग्रमें फूल लेके ।

"॥ ॐ सूर्यसोमांगारकबुधगुरुशुक्रशनैश्चरराहुकेतुमुखाग्रहा सुपूजिता संतु सानुग्रहा॰ संतु तुष्टिदा संतु पुष्टिदाः संतु मांगल्यदा संतु महोत्सवदा संतु ॥" ऐसें कहके ग्रहोंके ऊपर पुष्पारोप करे ॥

फिर इसी रीतिकरके ।

"॥ ॐ इंद्राग्नियमनिर्ऋतिवरुणवायुकुबेरेशाननागब्रह्मणो लोकपाला सविनायका सक्षेत्रपाला इह जिनपादाग्रे समागच्छंतु पूजां प्रतीच्छंतु ॥" ऐसें कहके पूजापट्टोपरि लोकपालोंको वासक्षेप करे ॥

तदपीछे ।

"॥ आचमनमस्तु गंधमस्तु पुष्पमस्तु अक्षतमस्तु फलमस्तु धूपोस्तु दीपोस्तु ॥" ऐसें पढके क्रमसें जल, गंध, पुष्प, अक्षत, फल, धूप, दीपसें लोकपालोंका पूजन करे ॥

तत्पीछे अंजलिमें पुष्प लेके ।

"॥ ॐ इंद्राग्नियमनिर्ऋतिवरुणवायुकुबेरेशाननागब्रह्मणो लोकपाला सविनायका सक्षेत्रपाला सुपूजिताः संतु सानुग्रहाः संतु तुष्टिदा संतु पुष्टिदा संतु मांगल्यदा संतु महोत्सवदा संतु ॥" यह पढके लोकपालोपरि पुष्पारोपण करे ॥

तदपीछे पुष्पांजलि लेके ।

"॥ अस्मत्पूर्वजा गोत्रसंभवा देवगतिगता सुपूजिता संतु सानुग्रहाः संतु तुष्टिदा संतु पुष्टिदा संतु मांगल्यदा संतु महोत्सवदा संतु ॥" ऐसें कहके जिनपादाग्रे पुष्पांजलिक्षेप करे ॥

तदपीछे फिर भी पुष्पांजलि लेके ।

"॥ॐ अर्हँ अर्हद्भक्ताष्टनवत्युत्तरशतदेवजातयः सदेव्यः पूजां प्रतिच्छंतु सुपूजिताः संतु सानुग्रहाः संतु तुष्टिदाः संतु पुष्टिदाः संतु मांगल्यदाः संतु महोत्सवदाः संतु॥" ऐसें कहके जिनपादाग्रे अंजलिक्षेप करे. ॥

तदपीछे अंजलिके अग्रभागसें पुष्प धारण करके अर्हन्मंत्र स्मरण करके तिस फूलसें जिनप्रतिमाको पूजे।

अर्हन्मंत्रो यथा ॥

"॥ॐ अर्हँ नमो अरहंताणं ॐ अर्हँ नमो सयंसंबुद्धाणं ॐ अर्हँ नमो पारगयाणं ॥"

यह त्रिपद मंत्र श्रीमत् अर्हन् भगवंतोंके आगे नित्य स्मरण करे. कैसा है मंत्र? भोगदेवलोकादि सुख और मोक्षका देनेवाला है. तथा सर्व पापोंका नाश करनेवाला है.। विशेष इतना है कि, यह मंत्र अपवित्र पुरुषोंने, अन्यचित्तवाले अर्थात् उपयोगरहित पुरुषोंने, नही स्मरण करना. तथा सस्वर अर्थात् उच्चशब्दसें नही स्मरण करना, नास्तकोंको नही सुनावना, और मिथ्यादृष्टियोंको भी नही सुनावना.। यह पूर्वोक्त अर्हन्मंत्र एकसौआठ (१०८) वार, वा तदर्द्ध अर्थात् ५४ वार जपे. ॥

तदपीछे दो पात्रोंकरके नैवेद्य ढौकन करे. पीछे एक पात्रमें जलका चुलुक लेके।

ॐ अर्हँ। नानाषड्रससंपूर्णं नैवेद्यं सर्वमुत्तमं ॥
जिनाग्रे ढौकितं सर्वसंपदे मम जायतां ॥ १ ॥

यह पढके एकत्र नैवेद्यमें चुलुकक्षेप करे.।

फिर दूसरा जलचुलुक लेके।

"॥ ॐ सर्वे गणेशक्षेत्रपालाद्याः सर्वेग्रहाः सर्वे दिक्पालाः सर्वेऽस्मत्पूर्वजोद्भवादेवाः सर्वे अष्टनवत्युत्तरशतं देवजातयः सदेव्योऽर्हद्भक्ताः अनेन नैवेद्येन संतर्पिताः संतु सानुग्रहाः संतु तुष्टिदाः संतु पुष्टिदाः संतु मांगल्यदाः संतु महो-

फल, धूप, दीपसें ग्रहोंका पूजन करे ॥

तदपीछे अजलिअग्रमें फूल लेके ।

"॥ ॐ सूर्यसोमागारकबुधगुरुशुक्रशनैश्चरराहुकेतुमुखाग्रहा सुपूजिता सतु सानुग्रहा सतु तुष्टिदा सतु पुष्टिदा सतु मागल्यदा सतु महोत्सवदा सतु ॥" ऐसें कहके ग्रहोंके ऊपर पुष्पारोप करे ॥

फिर इसी रीतिकरके ।

"॥ ॐ इद्राग्नियमनिर्ऋतिवरुणवायुकुबेरेशाननागब्रह्मणो लोकपाला सविनायका सक्षेत्रपाला इह जिनपादाग्रे समागच्छतु पूजा प्रतीच्छतु ॥" ऐसें कहके पूजापट्टोपरि लोकपालोंको वासक्षेप करे ॥

तदपीछे ।

"॥आचमनमस्तु गधमस्तु पुष्पमस्तु अक्षतमस्तु फलमस्तु धुपोस्तु दीपोस्तु ॥" ऐसें पढके क्रमसें जल, गध, पुष्प, अक्षत फल धूप, दीपसें लोकपालोंका पूजन करे ॥

तत्पश्चात् अजलिमें पुष्प लेके ।

"॥ ॐ इद्राग्नियमनिर्ऋतिवरुणवायुकुबेरेशाननागब्रह्मणो लोकपाला सविनायका सक्षेत्रपाला सुपूजिता सतु सानुग्रहा सतु तुष्टिदा सतु पुष्टिदा सतु मागल्यदा सतु महोत्सवदा सतु ॥" यह पढके लोकपालोपरि पुष्पारोपण करे।

तदपीछे पुष्पाजलि लेके ।

"॥ अस्मत्पूर्वजा गोत्रसभवा देवगतिगता सुपूजिता सतु सानुग्रहा सतु तुष्टिदा सतु पुष्टिदा सतु मागल्यदा सतु महोत्सवदा सतु ॥" ऐसें कहके जिनपादाग्रे पुष्पांजलिक्षेप करे।

तदपीछे फिर भी पुष्पाजलि लेके ।

"॥ॐ अर्हं अर्हद्भक्ताष्टनवत्युत्तरशतदेवजातयः सदेव्यः पूजां प्रतिच्छंतु सुपूजिताः संतु सानुग्रहाः संतु तुष्टिदाः संतु पुष्टिदाः संतु मांगल्यदाः संतु महोत्सवदाः संतु॥"

कहके जिनपादाग्रे अंजलिक्षेप करे. ॥

तदपीछे अंजलिके अग्रभागसें पुष्प धारण करके अर्हन्मंत्र
तिस फूलसें जिनप्रतिमाको पूजे ।

अर्हन्मंत्रो यथा ॥

"॥ॐ अर्हं नमो अरहंताणं ॐ अर्हं नमो
ॐ अर्हं नमो पारगयाणं ॥"

यह त्रिपद मंत्र श्रीमत् अर्हन् भगवंतोंके आगे
कैसा है मंत्र? भोगदेवलोकादि सुख और मोक्ष ... प्रबोधम्॥
सर्व पापोंका नाश करनेवाला है. । विशेष इतना ... ुणाय ॥२॥
वित्र पुरुषोंने, अन्यचित्तवाले अर्थात् उपयोग
करना. तथा सस्वर अर्थात् उच्चशब्दसें नहीं
नही सुनावना, और मिथ्यादृष्टियोंको भी नहीं
अर्हन्मंत्र एकसौआठ (१०८) वार, वा ... देने ॥ १ ॥

तदपीछे दो पात्रोंकरके नैवेद्य ढौकन
चुलुक लेके ।

ॐ अर्हं । नानाषड्रस
जिनाग्रे ढौकितं सर्वसंपत्

यह पढके एकत्र नैवेद्यमें
फिर दूसरा जलचुलुक लेके ... ाणम् ॥ २ ॥

"॥ ॐ सर्वे गणेशक्षेत्र
सर्वेऽस्मत्पूर्वजोद्भवाद ... तो यदासीत् ॥
सदेव्योऽर्हद्भक्ताः ... थैवारि ।
संतु तुष्टिदाः संतु ... नात्युपचीयमानम् ॥ ३ ॥

त्सवः ा सतु ॥" ऐसें कहके दूसरे नैवद्यके ऊपर पुलुकक्षेप करे ॥

॥ इंद्रवज्रा ॥

यो ज न्मकाले पुरुषोत्तमस्य सुमेरुशृंगे कृतमज्जनैश्च ॥
देवै ऽ ।दत्त कुसुमांजलिस्स ददातु सर्वाणि समीहितानि ॥१॥

॥ वसततिलका ॥

रा ज्याभिषेकसमये त्रिदशाधिपेन ।
छत्रध्वजांक तलयोः पदयोर्जिनस्य ॥
क्षि प्तोतिभक्तिभरत कुसुमाजलिर्य ।
स प्रीणयत्वनुदिन सुधिया मनांसि ॥ २ ॥

॥ शार्दूल ॥

देवैः ै कृतकेवले जिनपतौ सानंदभक्त्यागतै ।
सदे ृ व्यपरोपणक्षमशुभव्याख्यानबुद्धयाशये ॥
आम ोदान्वितपारिजातकुसुमैर्य स्वामिपादाग्रतो ।
भक्त स्स प्रतनोतु चिन्मयहृदा भद्राणि पुष्पाजलि ॥३॥

इन तीनों वृत्तोंकरके तीन वार पुष्पांजलिक्षेप करे ॥

॥ इंद्रवज्रा ॥

ला वण्यपु ण्यागमृतोर्हतो यस्तद्वृद्धिभाव सहसैव धत्ते ॥
सर्वा विश्वभ र्तुर्लवणावतारो गर्भावतार सुधिया विहंतु ॥ १ ॥

॥ अनुष्टुप् ॥

ल ावण्यैकनिधेर्विश्वभर्तुस्तद्वृद्धिहेतुकृत् ॥
ल वणोत्तरणं कुर्याद्भवसागरतारणम् ॥ २ ॥

इन दो वृ त्तोंकरके दो वार लवण उतारना ॥

॥ अनुष्टुप् ॥

सक्ष ारता सदासक्ता निहतुमिव सोद्यमः ॥
लवणाव ्धर्जलरणांबुमिपात्ते सेवते पदौ ॥ १ ॥

यह पढके लवणमिश्र जल उत्तारना. ॥

॥ आर्या ॥

भुवनजनपवित्रिताप्रमोदप्रणयनजीवनकारणं गरीयः
जलमविकलमस्तु तीर्थनाथक्रमसंस्पर्शिसुखावहं जनानाम् ॥ १ ॥

यह पढके केवल जलक्षेप करे. ॥

॥ अनुष्टुप् ॥

सप्तभीतिर्विघातार्हं सप्तव्यसननाशकृत् ॥
यन् सप्तनरकद्वारसप्ताररितुलां गतम् ॥ १ ॥

॥ वसंततिलका ॥

सप्तांगराज्यफलदानकृतप्रमोदं। सत्सप्ततत्त्वविदनंतकृतप्रबोधम् ॥
तच्छक्रहस्तधृतसंगतसप्तदीपमारात्रिकं भवतु सप्तमसद्गुणाय ॥२॥

यह पढके आरात्रिकावतारण करे. ॥

॥ अनुष्टुप् ॥

विश्वत्रयभवैर्जीवैः सदेवासुरमानवैः ॥
चिन्मंगलं श्रीजिनेंद्रात् प्रार्थनीयं दिने दिने ॥ १ ॥

॥ वसंततिलका ॥

यन्मंगलं भगवतः प्रथमार्हतः श्री-
संयोजनैः प्रतिबभूव विवाहकाले ॥
सर्वासुरासुरवधूमुखगीयमानं ।
सर्वर्षिभिश्च सुमनोभिरुदीर्यमाणम् ॥ २ ॥
दास्यंगतेषु सकलेषु सुरासुरेषु ।
राज्येर्हतः प्रथमसृष्टिकृतो यदासीत् ॥
सन्मंगलं मिथुनपाणिगतीर्थवारि ।
पादाभिषेक विधिनात्युपचीयमानम् ॥ ३ ॥

॥ शार्दूल ॥

यद्विश्वाधिपतेः समस्ततनुभृत्संसारनिस्तारणे ।
तीर्थे पुष्टिमुपेयुषि प्रतिदिनं वृध्धिं गतं
तत् संप्रत्युपनीतपूजनविधौ ।
भूयान्मगलमक्षय च जगते स्वस्त्यस्तु ॥

इन चारों वृत्तोंकरके मगल प्रदीप करे। पीछे शक्रस्तव नार्चनविधि ॥

अथ आतिशय करी अर्हद्भक्तिवाला कोइक श्रावक, नित्य, वा किसी कार्यांतरमें, जिनस्नात्र करनेकी इच्छा करे, तिसका विधि

प्रथम स्नात्रपीठके ऊपर, दिक्पालग्रह अन्य देवतपूजन क प्रकारकरके जिनप्रतिमाको पूजके, मगलदीप वर्जित करके, पूर्वोपचारयुक्त श्रावक, गुरुसमक्ष संघके मिले हुए, चार गीतवाद्यादि उत्सवके हुए पुष्पांजलि हाथमें लेके।

"॥नमो अरहताणं, नमोर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः॥" यह पढके दो वृत्त (छद) पढे।

यथा॥ ॥शार्दूलवृत्तम्॥

कल्याण कुलवृद्धिकारि कुशलं श्रावार्हमत्यद्भुतं ।
सर्वाघप्रतिघातन गुणगणालंकारविभ्राजितम् ॥
कातिश्रीपरिरंभण प्रतिनिधिप्रख्यं जयत्यर्हतां ।
ध्यान दानवमानवैर्विरचित सर्वार्थससिद्धये ॥ १ ॥

॥ मालिनीवृत्तम् ॥

भुवनभविकपापध्वांतदीपायमान ।
परमतपरिघातप्रत्यनीकायमानम् ॥
धृतिकुवलयनेत्रावश्यमत्रायमान ।
जयति जिनपतीना ॥ २ ॥

यह पढके पुष्पांजलिक्षेपण करे. ॥ इतिपुष्पांजलिक्षेपः ॥

॥ इंद्रवज्रा ॥

कर्प्पूरसिल्हाधिकक्काकतुंडकस्तुरिकाचंदनवंदनीयः ॥
धूपो जिनाधीश्वरपूजनेऽत्र सर्वाणि पापानि दहत्वजस्रम् ॥ १ ॥

यह पढके सर्वपुष्पांजलियोंके बीचमें धूपोत्क्षेप करे. ॥ और शक्रस्तव पढे. ॥ तदपीछे जलपूर्ण कलश लेके, श्लोक और वसंततिलका पढे. ॥

यथा ॥ ॥ अनुष्टुप् ॥

केवली भगवानेकः स्याद्वादी मंडनैर्विना ॥
विनापि परिवारेण वंदितः प्रभुतोर्ज्जितः ॥ १ ॥

॥ वसंततिलका ॥

तस्येशितुः प्रतिनिधिः सहजश्रियाढ्यः ।
पुष्पैर्विनापि हि विना वसनप्रतानैः ॥
गंधैर्विना मणिमयाभरणैर्विनापि ।
लोकोत्तरं किमपि दृष्टिसुखं ददाति ॥ २ ॥

यह पढके प्रतिमाको कलशाभिषेक करे. ॥ इतिप्रतिमायाः कलशाभिषेकः ॥ पुष्प अलंकारादि उत्तारके, कलशाभिषेक करके, पीछे फिर पुष्पांजलि लेके, दो काव्य पढे. ।

यथा ॥ ॥ शार्दूलवृत्तम् ॥

विश्वानंदकरी भवांबुधितरी सर्वापदां कर्त्तरी ।
मोक्षाध्वैकविलंघनाय विमला विद्या परा खेचरी ॥
दृष्ट्या भावितकल्मषापनयने बद्धाप्रतिज्ञा दृढा ।
रम्यार्हत्प्रतिमा तनोतु भविनां सर्वं मनोवांछितम् ॥ १ ॥

॥ आर्या ॥

परमतररमासमागमोत्थप्रसृमरहर्षविभासिसन्निकर्षा ॥
जयति जगति जिनेशस्य दीप्तिः प्रतिमा कामितदायिनी जनानाम् २

॥ शार्दूल ॥

यद्विश्वाधिपते समस्ततनुभृत्संसारनिस्तारणे ।
तीर्थे पुष्टिमुपेयुषि प्रतिदिनं वृद्धिं गतं मंगलम् ॥
तत् संप्रत्युपनीतपूजनविधौ विश्वात्मनामर्हतां ।
भूयान्मंगलमक्षयं च जगते स्वस्त्यस्तु संघाय च ॥ ४ ॥

इन चारों वृत्तोंकरके मंगलप्रदीप करे । पीछे शक्रस्तव पढे ॥ इतिजिनार्चनविधि ॥

अथ अतिशय करी अर्हद्भक्तिवाला कोइक श्रावक, नित्य, या पर्वदिनमें, या किसी कार्यांतरमें, जिनस्नात्र करनेकी इच्छा करे तिसका विधि यह है।

प्रथम स्नात्रपीठके ऊपर, दिक्पालसह अन्य देवतपूजन वर्जके, पूर्वोक्त प्रकारकरके जिनप्रतिमाको पूजके, मंगलदीप वर्जित आरात्रिक करके, पूजोपचारयुक्त श्रावक, गुरुसमेत संघके मिले हुए, चार प्रकारके वाद्यादि उत्सवके हुए पुष्पांजलि हाथमें लेके।

॥ नमो अरहंताणं, नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः ॥"

यह वृत्त (छंद) पढे ।

॥ शार्दूलवृत्तम् ॥

कल्याणं कलवृद्धिकारि कुशलं श्लाघार्हमत्यद्भुतं ।
सर्वाद्यप्रतियातनं गुणगणालंकारविभ्राजितम् ॥
कान्तिश्रीपरिरम्भणं प्रतिनिधिप्रख्यं जगत्यर्हतां ।
ध्यानं ज्ञानसमानवर्णिगदितं सर्वार्थसंसिद्धये ॥ १ ॥

॥ मालिनीवृत्तम् ॥

भुवनभविकपापध्वान्तनिर्वापमानं ।
परमतपविधानप्रस्तुताराधनानाम् ॥
प्रतिकृत्यनवद्यारम्भसंपाद्यमानं ।
जगति विजयतां ता ज्ञानसंयुक्तमानाम् ॥ २ ॥

यह पढके पुष्पांजलिक्षेपण करे. ॥ इतिपुष्पांजलिक्षेपः ॥

॥ इंद्रवज्रा ॥

कर्पूरसिल्हाधिककाकतुंडकस्तुरिकाचंदनवंदनीयः ॥
धूपो जिनाधीश्वरपूजनेऽत्र सर्वाणि पापानि दहत्वजस्रम् ॥ १ ॥

यह पढके सर्वपुष्पांजलियोंके वीचमें धूपोत्क्षेप करे. ॥ और शक्रस्तव पढे. ॥ तदपीछे जलपूर्ण कलश लेके, श्लोक और वसंततिलका पढे. ॥

यथा ॥ ॥ अनुष्टुप् ॥

केवली भगवानेकः स्याद्वादी मंडनैर्विना ॥
विनापि परिवारेण वंदितः प्रभुतोर्जितः ॥ १ ॥

॥ वसंततिलका ॥

तस्येशितुः प्रतिनिधिः सहजश्रियाढ्यः ।
पुष्पैर्विनापि हि विना वसनप्रतानैः ॥
गंधैर्विना मणिमयाभरणैर्विनापि ।
लोकोत्तरं किमपि दृष्टिसुखं ददाति ॥ २ ॥

यह पढके प्रतिमाको कलशाभिषेक करे. ॥ इतिप्रतिमायाः कलशाभिषेकः ॥ पुष्प अलंकारादि उत्तारके, कलशाभिषेक करके, पीछे फिर पुष्पांजलि लेके, दो काव्य पढे. ।

यथा ॥ ॥ शार्दूलवृत्तम् ॥

विश्वानंदकरी भवांबुधितरी सर्वापदां कर्त्तरी ।
मोक्षाध्वैकविलंघनाय विमला विद्या परा खेचरी ॥
दृष्ट्या भावितकल्मषापनयने बद्धाप्रतिज्ञा दृढा ।
रम्यार्हत्प्रतिमा तनोतु भविनां सर्वं मनोवांछितम् ॥ १ ॥

॥ आर्या ॥

परमतररमासमागमोत्थप्रसृमरहर्षविभासिसन्निकर्षा ॥
जयति जगति जिनेशस्य दीप्तिः प्रतिमा कामितदायिनी जनानाम् २

यह पढके फिर पुष्पांजलिक्षेप करे । पीछे पूर्वोक्त 'कर्पूरसिल्हा' वृत्तकरके धूपोत्क्षेप करे, और शक्रस्तव पढे । पीछे फिर पुष्पांजलि हाथमें लेके, दो काव्य पढे ॥

यथा ॥ ॥ पृथिवीवृत्तम् ॥

न दुःखमतिमात्रकं न विपदा परिस्फूर्जितं ।
न चापि यशसा क्षितिर्न विषमा नृणां दुस्थता ॥
न चापि गुणहीनता न परमप्रमोदः क्षयो ।
जिनार्चनकृतां भवे भवति चैव निःसंशयम् ॥ १ ॥

॥ मंदाक्रांता ॥

एतत्कृत्यं परममसमानंदसंपन्निदानं ।
पातालौकः सुरनरहितं साधुभिः प्रार्थनीयम् ॥
सर्वारंभापचयकरणं श्रेयकासंनिधानं ।
साध्यं सर्वैर्विमलमनसा पूजनं विश्वभर्त्तुः ॥ २ ॥

यह पढके फिर पुष्पांजलिक्षेप करे । तदपीछे धूप हाथमें लेके पढे ।

यथा ॥ ॥ शार्दूल ॥

कर्पूरागरुसिल्हचंदनबलामासीशशैलेयक ।
श्रीवासद्रुमधूपरालघुसृणैरत्यंतमामोदितः ॥
व्योमस्थप्रसरच्छशांककिरणज्योतिः प्रतिच्छादको ।
धूपोत्क्षेपकृतो जगत्रयगुरोस्सौभाग्यमुत्तंसतु॥ १ ॥

॥ आर्या ॥

सिद्धाचार्यप्रभृतीन् पंच गुरून् सर्वदेवगणमधिकम् ॥
क्षेत्रे काले धूपः प्रीणयतु जिनार्चने रचितः ॥ २

यह पढके धूपोत्क्षेप करे । शक्रस्तव पढे । पीछे फिर पुष्प ॥

व्योमस्थप्रसरच्छशांककिरणज्योतिःप्रतिच्छादको ॥
धुपोत्क्षेपकृतो जगत्त्रयगुरोस्सौभाग्यमुत्तंसतु ॥ १ ॥

॥ आर्या ॥

सिद्धाचार्यप्रभृतीन् पंच गुरून् सर्वदेवगणमधिकम् ॥
क्षेत्रे काले धूपः प्रीणयतु जिनार्च्चने रचितः ॥ २ ॥

यह पढके धुपोत्क्षेप करे। शक्रस्तव पढे.॥पीछे फिर पुष्पांजलि लेके।

॥ वसंततिलका ॥

जन्मन्यनंतसुखदे भुवनेश्वरस्य ।
सुत्रामभिः कनकशैलशिरःशिलायाम् ॥
स्नात्रं व्यधायि विविधांबुधिकूपवापी ।
कासारपल्वलसरित्सलिलैः सुगंधैः ॥ १ ॥

॥ इंद्रवज्रा ॥

तां बुद्धिमाधाय हृदीहकाले स्नात्रं जिनेंद्रप्रतिमागणस्य ॥
कुर्वंति लोकाः शुभभावभाजो महाजनो येन गतः स पंथाः ॥२॥

यह पढके पुष्पांजलिक्षेप करे।

तदपीछे ॥ ॥ वृत्तपाठः ॥

परिमलगुणसारसद्गुणाढया बहुसंसक्तपरिस्फुरद्द्विरेफा ॥
बहुविधबहुवर्णपुष्पमाला वपुषि जिनस्य भवत्वमोघयोगा ॥१॥

यह वृत्त पढके पगोंसें लेके मस्तकपर्यंत जिनप्रतिमाको पुष्पारोपण करे.। पीछे 'कर्प्पूरसिल्हाधि०' इसकरके धूपोत्क्षेप करे.। पीछे शक्रस्तव पढे.। पीछे फिर पुष्पांजलि हाथमें लेके।

॥ शार्दूल ॥

साम्राज्यस्य पदोन्मुखे भगवति स्वर्गाधिपैर्गुंफितो।
मंत्रित्वं बलनाथतामधिकृतिं स्वर्णस्य कोशस्य च ॥
बिभ्रद्भिः कुसुमांजलिर्विनिहितो भक्त्या प्रभोः पादयो-

र्दु खौघस्य जलाजलिं सतनुतादालोकनादेव हि ॥ १ ॥

॥ इन्द्रवज्रा ॥

चेत समाधातुमनिंद्रियार्थ पुण्य विधातु गणनाव्यतीतम् ॥
निक्षिप्यतेर्हत्प्रतिमापदाग्रे पुष्पाजलि प्रोद्गतभक्तिभावैः ॥२॥

यह पढके पुष्पाजलिक्षेप करे । सर्व पुष्पाजलियोंके अतमें धूपोत्क्षेप और शक्रस्तवपाठ अवश्य करना ॥ तदनतर पुष्पादिकरके प्रतिमा पूजे। तदपीछे मणि, स्वर्ण, रूप्य, ताम्र, मिश्रधातु, माटीमय, कलशे स्नात्रकी चौकीऊपरि स्थापन करना तिनमें गगोदकमिश्रित सर्व जलाशयोंके पानी स्थापन करे चदन, कुकुम, कर्पूरादि सुगध द्रव्योंकरके वासित करे चदनादि करके, और पुष्पमालायोंकरके, कलशोंको पूजे जल पुष्पादिअभिमत्रणमत्र पूर्वे कहे हैं ते जानने । तदपीछे सो एक श्रावक, अथवा वहुत श्रावक, पूर्वोक्त वेष शोचवाले गधसें हस्तका लेपन करके, मालाभूषित कठवाले तिन कलशोंको हाथऊपरि रक्खे । तदपीछे स्वस्वबुद्धिअनुसारसें जिनजन्माभिषेकचिन्हित स्तोत्रोंको जिनस्तुतिग त षट्पदादि (छप्पयआदि) को पढे । तदपीछे शार्दूलवृत्त पढे ।

यथा ॥ ॥ शार्दूलवृत्त ॥

जाते जन्मनि सर्वविष्टपपतेरिंद्रादयो निर्जरा ।
नीत्वा त करसपुटेन बहुभि सार्द्ध विशिष्टोत्सवैः ॥
शृगे मेरुमहीधरस्य मिलिते सानदंदेवीगणे ।
स्नात्रारभमुपानयति बहुधा कुभावुगधादिकम् ॥ १ ॥

॥ आर्या ॥

योजनमुखान् रजतनिष्कमयान् मिश्रधातुमृद्रचितान् ॥
दधते कलशान् मरुर्या तेषा युगपद्खदतिमिता ॥ २ ॥
वापीकूपन्हदाबुधितडागपल्वलनदीझरादिभ्य ॥
आनीतैर्विमलजलै स्नानाधिकं पूरयति च ते ॥ ३ ॥

॥ शार्दूलवृत्तम् ॥

कस्तूरीघनसारकुंकुममुराश्रीखंडकंकोल्लकै- ।
र्ह्रीबेरादिसुगंधवस्तुभिरलंकुर्वंति तत्संवरम् ॥
देवेंद्रा वरपारिजातबकुलश्रीपुष्पजातीजपा ।
मालाभिः कलशाननानि दधते संप्राप्तहारस्रजः ॥ ४ ॥
ईशानाधिपतेर्निजांककुहरे संस्थापितं स्वामिनं ।
सौधर्माधिपतिर्म्मिताद्भुतचतुःप्रांगूक्षशृंगोद्गतैः ॥
धारावारिभरैः शशांकविमलैः सिंचत्यनन्याशयः ।
शेषाश्चैव सुराप्सरस्समुदयाः कुर्वंतिकौतूहलम् ॥ ५ ॥

॥ वसंततिलका ॥

वीणामृदंगतिमिलार्द्धकटार्द्धनूर ।
ढक्काहुडुक्कपणवस्फुटकाहलाभिः ॥
सद्वेणुझज्झरकदुंदुभिघुंघुणीभि-
र्वाद्यैः सृजंति सकलाप्सरसो विनोदम् ॥ ६ ॥

॥ श्लोकः ॥

शेषाः सुरेश्वरास्तत्र गृहीत्वा करसंपुटे ॥
कलशांस्त्रिजगन्नाथं स्नपयंति महामुदः ॥ ७ ॥

॥ शार्दूलवृत्तम् ॥

तस्मिंस्तादृशउत्सवे वयमपि स्वर्लोकसंवासिनो ।
श्रांता जन्मविवर्त्तनेन विहितश्रीतीर्थसेवाधियः ॥
जातास्तेन विशुद्धबोधमधुना संप्राप्य तत्पूजनं ।
स्मृत्वैतत्करवाम विष्टपविभोः स्नात्रं मुदामास्पदम् ॥ ८ ॥

॥ गाथा ॥

बालत्तणम्मि सामिअ सुमेरुसिहरम्मि कणयकलसेहिं ॥

दुं खौघस्य जलांजलिं सतनुतादालोकनादेव हि ॥ १ ॥

॥ इंद्रवज्रा ॥

चेत समाधातुमनिंद्रियार्थं पुण्यं विधातुं गणनाव्यतीतम् ॥
निक्षिप्यतेर्हत्प्रतिमापदाग्रे पुष्पांजलिः प्रोद्गतभक्तिभावैः ॥२॥

यह पढके पुष्पांजलिक्षेप करे । सर्व पुष्पांजलियोंके अंतमें धूपोत्क्षेप, और शक्रस्तवपाठ अवश्य करना ॥ तदनंतर पुष्पादिकरके प्रतिमा पूजे। तदपीछे मणि, स्वर्ण, रूप्य, ताम्र, मिश्रधातु, माटीमय, कलशे स्नात्रकी चौकीऊपरि स्थापन करना तिनमें गंगोदकमिश्रित सर्व जलाशयोंके पानी स्थापन करे चंदन, कुंकुम, कर्पूरादि सुगंध द्रव्योंकरके वासित करे चंदनादि करके, और पुष्पमालायोंकरके, कलशोंको पूजे जल पुष्पादिअभिमंत्रणमंत्र पूर्वे कहे हैं ते जानने । तदपीछे सो एक श्रावक, अथवा बहुत श्रावक, पूर्वोक्त वेष शोचवाले गंधसें हस्तको लेपन करके, मालाभूषित कंठवाले तिन कलशोंको हाथऊपरि रक्खे । तदपीछे स्वस्वबुद्धिअनुसारसें जिनजन्माभिषेकचिन्हित स्तोत्रोंको जिनस्तुतिगर्भित षट्पदादि (छप्पयआदि) को पढे । तदपीछे शार्दूलवृत्त पढे ।

॥ शार्दूलवृत्त ॥

जात जन्मनि सर्वविष्टपपतेरिंद्रादयो निर्जरा ।
नीत्वा तं करसंपुटेन बहुभिः सार्द्धं विशिष्टोत्सवे ॥
शृंगे मेरुमहीधरस्य मिलिते सानंददेवीगणे ।
स्नात्रारंभमुपानयंति बहुधा कुंभांनुगंधादिकम् ॥ १ ॥

॥ आर्या ॥

योजनमुखान् रजतनिष्कमयान् मिश्रधातुमृद्रचितान् ॥
दधते कलशान् मख्या तेषां युगपद्खदतिमिता ॥ २ ॥
वापीकूपन्हदांबुधितडागपल्वलनदीझरादिभ्यः ॥
आनीतैर्विमलजलैः स्नानाधिकं पूरयंति च ते ॥ ३ ॥

॥ शार्दूलवृत्तम् ॥

कस्तूरीघनसारकुंकुममुराश्रीखंडकंक्कोल्लकै- ।
र्ह्रीबेरादिसुगंधवस्तुभिरलंकुर्वंति तत्संवरम् ॥
देवेंद्रा वरपारिजातबकुलश्रीपुष्पजातीजपा ।
मालाभिः कलशाननानि दधते संप्राप्तहारस्रजः ॥ ४ ॥
ईशानाधिपतेर्निजांककुहरे संस्थापितं स्वामिनं ।
सौधर्माधिपतिर्म्मिताद्भुतचतुःप्रांशूक्षशृंगोद्गतैः ॥
धारावारिभरैः शशांकविमलैः सिंचत्यनन्याशयः ।
शेषाश्चैव सुराप्सरस्समुदयाः कुर्वंतिकौतूहलम् ॥ ५ ॥

॥ वसंततिलका ॥

वीणामृदंगतिमिलार्द्धकटार्द्धनूर ।
ढक्काहुडुक्कपणवस्फुटकाहलाभिः ॥
सद्वेणुझज्झरकदुंदुभिघुंघुणीभि-
र्वाद्यैः सृजंति सकलाप्सरसो विनोदम् ॥ ६ ॥

॥ श्लोकः ॥

शेषाः सुरेश्वरास्तत्र गृहीत्वा करसंपुटे ॥
कलशांस्त्रिजगन्नाथं स्नपयंति महामुदः ॥ ७ ॥

॥ शार्दूलवृत्तम् ॥

तस्मिंस्तादृशउत्सवे वयमपि स्वर्लोकसंवासिनो ।
भ्रांता जन्मविवर्त्तनेन विहितश्रीतीर्थसेवाधियः ॥
जातास्तेन विशुद्धबोधमधुना संप्राप्य तत्पूजनं ।
स्मृत्वैतत्करवाम विष्टपविभोः स्नात्रं मुदामास्पदम् ॥ ८ ॥

॥ गाथा ॥

बालत्तणम्मि सामिअ सुमेरुसिहरम्मि कणयकलसेहिं ॥

तियसासुरेहिं ण्हविओ ते धन्ना जेहिं दिट्ठोसि ॥ ९ ॥

यह पढके कलशोंकरके जिनप्रतिमाको अभिषेक करे । तदपीछे बडे छोटेके क्रमकरके सर्व पुरुष स्त्रिया भी गंधोदकोंकरके स्नात्र करे । तदपीछे अभिषेकके अंतमें गंधोदकपूर्ण कलश लेके वसंततिलकावृत्त पढे।

यथा ॥ ॥ वसंततिलका ॥

संघे चतुर्विध इह प्रतिभासमाने श्रीतीर्थपूजनकृतप्रतिभासमाने॥
गंधोदकैः पुनरपि प्रभवत्वजस्रं स्नात्रं जगत्त्रयगुरोरतिपूतधारैः ॥१॥

यह पढके जिनपादोपरि कलशाभिषेक करके स्नात्रनिवृत्ति करे । तद पीछे पुष्पांजलि लेके वृत्त पढे ।

यथा ॥ ॥ प्रहर्षिणी ॥

इंद्राग्ने यम निर्ऋते जलेश वायो
वित्तेशेश्वर भुजगा विरंचिनाथ ॥
संघस्याधिकतमभक्तिभारभाजः
स्नात्रेस्मिन् भुवनविभो श्रीयं कुरुध्वम् ॥ १ ॥

यह पढके स्नात्रपीठके पास रहे कल्पित दिक्पालपीठऊपरि, पुष्पांजलिक्षेप करे । तदपीछे प्रत्येक दिशामें यथाक्रमकरके दिक्पालोंको स्थापन करे । पीछे एकेक दिक्पालका पूजन करे ।

यथा ॥ ॥ शिखरिणी ॥

सुराधीश श्रीमन् सुदृढतरसम्यक्त्ववसते ।
शचीकांतोपांतस्थितविबुधकोट्यानतपद ॥
ज्वलद्वज्राघातक्षपितदनुजाधीशकटक ।
प्रभो स्नात्रे विघ्नं हर हर हरे पुण्यजयिनाम् ॥ १ ॥

"॥ ॐ शक्र इह जिनस्नात्रमहोत्सवे आगच्छ २ । इदं जलं गृहाण २ । गंधं गृहाण २ । पुष्पं गृहाण २ । धूपं गृहाण २ ।

दिपं गृहण २। नैवेद्यं गृहाण २। विघ्नं हर २। दुरितं हर २। शांतिं कुरु २। तुष्टिं कुरु २। पुष्टिं कुरु २। ऋद्धिं कुरु २। वृद्धिं कुरु २। स्वाहा॥" इति पुष्पगंधादिभिरिंद्रपूजनम्॥१॥

॥ वपछंदासिकवृत्तपाठ. ॥

बहिरंतरनंततेजसा विदधत्कारणकार्यसंगतिः॥
जिनपूजनआशुशुक्षणे कुरु विघ्नप्रतिघातमंजसा॥ १॥

"॥ ॐ अग्ने इह० शेषं पूर्ववत्॥" ॥ इत्यग्निपूजनम्॥ २॥

॥ वसंततिलका ॥

दीप्तांजनप्रभतनो तनुसंनिकर्ष।
वाहारिवाहनसमुद्धुरदंडपाणे॥
सर्वत्र तुल्यकरणीयकरस्थधर्म॥
कीनाश नाशय विपद्विसरं क्षणेत्र॥ १॥

" ॐ यम इह० शेषं पूर्ववत्॥ "इति यमपूजनम्॥ ३॥

॥ आर्या ॥

राक्षसगणपरिवेष्टितचेष्टितमात्रप्रकाशहतशात्रो॥
स्नात्रोत्सवेत्र निर्ऋते नाशय सर्वाणि दुःखानि॥ १॥

"॥ ॐ निर्ऋते इह० शेषं पूर्ववत्॥" इति निर्ऋतिपूजनम्॥ ४॥

॥ स्रग्धरा ॥

कल्लोलानीतलोलाधिककिरणगणस्फीतरत्नप्रपंच।
प्रोद्भूतौर्वाग्निशोभं वरमकरमहापृष्टदेशोत्क्रमानम्॥
चंचच्चीरिल्लिशृंगिप्रभृतिझषगणैरंचितं वारुणं नो।
वर्ष्मच्छिद्यादपायं त्रिजगदधिपतेः स्नात्रसत्रे पवित्रे॥ १॥

"॥ ॐ वरुण इह० शेषं पूर्ववत्॥" इति वरुणपूजनम्॥ ५॥

इह जिनपतिपूजासंनिधौ
ममपनयसमुदायं
"॥ ॐ वायो इह० शेषं पूर्ववत् ॥" इति

॥ वसंततिलका ॥

कैलासवास विलसत्कमलाविलास ।
सशुभ्रहासकृतदोस्त्यकथाविलास
श्रीमत्कुबेरभगवत्स्नपनेऽत्र सर्व ।
विघ्नं विनाशय
"॥ ॐ कुबेर इह० शेषं पूर्ववत् ॥"

॥ वसंततिलका ॥

गंगातरंगपरिखेलनकीर्णवारि
नित्य जिनस्नपनहृष्टहृद स्मरारे विघ्नं
"॥ ॐ ईशान इह० शेषं पूर्ववत ॥"

॥ वृत्तपाठः ॥

फणमणिमहसा विभासमानाः ।
फणिन इह जिनाभिषेककाले ।
"॥ ॐ नागा इह० शेषं पूर्ववत् ॥" इति

॥ द्रुतविलंबितपाठः ॥

विशदपुस्तकशस्तकरद्वय । प्रथितवेदतया प्रमवप्रभ
भगवतः स्नपनावसरे चिरं । हरतु विघ्नभरं द्रुहिणो विभुः
"॥ॐ ब्रह्मन् इह० शेषं पूर्ववत् ॥" इति ब्रह्मणः पूजनम् ॥

ऐसें क्रमसें दिकपालपूजन करे । तदपीछे फिर भी हाथमें पुष्पांजलि लेकर आर्या पढे ॥

यथा ॥ ॥ आर्या ॥

दिनकरहिमकरभूसुतशशिसुतबृहतीशकाव्यरवितनयाः ॥
राहो केतो क्षेत्रप जिनार्च्चने भवत सन्निहिताः ॥ १ ॥

यह पढके ग्रहपीठोपरि पुष्पांजलिक्षेप करे । तदपीछे पूर्वादिक्रमसें सूर्य, शुक्र, मंगल, राहु, शनि, चंद्र, बुध, बृहस्पति, इनको स्थापन करे. हेठ केतुको, और ऊपर क्षेत्रपालको स्थापन करे. । तदपीछे प्रत्येक ग्रहका पूजन करे. ।

तद्यथा ॥ ॥ वसंततिलका ॥

विश्वप्रकाशकृतभव्यशुभावकाश ।
ध्वांतप्रतानपरिपातनसद्विकाश ॥
आदित्य नित्यमिह तीर्थकराभिषेके ।
कल्याणपल्लवनमाकलय प्रयत्नात् ॥ १ ॥

" ॥ ॐ सूर्य इह० शेषं पूर्ववत् ॥ " इति सूर्यपूजनम् ॥ १ ॥

॥ मालिनी ॥

स्फटिकधवलशुद्धध्यानविध्वस्तपाप ।
प्रमुदितदितिपुत्रोपास्यपादारविंद ॥
त्रिभुवनजनशश्वज्जंतुजीवानुविद्य ।
प्रथय भगवतोर्च्चां शुक्र हे वीतविघ्नाम् ॥ १ ॥

" ॥ ॐ शुक्र इह० शेषं पूर्ववत् ॥ " इति शुक्रपूजनम् ॥ २ ॥

॥ आर्या ॥

प्रबलबलमिलितबहुकुशललालनाललितकलितविघ्नहते ।
भौमाजिनस्नपनेऽस्मिन् विघटय विघ्नागमं सर्वम् ॥ १ ॥

" ॥ ॐ मंगल इह० शेषं पूर्ववत् ॥" इति मंगलपूजनम् ॥ ३ ॥

॥ मालिनी ॥

ध्वजपटकृतकीर्त्तिस्फूर्त्तिदीप्यद्विमान ।
प्रमृमरवहुवेगत्यक्तसर्वोपमान ॥
इह जिनपतिपूजासंनिधौ मातरिश्व-
न्नपनयसमुदाय म यवाह्यातपानाम् ॥ १ ॥

"॥ ॐ वायो इह० शेप पूर्ववत् ॥" इति वायुपूजनम् ॥ ६ ॥

॥ वसततिलका ॥

कैलासवास विलसत्कमलाविलास ।
सशुद्धहासकृतदौस्थ्यकथानिरास ॥
श्रीमत्कुवेर भगवत्स्नपनेत्र सर्वं ।
विघ्नं विनाशय शुभाशय शीघ्रमेव ॥ १ ॥

"॥ ॐ कुवेर इह० शेप पूर्ववत् ॥" इति कुवेरपूजनम् ॥ ७ ॥

॥ वसततिलका ॥

गगातरगपरिखेलनकीर्णवारि प्रोद्यत्कपर्दपरिमडितपार्श्वदेशम् ॥
नित्य निनस्नपनहृष्टहृद स्मरारे विघ्न निहंतु सकलस्य जगत्रयस्य १

"॥ ॐ इशान इह० शेप पूर्ववत ॥" इतीशानपूजनम् ॥ ८ ॥

॥ वृत्तपाठ ॥

फणमणिमहसा विभासमानाः। कृतयमुनाजलसंश्रयोपमानाः॥
फणिन इह जिनाभिपेककाले। वलिभवनादमृतसमानयतु ॥१॥

"॥ ॐ नागा इह० शेप पूर्ववत् ॥" इति नागपूजनम् ॥ ९ ॥

॥ द्रुतविलंविनपाठ ॥

विशदपुस्तकशस्तकरद्वय । प्रथितवेदतया प्रमदप्रदः ॥
भगवतः स्नपनावसरे चिर । हरतु विघ्नभर द्रुहिणो विभु ॥१॥

"॥ ॐ व्रह्मन् इह० शेप पूर्ववत ॥" इति ब्रह्मण पूजनम् ॥ १० ॥

ऐसें क्रमसें दिकपालपूजन करे । तदपीछे फिर भी हाथमें पुष्पांजलि लेकर आर्या पढे ॥

यथा ॥ ॥ आर्या ॥

दिनकरहिमकरभूसुतशशिसुतबृहतीशकाव्यरवितनयाः ॥
राहो केतो क्षेत्रप जिनार्च्चने भवत सन्निहिताः ॥ १ ॥

यह पढके ग्रहपीठोपरि पुष्पांजलिक्षेप करे । तदपीछे पूर्वादिक्रमसें सूर्य, शुक्र, मंगल, राहु, शनि, चंद्र, बुध, बृहस्पति, इनको स्थापन करे. हेठ केतुको, और ऊपर क्षेत्रपालको स्थापन करे. । तदपीछे प्रत्येक ग्रहका पूजन करे. ।

तद्यथा ॥ ॥ वसंततिलका ॥

विश्वप्रकाशकृतभव्यशुभावकाश ।
ध्वांतप्रतानपरिपातनसद्विकाश ॥
आदित्य नित्यमिह तीर्थकराभिषेके ।
कल्याणपल्लवनमाकलय प्रयत्नात् ॥ १ ॥

"॥ ॐ सूर्य इह० शेषं पूर्ववत् ॥" इति सूर्यपूजनम् ॥ १ ॥

॥ मालिनी ॥

स्फटिकधवलशुद्धध्यानविध्वस्तपाप ।
प्रमुदितदितिपुत्रोपास्यपादारविंद ॥
त्रिभुवनजनशश्वज्जंतुजीवानुविद्य ।
प्रथय भगवतोर्च्चां शुक्र हे वीतविघ्नाम् ॥ १ ॥

"॥ ॐ शुक्र इह० शेषं पूर्ववत् ॥" इति शुक्रपूजनम् ॥ २ ॥

॥ आर्या ॥

प्रबलबलमिलितबहुकुशललालनाललितकलितविघ्नहते ।
भौमाजिनस्नपनेऽस्मिन् विघटय विघ्नागमं सर्वम् ॥ १ ॥

"॥ ॐ मंगल इह० शेषं पूर्ववत् ॥" इति मंगलपूजनम् ॥ ३ ॥

॥ स्रग्धरा ॥

अस्तांह सिंहसंयुक्तस्य विक्रममीति

सिंहिकासुत पूजायामत्र संनिहितो

"॥ ॐ राहो इह० शेषं पूर्ववत् ॥" इति

॥ वृत्तम् ॥

फलिनीदलनील लीलयांत

रवितनय प्रबोधमेतात् जे

"॥ ॐ शने इह० शेषं पूर्ववत् ॥" इति

॥ द्रुतविलंबितपाठः ॥

अमृतवृष्टिविनाशितसर्वदोषपित विघ्नविष

वितनुतात्तनुतामिह देहिनां

"॥ ॐ चंद्र इह० शेष पूर्ववत् ॥" इति

॥ वृत्तम् ॥

वुधविवुधगणार्चितांध्रियुग्म प्रमथितदैत्य

जिनचरणसमीपगोधुनात्व रचय मतिं

"॥ ॐ बुध इह० शेषं पूर्ववत् ॥" इति

॥ वृत्तम् ॥

सुरपतिहृदयावतीर्णमत्रप्रचुरकलाविकलप्रकाश

जिनपतिचरणाभिषेककाले कुरु

"॥ ॐ गुरो इह० शेष पूर्ववत् ॥" इति गुरुपूजनम् ॥

॥ द्रुतविलंबित ॥

भवतुकेतुरनश्वरसपदां सततहेतुरवारितविक्रमः ॥ १

"॥ ॐ केतो इह० शेषं पूर्ववत् ॥" इति केतुपूजनम् ॥ १

॥ आर्या ॥

कृष्णसितकपिलवर्णप्रकीर्णकोपासितांघ्रियुग्मसदा ॥
श्रीक्षेत्रपाल पालय भविकजनं विघ्नहरणेन ॥ १ ॥

"॥ ॐ क्षेत्रपाल इह० शेषं पूर्ववत्॥" इति क्षेत्रपालपूजनम् ॥१०॥

तदपीछे गंध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीपसें पूर्व कहे मंत्रोंसेंही जिनप्रतिमाकी पूजा करे. तदपीछे हाथमें वस्त्र लेके वसंततिलकावृत्तपाठ पढे. । यथा ॥

॥ वसंततिलकावृत्त ॥

त्यक्त्वाखिलार्थवनितादिकभूरिराज्यं
निःसंगतामुपगतो जगतामधीशः ॥
भिक्षुर्भवन्नपि स वर्ष्मणि देवदूष्य-
मेकं दधाति वचनेन सुरेश्वराणाम् ॥ १ ॥

यह पढके वस्त्र चढावे. ॥ इति वस्त्रपूजा ॥

तदपीछे नानाविध खाद्य, पेय, भक्ष्य, लेह्यसंयुक्त नैवेद्य, दो स्थानमें करके तिनमेंसें एक पात्र जिनके आगे स्थापके, श्लोक पढे. । यथा ॥

॥ श्लोक ॥

सर्वप्रधानसद्भूतं देहिदेहिसुपुष्टिदम् ॥
अन्नं जिनाग्रे रचितं दुःखं हरतु नः सदा ॥ १ ॥

यह पढके जलचुलुककरके जिनप्रतिमाको नैवेद्य देवे. । तदपीछे दूसरे पात्रमें चुलुककरकेही, ग्रहदिक्पालादिकोंको श्लोक पढके नैवेद्य देवे. । श्लोको यथा ॥

भोभो सर्वेग्रहालोकपालाः सम्यग्दृशः सुराः ॥
नैवेद्यमेतद्गृह्णन्तु भवंतो भयहारिणः ॥ १ ॥

स्नान करायाविना भी पूजामें जिनप्रतिमाको इसही मंत्रकरके नैवेद्य देना. ॥ तदपीछे आरात्रिक मंगलदीपक पूर्ववत्। और शक्रस्तव भी

पढना ॥ जिस प्रतिमाका स्थानस्थितहीका स्नपन कराया जावे, तिसके वास्ते सर्वकुछ तहांही करना ॥

श्रीखंडकर्पूरकृरगनाभिप्रियंगुमासीनखकाकतुंडैः ॥
जगत्त्रयस्याधिपतेः सपर्याविधौ विदध्यात्कुशलानि धूपः॥१॥

इस वृत्तकरके सर्वपुष्पांजलियोंके विचाले धूपोत्क्षेप करना, और शक्रस्तवपाठ पढना ॥

प्रतिमाविसर्जन यथा ॥

"॥ ॐ अर्हं नमो भगवतेर्हते समये पुन पूजा प्रतीच्छ स्वाहा॥"

इति पुष्पन्यासेन प्रतिमाविसर्ज्जनं ॥

"॥ ॐ न्ह इंद्रादयोलोकपाला सूर्यादयो ग्रहा सक्षेत्रपालाः सर्वदेवा सर्वदेव्य पुनरागमनाय स्वाहा ॥" इति पुष्पादिभिर्दिक्पालग्रहविसर्ज्जनम् ॥

पाठे ॥

ज्ञानाहीनं क्रियाहीनं मंत्रहीनं च यत्कृतम् ॥
तत्सर्वं कृपया देवा क्षमंतु परमेश्वरा ॥ १ ॥
आवाह्न न जानामि न जानामि विसर्ज्जनम् ॥
पूजां चैव न जानामि त्वमेव शरणं मम ॥ २ ॥
कीर्त्तिं श्रियो राज्यपदं सुरत्वं न प्रार्थये किंचन देवदेव ॥
मत्प्रार्थनीयं भगवत्प्रदेयं स्वदासतां मां नय सर्वदापि ॥३॥

इति सर्वकरणीयांते जिनप्रतिमादेवादिविसर्जनविधि ॥

अर्हदर्चनाविधिमें भी ऐसेंही विसर्जन जानना ॥ इति लघुस्नात्रविधि ॥

तदपीछे (गृहचैत्यपूजानंतर) वडे देवमंदिरमें जाकर, शक्रस्तवादि स्तोत्रोंकरके जिनराजकी स्तवना करके, और जिनराजका पूजन करके,

प्रत्याख्यान चिंतवन करे. । पीछे चैत्यको प्रदक्षिणा करके, पौषधशाला (उपाश्रय) में जाकर, देवकीतरें वडे आनंदसें साधुयोंको वंदन करे. सुंदरबुद्धिवाला होकर, पूजासत्कार करे. । पीछे एकाग्रचित्त होकर साधुके मुखसें धर्मदेशना श्रवण करे. पीछे मनमें धारा हुआ प्रत्याख्यान करे. पीछे गुरुको नमस्कार करके कर्मादानको अच्छीतरें त्यागके, धन उपार्जन करे. यथायोग्य स्थानमें व्यापार समाचरे. कुत्सित बुरा कर्म प्राणोंके नाश हुए भी न करना. । पीछे अपने घरदेहरामें अर्हत्की मध्यान्हपूजा करके, अन्नपानी समाचरे. भक्तिसें साधुयोंको दान देके, अतिथीयोंकी पूजा आदरसत्कार करके, और दीन अनाथ मार्गणगणको संतोषके, अपने व्रत और कुलके उचित भोज्य वस्तुका भोजन करे. ॥ साधुको आमंत्रण ऐसें करे. ॥

क्षमाश्रमण पूर्वक गृहस्थ कहें ।

"॥ हे भगवन् फासुएणं एसणिज्जेणं असणपाणखाइम-साइमेणं वथ्थकंबलपायपुच्छणपाडिग्गहेणं ओसहभेसज्जेणं पाडिहेररूवेण सिज्जासंथारएणं भयवं मम गेहे अणुग्गहो कायव्वो ॥"

तदपीछे (भोजनानंतर) गुरुके पास शास्त्रका विचार करे, पढे, सुने. । पीछे धन उपार्जन करके घरको जाकर संध्यापूजा करके सूर्यके अस्त होनेसें दो घडी पहिले, निजवांछित भोजन करे. सायंकालमें धर्मा-गारमें सामायिककरके षडावश्यक प्रतिक्रमण करे. पीछे अपने घरसें आके शांतबुद्धिवाला हुआ, जब एक पहर रात्रि जावे तब अर्हत्स्तवादिक पढके प्रायः ब्रह्मचर्यव्रतधारी होके सुखसें निद्रा लेवे. जब नींदका अंत आवे तब परमेष्ठिमंत्रस्मरणपूर्वक जिन, चक्री, अर्द्धचक्री, आदिके चरितोंको चिंतन करे. और व्रतादिकोंके मनोरथ अपनी इच्छासें करे, ऐसें अहोरात्रिकी चर्या अप्रमत्त होके समाचरता हुआ, और यथावत् कहे व्रतमें रहा हुआ, गृहस्थ भी शुद्ध अर्थात् कल्याणभागी होता है. । इति व्रतारोपसंस्कारे गृहिणां दिनरात्रिचर्या ॥

वासनागुरुसामग्री विभवो देहपाटवम्॥
संघश्चतुर्विधो हर्षो व्रतारोपे गवेष्यते ॥ १ ॥
वरकुसुमगधअक्खयफलजलनेवज्जधूवदीवेहिं ॥
अट्ठविहकम्ममहणी जिणपूआ अट्ठहा होइ ॥ २ ॥

इत्याचार्यश्रीवर्द्धमानसूरिकृताचारदिनकरस्य गृहिधर्मप्रतिबद्धपंचदशमव्रतारोपसस्कारस्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचितोबालावबोधस्समाप्तस्तत्समाप्तौ च समाप्तोय त्रिंश स्तंभ ॥ ३० ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानदसूरीश्वरविरचितेतत्त्वनिर्णयप्रासादग्रंथेपंचदशमव्रतारोपसस्कारवर्णनोनामत्रिंश स्तंभ ॥ ३० ॥

॥ अथैकत्रिंशस्तम्भारम्भः ॥

पूर्वोक्त २७।२८।२९।३०। स्तभोंमें पचदशम (१५) व्रतारोपसस्कारका वर्णन किया, अब इस इकतीस (३१) स्तभमें षोडशम (१६) अत्यस स्कारका वर्णन करते हैं ॥

श्रावक यथावृत् वृत्तोंकरके निज भवको पालके कालधर्मके प्राप्त हुए प्रधान आराधना करे, तिसका विधि यह है । जिन जन्मादि कल्याणक स्थानोंमें निर्जीव शुचि पवित्र स्थंडिल–जगामें, वा अरण्यमें वा अपने घरमें, विधिसें अनशन करना । तहा शुभस्थानमें ग्लानकोपर्यंत आराधना करावनी । तथा अवश्यमेव अमुकवेला निकट मरण होवेगा ऐसें ज्ञानके हुए, तिथिवारनक्षत्रचद्रबलादि न देखना । तहा सघका मीलना करना । गुरु, ग्लानको जैसें सम्यक्त्वारोपणमें तैसें ही नदि करे । नवर इतना विशेष है सर्व नदि देववंदन कायोत्सर्गादि पूर्वोक्त विधि 'सलेहणा आराहणा' इस अभिलापकरके करावणा और वैयावृत्त्य कर कायोत्सर्गानंतर ।

"॥ आराधना देवता आराधनार्थं करेमि काउस्सग्ग अन्नत्थउससिएण० जाव–अप्पाण वोसिरामि ॥ " कहके कायोत्सर्ग करे कायोत्सर्गमें चार लोगस्स चिंतवन करना, पारके आराधना स्तुति कहनी ।

सा यथा ॥

यस्याः सान्निध्यतो भव्या वांछितार्थप्रसाधकाः ॥

श्रीमदाराधना देवी विघ्नव्रातापहास्तु वः॥ १॥ शेषं पूर्ववत् ॥

तदपीछे तिसही पूर्वोक्तविधिसें सम्यक्त्वदंडकका उच्चारण, द्वादशव्रतोंका उच्चारण करावणा. । वासक्षेपकायोत्सर्गादि भी, 'संलेखना आराधना' के आलापककरके तैसेंही जाणना. । प्रदक्षिणा करनी, ग्लानकी शक्तिके अनुसार होवे भी, और नही भी होवे. । दंडकादिमें 'जावनियमंपज्जुवासामि' के स्थानमें 'जावज्जीवाए' ऐसें कहना. । तदपीछे सर्व जीवोंकेसाथ अपराधकी क्षामणा करनी । पीछे श्रावक परमेष्ठिमंत्रोच्चारपूर्वक गुरुके सन्मुख हाथ जोडके कहें ।

खामेमि सव्वजीवे सव्वे जीवा खमंतु मे ॥
मित्ती मे सव्वभूएसु वेरं मज्झ न केणइ ॥ १ ॥

गुरु कहें ।

"॥ खामेह जो खमइ तस्स अथ्थी आराहणा जो न खमइ तस्स नथ्थि आराहणा ॥" तदपीछे श्रावक क्षमाश्रमणपूर्वक कहें "। भयवं अणुजाणह ।" गुरु कहें "। अणुजाणामि ।" श्रावक परमेष्ठिमंत्रपाठपूर्वक कहें ।

"॥ जे मए अणंतेणं भवप्भमणेणं पुढविकाइआ आउकाइआ तेउकाइआ वाउकाइआ वणस्सइकाइआ एगिंदिआ सुहुमा वा बायरा वा पज्जत्ता वा अपज्जत्ता वा कोहेण वा माणेण वा मायाए वा लोहेण पंचिंदिअट्टेण वा रागेण वा दोसेण वा घाइआ वा पीडिआ वा मणेणं वायाए काएणं तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥"

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके ।

"॥ जे मए अणंतेणं भवप्भमणेणं बेइंदिआ वा सुहुमा वा बायरा वा० शेषं पूर्ववत् ॥"

फिर परमेष्ठिमन्त्र पढके ।

"॥ जे मए अणंतेणं भवप्भमणेण ... शेषं पूर्ववत् ॥"

फिर परमेष्ठिमन्त्र पाठपूर्वक कहें ।

"॥ जे मए अणतेणं भवप्भमणेणं चउरिंदिआ बायरा वा० शेष पूर्ववत् ॥"

फिर परमेष्ठिमन्त्र पाठपूर्वक कहें ।

"॥ जे मए अणंतेण भवप्भमणेण पंचिंदिआ वा नेरइआ वा तिरक्खजोणिआ वा जलयरा वा वा खयरा वा सन्निआ वा असन्निआ वा सुहमा वा बायरा शेष पूर्ववत् ॥"

फिर परमेष्ठिमन्त्र पाठपूर्वक श्रावक कहें ।

"॥ ज मए अणंतेण भयप्भमणेणं अलिअं भणिअं वा माणेण वा मायाए वा लोहेण वा पंचिंदिअट्टेण वा दोसेण वा मणेण वायाए काएणं तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

फिर परमेष्ठिमन्त्र पढके कहें ।

"॥ ज मए अणतेण भवप्भमणेण अदिन्नं गहिअं वा माणेण वा० शेष पूर्ववत् ॥"

फिर परमेष्ठिमन्त्र पढके ।

"॥ जं मए अणतेण भवप्भमणेणं दिव्वु माणुस्सं तिरिच्छं सेवि अं कोहेण वा माणेण वा० शेष पूर्ववत् ॥"

फिर परमेष्ठिमन्त्र पढके ।

"॥ ज मए अणंतेणं भवप्भमणेणं अट्ठारस पावट्ठाणाई कोहेण वा माणेण वा० शेष पूर्ववत् ॥"

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके ।

"॥ जं मे पुढविकायगयस्स सिलालेट्टुसक्करासन्हावालुआगेरिअसुवन्नाइमहाधाउरूवं सरीरं पाणिवहे पाणिसंघट्टणे पाणिपीडणे पाववट्टणे मिच्छत्तपोसणे ठाणे संलग्गं तं निंदामि गरिहामि वोसिरामि ॥"

"॥ जं मे पुढविकायगयस्स सिलालेट्टुसक्करासन्हावालुआगेरिअवसुन्नाईमहाधाउरूवं सरीरं अरिहंतचेइएसु अरिहंतबिंबेसु धम्मट्ठाणेसु जंतुरक्खणट्ठाणेसु धम्मोवगरणेसु संलग्गं तं अणुमोआमि कल्लाणेणं अभिनंदेमि ॥"

फिर परमेष्टिमंत्र पढके ।

"॥ जं मे आउकायगयस्स जलकरगमाहिआओस्साहिमहरतणुरूवं सरीरं पाणिवहे पाणिसंघट्टणे पाणिपीडणे पाववट्टणे मिच्छत्तपोसणे ठाणे संलग्गं तं निंदामि गरिहामि वोसिरामि ॥"

"॥ जं मे आउकागयस्स जलकरगमाहिआओस्साहिमहरतणुरूवं सरीरं अरिहंतचेइएसु अरिहंतबिंबेसु धम्मट्ठाणेसु जंतुरक्खणट्ठाणेसु धम्मोवगरणेसु जिणन्हाणेसु तन्हदाहावहरणेसु संलग्गं तं अणुमोआमि कल्लाणेणं अभिनंदेमि ॥"

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके ।

"॥ जं मे तेउकायगयस्स अगणिइंगालमम्मुरजालाअलायविज्जुउक्कातेअरूवं सरीरं पाणिवहे पाणिसंघट्टणे पाणिपीडणे पाववट्टणे मिच्छत्तपोसणे ठाणे संलग्गं तं निंदामि गिरिहामि वोसिरामि ॥"

"॥ जं मे तेउकायगयस्स अगणिइंगालमम्मुरजालाअलायविज्जुउक्कातेअरूवं सरीरं सीआवहारे जिणपूआधूवकरणे नेवेज्जपाए

छुहाहरणाहारपाए संलग्गं तं
देमि ॥ "

फिर परमेष्ठिमंत्र पढ़के ।

" ॥ जं मे वाउकायगयस्स
पाणिसंघट्टणे पाणिपीडणे पावबद्दणे
तं निंदामि गरिहामि वोसिरामि ॥ "

" ॥ जं मे वाउकायगयस्स वाउ[illegible]
क्खणे पाणिजीवणे साहूण वेयावच्चे धम्माबहा
एमि कल्लाणेण अभिनंदेमि ॥ "

फिर परमेष्ठिमंत्र पढ़के ।

"॥ जं मे वणस्सइकायगयस्स
निज्जासरूवं सरीरं पाणिवहे पाणिसंघट्टणे
मिच्छत्तपोसणे ठाणे संलग्गं तं निंदामि

" ॥ जं मे वणस्सइकायगयस्स
अरसनिज्जासरूव सरीर छुहाहरणेसु
ट्ठाणेसु नेवज्जकरणेसु जंतुरक्खणेसु संलग्गं र
णेणं अभिनंदेमि ॥ "

फिर परमेष्ठिमंत्र पढ़के ।

" ॥ जं मे तसकायगयस्स
मनहुनसारूवं सरीरं पाणिवहे पाणिसंघट्टणे
मिच्छत्तपोसणे ठाणे संलग्गं तं निंदामि

" ॥ जं मे तसकायगयस्स
मनहुनसारूवं सरीरं अरिहंतचेइए

जंतुरक्खणट्ठाणेसु धम्मोवगरणेसु संलग्गंतं अणुमोएमि कल्लाणेणं अभिनंदेमि ॥ ”

फिर परमेष्टिमंत्र पढके ।

“॥ जं मए इथ्थ भवे मणेणं वायाए काएणं दुट्ठं चिंतिअं दुट्ठं भासिअं दुट्ठं कयं तं निंदामि गरिहामि वोसिरामि ॥ ”

“॥ जं मए इथ्थ भवे मणेणं वायाए काएणं सुट्ठु चिंतिअं सुट्ठु भासिअं सुट्ठु कयं तं अणुमोएमि कल्लाणेणं अभिनंदेमि ॥ ”

यहां पहिलां समारोपितसम्यक्त्व व्रतको भी, फिर सम्यक्त्व व्रतारोप करना. और जिसको पहिलें सम्यक्त्व व्रतारोप न करा होवे, तिसको भी अंतकालमें सम्यक्त्व व्रतारोप करना योग्य है. । जिसको पहिलां व्रतारोप करा होवे, तिसको इस अंतसमयमें एकसौचौवीस अतिचारोंकी आलोचना करनी. । वे अतिचार आवश्यकादि सूत्रोंसें जान लेने. । तदपीछे आलोचनाविधि करना, सो प्रायश्चित्तविधिसें जानना. । तदपीछे गुरु सर्व संघसहित वासअक्षतादि ग्लानके शिरमें निक्षेप करे. ॥ इत्यंतसंस्कारे आराधनाविधिः ॥

तदपीछे ग्लान (रोगी—बीमार) क्षमाश्रमण परमेष्टिमंत्र पाठपूर्वक कहें ॥

आयरियउवज्झाए सीसे साहम्मिए कुलगणे अ ॥
जे मे कया कसाया सव्वे तिविहेण खामेमि ॥ १ ॥
सव्वस्स समणसंघस्स भगवओ अंजलिं करिय सीसे ॥
सव्वं खमावइत्ता खमामि सव्वस्स अहयंपि ॥ २ ॥
सव्वस्स जीवरासिस्स भावओ धम्मनिहियनियचित्तो ॥
सव्वं खमावइत्ता खमामि सव्वस्स अहयंपि ॥ ३ ॥

“॥ भयवं जं मए चउगइगएणं देवा तिरिआ मणुस्सा नेरइआ चउकसाओवगएणं पंचिंदिअवसट्टेणं इहम्मि भवे अन्नेसु वा भवग्गहणेसु मणेणं वायाए काएणं दूमिआ संताविआ अभिताइया

तस्स मिच्छामि दुक्कडं तेहिं अहं
हओ तमहंपि खमामि ॥ "

तदपीछे गुरु वदकसहित इन तीनों गाथाका करे । तदपीछे ग्लान, गुरु साधु साध्वी श्रावक क्षामणां करे । यहां गुरुयोंको वस्त्रादि दान, और जानना ॥ इत्यंतसस्कारे क्षामणाविधिः ॥

अथ मृत्युकालके निकट हुए, ग्लान, महापूजा स्नात्रमहोत्सव ध्वजारोपादि करवावे, लगवावे । तदपीछे परमेष्ठिमंत्रोच्चारपूर्वक पढे । यथा ॥

जे मे जाणंतु जिणा अवराहा जेसुर
तेहं आलोएमि उवट्ठिओ सव्वकालंपि ॥ १ ॥
छउमथ्थो मूढमणो कित्तियमित्तंपि संभरइ जीवो
जं च न सुमरामि अहं मिच्छामि दुक्कडं तस्स
ज ज मणेण बद्ध जं जं वायाइ भासिअं
काएण कय मिच्छामि दुक्कडं तस्स ॥ ३ ॥
खामेमि सव्वजीवे सव्वे जीवा खमंतु मे ॥
मित्ती मे सव्वभूएसु वेरं मज्झ न केणइ ॥ ४ ॥

इति ग्लानपाठ ॥

तदपीछे तीन नमस्कार पाठपूर्वक करें।

" ॥ चत्तारि मगल अरिहंता मगल सिद्धा [illegible] मंगलं केवलिपन्नत्तो धम्मो मगलं । चत्तारि [illegible] अरिहता लोगुत्तमा सिद्धा लोगुत्तमा साहू लोगु[illegible] लिपन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमो । चत्तारि सरणं [illegible] अरिहंते सरणं पवज्जामि सिद्धे सरणं [illegible] सरणं पवज्जामि केवलिपन्नत्तं धम्मं सरणं

यह पाठ तीन वार पढे। पीछे गुरुके वचनसें अष्टादश (१८) पापस्थानकोंको वोसरावे व्युत्सर्जन करे.।

यथा ॥

"॥ सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि । सव्वं मुसावायं पच्चक्खामि। सव्वं अदिन्नादाणं प० । सव्वं मेहुणं प० । सव्वं परिग्गहं प० । सव्वं राईभोअणं प० । सव्वं कोहं प० । सव्वं माणं प० । सव्वं मायं प० । सव्वं लोहं प० । सव्वं पिज्जं प० । सव्वं दोसं कलहं अप्भक्खाणअरईरईपेसुन्नं परपरिवायं मायामोसं मिच्छादसंणसल्लं इच्चेइआइं अट्ठारस पावट्ठाणाइं दुविहं तिविहेणं वोसिरामि अपच्छिमम्मि ऊसासे तिविहं तिविहेणं वोसिरामि ॥ "

तदपीछे गीतार्थगुरु, श्रीयोगशास्त्रके पांचमे प्रकाशके कथनसें, और कालप्रदीपादिशास्त्रके कथनसें, ग्लानके आयुका क्षय जानके * संघकी, ग्लानके संबंधियोंकी, तथा नगरके राजादिकी अनुमति लेके, अनशनका उच्चार करे.। ग्लान, शक्रस्तव पढके तीनवार परमेष्ठिमंत्रको पढके गुरुके मुखसें उच्चरे.।

यथा ॥

"॥ भवचरिमं पच्चक्खामि तिविहंपि आहारं असणं खाइमं साइमं अन्नथ्थणाभोगेणं सहसागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि ॥ " इति सागारानशनम् ॥

अंतर्मुहूर्त्त शेष रहे हूए, निरागार अनशन कराना. ॥

---

* भक्तप्रत्याख्यानप्रकीर्णकशास्त्रमें लिखा है कि, यदि कोइ तथ्यज्ञानी कहे, अथवा कोइ सम्यग्दृष्टि देवता कहे कि, अमुकदिन तेरा अवश्य मरण है, तवतो अपना संहननधृतिवल जानके यावत् जीवका अनशन करना, अन्यथा सागारिक अनशन करना परंतु, जो कोइ मरणदिनके निश्चयविना यावत् जीवका अनशन करे, करावे, सो आत्मघाती साधुश्रावकघाती पचेंद्रियघाती है, इससे प्राय इस कालमें यावज्जीवका अनशन नही कराना सिद्ध होता है. ॥

पया ॥

"॥ भवचरिमं निरागारं
सव्व खाइमं सव्व साइमं
निंदामि पडिपुन्नं संवरेमि अणागयं
सिद्धसक्खियं साहुसक्खियं देवसक्खियं
जइ मे हुज्ज पमाओ इमस्स
आहारमुवहिदेहं तिविहं तिविहेण
तब गुरु "नित्थारगपारगो होहि"
सअक्षतादि ग्लानके सन्मुख क्षेप करे । शांतिके
इत्यादि स्तुति पढनी और, 'खवण
गुरु निरंतर ग्लानके आगे तीनभुवनके चैत्योंका
तादि बारां भावनाका व्याख्यान करे,
अनशनके फलका व्याख्यान करे । और संघ
ग्लान जीवितमरणइच्छाको त्यागके समाधिसहित
मुहूर्त्तके आया, ग्लान 'सव्वं आहारं सव्वं देहं सव्वं
ऐसें कहे । पीछे ग्लान पंचपरमेष्ठिस्मरणप्रवण्युक्त
स्यतसस्कारेऽनशनविधि ॥

मरणकालमें ग्लानको कुशाकी शय्याऊपर स्थापन
भूमावेव इति व्यवहार ।"

अथ सर्वभावके भोक्ता कर्मके जोडनेवाले
अजीव पुद्गलरूप तिसके शरीरको सनातन
कोंकेवास्ते, तीर्थसंस्कारविधि कहते हैं । सर्व ब्राह्मणको
वाली मूंछ मुंडन कराना चाहिये, कितनेक
तथा शवका संस्कार सर्व स्ववर्णज्ञातियोंने करना,
तिसका स्पर्श नहीं करना । तदपीछे गंधतैलादिसें
रके शवको स्नान करावे, गंधकुंकुमादिसें विलेपन

स्वस्वकुलोचित वस्त्राभरणेकरी विभूषित करे. शूद्र जातिका सर्वथा मुंडन नही.। तदपीछे नवीन काष्टकी पगविनाकी कुश संथरी भले वस्त्रसें ढांकी हुई शय्याके ऊपर शय्याके उपकरणसहित शबको स्थापन करे.। यहां गृहस्थके मृत्युनक्षत्रके नक्षत्रपूतलेका विधान, कुशसूत्रादिसें यति-कीतरें जानना. नवरं कुशपुत्रक गृहस्थवेषधारी करणे। वर्णानुसार तिसके ऊपर नानाविध वस्त्र सुवर्ण मणि विचित्र वस्त्रका करा प्रासाद स्थापन करे.। तदपीछे स्वज्ञातीय चारजणे परिजनके साथ स्कंधऊपर उठाए शवको,स्मशानमें ले जावे.। तहां उत्तरभागमें शबका शिर रखके चितामें स्थापन करके, पुत्रादि अग्निसें संस्कार करे.। अन्न नही खानेवाले बालकोंको भूमिसंस्कार इच्छते हैं. । तहां प्रेतप्रतिग्राहियोंको दान देवे। तदपीछे सर्व स्नान करके, अन्यमार्गे होकर अपने घरको आवे. तीसरे दिनमें चिंताभस्सका, पुत्रादि नदीमें प्रवाह करे.। तिसके हाड, तीर्थोंमें स्थापन करे. । तिसके अगले दिनमें स्नान करके शोक दूर करे.। जिनचैत्योंमें जाके, परिजनस-हित, जिनबिंबको विनास्पर्शे, चैत्यवंदन करे.। पीछे धर्मागारमें आके गुरुको नमस्कार करे. गुरु भी संसारकी अनित्यतारूप धर्मदेशना करे.। तदपीछे स्वस्वकार्यमें सर्व तत्पर होवे.। अंत्य आराधनासें लेके, शोक दूर करनेतक मुहूर्त्तादि न देखना, अवश्य कर्त्तव्य होनेसें.। यमलयोगमें, त्रिपुष्करयो-गमें, आर्द्रा, मूल, अनुराधा, मिश्र, क्रूर और ध्रूव, इन नक्षत्रोंमें प्रेत-क्रिया नही करनी.। * धनिष्टासें लेके पांच नक्षत्रोंमें तृणकाष्टादि संग्रह नही करना। शय्या, दाक्षिणदिशकी यात्रा, मृतककार्य, गृहोद्यम, घर ब-नाना आदि नही करना.। रेवती, श्रवण, अश्लेषा, अश्विनी, पुष्प, हस्त, स्वाति, मृगशिर, इन नक्षत्रोंमें, और सोम, गुरु, शनि, इन वारोंमें प्रेतकर्म करना बुद्धिमान् कहते हैं.। स्वस्ववर्णके अनुसार जन्समरणका सूतक एकसदृश होता है, और गर्भपातमें तीन दिनका सुतक होवे है.।

---

* मृगशिर। चित्रा। धनिष्ठा। मगल। गुरु। शनि। २। १२। ७। इति यात्राणा योगे यमलयाग ॥ कृतिका। पूर्वाफाल्गुनी। विशाखा। उत्तराषाढा। पूर्वाभाद्रपदा। पुनर्वसु। मगल। गुरु। शनि। २।१२।७। इति त्रिपुष्करयोग ॥ कृतिका। विशाखा। भरणी। इति मिश्रनक्षत्राणि ॥ भरणी। मघा। पूर्वाफाल्गुनी। पूर्वापाढा। पूर्वाभाद्रपदा। इति क्रूरनक्षत्राणि ॥ रोहिणी। उत्तराफा०। उत्तरापा०। उत्तराभा०। इति ध्रुवनक्षत्राणि ॥

अन्य वंशवालेके मृत्यु हुए, वा अन्य
भक्षके खानेसें, इन सर्वमें तीन दिनका
खानेवाले बालकका सूतक तीन दिनका होवे है
बालकका भी त्रिभागोन सूतक होवे है ।
जिनस्तव महोत्सवादि और ।
कल्याणप्राप्ति होवे ॥

इत्याचार्यश्रीवर्द्धमानसूरिकृताचारदिनकरस्य

स्तत्समाप्तो च समासमिद षोडशसंस्कारविवरणम् ॥

इषुवर्णांकचन्द्राब्दे (१९५१)
कृतोबालावबोधोयं विजयानंदसूरिणा ॥ १ ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते
षोडशमांत्यसंस्कारवर्णनोनामैकत्रिंश स्तंभः ॥ ३१ ॥

॥ विज्ञापनम्म् ॥

यह पूर्वोक्त सोळां संस्कारका विधि श्रीआचारदिनकरसे
है, इसके लिखनेका यह प्रयोजन है कि, यह सांसारिक
रोंका विधि, श्रीऋषभदेवसें प्रचलित हुआ है, और वेद
जीने प्रचलित करा था, तैसेंही श्री जैनाचार्योंने लिख .
इनमें जो व्रतारोपसंस्कार है, सो तो गृहस्थका धर्मही बाकीके
स्कारोंमें धर्ममिश्रित जगत्व्यवहारकी रीति कथन करी है ।
कोई यह नियम नही है कि, सर्व श्रावकोंने यह विधि अवश्य
है, तथापि यदि यह विधि प्रचलित होवे तो अच्छी बात है.
श्रीजैनाचार्योंको यही विधि सम्मत है, और इसी वास्ते मुंबाइके
नयुनियनक्लबके मेंबरोंकी, भरुचवाले शेठ अनुपचंद मलूकचंदकी,
नगरकी श्रीजैनधर्मप्रसारकसभाके शाह कुवरजी आनंदजीकी,
शेठ मोकमभाइ दुलभदासकी, और कितनेक साधुओंकी

ने यह विधि इस ग्रंथमें गुंथन किया है. जिससें कि, लोकोकों मालुम होवे कि, जैनमतमें भी षोडशसंस्कारोंका वर्णन है.। तथा इस जैनसंस्कारविधिको, मिथ्यात्व भी नही जानना. क्योंकि यह लौकिकव्यवहाररूप प्रायः है, धर्मरूपही नही है. और आगममें चरितानुवादसें किसी किसी संस्कारविधिका संक्षेपसें कथन भी है.। श्रीभगवतीसूत्र, ज्ञातासूत्र, आचारांगसूत्र, दशाश्रुतस्कंधसूत्रादि शास्त्रानुसारें चरितानुवाद जानना.

अब मैं श्रीसंघसें नम्रतापूर्वक विनती करता हूं कि, यह विधि लिखनेके समयमें एकही ग्रंथ विद्यमान था, और नकल करनेके समय दूसरा मिला था, तिससें प्रायः स्वमत्यनुसार शुद्ध करके लिखा है, तथापि, किसी स्थानपर द्रष्ट्यादिदोषसें अशुद्ध लिखा गया होवे, वा जिनाज्ञाविरुद्ध लिखा गया होवे, सो मुझे माफ करेंगे, और शुद्ध करके वांचेंगे.। इत्यलम्म् ॥

॥ अथद्वात्रिंशस्तम्भारम्भः ॥

अब इस स्तंभमें जैनमतकी प्राचीनताका थोडासा खुलासा करते हैं. ॥

पूर्वपक्षः–जैनमत जेकर प्राचीन होवे तो, तिसका लेख, वा नाम, वेदोंमें होना चाहिये; परं है नही, इसवास्ते जैनमत नवीन है, प्राचीन नही है. ॥

उत्तरपक्षः–प्रियकर ! प्रथम तो वेदकाही कुछ ठिकाना नही है. क्योंकि, प्रथम ऋगवेदकी ८, कृष्णयजुर्वेदकी ८६, शुक्लयजुर्वेदकी १७, सामवेदकी १०००, और अथर्ववेदकी ९ शाखा. ये सर्व शाखायोंके वेदपाठमें परस्पर अन्यत्व है. जैसें जर्मनीके छपे शुक्लयजुर्वेदमें माध्यंदिनी, और काण्वशाखाके वेदपाठ पृथक् २ है. ऐसेंही सर्व शाखायोंमें जानना. इन शाखायोंमेंसें बहुत शाखा तो नष्ट होगइ हैं, तो फिर,

ऐसा ज्ञानी कौन है ? कि, जो कह देवे कि,
अर्हन्मतका नाम नही है !!

अब शंकराचार्य, जिसको हुए लगभग
हैं, तिसके समयमें वेदादि पुस्तकोंमें बहुत
पुस्तकोंमेंसें कितनेही हिस्से निकाले गए,
दाखल करे गए हैं, यह कथन इतिहास
वेदोंके अर्थ करनेमें भी शंकर, माधव,
बहुत अर्थ मनःकल्पित लिखे हैं क्योंकि, प्राचीन
हैं इसवास्ते इनके करे अर्थ कितनेही असम्बित हैं
रचे हैं, तिनोंमें भाष्यके लक्षण भी नही है केवल
भाष्य रख दिया है भाष्य तो यह होता है कि,
जो अभिप्राय होवे, सो सर्व प्रकट करा होवे "।
सूत्रोक्तार्थप्रपंचकम् । " इति वचनात् । जैसें
ध्ययनके ८६ अक्षर है, तिसकी निर्युक्तिका भाष्य
प्राकृतगाथाबद्ध है, और तिसकी टीका १८०००,
है ऐसेंही कल्पसूत्र (बृहत्) मूल ४७३, भाष्य १२०००
बद्ध, टीका ४२०००, श्लोकप्रमाण संस्कृतमें है इत्यादि
इसीतरेंके भाष्य हैं तथा जैसें पाणिनीयसूत्रोपरि
हैं, येह तो भाष्य हैं परंतु जो नवीन भाष्य रचे
अभिमानके उदयसें रचे मालुम होते हैं जैसें
वेदोंपर नवीन भाष्य रचा है, यह भाष्य नही है,
बिगाडनेसें विटंबनारूप है और दयानंदजीका भाष्य

चार सुहाली सोले थाली, बांटणवाली असली
सारे गाम ढंढोरा फेर्या, हरि चोटी ने हलवाड

और इस समयमें यजुर्वेदकी शाखा
वाध्यक ३, अश्वकल्पनी ४, मांडुक ५,

शाखा आपस्तंव १, हिरण्यकेशी २, मैत्राणि ३, सत्याषाड ४, वौद्धायनी ५; शुक्लयजुर्वेद याज्ञवल्क्यने रचा तिसकी शाखा काण्व १, माध्यंदिनी २, कात्यायनी ३, ये तीन हैं; सर्व यजुर्वेदकी शाखा ८; सामवेदकी शाखा कौथुमी १, राणायणी २, गोभील ३, ये तीन है. अथर्ववेदकी शाखा पिप्पलाद १, शौनकी २, ये दो है. इतनी शाखाके ब्राह्मण मालुम होते हैं. परंतु शाखासमान वेदपाठ, इतनेतरेंके मालुम नही होते हैं. माध्यंदिनी काण्ववत्. अव कौन जाने कि. किस शाखामें, किस वेदपाठमें क्या कथन था? और इस समयमें भी, तैत्तिरीय आरण्यककी भाष्यमें सायणाचार्य लिखते हैं कि, इसमें द्रविडदेशके ब्राह्मणोंके चौसट्ठ (६४) अनुवाकका पाठ है; अंध्रोंके ८०, कितनेक कर्णाटकोंके ७४, और कितनेकके नवाशी, (८९) अनुवाकका पाठ है. परंतु हम अस्सी (८०) पाठवालेका व्याख्यान, पाठांतर सूचनासहित, प्रधानताकरके करेंगे.

तथाच तत्पाठः॥

"॥ तत्र द्रविडानां चतुःषष्ट्यनुवाकपाठः। आंध्राणामशीत्यनुवाकपाठः। कर्णाटकेषु केषांचिच्चतुःसप्ततिपाठः। अपरेषां नवाशीतिपाठः। तत्र वयं पाठांतराणि यथासंभवं सूचयंतोशीतिपाठं प्राधान्येन व्याख्यास्यामः॥"

तथा कलकत्ताके छापेका पुस्तक तैत्तिरीय आरण्यकका जो हमारे पास है, तिसमें लिखा हे कि, कितनेही पाठ भाष्यकारने त्यागे हैं, तिनका भाष्य नही करा है. और कितनेक पाठोंका भाष्य करा है, वे पाठ मूलपुस्तकमें नही है.

और तैत्तिरीय ब्राह्मण प्रथमाष्टक प्रथम प्रपाठक प्रथमानुवाकके प्रथम मंत्रके भाष्यमें भी सायणाचार्य लिखते हैं कि "॥ वाजसनेयिनश्च विज्ञानमानंदं ब्रह्म—इति॥" परंतु यह श्रुति वाजसनेयसंहितामें मालुम नही होती है. इत्यादि अनेक प्रमाणोंसें सिद्ध होता है कि, वेदोंमें वहुत गडवड हुइ है; और वहुत हिस्से नष्ट हो गए हैं. और शेष रहे

हुयके भी अर्थोंमें, सायणाचार्य
दीनी हैं

अन्य एक यह भी प्रमाण है कि,
स्वामी, शब्दांभोनिधि महाभाष्यके
इत्यादिकोंने तथा आवश्यकवृत्तिकार
जे जे श्रुतियां वेदोंकी लिखी हैं, तथा कल्पसूत्र
उत्तराध्ययनसूत्रके पचीसमे अध्ययनमें, जे जे
लिखी हैं, तिन पूर्वोक्त श्रुतियोंमेंसें कितनीक
तैत्तिरीयारण्यक, बृहदारण्यक उपनिषदादिकोंमें
श्रुतियां तिन पुस्तकोंमें नही मिलती हैं, इससें भी
कि, वे सब श्रुतियां व्यवच्छेद होगइ होवेगी, वा
निकाल दीनी होवेगी, वे सर्व श्रुतियां आगे लिख

१ ॥ विज्ञानघनएवैतेभ्यो भूतेभ्य
ति न प्रेत्य संज्ञास्ति ॥

२ ॥ सवै अयमात्मा ज्ञानमय ॥

३ ॥ नह्वै सशरीरस्य
वसत प्रियाप्रिये न स्पृशत इति ॥

४ ॥ अग्निहोत्र जुहुयात्स्वर्ग्गकाम ॥

५ ॥ अस्तमिते आदित्ये याज्ञवल्क्य
तेग्नौ शांतायां वाचि किं ज्योतिरेवायं पुरुष
ज्योति साम्राडितीहोवाच ॥

६ ॥ पुरुष एवेदंग्नि सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यं उतामृतत्व
ज्ञानो यदन्नेनातिरोहति यदेजति यन्नेजति यद्दूरे
अंतिके यदंतरस्य सर्वस्य यदु सर्वस्यास्य

७ ॥ ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् । छंदांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥

८ ॥ तत्र स सर्वविद्यस्यैष महिमा भुवि दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्नात्मा सुप्रतिष्ठितस्तमक्षरं वेदयतेथ यस्तु स सर्वज्ञः सर्ववित् सर्वमेवाविवेश ॥

९ ॥ एकया पूर्णाहुत्या सर्वान् कामानवाप्नोति ॥

१० ॥ प्रथमो यज्ञो योग्निष्टोमः योनेनानिष्ट्वान्येन यजते स गर्त्तमभ्यपतत् ॥

११ ॥ द्वादश मासाः संवत्सरोग्निरुष्णोग्निर्हिमस्य भेषजमित्यादि ॥

१२ ॥ पुण्यः पुण्येन कर्मणा पापः पापेनेत्यादि ॥

१३ ॥ सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष ब्रह्मचर्येण नित्यं ज्योतिर्मयो हि शुद्धोयं पश्यंति धीरा यतयः संयतात्मान इत्यादि ॥

१४ ॥ स्वप्नोपमं वै सकलमित्येष ब्रह्मविधिरंजसा विज्ञेय इत्यादि ॥

१५ ॥ द्यावापृथिवी इत्यादि ॥

१६ ॥ पृथिवी देवता आपो देवता इत्यादि ॥

१७ ॥ पुरुषो वै पुरुषत्वमश्नुते पशवः पशुत्वमित्यादि ॥

१८ ॥ शृगालो वै एष जायते यः सपुरीषो दह्यते इत्यादि ॥

१९ ॥ अग्निष्टोमेन यमराज्यमभिजयत इत्यादि ॥

२० ॥ स एष विगुणो विभुर्न बध्यते संसरति वा न मुच्यते मोचयति वा न वा एष बाह्यमाभ्यंतरं वा वेद इत्यादि ॥

२१ स एष यज्ञायुधी यजमानोंजसा स्वर्गलोकं गच्छतीत्यादि ॥

२२ ॥ अपामसोम
देवान् किं
त्यादि ॥

२३ ॥ को जानाति मायोपमान्
नित्यादि ॥

२४ ॥ सोम सूर्यसुरगुरुस्वाराज्यानि
२५ ॥ इंद्र आगच्छ मेधातिथे
२६ ॥ नारको वै एष जायते यः
२७ ॥ न ह वै प्रेत्य नरके नारकाः संति ॥
२८ ॥ जरामर्यं वा एतत्सर्वं यदग्निहोत्रम् ॥
२९ ॥ द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये परमपरं च तत्र
मनंतं ब्रह्मेति ॥

३० ॥ सैषा गुहा दुरवगाह्या ॥
३१ ॥ मपिरपि न प्रज्ञायत इति ॥

३२ ॥ ॐ लोकश्रीप्रातिष्ठान्
वर्द्धमानातान् सिद्धांतान् शरणं प्रपद्यामहे ।
मभिमुपस्पृशामहे येषां जातं सुप्रजातं
नभं सुनभं ब्रह्मसुब्रह्मचारिणं उदितेन
तेन मनसा देवस्य महर्षयो महर्षिभिर्जुहोति
यजंतस्य च सा एषा रक्षा भवतु शांतिर्भवतु
तुष्टिर्भवतु शक्तिर्भवतु स्वस्तिर्भवतु श्रद्धा भवतु
भवतु ॥ [सर्वेषु मूलमंत्र एष इति चिचिकरस्थान]

३३ ॥ जिनप्रमाणांगुलाद्यीति ॥

३४ ॥ ऋषभं पवित्रं पुरुहूतमध्वरं यज्ञेषु यज्ञपरमं पवित्रं श्रुतधरं यज्ञं प्रति प्रधानं ऋतुयजनपशुमिंद्रमाहवेतिस्वाहा ॥

३५ ॥ त्रातारमिंद्रं ऋषभं वदंति अतिचारमिंद्रं तमरिष्टनेमिं भवे भवे सुभवं सुपार्श्वमिंद्रं हवे तु शक्रं अजितं जिनेंद्रं तद्वर्द्धमानं पुरुहूतमिंद्रं स्वाहा ॥

३६ ॥ नग्नं सुवीरं दिग्वाससं ब्रह्मगर्भं सनातनम् ॥

३७ ॥ उपैति वीरं पुरुषमर्हंतमादित्यवर्णं तमसः पुरस्तात् ॥

३८ ॥ नैंद्रं तद्वर्द्धमानं स्वस्तिन इंद्रो वृद्धश्रवाः स्वस्तिनः पुरुषा विश्ववेदाः स्वस्ति नस्तार्क्ष्योरिष्टनेमिः स्वस्तिनः ॥ [यजुर्वेदे वैश्वदेवऋचौ]

३९ ॥ दधातु दीर्घायुस्त्वायबलायवर्चसे सुप्रजास्त्वाय रक्षरक्षरिष्टनेमिस्वाहा ॥ [बृहदारण्यके]

४० ॥ ऋषभएव भगवान् ब्रह्मा तेन भगवता ब्रह्मणा स्वयमेवाचीर्णानि ब्रह्माणि तपसा च प्राप्तः परं पदम् ॥

[आरण्यके]

और भी कइ एसी श्रुतियां जैनाचार्योंने लिखी हैं, जो कितनीक मिलती हैं, और कितनीक नही मिलती हैं.

अब जैनाचार्योंने जे जे पाठ पुराणादिके लिखे हैं, तिनमेसें थोडेकसें पाठ लिख दिखाते हैं. इनमेसें भी कितनेक पाठ सांप्रतकालके विद्यमान पुस्तकोंमें मालुम नही होते हैं. पुराणोंके पाठ लिखनेका प्रयोजन यह है कि, पुराण भी वेदव्यासजीके बनाये कहे जाते हैं.।

१ ॥ नाभिस्तुजनयेत्पुत्रं मरुदेव्यां महाद्युतिं ॥
ऋषभं क्षत्रियज्येष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूर्वजं ॥ १ ॥

ऋषभाद्भरतो
अभिषिच्य भरतं राज्ये

२ ॥ इह हि
महादेवेन ऋषभेण दशप्रकारो धर्मो
ज्ञानलाभाय प्रवर्तित ॥ [

३ ॥ युगेयुगे महापुण्या दृश्यते
अवतीर्णो हरिर्यत्र प्रभासे
रेवताद्रौ जिनो
ऋषीणामाश्रमादेव मुक्तिमार्गस्य
पद्मासनसमासीन श्याममूर्तिर्दिगंबरः
नेमिनाथ शिवेत्याख्या नाम चक्रेस्य

४ ॥ वामनावतारेपि—"वामनेन रैवते
सामर्थ्यार्थं तपस्तेपे ॥" इतितत्रकथास्ति

५ ॥ ईशो गौरींप्रति—
कलिकाले महाघोरे सर्वकल्मषनाशनः
दर्शनात् स्पर्शनादेव कोटियज्ञफलप्रदः
उज्जयतगिरौ रम्ये माघे कृष्णचतुर्दशी ॥
तस्या जागरण कृत्वा संजातो निर्मलो

[प्रभासपुराणे]

६ ॥ कैलासे पर्वते रम्ये वृषभोयं जिनेश्वरः ॥
चकार स्वावतारं यः सर्वज्ञ सर्वगः शिवः ॥

७ ॥ स्कंदपुराणे १८ सहस्रसंख्ये नगरपुराणे
शिवकल्पलताधिकारे भवावतारसहस्रे चतुर्दशो
सि तत्र ॥

स्पृष्ट्वा शत्रुंजयं तीर्थं नत्वा रैवतकाचलम् ॥
स्नात्वा गजपदे कुंडे पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १ ॥
पंचाशदादौ किल मूलभूमेर्दशोर्द्धभूमेरपि विस्तरोस्य ॥
उच्चत्वमष्टैव तु योजनानि मानं वदंतीह जिनेश्वराद्रेः॥ २॥
सर्वज्ञः सर्वदर्शी च सर्वदेवनमस्कृतः ॥
छत्रत्रयाभिसंयुक्तां पूज्या मूर्तिमसौ वहन् ॥ ३ ॥
आदित्यप्रमुखाः सर्वे बद्धांजलय इदृशं ॥
ध्यायंति भावतो नित्यं यदंघ्रियुगनीरजं ॥ ४ ॥
परमात्मानमात्मनं लसत्केवलनिर्मलम् ॥
निरंजनं निराकारं ऋषभं तु महाऋषिम् ॥ ५॥ [स्कंदपुराणे]

८॥ अष्टषष्ठिषु तीर्थेषु यात्रायां यत्फलं भवेत् ॥
आदिनाथस्य देवस्य स्मरणेनापि तद्भवेत् ॥१॥ [नागपुराणे]

इत्यादि अनेक प्रमाणोंसें सिद्ध होता है कि, वेदादिशास्त्रोंसें बहुत गडबड हो गइ है. तथा इन पूर्वोक्त प्रमाणोंसें जैनमत वेदसें पहिलेका सिद्ध होता है, वेदमें जैनतीर्थकरादिकोंके लेख होनेसें.

और ब्राह्मणोंके माननेमूजब, तथा इतिहास लिखनेवालोंकी मतिमूजब, श्रीकृष्णवासुदेवजीको हुए पांचसहस्र (५०००) वर्ष माने जाते हैं. तिनके समयमें व्यासजी, वैशंपायन, याज्ञवल्क्यादि, वेदसंहिताके बांधनेवाले, और शुक्लयजूर्वेद, शतपथ ब्राह्मणादि शास्त्रोंके कर्त्ता हुए हैं. तिन सर्व ऋषियोंमें मुख्य व्यासजी हैं, तिनोंने वेदांतमतके ब्रह्मसूत्र रचे हैं. तिसके दूसरे अध्यायके दूसरे पादके तेतीसमे सूत्रमें जैनमतकी स्याद्वादसप्तभंगीका खंडन लिखा है, सो सूत्र यह है. "नैकस्मिन्नसंभवात्" इस सूत्रका भाष्यमें शंकरस्वामीने, सप्तभंगीका खंडन लिखा है, सो, आगे लिखेंगे. जब व्यासजीके समयमें जैनमत विद्यमान था, तो फिर व्यास-

स्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, शुक्रनसूत्रोंका नाम नही लिखा, ऐसेंही अन्यवेदोंके तब्ध नाम विद्यमान था, तो भी नही लिखा नवीन सिद्ध हो सक्ता है? कदापि नही

तथा व्यासजीसें पहिलें तो चारों वेदोंकी किंतु ऋषियोंपास यजन याजन करनेकी और ऋग्वेदके दश (१०) मंडल, भिन्न भिन्न और भिन्न २ ऋषियोंने तिन श्रुतियांके मंडल ऋग्वेदभाष्यमें प्रकट लिखे हैं तिन प्रार्थना सर्व श्रुतियांकी, चार संहिता, व्यासजीने बांधी और यजु, साम, अथर्व, रक्खे तिन हिंसक श्रुतियोंमें, या जैनधर्मके लिखनेका क्या प्रयोजन था? कदापि निंदारूप लिखा होगा जैसें यज्ञविध्वंसकारक इत्यादि।

पूर्वोक्त व्यासजीके कथन करे सूत्रोंसें तो, जैनमत, संहिता बांधनेसें पहिलें विद्यमान था क्योंकि, खंडन लिखता है, सो मत, तिसके समयमें प्रबल और प्रचरात्मक मतका विरोधि होता है, तब लिखता है सिद्ध होता है कि, जैनधर्म, सर्व मतोंसें पहिला

पूर्वपक्ष—अनेक व्यासजी हो गए हैं, क्या आप किस समयमें येह ब्रह्मसूत्र रचे है?

उत्तरपक्ष—आर्यावर्तके सर्व प्राचीन वैदिकमतवाले महाराजके समयमें कृष्णद्वैपायन बादरायण मानते व्यासजीकोही ब्रह्मसूत्रोंके कर्ता मानते हैं, अन्यको विषयमें तो प्रकटपणे वेदव्यासजीकोही ब्रह्मसूत्रोंके

पूर्वपक्ष—व्यासमतोंमें यह सप्तभंगीके पीछेसें दाखल करा है

उत्तरपक्षः—यह कथन तुह्मारा मिथ्या है. क्योंकि, इस कथनके सच्चे करनेवाला तुह्मारे पास कोइ भी प्रमाण नही है.

पूर्वपक्षः—'नैकस्मिन्नसंभवात्' इस सूत्रके अर्थमें जो शंकरस्वामीने सप्तभंगीका खंडन लिखा है, सो अर्थ, इस सूत्रका नही, किंतु अन्य है.

उत्तरपक्षः—वाहजीवाह!! इस कथनसें तो तुमने शंकरस्वामीको अज्ञानी सिद्ध करे कि, जिनोंने अन्यार्थके स्थानमें अन्यार्थ समझा; और लिख दिया. इससें अधिक अन्य अज्ञान क्या होता है? और ऋग्वेदादि चारों वेदोंऊपरी भाष्यकर्त्ता, सायणमाधवाचार्य, अपने रचे शंकरदिग्विजयमें लिखते हैं कि, शंकरस्वामी, मतोंका खंडन करके, और व्याससूत्रोपरि शारीरक भाष्य रचके, बद्रीनाथ केदारनाथ हिमालयके शृंगोपरि गए. तहां व्यासजी आप आए, और शंकरस्वामीको सम्मति दीनी कि, जो तुमने मेरे रचे सूत्रोपरि भाष्य रचा है, सो मेरे अभिप्रायकेसमान है. तथा यह भी व्यासजीने कहा कि, मेरे इन सूत्रोंऊपर कइ जनोंने भाष्य पीछे रचे, और आगेंको कइ जन रचेंगे, परंतु तुमारे भाष्यसदृश कोइ भी नही. क्योंकि, तुम सर्वज्ञ हो. इत्यादि—इस लेखसें भी, सप्तभंगीका खंडन, व्यासजीनेही करा सिद्ध होता है, इसवास्ते वेदसंहितासें पहिलेही, जैनमत विद्यमान था.

तथा महाभारतके आदिपर्वके तीसरे अध्यायमें यह पाठ है. ॥

"साधयामस्तावदित्युक्त्वाप्रातिष्ठतोत्तंकस्ते कुंडले गृहीत्वा सोपश्यदथ पथि नग्नं क्षपणकमागच्छंतं मुहुर्मुहुर्दृश्यमानमदृश्यमानं च॥१२६॥"

भावार्थः—इसका यह है कि, उत्तंकनामा विद्यार्थी, उपाध्यायकी स्त्रीकेवास्ते कुंडल लेनेको गया; रस्तेमें पौष्यके साथ वार्त्तालाप हुआ, अन्ननिमित्त उत्तंकने पौष्यको अंधा होनेका शाप दिया, पौष्यने बदलेका शाप दिया कि, तूं अनपत्य (संतानरहित) होवेगा—अंतमें, हम शापाभावका निश्चय करते हैं. ऐसा कहके, कुंडलोंको लेके, उत्तंक चलता भया. तिस अवसरमें मार्गमें, उत्तंक, वारंवार दृश्यमान अदृश्मान, ऐसे, नग्न क्षपणकको आता हुआ, देखता भया.

इस लेखसें भी यही सिद्ध पूर्व विद्यमान था क्योंकि 'नग्नक्षपणक' नक नाम साधुका है, सायमें 'नग्न' इस सिद्ध होता है जैनमतमें दो प्रकारके साधु जिनकल्पी स्थिविरकल्पी आठ प्रकारके होते हैं होते हैं, जे, रजोहरण, मुखवस्त्रिकाके सिवा, हैं, और प्राय जंगलमेंही रहते हैं तथा क्षपणकपदका अर्थ, पाषंड भिक्षु करा है.

पूर्वपक्षः–आपने जो नग्न क्षपणक पदसे ऐसा करके जैनमतकी सिद्धि वेदव्यासजीसें, और करी, सो ठीक नही है क्योंकि, वास्तविकमें वह पातालभुवननिवासी नागदेवता था और यही लिखा है

उत्तरपक्ष –आपका कहना सत्य है, परंतु उस क्षपणकका रूप धारण किया, सो तिस रूपधारी हुए विना, कैसे धारण किया? और नग्न क्षपणक प्रवृत्त हुआ? ना सिद्ध हुआ कि, जैनमत विद्यमान था ही, परंतु वेदव्यासजीके, और विद्यमान था, उसको देखनेसें

तथा महाभारतके शांतिपर्वके ११८ अध्यायमें लिखा है, और जैनमत, बौद्धमतसें प्राचीन है, यह तो इससें भी जैनमत वेदसंहिता, और होता है

तथा मत्स्यपुराणके २४ अध्यायमें ऐसा कहा है.

गत्वाथ मोहयामास रजिपुत्रान्
जिनधर्म समास्थाय वेदबाह्यं स

भाषाटीकाः—और उन रजिके पुत्रोंको भी बृहस्पतिजीने उनके पास जाकर मोहा, और आज्ञा दी कि, तुम सब जैनधर्मके आश्रय हो जाओ. ऐसा कह कर बृहस्पतिजी भी, वेदसें बाह्य मतको चलाते भये, और वेदसेंरहित वेदत्रयी भी बनाते भये.

अब विचारना चाहिये कि, वेदव्यासजीसें प्रथम जैनमतके होनेमें कुछ भी शंका है? तथा इस पाठसें तो, जैनमत, वेदसंहितासें तो क्या, परंतु वेद श्रुतियोंसें भी, पूर्वका सिद्ध हो गया. क्योंकि, बृहस्पतिजीने रजिके पुत्रोंको कहा कि, तुम जैनधर्मके आश्रय हो जाओ. और वेदकी श्रुतियोंमें बृहस्पतिजीकी स्तुति है, तो सिद्ध हुआ कि, वेदकी श्रुतियोंसें बृहस्पतिजी प्रथम हुए. और, जैनधर्म बृहस्पतिजीसें भी, प्रथम हुआ.

पूर्वपक्षः—युक्ति प्रमाणोंसें, और स्वमतपरमतके पुस्तकोंसें तो, तुमने जैनमतको प्राचीन सिद्ध करा. परंतु वर्त्तमानमें जो वेदसंहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषदादि विद्यमान है, तिनमें भी, कोइ ऐसा लेख है, जिससें हम जैनमतको प्राचीन माने?

उत्तरपक्षः——प्रियवर! लेख तो इनमें भी जैनमतबाबतके बहुत मालुम होते हैं, परंतु भाष्यकारोंने कुछ अन्यके अन्यही अर्थ लिख दीए हैं. जैसें दयानंदसरस्वतिस्वामीने वेदोंके स्वकपोलकल्पित अर्थ, अपने वेदभाष्यमें लिखे हैं. तिनमेसें कितनेक पाठ संहिता आरण्यकके लिख दिखाते हैं.

यजुर्वेदसंहिता अध्याय ९ श्रुति ॥ २५ ॥

"॥ वाजस्य नु प्रसव आबभूवेमा च विश्वा भुवनानि सर्वतः स नेमिराजा परियाति विद्वान् प्रजां पुष्टिं वर्द्धमानो अस्मे स्वाहा ॥"

नुइत्यादिमहीधरकृतभाष्यकी भाषाः—'नु' ऐसा विस्मयार्थक अव्यय है, 'वाजस्य' अन्नका 'प्रसवः' उत्पादक प्रजापति ईश्वर 'इमा' इमानि 'विश्वा' विश्वानि भुवनानि—सर्वभूतप्राणी सर्वतः सर्वओरसें रहे

हुए, हिरण्यगर्भसें लेके सांच (सरकने)
हुआ है, 'सनेमि' चिरंतन राजा दीप्त हुआ,
इच्छासें जाता है कैसा नेमि राजा? "विद्वान्"
जानता हुआ, तथा हमारेविषे
करता हुआ, सनेमि सुहुतमस्तु, तिसको आहुति

अब इसही श्रुतिके भाष्यमें
लिखते हैं ॥

(वाजस्य) वेदविद्याओंसें उत्पन्न हुए बोधको (नु)
उत्पन्न करता है सो (आ) सर्वओरसें (बभूव) होवे (इमा)
सर्व (भुवनानि) मांडलिकराजायोंके निवास करनेके
(सनेमि) सनातननेमिना धर्मेण धर्मकरके सहित
राज्यमंडल (राजा) वेदोक्त राजगुणोंकरके प्रकाशमान है
प्राप्त होता है (विद्वान्) सकल विद्याका जानकार
योग्य (पुष्टिम्) पोषणको (वर्धयमान) (अस्मे)
सत्यनीतिकरके ॥

अब पक्षपातरहित होकर पाठक जनोंको विचार करना
महीधरजीने इसही अध्यायकी सोलमी श्रुतिमें 'सनेमि'
क्षिप्र करा है, और पचीसमी श्रुतिमें 'सनेमि'
प्रमाणसें पुराणनाम तिसका अर्थ चिरंतन राजा करा है
स्वामीजीने इस 'नेमि' शब्दका अर्थ सनातन धर्म करा
कौनसा अर्थ सत्य है? और कौनसा मिथ्या है? यह
न होवेगा क्योंकि, नेमिशब्दकी व्युत्पत्तिसें पूर्वोक्त तीनों
भी, नहीं निकलता है इसवास्ते वेदोंकी श्रुतियोंके अर्थ,
नहीं मालुम होते हैं सो, प्राय लिखही आये हैं विशेषतः इस
अर्थ, जैसा पूर्वे लिखा है, वैसा घटमान भी नहीं लगता है
अभिप्रायके न ज्ञात होनेसें

पूर्वपक्षः—आपके अभिप्रायमुजब इस श्रुतिका कैसा अर्थ

उत्तरपक्षः-हमारे अभिप्रायमुजब तो, इस श्रुतिका अर्थ, श्रीनेमि (२२) बावीसमे तीर्थंकरकी स्तुतिकरके तिनको आहुति दीनी है. यथा-(नु) विस्मयार्थमें है (वाजस्य) भावयज्ञस्य-भावयज्ञका * (प्रसवः) उत्पत्तिकारक, जिनकी प्ररूपणासें भावयज्ञ उत्पन्न हुआ है. क्योंकि, जो भावयज्ञ है, सोही पारमार्थिक यज्ञ है. भावयज्ञका स्वरूप ऐसा है.।

"॥ अग्निहोत्रमग्निकारिका सा चेह । कर्मैधनं समाश्रित्य दृढा सद्भावनाहुतिः । कर्मध्यानाग्निना कार्या दीक्षितेनाग्निकारिका ॥१॥"

भावार्थः-कर्मरूप इंधनको आश्रित्य अर्थात् कर्मरूप इंधनकरके दृढ-निश्चलसत् अच्छीभावनारूप आहुति, धर्मध्यानरूप अग्निकरके करणी. ऐसी अग्निकारिका, दीक्षित ब्राह्मणने करणी.। इत्यादि भावयज्ञका कथन, आरण्यकमें है.

तथा ॥

इंद्रियाणी पशून् कृत्वा वेदीं कृत्वा तपोमयीम् ॥
अहिंसामाहुतिं कृत्वा आत्मयज्ञं यजाम्यहम् ॥ १ ॥
ध्यानाग्निकुंडजीवस्थे दममारुतदीपिते ॥
असत्कर्मसमित्क्षेपे अग्निहोत्रं कुरुत्तमम् ॥ २ ॥
यूपं कृत्वा पशून् हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम् ॥
यद्येवं गम्यते स्वर्गे नरके केन गम्यते ॥ ३ ॥

भावार्थः-इंद्रियोंको पशूकरके, तपोमयी वेदीकरके, अहिंसाको आहुतिकरके, आत्मयज्ञको, मैं करता हूं. वास्तविक यज्ञ तो यही है; बाकी, अनाथ पशुकों मारके यज्ञ करना, यह मोक्षार्थी पुरुषोंका काम नही है. महाभारतके शांतिपर्वके २६६ अध्यायमें भी, हिंसक

* श्रीमत्हेमचद्रसूरिने नानार्थद्वितीयकाडमें वाजनाम यज्ञका लिखा है। तथा पडित भानुदत्तविशारदने शब्दार्थभानुके २८४ पृष्ठोपरि वाजशब्दका अर्थ यज्ञ लिखा है । तथा तारानाथतर्कवाचस्पतिभट्टाचार्यविराचैतशब्दस्तोममहानिधिमें भी १०११ पत्रोपरि लिखा है ॥

यज्ञको पूर्वनिर्मित कहा है ।
जीवरूपकुंडमें, तमरूप पवनकरके दीप्ति
काष्ठके क्षेपन करे हुए, उत्तम
योंको मारके, रुधिरका कर्दम (कीचड़)
गमन करिये, तो नरकमें किस कर्मकरके
जैनसिद्धांतमें भावयज्ञका स्वरूप, ऐसा
ब्राह्मणोंको, हरिकेशबलमुनि यज्ञका स्वरूप कहते
दान २, अदत्तादान ३, मैथुन ४, परिग्रह ५, ये
पांच संवर, प्राणातिपातविरमणादिव्रतोंकरके
करे—रोके, असंयमजीवितव्यकी इच्छा न करे,
महाव्रतोंमें मलीनता न होवे, यह भावयज्ञ है

ब्राह्मण पूछते हैं कि, हे मुने! इस भावयज्ञके
हैं? यज्ञ करनेका विधि क्या है? भावयज्ञ
अग्नि कैसा है? अग्निके रहनेका स्थान कौनसा है
करनेवाली कड़छी—चाटुआ कौनसा है? करीषांग
उद्दीपक जिसकरके अग्निको संधु लाते हैं, सो क्या
जिनोंकरके अग्नि प्रज्वालिये हैं । दुरितके
शांतिपाठ अध्ययनपद्धतिरूप कौनसा है? और
आहुतियोंकरके अग्निको तर्पण करता है?

मुनि उत्तर देते हैं ॥

"॥ तवो जोई जीवो जोइठाणं जोगा सुया
कम्मं संजमजोगसंति होमं हुणामि इसिणं

भावार्थः—बाह्य अभ्यंतरभेदभिन्न बारां प्रकारका
अग्नि है, आठोंकर्म दाहक होनेसें जीव है, जो
है; तपरूप अग्निका आश्रय जीव होनेसें, मन,
योग जो हैं, वे सुच हैं; तिन्होंकरकेही,

शरीर करीषांग है, तिसकरकेही तपरूप अग्निको दीपन करिये हैं, तद्भावभावित होनेसें तिसको. ज्ञानावरणीयादि आठ कर्म, इंधन है, तिस कर्मकोही तप करके भस्मीभाव करनेसें. जे संयम योग हैं, संयमके व्यापार हैं, वेही शांतिपाठ अध्ययनपद्धतिरूप हैं, सर्व प्राणियोंके विघ्नोंको दूर करनेवाले होनेसें. जीवहिंसारहित होनेसें, जो होम, सर्वऋषियोंको प्रशस्त है, तिस होमकरके तपरूप अग्निको, मैं तर्प्पण करता हूं. । यह भावयज्ञ अरिहंतके उपदेशसेंही प्रकट हुआ है, अन्यसें नही. यह आश्चर्य है. । (इमा) इमानि (विश्वा) विश्वानि सर्वाणि (भुवनानि) भूतानि और जो इन सर्वभूतजीवोंको (सर्वतः) सर्वओरसें (आबभूव) यथार्थस्वरूप कथन करनेसें प्रकट करता हुआ (सनेमि) सो नेमि बावीसमा जिनतीर्थंकर * (राजा) अपने घातिकर्मचारके नष्ट करनेसें, और केवलज्ञानादि शुद्ध स्वरूपसें दीपता हुआ (परियाति) सर्वओरसें अप्रतिबद्ध विहारी होके जाता है—देशोमें विचरता है. कैसा है नेमि (विद्वान्) सर्वज्ञ है, मेरे कथन करे धर्मका यह रहस्य है, और इस हेतुसें मैंनें जगतको उपदेश करना है, ऐसे अपने आधिकारको जानता है. तथा (प्रजां—पोषं—वर्धयमानः) प्रकर्षेण जायंते कर्मवशवर्त्तिनः प्राणिनोस्मिन् जगति इति प्रजा जीवसंघात इत्यर्थः तिसकी दयाके उपदेशसें, और धर्मकी पुष्टिकी वृद्धि करनेवाला (अस्मे) अस्मै नेमये—इस नेमिको हुत होवे अर्थात् आहुति होवे। इति ॥

तथा तैत्तिरीय आरण्यकके प्रथम प्रपाठकके प्रथमानुवाककी आदिमें शांतिकेवास्ते मंगलाचरण करा है, तिसमें ऐसा पाठ है। '। स्वस्तिनस्तार्क्ष्योअरिष्टनेमिः। ' इसका भाष्यकारने ऐसा अर्थ करा है. । अरिष्टम् अहिंसा तिसको नेमीस्थानीयः नेमिसमान, जैसें लोहमयी नेमि काष्ठमय चक्रके भंगाभावकेवास्ते होती है, अर्थात् चक्रकी रक्षा करती है; ऐसेंही यह तार्क्ष्यः—गरुड भी सर्पादिकोंकी करी हुई हिंसाको निवारण करके, तिस-

* नमिर्नेमि. पार्श्वो वीर. इतिश्रीमद्धेमचंद्रविरचितायामभिधानचिंतामणिनाममालायाम् ॥ तथा शब्दार्थभानुके १९५ पत्रोपरि। नेमिः (पु.) जिनविशेष, एक जिनका नाम ॥

का पालक होनेसें, अरिष्टनेमि है ऐसा गरुड
करो । यह भाष्यकी व्याख्या, असमंजस
तो, गरुड पक्षी, तिर्यंचजाति है; सो कल्याण
कर सकता है ?

पूर्वपक्ष —गरुड विष्णुका वाहन है, इसवास्ते
सो कल्याण शांति कर सकता है

उत्तरपक्ष —तब तो वाहनकी स्तुतिसें
चित थी क्योंकि, वो तो, कदापि सर्व
शांति कर सकता है, परंतु पक्षी नही तथा
जो अर्थ चक्रकी नेमिका करा है, सो भी, अघटित है,
क्योंकि विष्णुआदि अनेक पुरुष रक्षक माने हैं,
उपमामें लोहमय नेमिको जा पकडा ! जैसें कोइ
पीत है, जैसा सरसव शणका पुष्प तैसा है यह
परंतु जो कोइ कहे कि, सुवर्ण ऐसा पीत है, जैसा
करनेवाले बालकका पुरीष पीत होता है, यह उपमा
चक्रकी नेमिका विशेषण है, इसवास्ते यह सत्यार्थ नही

पूर्वपक्ष —आप इसका अर्थ कैसें कर सकते हैं ?

उत्तरपक्ष —अरिष्टनेमि यह विशेष्य है, और तार्क्ष्यः
कहीं कहीं विशेष्य, विशेषण, आगे पीछे भी होते हैं ।
भान अरिष्टनेमि, हमको कल्याण—शांति करो। तहां
अर्थ है । '।धर्मचक्रस्य नेमिवन्नेमि ।' धर्मरूप चक्रकी
नेमि चक्रकी रक्षा करे है—बिगडने नही देवे हैं, तैसेंही
धर्म अरिष्ट अहिंसा निरुपद्रवरूप तिसके पालनेवास्ते
कहिये अरिष्टनेमि', सो अरिष्टनेमि तार्क्ष्यो—गरुडसमान है.
गरुड संचार करता है, तहां तहां सर्पादिकोंके विषादि
होता है, तैसेंही अरिष्टनेमि वाणीसमा अरिहंत

उपद्रवादि नाश हो जाते हैं; इसवास्ते तार्क्ष्य अरिष्टनेमि भगवान् हमको कल्याण–शांति करो. । इति ।

दूसरा अर्थ रिष्टनाम पाप उपद्रवका है, तिसके काटनेवास्ते नेमि चक्रकी धारासामान, सो कहिये रिष्टनेमि; अकार, रिष्टशब्द अमंगलवाचक होनेसें लगाया है. । यथा अपच्छिमा मारणंतिसंलेहणा । तथा तित्थयराणं अपच्छिमो इत्यादिवत् । शेषार्थ पूर्ववत् जानना ॥ येह दोनों अर्थ सम्यक् प्रकारसें घट सकते हैं. इसतरेंकी अनेक श्रुतियां सामवेदादि संहिताओंमें हैं, तहां भी, इसी रीतिसें अर्थोंकी घटना करलेनी ।

पूर्वपक्षः–अन्य सर्व तिर्थकरोंको छोडके, 'श्रीनेमि' और 'अरिष्टनेमि' इन दोनों नामोंसें बावीसमे अर्हन् अरिष्टनेमिकी स्तुति वेदमें करनेका क्या प्रयोजन है ?

उत्तरपक्षः–जिस समयमें वेदोंकी संहिता बांधी गइ थी, शुक्ल यजुर्वेद और यजुर्वेदके ब्राह्मण, आरण्यक, रचे गये थे, तिस समयमें श्री अरिष्टनेमि २२ मे अरिहंत विद्यमान थे. और श्रीकृष्ण वासुदेवके ताए समुद्रविजयके पुत्र थे. तिनोंने संसार त्यागके दीक्षा लेके, केवलज्ञान उत्पन्न करके, धर्मतीर्थ प्रवर्त्तन करा. और श्रीकृष्ण वासुदेवजीने जिनकी भक्ति और मुनियोंको वंदना करनेसें तीर्थंकर गोत्र उपार्जन करा, जिसके प्रभावसें आगामि उत्सर्प्पिणीकालमें अमम नामा अरिहंत होके निर्वाणपदको प्राप्त होवेंगे. ऐसे अरिष्टनेमि भगवान्की तिन वेदोंमें स्तुति करनी असंभव नही है.

तथा तैत्तिरीय आरण्यक प्र० ४, अ० ५, मंत्र १७ मेमें प्रकटकरके अरिहंतकी स्तुति करी है.

यथा ॥

अर्हन् बिभर्षि सायकानिधन्व अर्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपं ।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमब्भुवं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति ॥

व्याख्या—हे अर्हन्! हे रुद्र!
यज्ञादिकर्म्मानुष्ठानप्रसनेनेति रुद्र । सो हे रुद्र!
विमोहनात्मक शास्त्ररूपी (सायकान्) बाणोंको (बिभर्षि)
हो तथा (धन्व) अर्थात् पुरुषार्थरूप धनुषको भी
(हे अर्हन्) अपनी योग्यताहीसें (यजतं) अर्थात्
रूपम्) नानाप्रकारके मन्त्रयंत्रादि धारण करते हो तथा
नानाप्रकारके स्वर्णमय भूषणोंको (बिभर्षि)
और तैसेंही (विश्वम् अम्भुवम्) सपूर्ण जल और
जीव हैं तिनको (दयसे—मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि)
नुकूल दयाकरके पालन करते हो इसीकारणसें (हे रुद्र) (
समान (ओजीयो) बलवान् (नवे अस्ति) कोई नहीं
हमारी भी रक्षा कीजिये—यहा जो कोई यह शंका करें
(अर्हन् बिभर्षि सायकानिधन्व) इससें मोहनादि शास्त्रोंका
पाया जाता (सायक) पदसें तो बाणोंकाही धारण पाया
कहना ठीक नही क्योंकि, शुद्ध अर्हन्मतानुयायी
जीवरक्षा करते हैं, तो फिर, उनमें धनुषबाणका धारण
सकता हे? कदापि नहीं इससें यह जानना चाहिये कि
इनको सायक और धनुषका धारण लिखा है, सो केवल
वास्तवमें नही सो इसी आरण्यकके प्र० ५, अनु० ४ में
यथा ॥

"॥ अर्हन् विभर्षिसायकानिधन्वेत्याह ।
यह अर्हन् भगवान्में जो (विभर्षिसायकानिधन्व) यह
(स्तोत्रेवैनमेतत्) यह केवल स्तुतिमात्रही है, वास्तवमें
विमोहनात्मक शास्त्रादिकोंका धारण अर्थ करनाही उचित है.
इति ॥ इस मन्त्रमें रुद्र, शिव, महावीर (हनुमान्), आदि
अर्थ नही घट सकता हे क्योंकि, वे तो, सर्व शस्त्रधर
इस मन्त्रमें तो, जो शस्त्रधारी नही हें, तिसको शस्त्रधारी

शंकासमाधान लिख आए हैं. तथा तैत्तिरीय आरण्यकके १० मे प्रपाठकके अनुवाक ६३ में सायनाचार्य लिखते हैं.।

यथा ॥

"॥ कंथाकौपीनोत्तरासंगादीनां त्यागिनो यथाजातरूपधरा निर्ग्रंथा निष्परिग्रहाः ॥" इति संवर्त्तश्रुतिः ॥

भावार्थः–शीतनिवारणकंथा, कौपीन, उत्तरासंगादिकोंके त्यागि, और यथा जातरूपके धारण करनेवाले, जे हैं, वे, निर्ग्रंथ, और निष्परिग्रह, अर्थात् ममत्वकरके रहित होते हैं. यह लक्षण उत्कृष्ट जिनकल्पिका है. क्योंकि निर्ग्रंथ जो शब्द है, सो जैनमतके शास्त्रोंसेंहि साधुपदका बोधक है, अन्यत्र नहीं. और अंग्रेज लोकोंने भी, यह सिद्ध करा है कि, 'निर्ग्रंथ' शब्द जैनमतके साधुयोंकाही वाचक है. बौद्धलोकोंके शास्त्रमें भी 'निग्गंथनातपुत्त' अर्थात् निर्ग्रंथज्ञातपुत्र इस नामसें जैनमतके २४ मे वर्द्धमान महावीरस्वामिको कथन करे हैं. और जैनमतके शास्त्रमें तो, ठिकाने २ 'नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा–कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा–निग्गंथाण महेसीणं'–इत्यादि पाठ आवे हैं. तथा प्रायः- करके पूर्वकालमें जैनमतके साधुयोंको निर्ग्रंथही कहते थे, और सुधर्मा- स्वामी, जो श्रीमहावीरस्वामीके पांचमे गणधर हुए, उनोंकी शिष्यप- रंपरामें जे साधु हुए, वे कितनेक कालपर्यंत निर्ग्रंथगच्छके साधु कहाते थे; पीछे कारण प्राप्त होकर तिस निर्ग्रंथगच्छका और नाम प्रसिद्ध हुआ, यावत् अद्यतन कालमें तपगच्छादि गच्छोंके नामसें कहे जाते हैं. तथा सिद्धांतसारमें मणिलाल नभुभाइ द्विवेदी भी लिखते हैं कि, ब्राह्मणोंके प्राचीन ग्रंथोंमें 'जैन' ऐसा नाम नही आता है; परंतु, विवसन, निर्ग्रंथ, दिगंवर, ऐसा नाम वारंवार आता है. इससें भी निर्ग्रंथशब्द, जैनमतानु- यायी सिद्ध होता है. तव तो सिद्ध हुआ कि, जैनमत, श्रुतिस्मृतिसें भी प्राचीन है. तथा पूर्वोक्त हमारा लेख, "क्या जाने, कौनसी शाखामें क्या लिखा है?" इत्यादि सत्य हुआ. तवतो, कोइ भी कहनेको सामर्थ्य नही है कि, जैनमत नूतन है, वा जैनमतका वेदादिकोंमें नाम भी नही है.

पूर्वपक्षः—कितनेक सुज्ञजन कहते जे जे, वेदवाक्य लेख हैं, वे सर्व, कैसें है ?

उत्तरपक्ष —हे प्रियवर! जो जो वेदोंमें सर्व जैनमतवालोंको सम्मत है क्योंकि, जो जो संसारसें निवृत्तिजनक, और वैराग्यउत्पादक वाक्य, ब्राह्मण, आरण्यक, स्मृति, पुराणादिकोंमें हैं, वे वचन हैं इस कथनमें श्रीसिद्धसेनदिवाकर, और श्रीधनपालजी लिखते हैं।

यथा ॥

सुनिश्चितं न परतंत्रयुक्तिषु स्फुरंति याः
तवैव ता
उदधाविव सर्वसिंधवः समुदीरणास्त्वयि नाथ
न च तासु भवान् दृश्यते
पावंति जसं असमंजसावि वयणेहिं जेहिं
तुहसमयमहोअहिणो ते मंदा बिंदुनिस्संदा ॥

भावार्थ —हे नाथ! हमने यह निश्चित किया है कि, अर्थात् परमतके शास्त्रोंमें जे कोई सूक्तिसंपदा, सो सर्व सर्व, हे जिन! तुमारेहि चतुर्दशपूर्वरूप महासमुद्रसें हैं। तथा हे नाथ! जैसें समुद्रमें सर्व नदीयें प्रवेश करती रोविषे सर्व दृष्टियें प्रवेश करती हैं, परंतु तिन दीखते हो जैसें पृथक् २ हुई नदीयोंकिविषे समुद्र नही समुद्रमें सर्व नदीयें समा सक्ती हैं, परंतु समुद्र किसी भी नहीं समा सक्ता है, ऐसेंही सर्व मत नदीयोंसमान है, वे, द्वादशसमुद्ररूप तेरे मतमें समा सक्ते हैं, परंतु हे नाथ! द्रव्य मत, किसी मतमें भी संपूर्ण नहीं समा सक्ता है मंबधी भी जो परसमय, जैनमतके विना

वचनोंसें यशको प्राप्त करे हैं, वे सर्व वचन, तुमारे स्याद्वादसिद्धांतरूप समुद्रके मंद थोडेसें बिंदुनिस्संद बिंदुओंसें झरे हुए पाणीसदृश हैं; अर्थात् वे सर्व वचन स्याद्वादरूप महोदधिके बिंदु उडके गए हैं. ॥ इसवास्ते पूर्वोक्त वेदादिवचन जैनोंको सर्व प्रमाण हैं; परंतु जे हिंसक, और अप्रमाणिक वचन हैं, वे सर्व, जैनोंको सम्मत नहीं हैं, असर्वज्ञ मूलक होनेसें.।

यथा मनुस्मृतौ पंचमाध्याये ॥

यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा ॥
यज्ञस्य भूत्यै सर्वस्य तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः ॥ ३९ ॥
मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि ॥
अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनुः ॥ ४१ ॥
एष्वर्थेषु पशून् हिंसन् वेदतत्त्वार्थविद् द्विजः ॥
आत्मानं च पशुं चैव गमयत्युत्तमां गतिम् ॥ ४२ ॥
या वेदविहिता हिंसा नियतास्मिंश्चराचरे ॥
अहिंसामेव तां विद्याद्वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ ॥ ४४ ॥

भावार्थः—स्वयंभु परमात्माने आप यज्ञकेवास्ते पशुयोंको उत्पन्न करे हैं, सर्व यज्ञकी भूतिकेवास्ते, तिसवास्ते, यज्ञमें जो बध है, सो, अबध है, अर्थात् बध नहीं है.। ३९। मधुपर्कमें, यज्ञमें, पितृकर्ममें, दैवतकर्ममें, इनमेंही पशुयोंको मारने; अन्यत्र नहीं. ऐसें मनुजी कहते हैं.। ४१। इन पूर्वोक्त कार्योंमें पशुयोंको मारता हुआ, वेदतत्त्वार्थका जानकार ब्राह्मण, आत्माको, और पशुको, उत्तम गतिमें प्राप्त करता है.। ४२। जो वेदकथित हिंसा इस चराचर जगत्में नियत करी है, तिसको अहिंसाही जानो. क्योंकि, वेदसेंही धर्म दीपता है.। ४४। इत्यादि हिंसक श्रुतियांऊपरही जैनोंका आक्षेपहै; इन आक्षेप वचनोंकोंही, कितनेक वैदिकमतवाले द्वेषयुक्त वचन कहते हैं. क्योंकि, उनको वैदिकमतके पक्षपातसें यथार्थ वचन भी, द्वेषयुक्त मालुम होते हैं. परंतु पक्षपात छोडके

विचार करे तो सर्व सत्य २ वचन प्रतीत होते है-स्वामीवत्

पूर्वपक्ष —ऐसे महात्मा योगजीवानंदसरस्वतिस्वामीक

उत्तरपक्ष —संवत् १९४८ आषाढ सुदि १० श्रीमा गुजरांवाले होके हमारेपास मासापट्टीमें पहुंचा तिस हमने तिस लिखनेवाले निःपक्षपाती ओर सत्यके स्वाकी बुद्धिको, कोटिशः धन्यवाद दीया, और तिसके माना सो असलीपत्र तो, हमारे पास है, तिसकी नकल यहां भव्यजन पाठकोंके वाचनेवास्ते दाखिल करते हैं ।

"॥ स्वस्ति श्रीमज्जैनेंद्रचरणकमलमधुपायितमनस्क प्राजकाचार्य परमधर्मप्रतिपालक श्रीआत्मारामजी राज । बुद्धिविजयशिष्यश्रीमुलजीको हसका प्रदक्षिणत्रयपूर्वक क्षमाप्रार्थनमेतत् ॥ भगवन् शास्त्रोंके अध्ययनाध्यापनद्वारा वेदमत गळेमें बांध मैं सभाविजय करे देखा व्यर्थ मगज मारना है । इतनाही होना हे कि राजेलोग जानते समझते हैं फलाना पु विद्वान् है परन्तु आत्माको क्या लाभ हो सकता देखा तो आज प्रसगवस रेल्गाडीसें उतरके भठिंडा । आनके डेरा कीया था सो एक जैनशिष्यके हाथ दो (दो चार अच्छे विद्वान् जो मुझसे मिलने आये) ये कहने लगे (जैन)ग्रंथ है इसे नही देखना चाहिये अत निरपेक्ष बुद्धिके द्वारा विचारपूर्वक जो देखा तो वो लेख इतना पक्षपाती लेख मुझे देख पडा कि मानो एकजगत् छोडके लगे हो गये जो आचारश्यमल आज ७० वर्षसें जो कुछ [illegible] सो व्यर्थसा मालूम होने लगा [illegible] इन दोनों ग्रंथोंको तमामरात्रिदिन [illegible] [illegible] प्रतिमें बैठा हूं ।

यात्रासे अब मै नैपालदेश चला हूं परंतु अब मेरी ऐसी असामान्य महती इच्छा मुझे सताय रही है कि किसी प्रकारसे भी एकवार आपका मेरा समागम वो परस्परसंदर्शन हो जावे तो मै कृतकर्म्मा होजाऊं॥ महात्मन् हम संन्यासी है। आजतक जो पांडित्यकीर्त्तिलाभद्वारा जो सभाविजयी होके राजा महाराजोंमें ख्यातिप्रतिपत्ति कमायके एकनाम पंडिताईका हांसल करा है। आज हम यदि एकदम आपसे मिले तो वो कमायी कीर्त्ति जाती रहेगी ये हम खूब समझते वो जानते है परंतु हठधर्म्म भी शुभ परिणाम शुभ आत्माका धर्म्म नही। आज मैं आपके पास इतनामात्र स्वीकार कर सकता हूं कि प्राचीन धर्म्म परम धर्म अगर कोई सत्य धर्म रहा हो तो जैनधर्म्म था जिसकी प्रभा नाश करनेको वैदिक धर्म्म वो षट् शास्त्र वो ग्रंथकार खडे भये थे परंतु पक्षपातशून्य होके कोई यदि वैदिक शास्त्रोंपर दृष्टि देवे तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि वैदिक वातें कही वो लीई गई सो सब जैनशास्त्रोंसे नमूना इकठी करी है। इसमें संदेह नही कितनीक वातें ऐसी है कि जो प्रत्यक्ष विचार करेविना सिद्ध नही होती हैं। संवत् १९४८ मिती आषाढ सुदि १०॥

पुनर्निवेदन यह है कि यदि आपकी कृपापत्री पाइ तो एकदफा मिलनेका उद्यम करुंगा। इति योगानंदस्वामी। किंवा योगजीवानंदसरस्वतिस्वामि॥

मालाबंधश्लोकोयथा॥

योगाभोगानुगामी द्विजभजनजनिः शारदारक्तिरक्तो।
दिग्जेता जेतृजेता मतिनुतिगतिभिः पूजितो जिष्णुजिद्वैः॥
जीयाद्दायादयात्री खलबलदलनो लोललीलस्वलज्जः।
केदारौदास्यदारी विमलमधुमदोद्दामधामप्रमत्तः॥ १॥

इस श्लोकके सब अर्थ जैनप्रशंसा वो श्रीआत्मारामजीकी विभूतिकी प्रशंसा निकले है, प्रत्येक पुष्पोंके वीचका जो अक्षर है वो तीनवार एक अक्षरको कहना चाहिये ऐसा काव्य दश वीस श्लोक बनायके जरूर

चाहता था कि जैनतत्त्वादर्श को
होनी चाहेती थी । एकवार आपको निश्चोपाय
निश्चय फिर करना बने तो देखी आपनी ॥”

१

॥ ॐ ॥

॥मालाबंध काव्य॥

मुनि आत्मारामजीकी स्तुतिका
वर्णन है

॥ मालाबंध श्लोकोयथा ॥

योगाभोगानुगामी द्विजभजनजनि: शारद-
रक्तिरक्तो । दिग्जेता जेतृजेता मतिनुति-
गतिभि: पूजितोजिष्णुजिष्णैः ॥ जीयाता
यादयाजीतलक्ष्मलक्षणो लोकलीलकलाः ।
केदारोदारसारी विमलमनुमतोरामनामा-
मत्तः ॥ १ ॥

इस श्लोकके ५१ अर्थ है

यह लेख उनका एक कागजके टुकडेमें अंकन था ॥ यह सर्व
पूर्वोक्त महात्माका है ॥ अब विचार करना चाहिये कि, इस

वैदिकमतवाले जैनमतको द्वेषबुद्धिसें नास्तिक कहते हैं, और महाविद्वान् परमहंस परिव्राजकजी निःपक्षपाती सद्बुद्धिवाले जैनमतकी बाबत कैसा विचार रखते हैं!! इससें हे प्रियवरो! जैनाचार्योंने जो जो वेदबावत लेख लिखे हैं, वे सर्व यथार्थ तत्त्वके बोधवास्ते लिखे हैं, न तु द्वेषबुद्धिसें. और द्वेषयुक्त भी, मताग्रही पुरुषोंकोही मालुम होते हैं, नतु पक्षपातरहित पुरुषोंको. ॥

पूर्वपक्षः—जैनमतमें प्राचीन व्याकरण तर्कशास्त्र नहीं है, इससें जैनमत प्राचीन नहीं है. ऐसे कितनेक कहते हैं तिसका क्या उत्तर है?

उत्तरपक्षः—संप्रतिकालमें जो पाणिनीय अष्टाध्यायी व्याकरण है, तिससें तो जैनके व्याकरण प्राचीन है. क्योंकि, पाणिनीय व्याकरणके कर्त्ता पाणिनी, नवमे नंदके समयमें हुए हैं. सो पाणिनी, अपने रचे व्याकरणमें कहते हैं, यथा—"त्रिप्रभृतिषु शाकटायनस्य" और शाकटायनके कर्त्ता, तथा न्यासके कर्ता, शाकटायन और न्यासकी आदिमें मंगलाचरणमें ऐसें लिखते हैं.

"॥ शाकटायनोपि यपथापनाय यतिग्रामाग्रणीः स्वोपज्ञशब्दानुशासनवृत्तावादौ भगवतः स्तुतिमेवमाह । श्रीवीरममृतं ज्योतिर्नत्वादिसर्ववेदसाम् । अत्र च न्यासकृता व्याख्या । सर्ववेदसां सर्वज्ञानानां स्वपरदर्शनसंबंधिसकलशास्त्रानुगतपरिज्ञानानामादिप्रभवमुत्पत्तिकारणमिति ॥"

यह पाठ नंदिसूत्रवृत्तिमें है।

न्यासकी भाषाः—(सर्ववेदसाम्) सर्वप्रकारके ज्ञानोंका स्वपरदर्शनसंबंधी सकलशास्त्रानुगत परिज्ञानोंका (आदिप्रभवम्—प्रथमम्) पहिला उत्पत्तिकारण, ऐसे श्रीवीरं अर्थात् श्रीमहावीरको नमस्कार करके, कैसें श्रीमहावीरको (अमृतज्योतिम्)।

इससें सिद्ध होता है कि, पाणिनीसें पहिलेके शाकटायन और न्यासकर्त्ता जैनमती थे.१* तथा जैनेंद्र व्याकरण और इंद्रव्याकरण, येभी पाणिनीसें

* प्रसिद्धकर्ताकी प्रस्तावना देखो

पहिले रचे गये हैं और चतुर्दशपूर्वमें शब्दप्राभृत
प्राभृत ३, संगीतप्राभृत ४, स्वरप्राभृत ५, ज्योतिष
विद्याके प्राभृत थे तिनमेसें शब्दप्राभृतमें सर्व
थी, नाट्यप्राभृतमें सर्व नाटकोंके विविध कथन, प्रा-
भृतमें सप्तशतार नयचक्रकी स्थापना
ऊपरसें श्रीमल्लवादि आचार्यने द्वादशारनयचक्रसंग्रह
सो वृत्तिसहित अठारह सहस्र (१८०००) श्लोकसंख्या
कारिका यह है ॥

जैनादन्यच्छासनमनृतं भवतीति

तथा सम्मतितर्क मूल १६८, कारिका वृत्तिसहित
यह भी, पूर्वके प्रमाणनयप्राभृतसें उद्धार
वीरात् (वीर—महावीरका संवत्) ४७० वर्षके
रचा है । तथा शब्दांभोनिधिगंधहस्तिमहाभाष्य १,
धर्मसंग्रहणी ३, शास्त्रवार्तासमुच्चय ४, न्यायावतार ५
ज्ञसिद्धि ७, प्रमाणसमुच्चय ८, तत्वार्थ ९
अनेक प्रमाणग्रंथ पूर्वधारीयोंके समयमें रचे गये हैं
तत्वालोकालंकारसूत्र तिसकी ८४००० श्लोकप्रमाण
वृत्ति १, लघुवृत्ति ५००० श्लोकप्रमाण
कोश ३, लक्ष्मलक्षण ४, खंडनतर्क ५, नयप्रदीप ६
नयरहस्योपदेश ८, खंडखाद्य ९, स्याद्वादमंजरी १०,
प्रमाणसुंदर १२, इत्यादि सैंकडो प्रमाणग्रंथ पूर्वोक्त
हैं । और व्याकरणके ग्रंथ, जैनेंद्र इंद्रादि
व्याकरण, और तिसका न्यास श्रीबुद्धिसागरसूरिने
मंदसूरिने विद्यानंदव्याकरण रचा है,
व्याकरण रचा है, और श्रीसिद्धहेमव्याकरण
जिसकी बाबत किसी कविने तिस व्याकरणको देखके

यथा ॥

भ्रातः संवृणु पाणिनिप्रलपितं कातंत्रकंथा वृथा ।
माकार्षीः कटुशाकटायनवचः क्षुद्रेण चांद्रेण किम् ॥
कः कंठाभरणादिभिर्बठरयत्यात्मानमन्यैरपि ।
श्रूयंते यदि तावदर्थमधुराः श्रीहेमचंद्रोक्तयः ॥ १ ॥

भावार्थः—हे भाइ ! जबतक अर्थोंकरके मधुर, ऐसी श्रीहेमचंद्रजीकी उक्तियों सुणते हैं, तबतक पाणिनिके प्रलापको बंद कर, कातंत्रको वृथा कंथा (गोदडी) समान जान, कौडे (कटुक) शाकटायनके वचन मत कर अर्थात् उच्चारण न कर, तुच्छ चांद्रकरके क्या है ? कुछ भी नही, तथा कंठाभरणादि अन्य व्याकरणोंसें भी कौन पुरुष अपने आत्माको पीडित करे ? कोई भी नही. ॥ तथा शिशुपालवधके सर्ग २ के श्लोक ११२ में माघकवि, न्यासग्रंथका स्मरण करते हैं; इसवास्ते माघकवि, न्यासके प्रणेता जिनेंद्र, और बुद्धिपाद बुद्धिसागर आचार्योंसें पीछे हुए हैं.

ऐसे माघकाव्यके उपोद्घातके षष्ठ (६) पत्रोपरि जयपुरमहाराजाश्रित पंडित व्रजलालजीके पुत्र पंडित दुर्गाप्रसादजीने लिखा है, ।

इस लेखसें भी जैनव्याकरणोंके न्यास अतिचमत्कारी है, और प्राचीन पंडितोंको सम्मत है. नही तो, माघसरिखे महाकवि, न्यासका स्मरण किसवास्ते करते ?

पाणिनिकी उत्पत्तिका स्वरूप, सोमदेवभट्टविरचित कथासरित्सागर, तथा तारानाथतर्कवाचस्पतिभट्टाचार्यविरचित कौमुदीकी सरला नाम टीका, और इतिहासतिमिरनाशकके तीसरे खंडके अनुसारसें लिखते हैं.॥— पाटलिपुत्रनगरके नवमे नंदके वखतमें वर्ष उपवर्षनामा पंडित थे, तिनके तीन मुख्य विद्यार्थी थे, वररुचि (कात्यायन), व्याडी इंद्रदत्त, और एक जडबुद्धि पाणिनिनामा छात्र था. सो तहांसें हिमालयपर्वतमें जाके तप करता हुआ, तिसके तपसें तुष्टमान होके किसी शिवनामा देवताने

जिसकी इच्छानुसार नवीन व्याकरण
व्याकरणकी अष्टाध्यायी रची और
मेरे साथ व्याकरणविषयमें शास्त्रार्थ करो.
केसाथ शास्त्रार्थ करते सात दिनमें पाणिनिका
कालमें महादेवने आकाशमें आके हुंकारशब्द
इंद्रव्याकरण नष्ट हो गया; तब पाणिनिने जिन
लीये. तब पीछे वररुचिने हिमालय पर्वतमें जाके.
कर पाके, तिस अष्टाध्यायीकी न्यूनता पूरणेवास्ते

इससें सिद्ध हुआ कि, पाणिनि नंदराजाके समयमें
१५५ वर्ष पीछे लगभग हुआ तो, क्या, पाणिनिसें
व्याकरणसें शून्य थे ? शून्य नही थे, किंतु जैनेंद्र,
जैनव्याकरण प्रचलित थे, तो फिर, जैनमत
होवे ? कदापि न होवे तथा पातंजलिने जो
रचा है, सो भी प्रायः जैनेंद्र इंद्र

पूर्वपक्ष —आपने कितनेही प्रमाणोंद्वारा
सो ठीक है, परंतु 'जैन' शब्द जिनशब्दसें तद्धित
जिन शब्द 'जि जये' धातुका बनता है, और 'जि'
क्योंकि, श्री बाबु शिवप्रसादजी
कके तीसरे खंडके पृष्ठ १७ में लिखते हैं कि, जि
है क्योंकि सायन और नृसिंहने अपने रचे उणादि
धातुको छोड दिया है यह धातु किसी प्रमाणिक ग्रंथमें

उत्तरपक्षः—हे प्रियवर ! बाबुसाहबने जो लिखा है
किस अनुभवज्ञानसें लिखा है !! क्या बाबुजी
सिद्धांत नही मानते हैं ? क्योंकि, यजुर्वेद अध्याय १९
जि जयधातुके प्रयोग हैं. जिसको शंका होवे सो
वेदोंके प्रमाणिक होनेसें, फिर तो वेद वेदोंसें
है, जिसने जि जयधातुको अप्रमाणिक

तो, किसीने जैनमतोपरि द्वेषबुद्धिसें लिखा मालुम होता है. किसी मताग्रहीको यह सूझा कि, जिस जि जयधातुसें जिन सिद्ध होता है. तिसधातुकोही उडा दो. इसीतरें द्वेषबुद्धिसें वेदोंमेंसें कितनीही ऋचा, मंत्र और शाखायोंको गुम्म करदी हैं. तो विचारा जि जयधातु तो किस गिणतीमें है ?

पूर्वपक्षः—जैनमत वेदमतकी वातें लेकर रचा गया है, ऐसे कितनेक कहते हैं, तिसका क्या उत्तर है ?

उत्तरपक्षः—हे प्रेक्षावानो ! तुमको विचारना चाहिये कि, जेकर जैनमत वेदकी कितनीक वातें लेकर रचा गया होवे, तव तो जो कथन, जैनमतमें है, सो सर्व वेदोंमें होना चाहिये. परंतु, कर्मकी ८ मूलप्रकृति, और १४८ उत्तरप्रकृतियोंके स्वरूपके कथन करनेवाले षट्कर्मग्रंथ, पंचसंग्रह, कर्मप्रकृति, प्राभृतकी संग्रहणी, प्राचीन पांच कर्मग्रंथ, शतक, षडशीति कर्मग्रंथ. प्रज्ञापना उपांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, आदिमें लगभग अशीतिसहस्र (८००००) श्लोकोंका प्रमाण है. तिनको कथनका गंधभी, चार वेदसंहिता, ब्राह्मण, उपनिषत्, कल्पादिमें नही है, और साधुकी पदविभागसमाचारी, जिसके कथन करनेवाले सवालक्ष (१२५०००) श्लोक लगभग हैं; और जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्ज्जरा, बंध, मोक्ष, इन पदार्थोंका जैसा स्वरूप, जैन मतके शास्त्रोंमें कथन करा है, तैसा स्वरूप वेदोंमें स्वप्नमें भी कदी नही दीख पडेगा. इसवास्ते प्रेक्षावानोंको चाहिये कि, वेद और जैनमतके शास्त्र पढके तिनका मुकाबला करें और विचारें, तब यथार्थ मालुम हो जावेगा कि, जैनमत वेदमेंसें रचा गया है, वा, वेदोंमें जे जे अच्छी वातें है, वे जैनमतमेंसें लेके रची गई हैं ? जो पूर्वोक्त ग्रंथोंका मुकाबला करके तत्त्व निश्चय करके धारेगा, तिसका कल्याण होवेगा.

तथा जैनमतके प्राचीन होनेमें एक अन्य भी प्रमाण मिला है सो ऐसें है. । श्रीकांतानामा नगरीका रहनेवाला धनेशनामा श्रावक यानपात्रकरके समुद्रमें जाता था; तिनके अधिष्ठायक देवताने तिस जहाजको

स्तंभन कर दीया तदपीछे कोईसें तिर्स
तिस समुद्रकी भूमिसें तिस अंतरके
निकली, तिनमेसें एक प्रतिमा तो
अन्य श्रीपत्तनमें आमलीके वृक्षके हेठ प्रासादमें
प्रतिष्ठित करी, और तीसरी प्रतिमा श्रीपार्श्वनाथकी
सेढिकानदीके कांठे ऊपर तरुआच्छादितभूमिमें

पुरा गये कालमें शालिवाहनराजाके राज्यमें
र्जुन विद्यारससिद्धिवाला, सुविद्या निधान, भूमिमें रहे
रसको स्थंभन करता हुआ, तदपीछे तिसने तहां
करा । और तिस श्रीपार्श्वनाथकी प्रतिमाके, जो
कालमें विद्यमान है, सिंहासनके पीछेके भागमें
लिखी हुई परंपरायसें हम सुनते हैं, और यह बात
प्रसिद्ध है । सो लेख यह है ॥

नमेस्तीर्थकृतस्तीर्थे वर्षे द्विकचतुष्टये २२
आषाढश्रावको गौडोकारयत्प्रतिमात्रयम्

अर्थ —जैनमतमें ऐसी दंतकथा चलती है कि,
रमे नमिनामा तीर्थंकरके शासन चलां पीछे २२२२
आषाढनामा श्रावक, गौडदेशका वासी, तिसने
थीं, तिसमें यह रत्नमयी प्रतिमा भी, तिसनेही बनवाई थी.

जेकर इस चोवीसीके २१ के नमिनाथके शासन चलां
वर्ष गए बनवाइ होवे, तो भी, ५८६६५० वर्षके लगभग

यह लेखसबंधि कथन प्रभावकचरित्र, और
कुमतिमत कौशिक सहस्रकिरणनामक ग्रंथोंमें है इससें
है कि, जैनमत अतीव प्राचीन है इत्यलं विद्वज्जनपर्षत्सु

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते
जैनमतप्राचीनतावर्णनो नाम द्वात्रिंशः स्तम्भः ॥
॥ ॥

॥ अथत्रयस्त्रिंशस्तम्भारम्भः ॥

बत्तीसमें स्तंभमें जैनमतकी प्राचीनता सिद्ध करी, अब इस तेतीसमें स्तंभमें जैनमत, बौद्धमतसें भिन्न, और प्राचीन है, सो सिद्ध करते हैं. ।

पूर्वपक्षः—कितनेक मानते हैं कि, जैनमत बौद्धमतमेंसें निकला है, वा, बौद्धमतकी एक शुद्ध शाखा है; तिसका क्या उत्तर है ?

उत्तरपक्षः–हे प्रियवर ! इस वातका निश्चय, पाश्चात्य विद्वानोनें अच्छी तरेसें करा है कि, जैनमत, बौधमतसें पुराना और अलग मत है. आचारांग सूत्रका तरजुमा जर्मन देशके वासी हरमॅनजाकोवी विद्वान (Hermann Jocabi)ने करा है, सो पुस्तक प्रोफेसर मेक्समुल्लर भट्टजी (Professor F Max Müller)ने छपवाया है, तिसकी प्रस्तावनामें अनेक प्रमाणोंसें जैनमतको, बौद्धमतसें प्राचीन और भिन्नमत सिद्ध करा है. तिसमेंसें थोडीसी बातें नमूनेमात्र लिख दिखाते हैं.

वे लिखते हैं कि, जैनमतका मूल, और तिसकी वृद्धि, इन दोनों बातोंमें जो कितनेक यूरोपीयन विद्वान् वहेम (शंका) रखते हैं, सो ठीक नहीं. क्योंकि, बडाभारी, और प्राचीन, ऐसा जैन पुस्तकोंका जथा (समूह) हमारे हाथमें आया है; और तिनमेंसें जैनमतके प्राचीन इतिहासके पूरेपूरे साधन, जो कोइ एकट्ठे करनेको चाहे तो तिसको मिल सकते हैं और ये साधन ऐसे भी नहीं हैं कि, जिनके ऊपर अपनेको प्रतीत न आवे. हम जानते हैं कि, जैनोंके पवित्र पुस्तक प्राचीन हैं, और जिन संस्कृतग्रंथोंको तुम हम प्राचीन कहते हैं, तिन ग्रंथोंसें भी येह ग्रंथ अधिक प्राचीन, युरोपीयन विद्वानोंमें कबूल हुए हैं. इन पुस्तकोंमेंसें बहुते प्राचीन होनेकी बाबतमें उत्तरके बुद्धलोकोंके प्राचीनोंमें प्राचीन पुस्तकोंसें अधिकता करें ऐसे हैं, बुद्धमत और बुद्धमतके इतिहासके साधनोवास्ते उत्तरके बुद्धलोकोंके प्राचीन ग्रंथोंका उपयोग फतेहमंदीसें करमें आया है; तैसेंही जैनीयोंके इतिहासवास्ते प्रमाण करने योग्य मूलतरीके तिनके पवित्र पुस्तकों ऊपर हम तुम किसवास्ते अविश्वास रखते हैं ? तिसका कारण अपनेको कुछ भी मालुम नही होता है.

लेकर जैनग्रंथोंका केवल संपूर्ण
संवत् मिति ऊपरसें विरोधि अनुमान
ऊपर आधार राखनेवाली सर्व
अपनेको ठीक है, परंतु फिर बुद्धोंके
ग्रंथोंसें इस बाबतमें जैनग्रंथोंका वर्त्तांत कुछ
है, तब तो किसवास्ते लुप्त जैनमतके शास्त्रोंकी
आती हैं? तिससें जैनमतके पुस्तकोंके कथनसें
काल और मूल जैनमतको अर्पित (आरोप)
रोंकी प्रवृत्ति हुई है इस प्रवृत्तिका प्रकट कारण
यह मालुम होता है कि, जैन और बुद्धमतमें
व्यवहारिक वार्तोंका मिलतापणा देखके ऐसा
कि, जो ये दोनों पंथोंमें इतना मिलतापणा है,
स्वतंत्र (अन्य) होना नही चाहिये, परंतु एकपंथको
निकलना चाहिये इस आनुमानिक
बुद्धि लुप्त होगई है, अब भी लुप्तही होरही है ऐसें
प्रायको असत्य करनेवास्ते, और जैनोंके पवित्र
प्रतिष्ठाके पात्र हैं, तिनकी सत्यता और
पत्रोंमें प्रयत्न करुंगा जैनसंप्रदायका प्रवर्त्तावनेवाला,
तीर्थंकर महावीर (स्वामी), तिस विषयतक
चरचाका प्रारंभ करते हैं—इत्यादि बहुत लेख लिखके
कि—बुद्ध तहांसें वैशालीमें गया, जहां लच्छवीयोंका
धर्मका (जैनके साधुयोंका) श्रावक था, तिसको बुद्धने
इत्यादि लिखके फेर लिखते हैं कि—बुद्धमतकेही शास्त्रमें
बुद्धका प्रतिस्पर्द्धि (शत्रु), और जैनसाधु अथवा निर्ग्रंथोंके
महावीर (स्वामी) को तिनका प्रसिद्ध नाम नातपुत्तकरके
इनका गोत्र बुद्धकोंने अभिनेसायन लिखा है, सो तिनका
असत्य है क्योंकि, यह गोत्र तो, इनके मुख्य गणधर सुधर्मा
साथ संबंध रखता है, महावीर (स्वामी) के सर्व अगणधरोंके वह

स्वामी, एकलेही महावीरस्वामीके पीछे जीते रहे थे; और अपने गुरुके निर्वाणपीछे इनोंहीने अग्रेश्वरीपणा धारण करा था.

महावीरस्वामी बुद्धके सहकाली होनेसें, इन दोनोंके एकसदृशही सहकालिक थे, तिनका व्योरा (खुलासा) बिंबीसार, और तिसका पुत्र अभयकुमार, और अजातशत्रु लच्छवी और मल्लि, और मंखलिपुत्र गोशालक, इन पुरुषोंके नाम, दोनों मतोंके पवित्र पुस्तकोंमें हम तुम देखते हैं. अपनेको पीछेसें खवर हुई है, तैसेंही बुद्धलोककी पीठिकामेंसें ऐसा मालुम होता है कि, वैशालीसें महावीरस्वामीके भक्त श्रावक वहुत थे. यह बात जैनलोक कहते हैं कि, इस नगरके पासही महावीरस्वामीका जन्म हुआ था, तिसके साथ संपूर्ण, और फिर इस नगरीके मुख्य अधिकारीके साथ महावीरका संवंध था, सो पीठिकाके कथनके साथ अच्छीतरें मिलता आता है; इसके विना भी पीठिकामें निर्ग्रथोंका मत, जैसें क्रियावाद, (आत्मा नित्य है, तिसको अपने करे कर्मका फल इसलोक परलोकमें भोगना पडता है.) और पाणीमें जीव है, ऐसा मानना बुद्धलोकोंके शास्त्रोंमें लिखा है, सो जैनमतके साथ संपूर्ण मिलता आता है. सबसें पीछे नातपुत्तके निर्वाणका स्थल बुद्धलोक पापापुरमें मानते हैं, सो सच्च है—इत्यादि अनेक बुद्धके, और महावीरके वृत्तांतका परस्परविशेष दिखलाके, बुद्ध पुरुष बौद्धमतके चलानेवाला, और महावीर जैनमतका चलानेवाला, ये दोनों पुरुष अलग अलग थे. और बुद्धके मतसें जैनमत पहिलेंका है, ऐसा सिद्ध करा है. इससें जैनमत बुद्धमतसें नही निकला है, और न बुद्धमतकी शाखा है; किंतु बुद्धमतसें पहिलेंका प्राचीन मत है.

तथा "सेक्रेडवुक्स आफ धी इस्ट" के ४५ मे भागतरीके उत्तराध्ययन, और सूत्रकृतांगके भाषांतर करनार प्रोफेसर हरमॅन जाकोवी, प्रसिद्ध करनार प्रोफेसर मॅक्ष मुल्लर, तिस पुस्तककी भूमिकामें लिखते हैं कि— बौद्धसिद्धांतका लिखान, नातपुत्तके पूर्वे निर्ग्रथोंके अस्तित्वसंवंधी अपने विचारोंसें विरुद्ध नहीं है; क्योंकि, जव बुद्धधर्म सुरु हुआ, तिस वखतमें

निर्ग्रंथ एक अगत्यकी कोम होनी चाहिये
है कि, बौद्धोंके पिटकोंके बीच बारबार
बुद्धके, या तिसके शिष्योंके विरुद्ध पक्षवाले है.
करके बौद्धमतमें लेनेमें आए तथा निर्ग्रंथ एक,
हुई कोम है, ऐसा किसी जगे भी कहनेमें
भी करनेमें नही आया है तिससें हम बुद्ध
बुद्धके जन्म पहिलें बहुत वखत हुए निर्ग्रंथ होने
दूसरी एक बातका आधार मिलता है. बुद्ध और
वखतमें हुए मक्खलिगोशालेका कहना ऐसा है कि,
विभाग है (देखो बौद्धोंका दीर्घनिकायका
ऊपर बुद्धघोषने सुमंगलविलासिनी इस नामकी टीका
अनुसारें मनुष्यजातिके छ विभागमेंसें तीसरे विभागमें
करनेमें आया है निर्ग्रंथ, तिसही समयकी नवीन
तो, तिनको गोशाला मनुष्यजातिका एक मुख्य
त्रिभाग गिणे, ऐसा संभव नही होता है

मेरे मत (मानने) मूजब जैसें प्राचीन बौद्ध,
त्यक्त और पुरानी कोमतरीके जानते थे, तैसेंही
बहुत अगत्यकी और पुरानी कोमतरीके जानी हुई
मेरे मतकी तरफेणमें आखिर दलील यह है कि,
(मध्यम) निकायके ३५ मे प्रकरणमें बुद्ध, और निर्ग्रंथके
हुई चर्चाकी बात लिखि हुई है सचक जात निर्ग्रंथ
अपने बारमें नातपुत्त (ज्ञातपुत्र महावीर) को
है और जिन तत्त्वोंका आप बचाव करता है, वे कहे.
जब एक मामांकितवादी, जितना वित्त निर्ग्रंथ का
हुआ, तब निर्ग्रंथोंकी कोम बुद्धकी दिगनीकी [illegible]
नद बन सकता नहीं है

तथा पूर्वोक्त पुस्तकमेंही लिखा है कि--उत्तराध्ययनके २३ मे अध्ययनकी १३ मी गाथामें कहा है कि, पार्श्वनाथकी सामाचारीमूजव साधु ऊपरका और नीचेका कपडा पहरते थे; परंतु महावीरस्वामीकी सामाचारीमें कपडेकी मनाइ थी. जैनसूत्रोंमें नग्नसाधुका नाम वारंवार अचेलक लिखा है, जिसका अक्षरार्थ कपडेविनाके ऐसा होता है.

बौद्धलोक अचेलक, और निर्ग्रंथके बीचमें कुछक तफावत रखते हैं. बौद्धोंके धम्मपद (धर्मपद) नामके पुस्तकऊपर बुद्धघोषकी करी हुई टीकामें कितनेक भिक्षुसंबंधि ऐसें कहनेमें आया है कि, वे, अचेलकसें निर्ग्रंथोंको विशेष पसंद करते हैं. क्योंकि, अचेलक तदन नग्न होते हैं, (सव्वासोअपटिच्छन्ना) परंतु निर्ग्रंथ एक जातका कपडा नीतिमर्यादाकेवास्ते रखते हैं.

कपडा रखनेका कारण बौद्धाभिक्षुयोंने यह दिया है कि, नीतिमर्यादा सचवाती है--रहती है. यह कारण खोटा है; बौद्ध अचेलक, अर्थात् मंखलिगोशालेके और तिसके पहिलें हुए किस संकिच्च तथा नंदवच्छके अनुयायी समझने, ऐसें जानते हैं. और तिनके मज्झिमनिकायके ३६ मे प्रकरणमें अचेलकोंकी धर्मसंबंधी क्रियाओंका वर्णन भी लिखा है.

इस ऊपरके लेखसें यह सिद्ध हुआ कि, निर्ग्रंथमत, अर्थात् जैनमत, बौद्धमतसें पृथक् भिन्न मत है, और बौद्धमतसें प्राचीन है.

अब हम प्रोफेसर हरमॅन जाकोबीके करे उत्तराध्ययनके २३ मे अध्ययनकी १३ मी गाथाके तरजुमेकी समालोचना करते हैं. । क्योंकि, उन्होंने जो अर्थ करा है, सो अपनी बुद्धीसें करा है, न तु जैनसंप्रदायानुसार; क्योंकि, जैनमतमें निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीकादिके अनुसार अर्थ करा हुआ मान्य है, नतु स्वबुद्धिउत्प्रेक्षित. जेकर स्वबुद्धिकी कल्पनासें अर्थ करे जावें, तब तो, अन्यमतोंके शास्त्रोंकीतरें जैनमतके शास्त्रोंके अर्थ भी, नाना पुरुषोंकी नाना कल्पनासें नाना प्रकारके हो जावेंगे; तब तो असली सर्व सच्चे अर्थ व्यवच्छेद हो जावेंगे; और उत्सूत्रार्थकी प्रवृत्ति होनेसें जैनमतही नष्ट हो जावेगा.

निर्ग्रंथ एक अगत्यकी कोम होनी चाहिये
है कि, बौद्धोंके पिटकोंके बीच वारंवार कथन
बुद्धके, या तिसके शिष्योंके विरुद्ध पडनारे हैं.
कभो बौद्धमतमें लेनेमें आए तथा निर्ग्रंथ एक
हुई कोम है, ऐसा किसी जगे भी कहनेमें आया नहीं
भी करनेमें नहीं आया है तिससें इस कुम
बुद्धके जन्म पहिलें बहुत वखत हुए निर्ग्रंथ होंगे
दूसरी एक बातका आधार मिलता है बुद्ध, और
वखतमें हुए मख्खलिगोशालेका कहना ऐसा है कि,
विभाग है (देखो बौद्धोंका दीर्घनिकायका
ऊपर बुद्धघोषने सुमंगलविलासिनी इस नामकी टीका
अनुसारें मनुष्यजातिके ६ विभागमेंसें तीसरे विभागमें
करनेमें आया है निर्ग्रंथ, तिसही समयकी नवीन
तो, तिनको गोशाला मनुष्यजातिका एक पृथक् जुदा
विभाग गिणे, ऐसा संभव नहीं होता है

मेरे मत (मानने) मूजब जैसें प्राचीन बौद्ध, [illegible]
त्यर्की और पुरानी कोमतरीके जानते थे, तैसेंही
बहुत अगत्यकी और पुरानी कोमतरीके जाती हुई
मेरे मनकी तरफसे आखिर दलील यह है कि,
(मज्झिम) निकायके ३५ मे प्रकरणमें बुद्ध, और निर्ग्रंथके
हुई चर्चाकी बात लिखि हुई है सचक आप निर्ग्रंथ
आप बादमें नातपुत्त (ज्ञातपुत्र महावीर) को हराऊंगा
है और जिन तत्त्वोंका आप बचाव करता है, वे तत्त्व
जब एक वादविवादी, जिसका पिता निर्ग्रंथ था सो
हुआ, तब निर्ग्रंथोंकी कोम बुद्धकी जिंदगीमें [illegible]
तब बन सकता नहीं है

तरजुमा करते हैं, सो वडी भूल करते हैं; इसवास्ते उनको चाहिये कि टीकाके अनुसारही तरजुमा करें.

अव यहां प्रसंगोपात हम बहुत नम्रतासें दिगंवर जैनमतके माननेवालोंसें विनती करते हैं कि, हे प्रियबांधवो! तुम भी अपने मतके कदाग्रहको छोडके पक्षपातसें रहित होकर जरा विचार करो कि, जैन-मतकी वडी भारी दो शाखायें हो रही हैं; श्वेतांवर १, दिगंवर २, इन दोनोंमेसें यथार्थ जैनमत कौनसा है?

दिगंबरः—यह जो श्वेतांवर मत है, सो तो विक्रम राजाके मरे पीछे एकसोछत्तीस (१३६) वर्षपीछे सौराष्ट्रदेशकी वल्लभीनगरीमें उत्पन्न हुआ है. ऐसा कथन हमारे देवसेनाचार्य दर्शनसार ग्रंथमें कर गए हैं.

तथाहि ॥

छत्तीसे वरिससए, विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स ॥
सोरट्ठे वलहीए, सेवडसंघो समुप्पण्णो. ॥ ११ ॥
सिरिभद्दबाहुगणिणो, सीसो णामेण संतिआयरिओ ॥
तस्स य सीसो दुट्ठो, जिणचंदो मंदचारित्तो. ॥ १२ ॥
तेण कियं मदमेदं इत्थीणं अत्थि तप्भवे मोरको॥
केवलणाणीण पुणो, अट्ठक्खाणं तहा रोओ. ॥ १३ ॥
अंबरसहिओवि जइ, सिज्झइ वीरस्स गप्भचारित्तं ॥
परलिंगेवि य मुत्ती, पासुयभोज्जं च सव्वत्थ ॥ १४ ॥
अण्णं च एवमाई, आगमउट्ठाइ मिच्छसत्थाइं ॥
विरइत्ता अप्पाणं, पडिठवियं पढमए णिरए. ॥ १५ ॥

भाषार्थः—विक्रमराजाके मरण प्राप्त हुएपीछे १३६ वर्षे सोरठदेशमें वल्लभीनगरीमें श्वेतपट श्वेतांवरसंघ उत्पन्न हुआ, श्रीभद्रवाहुगणिका शांतिसूरिनामा शिष्य हुआ, तिसका मंदचारित्रवाला जिनचंद्रनामा दुष्ट शिष्य हुआ, तिसने यह मत उत्पन्न किया. स्त्रीको तिसही भवमें मोक्ष-प्राप्ति १, केवलज्ञानिको आहार तथा रोग २, वस्त्रसहित ऐसा भी यति

इसवास्ते अव्यवच्छिन्नसंप्रदायसें
माननाचाहिये, परंतु अन्य प्रकारसें नहीं

ऊपर लिखि गाथाका यथार्थ अर्थ ऐसा
इत्यादि–अचेलकश्चाविद्यमानचेलकः ।
कुत्सार्थत्वात् कुत्सितचेलको वा यो धर्मो
जो इमोत्ति । यश्चायं सांतराणि
चित् मानवर्णविशेषितानि उत्तराणि च
यस्मिन्नसौ सांतरोत्तरोधर्मः पार्श्वेन देशितः । इतिटीकार्थ

भाषार्थ –अचेलक कहिये, अविद्यामानचेलक,
वा पक्षांतरसें दूसरा अर्थ, परिजीर्ण सर्वथा पुराने
आगमके वचनसें नकारको कुत्सार्थवाचक होनेसें
धर्म, तिसको अचेलक धर्म कहिये, ऐसा अचेलक
स्वामीने उपदेश्या है और यह, जो, सांतर,
अपेक्षासें किसीको किसी वख्त मान, वर्ण,
होनेकरके प्रधानवस्त्र है जिसमें, ऐसा सांतरोत्तर धर्म
श्या है

भावार्थ —इसका यह है कि, मुलक्षिक
सर्ववस्त्ररहित सर्वोत्कृष्ट जिनकल्पीकी अपेक्षा
अल्पमोलके वस्त्र रखने यह भी अचेल धर्मही है,
तकाही नाम अचेलधर्म है, ऐसा जैनमतके शास्त्रोंमें
क्योंकि, जैनमतके शास्त्रोंमें ठिकाने ठिकाने वस्त्रादि
कथन करा है, यदि अचेल शब्दका अर्थ नग्न ऐसाही
को सम्मत होवे तो, वस्त्रग्रहणविधि क्यों लिखते
शब्दसें कुत्सित अर्थात् जीर्णप्राय वस्त्रही अर्थ करना
नञ् (नकार) को षट् (६) अर्थोंमें सर्व
यूरोपीयन (पाश्चात्य) पंडित जो

* जैसे कल्पसूत्र, आचारांग, उत्तराध्ययन

एक सहस्त्रमल्लशिवभूतिनामकरके पुरुष था, तिसकी भार्या तिसकी माताकेसाथ (सासुकेसाथ) लडती थी कि, तेरा पुत्र दिन २ प्रति आधी रात्रिको आता है; मैं, जागती, और भूखी पियासी तबतक बैठी रहती हूं. तब तिसकी माताने अपनी वहुसें कहा कि, आज तूं दरवाजा बंद करके सो रहे, और मैं जागुंगी. वहु दरवाजा बंद करके सो गई, माता जागती रही; सो अर्द्धरात्रि गए आया, दरवाजा खोलनेकों कहा, तब तिसकी माताने तिरस्कारसें कहा कि, इस वखतमें जहां उघाडे दरवाजे हैं, तहां तूं जा. सो वहांसे चल निकला, फिरते फिरतेने साधुयोंका उपाश्रय उघाडे दरवाजेवाला देखा, तिसमें गया. नमस्कार करके कहने लगा, मुझको प्रव्रजा (दीक्षा) देओ. आचार्योंने ना कही, तब आपही लोच करलिया, तब आचार्योंने तिसको जैनमुनिका वेष दे दीया. तहांसें सर्व विहार कर गए. कितनेक कालपीछे फिर तिसी नगरमें आए, राजाने शिवभूतिको रत्नकंबल दीया, तब आचार्योंने कहा, ऐसा वस्त्र यतिको लेना उचित नहीं; तुमने किसवास्ते ऐसा वस्त्र ले लीना? ऐसा कहके तिसको विनाहीपूछे आचार्योंने तिस वस्त्रके टुकडे करके रजोहरणके निशीथिये कर दीने. तब, सो गुरुयोंके साथ कषाय करता हुआ.

एकदा प्रस्तावे गुरुने जिनकल्पका स्वरूप कथन करा, जैसें जिनकल्पिसाधु दो प्रकारके होते हैं; एक तो पाणिपात्र, और ओढनेके वस्त्रोंरहित होता है; दूसरा पात्रधारी, और वस्त्रोंकरके सहित होता है. जो वस्त्रधारी होता है, सो आठ तरेंका होता है. रजोहरण, मुखवस्त्रिका, एवं दो उपकरणधारी।१। दो पीछले और एक पछेवडी (चादर) एवं तीन उपकरणधारी।२। दो पछेवडी होवे तो चार।३। तीन पछेवडी होवे तो पांच।४। रजोहरण मुखवस्त्रिका २, पात्र ३, पात्रबंधन ४, पात्रस्थापन ५, पात्रकेसरिका ६, तीन पडले ७, रजस्त्राण ८, गोच्छक ९, एवं नव उपकरणधारी।५। पूर्वोक्त नव, और एक पछेवडी, एवं दश उपकरणधारी।६। दो पछेवडी और पूर्वोक्त नव, एवं इग्यारह उपकरणधारी।७। तीन पछेवडी और पूर्वोक्त नव, एवं बारां उपकरण-

सिद्ध होता है १, वीर भगवानका गर्भपरावर्त्तन २, प्रासुकभोजन ऊच नीच सर्व कुलोंका साधुको आगमको उत्थापके मिथ्याशास्त्र बनायके अपने स्थापन करा इति–तथा मुनि वस्त्र रक्खे १, मुक्ति होवे २, इत्यादि श्वेतांबरमतके माने किसकोभी हमारे अकलंक देवविरचित लघुत्रयी बृहत्त्रयीमें, तथा षट्पाहुडादि अनेक ग्रंथोंमें प्रमाण युक्तिसें खंडन करा है, तो [illegible]बरमतको असली सच्चा जैनमत कैसें माने ?

श्वेतांबर–प्रियवर! जैसें तुम्हारे देवसेनाचार्य, जो वि० ९९० के लगभगमें हुए हैं, तिनोंने दर्शनसारमें–जो वि० ९९० में बनाया है–श्वेतांबरमतकी उत्पत्ति विक्रमके लिखि है, तैसेंही पूर्वोक्त ज्ञानधारी श्वेतांबरियोंने भाष्य, चूर्णिमें दिगंबरमतकी उत्पत्ति लिखि है,

छव्वाससयाइं नवुत्तराइं तईया सिद्धिं गयस्स
तो वोडियाण दिट्ठी, रहवीरपुरे समुप्पण्णा ॥ [illegible] ॥
रहवीरपुर नगरं, दीवगमुज्जाणमज्जकण्हेय ॥
सिवभूइस्सुवहिम्मि, पुच्छा थेराण कहणा य ॥ ९[illegible] ॥
ऊहाएपन्नत्त, वोडियसिवभूइउत्तराहि इमं ॥
मिच्छादंसणमिणमो, रहवीरपुरे समुप्पण्णं ॥ ९[illegible] ॥
वोडियसिवभूईओ, वोडियलिंगस्स होइ उप्पत्ती ॥
कोडिन्नकोट्टवीरा, परंपराफासमुप्पन्ना ॥ ९५ ॥

भावार्थ—श्रीमहावीर भगवंतके निर्वाण हुआ पीछे [illegible] बोटिकोंके मतकी दृष्टि अर्थात् दिगंबरमतकी श्रद्धा रथवीरपुर [illegible] उत्पन्न हुई । अब ऐसें बोटिकोंकी दृष्टि उत्पन्न हुई है [illegible] भाषाकरके दिखलाते हैं । रहवीर–रथवीरपुर [illegible] उद्यान तहां कृष्णनामा आचार्य समोसरे [illegible]

यह अर्थ मैने श्रीहरिभद्रसूरिकृत टीकासें लिखा है. ऐसाही अर्थ, मूलभाष्यकारने करा है. विशेषार्थ देखना होवे तो, श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणकृतशब्दांभोनिधिगंधहस्तिमहाभाष्य, और तिसकी वृत्तिसें देखना.

तथा दिगंबरीय मूलसंघ नंद्याम्नाय सरस्वतिगच्छ बलात्कारगणकी पट्टावलीमें, और श्रीइंद्रनंदिसिद्धांतीकृत नीतिसारकाव्यमें ऐसें लिखा है। यथा ॥

पूर्वं श्रीमूलसंघस्तदनुसितपटः काष्टसंघस्ततोहि।
तत्राभूद्द्राविडाख्यः पुनरजनि ततो यापुलीसंघ एकः ॥
तस्मिन् श्रीमूलसंघे मुनिजनविमले सेननंदी च संघौ।
स्यातां सिंहाख्यसंघोभवदुरुमहिमा देवसंघश्चतुर्थः ॥ १ ॥

भाषार्थः—पहिले श्रीमूलसंघविषे प्रथम दूसरा श्वेतपटीगच्छ हुआ । १ । तिसपीछे काष्टसंघ हुआ । २ । तिस पीछे द्राविडगच्छ हुआ । ३ । तिसके पीछे यापुलीयगच्छ हुआ ॥ ४ ॥ इन गच्छोंके कितनेक कालपीछे श्वेतांबरमत हुआ । ५ । और यापनीय गच्छ । १ । केकिपिच्छ । २ । श्वेतवास । ३ । निःपिच्छ । ४ । द्राविड । ५ । येह पांच संघ जैनाभास कहे हैं. जैनसमान चिन्हभास दीखे हैं, सो इन पांचोंने अपनी अपनी बुद्धिके अनुसारें सिद्धांतोंका व्यभिचार कथन करा है. श्रीजिनेंद्रके मार्गको व्यभिचाररूप करा. यह कथन श्रीइंद्रनंदिसिद्धांतीकृत नीतिसारमें है.

तथाहि श्लोकाः ॥

कियत्यपि ततोतीते काले श्वेतांबरोभवत् १ ॥
द्राविडो २ यापनीयश्च ३ केकिसंघश्च नामतः ॥ १ ॥
केकिपिच्छः १ श्वेतवासाः २ द्राविडो ३ यापुलीयकः ४ ॥
निःपिच्छश्चेति ५ पंचैते जैनभासाः प्रकीर्त्तिताः ॥ २ ॥
स्वस्वमत्यानुसारेण सिद्धांतव्यभिचारिणं ॥
विरचय्य जिनेंद्रस्य मार्गं निर्भेदयंति ते ॥ ३ ॥

इन तीनों श्लोकोंका भावार्थ ऊपर लिख आए हैं.

धारी । ८ । एवं सर्व आठ विकल्प
पाणिपात्र, और वस्त्ररहित कहा है,
विकल्पवाला आमना

जब आचार्योंने जिनकल्पका ऐसा स्वरूप
पूछा कि, किसवास्ते आप अब इतनी
नही धारण करते हो ? तब गुरुने कहा कि
सामाचारी नही कर सकते हैं क्योंकि,
कल्प व्यवच्छेद हो गया है तब शिवभूति
व्यवच्छेद हो गया क्यों कहते हो ? मैं
परलोकार्थीको करना चाहिये तीर्थंकर
अच्छी है तब गुरुओंने कहा, देहके सद्भाव हुए
सीको होते हैं, तिसवास्ते देह भी तेरेको त्यागने
रिग्रहपणा मुनिके सूत्रमें कहा है, सो धर्मोपकरणोंमें,
और तीर्थंकर भी एकांत अचेल नही थे क्योंकि,
एक देव दूष्यवस्त्र लेके संसारसें निकले हैं, यह
स्थविरोंने तिसको कथन करा, यह गाथाका अर्थ हुआ।
तिसको समझाया भी, तो भी, कर्मोदयकरके वस्त्र
रहा तिस शिवभूतिकी उत्तरा नामा बहिन जो
रहे शिवभूतिको वंदना करनेको गई तिसको वस्त्र
उतार दीने, और नग्न हो गई, और नगरमें
देखी, तब विचारा कि, इसका कुत्सिताकार
विरक्त न हो जावें, इसवास्ते तिसकी उर: (
बांधा * वो तो वस्त्र नही चाहती है, तब शिवभूतिने
वस्त्र तूं रहने दे, देवताने तुझको यह वस्त्र दीना है,
शिवभूतिने दो चेले करे कौडिन्य १, कोट्टवीर २,
परंपरासें कालांतरमें मतकी वृद्धि होगई ऐसें

* किसी जगह ऐसे भी लिखा है कि तिसके ऊपर कोटीको
डांका था.

पंचसए छव्वीसे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स ॥
दक्खिणमहुरा जादो दाविडसंघो महामोहो ॥ २८ ॥
सत्तसये तेवण्णे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स ॥
णंदियडेवरगामे कट्ठो संघो मुणेयव्वो ॥ ३८ ॥

भाषार्थः—एकादश (११) गाथाका अर्थ प्रथम लिख आए हैं, दिगंबरके पक्षमें. कल्याणी नगरीमें २०५ वर्षे यापुलीय संघका भेद हुआ, और श्रीकलशसें श्वेतपट हुआ. ॥ २९ ॥ विक्रमराजाके मरण प्राप्त हुए पीछे ५२६ वर्षे दक्षिणमथुरामें महामोहसें द्राविडनामा संघ उत्पन्न हुआ. ॥ २८ ॥ विक्रमराजाके मरण पीछे ७५३ वर्षे नंदियडेवरगाममें काष्टसंघ उत्पन्न हुआ जानना. ॥ ३८ ॥

इस काष्टसंघकी मूलसंघकी पट्टावलिमें तथा नीतिसारमें निंदा नही लिखि है, परंतु देवसेनने काष्टसंघकी दर्शनसारमें वहुत निंदा लिखि है.।

तथाहि ॥

सिरिवीरसेणसीसो जिणसेणो सयलसत्थविन्नाणी ॥
सिरिपउमनंदि पच्छा चउसंघसमुद्धरो धीरो ॥ ३० ॥
तस्स य सीसो गुणवं गुणभद्दो दिव्वणाणपरिपुण्णो ॥
परक्खुसयहमद्दी महातवो भावलिंगो य ॥ ३१ ॥
तेणप्पणोवि मच्चुं णाऊण मुणिस्स विणयसेणस्स ॥
सिद्धंते घोसित्ता सयं गयं सग्गलोयस्स ॥ ३२ ॥
आसी कुमारसेणो णंदियरे विणयसेणमुणिसीसे ॥
सण्णासभंजणेण य अगहियपुणुदिक्खओ जादो ॥ ३३ ॥
परिवज्जिऊण पिच्छं चमरं घित्तूण मोहकलिदेण ॥
उम्मग्गं संकलियं वागडविसएसु सव्वेसु ॥ ३४ ॥
इत्थीणं पुण दिक्खा खुल्लयलोमस्स वीरचरियत्तं ॥
कक्कसकेसग्गहणं छट्ठं गुणव्वदं णाम ॥ ३५ ॥

तिस मूलसंघमेंही चार

सिंहसंघ । ३ । देवसंघ । ४ । दूसरे ...
चार शिष्योंने चार संघ स्थापन करे ...
नंदिवृक्षके नीचे चतुर्मास करा, तिसने ...
शिष्य चंद्र, तिसने तृणके नीचे चतुर्मास
करा । २ । तीसरा कीर्ति, तिसने सिंहकी गुफामें
सिंहसंघ स्थापन करा । ३ । चौथा मूषक,
वर्षायोग धारा सो देवसंघ हुआ । ४ ।

तथा च नीतिसारस्य श्लोक ॥

अर्हद्वलिगुरुश्चक्रे संघसंघटनं परं
सिंहसंघो नंदिसंघ सेनसंघो
देवसंघ इतिस्पष्टं स्थानस्थितिविशेषतः

इसका भावार्थ उपर लिख आए हैं

अब विचार करना चाहिये कि, पूर्वोक्त लेखमें
नही लिखा है तथा इस मूलसंघकी स्थापनासें,
श्वेतपटीगच्छ । १ । पीछे काष्ठसंघ । २ । पीछे,
यापुलीयगच्छ । ३ । इन गच्छोंके कितनेक
ऐसे लिखा है यह कथन देवसेनाचार्यकृत
है क्योंकि, दर्शनसारमें प्रथम श्वेतांबर । १
श्वेतपट । ३ । पीछे द्राविड । ४ । पीछे काष्ठ

तथा च तत्पाठ ॥

छत्तीसे वरीससए विक्कमरायस्स
सोरट्ठे वलहीए सेवडसंघो समु
...णे करणपरे दुब्भिक्खए पंच
आउक्खियसंघमेओ

बहुरि विक्रमके राज्यपदसैं वर्षचत्वारि (४) पीछैं पूर्वोक्त दूसरा भद्रबाहुकूं आचार्यका पट्ट हुवा.। बहुरि श्रीमहावीरस्वामी पीछैं च्यारिसैं बाणवैं (४९२) वर्ष गये सुभद्राचार्यका वर्त्तमान वर्ष चोईस (२४) सो विक्रमजन्मतैं बावीस (२२) वर्ष, बहुरि ताका राज्यतैं वर्ष च्यार (४) दूसरा भद्रबाहु हुवा जांणना. बहुरि श्रीमहावीरतैं च्यारसैंसत्तरि (४७०), वर्ष पीछैं विक्रम राजा भयो, ताके पीछैं आठ वर्षपर्यंत बालक्रीडा करि, ताके पीछैं सोलह वर्षतांई देशांतरविषैं भ्रमण करि, ताके पीछैं छप्पनवर्षतांई राज कीयो नानाप्रकार मिथ्यात्वके उपदेश करि संयुक्त रह्यो, बहुरि ताके पीछैं चालीसवर्षतांई पूर्व मिथ्यात्वको छोडि जिनधर्मकूं पालिकरि देवपदवी पाई, ऐसें विक्रमराजाकी उत्पत्ति आदि है.

तदुक्तं विक्रमप्रबंधे गाथा ॥

सत्तरिचदुसदजुत्तो तिणकाले विक्कमो हवइ जम्मो ॥
अठवरसबाललीला सोडसवासेहिं भम्मिए देसे ॥ १ ॥
रसपणवासारज्जं कुणंति मिच्छोपदेससंजुत्तो ॥
चालीसवासजिणवरधम्मं पालेय सुरपयं लहियं ॥ २ ॥

इससें सिद्ध होता है कि, दूसरे भद्रबाहु श्रीवीरनिर्वाणसें ४९८ वर्षे पट्टपर हुए. क्योंकि, श्रीवीरनिर्वाणसें ४७० वर्षे विक्रमराजाका जन्म हुआ, ८ वर्ष विक्रमराजाने बालक्रीडा करी, १६ वर्ष देशाटन करा, एवं सर्व मिलाके ४९४ वर्ष हुए; पीछे विक्रमका राज्यपद हुआ, तिसके राज्यके ४ संवत्में भद्रबाहुका पट्टपर होना, एवं ४९८ वर्ष हुए. और सर्वार्थसिद्धिकी भाषाटीकामें श्रीवीरनिर्वाणसें ६४३ वर्षे भद्रबाहु हुए लिखे हैं.

पूर्वोक्त पट्टावलिमें प्रथम ऐसें लिखा है, बहुरि श्रीमहावीरस्वामीपीछैं च्यारसैं अडसठि (४६८) वर्ष गए सुभद्राचार्य भया, ताके वर्त्तमान कालके वर्ष छह (६) बहुरि ताके पीछैं तथा श्रीमहावीरस्वामीपीछैं च्यारसैं चहोत्तरि (४७४) वर्ष गये यशोभद्राचार्य भये, ताका वर्त्तमानकालके वर्ष अठारह (१८) है. और आगे जाके लिखा है कि, बहुरि श्रीमहावीरस्वामीपीछैं च्यारिसैं बाणवैं (४९२) वर्ष गये सुभद्राचार्यका वर्त्तमान वर्ष चोईस (२४).

आयमसत्थपुराणं
विरइत्ता मिच्छत्तं पवत्तियं
सो सवणसंघवज्झो कुमारसेणो हु
सत्तोवसमो रुद्दो कट्ठं संघं पवत्तेदि
सत्तसए तेवण्णे विक्कमरायस्स
णदियडेवरगामे कट्ठो संघोमुणेयव्वो ॥

भावार्थ—श्रीवीरसेनका शिष्य [illegible]
हुआ, तिसके पीछे चार संघका उद्धार करनेवाला
हुआ, तिसका गुणवान् दिव्यज्ञानपरिपूर्ण
वाला महातपस्वी भावलिंगी गुणभद्र नामा शिष्य
मृत्यु जानके विनयसेन मुनिको सिद्धांत पढाके
किया विनयसेन मुनिका शिष्य कुमारसेन हुआ
दीया, फिर बिनाही गुरुके ग्रहण करे दीक्षित हुआ
र ग्रहण करके मोहसंयुक्त होके तिसने
स्त्रीको दीक्षा क्षुल्लकलोमको वीरचारित्र
आगमशास्त्रपुराणप्रायश्चित इत्यादि [illegible]
न्यासाम मिथ्यात्व प्रवर्त्ताया, सो सर्वसंघसे [illegible]
उपशमका त्यागके मिथ्यासिद्धांत, और काष्ठसंघको
क्रमराजाके मरण पीछे सातसौ त्रेपन (७५३)
काष्ठसंघ उत्पन्न हुआ जानना इति ॥

तथा अन्य दिगंबर ग्रंथोंमे लोहाचार्यसें
और दर्शनसारमें कुमारसेनसें काष्ठसंघकी उत्पत्ति

[illegible]
७९८ वर्षे [illegible] हुए [illegible] है [illegible]।
वर्षे पीछे [illegible] (४७०) वर्ष [illegible]
[illegible]

पुनः पूर्वोक्त चरचासमाधानमें लिखा है, "धरसेनमुनि ज्ञानवान रहै कर्मप्राभृत दूसरे पूर्वकी कंठाग्रथा, तिनके अल्पायु अपनी जानकर ज्ञानके अविवच्छेद होनेके कारणते जिनयात्रा करने संघ आया था, तिनपास पत्री ब्रह्मचारीके हाथ भेजकर, तिक्ष्ण बुद्धिमान् भूतबलि, पुष्पदंत, नामे दो मुनि बुलवाये, तिनकूं ज्ञान सिखाया, तिनकूं विदाय करा." यह लेख भी पूर्वोक्त ग्रंथोंसें विसंवादी है. क्योंकि, पूर्वोक्त ग्रंथोंमें ऐसें लिखा है. बहुरि ताकै पीछैं तथा श्रीवीर भगवान्कूं निर्वाण भये पीछैं छहसै तेतीस वर्ष भुक्ते पुष्पदंताचार्य भये, ताका वर्त्तमान काल वर्ष तीस (३०) का भया, बहुरि ताकै पीछैं तथा श्रीमहावीरपीछैं छहसैं तिरेसठि (६६३) वर्ष गये भूतबल्याचार्य भये, ताका वर्त्तमान काल वीस (२०) वर्षका भया, ऐसैं अनुक्रमसैं अनुक्रमते भये बहुरि श्रीमहावीरस्वामीकूं मुक्ति गयें पीछैं छहसैं तियांसी (६८३) वर्ष तांई पूर्व अंगकी परिपाटी चाली, फिरि अनुक्रमकरि घटती रही. और पूर्वोक्त अर्हद्बल्याचार्यादि पांच आचार्यका वर्त्तमान काल एकसो अठारह (११८) वर्षका है, इहांतांई एकांगके धारी मुनि भये हैं, बहुरि ताकै पीछैं श्रुतिज्ञानी मुनि भये, ऐसैं आचार्यनिकी परिपाटी हैं.

तथा च विक्रमप्रबंधे ॥

पंचसये पण्णट्ठे अंतिमजिणसमयजादेसु ॥
उप्पण्णा पंचजणा इयंगधारी मुणेयव्वा ॥ १२ ॥
अहवल्लि माहणंदि य धरसेणं पुप्फयंत भूतबली ॥
अडवीसं इगवीसं उगणीसं तीस वीस पुण वासा ॥ १३ ॥
इगसयअठारवासे इगंगधारी य मुणिवरा जादा ॥
छस्सयतिगसियवासे णिव्वाणा अंगछित्ति कहिय जिणे॥ १४॥

इसका भावार्थ ऊपर लिख आए हैं.

अव विचार करो कि श्रीवीरनिर्वाणसें ६८३ वर्षे धरसेन मुनि कहांसें आए? भूतवलि पुष्पदंतको किसने वुलवाया? भूतवलि पुष्पदंत कहांसें

पीडित साधु होय तो मद्यमांससहितका आहार करे तो दोष नही, इत्यादि लिखा. तथा तिनकी साधककलिपत कथा बनाय लिखी. एक साधुको मोदकका भोजन करताही आत्मनिंदा करी तब केवलज्ञान उपज्या, एक कन्याको उपाश्रयमें बुहारी देतेही केवलज्ञान उपज्या, एक साधु रोगी गुरुको कांधे लेचल्या आखडता चाल्या गुरु लाठीकी दई तब आत्मनिंदा करी ताको केवलज्ञान उपज्या तब गुरु वाके पग पड्या; मरुदेवीको हस्तीपरी चढेही केवलज्ञान उपज्या, इत्यादिक विरुद्ध कथा, तथा श्रीवर्द्धमानस्वामी ब्राह्मणीके गर्भमें आये, तब इंद्र वहांते काढि सिद्धार्थ राजाकी राणीके गर्भमें थापे, तथा तिनकूं केवल उपजे पीछे गोसालानाम गरूड्याकूं दिख्या दइ, सो वाने तप बहुत किया, वाके ज्ञान वध्या, रिद्ध फुरी, तब भगवानसूं वाद किया, तब वादमें हाख्या, सो भगवानसूं कषाय करि तेजूलेश्या चलाइ सो भगवानके पेचसका रोग हुवा, तब भगवानके खेद बहुत हुवा, तब साधानें कही एक राजाकी राणी बिलाके निमित्त कूकडा कबूतर मारि भुतलस्याहै, सो वै महारेंताई ल्यावो, तब यहु रोग मिट जासी, तब एक साधु वह ल्याया, भगवान खाया, तब रोग मिट्या; इत्यादि अनेक काल्पित कथा लिखी. अर स्वेतवस्त्र पात्रा दंडआदि भेषधारी स्वेतंबर कहाये, पीछे तिनकी संप्रदायमें केइ समझवार भये, तिननैं विचारी ऐसे विरुद्ध कथनते लोक प्रमाण करसी नही, तब तिनके साधनेकूं प्रमाणनयकी युक्ति बणाय नयविवक्षा खडी करी. ऐसे जैसें तैसें साधी, तथापि कहांताइ साधै, तब केइ संप्रदायी तिन सूत्रनमें अत्यंत विरुद्ध देखे, तिनकूं तो अप्रमाण ठहराय गोपि कीये, कमि राखें, तिनमैं भी केइकने पैंतालीस राखे, केइकने बत्तीस राषे, ऐसे परस्पर विरोध वध्या तब अनेक गच्छ भये, सो अबताई प्रसिद्ध है. इनिके आचार विचारका कछू ठिकाणा नही. इनहींमें ढूंढिये भयें है, तिने निपटही निंद्य आचरण धाख्या है, सो कालदोष है, किछू अचिरज नांही, जैनमतकी गोणता इसकालमें होणी है ताके निमित्त ऐसे बणे.

श्वेतांबरः—यह सर्वार्थसिद्धिभाषाटीकामें जो लेख लिखा है, प्रायः द्वेषबुद्धिसें लिखा मालुम होता है. जैसें देवसेनाचार्य दर्शनसारमें लिखते

जाय? किसने पढाये?
हुआ, पुष्पदंतका मृत्यु ६६३ में हुआ,
हुआ, पूर्वोक्त लेखसें सिद्ध होता है, तो
वालेने श्रीवीरनिर्वाणसें ६८३ वर्षे
और तिन दोनों भूतबलिपुष्पदंतने
यह कैसें लिख दिया? यह तो ऐसें हुआ, जैसे
स्तम्भ नास्ति, वा मम माता वंध्या
त्पत्तिकी बाबत जो लेख लिखा है, सो
तथा मथुराके पुराने टीलेमेंसें खोदनेसें स्तंभ
ऊपर शिलालेख निकले हैं, तिन लेखोंके
योंने श्वेतांबरमतकी उत्पत्तिबाबत लिखी है, सो
है, वे सर्व लेख आगे चलकर लिखेंगे
दिगंबर—तत्त्वार्थसूत्रकी
रमतकी बाबत ऐसा लेख लिखा है
करके निर्वाण भया पीछे तीन केवली तथा पांच
मकालविषे भये, तिनमें अंतके श्रुतकेवली
गया पीछे कालदोषतें केतेइक मुनि शिथलाचारी
चल्या, तिनमें केतेइक वर्षपीछे एकदेशधर्मिनि
विचारी जो हमारा सम्प्रदाय तो बहुत वध्या, परंतु
है, सो यह शक्ति नही, तथा आगामी हमतें भी
ऐसा करीये जो इस शिथलाचारकूं कोइ
साधनेनिमित्त सूत्र रचना करी, चौरासी सूत्र रचे,
स्वामी और गौतमस्वामी गणधरका प्रश्नोत्तरका
रचोवनके हेतु दृष्टांतयुक्ति बनाय प्रवृत्ति करी, तिन
नाम धरे, तिनमें केतेइक विपरीत कथन कीये, केवलीके
स्त्रीकूं मोक्ष होय, स्त्री तीर्थंकर भया,
उपकरण वस्त्र पात्र आदि चौदह राखे, तथा

पीडित साधु होय तो मद्यमांससहितका आहार करे तो दोष नही, इत्यादि लिखा. तथा तिनकी साधककल्पित कथा वनाय लिखी. एक साधुको मोदकका भोजन करताही आत्मनिंदा करी तव केवलज्ञान उपज्या, एक कन्याको उपाश्रयमें बुहारी देतेही केवलज्ञान उपज्या, एक साधु रोगी गुरुको कांधे लेचल्या आखडता चाल्या गुरु लाठीकी दई तव आत्मनिंदा करी ताको केवलज्ञान उपज्या तव गुरु वाके पग पड्या; मरुदेवीको हस्तीपरी चढेही केवलज्ञान उपज्या, इत्यादिक विरुद्ध कथा, तथा श्रीवर्द्धमानस्वामी ब्राह्मणीके गर्भमें आये, तव इंद्र वहांते काढि सिद्धार्थ राजाकी राणीके गर्भमें थापे, तथा तिनकूं केवल उपजे पीछे गोसालानाम गरूड्याकूं दिख्या दइ, सो वाने तप वहुत किया, वाके ज्ञान वध्या, रिद्ध फुरी, तव भगवानसूं वाद किया, तव वादमें हाख्या, सो भगवानसूं कषाय करि तेजूलेश्या चलाइ सो भगवानके पेचसका रोग हुवा, तव भगवानके खेद वहुत हुवा, तव साधानें कही एक राजाकी राणी विलाके निमित्त कूकडा कवूतर मारि भुतलस्याहै, सो वै महारेंताई ल्यावो, तव यहु रोग मिट जासी, तव एक साधु वह ल्याया, भगवान खाया, तव रोग मिट्या; इत्यादि अनेक कल्पित कथा लिखी. अर स्वेतवस्त्र पात्रा दंडआदि भेषधारी स्वेतंवर कहाये, पीछे तिनकी संप्रदायमें केइ समझवार भये, तिननें विचारी ऐसे विरुद्ध कथनते लोक प्रमाण करसी नही, तव तिनके साधनेकूं प्रमाणनयकी युक्ति वणाय नयविवक्षा खडी करी. ऐसे जैसें तैसें साधी, तथापि कहांताइ साधे, तव केइ संप्रदायी तिन सूत्रनमें अत्यंत विरुद्ध देखे, तिनकूं तो अप्रमाण ठहराय गोपि कीये, कमि राखें, तिनमैं भी केइकने पैंतालीस राखे, केइकने वत्तीस राषे, ऐसे परस्पर विरोध वध्या तब अनेक गच्छ भये, सो अबताई प्रसिद्ध हैं. इनिके आचार विचारका कछू ठिकाणा नही. इनहीमें ढूंढिये भयें हैं, तिने निपटही निंद्य आचरण धाख्या है, सो कालदोष है, किछू अचिरज नांही, जैनमतकी गोणता इसकालमें होणी है ताके निमित्त ऐसे बणे.

श्वेतांबरः—यह सर्वार्थसिद्धिभाषाटीकामें जो लेख लिखा है, प्रायः द्वेषबुद्धिसें लिखा मालुम होता है. जैसें देवसेनाचार्य दर्शनसारमें लिखते

जाय ? किसने पढाये ?
हुआ, पुष्पदंतका मृत्यु ६६३ में हुआ,
हुआ, पूर्वोक्त लेखसें सिद्ध होता है,
वालेने श्रीवीरनिर्वाणसें ६८३ वर्षे तीनोंका
और तिन दोनों भूतबलिपुष्पदंतने
यह कैसें लिख दिया ? यह तो ऐसें हुआ, जैसे
रसना नास्ति, वा मम माता वंध्या कहीये
स्पतिकी बाबत जो लेख लिखा है, सो
तथा मथुराके पुराने टीलेमेंसें खोदनेसें स्तंभ
ऊपर शिलालेख निकले हैं, तिन लेखोंके वाक्योंसें
योंने श्वेतांबरमतकी उत्पत्तिबाबत लिखी है, सो
है, वे सर्व लेख आगे चलकर लिखेंगे

दिगंबर—तत्त्वार्थसूत्रकी
रमतकी बाबत ऐसा लेख लिखा
करके निर्वाण भया पीछे तीन केवली तथा पांच
मकालविषे भये, तिनमें अंतके श्रुतकेवली
गया पीछे कालदोषतें केतेइक मुनि शिथलाचारी
चल्या, तिनमें केतेइक वर्षपीछे एकदेशार्थिवाले
विचारी जो हमारा सम्प्रदाय तो बहुत वध्या,
है, सो यह शक्ति नही, तथा आगामी इनतें भी
ऐसा करीये जो इस शिथलाचारकूं कोइ
साधनेनिमित्त सूत्र रचना करी, चौरासी सूत्र रचे,
स्वामी और गौतमस्वामी गणधरका प्रश्नोत्तररूप
एकेकनके हेतु दृष्टांतयुक्ति बनाय प्रवृत्ति करी, तिन
कथन करे, तिनमें केतेइक विपरीत कथन कीये,
स्त्रीकूं मोक्ष होय, श्री तीर्थंकर कवल
[illegible]

रचे लिखे हैं तो, क्या विद्वान् तिस अप्रमाणिक लेखको सत्य मान लेवेगें ? कदापि नहीं.

और जो लिखा है कि, कितनेक विपरीत कथन किये. केवली कवल आहार करे १, स्त्रीकों मोक्ष २, स्त्री तीर्थकर भया ३, परिग्रहसहितको मोक्ष होय ४, साधु वस्त्रपात्रादि चतुर्द्दश (१४) उपकरण राखे ५, तथा रोगग्लानादिपीडित साधु होय तो मद्यमांससहितका आहार करे तो दोष नहीं ६, इत्यादि लिखा, इनका उत्तर—प्रथम तीन वातें तो सत्य है. क्योंकि, केवलीका कवल आहार और स्त्रीको मोक्ष ये दोनों तो प्रमाणयुक्तीसेंही सिद्ध है, जो आगे लिखेंगे. परंतु दिगंवराचार्य लौकिकव्यवहारके भी अनभिज्ञ थे क्योंकि, लौकिकमतवालोंने अपने मतके आदिदेवते बुद्ध, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, ईसादिकोंको सर्वज्ञ माने हैं, परंतु वे आहार नही करते थे ऐसा किसीने भी नही माना है, और सर्वज्ञ आहार करे तो दूषण है, ऐसा भी किसीने नही माना है. और जगत् व्यवहारमें भी यह वात मान्य नही है कि, देहधारी आहार न करे, और शरीरकी वृद्धि होवे. क्योंकि, विदेहक्षेत्रमें तथा यहां चतुर्थ आरेकी आदिमें नव वर्षके मुनिको केवलज्ञान होवे, तव तिसकी विना कवल आहारके किये पांचसौ धनुष्यकी अवगाहना कैसें वृद्धि होवे ? इसवास्ते दिगंबरोंका कथन असमंजस है. और स्त्री तीर्थंकर हुआ यह तो श्वेतांवरही आश्चर्यभूत मानते हैं तो, इसमें तर्कही क्या है ? । ३ ।

और परिग्रहधारीको जो मोक्ष लिखी है, सो तो मृषावादही है. क्योंकि, श्वेतांवर तो परीग्रहधारीमें साधुपणा भी नही मानते हैं तो, मुक्तिका होना तो कहां रहा ? श्वेतांवरी तो, मूर्च्छाको परिग्रह मानते हैं, नतु धर्मोपकरणको.

यदुक्तं श्रीदशवैकालिकसूत्रे श्रीशय्यंभवसूरिपादैः ॥

जंपि वत्थं च पायं वा कंबलं पायपुच्छणं ॥
तंपि संजमलज्जट्ठा धारंति परिहंति य ॥
न सो परिग्गहो वुत्तो नायपुत्तेण ताइणा ॥
मुच्छा परिग्गहो वुत्तो इइ वुत्तं महेसिणा ॥

हैकि, श्वेतांबरमत चलानेवाला

विचार करो कि, देवसेनने संवत् ९९० में

उस वखत देवसेनको कोइ अवधिज्ञान

कि, जिनचंद्र पहिली नरकमें गया ?

है कि, श्वेतांबरमतकी बाबत जो कल्पना

संयुक्त है ऐसेंही सर्व।

तथापि सर्वार्थसिद्धिआपाठीजनके पठकी

इस लेखमें बहुत मुनि शिथिलाचारी हो

लिखा है, और अंतके श्रुतकेवली प्रथम

है, यह श्वेतांबरमतकी मूल उत्पत्ति लिखी है।

उत्पत्तिका संवत् यह कुछ भी नहीं लिखा है।

और विक्रमप्रबंधादि ग्रंथोंमें श्रीवीरनिर्वाणसें १६

अंतिम श्रुतकेवलीको स्वर्गवासी लिखे हैं,

चलानेवाले जिनचंद्रको श्रीवीरनिर्वाणसें ७८६

स्ते यह लेख भी परस्पर विरोधी है, इसीवास्ते

तथा देवर्धिगणिने शिथिलाचारके पोषणवास्ते

चारांगादि सूत्र रचे, यह कथन भी

तो देवर्धिगणिनामा श्वेतांबरोंका कोई साधुही

दूरही रही !! परंतु प्रथम सर्व पुस्तक ताडपत्रोंपरि

देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण पूर्वके ज्ञानके धारक हुए

९८० वर्ष पीछे हुए है, तो, क्या श्वेतांबरोंका मत

वर्षतक चलता रहा ? लिखनेवालेकी कैसी

होंगे विचारे असमंजस लेख लिख दीया !!

क्योंकि तो, शास्त्र पुस्तकारूढ करे हैं, परंतु रचे

आचार्योंकी रचना तो, युरोपीयन सर्व विद्वान

अधिक पुरानी सिद्ध करी है. * तो फिर

---

* देखो जेकोबुसके अंगरेजी आचारांगसूत्रके ओर

सूत्रकृतांग सूत्रके दिवाचोंको वाचनेमें ॥

रचे लिखे हैं तो, क्या विद्वान् तिस अप्रमाणिक लेखको सत्य मान लेवेंगें ? कदापि नहीं.

और जो लिखा है कि, कितनेक विपरीत कथन किये. केवली कवल आहार करे १, स्त्रीकों मोक्ष २, स्त्री तीर्थंकर भया ३, परिग्रहसहितको मोक्ष होय ४, साधु वस्त्रपात्रादि चतुर्दश (१४) उपकरण राखे ५, तथा रोगग्लानादिपीडित साधु होय तो मद्यमांससहितका आहार करे तो दोष नहीं ६, इत्यादि लिखा, इनका उत्तर—प्रथम तीन बातें तो सत्य है. क्योंकि, केवलीका कवल आहार और स्त्रीको मोक्ष ये दोनों तो प्रमाणयुक्तीसेंही सिद्ध है, जो आगे लिखेंगे. परंतु दिगंबराचार्य लौकिकव्यवहारके भी अनभिज्ञ थे क्योंकि, लौकिकमतवालोंने अपने मतके आदिदेवते बुद्ध, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, ईसादिकोंको सर्वज्ञ माने हैं, परंतु वे आहार नही करते थे ऐसा किसीने भी नही माना है, और सर्वज्ञ आहार करे तो दूषण है, ऐसा भी किसीने नही माना है. और जगत् व्यवहारमें भी यह वात मान्य नही है कि, देहधारी आहार न करे, और शरीरकी वृद्धि होवे. क्योंकि, विदेहक्षेत्रमें तथा यहां चतुर्थ आरेकी आदिमें नव वर्षके मुनिको केवलज्ञान होवे, तब तिसकी विना कवल आहारके किये पांचसौ धनुष्यकी अवगाहना कैसें वृद्धि होवे ? इसवास्ते दिगंबरोंका कथन असमंजस है. और स्त्री तीर्थंकर हुआ यह तो श्वेतांबरही आश्चर्यभूत मानते हैं तो, इसमें तर्कही क्या है ?। ३।

और परिग्रहधारीको जो मोक्ष लिखी है, सो तो मृषावादही है. क्योंकि, श्वेतांबर तो परीग्रहधारीमें साधुपणा भी नही मानते हैं तो, मुक्तिका होना तो कहां रहा ? श्वेतांबरी तो, मूर्च्छाको परिग्रह मानते हैं, नतु धर्मोपकरणको.

यदुक्तं श्रीदशवैकालिकसूत्रे श्रीशय्यंभवसूरिपादैः ॥

जंपि वत्थं च पायं वा कंबलं पायपुच्छणं ॥
तंपि संजमलज्जट्ठा धारंति परिहिंति य ॥
न सो परिग्गहो वुत्तो नायपुत्तेण ताइणा ॥
मुच्छा परिग्गहो वुत्तो इइ वुत्तं महेसिणा ॥

भावार्थ—जो वस्त्र [illegible] वस्त्रादि लेनेवास्ते पात्र, और ये सर्व उपकरण संयम और [illegible] पहिरते हैं अर्थात् संयमकेवास्ते वास्ते चोलपट्टकादि वस्त्र पहिरते हैं, इसवास्ते रक्षक ज्ञातपुत्र अर्थात् श्रीमहावीर मूर्च्छाको परिग्रह कहा है अर्थात् जिस ममत्व करना है, सोही परिग्रह कहा है, महाऋषि गौतम सुधर्मादिकोंने ऐसा कहा.

तथा दिगंबराचार्य शुभचंद्रकृत ज्ञानार्णवमें लिखा है।

यत ॥

नि:संगोपि मुनिर्न स्यात् संमूर्छन्
यतो मूर्च्छैव तत्त्वज्ञैः संगसूतिः

भावार्थ—जो मुनि नि:संग होय, [illegible] करता होय तो, नि परिग्रही न होय, जाते परिणामहीकू परिग्रहकी उत्पत्ति कही है ॥ ५ ॥ धर्मसाधनकेताइ रखने, तिनऊपर मूर्च्छा नही नही है तिन धर्मोपकरणधारी मुनिको [illegible] सिद्ध है

दिगंबर—जब धर्मोपकरण रखेगा, तब तो फिर, तिसको परिग्रहका त्यागी कैसें [illegible]

श्वेतांबर—अहो देवानांप्रिय! तू तो अपने [illegible] नही है, क्योंकि, ज्ञानार्णवके तथाहि ॥

[illegible]
[illegible]

गृह्णतोस्य प्रयत्नेन क्षिपतो वा धरातले ॥
भवत्यविकला साधोरादानसमितिः स्फुटम् ॥१६॥

भाषार्थः—शय्या आसन उपधान शास्त्र उपकरण इनकूं पहिले नीके देख अर फेरिफेरि प्रतिलेषण कर अर ग्रहण करै, ताकै अर वडा यत्न कर पृथ्वीतलमैं धरै, ताकै संपूर्ण आदाननिक्षेपणसमित प्रगट कही है. तथा योगेंद्रदेवकृत परमात्मप्रकाशकी टीकामें दिगंवरमुनिको तृणके अर्थात् घासके प्रावरण—प्रच्छादन रखने कहे हैं, और मोरपीछी कमंडल तो प्रसिद्धही है. जब दिगंवरमुनि शय्या १, आसन २, उपधान—गिंदुक तकिया ३, शास्त्र ४, शास्त्रके उपकरण पाटी ५, बंधन ६, दोरा ७, टिप्टिका ८, तृणके प्रावरण ९, पीछी १०, कमंडलु ११, इत्यादि उपकरण रखते थे, वा दिगंवर मुनिको रखनेकी आज्ञा है, तब तो वे भी तुम्हारे कहनेसें तिन ऊपर मूर्च्छा ममत्व करते होवेंगे; तब तो दिगंबर मुनियोंको परिग्रह धारी होनेसें कदापि साधुपणा, केवलज्ञान, मुक्ति न होवेगी, तब तो दिगंबरमत प्रेक्षावानोंको उपादेय नही होवेगा. इससें तो तुमने श्वेतांबरोकी हानि करते हुयोंने, अपनेही पगमें कुठार मारा सिद्ध होवेगा. । ४ ।

पांचमे अंकमें लिखा है साधु उपकरण चौदह राखे, सो सत्य है क्योंकि, उपकरणोंके विना राखे प्रायः संयमका पालना नही होता है. इसवास्तेही तो दिगंबर साधु सर्व व्यवच्छेद होगए. हां कल्पित साधु कहांतक रह सकते हैं !

दिगंबरः—हमारे मतके नग्नमुनि कर्णाटक आदि देशोमें जैनबद्री मूलबद्री आदि नगरोंमें अब भी हैं.

श्वेतांबरः—यह तुम्हारा कहना महामिथ्या है. क्योंकि, कर्णाटक देशके रहनेवाले नागराज नामा जैन ब्राह्मणको, तथा मारवाडी, कच्छी, गुजराती, श्वेतांबर तथा दिगंबर जे कर्णाटकादि देशोंके जैनबद्री मूलबद्री आदि नगरोमें यात्रा करके आए हैं, तिनसें हमनें अच्छीतरेसें पूछा है कि, तुमने यथोक्त मुनिवृत्तिका पालनेवाला दिगंबरमतका नग्न साधु, कोई देखा, वा सुना है ? तब तिन्होंने कहा कि, नग्न

दिगंबरमुनि हमने कोइ भी देखा, मा
मट्ठधारी, और भट्टारककी आज्ञासें श्रावकोंके
भट्टारकोंको स्थापदेनेवाले, ऐसे 'भुलक'
इसवास्ते यथोक्तवृत्ति पालनेवाला नग्न
कोइ भी नही है जेकर अंग्रेजी राज्यमें रेल
(दिगंबरमतावलम्बी) अपने सच्चे गुरुकी शोध करी
थे!!! सत्य तो यह है कि, ऐसे गुरु हैही नही
तदपि तो कथन कर दीनी, परंतु तिसको पाके कोइभी
उपकरणधारी श्वेतांबरीही साधु है, अन्य नहीं *। ५
छट्टे अंकका उत्तर—रोगी ग्लानी साधु
तो दोष नही, ऐसा पाठ श्वेतांबरके किसी भी
और जो लिखा है कि, तिनीकी साधक कल्पित
एक साधुको मोदकका भोजन करताही आत्मिक
ज्ञान उपज्या, ६
उत्तर यह लेख मिथ्या है श्वेतांबरशास्त्रमें ऐसा
एक कन्याको उपाश्रयमें बुहारी देतेही केवलज्ञान
भी मिथ्या है, शास्त्रमें न होनेसें।
ऐसा लेख न होनेसें महावीरजीको गर्भसें बदला,
फिर इसमें तर्क क्या है? और जो गोसालेने
श्या फेंकी सो सत्य है और तिस तेजोलेश्याकी गरमीसें
पित्तज्वर और पेचसका रोग उत्पन्न हुआ, यह कथन तो
सर्व श्वेतांबरोंके शास्त्रमें अच्छेराभूत माना है और

---

१ फर्रुखनगरनिवासी चौधरी जियालालजीने जैनकी
किये सूत्रोंमें १ कर लिये हैं, और जैनग्रंथोंमें १०० च
लिखा है कि, हम यात्रा करते हुए फलाने नगरमें गए और हम
सिवाय जैनकी कालूरामों करते हैं और सूत्रकी मूलमोंके क
* चतुर्दश (१४) उपकरण औधिकउपधिकी अपेक्षा
जानी जाती है. औधिक और औपग्रहिक. ॥

उदय केवलीके दिगंबरोंने भी माना है. पार्श्वपुराण भूदरकृत भाषाग्रंथमें दिगंबरोंने भी कितनेक अच्छेरे माने हैं. तो फिर, अच्छेरेभूत कथनको नही मानना, यह क्या प्रेक्षावानोंका काम है ? नही कदापि नहीं. । तुम्हारे बडोंने तो, जब अपने ग्रंथ अलग रचे तब जो जो कथन उनको अच्छा न लगा, सो सो उन्होंने न लिखा. जैसें केवलीको कवल आहार १, स्त्री तीर्थकर २, स्त्रीको मोक्ष ३, भगवान्का गर्भपरावर्त्तन ४, गोसालेका उपसर्ग ५, केवलीकोरोग ६, इत्यादि। और श्वेतांबराचार्य तो भवभीरु थे, इसवास्ते उन्होंने सिद्धांतोंका पाठ जैसा था, वैसाही रहने दीया. जेकर श्वेतांबराचार्य तिन वस्तुयोंको न मानते तो, तिनके मतकी कुछ भी हानि नही थी. और माननेसें कुच्छ मतकी पुष्टि भी नही है. परंतु अरिहंतका कथन अन्यथा करनेसें, वा माननेसें मिथ्यादृष्टिपणा, और अनंतसंसारीपणा होजाता है. इसवास्तेही तुम्हारीतरें आगमका कथन अन्यथा नही कर सके हैं. और तुम्हारे सर्वग्रंथोंकी रचनासें श्वेतांबरोंके आगम प्राचीन रचनाके हैं; ऐसी गवाही (साक्षी) सूत्ररचनाके कालके जाननेवाले सर्व यूरोपीयन विद्वानोंने दीनी है. इसवास्ते श्वेतांबरोंके आगमादिमें जो कथन है, सो सर्वज्ञ अरिहंतका कथन करा हुआ है; और तुम्हारे सर्व ग्रंथ पीछेसें रचे गये हैं, इसवास्ते तिनमें मनःकल्पित बातें भी बहुत लिखीं गई हैं.

और जो यह लिखा है कि, भगवान्ने साधाने कहा एक राजाकी राणी बिलाके निमित्त कूकडा कबूतर मारि भुतलस्या है, सो वै माहरें ताई ल्यावो, तब यहु रोग मिट जासी, तब एक साधु वह ल्याया, भगवान खाया, तब रोग मिट्या.

उत्तरः—यह लेख किसी अज्ञानीका लिखा मालुम होता है, क्योंकि, श्वेतांबरके शास्त्रोंमें ऐसा लेखही नहीं है.

और जो यह लिखा है कि, प्रथम चौरासी (८४) सूत्र रचे, पीछे तिनमें विरोध देखके कितनेकनें पैंतालीस माने, राखे, कितनेकनें बत्तीस माने, ऐसें परस्पर विरोध वध्या, तब अनेक गच्छ भए, सो अबतांइ प्रसिद्ध है. इनके आचार विचारका कछू ठिकाणा नाही.

उत्तर—प्रथम तो यह लेखही
शास्त्रमें ऐसा लेखही नही है कि,हमारे
दिसूत्रमें द्वादशांगोसें पृथक् चौदह हजार (
तिनमेंसें कालदोषकरके जितने व्यवच्छेद हो गए हैं
शेष रहे हैं, तिन सर्वको हम मानते हैं परंतु
है कि, चौरासी, वा पैंतालीस, वा बत्तीसही
सर्व, मिथ्यादृष्टि, और जिनमतसें बाह्य हैं
दूषण दीया है, सो तो तुम्हारे मतमें भी समान
बरमतमें अनेक गच्छोंके भेद लिखे हैं, जिनमेंसें
आए हैं परंतु इतना विशेष है कि, श्वेतांबरोंमें
कहे आते हैं, वे सर्व, स्त्रीको मोक्ष १, केवलीको
कर ३, गोसालेने तेजोलेश्या चलाई ४, केवलीको
वेशादि उपकरण ६, इत्यादि सर्व बातें मानते हैं

और यह जो सर्वार्थसिद्धिवालेनें लिखा है कि
स्वामीको) केवल उपजे पीछे गोसाळानाम
यह लेख भी, असत्य है क्योंकि, गोसाळा
मखलीपुत्र था तथा भगवानने तिसको दीक्षा नही
उसने आपही शिर मुंडन करवायके शिष्यबुद्धि धारण करी
विकमें वो शिष्य नही था क्योंकि, श्वेतांबरोंके शास्त्रोंमें
भास लिखा है तथा यह वृत्तांत भगवान् जब छद्मस्थ
रते थे, तिस वखतका है, परंतु केवलज्ञान हुए पीछेका

और जो ढूंढियोंकी बाबत लिखा है, सो भी मिथ्या
कपथ जैन श्वेतांबरमतमें नही है यह तो, सम्मूर्छिमपंथ
में सुरतके वासी लवजीने निकाला है जैसें दिगंबरोंमें
पंथी, आदि तथा कितनेक विना गुरुके मथ दिगंबर होक
चोंसें धन लेनेकेवास्ते बने फिरते हैं, और
श्वेतांबर मतके नामको कलंकित

ढूंढकमत उत्पन्न हुआ है. इनका निंद्य आचरण, इनकोंही दुःखदायी होवेगा, न तु श्वेतांबरमतवालोंको. इसवास्ते इनकेसाथ हमारा कुछ भी संबंध नही है; वीसपंथी, तेरापंथी, गुमानपंथी आदिवत्. ॥

और तुम अपनी तर्फ नही देखते हो कि, हमारा पंथ नवीनही निकाला है, और सर्व शास्त्र नवीनही रचे हुए हैं. क्योंकि, प्रश्नचर्चा-समाधाननामाग्रंथके १३५ मे प्रश्नमें लिखा है कि, "महावीर भगवान्के नीर्वाणपीछे संवत् ६८३ वर्षे, धरसेन मुनि, गिरनारकी गुफामें वैठे थे, तिस कालमें ग्यारा अंग विच्छेद गए थे, धरसेन मुनि ज्ञानवान् रहे. कर्मप्राभृत दूसरे पूर्वकी कंठाग्र था, तिनके अपनी अल्पायु जान कर, ज्ञानके अव्यवच्छेद होनेके कारणतें, जिनयात्रा करने संघ आया था, तिनपास पत्री ब्रह्मचारीके हाथ भेज कर, तीक्ष्ण बुद्धिमान् भूतबलि १, पुष्पदंत २, नामे दो मुनि बुलवाये; तिनको ज्ञान सिखाया, तिनको विदा करा, आप मृतु हुइ. पीछे तिन दोनों मुनिओंने, ज्येष्ठ शुदि ५ कूं तीन सिद्धांत वनाये. सित्तरहजार (७००००) श्लोकप्रमाण धवल १, साठहजार (६००००) श्लोकप्रमाण जयधवल २, चालीसहजार (४००००) श्लोकप्रमाण महाधवल ३, इनकों पढे, सो सिद्धांती कहलाये. इन शास्त्रोंमेंसूं नेमिचंद्रसिद्धांतिने चामुंडरायकेवास्ते गोमट्टसार रचा." तथा आचार्य श्रीसकलकीर्त्तिविरचित प्रश्नोत्तरोपासकाचारके दूसरे अध्यायमें

श्रीसुधर्ममुनींद्रेण चोक्तं श्रीजंबुस्वामिना ॥
केवलज्ञाननेत्रेण ज्ञानं गार्हस्थ्यगोचरम् ॥ ३३ ॥
त्रिषादिमुनिभिः सर्वैर्द्वादशांगश्रुतांतगैः ॥
प्रणीतं भव्यसत्वानामुपकाराय तच्छ्रुतम् ॥ ३४ ॥
ततः कालादि दोषेण प्रायुर्मेधांगहानितः ॥
हीयते प्रांगपूर्वादिश्रुतं श्रीधर्मकारणम् ॥ ३५ ॥

तत॰

प्रकाशयंति सज्ज्ञानं

क्रमात्तादि समायातं परिज्ञाय

वक्ष्ये सद्धर्मबीजं हि ज्ञान

तथा तत्त्वार्थसूत्रकी भाषाटीका
रि भद्रबाहुस्वामीपीछे दिगंबरसंप्रदाय, केतेक
च्छित्ति भई, अर आचार यथावत् रहयोही
निका आचार कठिन, सो कालदोषते
गए तथापि, सप्रदायमें अन्यथा परूपणा तो न
स्वामिकू निर्वाण गये पीछे छहसेतिपाळीस (६४६
भद्रबाहु नामा आचार्य भये, तिनके पीछे केतेक
गुरुके नाम धारक च्यार साखा भई नदि १, सेन २,
इनमें नदिसप्रदायमें श्रीकुदकुदमुनि, तथा
चद्र, पूज्यपाद विद्यानंदि, वसुनदि, आदि बडे बडे
विचारी जो, सिथलाचारी श्वेतांबरनिका संप्रदाय भी,
तो कालदोष है, परतु यथार्थ मोक्षमार्गकी प्ररूपणा
ग्रथ रचीए तो, केई निकटभव्य होय, ते यथार्थ
यथाशक्ति चारित्र ग्रहण करें तो, यह बडा उपकार है,
ग्रथ रचे " इत्यादि लेखोंसें यह सिद्ध होता है कि,
सर्व ग्रथ नवीन रचे हुए हैं, प्राचीन पुस्तक कोइ नहीं जो
सच्चा होता तो, गणधरादि मुनियोंका रचा कोइ ग्रंथ, ग्रथ
वस्तु, प्राभृतादि अवश्य होता, सो है नहीं, इसवास्ते यही
कि, अपना मत चलानेवास्ते दिगंबरोने स्वकल्पनाके ग्रंथ न
हैं और दिगंबरमतके तत्त्वार्थादिग्रंथोंकी वार्तिकटीकादि
लिक, उत्तराध्ययनादि कितनेही पुस्तकोंके
पूछते हैं कि, अंग और पूर्वोक्त

लिखा है; इसवास्ते तुम उनका तो, व्यवच्छेद मानते हो; परंतु दशवैकालिक, उत्तराध्ययनादि, कहां गए?

दिगंबरः—वे भी व्यवच्छेद होगए.

श्वेतांबरः—बडे आश्चर्यकी बात है कि, धरसेनमुनिके कंठाग्र समुद्रसमान दूसरे पूर्वका कर्मप्राभृत तो रह गया, और एकादशांग, और दशवैकालिक, उत्तराध्ययनादि, अल्पग्रंथवाले प्रकीर्णक ग्रंथ व्यवच्छेद हो गए!! ऐसा कथन प्रेक्षावान् तो, कदापि नही मानेंगे, परंतु मत कदाग्रहीही मानेंगे. तथा पूर्वोक्त लेखोंसे यह भी सिद्ध होता है कि, कुंदकुंदादिकोंने, श्वेतांबरमतकी वृद्धि देखके, श्वेतांबरकी महिमा घटानेवास्ते, स्पर्द्धासें, अनुचित कठिन व्रतिके कथन करनेवाले शास्त्र रचे हैं. रागद्वेषके वशीभूत हुआ जीव, क्या क्या उत्सूत्र नही रच सकता है? इन उत्सूत्ररूप ग्रंथोंके चलानेवास्तेही, पिछले अंग प्रकीर्णादि ग्रंथ छोड दीये सिद्ध होते हैं. क्योंकि, अकलंकदेवने राजवार्तिकमें पांचमे अंगव्याख्याप्रज्ञप्तिके कितनेक अधिकार लिखे हैं, वे सर्व, वर्त्तमान श्वेतांबरोंके माने व्याख्याप्रज्ञप्ति पांचमें अंगमें विद्यमान है; तो फिर, अकलंकदेवने किस व्याख्याप्रज्ञप्तिको देखके यह लेख लिखा? जेकर कहो कि, गुरुपरंपरायसें कंठ थे तो, व्याख्याप्रज्ञप्ति व्यवच्छेद कैसें हो गई?

तथा प्रश्नचर्चासमाधानके १६ मे प्रश्नमें ऐसें लिखा है "विद्यमान भरतक्षेत्रमें पंचमकालमें सम्यग्दृष्टी जीव केते पाइए—

समाधानः—जिनपंचलब्धिरूप परिणामकी परणतविषे सम्यक्त्व उपजे है, ते परिणाम इस कलिकालमें महादुर्लभ, तिसतें दोय, तथा तीन, अथवा चार कहे हैं; पांच छह तो दुर्लभ है. इस कथनकी साख स्वामी कार्तिकेय टीकाविषे है.

तथाहि ॥

विद्यंते कति नात्मबोधविमुखाः संदेहिनो देहिनः
प्राप्यंते कतिचित् कदाचन पुनर्जिज्ञासमानाः क्वचित् ॥
आत्मज्ञाः परमप्रमोदसुखिनः प्रोन्मीलदंतर्दृशो

हिंस्राः स्युर्महतो यदि
ते संति हिंस्रा यदि हति कथनात्

इस कालमें घने जीव आपकूं सम्यग्दृष्टि शास्त्रविषे तीनचारही कहे हैं और आना होइ तो, आपको सम्यग्दृष्टिका भी कहे हैं, निश्चयकरी भगवान् जाने, भी अज्ञान, मिथ्या है जाते सम्यक्त्व अनुमानका

लेखक समालोचन—जब भरतक्षेत्रमें दो तीन वा छह (६) सम्यक्त्वधारी जीव वर्तमानकालमें वा साधु हैं, यह निश्चय नहीं तब तो, सर्व वर्जके, जितने दिगंबर श्रावक, श्राविका, नग्नसाधु, क्षुल्लक, ये सर्व मिथ्यादृष्टि सिद्ध होवेंगे प्रथम व्यवच्छेद हो जानेसें, श्रावक श्राविकारूप दोही संघ कार्तिकयादिने तो, दिगंबरोंको सम्यग्दृष्टि होनेकी, दोनों ग्रंथकारोंने भूल करके तो, नहीं दो तीन होवेंगे। क्योंकि, दो संघियोंमें तो, सम्यग्दर्शनका

प्रश्न—दो संघिये कौन है?

उत्तर—प्रियवर! संप्रतिकालमें, जो भरतखंडमें है, सो दो संघिया है क्योंकि, इनके मतमें साधु श्रावक श्राविका नाममात्र दो संघ है, इसवास्ते ये दो इसीवास्ते ये मिथ्यादृष्टि है क्योंकि, तीर्थंकर चतुर्विध संघ कहा है, इसवास्ते ये जिनराजके होते हैं, दो संघिये होनेसें

प्रश्न—इनके दो संघ, किसवास्ते व्यवच्छेद होगए?

उत्तर—प्रथम तो श्रीवीरनिर्वाणसें ६०९ वर्षे, इनका सेंही इनके तीन संघ चले हैं क्योंकि, तो इनके मतमें होही नहीं सकती है, जब

उत्कृष्टी श्राविकाही मानते हैं. शेष रहा नग्नमुनि, तिनके वास्ते जो अनुचित कठिन वृत्ति लिख दीनी है, सो तिसका पालना पंचमकालमें अशक्य है; और दिगंबरमत चलानेवाले इनके आचार्य भी दीर्घदर्शी नही थे. क्योंकि, जो कठिनवृत्ति, वज्रऋषभनाराचसंहननवालोंकेवास्ते थी, वोही वृत्ति सेवार्त्तसंहननवालेके वास्ते लिख मारी. क्या हाथिका बोझ, गर्दभ ऊठा सकता है?

प्रथम तो दिगंबराचार्योंको पांच प्रकारके निर्ग्रथोंके स्वरूपहीका यथार्थ बोध नही मालुम होता है. क्योंकि, उनोंने राजवार्त्तिकादिग्रंथोंमें जैसा पांच निर्ग्रथोंका स्वरूप लिखा है, तिस स्वरूपवाले बुक्कस १, प्रतिसेवना निर्ग्रथ २, ये दोनों जे इस पंचमकालमें पाईये हैं, तैसें स्वरूपवाले इस भरतखंडमें दीख नही पडते हैं. जब प्रत्यक्षप्रमाणसेंही तुम्हारा (दिगंबर) मत बाधित है, तो फिर अन्यप्रमाणकी क्या आवश्यकता है? और श्वेतांबरमतके व्याख्याप्रज्ञप्ति, उत्तराध्ययननिर्युक्ति, पंचनिर्ग्रंथी संग्रहणी, उमास्वातिकृत तत्त्वार्थसूत्र, और तत्त्वार्थसूत्रकी भाष्य, तथा सिद्धसेनगणिकृत तत्त्वार्थभाष्यवृत्ति प्रमुख शास्त्रोंमें जो पांच निर्ग्रंथोंका स्वरूप लिखा है, तिनमेंसें बुक्कस १, प्रतिसेवनानिर्ग्रथ २, जैसें स्वरूपवाले लिखे हैं, तैसें स्वरूपवाले साधु, साध्वी, इस पंचमकालमें प्रत्यक्ष प्रमाणसें भी सिद्ध हैं. तो फिर श्वेतांबरमतही असली जैनमत, और दिगंबरमत पीछेसें निकला क्यों नही होवेगा? अपितु होवेहीगा.

एक बात याद रखनी चाहिये कि, जो जो कथन जिनेंद्रदेवके कथनानुसार दिगंबरमतके शास्त्रोंमें है, तिस कथनको हम बहुमान देते, और अनंतवार नमस्कार करते हैं; परंतु जो जो दिगंबरोंने स्वकपोलकल्पनासें रचना करी है; तिसकाही हम समालोचन करते हैं.

और जो दिगंबर कहते हैं कि, श्वेतांबरोंने केवलीको कवल आहार १, स्त्रीको तद्भवे मोक्ष २, साधुको चउदह (१४) उपकरण राखने, इत्यादि विरुद्ध कथन लिखे हैं.

उत्तर—प्रथम तो

लता १, वैराग्यकल्पलता २, अध्यात्मोपनिषद् ३,
स्मरहस्योपदेश ५, ज्ञानसार, ६, ज्ञानबिंदु ७,
अमृततरंगिणी १०, समाचारी ११, संवरसाय १२,
स्ममतपरीक्षा १४, पातंजलचतुर्थपादवृत्ति १५,
कांतजैनमतव्यवस्था १७, देवतत्त्वनिर्णय १८,
त्वनिर्णय २०, तर्कभाषा २१, द्वात्रिंशत्द्वात्रिंशिका २३,
कवृत्ति २४, इत्यादि शत (१००) ग्रंथके कर्त्ता, और
तथा काशीमें सर्वपंडितोंने जिनको जयपताका,
पदवी दीनी थी, ऐसे श्रीयशोविजयोपाध्यायजी लिखते
दिगंबरोंके तर्कशास्त्र हैं, वे सर्व, श्वेतांबरोंके तर्कशास्त्रोंमें
त् खंडन करे हुए हैं, तिनमेंसें नमूनामात्र यहां लिख
अहं। केवलीको कवल आहारके हुए, सर्वज्ञपणेके
है, ऐसे मानते हुए दिगंबरोंका खंडन करते हैं

नच कवलाहारवत्वेन तस्यासर्वज्ञत्वम् ॥
कवलाहारसर्वज्ञत्वयोरविरोधात् ॥

व्याख्या—केवलीको कवलाहारी होनेकरके,
नही है सोही दिखाते हैं कवलाहार, और सर्वज्ञपणेका
दिगंबर मानते है सो साक्षात् मानते हैं, वा परंपराकरके
यदि आदि पक्ष दिगंबर मानेंगे, सो ठीक नहीं क्योंकि,
केवलीको कवलाहार प्राप्ति नही होता है, यह बात नहीं है-
हार मिल तो सकता है परन्तु केवली खा नही सकता है, यह
अथवा केवली खा तो सकता है, परंतु खानेसें केवलज्ञान दीक्षा
इस संबंधसें नही खा सकता है यह बात भी नहीं है, इन पूर्वोक्त
बातोंमें हेतु कहते हैं अंतराय कर्म, और केवलावरण कर्मोंके
क्षयसें, पूर्वोक्त तीनो बात नही हो सकती है- जेकर
परंपराविरोधपक्षको अंगीकार करके विरोध कहो तो,

क्रीडामात्र है. क्या ऐसें हुए, कवल आहारका, व्यापक १, कारण २, कार्य ३, सहचरादिका सर्वज्ञताके साथ विरोध है? और सो विरोध परस्पर परिहाररूप है, या सहानवस्थानरूप है? यदि प्रथम पक्ष मानोगे तब तो, तुम्हारे भी ज्ञानके साथ कवल आहारके व्यापकादिकोंका परस्पर परिहारस्वरूप विरोधके सद्भाव होनेसें, तुम (दिगंबरों) को भी कवल आहारका अभाव होवेगा. अहो तुमारा पुरुषकार !! जिसवास्ते अपने कहनेसेंही पराभवको प्राप्त हुए हो. और दूसरे पक्षको माने तब तो, कवल आहारका व्यापक, हानिको नही प्राप्त होता है. क्योंकि, कवल आहारका व्यापक तो, शक्तिविशेषके वससें उदरकंदरारूप कोनेमें प्रक्षेप करना है, सो तो, सर्वज्ञके हुए अतिशयकरके संभव करिये हैं. क्योंकि, वीर्यांतरायकर्म समूल उन्मूलन करनेसें; तहां तिस आहारके क्षेप करनेवाली शक्तिविशेषका संभव होनेसें.

और आहारका कारण भी बाह्यरूप, विरोधको प्राप्त होता है? वा अभ्यंतररूप कारण, विरोधको प्राप्त होता है? बाह्यरूपकारण भी खानेयोग्य वस्तु १, वा तिस वस्तुके उपहारहेतु पात्रादिक २, वा औदारिक शरीर ३? प्रथम तो नही. क्योंकि, जो, केवलज्ञान, खानेयोग्य पुद्गलोंके साथ विरोधि होवे, तब तो, अस्मदादिकोंका ज्ञान भी तैसाही होना चाहिये. ऐसा नही होता है कि, सूर्यकी किरणोंके साथ जो अंधकारका समूह, विरोधी है; सो, प्रदीपालोककेसाथ विरोधी न होवे. तैसें हुए, हमारे भी, खानेकी वस्तु हाथमें लेनेसें, तिसके ज्ञानके उत्पन्न होतेही, तिसका अभाव होना चाहिए. बहुत आश्चर्यकारि नूतनही तुम्हारा कोइ तत्त्वालोक कौशल है, अपने आपकोभी आहारकी अपेक्षा नहीं है!!

पात्रादिपक्ष भी ठीक नही है. अर्हंतभगवंतोंको पाणि (हस्त) पात्र होनेसें; और इतर केवलियोंको स्वरूपसेंही पात्रविरोध है? वा, ममताका कारण होनेसें है? तहां प्रथम पक्ष तो अनंतरपक्षके उत्तरसेंही खंडित हो गया. और दूसरा पक्ष भी है नही, केवलीको निर्मोह होने करके, तिनको (केवलीको) पात्रादिविषे ममकारके न होनेसें. ऐसें भी न कहना कि, पात्रादिकके हुए, अवश्य ममकार होना चाहिये. क्योंकि,

४४४

ऐसा अमंसभाव है नही ओकर
शरीरके हुए, अवश्य ममकार होना चाहिये,
शरीरमात्रादिके होए भी ममकार देखनेसें...
और औदारिक शरीर भी, सर्वज्ञपणेके
यदि विरोध धारण करे तो, केवलज्ञानकी
शरीरका अभाव होना चाहिये और
कारण, शरीर है? वा, कर्म है? तिनमेंसें प्रथम
है क्योंकि, मुक्तिका हेतु, तैजसशरीरका
माना है। दूसरे पक्षमें कर्म भी, घाति, वा
मोहरूप है, वा इतर है? इतर भी
अंतराय है? आदिके ज्ञानदर्शनावरण तो
तिनको तो ज्ञानदर्शनावरणमात्रमेंही चरितार्थ
कारणकी अनुपपत्ति है। दूसरा पक्ष भी नही है
सेंही, आहारकी प्राप्ति होनेसें, और अंतरायकर्मका
तो तुमने भी माना है। और मोह भी, खानेकी
सो तिसका कारण है, वा सामान्य प्रकार करके
(बुभुक्षालक्षण) में सर्व जगे खानेकी इच्छारूप
अस्मदादिकोंविषे (हमारेतुम्हारेमें) ही है? प्रथमपक्ष
दरिद्र है, अर्थात् प्रथम पक्षको सिद्ध करनेवाला

दिगंबर —हमारेपास प्रमाण है, सो यह है जो
इच्छापूर्वकही है, जैसें अगीकार करी हुई (क्रिया),
है, सोही दिखाते हैं प्रथम तो, प्रमाता, वस्तुको
तिसकी इच्छा करता है, पीछे उद्यम करता है, और

श्वेतांबरः—जैसें तुम कहते हो, तैसें नही है,
क्रियाकरके व्यभिचार होनेसें

दिगंबरः—हम, अबद्धचेतनक्रिया, ऐसा
कहेंगे, तब पूर्वोक्त व्यभिचार न रहेगा

श्वेतांबरः-ऐसें विशेषणवाला भी हेतु, केवलीगतगतिस्थितिनिषद्यादि क्रियायोंके साथ व्यभिचारी है.।

दूसरे पक्षमें तो तुमने हमारे सिद्धकोंही साध्या है, केवलीविषे वेदनीयादिकारणोंकरके भुक्तिके सिद्ध होनेसें. और सामान्यप्रकारसें भी, मोह, कवल करनेका कारण नही है. जेकर होवे, तव तो, गतिस्थितिनिषद्यादिकोंका भी मोहही कारण सिद्ध होवेगा. जेकर तैसें होवेगा, तब तो केवलीमें मोहके अभाव हुए, केवलीको गतिस्थित्यादिकोंका भी अभाव होवेगा. तव तो, तीर्थकी प्रवृत्ति कदापि नही होवेगी. जेकर कहोगे, गति आदि कर्मही, तिन गत्यादिकोंका कारण है, परं मोह नही है. तव तो, वेदनीयादि कर्मही, कवल आहारका कारण है, परं मोह नही; एसें भी मान लेवो.

दिगंवरः–अघाति कर्म, तिस कवल आहारका कारण है.

श्वेतांबरः–अघातिकर्म तिस कवल आहारका कारण है तो, क्या आहारपर्याप्ति, नामकर्मका भेद, तिसका कारण है; वा वेदनीय कर्म? यह दोनोंही भिन्नभिन्न कारण नही है. क्योंकि, तथाविध आहारपर्याप्ति नामकर्मोदयके हुए, वेदनीयोदयकरके प्रवल ज्वलत् जठराग्निकरके उपतप्यमानही पुरुष, आहार करता है. ऐसें हुए, दोनोंही एकठे हुए, तिस कवल आहारके कारण होते हैं. किंतु सर्वज्ञपणेके साथ विरोधी नही है. क्योंकि, सर्वज्ञविषे तुमने भी तो तिन दोनोंको माने हैं.

दिगंवरः—मोहकरके संयुक्तही, पूर्वोक्त दोनों कवलाहारके कारण हैं.

श्वेतांबरः—यह तुमारा कथन असंगत है. गतिस्थित्यादिकर्मोकीतरें कवलाहारको भी, मोह साहायकरहितकोही, तिसके कारित्व होनेके अविरोधी होनेसें.

दिगंवरः–अशुभ कर्म प्रकृतियांही, मोहकी सहायताकी अपेक्षा करती है, नहीं अन्यगत्यादिक. और यह असातावेदनीय, अशुभप्रकृति है; इसवास्ते मोहकी सहायता चाहती है.

श्वेतांबरः–क्या यह परिभाषा, अस्मदादिकोंमें तैसें देखनेसें कल्पना करते हो ?

दिगंबर —हां ऐसेंही करते हैं

श्वेतांबर —शुभ प्रकृतियां भी, अस्मदादिकोंमें, मोहसहकृतही अन्य कार्यको करती देखनेमें आती हैं तब तो, केवलीकी गतिस्थितिआदि शुभ प्रकृतियां भी, मोहसहकृतही होनी चाहिये इसवास्ते पूर्वोक्त दोनों प्रकृतियोंको मोहापेक्ष होकरके कवलाहारका कारणपणा नहीं है, किंतु स्वतंत्रकाही कारणपणा है सो कारण केवलीमें अविकल अर्थात् संपूर्ण विद्यमानही है, तिसवास्ते कवलाहारका कारण, केवलीकेसाथ विरोधी नहीं है यदि कार्यका विरोध मानो तो जो कार्य केवलज्ञानके साथ विरोधी है सो कवलाहारका कार्य, केवलिमें मत उत्पन्न हो परंतु अविकल कारणवाला उत्पद्यमान कवलाहार तो, अनिवार्य है, अर्थात् कवलाहारको कोइ निवारण नहीं कर सकता है

अब अन्ययात है कि, सो कौनसा कार्य है? जो, केवलज्ञानकेसाथ विरोधी है क्या रसनेंद्रियसें उत्पन्न हुआ मतिज्ञान? (१) ध्यानमें विघ्न? (२) परोपकार करनेमें अंतराय? (३) निसृचिकादि व्याधि? (४) ईर्यापथ? (५) पुरीषादि जुगुप्सितकर्म? (६) धातुउपचयादिसें मैथुनेच्छा? (७)
[illegible]? (८) आद्य पक्ष तो नहीं है क्योंकि रसनेंद्रियकेसाथ आहा
[illegible] होनेमात्रमेंही केवल मतिज्ञान उत्पन्न होता होवे तब तो,
[illegible] जो नहीं है महासुगंधित पुष्पोंकी निरंतर वर्षा,
[illegible] नासिकामें आनेसें घ्राणेंद्रियजन्य मतिज्ञान भी होना
[illegible] ॥ [illegible] पक्ष भी नहीं है क्योंकि, केवलीका ध्यान
शाश्वत है [illegible] केवलीके चलते हुए भी ध्यानका विघ्न
होना चाहिये [illegible] तीसरा पक्ष भी नहीं है क्योंकि,
दिनकी तीसरी पोरसीमें [illegible] मात्रमेंही भगवानके आहार
करनेका काल है [illegible] परोपकारका [illegible] है ॥ ३ ॥ चौथा
पक्ष भी नहीं है [illegible] जिन आहार करनेसें ॥ ४ ॥ पांचमा
भी नहीं अन्यथा गमनादि करनेसे भी ईर्यापथका प्रसंग होवेगा ॥ ५ ॥
छठा भी नहीं पुरीषादि करते हुए, [illegible] जुगुप्सा होती है.

वा, अन्यजनोंको ? तिनकों तो, नही होती है. क्योंकि, भगवंतको निर्मोह होनेसें, जुगुप्साका अभाव है. जेकर अन्य जनोंकों होती है, तो क्या, मनुष्य, अमर, इंद्र, इंद्राणि, इत्यादि सहस्र जनोंकरके सकुल सभाके-विषे, वस्त्ररहित भगवंतके बैठे हुए, तिनोंकों जुगुप्सा नही होती है ?

दिगंबरः—भगवंतको अतिशयवंत होनेसें, तिनका नग्नपणा नही दीखता है.

श्वेतांबरः—अतिशयके प्रभावसें भगवंतका निहार भी मांसचक्षुवालोंके अदृश्य होनेसें, दोष नही है. और सामान्यकेवलियोंने तो, विविक्तदेशमें मलोत्सर्ग करनेसें दोषका अभाव है. ॥ ६ ॥ सातमा और आठमा पक्ष भी ठीक नही है. मैथुनेच्छा, और निद्रा, इनको मोहनीकर्म और दर्शनावरणकर्मके कार्य होनेसें; और भगवंतमें ये दोनोंही कर्म, नही है. तिसवास्ते कवलाहारका कार्य भी केवलज्ञानके साथ विरोधि नही है. ॥७॥ ८॥ और सहचरादि भी विरुद्ध नही है. जिसवास्ते, सो सहचर, छद्मस्थपणा है, वा अन्य कोई ? आदि पक्ष तो नही है. क्योंकि, दोनोंही वादियोंने (श्वेतांबर दिगंबर दोनोंहीने) केवलीमें छद्मस्थपणा माना नही है. जेकर अस्मदादिकोंमें तैसें देखनेसें, छद्मस्थपणेके साहचर्यका नियम माना जावे, तब तो, गमनादिकोंको भी, छद्मस्थपणेके सहचर मानने पडेंगे. और अन्य, जो कर, मुख, चालनादि, तिसके सहचारी हैं, वे भी केवलज्ञानके साथ विरोधी नही है. ऐसेंही उत्तरचरादि भी केवलज्ञानके साथ विरोधी नही है. इसवास्ते यह सिद्ध हुआ कि, कवलाहार सर्वज्ञपणेके साथ विरोधी नही है. इससें केवलिके कवलाहारका करना सिद्ध हुआ. ॥ इति केवलीभुक्तिव्यवस्था ॥

दिगंबरः—स्त्रीको तद्भवमें मोक्ष नही होवे है. ।

तथा च प्रभाचंद्रः ॥

"॥ स्त्रीणां न मोक्षः पुरुषेभ्यो हीनत्वान्नपुंसकादिवदिति ॥"

भाषार्थः—स्त्रियोंको मोक्ष नही है; पुरुषोंसेंही न होनेसें, नपुंसकादिवत्.।

श्वेतांबरः—यहां तुमने सामान्यकरके धर्मिपणे स्त्रियां ग्रहण करी हैं, वा विवादास्पदीभूत स्त्रियां ग्रहण करी हैं ? प्रथम पक्षमें पक्षके एकदेशमें

सिद्धसाध्यता है क्योंकि, असंख्यात
उत्पन्न हुई तिर्यचणी, देवणी, अभव्य स्त्री,
भी मोक्ष नही कहते हैं-। १। और दूसरे
विवादास्पदीभूता, ऐसे विशेषण विना,
होनेसें । २ ।

दिगंबर —विवादास्पदीभूता कोही, हमारा पक्ष है-

श्वेतांबर—हेतुकृत पुरुषापकर्ष, पुरुषोंसें हीनत्व,
(१) सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रयके अभावसें? (२)
न होनेसें? (३) पुरुषोंकरके अनभिवंद्य होनेसें? (
करनेसें? महर्द्धिक न होनेसें? (६) मायादिप्रकर्ष
किसवास्ते स्त्रियोंको रत्नत्रयका अभाव है?

दिगंबर—वस्त्ररूपपरिग्रहके होनेसें, चारित्रका अभाव

श्वेतांबर—यह कहना ठीक नही है परिग्रहरूपता,
संबंधमात्रसें है? वस्त्रके भोग करनेसें? मूर्च्छा हेतु
ससक्तिहेतुत्वसें? प्रथम पक्षमें तो, भूमिआदिका सदा संबंध
होनेसें, परिग्रहरहित, कोइ भी सिद्ध नही होवेगा; तब
ढिकोंको भी मोक्ष मिलना नही चाहिये एतावता काम
हुए तुमने तो, मूलकाही नाश करा! दूसरे पक्षमें वस्त्रोंका
तिनको, अशक्य त्याग करके है, वा गुरुउपदेशसें है?
ठीक नहीं क्योंकि, प्राणोंसें अधिक और कुछ भी प्रिय
भी धर्मआदिकेवास्ते स्त्रीया त्यागती दीखती हैं तो तिनको वस्त्र
क्या बडी बात है? दूसरा पक्ष भी ठीक नही क्योंकि,
परमगुरु भगवंतने, मोक्षार्थी स्त्रियोंको, जो संयमका उपकारि
वस्त्रोपकरण, "नो कप्पदि निग्गंथिए अचेलाए होतए" निर्ग्रंथी
को नही कल्पे हैं, वस्त्ररहित होना इत्यादि कथनसें, उपदिशा है।
ऐसा उपदेश दिया है, प्रतिलेखन (मोरपीछी) कमंडलु
इसवास्ते कैसें तिसके परिभोगसें परिग्रहरूपता होवे? अन्यथा
स्तन आदि धर्मोपकरणको भी, परिग्रह होनेका प्रसंग होवेगा।

तथाचार्या ॥

यत्संयमोपकाराय वर्त्तते प्रोक्तमेतदुपकरणम् ॥
धर्मस्य हि तत्साधनमतोन्यदधिकरणमाहार्हन् ॥

अर्थः-जो संयमके उपकारकेतांइ वर्त्ते, सो उपकरण कहा है. और सो उपकरण धर्मकाही साधन है, 'उपकारकं हि करणमुपकरणमिति वचनात्' और इससें भिन्न सर्व अधिकरण* है, ऐसें अर्हन् भगवान् कहते हैं.

दिगंबरः-प्रतिलेखन कमंडलु तो, संयम पालनेअर्थे भगवंतने कहे हैं; परंतु वस्त्र किसवास्ते ?

श्वेतांबरः-वस्त्र भी भगवंतने संयम पालनेवास्तेही कथन करे हैं. क्योंकि, प्रायः अल्पसत्व होनेकरके, उघाडे अंगोपांगके देखनेसें उत्पन्न हुआ है, चित्तभेद (विकार) जिनोंको, ऐसें पुरुषोंकरके स्त्रियां, अभिभवको प्राप्त होती हैं; जैसें उघाडी घोडीयां घोडायोंसें. इसवास्ते वस्त्र संयमके साधक है, परंतु बाधक नही है. तथा स्त्रियां अबला होती हैं, तिनोंका पुरुष बलात्कारसें भी उपभोग करते हैं, इसवास्ते तिनको वस्त्रविना संयमबाधाका संभव आता है. पुरुषोंको तैसें नही आता है, ऐसें कहो तो, सो ठीक है. परंतु, एतावता वस्त्रसें चारित्राभाव सिद्ध नही हुआ; किंतु आहारादिकीतरें, वस्त्र भी चारित्रके उपकारक हुए.

दिगंबरः-जिन अल्पसत्ववाली स्त्रियोंको, प्राणीमात्र भी अभिभव कर सकते हैं तो, ऐसी स्त्रियां, महासत्ववानोंकरके साध्य जो मोक्षमार्ग, तिसको कैसें साध सकती हैं ?

श्वेतांबरः-यह कहना अयुक्त है. क्योंकि, यहां मोक्षसाधनमें, जिसके शरीरका सामर्थ्य अधिक होवे, सोही जीव मोक्ष साधनेके योग्य

* अधिक्रियते घाताय प्राणिनोस्मिन्नित्यधिकरणमिति ॥

होना चाहिये, ऐसा नियम नही है अन्यथा,
पुरुषोंको, तिर्यंकरके अभिभव होते
शरीरसत्ववाले पुरुष, केसें मुक्तिके साधनेवाले
जैसें तिनके शरीरसामर्थ्यके न हुए भी,
है, तैसे स्त्रियांको भी जानना

दिगम्बर —अंकर वस्त्रोंके हुए भी, मोक्ष मानते
मोक्ष क्यों नही मानते हो ?

श्वेतांबर —गृहस्थको ममत्व होनेसें, मोक्ष
ऐसा नही हो सकता है कि, गृहस्थी वस्त्रमें
ममत्व है, सोही परिग्रह है, ममत्वके हुए, नग्न भी
है, और शरीरमें भी ममत्वके होनेसें परिग्रहवत्
(साध्वी) को तो, ममत्वके अभावसें, उपसर्गादि
परिग्रह नही है यतिमुनिको भी ग्राम घर
अभावसें परिग्रह नही है और जिन महात्मा
वश करा है, तिनको किसी वस्तुमें भी मूर्च्छा नहीं है

यत ॥

> निर्वाणश्रीप्रभवपरमप्रीतितीव्रस्पृहाणां ।
> मूर्च्छा तासां कथमिव भवेत् क्वापि
> भोगे रोगे रहसि सजने सजने दुर्जने वा ।
> यासां स्वांत किमपि भजते नैव

भावार्थ —निर्वाणरूप लक्ष्मीके उत्पन्न करनेमें
उत्कट स्पृहा अभिलाषा है जिनोंकी, और
करण—मन भोगमें रोगमें एकांतमें समुदायमें
नमें इत्यादि किसीभी ससोरक भागमें
रतिको नही भजता है, तैसी महात्मा स्त्रियों
कदापि न होवे इत्यर्थ ॥

तथा चागमेप्युक्तम् ॥

"॥ अवि अप्पणोवि देहंमि नायरंति ममाइयम् ॥" इति ॥

महात्माजन अपनी देहमें भी ममत्व नही आचरण करते हैं. इस कहनेसें मूर्च्छा हेतु होनेसें, यह भी पक्ष, खंडित होगया. शरीरवत् वस्त्रको भी, किसीको मूर्च्छाहेतुत्वके अभाव होनेसें, परिग्रहरूपत्वका अभाव है.

अपिच। शरीर भी मूर्च्छाका हेतु है, वा नही? नही, ऐसा तो, नही कह सकते हो. क्योंकि, शरीरके विना मूर्च्छा होतीही नही है. यदि हेतु है, तो वस्त्रकीतरें किसवास्ते त्याज्य नही है? दुस्त्याज्य है इसवास्ते? वा मुक्तिका अंग है इसवास्ते? दुस्त्याज्य है इसवास्ते, ऐसे कहो तो, सो सर्वपुरुषोंको, वा किसी किसीको? सर्वको कहो तो ठीक नही. क्योंकि, बहुत वन्हिप्रवेशादिकसें शरीर त्यागते हुए दीखते हैं. किसी किसीको कहो तो, सो ठीक है; जैसें किसीको शरीर दुस्त्याज्य है, तैसेंही वस्त्र भी हो. और मुक्तिअंग कहो तो, वस्त्र भी अशक्तको स्वाध्यायादि उपष्टंभरूप होकर, मुक्तिका अंग है, इसवास्ते त्याज्य नही है. यदि जीवसंसक्तिहेतुत्वसें कहो तो, शरीरको भी जीवसंसक्तिहेतुसें परिग्रहरूप मानना चाहिये. क्योंकि, कृमि गंडुक (गंडोये) आदिकी उत्पत्ति तिसमें भी प्रतिप्राणीको विदित है. यदि कहो कि, शरीरप्रति तो, परम यत्न होनेसें सो अदुष्ट है तो, यही न्याय वस्त्रको लगानेमें क्या बाध है? तिसवखत क्या तिस न्यायको वायस (काग) भक्षण कर गये हैं? वस्त्रका भी सीवन, क्षालन, इत्यादि यत्नसेंही होता है, इसवास्ते तिसमें भी जीवसंसक्तिका संभव कहां रहा? इसवास्ते वस्त्रसद्भावके हुए चारित्राभाव सिद्ध नही हुआ. तिसवास्ते सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रयके अभावकरके स्त्रियोंको पुरुषोंसें हीनता नही है. ॥ १ ॥

और विशिष्टसामर्थ्यके न होनेसें स्त्रीको मोक्ष नही, यह भी कथन, ठीक नही है; क्या सप्तम नरकमें जानेके अभावसें विशिष्टसामर्थ्य नही है? वादादिलब्धियोंसें रहित होनेसें? अल्पश्रुतवाली होनेसें?

वा अनुपस्थाप्यता, पाराचितकप्रायश्चित्तोंसें रहित होनेसें? प्रथम पक्ष ठीक नही जिसवास्ते यहा सप्तम पृथ्वीगमनाभाव, जिस जन्ममें स्त्रियोंको मुक्तिगामीपणा है, तिसही जन्ममें कहते हो, वा सामान्यतः कहते हो? प्रथम पक्षमें तो, चरमशरीरियोंके साथ अनेकांत है, अर्थात् यदि आद्य पक्ष मानो, तब तो पुरुषोंको भी, जिस जन्ममें मोक्ष मिलता है, तिसही जन्ममें सप्तम पृथ्वीगमनयोग्यत्व होता नही है, इसवास्ते तिनको भी मुक्तिके अभावका प्रसंग मानना पडेगा

यदि दूसरा पक्ष कहते हो तो, तुमारा यह आशय होगा सर्वोत्कृष्ट पदकी प्राप्ति, सो सर्वोत्कृष्ट अध्यवसायसें होवे और सर्वोत्कृष्ट ऐसें दोही पद है सर्वदुःखस्थानरूप सप्तमी नरकपृथ्वी, और सर्वसुखस्थान ऐसा मोक्ष तब तो जैसें स्त्रियोंको तिसके गमन योग्य मनोवीर्याभावके हुए, सप्तम पृथ्वीगमन आगममें निषिद्ध है, तैसें मोक्ष भी, तथाविध शुभमनोवीर्याभावके हुए, नही होना चाहिये प्रयोग भी इसतरें है। मुक्तिका कारणरूप, ऐसा शुभ मनोवीर्य परम प्रकर्ष, स्त्रियोंमें है नही, क्योंकि, सो प्रकर्ष है इसवास्ते, सप्तम पृथ्वीगमनकारणरूप, अशुभमनोवीर्य प्रकर्षकीतरें। इति पूर्वपक्ष।

[illegible]रपक्ष—यह सर्व अयुक्त है क्योंकि, व्याप्तिही नही है बहिर्व्याप्ति [illegible]का गमकत्व नही हो सकता है, अंतर्व्याप्ति भी चाहिये [illegible]त् यह हेतु भी गमकत्व होगा अंतर्व्याप्ति है सो प्रा[illegible] [illegible] होती है, और यहां तो प्रतिबंध है नही, इसवास्ते यह हेतु [illegible] [illegible]व्याप्तिवाला है, सो चरम शरीरीसें निश्चित व्यभिचारवाला है [illegible] तिनको सप्तम पृथ्वीगमनानुरूप मनोवीर्य प्रकर्षके अभाव हुए भी, मुक्ति[illegible]नुरूप मनोवीर्यप्रकर्षका सद्भाव है तैसही मत्स्य [illegible] उदाहरणमें भी व्यभिचार आवेगा तिनको सप्तम पृथ्वीगमन हेतु मनोवीर्यप्रकर्षके हुए भी मोक्षहेतु शुभमनोवीर्य प्रकर्ष नही होता है तथा जिनको अधोगमनशक्ति थोडी है तिनको ऊर्ध्वगमनशक्ति भी थोडी [illegible] है ऐसा नियम नही है क्योंकि भुजपरिसर्पादिक व्यभिचार

आता है. देखो! भुजपरिसर्प नीचे दूसरी पृथ्वीतक जाता है, तिससें नीचे न ही जाता है; पक्षी तीसरीतक; चतुष्पद चतुर्थीतक; उरग पांचमीतक; और सर्व उत्कृष्टसें उर्ध्व सहस्रारपर्यंत जाते हैं. और यह भी नियम नही है कि, उत्कृष्ट अशुभ गति उपार्जन सामर्थ्याभावके हुए, उत्कृष्ट शुभ गति उपार्जनसामर्थ्य भी नही होना चाहिये; अन्यथा तो, प्रकृष्टशुभगति उपार्जनसामर्थ्याभावके हुए, प्रकृष्ट अशुभ गति उपार्जनसामर्थ्य भी नही है, ऐसें क्यों न होजावे? और तैसें हुए, अभव्य जीवोंको सप्तम नरकगमन नही होवेगा, इस वास्ते सप्तम पृथ्वीगमनायोग्यत्वको लेके, विशिष्टसामर्थ्यासत्त्व, स्त्रियोंको नही कह सकते हो.

अथ। वादादिलब्धिरहित होनेसें, स्त्रियोंको विशिष्टसामर्थ्याभाव है; जिसमें निश्चित इस लोकसंबंधी, वाद, विक्रिया, चारणादिलब्धियोंका भी हेतु, संयमविशेषरूप सामर्थ्य नही है, तिसमें मोक्षहेतु संयमविशेषरूप सामर्थ्य होवेगा, ऐसा कौन बुद्धिमान् मानेगा?

श्वेतांबरः—यह कहना शोभानिक नही है, व्यभिचार होनेसें; माषतुषादिमुनियोंको तिन लब्धियोंके अभाव हुए भी, विशिष्टसामर्थ्यकी उपलब्धि होनेसें. और लब्धियोंको संयमविशेषहेतुकत्व आगमिक नही है. क्योंकि, आगममें लब्धियोंका हेतु, कर्मका उदय, क्षय, क्षयोपशम, और उपशम कहा है. तथा चक्रवर्त्ति, बलदेव, वासुदेव, आदि लब्धियां, संयमहेतुक नही है. होवे संयमहेतुक लब्धियां, तो भी स्त्रियोंमें तिन सर्व लब्धियोंका अभाव कहते हो, वा कितनीक लब्धियोंका? आद्य पक्ष तो नही. क्योंकि, चक्रवर्त्यादि कितनीक लब्धियोंका तिनमें अभाव है; परंतु आमर्षौषध्यादि बहुतसी लब्धियां तो तिनमें है. और दूसरे पक्षमें व्यभिचार है; पुरुषोंको सर्व वादादि लब्धियोंके अभाव हुए भी, विशिष्टसामर्थ्य अंगीकार करनेसें, वासुदेवरहित, अतीर्थंकरचक्रवर्त्यादिकोंको भी मोक्षका संभव होनेसें.

और अल्पश्रुतपणा भी, मुक्तिकी प्राप्तिकरके, अनुमित विशिष्टसामर्थ्यवाले माषतुषादिकोंके साथ अनेकांत होनेसें, कहनेयोग्यही नही है.

अनुपस्थाप्यतापाराचितककरके शून्य होनेसें स्त्रियोंमें विशिष्टसामर्थ्याभाव है, यह भी कहना अयुक्त है क्योंकि, तिनके निषेधसें विशिष्टसामर्थ्यका अभाव नही होता है क्योंकि, योग्यताकी अपेक्षाहीसें शास्त्रोंमें नानाप्रकारका विशुद्धिका उपदेश है ।

उक्त च ॥

सवरनिर्जररूपो, बहुप्रकारस्तपोविधिः शास्त्रे ॥
रोगचिकित्साविधिरिव, कस्यापि कथञ्चिदुपकारी ॥

भावार्थ—जैसें रोग चिकित्साका विधि, किसीको किसीतरें, और किसीको किसीतरें, उपकारी होता है, तैसेंही शास्त्रमें कहा हुआ, सवरनिर्जरारूप, बहुप्रकारवाला तपका विधि उपकारी है ॥ २ ॥

पुरुष वदन नही करते हैं, इसकरके भी, स्त्रियोंमें हीनता सिद्ध नही होती है क्योंकि, तैसा अनभिवद्यत्व, सो भी सामान्यत मानते हो, वा गुणाधिक पुरुषकी अपेक्षासें मानते हो? आद्यपक्ष असिद्ध है क्योंकि, तीर्थंकरकी माता आदिको, पुरदरादि इन्द्रादि भी पूजते हैं, नमस्कार करते हैं तो, शेषपुरुषोंका तो कहनाही क्या है? और दूसरे पक्षमें आचार्य अपने शिष्योंको वदना नहीं करते हैं, तब तो, आचार्यसें [illegible]ानेमें शिष्योंको मुक्ति न होनी चाहिये, परतु ऐसें है नहीं क्योंकि चण्डरुद्रादिके शिष्योंको मुक्ति हुइ शास्त्रोंमें सुननेमें आती है तथा गणधरोंको भी तीर्थंकर नमस्कार नही करते हैं, तब तो, तिनको भी हीन गिणने चाहिये और तिनको मोक्ष न होना चाहिये! इसवास्ते मूल हेतु व्यभिचारी है अपर च । चतुर्वर्णसघ, सो तीर्थंकरोंको वद्य है, और स्त्रियों भी सघमेंही है, इसवास्ते जे सयमवती हैं, तिनको तीर्थंकरवद्यत्व सिद्ध हुआ, तब तो, स्त्रियोंको हीनत्व कहा रहा! ॥ ३ ॥

स्मारणादिके न करनेसें यह पक्ष अगीकार करोगे, तब तो, केवल आचार्यकोंही मुक्ति होनी चाहिये शिष्योंको नहीं क्योंकि, वे स्मारणादि करते नही हैं

दिगंबरः—पुरुषविषे स्मारणादि अकर्त्तृत्व यहां विवक्षित है, नतु स्मारणादि अकर्त्तृत्वमात्र; और नही, स्त्रियां कदापि पुरुषोंको स्मारणादि करती हैं.

श्वेतांबरः—तब तो 'पुरुषविषे' ऐसें कहना योग्य था. यदि ऐसें कहो, तो भी असिद्धता दोष है. क्योंकि, कितनीक सर्वज्ञके आगमके रहस्यकरके वासित है सप्तधातु जिनोंकी, ऐसी स्त्रियोंको किसी जगें तथाविध अवसरमें स्खलायमान वृत्तिवाले साधुको स्मारणादिका करना, विरोध नहीं है. ॥ ४ ॥

अथ अमहर्द्धिक होनेसें स्त्रियां पुरुषोंसें हीन हैं. यह पक्ष भी ठीक नही है. क्या आध्यात्मिक समृद्धिकी अपेक्षा अमहर्द्धिकत्व है, वा बाह्यसमृद्धिकी अपेक्षा? प्रथम पक्ष तो नही. क्योंकि, आध्यात्मिकसमृद्धि, सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय है; तिसका तो, स्त्रियोंमें भी सद्भाव है. बाह्यसमृद्धिवाला पक्ष भी ठीक नही. क्योंकि, तीर्थंकरकी ऋद्धिकी अपेक्षा गणधरादि, और चक्रधरादिकी अपेक्षा अन्य क्षत्रियादि, सर्व अमहर्द्धिक हैं; तब तो, गणधरादिकोंको भी मोक्ष न होना चाहिये.

दिगंबरः—पुरुषवर्गकी तीर्थंकररूप जो महती समृद्धि है, सो स्त्रियोंमें नही है; इसवास्ते स्त्रियोंको अहमर्द्धिकपणेकी हम विवक्षा करते हैं.

श्वेतांबरः—इस तुह्मारे कथनमें भी असिद्धता दोष है. कितनीक परम पुण्यपात्रभूत स्त्रियोंको भी, तीर्थकरत्वके अविरोधसें; तिसके विरोधसाधक किसी भी प्रमाणके अभावसें, तुम्हारे कहे अनुमानको अद्यापि विवादास्पद होनेसें, और अनुमानांतरके अभावसें. ॥ ५ ॥

मायादि प्रकर्षवत्त्वसें मोक्ष नही. यह भी कथन श्रेष्ठ नही है. मायादि प्रकर्षवत्त्वको, स्त्रीपुरुष दोनोंमें तुल्य देखनेसें, और आगममें सुननेसें; तथा नारदादि चरमशरीरीको भी मायादि प्रकर्षवत्त्व सुनते हैं. तिसवास्ते स्त्रियोंको, पुरुषोंसें हीनत्व होनेसें निर्वाण नही है, यह कहना अच्छा नही है. ॥ ६ ॥

दिगंबर—निर्वाणकारण ज्ञानादि
प्रकर्ष होनेसें, सप्तम पृथ्वीगमनकारण

श्वेतांबर—यह कहना ठीक नही है
यह तुमारा हेतु व्यभिचारी है, स्त्रियोंमें
और स्त्रीवेदादि परम प्रकर्षके साधनेके अशुभ

दिगंबर—स्त्रियोंको मोक्ष नही है, परिग्रहवत्व

श्वेतांबर—यह कहना भी अच्छा नही
अपरिग्रहपणे अच्छीतरेंसें सिद्ध करनेसें ॥

कोद्धार ॥

और साधक प्रमाणोंका उपन्यास ऐसें है।
निर्वाणवाली है, अविकलनिर्वाणके कारण होनेसें,
अविकलसपूर्णकारण तो सम्यग्दर्शनादि
हेही और नपुंसकादिविपक्षसें अत्यंतव्यावृत्त
अनेकांतिक भी नही है तथा मनुष्यस्त्रीजाति, स्त्री
अविकल कारणवाली है, प्रव्रज्याकी अधिकारित्व
यह असिद्धसाधन भी नही है " गुर्विणी बालवच्छा
प्पइ " गुर्विणी—गर्भवती, और बालकवाली स्त्री,
कल्पती है इस सिद्धांतकरके तिसको
विशेष प्रतिषेध (निषेध) को शेष स्त्रियोंको अनुज्ञा
मुक्तिव्यवस्था ॥

यह पूर्वोक्त कथन (केवलिभुक्ति, और स्त्रीमुक्ति)
श्रीप्रमाणनयतत्त्वालोकालंकारसूत्रकी रत्नाकरावतारिका नामा लघुवृत्तिसें
है; और अन्यग्रंथोंमें तो, बहुत विस्तारसें खंडन किया हुआ
बांचना चाहो तो लिखेंगे इसवास्ते दिगंबरोंके सर्व तर्कशास्त्र,
तर्कशास्त्रोंने रचे हुए हैं, यदि कोई विचारकी तर्क दिगंबरोंका
प्रकट करें तिसको भी श्वेतांबर खंडेंगे

अथ कुछक दिगंबरश्वेतांबरके मतका स्वरूप, प्रश्नोत्तररूप करके लिखते हैं. क्योंकि, पूर्वोक्त कथन प्रायः चर्चाचंचूही समझ सकेंगे, और यह प्रश्नोत्तररूपकथन तो, थोडी समझवाले भी समझेंगे. ॥ "प्रश्न–दिगंबर" ॥ " उत्तर–श्वेतांबर " ॥

प्रश्नः–भगवान् तो भुवनतिलकरूप है, इसवास्ते तिनको तिलक नही करना चाहिये.

उत्तरः–यह कहना अनभिज्ञोंका है. क्योंकि, जैसें भगवान् तीन लोकके छत्ररूप है, तो भी, तिनके मस्तकोपरि छत्र धारण करनेमें आवे हैं; तैसेंही तिलक भी जाणना. तथा तुमारे संस्कृत हरिवंशपुराणमें भी, भगवंतको तिलक करना लिखा है.

तथाहि ॥

त्रैलोक्यतिलकस्यास्य ललाटे तिलकं महत् ॥
अचीकरन्मुदेंद्राणी शुभाचारप्रसिद्धये ॥ १ ॥

भावार्थः–तीन लोकके तिलक इस भगवंतके ललाटमें खुशी होके इंद्राणी शुभाचारकी प्रसिद्धिवास्ते तिलक करती हुई. । १ ।

प्रश्नः–लेपरहित, और रागद्वेषरहित, अरिहंतको विलेपन किसवास्ते करते हो?

उत्तरः–हरिवंशपुराणमेंही लिखा है.

यतः ॥

जिनेंद्रांगमथेंद्राणी दिव्यामोदिविलेपनैः ॥
अन्वलिप्यत भक्त्यासौ कर्म्मलेपविघातनम् ॥ १ ॥

भावार्थः–जिनेंद्रके अंगको अथ इंद्राणी प्रधान आनंद देनेवाले विलेपनोंकरके भक्तिसें लेपन करती हुई. कैसा विलेपन? कर्मलेपका घातक।१।

और पाहुडवृत्तिमें पंचामृतस्नात्र करना भी लिखा है. और जिनवर तो, त्रिभुवनके छत्र हैं तो, तुम तिनके ऊपर छत्र क्यों करते हो? जैसें भगवान् त्रिभुवनतिलक है, तैसेंही त्रिभुवनछत्र भी है; तब तिलक नही करना, और छत्र करना, यह कैसा अन्याय है!

प्रश्नः–भगवंतको तुम आभरण किसवास्ते चढाते हो?

उत्तर —हमारे तो पूर्वधर
सूत्रकी भाष्यमें कहा है कि, जिनराजके
णोंसें शृंगार करना, जिसको देखके
आनंद उत्पन्न होवे और तत्त्वार्थसूत्रादि ग्रंथके
श्रीउमास्वातिवाचकने, पूजाप्रकरणनामा ग्रंथमें
राजकी पूजा कही है, जिसमें भी आभरणपूजा
आगमोंमें भी, आभरण चढानेका पाठ है. इसवास्ते
मतके बतावच हरिवंशपुराणमें ऐसा पाठ है ।

यत ॥

"॥ एण्हविऊण खीरसायरजलेण भूसिओ
इत्यादि

भावार्थ —क्षीरसागरके जलकरके स्नान करवाके
णोंकरके भूषित करा । इत्यादि—तो फिर तुम,
नहीं पहिराते हो?

-दिगंबर —ऊपरके तीन उत्तरमें जो हमारे ग्रंथोंकी साक्षी
तो ठीक है, परंतु हम तो ग्रंथोक्तवार्ते जन्मकल्याणककी

श्वेतांबर —तुम जो भगवतको नित्य स्नान कराते हो,
शुद्ध जल ल्याके तिस पात्राजलसें स्नान कराते हो, सो
ककी अपेक्षा कराते हो? जेकर कहोगे जन्मकल्याणककी
हैं, तब तो, साथही वस्त्राभरण कटक कुंडल मुकुटादि भी
चाहीये, ग्रंथोक्त होनेसें जेकर कहोगे, योगावस्थाकी
तब तो, पानीसें स्नान करानेसें तुम लोक अपराधी ठहरोगे.
तुम लोक भगवतके बिंबको रथ, वा पालकी वा [illegible]
करते हो, तब कौनसी अवस्था मानते हो? जेकर कहोगे
वा, गृहस्थावस्था मानके करते हैं, तब तो,
भी पहिराने चाहिये जेकर कहोगे, योगावस्थाकी अपेक्षा
तो, बहुत अनुचित काम करते हो!! क्योंकि,

पीछे किसी भी सवारीमें नही चढे हैं; तो, तुम किसवास्ते लोकोंमें भगवंतको योग लीयांपीछे सवारीमें चढनेवाले सिद्ध करते हो?

दिगंबरः—यह तो हम, हमारी भक्तिसें करते हैं.

श्वेतांबरः—तब तो भक्तिसें कटककुंडलादि क्यों नही पहिराते हो?

दिगंबरः—कटककुंडलमुकुटादि पहिरानेसें जिनमुद्रा बिगड जाती है.

श्वेतांबरः—रथमें वा पालकीमें बैठे हुए भगवंतकी मुद्रा भी, बिगड जाती है. क्योंकि, चाहो नग्न होवे, चाहो वस्त्रादिसहित होवे; जब रथ, वा पालकीमें बैठा होवेगा, तब तिसको कोइ भी त्यागी, वा योगी, वा योगमुद्राका धारक, नही कहेगा. जैसें तुमारे मतके नग्न मुनिको रथमें, वा पालकीमें, वा हाथी, घोडे, ऊंट, ऊपर चढाके लिये फिरे तो, तिसको कोइ भी दिगंबरी वंदन नही करेगा; और न उसको मुनिअवस्था, वा योगमुद्रा, मानेगा. इसवास्ते हठ छोडके श्वेतांबरोंकीतरें पूजा भक्ति, चंदन, पुष्प, धूप, दीपाभरणारोहणसें करो, जिससें तुह्मारा कल्याण होवे. और श्वेतांबरमतमें तो, जिनप्रतिमाका अचिंत्य स्वरूप माना है; इसवास्ते सर्व अवस्था जिनप्रतिमामें विराजमान है. भक्तजन जैसी अवस्था कल्पन करे हैं, तैसीही अवस्था तिनको भान होती है. और भगवंतकी सर्व अवस्था सम्यग्दृष्टिको आनंदोत्पादक है. इसी हेतुसें जिनमतमें पंचकल्याणक कहे हैं. और कल्याणक शब्दका यह अर्थ है कि, पांच वस्तु गर्भ १, जन्म, २, दीक्षा ३, केवल ४, और निर्वाण ५, में उत्सवभक्ति करनेसें, जो, भक्तजनोंको कल्याण अर्थात् मोक्षका हेतु होवे, सो कल्याणक.। हम दिगंबरोंको पूछते हैं कि, तुम जिन जन्मकल्याणककी भक्ति करते हो, सो धर्म मोक्षका मानके करते हो, वा पाप जानके? जेकर धर्म मोक्षका हेतु जानकर करते हो, तब तो, चिरंजीवी रहो; तुमारी भक्ति ठीक है, सदैव कर्त्तव्य है. जेकर पाप मानते हो, तब तो अल्पबुद्धि हो. क्योंकि, लाखों द्रव्य खरचके, पापोपार्जन करके, दुर्गति जाना, यह मूर्खोंहीका काम है; दोनों हानियें करनेसें, ढूंढकवत्. जैसें ढूंढकमतवाले दीक्षामहोत्सव करते हैं, साधुसाध्वीके दर्शनोंको जाते हैं, साधुसाध्वीयोंके

विमार हुए दवाइ आदि करते हैं, पर्युषणादिकोंमें मोदकादिकी प्रभावना करते हैं, तपस्या करनेवालेको पारणा कराते हैं, इत्यादि अनेक कार्योंमें हजारों द्रव्य खरचते हैं, और फिर कहते हैं कि, यह तो संसार खाता है वाहरे वाह ! ! ! वछ्डेके भाइयोंने वहुतही ज्ञान संपादन करा !

प्रश्न –भगवतकी प्रतिमाके शरीरमें अन्यवस्तु कुछ भी जडनी न चाहिये, नि केवल जिस दल, वा धातुकी प्रतिमा होवे, सोही होना चाहिये

उत्तर –तुम्हारे मतकी द्रव्यसंग्रहकी वृत्तिमेंही लिखा है कि, जिनप्रतिमाका उपगूहन (आलिंगन) जिनदासनामा श्रावकने करा और पार्श्वनाथकी प्रतिमाको लगा हुआ रत्न, माया ब्रह्मचारीने अपहरण कराचुराया

तथा च तत्पाठ ॥

"॥ मायाब्रह्मचारिणा पार्श्वभट्टारकप्रतिमालग्नरत्नहरण कृतमिति ॥"

प्रश्न –जिनप्रतिमाके किसी भी अंगमें चंदनादि सुगंधका लेपन, न करना चाहिये

उत्तर –तुम्हारे मतके भावसंग्रहमें जिनप्रतिमाके चरणोंमें चंदनका [illegible] लेपन करना लिखा है

[illegible] । गाथा ॥

[illegible] लेओ जिणवरचलणेसु कुणइ जो भविओ ॥

[illegible] [illegible] ग्यि सहावससुअधय विमल ॥ १ ॥

भावार्थ –जिन[illegible] [illegible] णाम जो भव्यजीव चंदनसुगंधका लेप करे, सो स्वाभाविक सुगंधसहित निर्मल वैक्रिय शरीर पावे, अर्थात् देवता होवे ॥ तथा पद्मनंदिकृत अष्टकमें लिखा है

यत ॥

"॥ कर्पूरचन्दनमिनीर मयार्पित मत
त्वत्पादपंकजसमाश्रयण रगैर्नीत्यादि ॥"

भाषार्थः—मेरा अर्पण करा हुआ कर्पूरचंदन, हे जिनेंद्र! तुमारे चरणकमलमें सम्यक् आश्रय करता है. इत्यादि* ॥

तथा त्रैलोक्यसारमें लिखा है. ।

यतः ॥

"॥ चंदणाहिसेयणच्चणसंगीयवलोयमंदिरेहिंजुदा
कीडणगुणणगिहहिअविसालवरपट्टसालाहिं ॥"

भाषार्थः—चंदनकरके अभिषेक नृत्य संगीत अवलोकन मंदिरमें युक्त क्रीडाकरण गुणणा गृहस्थोंने विशालप्रधान पट्टशालांकरके ॥

तथा तत्त्वार्थसूत्रकी राजवार्त्तिक नामा अकलंकदेवकृत टीकामें लिखा है कि, मंदिरका गंधमाल्य (पुष्पमाला) धूपादि जो चुरावे, सो अशुभनाम कर्म उपार्जन करे.

तथाहि ॥

"॥मिथ्यादर्शनापिशुनतास्थिरचित्तस्वभावताकूटमानतुलाकरणसुवर्णमणिरत्नाद्यनुकृतिकुटिलसाक्षित्वांगोपांगच्यावनवर्णगंधरसस्पर्शान्यथाभावनयंत्रपंजरक्रियाद्रव्यांतरविषयसंबंधनिकृतिभूयिष्ठतापरनिंदात्मप्रशंसानृतवचनपरद्रव्यादानमहारंभपरिग्रहोज्वलवेषरूपमदपरूषासत्यप्रलापाक्रोशमौखर्यसौभाग्योपयोगवशीकरणप्रयोगपरकुतूहलोत्पादनालंकारादरचैत्यप्रदेशगंधमाल्यधूपादिमोषणविलंबनोपहासेष्टकापाकदवाग्निप्रयोगप्रतिमायतनप्रतिश्रयारामोद्यानाविनाशतीव्रक्रोधमानमायालोभपापकर्मोपजीवनादिलक्षणः स एष सर्वोऽशुभस्य नाम्नः ॥"

अब विचार करना चाहिये कि, गंध पुष्प मालादि चढावनेही नही; ऐसा होवे तो, मंदिरमें गंधमाल्यधूपादि कहांसें आवेंगे? और तिनके वि-

* पूर्वोक्त काव्यकी टीकामें ऐसें लिखा है—अनेन वृत्तेन चदन प्राक्षिप्यते टीप्पका च दीयते—इस वृत्तको पढके चदनप्रक्षेप करिये और चरणोपरि टिप्पिका (तिलक) करिय. ॥

यमान न हुए, चुरावेगा क्या? और अशुभनाम कर्मका आश्रव (आगमन) किसको होवेगा? तब तो, स्वामी अकलकदेवका लिखना तुमारी श्रद्धा मूजिब मिथ्या ठहरेगा। इसवास्ते सिद्ध होता है कि, दिगबरोंमें अपने चलाये-माने मतका आग्रहही है, न तु न्यायवुद्धि ॥

प्रश्न -जिनवरकी प्रतिमाको लिंगका आकार करना चाहिये क्योंकि भगवान् तो, दिनरात्र वस्त्ररहितही होते हैं इसवास्ते जिस जिनप्रतिमाको लिंगका आकार न होवे, सो जिनप्रतिमाही नही है क्योंकि जिनवरके रूपसमानही जिनबिंब बनाना चाहिये, अन्यथा ध्यानमें विलब होता है इसवास्ते वस्त्रादिककी शोभा करे, स्थिर ध्यान नही हो सकता है

उत्तर -जिनेंद्रके तो अतिशयके प्रभावसे लिंगादि नही दीखते हैं, और प्रतिमाके तो अतिशय नही है, इसवास्ते तिसके लिंगादि दीख पडते हैं, तो फिर, जिनवरसमान तुमारा माना जिनबिंब कैसे सिद्ध हुआ? अपितु नहीं सिद्ध हुआ और तुमारे मतके खडे योगासन लिंगवाली प्रतिमाके देखनेसें, स्त्रियोंके मनमें विकृति (विकार) होनेका भी संभव है, जैसें स्तन भग कुचादि आकारवाली स्त्रीकी मूर्त्ति देखनेसें पुरुषके मनमें [illegible]ति होते हैं और लिंग देखनेसें जिनप्रतिमा, सुभग भी नही दीखती [illegible] [illegible]यपुरके जिलेमें वागडदेशमें तुमारे मतके लिंगाकार प्रकट [illegible] [illegible]के खडे योगके ऐसे बिंब है कि जिनके दर्शन करने [illegible] [illegible] [illegible]ट भी प्राय साथ [illegible] नही जाते हैं और अन्यमत[illegible] [illegible] [illegible]यको देखके उपास्य करते हैं यद्यपि महादेवका केवल लिंगही [illegible] पूजते हैं, परंतु जिसने यह शिवजीका लिंग है, ऐसा नहीं सुना है, वो [illegible] प्रथमही देखनेसे नही जान सकता है कि, यह शिवजीका लिंग है क्योंकि, उसमें लिंगकी पूरी पूरी आकृति नही है किंतु केवल [illegible] पत्थरकी [illegible] दीखती है तथापि, प्राय [illegible] [illegible] [illegible] दर्शन नहीं करते हैं; ऐसा सुना है

और तुमने तो पुरुषाकार प्रतिमाके वृषणोंके ऊपर ऐसा लिंगाकार नाया है कि, जिसको जो कोइ देखेगा, तिसकोही अच्छा नही लगेगा; तो फिर, जिनवरसमान तुमारा जिनबिंब किसतरें सिद्ध हुआ?

और जो तुम जिनसमान जिनका बिंब मानते हो, तब तो, जिनबिंबके भमूह (भाफण) श्याम करने चाहिये; आंखें खुणेसें लाल, डौले श्वेत, आना काला, कीकी अतिकाली, ऐसी बनानी चाहिये; दाडीमूंछ काली बनानी चाहिये; हाथपगके तले रक्त (लाल) करने चाहिये; जेकर ऐसें न करोगे, तब तो, जिनवरसमान तुमारा जिनबिंब कदापि सिद्ध नही होवेगा.

तथा जैसा समवसरणमें जिनेश्वरका आकार है, तैसाही आकार तुम प्रतिमाका मानते हो; तब तो, पार्श्वनाथ भगवंतके शिरपर करा हुआ धरणेंद्रका सर्प्पाकार छत्र क्यों बनाते, और मानते हों? क्योंकि, धरणेंद्रने तो छद्मस्थावस्थामें खडे पार्श्वनाथ भगवंतके शिरपर छत्र फणाकारका करा था, नतु समवसरणमें बैठोंके. और जिस जिनेंद्रको बैठें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, तिसका बिंब खडे योग क्यों बनाते हो? और जिनवरका रूप तो, लक्षभूषणोंके आकारवाला देदीप्यमान था; और तुमारी प्रतिमाका तो, तैसा रूप है नही. तो फिर, जिनस्वरूपका स्मरण तुमको कैसें हो सकता है? और पार्श्वनाथ भगवंतका वर्ण तो, प्रियंगुवर्ण–मोरकी ग्रीवासमान था; और तुम तो श्याम, रक्त, पीत, श्वेतवर्णकी प्रतिमा बनाते हो. तो फिर, तदनुरूप कैसें सिद्ध हुई? इसवास्ते कटक कुंडल मुकुटादि आभरणोंसंयुक्त, और धूप दीप नैवेद्य पुष्प फलादिसें जिनराजका पूजन करना चाहिये. क्योंकि दिगंबराम्नायके शास्त्रोंमें भी ऐसेही पूजाविधान लिखा है; सो यत्किंचित् लिखते हैं.

श्रीउमास्वामीने श्रावकाचार किया है, तिसमें पूजा प्रकरणमें ऐसें लिखा है. ॥

स्नानैर्विलेपनविभूषितपुष्पवासदीपैः प्रधूपफलतंदुलपत्रपूगैः ॥
नैवेद्यवारिवसनैश्चमरातपत्रवादित्रगीतनृतस्वस्तिककोषदूर्वा ॥ १ ॥

इत्येकविंशतिविधा जिनराजपूजा चान्यत्
प्रिय तदिह भाववशेन योज्यम् ॥

भावार्थ —स्नान १, विलेपन २, पुष्प ३, वास ४, दीप ५, धूप ६, फल ७ तंदुल ८, पत्र ९, सुपारी १०, नैवेद्य ११, जल १२, वस्त्र १३, चामर १४, छत्र १५, वादित्र १६, गीत १७, नाटक १८, स्वस्तिक १९, कोष (भंडार) २० और वर्षा २१, यह इकवीस प्रकारकी श्रीजिनराजकी पूजा जाणनी, तथा और भी, जो प्रिय होवे, सो शुद्ध भावोंसें पूजनमें योजन करना

तथा भगवदेकसंधिविरचित श्रीजिनसंहितामें ऐसें लिखा है ॥

निल्यपूजाविधाने तु त्रिजगत्स्वामिन प्रभो ॥
कलशेनैककेनापि स्नापन न विगृह्यते ॥ १ ॥
विदध्यात्कलहमित्यादि—॥

भावार्थ —नित्यपूजाविधानमें त्रिजगत्स्वामी भगवानको एक कलशसें भी स्नान जो नहीं कराते हैं, तिनको कलह कुलका नाश आदि प्राप्त होते हैं, ऐसें जाणना

तथा श्रीउमास्वामिविरचित श्रावकाचारमें ऐसें कहा है ॥

प्रभाते घनसारस्य पूजा कुर्याज्जिनेशिनाम् ॥
॥
[illegible] [illegible] विना नैव पूजा कुर्यात्कदाचन ॥

[illegible] समय घनसार (कपूर) से श्रीजिनराजकी पूजा करना। [illegible] विना कदापि पूजा नहीं करनी

तथा कगुन [illegible] में ऐसे लिखा है ॥

अनर्चितपदद्वंद्व [illegible] कस्मादिविलेपनं ॥
चिरं पश्यति जैनेन्द्र ज्ञानदीन स उच्यते ॥ १ ॥

भावार्थ —कुंकुम (केसर) आदि सुगंधित द्रव्योंके लेपन रहित चरण हैं जिसके, ऐसे निर्लेपपदवाला जो देखा करता है तिसको ज्ञानहीन पुरुष कहते हैं

तथा आराधना कथाकोषमें ऐसें लिखा है.॥

अहिछत्रपुरे राजा वसुपालो विचक्षणः॥
श्रीमज्जैनमते भक्तो वसुमत्यभिधा प्रिया॥ १॥
तेन श्रीवसुपालेन कारितं भुवनोत्तमम्॥
लसत्सहस्रकूटे श्रीजिनेंद्रभवने शुभे॥ २॥
श्रीमत्पार्श्वजिनेंद्रस्य प्रतिमापापनाशिनी॥
तत्रास्ति चैकदा तस्यां भूपतेर्वचनेन च॥ ३॥
दिने लेपं दधत्युच्चैर्लेपकाराः कलान्विताः॥
मांसादिसेवकास्ते तु ततो रात्रौ सलेपकः॥ ४॥
पतत्येव क्षितौ शीघ्रं कदर्थ्यंते खिला भृशम्॥
एवं च कतिचिद्वारैः खेदाखिन्ने नृपादिके॥ ५॥
तदैकेन परिज्ञात्वा लेपकारेण धीमता॥
देवताधिष्ठितां दिव्यां जिनेंद्रप्रतिमां हि ताम्॥ ६॥
कार्यसिद्धिर्भवेद्यावत्तावत्कालं सुनिश्चलम्॥
अवग्रहं समादाय मांसादेर्मुनिपार्श्वतः॥ ७॥
तस्यां लेपः कृतस्तेन सलेपः संस्थितस्तदा॥
कार्यसिद्धिर्भवत्येवं प्राणिनां व्रतशालिनाम्॥ ८॥
तदासौ वसुपालेन भूभुजा परया मुदा॥
नानावस्त्रसुवर्णाद्यैः पूजितो लेपकारकः॥ ८॥

भावार्थः—अहिछत्रपुरनामा नगरका राजा वसुपालनामा हुआ, जो विचक्षण और श्रीजैनधर्मका भक्त था, तिसकी राणीका नाम वसुमती था, तिस वसुपाल राजाने अपने बनवाये सहस्रकूट नामा श्रीपार्श्वनाथके मंदिरमें पापोंके नाश करनेवाली श्रीपार्श्वनाथकी प्रतिमा स्थापन करी; एकदा प्रस्तावे तिस राजाने लेपकारोंको श्रीपार्श्वनाथजीकी प्रतिमाके ऊपर लेप करनेकी आज्ञा करी, तब कलावान् लेपकार, दिनमें अतिशय

मेहनत करके लेप करते हैं, परतु लेपकार मासादिके सेवनेवाले होनेसें सो लेप रात्रिकेविषे जलदी भूमिऊपर गिर पडता है, जिससें लेपकारादि बहुत कदर्थनाको प्राप्त होते हैं कितनेहीवार ऐसें करते रहें, परतु लेप ठहरता नही है, और राजादि खेदको प्राप्त हुए, तब बुद्धिमान् एक लेपकारने तिस जिनेंद्रकी दिव्यप्रतिमाको देवताधिष्ठित जानके, जबतक कार्यसिद्धि न होवे, तबतक, अर्थात् तितने कालका मासादि नही खानेका मुनिके पाससें नियम लेके, तिस प्रतिमाके ऊपर लेप करा, तब सो लेप ठहर गया ऐसें व्रतशालि प्राणियोंको कार्यसिद्धि होवे हैं तब वस्तुपाल राजाने परमहर्षसें अनेक प्रकारके वस्त्रसुवर्णादिकोंकरके तिस लेपकारका पूजन करा

वसुनदीकृत प्रतिष्ठापाठमें ऐसें लिखा है ॥

कर्पूरैलालवगादिद्रव्यमिश्रितचदनै ॥
सौगंधवासिताशेषदिङ्मुखैश्चर्चयेज्जिनम् ॥ १ ॥

भावार्थ —सुगधकरके वासित करी है सपूर्ण दिशायें जिनोंने, ऐसें कर्पूर, एलाफल (इलायची), लवग, आदि द्रव्योंकरके मिश्रित चदनसें जिनको चर्चे अर्थात् लेप करें

तथा धर्मकीर्त्तिकृत नदीश्वरस्थ जिनबिंबकी पूजामें ऐसे लिखा है ॥

[illegible]कुमरसेन सुचदनेन
जिनपादयुगल परिलेपयाति ॥
तिष्ठति [illegible]जना सुसुगधगंधा-
दिव्यागनापरिवृता सतत वसति ॥ १ ॥

भावार्थ —जे भव्यप्राणि कर्पूरकुकुमके रसकरी और भले चदन करके, जिनपादयुगलको लेप करते है, वे भविजन सुसुगध शरीरवाले होके, दिव्यरूपवाली देवागनाओंके साथ परिवरे हुए निरतर सागरोंतक वसते हैं

तथा पूजासारनामा जिनसंहितामें ऐसें लिखा है. ॥

समृद्धिभक्त्या परया विशुद्ध्या कर्पूरसंमिश्रितचंदनेन ॥
जिनस्य देवासुरपूजितस्य सुलेपनं चारु करोमि मुक्त्यै ॥ १ ॥

भावार्थः—अपनी समृद्धिपूर्वक परमविशुद्ध भक्तिसें मिश्रितचंदनकरके देवअसुरादिकोंसें पूजित ऐसें जिनको मुक्तिकेवास्ते भला लेपन करता हूं.

तथा त्रिवर्णाचारमें ऐसें लिखा है. ॥

जिनांघ्रिचंदनैः स्वस्य शरीरे लेपमाचरेत् ॥
यज्ञोपवीतसूत्रं च कटिमेखलया युतम् ॥ १ ॥
जिनांघ्रिस्पर्शितां मालां निर्मले कंठदेशके ॥
ललाटे तिलकं कार्यं तेनैव चंदनेन च ॥ २ ॥

भावार्थः—जिनमूर्त्तिके चरणकमलके चंदनसें अपने शरीरको लेप करे, और कटिमेखला (कंदोरा—तरागडी) संयुक्त यज्ञोपवीत अपने शरीरऊपर धारण करे; । तथा जिनमूर्त्तिके चरणोंको स्पर्शी हुई मालाको अपने कंठमें धारण करे, तथा अपने ललाटऊपर तिसही चंदनसें तिलक करे. ॥

तथा पूजासारमें ऐसें लिखा है. ॥

ब्रह्मघ्नोथवा गोघ्नो वा तस्करः सर्वपापकृत् ॥
जिनांघ्रिगंधसंपर्कान्मुक्तो भवति तत्क्षणम् ॥ १ ॥

भावार्थः—जो ब्रह्मघाती, तथा गोघाती, तथा तस्कर—चौर, तथा सर्व पापोंके करनेवाला पुरुष है, सो भी, जिनेंद्रके चरणोपरि लगे हुए गंधके स्पर्शसें, अर्थात् तिस गंधको भक्तिपूर्वक अपने शरीरको लगानेसें, तत्क्षण शीघ्रही पूर्वोक्त पापोंसें मुक्त होता है—छूट जाता है. ॥

तथा श्रीपालचरित्रमें ऐसें लिखा है.

दिवसाष्टकपर्यंतं प्रपूजय निरंतरम् ॥
पूजाद्रव्यैर्जगत्सारैरष्टभेदैर्जलादिकैः ॥ १ ॥

तच्चंदनसुगंध्यवुस्त्रजोव्याधिहरा स्फुटम् ॥
प्रत्यह त्वत्पतेर्भक्त्या प्रयच्छ रोगहानये ॥ २ ॥

भावार्थ –मदनसुंदरीको महामुनिने कहा कि, श्रीसिद्धचक्रका आठ दिनपर्यंत निरंतर जगत्में सारभूत ऐसें जलादि आठ प्रकारके पूजाके द्रव्यसें, अर्थात् अष्टद्रव्यसें पूजन कर, और निरंतर व्याधिको हरनेवाले ऐसें सिद्धचक्रको स्पर्शे हुए, चंदन, सुगंध, जल, और माला, रोगके दूर करने वास्ते भक्तिसें अपने पतिको लगाव

तथा निर्वाणकांडमें ऐसें लिखा है ॥

गोमट्टदेव वंदामि पंच सयधणुहदेहउच्चत ॥
देवा कुणंति विट्ठिं केसरकुसुमाण तस्सउवरिम्मि ॥ १ ॥

भावार्थ –गोमट्टदेव (बाहुबल) को मैं वंदना करता हूं, कैसें हैं गोमट्टदेव ? जिसका पांचसो धनुष्य प्रमाण उच्चदेह है, और तिसके ऊपर देवता केसर और पुष्पोंकी वर्षा करते हैं

तथा षट्कर्मोपदेशरत्नमालामें ऐसें लिखा है ॥

इतीम निश्चय कृत्वा दिनाना सप्तक सती ॥
श्रीजिनप्रतिबिंबाना स्नपन समकारयत् ॥ १ ॥
चंदनागरुकर्पूरसुगंधैश्च विलेपनम् ॥
सा राज्ञी विदधे प्रीत्या जिनेंद्राणा त्रिसध्यकम् ॥ २ ॥

[illegible] (पूर्वोक्त) निश्चय करके मदनावलीनामा राणी, श्री जिन [illegible] [illegible]न दिन स्नान कराती भई, और प्रीतिसें त्रिसंध्यामें जिनद्र[illegible] [illegible] [illegible]गादि सुगंध द्रव्योंसें विलेपन करती भई

तथा प्रतिष्ठा[illegible] [illegible] लिखा है ॥

जिनांघ्रिस्पर्शमा[illegible] [illegible] त्रैलोक्यानुग्रहक्षमाम् ॥
इमा स्वर्गरमादूतीं धारयामि वरस्रजम् ॥ १ ॥

भावार्थ –मैं प्रधानमालाको धारण करता हूं कैसी माला ? जिनेंद्रके चरणके स्पर्शमात्रसें तीनों लोकोंके अनुग्रह करनेमें समर्थ, और स्वर्गकी लक्ष्मीकी प्राप्तिमें दूतीसमान

तथा आराधनाकथाकोषमें करकंडुके चरित्रमें ऐसें लिखा है. ॥

तदा गोपालकः सोपि स्थित्वा श्रीमज्जिनाग्रतः ॥
भो सर्वोत्कृष्ट ते पद्मं ग्रहाणेदमिति स्फुटम् ॥ १ ॥
उक्त्वा जिनेंद्रपादाब्जोपरि क्षिप्त्वाशु पंकजम् ॥
गतो मुग्धजनानां च भवेत्सत्कर्मशर्मदम् ॥ २ ॥

भावार्थः—तब सो गोपाल भी श्रीजिनमूर्त्तिके आगे स्थित होके, भो सर्वोत्कृष्ट! यह कमल ग्रहण कर, ऐसा कहके श्रीजिनेंद्रके चरणकमलोपरि कमलको शीघ्र क्षेपन करके, गया; इत्यादि.

तथा श्रीजिनयज्ञकल्पप्रतिष्ठाशास्त्रमें ऐसें लिखा है. ॥

"॥ श्रीजिनेश्वरचरणस्पर्शादनर्घ्या पूजा जाता सा माला महाभिषेकावसाने बहुधनेन ग्राह्या भव्यश्रावकेनेति ॥ "

भावार्थः—श्रीजिनेश्वरके चरणस्पर्शसें अमूल्य पूजा हुई, सो महाभिषेक अंतमें भव्य श्रावकने बहुत धनकरके ग्रहण करनी.

तथा व्रतकथाकोषमें ऐसे लिखा है. ॥

तत्प्रश्नाच्छ्रेष्ठिपुत्रीति प्राह भद्रे शृणु ब्रुवे ॥
व्रतं ते दुर्लभं येनेहामुत्र प्राप्यते सुखम् ॥ १ ॥
शुक्लश्रावणमासस्य सप्तमीदिवसेर्हताम् ॥
स्नापनं पूजनं कृत्वा भक्त्याष्टविधमूर्ज्जितम् ॥ २ ॥
ध्रीयते मुकुटं मूर्ध्नि रचितं कुसुमोत्करैः ॥
कंठे श्रीवृषभेशस्य पुष्पमाला च ध्रीयते ॥ ३ ॥

भावार्थः—तिसके प्रश्नसें आर्यिकाजी कहती भई, हे भद्रे श्रेष्ठिपुत्रि! सुण, मैं तुजको व्रत कहती हूं; जिस व्रतके प्रभावसें इसलोकमें, और परलोकमें दुर्लभ सुख प्राप्त करिये हैं;। सोही व्रत दिखावे हैं. शुक्लश्रावणमासकी सप्तमीके दिन अर्हन् भगवान्की मूर्त्तियोंको भक्तिसें स्नान करायके, अष्टद्रव्यकरके जिनेंद्रका पूजन करके, कुसुमोंके (पुष्पोंके) समूहसें रचे

हुए मुकुटको जिनेंद्रके मस्तक ऊपर धारण करिये, और श्रीऋषभदेवके कंठमें पुष्पमाला धारण करिये इत्यादि ॥

तथा श्रीपाल चरित्रमें ऐसें लिखा है ॥

तत्र नंदीश्वराष्टम्यां सिद्धचक्रस्य पूजनम् ॥
चक्रे सा विधिना दिव्यैर्जलै कर्पूरचंदनै ॥ १ ॥
अक्षतैश्चंपकाद्यैश्च पक्वान्नैर्वरदीपकै ॥
धूपै सुगंधिभिर्भक्त्या नालिकेरादिसत्फलै ॥ २ ॥
तद्विलेपनगंधांबुपुष्पाणि सा ददौ मुदा ॥
श्रीपालायागरक्षेभ्यः पाणिभ्यां रुग्विहानये ॥ ३ ॥

भावार्थ—तब मदनसुंदरी, अष्टान्हिकाविषे सिद्धचक्रका विधिसें, दिव्य जल, कर्पूर, चंदन, अक्षत, चंपकादि पुष्प, पक्वान्न, दीपक, सुगंधिधूप, और नालिकेरादि सुंदर फल, इत्यादि विविध द्रव्योंकरके पूजन करती भई, और तिस पूजनके विलेपन गंधोदक पुष्पोंको (अर्थात् नैर्माल्यको) श्रीपालकेतांइ, तथा अगरक्षकोंकेतांइ रोगहानिके वास्ते, अर्थात् रोगके दूर करनेवास्ते अपने हाथोंसें देती भई ॥

तथा भय्या भगवतीदासकृत ब्रह्मविलासमें ऐसा कवित्त कहा है ॥

जगतके जीव तिन्है, जीतिकै गुमानी भयो ।
गो कामदेव एक, जोधा यो कहायो है ॥
ग जानी यत, फूलनीके वृंद बहु ।
कुंद, केवरा सुहायो है ॥
मालन। ... वेलकी अनेक जाती ।
चंपक गुलाब ... निन, चरनन चढायो है ॥
तेरीही सरन जिन, जोर न वसाय याको ।
सुमनसु पूजो तोही, मोहि ऐसो भायो है ॥ १ ॥

तथा योगींद्रदेवकृत श्रावकाचारमें ऐसें लिखा है ॥

"॥ दीवंदइ दिणइ जिणवरहं मोहहं होइ णट्ठाइ ॥"

भावार्थः—जो श्रीजिनेंद्रकी दीपकसें पूजा करता है, तिसका मोह अर्थात् अज्ञान नष्ट होता है. ॥

तथा जिनसंहिताविषे ऐसा लिखा है. ॥

ॐकैवल्यावबोधार्को द्योतयत्यखिलं जगत् ॥
यस्य तत्पादपीठाग्रे दीपान् प्रद्योतयाम्यहम् ॥ १ ॥

भावार्थः—जिसका केवलज्ञानरूपी सूर्य संपूर्ण जगत्को प्रकाश करता है, तिस जिनेंद्रके पादपीठके आगे मैं दीपकोंको प्रकाशता हूं. ॥

तथा भय्या भगवतीदासकृत ब्रह्मविलासमें ऐसें लिखा है. ॥

दीपक अनाये चहुं गतिमें न आवे कहुं ।
वर्त्तिके बनाये कर्मवर्त्ति न बनतु हैं ॥
आरती उतारतही आरत सब टर जाय ।
पाय ढिंग धरै पापपंकति हरतु हैं ॥
* * * * * * * * *
वीतराग देवजुकी कीजे दीपकसों चित्त लाय ।
दीपत प्रताप शिवगामी यों भनतु हैं ॥ १ ॥

तथा श्रीउमास्वामिविरचितश्रावकाचारमें ऐसें लिखा है. ॥

मध्याह्ने कुसुमैः पूजा संध्यायां दीपधूपयुक् ॥
वामांगे धूपदाहश्च दीपं कुर्याच्च सन्मुखम् ॥ १ ॥
अर्हतो दक्षिणे भागे दीपस्य च निवेशनम् ॥

भावार्थः—मध्यान्हमें कुसुम (फूलों) सें पूजा करनी, संध्यामें दीपधूपसंयुक्त पूजा करनी, भगवानके वामपासे धूपदाह करना, और सन्मुख दीपक करना, और अर्हन्के दक्षिण पासे दीपकको स्थापन करना. ॥

तथा वणारसीदासजीने कहा है. ॥

॥ दोहा. ॥ पावक दहे सुगंधकूं, धूप कहावत सोय ॥
खेवत धूप जिनेशकुं, अष्टकर्म क्षय होय ॥ १ ॥

तथा षड्विधपूजाप्रकरणमें ऐसें लिखा है ॥

एव काऊण रओ खुहियसमुद्दोव गज्जमाणेहिं ॥
वरभेरीकरडकाहलजयघटासखणिवहेहिं ॥ १ ॥
गुलगुलति तिविलेहिं कसतालेहिं झमझमंतेहिं ॥
धुमतफडहमद्दलहुडकमुखेहिं विविहेहिं ॥ २ ॥
चिठेज्ज जिणगुणारोवण कुणतो जिणदपडिबिंबे ॥
इठविलग्गसुदएइ चदणतिलय तओ दिज्जइ ॥ १ ॥
सव्वावयवेसु पुणो मत्तण्णास कुणिज पडिमाए ॥
विविहच्चण च कुज्जा कुसुमेहिं बहुप्पयारेहिं ॥ २ ॥
वलिवत्तिएहिं जुवारेहिय सिद्धत्थपण्णरुक्खेहिं ॥
पुव्वुत्तवयरणेहि य रइज्ज पूय सविहवेण ॥ १ ॥
गहिऊण सिसिरकरकिरणणियरधवलरयणभिंगारं ॥
मोत्तिपवालमरगयसुवण्णमणिखचियवरकठ ॥ १ ॥
सुयवुत्तकुसुमकुवलयरजपिंजरसुरहिविमलजलभरिय ॥
जिणचलणकमलपुरओ खेविज्जउ तिण्णधाराओ ॥ २ ॥
कप्पूरकुंकुमायरुतरुक्कमिस्सेण चदणरसेण ॥
बहलपरिमलामोयवासियासासमूहेण ॥ ३ ॥
वास[illegible]गमपत्तामयमत्तालिरावमुहलेण ॥
सुरमउट[illegible]चलण भत्तिए समलहिज्ज जिण ॥ ४ ॥
सासिकंतखडविमलेहि विमलजलोहिं सित्तअइसुअधेहिं ॥
जिणपडिमपइडिए जिय विसुद्धपुण्णकुरेहिं च ॥ ५ ॥
वरकलमसालितदुलचाणिहसुछंडियदीहसयलेहिं ॥
मणुयसुरासुरमहिय पूजिज्ज जिणिंदपयजुयल ॥ ६ ॥

मालियकयंबकणयारियंपयासोयबउलातिलएहिं ॥
मंदारणायचंपयपउमुप्पलसिंदुवारेहिं ॥ ७ ॥
कणवीरमल्लियाइं कचणारम्मयकुंदकिंकराएहिं ॥
सुरवणजजुहियापारिजासवणढगरेहिं ॥ ८ ॥
सोवण्णरूवमेहि य मुत्तादामेहि बहुवियप्पेहिं ॥
जिणपयसंकयजुयलं पूजिज्ज सुरिंदसयमहियं ॥ ९ ॥
दहिदुद्धसप्पिमिस्सेहि कमलमत्तएहिं बहुप्पयारेहिं ॥
तेवट्ठिवंजणेहि य बहुविहपक्कणभेएहिं ॥ १० ॥
रूप्पसुवण्णकंसाइथालणिहिएहिं विविहभरिएहिं ॥
पूयं वित्थारिज्जा भत्तिए जिणंदपयपुरओ ॥ ११ ॥
दीवेहि णियपहोहामियक्कतेएहिं धूमरहिएहि ॥
मंदमंदाणिलवसेण णच्चंतहिं अच्चणं कुज्जा ॥ १२ ॥
घणपडलकम्मणिचयव्व दूरमवसारियंधयारेहिं ॥
जिणचलणकमलपुरओ कुणिज्ज रयणं सुभत्तिए ॥ १३ ॥
कालायरुणहचंदणकप्पूरसिल्हारसाइदव्वेहि ॥
णिप्पण्णधूमवत्तिहि परिमलापंतियालीहिं ॥ १४ ॥
उग्गसिहादेसिएहि सग्गमोक्खमग्गहि बहुलधूमेहि ॥
धुविज्ज जिणिंदपायारविंदजुयलं सुरिंदणुयं ॥ १५ ॥
जंबीरमोयदाडिमकवित्थपणसूयनालिएरेहिं ॥
हिंतालतालखज्जुराबिंबणारंगचारेहिं ॥ १६ ॥
पुइफलतिंदुआमलयजंबूबिल्लाइसुरहिमिट्ठेहिं ॥
जिणपयपुरओ रयणं फलेहि कुज्जा सुपक्केहिं ॥ १७ ॥
अट्ठविहमंगलाणि य बहुविहपूजोवयरणदव्वाणि ॥
धूवदहणाइ तहा जिणपूयत्थं वितीरिज्जइ ॥ १८ ॥

भावार्थ—ऐसें पूर्वोक्त प्रकार शब्द हुआ समुद्र तिसका जो गरजारव तिसकी करड २, काहल ३, जयघंटा ४, शंख ५, इन करी गुलगुल अर्थात् अव्यक्तशब्द होय है; ताल, मजीरे, आदि वाजित्रोंके झमझम शब्द होय मृदंग २, आदि वाजित्रके शब्दोंकरी एकधून मची नाटक करनेका विधि है

तथा—जिनेंद्रके गुणोंका आरोपण, जिनप्रतिमासें बैठे, और इष्टलग्नोदयके हुए, जिनप्रतिमाके तिलक देके सर्व अवयवोंमें मन्त्रन्यास करें, पीछे बहुप्रकारके प्रकारकी पूजा करें

तथा—वारनाकरी, तथा जवारेके हरित अंकुरोंकरी, तथा और वृक्षोंकरी, तथा पूर्वोक्त उपकरणोंकरी, अपने प्रतिमाका पूजन करें ॥

अथ पूजाविधिरुच्यते—अब आगे पूजाका विधि चंद्रमाके किरणसमान उज्वल रत्नोंसें जडी हुई करी, जिनप्रतिमाके चरणकमलके आगे तीन धारा (जिनप्रतिमाको न्हवण करानेका विधि प्रथमकी चत्तागिदिणा—इत्यादि) कैसी है झारी ? मोती, प्रवाल, (मूंगीये) कत, स्वर्ण मणि, इनोंकरके खचित—जडा हुआ है कंठ, मणिमोतीसुवर्ण आदिकोंसें जडी हुई प्रनालिका—नाल है जिसकी, तथा सूत्रोक्त पुष्प और कमलादिकोंकी रजकरी सुगंधित, ऐसा निर्मल जल भरा है जिसमें ॥ इतिजलपूजा—

कर्पूर, केसर, अगर, मलयागिरमिश्रित चंदनरसकरके [illegible] सुगंधकरके वासित करा है दिशासमूह जिसने, तथा [illegible] अनुमार्गकरके प्राप्त हुए, भ्रमरोंकी जो मधोन्मत्त [illegible] वाचालकृत अर्थात् जिस गंधके प्रचुर सुगंधसें चारों

तथा अव्यक्त ध्वन्युच्चार कर रहे हैं. ऐसी सुंदर सुगंधसें देवताके मुकुटकरके घटित स्पर्शित चरणकमल है जिसके, ऐसें श्रीजिनेश्वरदेवको विलेपन करें. ॥ इतिगंधपूजा—॥

चंद्रमाकी चांदनीसमान अतिउज्वल अखंडित निर्मल अतिसुगंधित, तथा निर्मल जलकरके धोए हुए, ऐसें अक्षत (चावलों) करके जिन-प्रतिमाके प्रतिष्ठित हुए पूजन करना; कैसें पूर्वोक्त चावल? मानुं पुण्यके अंकुर है; । अति मिष्ट कलमशाली और तंदुलके समूहको स्वच्छ करके तिन चावलोंकरके, मनुष्य सुरासुरकरके पूजित ऐसें श्रीजिनेंद्रके पदयुगलकों पूजें. ॥ इत्यक्षतपूजा—॥

मालती, कदंब, सूर्यमुखी, अशोक, बकुल, (बोलसिरी) तिलकवृक्षके पुष्प, मंदारनामा पुष्प, नागचंपेके पुष्प, उत्पल—कमल, निर्गुंडीके, कण-वीर (कंडीर) के, मल्लिकानामा, कचनारके, मचकुंदके, किंकर, कल्पवृ-क्षके, जूईके, पारिजातिकके, जासूसके पुष्प, डमरेके पत्र, सोनेके पुष्प, चांदीके पुष्प, इत्यादि अनेक प्रकारके पुष्पोंकरके, तथा मोतीकी माला आदि अनेक प्रकारकी मालायोंकरी, देवेंद्रादिकोंकरके पूजित ऐसे श्रीजिनेंद्रके चरणयुगलोंका पुजन करे. ॥ इतिपुष्पपूजा—॥

दहिदुग्धघृतकरी मिश्रित मिष्टतंदुलका भात करी, तथा नानाप्रकारके शाक आदि व्यंजन (तीमन) करी, तथा नानाप्रकारके पक्वान्नकरी सोना चांदी कांसी आदिके थालोंमें मोदकादि अनेकप्रकारके भक्ष्यको स्थापन करी, श्रीजिनवरके चरणकमलके आगे भक्तिसें पूजाका विस्तार करें. ॥ इतिनैवेद्यपूजा—॥

तथा भगवान्के चरणकमलके आगे भक्तिसें दीपककी रचना करें. कैसें दीपककी ? अपनी प्रभाके समूहकरके सूर्यके सदृश प्रताप धारण करा है जिनोंने, तथा धूमकरके रहित शिखा है जिनकी, तथा मंदमंद पवनके वशसें नृत्यकेसमान नृत्य करते संते, तथा अतिसघनकर्मके पटलके समूहके समान जो अंधकार तिसको अपने प्रकाशके अतिशय-

करके दूर करते सते, ऐसें दीपकोंकी रचना, भक्तिसें प्रभुके चरणकमलके आगे करनी ॥ इति दीपकपूजा-॥

कालागुरु (अगर), अवर, चदन, कर्पूर, सिल्हारसादि सुगंध द्रव्योंकरके उपनी जो वर्त्तिया, तिनोंकरके सुरेंद्रकरके स्तवे हुए श्रीजिनेंद्रके चरणकमलको धूपित करे कैसी वर्त्तिया? सुगधकी पंक्ति, और धूमकी उग्र शिखा, तिनोंकरके दिखाया है स्वर्ग और मोक्षका मार्ग जिनोंने ॥ इति धूपपूजा- ॥

जबीरफल, कदलीफल (केला), दाडिम (अनार), कपित्थ (कैठ), पनस, तूत, नालिएर, हिंताल, ताल, खर्जूर, किंदूरी (गोलफल), नारगी, सुपारी, तिंदुक, आमला, जाबू, विल्व, इत्यादि अनेक प्रकारके आगे सुगधित, और मिष्ट पक्क हुए फलोंकरके जिनेंद्रके चरणकमलके आगे रचना करनी ॥ इति फलपूजा- ॥

अष्टविध मगल द्रव्य झारी १, कलश २, चामर ३, छत्र ४, ध्वजा ५ तालवींजना ६, स्वस्तिक ७, दर्पण ८, तथा बहुविध पूजाके उपकरण, तथा धूपदहन आदि, भगवानकी पूजाके अर्थे विस्तारना ॥ इति पूजाविधानम्-॥

इत्यादि अनेक शास्त्रोंमें, तथा और भी मुक्तावलिपूजा, नरेंद्रसेनभट्टारककृत प्रतिष्ठापाठ, प्रभाकरसेनकृत प्रतिष्ठापाठ, आशाधरकृत प्रतिष्ठापाठ, [illegible]देवकृत श्रावकाचार, भगवदेकसधिष्टतजिनसहितादि शास्त्रोंमें [illegible] पूजाविधान कथन करा है ॥ तथा भगवज्जिनसेनाचार्यकृत [illegible] [illegible] कि, उत्तमकुलके मनुष्यको जैसें गुरुजनकी माला, अपने शिरपर [illegible] योग्य है, तेसेंही जिनपदस्पर्शितपुष्पकी माला, अपने शिरऊपरि धारन [illegible] । तथा श्रीअजितनाथ तीर्थंकरकी माता जयसेनाने बाल्यावस्थामे अष्टाह्निकमहात्म्य करके, अर्हन्के शरीरको विलेपन करा, पुष्पमाला चढाई पीछे जिनप्रतिमाके चरणको स्पर्शी हुई तिस मालाको लेके अपने पिताको देई, पिताने भी खुशीसें लेके पुत्रीको पारणा करनेको विदाय करी इत्यादि कथन श्रीअजितनाथ पुराणमें है तथा सुलोचनाने ऐसेंही गधोदक, और पुष्पमाला, अपने पिता अकंपनामा राजाको दीनी

जो कथन श्रीआदिपुराणमें है. तथा पद्मनंदिआचार्यने, पद्मनंदिपच्चीसीमें दीपकोंकी श्रेणिकरके प्रभुको आरती करनी कही है. । तथा जिनसंहितामें, कार्त्तिकमासमें कृत्तिकानक्षत्रके संध्यासमयमें श्रीजिनमंदिरमें कार्त्तिकोत्सव करनेका विधि लिखा है; जिसमें लिखा है कि, यथोक्त विधिकरके नानाप्रकारके नैवेद्य जिनाग्रे धारण करने, और पूजास्थानादि कितनेक स्थानोंमें घृत पूरित कर्पूरकी वत्ती आदिके दीपक करने, और मंडप, दरवाजा, परिवारगृह, प्राकारतट, तोरणादि ऊर्ध्व अधःस्थानोंमें तैलादि पूरित दीपक करने, इत्यादि. । तथा षट्कर्मोपदेशरत्नमालामें, कर्पूरघृतादिकसें त्रिकाल दीपकपूजन लिखा है. इत्यादि अनेक शास्त्रोंमें पूजासंबंधि वर्णन है. इन सर्व लेखोंसें मालुम होता है कि, भगवान्की प्रतिमाको अंगीयांकी रचना नहीं करनी, यह केवल दिगंवर भाइयोंका हठही है; क्योंकि, चांदीकी, सुवर्णकी, मोतीकी, इत्यादि माला, और पुष्पका मुकुट, तथा सर्व शरीरकों विलेपन, इत्यादि करने तो ऊपर हम दिगंवरीय शास्त्रानुसारही लिख आए हैं. तो, श्वेतांवरकी अंगरचना, आभूषण पूजादिकोपरि क्यों संदेह करना चाहिये ? क्योंकि, जिसवास्ते श्वेतांबर पूर्वोक्त कार्य करते हैं, तिसहीवास्ते दिगंबरी भी करते हैं; सोही दिगंबरीय पुस्तकका पाठ थोडासा लिखते हैं. । तथाहि । “ बहुरि सोनारूपाके पुष्प, तथा मोतीनिकी मालाका चढावना कह्या हैं, सो जिनमंदिरमैं बहुद्रव्योपार्जनकै अर्थ, बहुरि अतिशोभाकै अर्थ, तथा प्रभावनाकी वृद्धिकै अर्थ, तथा उत्कर्षभावकी वृद्धिकै अर्थ, तथा बहुधनत्यागनेकै अर्थ, कृपणाई हरिवैकै अर्थ, तथा अतिउपमाकै अर्थ, इत्यादि. ॥ ” परंतु मालाको चरणोपरि चढावनी, और गलेमें नहीं पहिरावनी, यह भी मनःकल्पित वृत्ति है. क्योंकि, माला गलेमेंही पहरी जाती है, सो आबालगोपालांगनामें प्रसिद्ध है. यदि गलेमें पहिरावनेसें आभरण हो जावे हैं, इसवास्ते नहीं पहिरावनी चाहिए, ऐसें कहो तो, मुकुट भी तो आभरणही है, और मुकुटको मस्तकोपरि स्थापन करना दिगंबरीय शास्त्रमेंही लिखा है; जो पाठ पूर्व लिख आए हैं.

दिगंबरी—यह पूर्वोक्त पूजा विषयिक आपका भ्रम, प्राय व्यर्थ है. क्योंकि, हमारेही शास्त्रोंके पाठ हैं, और इन सर्वपाठोंको हम मानते है. और इन सर्वपाठानुसार हम करते भी हैं

श्वेतांबरी—यह आपका कथन सत्य है, परतु हमारे पूर्वोक्त लेखमें कितनाक भ्रम, बीसपथी दिगबरी आदि सर्व दिगबराम्नायके वास्तेही है जिसमें भी, पूजाविषयक भ्रम तो, प्राय तेरापथी दिगबरीयोंकेवास्ते है

तेरापंथी दिगंबरी—पुष्पादिकसें पूजन करनाहि पाप है क्योंकि, इसमें बडी हिंसा होती है और धर्म तो, अहिंसामय है अभिषेकमें और पुष्पादिके चढावनेमें बहुत सावद्यारंभ होता है, इसवास्ते हम पूर्वोक्त विधान नही करते हैं

उत्तर—वाहजी वाह ! ! आपको भी ढुढकमतका स्पर्श हुआ मालुम होता है क्योंकि, ऐसी जैनागमविरुद्ध श्रद्धा तो, अपठित ढुढकमतावलबीयोंकी है, परतु दिगंबराम्नायकी तो ऐसी श्रद्धा नही है बलकि, दिगबराम्नायके श्रीयोगींद्रदेवकृत श्रावकाचारमें, तथा सारसंग्रहमें, तथा आराधनाकथाकोशादि शास्त्रोंमें लिखा है कि, श्रीजिनाभिषेकमें, पुष्पादिकसें जिनपूजा करनेमें, और तीर्थयात्रा, जिनबिंब, प्रतिष्ठा आदि कार्योंमें, जो आरभ कहता है, और सावद्ययोग कहता है, तथा हिंसा [illegible] कथन करता है, सो मिथ्यादृष्टि है, दर्शनभ्रष्ट है, पापी है, सम्यग् [illegible] घातक है, और श्रीजिनधर्मका द्रोही है

[illegible]

आर[illegible] [illegible]णण्हावियए जो सावज भणति दसण तेण ॥
जिमइम[illegible] [illegible]ऊण काइओभति ॥ १ ॥
जिनाभिषेके जिनरप्रतिष्ठाजिनालये जैनसुयात्रयायां ॥
सावद्यलेशो वदते स पापी स निंदको दर्शनघातकश्च ॥ १ ॥
श्रीमज्जिनेंद्रचद्राणां पूजा पापप्रणाशिनी ॥
स्वर्गमोक्षप्रदा प्रोक्ता प्रत्यक्ष परमागमे ॥ १ ॥

यः करोति सुधीर्भक्त्या पवित्रो धर्महेतवे ॥
स एकदर्शने शुद्धो महाभव्यो न संशयः ॥ २ ॥
यस्तस्या निंदकः पापी स निंद्यो जगति ध्रुवम् ॥
दुःखदारिद्र्यरोगादिदुर्गतिभाजनं भवेत् ॥ ३ ॥ इत्यादि.

भावार्थ ऊपरही कह दिया है. ॥ इसवास्ते शास्त्रोक्त श्रद्धान करके कर्त्तव्यता युक्त है. क्योंकि, पुष्पादिकोंकरके जिनोंने श्रीजिनराजका पूजन करा है, तिनोंने तिसका फल स्वर्गलोकादि यावत् क्रमसें मोक्ष पाया है; तिसका कथायुक्त पुण्याश्रव, तथा व्रतकथाकोश, तथा आराधनाकथाकोश, तथा षट्कर्मोपदेशरत्नमालादि अनेक दिगंबरीय शास्त्रोंमें विस्तारसें वर्णन करा है. परंतु, किसी भी जैनमतके शास्त्रमें, ऐसा नही लिखा है कि, फलाने पुरुषने, वा अमुक स्त्रीने पुष्पादिकोंसें श्रीजिनराजकी पूजा करी, और तिस पूजाके प्रभावसें नरक प्राप्त करी!!! और श्वेतांबरमतके श्रीराजप्रश्नीय (रायपसेणी) सूत्रमें तो, पूजाके पांच फल लिखे हैंः—

तथाहि ॥

"॥हियाए सुहाए खमाए निसेयसाए अणुगामित्ताए भविस्सइ॥"

भावार्थः—श्री जिनप्रातिमा पूजनेका फल पूजनेवालोंको हितकेवास्ते, सुखकेवास्ते, योग्यताके वास्ते, मोक्षके वास्ते, और जन्मांतरमें भी साथही आनेवाला है. ॥ इसवास्ते हठकदाग्रहको छोडके, शास्त्रोक्तही श्रद्धान करना योग्य है. यदि पूर्वोक्त फूल आदि द्रव्योंमें हिंसा मानके पूजन करना छोड देवोगे, तब तो, जिनप्रतिमा, जिनमंदिर, और गुलालवाडा, आदिका बनावना भी तुमकों छोड देना पडेगा, पूर्वोक्त कार्योंसें अधिकतर (तुमारी श्रद्धामुजिब) सावद्यारंभ होनेसें. तथा प्रतिष्ठा भी, नही करनी चाहियेगी, सावद्यारंभ होनेसें. वाहजी वाह!! दिगंबर नाम धरायके भी, दिगंबराचार्यकाही कथन यथार्थ नही मानते हो, तो औरोंके कथनका तो क्याहि कहना है?

और जिनप्रतिमा, जिनमंदिरके घनवानेका फल दिगंबराचार्योंने ऐसें कहा है

तथाहि पूजाप्रकरणे ॥

कुंथुभरिदलमेत्ते जिणभवणे जो ठवेइ जिणपडिम ॥
सरिसवमेत्तपि लहइ सो णरो तित्थयरपुण्ण ॥ १ ॥
जो पुण जिणिंदभवण समुण्णय परिहितोरणसमग्ग ॥
णिम्मावइ तस्स फल को सक्कइ वण्णिउ सयल ॥ २ ॥

भावार्थ—कुथुमरि (कुटुंबर) वृक्षके पत्रप्रमाण जिनभवनमें सरसव मात्र जिनप्रतिमाको जो स्थापन करे, सो भव्यप्राणी तीर्थंकर पुण्यप्रकृतिकों प्राप्त करे हैं । और जो प्राणी भावोंसहित बडा ऊंचा शिखरबंध प्रदक्षिणा तोरणसहित जिनभवन बनवावे है, तिसके संपूर्ण फलका वर्णन करनेको कौन समर्थ है ? अपितु कोइ नही ॥ तथा पूजाके फलका भी वर्णन पृथक्२ दिगंबराचार्योंने कहा है

तथाहि षड्विधपूजाप्रकरणे ॥

जलधाराणिक्खवणे पावमल सोहण हवे णियमा ॥
चंदणलेवेण णरो जायइ सोहग्गसपण्णो ॥ १ ॥
जायइ अक्खयणिहिरयणसामिओ अक्खएहि अक्खोहो ॥
अक्खीणलद्धिजुत्तो अक्खयसोक्ख च पावेइ ॥ २ ॥
कुसुमेहिं कुसेसयवयणतरुणिजणणयणकुसुमवरमाला ॥
वलयेण [illegible] जायइ कुसुमाउहो चेव ॥ ३ ॥
जायइ णिविज्जदाणेण सत्तिगो कंतितेयसंपण्णो ॥
लावण्णजलहिवेलातरंगसपावियसरीरो ॥ ४ ॥
दीवेहिं दीवियासेसजीवदव्वाइ तच्च सब्भावो ॥
सब्भावजणियकेवलपदीवतेएण होइ णरो ॥ ५ ॥

भी नही करनेसें आज्ञाका भंग होता है; इसवास्ते गंगाजलादि पूर्वोक्त द्रव्यविना और सामान्य जल, शालिके तंदुल आदि नही चढावने चाहिये.

उत्तरः—हे भ्रातः! शास्त्रोंमें तो सर्वही प्रकारकी वस्तु कही हैं, जो प्रथम लिखही आए हैं; इसवास्ते जिसको जैसी मिले, तैसी पवित्र सार वस्तुसें पूजादि करनी; और श्रद्धान सर्वहीका करना. क्योंकि, श्रीउमास्वामीने श्रद्धानवान्कोही उत्कृष्ट फल लिखा है.

तदुक्तम्॥

जं सक्कइ तं कीरइ जं च ण सक्कई तं च सद्दहई॥
सद्दहमाणो जीवो पावइ अजरामरं ठाणं॥ १॥

भावार्थः—जो करशकीए तिसको करना, और जो न करशकीए तिसका श्रद्धान करना. क्योंकि, श्रद्धावान् जीव, अजरामरस्थानको प्राप्त करता है.। इसवास्ते शास्त्रोक्त आचरणही यथार्थ है, अन्य नही.।

तेरापंथी दिगंबरीः—तुमने प्रथम जो जो लेख लिखे हैं, वे सर्व प्रतिष्ठादिनकेवास्ते हैं. अन्य दिनोंकेवास्ते नही.

उत्तरः—यह तुमारा कथन ठीक नही है. क्योंकि, पूर्वोक्त पाठ प्रतिष्ठादिनाश्रित नही है; किंतु, कोइ मुकुटसप्तमी, कोइ मुक्तावलीतपोद्यापन, कोइ नवपदमाहिमा, कोइ नंदीश्वरपूजा इत्यादि आश्रित है. तथा षड्विधपूजाप्रकरणमें चार प्रकार पूजाका वर्णन करा है; तिसमें क्षेत्रपूजा, और कालपूजाका वर्णन करा है;

तथाहि॥

जिणजम्मण णिक्खवणं णाणुपत्ती य मोक्खसंपत्ती॥
णिसिहिसु खेत्तपूजा पुव्वविहाणेण कायव्वा॥ १॥
गब्भावयारजम्माहिसेयणिक्खवणणाणणिव्वाणं॥
जम्हि दिणे संजाइयं जिणण्हवणं तद्दिणे कुज्जा॥ २॥
इक्खुरससप्पिदहिखीरगंधजलपुण्णविविहकलसेहिं॥
णिसिजागरं च संगीयणाडयाइहिं कायवं॥ ३॥

केवलज्ञानरूप दीपकके तेजसें जीवाजीवादितत्त्वोंका प्रकाश होता है, अर्थात् वो प्राणी, भावांधकार अज्ञानको दूर करके स्वात्मप्रकाश केवलज्ञानको प्राप्त करता है, जिसके प्रभावसें सर्व तीनलोकके चराचर पदार्थोंको आपही देखता है । प्रभुके आगे धूपको प्रज्वलीत करके जो प्राणी धूपपूजा करता है, सो प्राणी धूपपूजाके प्रभावसें चंद्रमासमान अति उज्ज्वल कीर्त्तिकरके धवलित करा है जगत्रय जिसने, ऐसा पुरुष होता है, और फलपूजाके प्रभावसें प्राणी मोक्षके सुखफलको प्राप्त होता है । जो प्राणी प्रभुके मंदिरमें घट देता है, सो प्राणी तिसके फलसें घंटोंके शब्दोंकरके व्याप्त ऐसें प्रधान देवविमानोंमें सुंदर अप्सरायोंके वृंदोंमें देवतायोंके समूहसहित क्रीडा करता है । छत्रदानकरके अर्थात् भगवान्के ऊपरि छत्र चढावनेसें प्राणी शत्रुरहित एकछत्र पृथ्वीका राज्य प्राप्त करता है, और जो भगवान्को चामर करता है, तिसके प्रभावसें उस प्राणिको राजाआदि चामर करते हैं यहां चामर चमरीगायके केशोंका जाणना, अन्य नही क्योंकि, भगवज्जिनसेनाचार्यने श्रीआदिपुराणमें चमरीगायके केशोंकेही चामर लिखे हैं

"॥स्वकीर्त्तिनिर्मलैर्वीज्यमान चमरिजन्मभि ॥" इतिवचनात्॥

तथा श्रीजिनेंद्रको जलादिपंचामृतकरके अभिषेक करनेके फलसें ...गा मेरुपर्वतके ऊपरि देवता, और इंद्रादिकोंकरके भक्तिपूर्वक क्षीरसा...रकरके करे हुए अभिषेकको प्राप्त करता है । भगवान्के मंदिर ...नयपताका (ध्वजा) चढावनेसें प्राणी संग्रामादिकोंके विषे विजय... ...ता है, षट्खंडस्वामी–चक्रवर्त्ती होता है, निःप्रतिपक्ष (शत्रुरहित) ...ता है और यशस्वी होता है । बहुता क्या कहना ? तीनों लोकोंमें जो जो सुख है, सो सर्व पूजाके फलसें प्राप्त होता है, इसमें संदेह नही है ॥ इतिपूजाफलम्– ॥

तेरापंथी दिगंबरी —तुमने कहा सो तो सत्य है, परंतु शास्त्रोंमें जलपूजाविषे तो गंगाजल, अक्षतपूजामें मोतीके अक्षत, पुष्पपूजामें कल्पवृक्षके पुष्प, और दीपकपूजामें रत्नके दीपकादि लिखा है, सो यह

भाषार्थः–पिच्छादिकोंकरके धर्मोपकरणोंको प्रतिलेखके अंगीकार करने, और रखने, सो सम्यग् आदानसमिति है.। यहां पीछी आदि लिखा है, सो आदिशब्दसें क्या क्या ग्रहण करना? और प्रतिलेखके ग्रहण करने, रखने वे धर्मोपकरण, कौनकौनसें हैं?

तथा पूर्वोक्त तत्त्वार्थसूत्रावचूरिमेंही ॥

"॥ संयम[1]श्रुत[2]प्रतिसेवना[3]तीर्थ[4]लिंग[5]लेश्यो[6]पपाद[7]प्रस्थान[8]विकल्पतः साध्याः ॥"

इस सूत्रके अधिकारमें लिखा है.। तथाहि ॥

"॥ लिंगं द्विभेदं द्रव्यभावलिंगभेदात् तत्र भावलिंगिनः पंचप्रकारा अपि निर्ग्रंथा भवंति द्रव्यलिंगिनः असमर्था महर्षयः शीतकालादौ कंबलादिकं गृहीत्वा न प्रक्षालयंते न सीव्यंति न प्रयत्नादिकं कुर्वंति अपरकाले परिहरंतीति भगवत्याराधना प्रोक्ताभिप्रायेणोपकरणकुशीलापेक्षया वक्तव्यम् ॥"

भाषार्थः–लिंग दो प्रकारके हैं, द्रव्यलिंग और भावलिंग; तिनमें भावलिंगी पांचप्रकारके निर्ग्रंथ होते हैं, और द्रव्यलिंगी असमर्थ महाऋषि हैं. जे शीतकालादिमें कंबलादिको ग्रहण करके धोवे नही हैं, सीवते नही हैं, प्रयत्नादि करते नही हैं, और शीतकालके दूर हुए त्याग करते हैं; इति। यह कथन, भगवत्याराधनामें कथन करे हुए अभिप्रायकरके उपकरण कुशीलकी अपेक्षा जाणना.॥

तथा प्रवचनसारवृत्तिमें उपधिका भेद कहा है.। यतः॥

छेदो जेण ण विज्जदि गहणविसग्गेसु सेवमाणस्स ॥
समणो तेणिह वट्टदि दुक्कालं खेत्तं वियाणित्ता॥

भाषार्थः–जिसके करनेसें न होवे छेद, लेने और छोडनेमें, इस रीतिसें उपधि आहार निहार कारणे सेवना करतेको, तिस्सें तिसमें श्रमणपणा वर्त्ते हैं, दुषमकालको, और क्षेत्रको जानके.॥

णदीसरअट्ठदिवसेसु तहा अण्णेसु उचियपव्वेसु ॥
जं कीरइ जिणमहिमा वण्णेया कालपूजा सा ॥ ४ ॥

भावार्थ —तीर्थंकरोंकी जन्मभूमिकाकी, तीर्थंकरोंकी तपभूमिकाकी, केवलज्ञानप्राप्तिकी भूमिकाकी, और निर्वाणकल्याणकी भूमिकाकी, पूर्वोक्त विधान करके जो पूजा करनी, सो क्षेत्रपूजा है भावार्थ यह है कि, अयोध्यापुरी आदि चतुर्विंशति तीर्थंकरोंकी जन्मपुरी, तपोवन अर्थात् दीक्षाभूमी, ज्ञानोत्पत्तिक्षेत्र, तथा अष्टापद, सम्मेत शिखर, गिरनार, चंपापुरी, पावापुरी, आदि निर्वाणक्षेत्र, इन स्थानोंमें जायके जलादिद्रव्योंसें पूर्वोक्त विधिकरके तत्रस्थ चैत्यालयस्थ जिनप्रतिमाकी, वा जिनचरणयुगलकी पूजा करनी, सो क्षेत्रपूजा है ॥ तीर्थंकरके गर्भावतारका दिन, जन्माभिषेकका दिन, दीक्षाका दिन, ज्ञानका दिन, और निर्वाणका दिन, अर्थात् जिनेंद्रके पांचकल्याणक, पूर्वे जिन दिनोंमें हुए, तिन दिनोंमें पूर्वोक्त विधिसें पूजा करनी, और विशेषत इक्षुरस, घृत, दहि, दुग्ध, और सुगंध जलके भरे हुए पवित्र विविध प्रकारके कलशोंकरके जिन मूर्त्तिको अभिषेक करना, तथा रात्रिकेविषे संगीत, नाटक, जिनगुण गायनादिकोंकरके रात्रिजागरण करना, तथा नंदीश्वरादि अष्टदिनोंमें और अन्य भी षोडश कारण, दश लाक्षण, पुष्पांजलिसुगंध दशमी, [illegible] रत्नत्रय आदि धर्मोचित पर्वके दिनोंमें श्रीजिनमंदिरमें जिनपूजा [illegible] कार्य करने, सो कालपूजा जाणनी ॥ इत्यलमतिप्रपंचेन ॥

[illegible] पीछी कमंडलूविना अन्य कुछ भी रखना न चाहिये

उत्त[illegible] कथन अयोग्य, और स्वशास्त्रानभिज्ञताका सूचक है क्योंकि, ब्रह्मचा[illegible] तत्त्वार्थसूत्रावचूरि, जो कि ब्रह्मचारिश्रुतसागरकृत तत्त्वार्थ[illegible] प्रकार करी हुई है, तिसमें पांचसमितियोंके अधिकारमें आदाननिक्षेपसमितिका ऐसा स्वरूप लिखा है तथाहि ॥

" ॥ पिच्छादिना धर्मोपकरणानि प्रतिलिख्य स्वीकरण विसर्ज्जन सम्यगादाननिक्षेपसमिति ॥ "

भाषार्थः—मस्तक दाढी मूंछका तो लोच करा हुआ, मोर पीछी धारण करी हुई, और कमंडलू हाथमें, अधःकेशोंका रखना, यह जिनमुद्रा सामान्य प्रकारसें है. वाहरे! दिनमें राह भूलेहुये मेरे दिगंबर भाइयो! क्या तीर्थंकर भी शिरदाढीमूंछका लोच करते थे? और पीछी कमंडलू रखते थे, जिससें तुमने जिनमुद्राका ऐसा स्वरूप लिखा है? इससें यह सिद्ध होता है कि, तुम जिनमुद्राका स्वरूप भी यथार्थ नही जानते हो. तथा प्रवचनसारकी वृत्तिसें, और बोधपाहुडकी वृत्तिसें सिद्ध होता है कि, पीछी कमंडलूसें अन्य भी उपधि साधु रख लेवें. क्योंकि, बोधपाहुडवृत्तिमें पीछी कमंडलू रखना जिनमुद्रा कही है, और प्रवचनसारवृत्तिमें वहिरंगयातिलिंगका जिनेश्वरकों अभाव कहा है; तो, वो बहिरंगयतिलिंग कौनसा है, जो जिनेश्वरमें नही है?॥

तथा योगेंद्रदेवविरचित परमात्मप्रकाशकी टीकामें भी साधुको उपकरण ग्रहण करने लिखे हैं.। तथा च तत्पाठो यथा॥

"॥परमोपेक्षासंयमाभावे तु वीतरागशुद्धात्मानुभूतिभावसंयमरक्षणार्थं विशिष्टसंहननादिशक्त्यभावे सति यद्यपि तपःपर्यायशरीरसहकारिभूतमन्नपानसंयमशौचज्ञानोपकरणतृणमयप्रावरणादिकं किमपि ग्रह्णाति तथापि ममत्वं न करोतीति॥"

तथाचोक्तं॥

रम्येषु वस्तुवनितादिषु वीतमोहो।
मुह्येद्वृथा किमिति संयमसाधनेषु॥
धीमान् किमामयभयात् परिहृत्य भुक्तिं।
पीत्वौषधं व्रजति जातुचिदप्यजीर्णम्॥ १॥

भाषार्थः—परमोपेक्षासंयमके अभाव हुए, वीतराग शुद्ध आत्माके अनुभव भाव संयमकी रक्षा करनेवास्ते, विशिष्टसंहननआदि शक्तिके अभाव हुए, यद्यपि तप, पर्याय, और शरीरके सहकारिभूत, अर्थात् साहाय्य देनेवाले,

तथा प्रवचनसारकी वृत्तिमें
धर्मध्वजकरके कही है । तथाहि ॥

"॥ न विद्यते लिंगानां
गयतिलिंगाभावस्येति ॥"

भावार्थः—नही है लिंग धर्मध्वजोंका ग्रहण
बहिरंगयतिलिंगका अभाव है ॥
भावसंग्रहमें भी उपकरण विशेष कहे हैं। तथा

उवयरणं तं गहियं जेण ण भंगो
गहियं पुत्थयदाणं जोगं जं जस्स है

भावार्थः—उपकरण सो ग्रहण करिये है,
का भंग नही होता है, और ग्रहण करा पुस्तक
भी, चारित्रका भग नही करे हैं क्योंकि, जो
सो जिसकेवास्ते ग्रहण करना है ॥
कुंदकुंदमुनिकृत मूलाचारमें साधुकी उपधि
है । तथाहि ॥

णाणुवहिं संजमुवहिं
पयद गहणिक्खेवो समिदी

भावार्थ—ज्ञानोपधि,
संयम पाल मव, और तपोपधि, तथा अन्य
पूर्वोक्त सर्व उपधियोंका प्रयत्नसें ग्रहण निक्षेप
निक्षेपसमिति होती है ॥
और बोधपाहुडकी वृत्तिमें जिनमुद्राका

श्रद्धाकरके उपाश्रय प्राप्त कर देना ४; च शब्द वक्ष्यमाण गृहस्थधर्मके समुच्चय वास्ते है. ॥

तथा। राजवार्त्तिकमेंही । यतः ॥

"॥ धर्मोपकरणानां ग्रहणविसर्जनं प्रति यतनमादाननिक्षेपणासमितिः॥ ७॥" धर्माविरोधिनां परानुपरोधिनां द्रव्याणां ज्ञानादिसाधनानां ग्रहणे विसर्जने च निरीक्ष्य प्रपूज्य प्रवर्त्तनमादाननिक्षेपणासमितिः ॥

भाषार्थः–धर्मके अविरोधी, परके अनुपरोधी, ज्ञानादिके साधन, ऐसें द्रव्योंके ग्रहणमें और त्यागमें देखके और प्रमार्जन करके प्रवर्त्तना, सो आदानानिक्षेपणासमिति है. ॥

तथा राजवार्त्तिकमेंही । यतः ॥

"॥ संसक्तान्नपानोपकरणादिविभजनं विवेकः ॥ " संसक्तानामन्नपानोपकरणादीनां विभजनं विवेक इत्युच्यते ॥

भाषार्थः–संसक्त जीवोत्पत्तिवाले अन्न, पाणी, उपकारणादिकोंका त्याग करना (परठना), सो विवेक कहिये हैं. ॥

तथा राजवार्त्तिकमेंही पांच प्रकारके निर्ग्रंथोंका स्वरूप लिखा है, तिनमें बकुशका स्वरूप ऐसें लिखा है. । यतः ॥

"॥ बकुशो द्विविधः उपकरणबकुशः शरीरबकुशश्चेति ॥" तत्र उपकरणाभिष्वक्तचित्तो विविधविचित्रपरिग्रहयुक्तः बहु विशेषयुक्तोपकरणकांक्षी तत्संस्कारप्रतीकारसेवी भिक्षुरुपकरणबकुशो भवति शरीरसंस्कारसेवी शरीरबकुशः ॥

भाषार्थः–बकुश दोप्रकारका होता है, उपकरणबकुश १, और शरीरबकुश २; तिनमें जो उपकरणोंमें रक्त चित्तवाला नाना प्रकारके विचित्र परिग्रहयुक्त, बहुत सुंदर उपकरणोंका इच्छक, और तिन उपकरणोंका संस्कार प्रतिकार करनेवाला, भिक्षु साध, सो उपकरणबकुश होता है; और शरीरका संस्कार करनेवाला, शरीरबकुश होता है. ॥

-अन्न, पाणी, और संयम, शौच, ज्ञान, इनके उपकरण, तथा तृणमय प्रावरण, घासका उत्तरीय वस्त्र, इत्यादि कुछ भी ग्रहण करता है, तथापि तिनमें ममत्व नही करता है इति । सोही कहा है । रमणीय धनधान्यादि वस्तु, और वनिता—स्त्री, आदिशब्दसें माता, पिता, पुत्र, पुत्री, भाइ, बहिन, इत्यादिकोंमें जिसने मोह त्याग दिया है, सो निर्मोही, क्या, संयमके साधनोंमें वृथाही मोह करेगा? अपितु कभी भी नही इसबातके दृढ करनेवास्ते दृष्टांत कहे हैं बुद्धिमान् रोगके भयसें भोजनको त्यागके और औषधको पीके, क्या कभी भी अजीर्णकों प्राप्त होता है? कदापि नहीं ऐसेंही जन्ममरणादिदुःखरूप रोगके भयसें संसारके मोहरूप भोजनको त्यागके, निःसंग होके, जिनवचनामृतरूप औषधको पीके संयमके साधनोंमें अजीर्णरूप मोहकों प्राप्त नही होता है ॥

तथा। राजवार्त्तिकमें भी उपकरणविषयक लेख है । तथाहि ॥

"॥ अतिथिसंविभागश्चतुर्विधो भिक्षोपकरणौषधप्रतिश्रयभेदात्॥ २८॥" अतिथिसंविभागश्चतुर्धाभिद्यते। कुतः । भिक्षोपकरणौपधप्रतिश्रयभेदात् । मोक्षार्थमभ्युत्थितायातिथये संयमपरायणाय शुद्धाय शुद्धचेतसा निरवद्या भिक्षा देया धर्मोपकरणानि च सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रोपबृंहणानि [illegible]यानि औषधं प्रायोग्यमुपयोजनीयं प्रतिश्रयश्च पर[illegible]या प्रतिपादयितव्यइति। च शब्दोवक्ष्यमाणगृह[illegible] ॥

भावार्थ —अति[illegible]भागनामा बारमे (१२) व्रतके चार (४) भेद होते हैं, भिक्षा १, उपकरण २, औषध ३ और उपाश्रय ४, मोक्षकेवास्ते उद्यत संयममें तत्पर ऐसें शुद्ध अतिथि साधुकेताइं शुद्धचित्तसें निरवद्य—दूषणरहित भिक्षा देनी १, और सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, इनकी वृद्धि करनेवाले उपकरण देने २, योग्य औषध प्राप्त कर देना ३, और परम धर्म

अच्छाकरके उपाश्रय प्राप्त कर देना ४; च शब्द वक्ष्यमाण गृहस्थधर्मके समुच्चय वास्ते है. ॥

तथा। राजवार्त्तिकमेंही । यतः ॥

"॥ धर्मोपकरणानां ग्रहणविसर्जनं प्रति यतनमादाननिक्षेपणासमितिः ॥ ७ ॥" धर्माविरोधिनां परानुपरोधिनां द्रव्याणां ज्ञानादिसाधनानां ग्रहणे विसर्जने च निरीक्ष्य प्रपूज्य प्रवर्त्तनमादाननिक्षेपणासमितिः ॥

भाषार्थः—धर्मके अविरोधी, परके अनुपरोधी, ज्ञानादिके साधन, ऐसें द्रव्योंके ग्रहणमें और त्यागमें देखके और प्रमार्जन करके प्रवर्त्तना, सो आदानानिक्षेपणासमिति है. ॥

तथा राजवार्त्तिकमेंही । यतः ॥

"॥ संसक्तान्नपानोपकरणादिविभजनं विवेकः ॥ " संसक्तानामन्नपानोपकरणादीनां विभजनं विवेक इत्युच्यते ॥

भाषार्थः—संसक्त जीवोत्पत्तिवाले अन्न, पाणी, उपकारणादिकोंका त्याग करना (परठना), सो विवेक कहिये हैं. ॥

तथा राजवार्त्तिकमेंही पांच प्रकारके निर्ग्रथोंका स्वरूप लिखा है, तिनमें बकुशका स्वरूप ऐसें लिखा है. । यतः ॥

" ॥ बकुशो द्विविधः उपकरणबकुशः शरीरबकुशश्चेति ॥" तत्र उपकरणाभिष्वक्तचित्तो विविधविचित्रपरिग्रहयुक्तः बहुविशेषयुक्तोपकरणकांक्षी तत्संस्कारप्रतीकारसेवी भिक्षुरुपकरणबकुशो भवति शरीरसंस्कारसेवी शरीरबकुशः ॥

भाषार्थः—बकुश दोप्रकारका होता है, उपकरणबकुश १, और शरीरबकुश २; तिनमें जो उपकरणोंमें रक्त चित्तवाला नाना प्रकारके विचित्र परिग्रहयुक्त, बहुत सुंदर उपकरणोंका इच्छक, और तिन उपकरणोंका संस्कार प्रतिकार करनेवाला, भिक्षु साध, सो उपकरणबकुश होता है; और शरीरका संस्कार करनेवाला, शरीरबकुश होता है. ॥

तथा वकुशनिर्ग्रंथमें सामायिक, और छेदोपस्थापन, यह दो संयम दिगंबराचार्योंने माने हैं । तथाहि ॥

"॥पुलाकवकुशप्रतिसेवनाकुशीला द्वयो संयमयो सामायिकच्छेदोपस्थापनयोर्भवति ॥" इतिराजवार्त्तिकटीकायाम् ॥

तथा ज्ञानार्णवमें शय्या, आसन, उपधान (तकीया) आदि, मुनिकी उपधि कही है, जो पाठ ऊपर लिख आए हैं । इत्यादि कितनेही दिगंबरशास्त्रोंमें मुनिकी अनेक प्रकारकी उपधि कही है ऐसें उपकरण रखनेसें दिगंबरमतका मुनि तो, परिग्रहधारी नही हुआ, और श्वेतांबरमतका मुनि, चतुर्दशादि उपकरण रक्खे, तिसको परिग्रहधारी मानना, यह मतांधपणा नही तो, अन्य क्या है ?

और दिगंबराचार्योंको द्रव्यक्षेत्रकालभावकी अनभिज्ञता होनेसें, और अनुचित कठिन मुनिवृत्तिके कथन करनेसें, प्रथम तो मुननी, अर्थात् साध्वी व्यवच्छेद होगई, पीछे साधु व्यवच्छेद होगए आचार्योपाध्यायका तो कहनाही क्या है ! ! ! और श्वेतांबरमतमें तो, श्रीमहावीरजीसें लेके आजताइ अव्यवच्छिन्न चतुर्विध संघ चला आता है और बकुशकुशील इस कालमें जे पाइये हैं, तिनका आचार, व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवतीसूत्र) आदि शास्त्रोंमें कथन करा है, तेसें आचारके पालनेवाले साधु साध्वी [illegible]कालमें भी उपलब्ध होते हैं इस हेतुसें दिगंबरशास्त्रोंकी अस[illegible] [illegible]तांबरके शास्त्रोंकी सत्यता, प्रत्यक्ष प्रमाणसेंही देख लो, [illegible] आवश्यकता नहीं है

प्रश्न — [illegible] आहार नही करता है, और तुम केवलीको कवलाहार मानते हो, [illegible] प्रमाणसें मानते हो ?

उत्तर — आगमप्रमाणसे मानते हैं क्योंकि, श्रीतत्त्वार्थसूत्रमें परिषहोंका अधिकार चला है, तहां केवली—जिनके क्षुधापिपासादि इग्यारें परिषह कहे हैं, और तुमारे मतकी द्रव्यसंग्रहकी वृत्तिमें चारित्रके अधिकारमें कहा है कि, तीन योगोंका व्यापार जिन—

केवलीके चारित्रको मलिन करे हैं, जिसको प्रदेशोंका चंचलभाव है, तिसकोंही यह योगत्रयव्यापार है; और कर्मग्रंथोंमें बैतालीस (४२) कर्मप्रकृतियां उदयमें केवलीको कही है, वे, अपना अपना नानाप्रकारका रस दिखाती हैं.। अवयवोंका जो प्रकर्षसें चलाना है, सो प्रवचनसारमें क्रियाविशेष कहनेकरके केवलीकों कहा है; समयसारमें भी अंगसंचालन कहा है, भक्तामरस्तोत्रमें भगवंतको चरणोंसें चलना कहा है, एकीभावस्तवनमें जिनवरचरणोंका न्यास कहा है, भावपाहुडकी वृत्तिमें तीर्थंकरके चरणोंका न्यास कहा है, वीरनंदिकृत श्रीचंद्रप्रभचरित्रसें और हरिश्चंद्रकायस्थविरचित धर्मशर्माभ्युदयमें भी, भगवान्का विचरना लिखा है.

अब पूर्वोक्त शास्त्रोंके पाठ, अर्थसहित, अनुक्रमसें लिखते हैं.। तत्रादौ तत्त्वार्थसूत्रपाठो यथा ॥

"॥ सूक्ष्मसंपरायछद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दशएकादशजिने ॥"

भाषार्थः—सूक्ष्मसंपराय, और छद्मस्थ वीतरागमें अर्थात् दशमे इग्यारमे बारमे (१०। ११। १२।) गुणस्थानमें चौदह (१४) परीषह हैं; और जिन—केवलीमें इग्यारह (११) परीषह हैं. तब तो, क्षुधापरीषहके हुए, केवलीको कवलाहार सिद्ध हुआ. परंतु कितनेक दिगंबरटीकाकारोंने, टीकामें नकार ग्रहण करा है, सो महाउत्सूत्र है. "एकादशजिने न संतीतिशेषः" ऐसी मिथ्याकल्पना सिद्ध करी है. क्योंकि, दिगंबरटीकाकार सूत्रशैलीके अनभिज्ञ मालुम होते हैं. जब सूत्रमें नकार कहाही नही है, तो टीकाकारने नकार कहांसें काढ मारा? जेकर नकार माना जावे, तब तो, संलग्न सर्वसूत्रके साथ 'न संति' क्रियाका संबंध मानना चाहिये. तब तो, ऐसा अर्थ होवेगा, सूक्ष्मसंपराय, और छद्मस्थ वीतरागके चतुर्दश परीषह नही हैं; परंतु मतांधपुरुष मिथ्यात्वके उदयसें क्या क्या झूठी कल्पना नही करसकता है? अपितु सर्व करसकता है. जब केवलीमें वेदनीय कर्मके उदयसें इग्यारह परीषह हैं, तो फिर, क्षुधाके लगनेसें

केवली कवलाहार क्यों नही करें ? क्योंकि, औदारिकशरीरकी स्थिति कवलाहारविना नही हो सकती है ॥ १ ॥

द्रव्यसंग्रहवृत्तिपाठो यथा ॥

" ॥ सयोगिकेवलिनो यथाख्यात चारित्र न तु परमयथाख्यात चारित्र चौराभावेपि चौरससर्गिवत् मोहोदयाभावेपि योगत्रयव्यापारश्चारित्रमल जनयतीति ॥ "

भावार्थः—सयोगिकेवलीके यथाख्यात चारित्र है, परतु परमयथाख्यात चारित्र नही है जैसें चोरके अभावसें भी, चोरकी सगतिवाला चोर है, तैसेंही मोहोदयके अभाव हुए भी, योगत्रयका व्यापार चारित्रमें मल उत्पन्न करता है ॥ २ ॥

प्रवचनसारपाठो यथा ॥

ठाणनिसेज्जविहारा धम्मुवदेसो अ णिअदवो तेसिं ॥
अरहताण काले मायाचारोव्व इत्थीण ॥

भावार्थ—स्थान, निषध्या, विहार, धर्मोपदेश, यह सर्व तिन अरिहतों को स्वाभाविक है स्त्रियोंको मायाचारकीतरें ॥ ३ ॥

उन्निद्रहेम—इत्यादि भक्तामरके काव्यमें भगवान् कमलोपरि पादन्यास स्थापन करते हैं

" पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र धत्त ॥ " ॥ इति वचनात् ॥ ४ ॥

स्तोत्रमें भी पादन्यास लिखा है ॥

॥प पि च पुनतो यात्रया ते त्रिलोकीमित्यादि॥ " ॥ ५ ॥

तीर्थंकरकम पादन्यास करते हैं ॥

"॥तीर्थंकरा कमलोपरि पादौ न्यसतीति" भावपाहुडवृत्तिवचनात् ॥ ६ ॥

चद्रप्रभचरित्रमें भगवान्का विहार लिखा है ॥

"॥ इत्थ विहृत्य भगवान् सकलां धरित्रीमित्यादिवचनात् ॥ " ॥ ७ ॥

धर्मनाथचरित्रमें भी भगवान्का विचरना लिखा है ॥

अथ पुण्यैः समाकृष्टो भव्यानां निःस्पृहः प्रभुः ॥
देशे देशे तमश्छेत्तुं व्यचरद्भानुमानिव ॥

भाषार्थः—भव्यप्राणियोंके पुण्योंसें खिचा हुआ, निःस्पृह भी भगवान्, देशोदेशमें मिथ्यात्वरूप अंधकारको छेदनेवास्ते, सूर्यकीतरें विचरता भया. ॥ ८ ॥

तथा जिन, जो अंग न चलावे तो, शुभ विहायगति, और अशुभ विहायगतिका उदय किसतरें होवे? नही होवे. और जिनके सात योग, कैसें होवे? और जो कल्पनाकुयुक्तिसें कहते हैं कि, देवते तीर्थंकरको उठाते, बिठलाते हैं, और चलाते हैं; सो कहना महा मिथ्या है. क्योंकि, प्राचीन दिगंबरमतके शास्त्रोंमें, ऐसा लेख किसी जगेमें नही है. तो फिर, केवलीको देवते, उठना, बैठना, चलना, कराते हैं; ऐसा कलंकरूपकथन, मिथ्यादृष्टिदीर्घसंसारीविना कौन कर सकता है?

और जो तीर्थंकरकेवलीके, परम औदारिक शरीर कहते हैं, सो भी इनके ग्रंथोंसें विरुद्ध है. क्योंकि, कायावोधपाहुडमें औदारिकही कहा है. सो पाठ यह है. ॥

एरिसगुणाहिं सहियं अइसयवंतं सुपरिमलामोअं॥
ओरालीयं च कायं णायवं अरुहपुरुसस्स ॥ १ ॥

भाषार्थः—इन पूर्वोक्त गुणसहित, अतिशयवंत, सुपरिमलआमोदसंयुक्त, औदारिककाया, अरिहंतपुरुषोंकी जाननी.

प्रश्नः—स्त्रीको सर्वचारित्र और मोक्ष नही है.

उत्तरः—तुमारे मतके शास्त्रोंमेंही, स्त्रीको चारित्र, और मोक्ष होना लिखा है.

यतः ॥

जइ दंसणेण सुद्धा उत्तामग्गेण सावि संजुत्ता ॥
घोरं चरियं चरित्ता—इत्यादि

भाषार्थ —यदि दर्शनसम्यक्त्व करके
भी, संयुक्त है, घोर दुरनुचरचारित्र
पाठकी वृत्तिमेंही महाव्रतका उच्चार कहा है;
होवे ?

और त्रैलोक्यसारमें स्त्रीको मोक्ष कहा है । तथा

वीस नपुंसकवेआ इत्थीवेया य हुंति
पुंवेआ अडयाला सिद्धा इकमि

भाषार्थ —नपुसकवेश वीस (२०) स्त्रीवेद
अडतालीस (४८), ये सर्व, एकसो आठ (१०८)
हुए हैं

प्रश्न —नग्न दिगम्बरमुनिके चिन्हविना, किसीको
होता है

उत्तर —ब्रह्मदेवकृत समयपाहुडकी वृत्तिमें लिखा
भावसें परिग्रह छोडा है । तथा प्राकृतबंध
कि, शिरमें कर-हाथ डालतेही भरतनृपतिने
द्रव्यलिंगरहित पाडवोंने, कर्मोंका अंत किया ॥

"॥ जा चिहुरुप्पालण खिवइ हत्थु ता केवल
इतिहरिवंशपुराणे ॥

प्रश्न —आप प्रथम लिख आए हैं कि, वे सर्व लेख
तो, अब बतलाइए, जे लेख कौनसें हैं ?

उत्तर —वे लेख सर ए कनिंगहाम (SIR A. CU
'आर्कीओलोजिकल रीपोर्ट' (ARCH LOLOGICAL
वोल्युममें (१३–१६५) छपाए हुए मथुराके प्रस्तर
नकल नीचें लिखते हैं

"॥ सिद्धंसं २० ग्रमा १ दि १०+५ को दियतो गणतो वाणियतो कुलतो वैरितो शाखातो शिरिकातो भत्तितो वाचकस्य अर्यसंघसिंहस्य निर्वर्त्तनं दत्तिलस्य......वि....लस्य कोठुंबिकिये जयवालस्य देवदासस्य नागादिनस्य च नागदिनाये च मातुये श्राविकाये दिनाये दानं-इ (श्री) वर्द्धमानप्रतिमा ॥"

भाषांतरः—"॥ जय !* संवत् २० का उष्णकालका मास पहिला (१) मिति १५, श्रीवर्द्धमानकी प्रतिमा, दत्तिलकी वेटी वि .. लकी स्त्री जयवाल जयपाल देवदास और नागादिन अर्थात् नागादिन्न वा नागदत्त और नागादिना अर्थात् नागदिन्ना वा नागदत्ताकी माता दिना अर्थात् दिन्ना वा दत्ता घरकी मालिकिणी गृहस्थ शिष्यणी श्राविका तिसने अर्पण करी—यह प्रतिमा—कौटिकगच्छमेंसें वाणिजनामा कुलमेंसें वैरीशाखाके भागके आर्य—संघसिंहकी निर्वर्त्तन है अर्थात् प्रतिष्ठित है.॥" ॥ १ ॥

"॥ सिद्धं महाराजस्य कनिष्कस्य राज्ये संवत्सरे नवमे ९. मासे प्रथ १ दिवसे ५ अस्यां पूर्वाये कोटियतो गणतो वाणियतो कुलतो वैरितो शाखातो वाचकस्य नागनंदिस निर्वरतनं ब्रह्मधूतुये भट्टिमितसकुटुंबिनिये विकटाये श्रीवर्द्धमानस्य प्रतिमा कारिता सर्वसत्वानं हितसुखाये ॥"

यह लेख श्री महावीरकी प्रतिमाऊपर है.

भावार्थः—जय ! कनिष्कमहाराजाके राज्यमें नव (९) मे वर्षमें पहिले (१) महिनेमें मिति पांचमी (५)में—इसदिनमें सर्व प्राणियोंके कल्याण

* 'सिद्ध" इस शब्दका 'जय' अर्थ यूरोपीयन पडितोंने किया है, सो यथार्थ नही है क्योंकि, जैनमतमें प्राय 'ॐ' 'अर्ह' 'सिद्ध' इत्यादि शब्द मगलार्थ, और नमस्कारार्थ वाचक मानके, आदिमें लिखे जाते हैं ॥

तथा सुखकेवास्ते भहिमित्रकी स्त्री और श्रीवर्धमानकी प्रतिमा बनवाई है–यह कुलके और वइरी शाखाके आचार्य ॥

"॥ संवत्सरे ९० व स्य कुटुंबनि. ॥ कोटियतो गणतो प्रश्नवाहनकतो शाखातो सनिकायमतिगाल्प्रए थवानि

इस लेखकेवास्ते डा० बुल्हर कहते हैं कि, इस नकल मेरे वसमें नही है, इसवास्ते इसका पूर्णरूप सकता हूं, परंतु पहिली पंक्तिके एक टुकडेके देखनेसें सकता है कि, यह प्रतिमा किसी स्त्रीने अर्पण करी और सो स्त्री एक पुरुषकी मालकणी (कुटुंबिनी) और (वधु) थी, ऐसें लिखा है।–सपमें कोटियगच्छके मध्यमशाखाके–इत्यादि–॥ ३ ॥

"॥ स० ४७ ग्र २ दि २० एतस्या पुर्वापि गणेपेतिधमिककुलवाचकस्य रोहनदिस्य शिसस्य निर्वतनसावक–इत्यादि ॥"

सवत् ४७ उष्णकालका महिना दूसरा (२) मिति २० यह ससारी शिष्यका देवार्पण किया हुआ पाणी पीनेका एक रोहनंदिका शिष्य चारणगणके प्रैतिधर्मिककुलका प्रतिष्ठित है ॥ ४ ॥

"॥ सिद्धं नमो अरहतो महावीरस्य देवनाशस्य देवस्य संवत्सरे ९८ वर्ष मासे ४ दिवसे ११

अर्य्यरोहनियतो गणतो परिहासककुलतो पोनपत्रिकातो शाखातो गणिस्य अर्य्यदेवदत्तस्य न.......॥"

यह भी एक शिलालेखका उतारा है.

भाषांतरः—फतेह ! देवतायोंका नाशकर्त्ता ऐसें अरहतमहावीरको नमस्कार. वासुदेव राजाके संवत्के ९८ मे वर्षमें वर्षाऋतुके चौथे महिनेमें एकादशीके दिन इस मितिमें गणोंके मुख्य गणी अर्य्यदेवदत्त आर्यरोहणके स्थापे हुए, गणके परिहासककुलके पौर्णपत्रिकाशाखाके. ॥

अब इन ऊपर लिखे मथुराके पुराने शिलालेखोंके वांचनेसें दिगंबराम्नाय माननेवाले पक्षपातरहित सुज्ञजन प्रियबांधव दिगंबरलोकोंको विचार करना चाहिये कि, दिगंबरीय पट्टावलीयोंमें तथा दर्शनसारादि दिगंबरीय ग्रंथोंमें, जे लेख श्वेतांबरमतकी बाबत लिखे हैं, वे सत्य हैं, वा नही है ? और येह शिलालेख श्वेतांबरोंके कथनको सिद्ध करते हैं, वा, दिगंबरोंके कथनको ? क्योंकि, श्वेतांबरमतके दशाश्रुतस्कंधसूत्रके आठमे कल्पाध्ययनमें लिखा है कि, श्रीमहावीर स्वामीके आठ (८)मे पाटपर श्रीवीरात् संवत् २१५ में श्रीस्थूलभद्र स्वामी स्वर्गवासी हुए, उनके पाटपर ९ में पट्टधर श्रीसुहस्तिसूरि हुए, उनके षट् (६) शिष्योंसें षट् (६) गच्छ उत्पन्न हुए.

तथाहि ॥

"। स्थविर आर्यरोहणसें उद्देह गण, जिसकी चार शाखायें हुइ, और छ कुल हुए. । स्थविर भद्रयशसें ऋतुवाटिका गच्छ, तिसकी चार शाखा, और तीन कुल हुए. । स्थविर कामर्द्धिसें वेसवाडियागण, (गच्छ) तिसकी चार शाखा, और चार कुल. । स्थविर सुप्रतिबुद्धसें कौटिकगण, तिसकी चार शाखा और चार कुल. । स्थविर ऋषिगुप्तसें माणवकगण, तिसकी चार शाखा, और चार कुल. । स्थविर श्रीगुप्तसें चारण गच्छ, तिसकी चार शाखा, और सात कुल. ।"

ये गच्छ, शाखा, कुलके नामका कोठा ईसमाफक है.

गच्छ	शाखा	[illegible]
॥ १ ॥ उद्देहगण गच्छ	१ इम्रवाजिका, ॥ २ मासपुरिका, ॥ ३ मतिपत्रिका, ॥ ४ पूर्णपत्रिका, ॥	१ २ सोमभूय, ॥ ३ उल्लगच्छ, ४ हत्थलिज्जं,
॥ २ ॥ ऋतुवाटिका गच्छ	१ चांपेज्जिया, ॥ २ भाद्रिका, ॥ ३ काकंदिया, ॥ ४ मेहलिज्जिया, ॥	१ भद्दजसियं २ भद्दगुत्तियं ३
॥ ३ ॥ वेसवाटिका गच्छ	१ सावत्थिया, ॥ २ रज्जपालिया, ॥ ३ अतरिज्जिया, ॥ ४ खेमलिज्जिया, ॥	१ गणियं, ॥ २ मेहियं, ॥ ३ कामड्ढियं, ॥ ४ इंदपुरगं, ॥
॥ ४ ॥ कोटिक गच्छ	१ उच्चानागरी, ॥ २ विद्याधरी, ॥ ३ वयरी, ॥ ४ मज्झिमिल्ला, ॥	१ बंभलिज्ज, ॥ २ वत्थलिज्ज, ॥ ३ वाणिज्ज, ॥ ४ पण्हवाहणयं, ॥
॥ ५ ॥ माणवक गच्छ	१ कासवज्जिया, ॥ २ गोयमज्जिया, ॥ ३ वासिट्ठिया, ॥ ४ सोरट्ठिया ॥	१ इसिगुत्तिय, ॥ २ इसिदत्तिय, ॥ ३ अभिजयंत, ॥
॥ ६ ॥ चारण गच्छ	१ हारियमालागारी २ संकासिया, ॥ ३ गवेधुआ, ॥ ४ विज्जानागरी ॥	१ २ ३ ४

इन पूर्वोक्त षट् (६) गणोंमेंसें १ । ४ । ६ गणोंके, उनके कुलोंके, और उनकी शाखायोंके नाम, मथुराके शिलालेखोंमें लिखे हैं. और देवसेन भट्टारक अपने रचे दर्शनसारग्रंथमें लिखते हैं कि, विक्रमराजाके मरण-पीछे एक सौ छत्तीस वर्ष गए सोरठदेशके वल्लभी नगरमें श्वेतांवर संघ उत्पन्न हुआ; तथा मूलसंघ, नंद्याम्नाय, सरस्वतिगच्छ, वलात्कारगण, इन चारों नामोंकी मथुराके शिलालेखोंमें गंध भी नही है; जेकर श्वेतांबरीय शास्त्रोंके पूर्वोक्त गणोंके लेख कल्पित मानें, तो भूमिमेंसें वे लेख कैसें निकलते ? इसवास्ते श्वेतांवरीय शास्त्रोंके लेख सत्य सिद्ध होते हैं. और दिगंबरोंके लेख मिथ्या सिद्ध होते हैं. क्योंकि, श्वेतांवर वाबत देवसेनके लेखसें मथुराके शिलालेख प्राचीनतर हैं; इसवास्ते श्वेतांवरीय शास्त्रोंमें जे जे गण कुल शाखाके नाम लिखे हैं, वे सत्य हैं. और जे जे दिगंबरोंने मूलसंघ १, नंद्याम्नाय २, सरस्वतिगच्छ ३, वलात्कारगण ४, लिखे हैं, वे नवीन कल्पित सिद्ध होते हैं. जब श्वेतांवरमतकी सत्यताकी गवाही भूमिके शिलालेखही देते हैं, तब तो, प्रेक्षावान्को तिसकोही सत्यकरके मानना चाहिये. ॥

॥ इति प्रसंगतः संक्षेपतो दिगंवरमतसमालोचनं समाप्तम् ॥

॥ इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे जैनमतस्य प्राचीनताबौद्धमतान्यतावर्णनो नाम त्रयस्त्रिंशः स्तम्भः ॥ ३३ ॥

॥ अथचतुस्त्रिंशस्तम्भारम्भः ॥

तेतीसमे स्तंभमें जैनमतकी प्राचीनताका, और वौद्धमतसें पृथक्ताका वर्णन कीया; अव इस चौतीसमे स्तंभमें जैनमतकी कितनी वातेंपर आधुनिक कितनेक पंडिताभिमानी शंका करते हैं, उनके उत्तर लिखते हैं.

प्रश्नः—जैनमतमें ऋषभदेव अरिहंतकी जो पांचसौ (५००,) धनुषप्रमाण अवगाहना लिखि है, ओर चौरासी लक्ष (८४०००००) पूर्वकी आयु

लिखी है, ऐसें लेखको वाचके कितनेक लोक, जो अंग्रेजी फारसी पढे हुए हैं, वे उपहास्य करते हैं, सो ऐसी अवगाहना, और आयुको जैनमतवाले क्योंकर सत्य मानते हैं ?

उत्तर —हे भव्य! जबतक पक्षपात छोडके सूक्ष्मबुद्धिसें विचार नही करते हैं, तबतक वस्तुके तत्त्वकों नही प्राप्त होते हैं क्योंकि, पृथिवीमें अधिक रस होनेसें तिस पृथिवीकी वनस्पतिमें भी अधिक रसवीर्य होता है, और तिस वनस्पतिके खानेवाले पुरुषादिकोंमें अधिक बल होता है और तिनके शरीरमें वीर्य–धातु भी अधिक होता है, और जिसका वीर्य अधिक होता है, तिसका संतान भी कदावर (बडी अवगाहनावाला) होता है, हाथीवत् । तथा पंजाबकी भूमिसें गुजरात देशकी भूमि रसमें न्यून है, इसवास्ते पंजाबकी वनस्पति खानेवाले पंजाबीयोंका शरीर गुजरातीयोंकी अपेक्षा कदावर और बलवान् है, और पंजाबसें काबुलकी भूमि अधिक रसवीर्यवाली है, इसवास्ते वहांकी मेवादि वनस्पति हिंदुस्थानकी अपेक्षा बहुत रसवीर्यवाली होनेसें, वहांके पुरुष भी कदावर, और अधिक बलवान् है इस लिखनेका यह प्रयोजन है कि, जैनमतके सिद्धांतानुसार वर्त्तमानकाल ‘ अवसर्प्पिणी ’ चलता है, अर्थात् जिस कालमें समय समय भूमि आदि पदार्थोंका अच्छा वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, [illegible]ना जावे तिसको अवसर्प्पिणी काल कहते हैं

[illegible] पंचकल्पभाष्ये ॥

[illegible] [illegible]ममाए गामा होहिंति ऊमसाणसमा ॥
इय खत्त[illegible] [illegible]णी कालेवि उ होहि इमा हाणि ॥ १ ॥
समये २ णता प[illegible]हायने उ वण्णमाईया ॥
दव्वाई पज्जाया होरत्त तत्तिय चेव ॥ २ ॥
दूसमअणुभावेण साहूजोग्गा उ दुल्लहा खेत्ता ॥
कालेवि य दुब्भिक्खा अभिक्खण हुंति डमरा य ॥ ३ ॥

दूसमअणुभावेण य परिहाणी होहि ओसहिबलाणं ॥
तेणं मणुयाणंपि उ आउगमेहाद्विपरिहाणी ॥ ४ ॥ इत्यादि ॥

भाषार्थः—कहा है दूसमनामा अवसर्प्पिणीकालके पांचमे आरे (हिस्से)में गाम प्रायः मसाणसरिखे होवेंगे, येह क्षेत्रके गुणोंकी हानी जाननी. और कालमें भी यह वक्ष्यमाण हानी होवेगी, सोही बतावे हैं. समय समयमें अनंते अनंते द्रव्यपर्यायोंके वर्ण आदिशब्दसें रस, गंध, स्पर्श, जे जे शुभ शुभतर हैं उनोंकी हानी होवेगी, परंतु अहोरात्र तावन्मात्रही रहेगा, दूसमकालके प्रभावसें साधुयोंके योग्य क्षेत्र प्रायः दुर्लभ होवेंगे, और सुकालमें भी साधुयोंके योग्य भिक्षा दुर्लभ होवेगी, दुर्भिक्ष और राज्यादि उपद्रव वारंवार होवेंगे, तथा दूसमकालके प्रभावसें औषधि अन्नादिकोंके बलकी तथा रसादिककी हानी होवेगी, और तिसकरके मनुष्योंके आयु बुद्धि, आदिशब्दसें अवगाहना बलपराक्रमादिकोंकी भी हानी होवेगी, इत्यादि अवसर्प्पिणीका वर्णन किया है; सो अवसर्प्पिणीकाल प्रथम आरेसें प्रारंभ हुआ है, तबसें भूमिआदि पदार्थोंके रस–वीर्य घटनेसें पुरुषादिकोंकी अवगाहना आयु भी घटने लगी; सो अवतक, तथा आगे कितनेक कालतांइ घटती जायगी. क्रमसें घटते घटते हमारे समयतक असंख्य वर्ष गुजर चुके हैं; लाखों करोडों वर्षोंके व्यतीत होनेसें थोडी २ घटते २ हमारे समयमें थोडी अवगाहना आयु रह गइ है; इसवास्ते असंख्य काल पहिले बडी अवगाहनाका होना संभवे है. इस कालमें जो नही मानते हैं, वे क्या, असंख्य काल असंख्य वर्ष अतीतकालका पूरा पूरा स्वरूप देख आए हैं, जो नही मानते हैं?

अब अतीतकालमें पुरुषादिकोंके शरीर बडे २ कद्दावर थे, इस कथन ऊपर हम थोडासा प्रमाण भी लिखते हैं. । सन १८५० ई० में मारुआं नजदीक, भूमिमें खोदते हुए, राक्षसी कदके मनुष्यके हाड भूमिमेंसें निकलेथे; उनमें जबाडेका हाड, आदमीके पगजितना लंबा था, और एक बुशल अर्थात् चोवीस (२४) सेर पक्के गेहूं तिसकी खोपरीमें समा सक्तेथे, एक २ दांतका वजन पउणा आंउस (कुछक न्यून दो तोले)

प्रमाण था । और कीनटोलोकस नामका राक्षस पदरा (१५) फुट ६ इंच ऊचाथा, उसके खभेकी चौडाइ १० फुटकी थी, और सारलामेनके वक्तमें मालुम हुआ फरटीग्स नामका सखस २८ फुट ऊचा था, यह कथन गुजरातमित्रके ३० मे पुस्तकके तारीख १८ सपटेंबर सन १८९२ के अंकमें लिखा है

तथा तारीख १२ नवेंबर सन १८९३ के बुंबईका गुजराती पत्रमें लिखा है कि, हगरीमें राक्षसीकदके एक मेंडक (दुर्दर–देडका) का हाडपिंजर मिला है, इस मेंडकको 'लेब्रीरीनथोडोन' के नामसें पिछाननेमें आते हैं प्राचीन शोधोंके करनेसें मालुम होता है कि, ऐसी जातके मेंडक तिस अतीतकालमें बहुत अस्ति धराते थे परन्तु आजकालमें ऐसे मेंडककी अस्ति है नही इस मेंडककी खोपरी इतनी वडी है कि, उसकी दोनों आखोंके खाडोंके बीचमें १८ इंचका अतर है, इस खोपरीका वजन ३१२ रतल प्रमाण है, और सर्व हाडोंके पिंजरका वजन १८६० रतल प्रमाण, अर्थात् लगभग एक टन प्रमाण होता है तथा प्रोफेसर थी ओडोर कुक अपने बनाए भूस्तर विद्याके ग्रथमें लिखते हैं कि, पूर्वकालमें उडते गिरोली (छपकली–किरली) जातके प्राणी ऐसें वडे थे, जिसकी पाख २७ फुट लंबी थी जब ऐसें प्राणी पूर्व कालमें इतने वडे थे, तो ‥ मनुष्योंकी अवगाहना बहुत वडी होवे तो, इसमें क्या आश्चर्य है? ‥ सर्व शोधें अंग्रेजोंने करी है अन जो कोइ कहे कि, इतने वडे ‥ मेंडक, गिरोलीको हम नही मानते हैं, तो फिर हम ‥ देवे? क्योंकि, ऐसें अकल्के पुतलों (बारदानों) का ना‥ समझा सक्ते है और जो कोइ भूस्तर विद्याकी शोधका ‥ उनकेवास्ते तो पूर्वोक्त प्रमाण बहुत बलवत् है कि, पि‥ मनुष्योंके शरीर बहुत बडे बराबर थे, इससें बहुत प्राचीनतर कालमें जो अवगाहना जैन सिद्धांतमें लिखी है, सो भी सत्य सिद्ध होसक्ती है । तथा मनुस्मृतिकी टीकामे श्रीराम चन्द्रजीका आयु दशसहस्र (१००००) वर्षकी लिखी है । तथा महाभार

तके षोडश (१६) अध्यायमें ब्रह्माकी बेटी कश्यपकी स्त्री कद्रूके अंडेको पकनेका काल पांचसौ (५००) वर्ष लिखा है, और वनिताके अंडेको पकनेका काल एक सहस्र (१०००) वर्ष लिखा है. । तथा महाभारतके एकोनविंश (१९) अध्यायमें राहुका शिर, पर्वतके शिखर जितना वडा लिखा है. । तथा एकोनत्रिंश (२९) अध्यायमें षट् (६) योजन ऊंचा, और बारां योजन लंबा, हाथी लिखा है.* तथा तीन योजन ऊंचा, और दश योजनका परिघ (घेरा), ऐसा कुर्म (कच्छु—काचवा) लिखा है. । तथा तौरेतग्रंथमें नुह आदि कितनेक मनुष्योंकी ९००, वा ८००, सौ वर्षकी आयु लिखी है. इससें मालुम होता है कि इस्सें पहिले प्राचीनतर जमानेमें मनुष्योंमें बहुत वडी आयुवाले मनुष्य थे. इस समयमें भी हिंदुस्थानकी अपेक्षा कितनेक देशोंमें अधिक आयुवाले मनुष्य विद्यमान हैं; तो फिर, असंख्यकालके पहिले मनुष्योंकी सर्व देशोंमें शत (१००) वर्ष प्रमाणही आयु माननी, यह बुद्धिमानोंको उचित है ? नहीं. इसवास्ते सर्वज्ञोक्त पुस्तकोंमें जो जो लेख है, सो सर्व सत्यही है. परंतु जो तुमारी समझमें नही आता है, सो तुमारी बुद्धिकी दुर्वलता है. क्योंकि, जो कोइ इससमयमें किसी नवीन पुस्तकमें लिख जावे कि, एक पुरुष सौ (१००) मण बोजा उठा सकता है, और एक पुरुष २७ मणकी लोहमयी मूंगली (मुद्गर-मोगरी) उठा सकता है, तो क्या तिस लेखको आजसें ५० वर्ष पीछे तुच्छबुद्धिवाले मान सकते हैं? नहीं. परंतु यह वार्त्ता हमारे प्रत्यक्ष है. पंजाब देशके लाहोर जिलेमें वलटोहे गामका रहनेवाला, फत्तेसिंह नामका एक सिख ४०, वा, ५०, वा १००, मणके बोजेवाले अरहट (रेंट) को उठा लेता है; और पूर्वोक्त जिलेमें चग्रांवाला गामका रहनेवाला, हीरासिंह नामका एक पुरुष २७ मण लोहेकी मूंगली (मुद्गर—मोगरी) उठाता है, यह हमारे प्रत्यक्ष देखनेमें आया है. इसीतरें सर्वज्ञके कथन किये प्राचीन लेख, कालांतरमें अल्पबुद्धिवालोंकी समझमें आने कठिन है.

---

* बाबु शिवप्रसाद सितारे हिंद (स्टार आफ इंडिया)ने लिखा है कि, वडे कदके आदमीको चढनेकेवास्ते इतना वडा घोडा कहासे मिलता होगा ? सो इसका उत्तर भी जाणना कि, यदि इतना वडा हस्ती उस जमानेमें होता था, तो क्या घोडे नही होते होंगे ! ! !

प्रश्न –कितनेक कहते हैं कि, जैनमतमें पृथिवी स्थिर, और सूर्य चलता है, ऐसा लेख है, और विद्यमान कालमें तो, कितनेक पाश्चात्यादि विद्वान् कहते हैं कि, पृथिवी चलती है, और सूर्य स्थिर है, और कितनेक कहते हैं कि, पृथिवी भी चलती है, और सूर्य भी अपनी मध्य रेखापर चलता है, यह क्यों कर है ?

उत्तर –प्रथम तो हे भव्य! जैनमतके चौदहपूर्व, एकादशांग, उपांग, प्रकीर्णक, निर्युक्ति, वार्त्तिक, भाष्य, चूर्णी, आदि जैसें सुधर्म स्वामी गणधर आदिकोंने रचे थे, और जैसें वज्रस्वामी दशपूर्वधारीने उनका उद्धार करके नवीन रचना करी, सो ज्ञान प्राय सर्व, स्कंदिलाचार्यके समयमें व्यवच्छेद हो गया है, उनमेंसें जो शेष किंचित्मात्र रहा, सो नाममात्र रह गया फिर उस ज्ञानको स्कंदिलादि आचार्य साधुयोंने नाममात्र आचारांगादिको एकत्र करके रचना करी, परंतु स्कंदिलादि आचार्य साधुयोंने स्वमतिकल्पनासें कुच्छ भी नही रचा है, जो शेष रह गया था, उसकोही तिस तिस अध्ययन उद्देशेमें स्थापन किया फिर देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणआदिकोंने ताडपत्रोंपर मूलपाठ निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, वृत्ति, आदि और अन्यप्रकरणप्रमुख एक कोटि (१००००००००,) पुस्तक लिखें वे पुस्तक भी, जैनोकी गफलत, मतोंके झगडे, मुसल ‍‍[illegible]नोंके जुलमसें, और गुर्जर देशमें अग्नि आदिके उपद्रवसें, बहुतसें नष्ट [illegible] और कितनेक भंडारोंमें बंद रहनेसें गल गए, जैसें पाटणमें [illegible]के भंडारमें एक कोठडीमें ताडपत्रोंके पुस्तकोंका चूर्ण [illegible] पडा है और जैसलमेरमें तो, प्राचीन पुस्तकोंका भंडार [illegible] नही श्रावकलोक भूल गए हैं तो भी, डॉक्टर बुह्लर साहिबने [illegible] डेढ लाख (१५००००) जैनमतके पुस्तकोंका पता लगाया है [illegible] उनका सूचीपत्र भी अंग्रेजीमें छपवाया है, ऐसा हमने सुना है जब इतने पुस्तक जैनमतके नष्ट होगए हैं तो, हम लोक क्यों कर जैनमतके पुस्तकोंके लेखानुसार सर्व प्रश्नोंका समाधान कर सके कि, इस अभिप्रायसें यह कथन किया है।

और इस कालमें जो बुद्धिमानोंने पृथिवी सूर्य आदिके चलनेका स्वरूप प्रकट किया है, सो अनुमान बांधके प्रकट करा है; परंतु सर्वस्वरूप किसीने आंखोंसें नही देखा है. क्योंकि, दक्षिण उत्तर ध्रुव बतलाते हैं, और उनका स्वरूप लिखते हैं, और यह भी कहते हैं कि, दक्षिण उत्तर ध्रुवोंतक कोइ भी पुरुष नही जा सकता है. और ध्रुवकी तरफ जानेका प्रयत्न करनेवाली कई मंडलिओंका पता भी बरफके पहाडोंमें लगा नहीं है. जब ऐसें है, तो फिर, उनके लिखे कल्पित–आनुमानिक स्वरूपकी सत्यता कैसें मानी जावे? क्योंकि, पृथिवीके कितनेही हिस्से ऐसें हैं कि, वे अभितक जाननेमें नही आये हैं. थोडे अरसेकी बात है, एक अखबार (न्युसपेपर) में हमने बांचा है कि, अमेरिकन शोधकोंने यह विचार किया कि, यह धूमस (धूवां) कहांसे आती है? तलाश करते हुए उनको एसा मालुम हुआ कि, दूर फांसलेपर एक शहर तीसहजार (३००००) घर, वा मनुष्योंकी वस्तीवाला दीख पडा; उस विषयमें वे लिखते हैं कि, हम नही जानते है कि, इस शहरका क्या नाम, और किस बादशाहकी हकुमत इसपर है? ऐसेंही पृथिवीके अनेक विभाग, विना जाने पडे हैं. तो फिर, हम कैसें सर्व कल्पित–आनुमानिक बातोंको सत्यकरके मान लेवें? तथा मि० वीरचंद राघवजी गांधी, बी. ए. के पास एक अमेरिकन विद्वानका बनाया हुआ 'अर्थ नॉट ए ग्लोब' (EARTH NOT A GLOBE) नामका पुस्तक हमने देखा, जिसमें ऐसा लिखा सुणा है, कि पृथिवी गोल नही, किंतु चपटी (सपाट) है, और पृथिवी फिरती नही है, किंतु सूर्य फिरता है, ऐसें सिद्ध किया है. तथा आकाशमें ऐसें तारे हैं, उनको देख हम ऐसा अनुमान करसकते हैं कि, पृथिवी स्थिर है, और सूर्य चलता है, और जो कोइ हमारे पास आके यह बात देखना चाहे तो, उसको हम दिखला सकते भी हैं. तथा वेदोंमें भी सूर्य चलता है, ऐसें लिखा है.

तथाहि प्रथम ऋग्वेदे ॥

तरणिर्विश्वदर्शतोज्योतिष्कृदसिसूर्य ॥ विश्वमाभासिरोचनं ॥४॥

ऋ० अ० १ अ० ४ व० ७।

भाष्यका भावार्थ –हे सूर्य! तू
ऐसे बडे अध्व मार्गमें जानेवाला है, ॥

तथा च स्मर्यते ॥

योजनानां सहस्रे द्वे द्वे शते द्वे च
एकेन निमिषार्धेन क्रममाण नमोस्तु

भावार्थ– दो सहस्र दो सौ और दो (२२०२),
मीषके खोले तिसकालसें आधे कालमें चलता है।
वेद अ० १ अ० ३ व० ६ में लिखा है कि, सुवर्णमय
प्रकाश करता हुआ, और देखता हुआ, सूर्य
पता हुआ सूर्य, प्रवणवत मार्गकरके जाता है, तथा
करके जाता है, उदयानंतर आमध्यान्हतोइ उर्ध्व
आसायंकाल प्रवणमार्ग है, यह भेद है, और यजन्
श्वेतवर्णके अश्वोंकरके जाता है, और दूर आकाश

तथा ऋ० अ० २ अ० १ व० ५ में लिखा है । यथा

"॥ सूर्योहि प्रतिदिनं
निमेरुं प्रादक्षिण्येन परिभ्राम्यतीत्यादि ॥"

भावार्थ –सूर्य प्रतिदिन ५०५९ योजन मेरुको
भ्रमण करता है इत्यादि ।

तथा ऋ० अ० २ अ० ५ व० २ में लिखा है । यथा

"॥ अचरती अविचले द्वे एवैते द्यावापृथिव्यो॥"

अविचल अचल अर्थात स्थिर दोही है स्वर्ग १,
इत्यादि ऋचायोंसें सूर्यका चलना, और पृथिवीका
किया है ऐसेंही यजुर्वेदादिसहिता, और ब्राह्मणादिकोंमें
कथन है वेदके हिस्से औरेतमें भी लिखा है कि

इमें लडता था, तब सूर्य कितनेक घंटेतक चलनेमें थम गया था; इत्यादि सर्व धर्मपुस्ककोंमें प्रायः सूर्यका चलनाही लिखा है.

प्रश्नः-कितनेक कहते हैं कि, जैनमतमें जो भरतखंडकी लंबाई, और चौडाइ, कही है, सो बहुत है; और देखनेमें हिंदुस्तान थोडासा है, इसका क्या सबब है?

उत्तरः-जैनमतमें हिंदुस्तानका नाम कुच्छ भरतखंड नही लिखा है; किंतु आर्य, अनार्य, सर्व देश मिलाके ३२००० देश जिसमें वसते थे, उसका नाम जैनमतमें भरतखंड लिखा है. वे अनार्य, आर्य देश जौनसें है, उनके नाम श्रीप्रज्ञापना उपांग सूत्रसें लिखते हैं.। प्रथम अनार्य देशोंके नाम लिखते हैं.। शक १, यवन २, चिलात ३, शबर ४, बब्बर ५, काय ६, मुरुंड ७, ओड्ड ८, भडग ९, तीर्ण्णक १०, पक्कण ११, नीक १२, कुलक्ष, १३, गोंड १४, सीहल १५, पारस १६, गोध १७, अंध्र १८, दमिल १९, चिल्लल २०, पुलिंद २१, हारोस २२, दोव २३, बोक्कण २४, गंधहार २५, बहलि २६, अर्जल २७, रोम २८, पास २९, वकुश ३०, मलका ३१, बंधकाय (चूंचुका) ३२, सूकलि (चूलिक) ३३, कुंकण ३४, मेद ३५, पल्हव ३६, मालव ३७, मग्गर (महुर) ३८, आभासिक ३९, कण (अणक) ४०, वीरण (चीन) ४१, ल्हासिक ४२, खस ४३, खासिक ४४, नेदूर ४५, मढ ४६, डोंविलग ४७, लकुस ४८, खकुस ४९, केकेय ५०, अरब ५१, हूणक ५२, रोमक ५३, भमरु ५४, इत्यादि.। और शक १, यवन २, शवर ३, बब्बर ४, काय ५, मरुंड ६, उड्ड ७, भंडड ८, भित्तिक ९, पक्काणिक १०, कुलाक्ष ११, गौड १२, सिंहल १३, पारस १४, क्रौंच १५, अंध्र १६, द्रविड १७, चिल्वल १८, पुलिंद्र १९, आरोषा २०, डोवा २१, पोक्काणा २२, गंधहारका २३, वहलीका २४, जल्ला २५, रोसा २६, माषा २७, वकुशा २८, मलया २९, चूंचुका ३०, चूलिका ३१, कोंकणगा ३२, मेदा ३३. पल्हवा ३४, मालवा ३५, महुरा ३६, आभाषिका ३७, अणक्का ३८, चीना ३९, लासिका ४०, खसा ४१, खासिका ४२, नेट्टरा ४३, महाराष्ट्रा ४४, मुढा ४५, मौष्ट्रिका ४६, आरव ४७, डोंविकल ४८, कु-

हुणा ४९, केकया ५०, हूणा ५१,
इत्यादि अनार्यदेशके वासी मनुष्योंके
हैं । और शक १, यवन २, शबर ३, बर्बर
७, पकण ८, अम्बाग ९, हूण १०,
खासिक १४, बुषिक १५, पक्क १६, बोस १७,
पुलिंद २०, क्रौंच २१, भ्रमर २२, [illegible]
चचुक २६, मालंग २७, हमिक २८, [illegible]
३१, हयमुख ३२, खरमुख ३३, तुरगमुख ३४,
गजकर्ण ३७, इत्यादि अनार्यदेशोंके नाम,
हैं । इत्यादि एकतीस सहस्र नवसो
देश जिसमें वसते हैं और सारे पच्चीस (२५॥)
प्रज्ञापना सूत्रमें लिखते हैं ।
श–चंपानगरी २. बंगदेश–ताम्रलिप्तीनगरी ३,
४, काशीदेश–वाणारसीनगरी ५,
योध्यानगर ६ कुरुदेश–गजपुर (हस्तिनापुर
देश–सौरिकपुरनगर ८ पंचालदेश
अहिछत्तानगरी १०, सुराष्ट्रदेश–द्वारावती (
देश–मिथिलानगरी १२ वत्सदेश–कौशांबीनगरी
नन्दिपुरनगर १४, मलयदेश–भद्दिलपुरनगर १५,
[illegible]–अच्छापुरीनगरी १७,
[illegible]–[illegible]वर्तीनगरी १९,
देश–[illegible] । [illegible]देश–पावानगरी २२,
नगरी २३ कुणाल[illegible]–श्रावस्तीनगरी २४,
श्वेतंबिकानगरी [illegible] (२५॥) देश, वेह सर्वे
क्योंकि, इन देशोंमें जिन–तीर्थंकर चक्रवर्ती
आर्य–क्षेत्र पुरुषोंका जन्म होता है इसवास्ते
वेह सर्व आर्यदेश [illegible], और [illegible]

दिकोशोंमें भी ऐसेंही आर्यदेश कहा है. ऐसे अनार्य आर्य सर्व देश मिलाके वत्तीस हजार (३२०००) देश जिसमें वास करते हैं, तिसको जैनमतमें भरतखंड कहा है; नतु हिंदुस्तानमात्रको. । ऐसे पूर्वोक्त भरतखंडकी भूमिपर वहुत जगोंपर समुद्रका पाणी फिरनेसें खुली भूमि थोडी रह गइ है; यह वात जैन ग्रंथोंसें, और परमतके ग्रंथोंसें भी सिद्ध होती है. और अनुमानसें भी कितनेक वुद्धिमान सिद्ध करते हैं. जैसें सन १८९२ सपटेंवर मास तारीख ५ को 'नवमी ओरीएंटल कांग्रेस' (NINTH ORIENTAL CONGRESS) जो लंडनशहरमें भरी थी, तिसमें पंडित मोक्षमुल्लरने अपने भाषणमें ऐसा सिद्ध करा है कि, एसीयासें लेके अमेरिकातांइ किसीसमयमें समुद्रका पानी वीचमें नही था; किंतु केवल एकही भूमिका सपाट थी. पीछे समुद्रके जलके आजानेसें वीचमें देशोंके टापु वन गए हैं. और ईसा (इसु स्त्रीस्तसें) पहिले १५०००, तथा २००००, वर्षके लगभग सामान्य भाषाके वोलनेवाले प्राचीन लोक, पृथिवीके किसी भागसें वसते थे.* तथा डॉक्टर वुल्हर साहिवने अपने भाषणमें जैन लोकोंके संवंधमें एक निवंध वांचके सुनाया था कि, जैनलोकोंकी शिल्प विद्या कितनेक दरजे (कितनीक वावतोंमें) बुद्ध लोकोंकी शिल्पविद्याके साथ मिलती आती हैं, तो भी, जैन लोकोंने, वे सर्व बुद्धलोकोंके पाससें नही ली है; किंतु वो विद्या, जैन लोकोंके घरकीही है, ऐसा सवूत कर दीया था.—यह समाचार, गुजराती पत्रके १३ मे पुस्तकके अकटोवर सन १८९२ के ४० से और ४१ मे अंकमें है. यह यहां प्रसंगसें लिखा है. इसवास्ते चीन, रूस, अमेरिकादि सर्व भरतखंडमेंही जानने. ॥ पूर्वोक्त साढेपच्चीस आर्यदेशोंको, जैनमतमें क्षेत्र आर्य कहते हैं.

प्रश्नः—यदि क्षेत्रकी अपेक्षा येह २५॥ देश आर्य है, और शेष ३१९७४॥ देश अनार्य है तो, क्या आर्य अन्य तरेंके भी है, जिसवास्ते इनको क्षेत्रापेक्षा आर्य कहते हो ?

---

* इस कथनसें जो इसाइ लोक मानते हैं कि, इस पृथिवीके रचेको, वा मनुष्य रचेको छ सहस्र (६०००) वर्ष हुए हैं, सो मिथ्या ठहरता है.

उत्तर -हा अन्यतरेंके भी आर्य हे, जैनमतके प्रज्ञापना सूत्रमें नव प्रकारके आर्य कहे हैं । तथाहि ॥ क्षेत्रार्य १, जाति आर्य २, कुलार्य ३, कर्मार्य ४, शिल्पार्य ५, भाषार्य ६, ज्ञानार्य ७, दर्शनार्य ८, चारित्रार्य ९ ।

अब प्रथम आर्य पदका अर्थ लिखते हैं ।

"॥तत्रारात् हेयधर्मेभ्यो याता प्राप्ता उपादेयधर्मैरित्यार्याः पृषोदरादयइति रूपनिष्पत्ति ॥"

तहा आरात् त्यागने योग्य धर्मोसें जाते रहे हैं,और प्राप्त हे अंगीकार करने योग्य धर्मोकरके ये कहिये, आर्य ॥

१ क्षेत्रार्य-क्षेत्रार्यका स्वरूप तो, ऊपर लिख आए हैं ॥ १ ॥

२ जातिआर्य-अम्बष्ठ १, कलिंद २, वैदेह ३, वेदग ४, हरित ५, चुंचुण ६, रूप ये इभ्यजातिया प्रसिद्ध हे, तिसवास्ते इन जातियोंकरके जे संयुक्त हैं, ये जातिके आर्य हैं, शेष नही यद्यपि शास्त्रांतरोंमे अनेक जातियें कथन करी हे, तो भी, लोकोंमे येही जातियें पूजने योग्य प्रसिद्ध हैं ॥ २ ॥

३ कुलार्य-उग्रकुल १, भोगकुल २, राजन्यकुल ३, इक्ष्वाकुकुल ४, ज्ञात [illegible] ५, कौरवकुल ६ । जिनको श्रीऋषभदेवजीने कोतवालका पद दिया [illegible]नका जो वंश चला, तिसका नाम उग्रकुल १, जिनको श्रीऋषभ [illegible]य घडावरके माना, उनका वंश भोगकुल २, जो श्रीऋषभ [illegible]गे थे, उनका वंश राजन्यकुल ३, जो श्रीमहावीरजीका [illegible] कुल ४, जो श्रीऋषभदेवजीका वंश, सो इक्ष्वा[illegible] [illegible]नीके कुरुनामा पुत्रसें वंश चला, सो कौरव [illegible] पुरु[illegible] [illegible]नो श्रीऋषभदेवके पोते चन्द्रयश, और वंश [illegible] [illegible] [illegible]गपुरुषोके अंतर्भूतही गिने हैं मूर्यवंशके नामसे प्र[illegible] [illegible]न्यारे नहीं ॥ ३ ॥

४ [illegible] [illegible] जातिविशेष १ [illegible]

२, [illegible] ३ [illegible] ४ [illegible] जाति

विशेष ५, कोलादिक ६, नरवाहीनिका ७, इत्यादि अनेक प्रकारके हैं. ॥ ४ ॥

५. शिल्पार्य–इनके भी अनेक प्रकार हैं.। दरजीका काम करनेवाले १, तंतुवायाकुविंदा २, पट्टकारा पट्टकूलकुविंदा ३, दृतिकारा ४, विच्छिका ५, जण्विका ६, कठादिकारा ७, काष्टपादुकाकारा ८, छत्रकारा ९, वभारा १०, पप्भारा ११, पोत्थारा १२, लेप्पारा १३, चित्तारा १४, संखारा १५, दंतारा १६, भंडारा १७, जिप्भागारा १८, सेल्लारा १९, कोडिगारा २०, इत्यादि अनेक प्रकारके शिल्पार्य जानने ॥ ५ ॥

६. भाषार्य–जहां अर्द्धमागधी भाषाकरी बोलते हैं, और जहां ब्राह्मी लिपिके अठारह (१८) भेद प्रवर्त्ते हैं, अर्थात् लिखते हैं, सो भाषार्य.। ब्राह्मी लिपिके भेद ऊपर लिख आए हैं, और अठारह देशकी भाषा एकत्र मिली हुइ बोली जाती है, सो अर्द्धमागधी भाषा, ऐसें निशीथ चूर्णिमें लिखा है. ॥ ६ ॥

७. ज्ञानार्य–इनके पांच भेद हैं. मतिज्ञानार्य १, श्रुतज्ञानार्य २, अवधिज्ञानार्य ३, मनःपर्यवज्ञानार्य ४, केवलज्ञानार्य ५. इन पांचों ज्ञानोंमेंसें जिसको ज्ञान होवे, सो ज्ञानार्य. इन पांचों ज्ञानोंका स्वरूप नंदिसूत्रसें जान लेना. ॥ ७ ॥

८. दर्शनार्य–इनके दो भेद हैं. सरागदर्शनार्य १, वीतरागदर्शनार्य २; सरागदर्शनार्य, कारणभेद होनेसें कार्यभेद नयके मतसें दश प्रकारके हैं.। निसर्गरुचि १, उपदेशरुचि २, आज्ञारुचि ३, सूत्ररुचि ४, बीजरुचि ५, अभिगमरुचि ६, विस्ताररुचि ७, क्रियारुचि ८, संक्षेपरुचि ९, धर्मरुचि १०.। इनका स्वरूप ऐसें है.। भूतार्थत्वेन सद्भूता सच्चे हैं येह पदार्थ, ऐसें रूपसें जिसने जीव १, अजीव २, पुण्य ३. पाप ४, आश्रव ५, संवर ६, बंध ७, निर्जरा ८, मोक्षरूप ९, नव पदार्थ* जाने हैं; कैसें जाने

* श्रीमेघविजयजी उपाध्यायविरचित "तत्त्वगीता" में जीवका प्रतिपक्षी अजीव, पुण्यका पाप, आश्रवका संवर, बंधका मोक्ष, और निर्जराकी प्रतिपक्षिणी वेदना, ऐसें दश पदार्थ लिखे हैं, और श्री भगवती सूत्रमें भी नवपदार्थोंका वर्णन करके अनंतरही वेदनाका वर्णन किया है. ॥

हैं ? परोपदेशविना, जातिस्मरणप्रतिभारूप अपनी मतिकरके जाने हैं, और उनके सत्य होनेकी रुचि आत्माके साथ तत्त्वरूपकरके परिणाम जो करता है, तिसको निसर्गरुचि जाननी इस कथनकोही स्पष्टतर कहते है जो पुरुष जिनेंद्र देवके देखे हुए पदार्थोंको द्रव्य १, क्षेत्र २, काल ३, भाव ४ सें, वा नाम १, स्थापना २, द्रव्य ३, भाव ४ भेदसें, चार प्रकारसें स्वयमेव आपही परके उपदेशविना जाने, और श्रद्धे, किस उल्लेखकरके ? ऐसेंही है, येह जीवादिपदार्थ, जैसें जिनेंद्र देवोंने देखे हैं, अन्यथा नही है, यह निसर्गरुचि है । १ । इनही जीवादि नव पदार्थोंको, जो, छद्मस्थके उपदेशसें, वा जिन–तीर्थंकर–सर्वज्ञके उपदेशसें श्रद्धे, उसको उपदेशरुचि जाननी । २ । जो हेतु विवक्षितार्थगमकको नही जानता है, केवल जो प्रवचनकी आज्ञा है, तिसको सत्यकरके मानता है, जो प्रवचनोक्त है, सोही सत्य है, अन्य नही, यह आज्ञारुचि जाननी । ३ । जो अंगप्रविष्ट, वा अंगबाह्य सूत्रको पढता हुआ, तिस श्रुतकरकेही सम्यक्त्वको अवगाहन करे, सो सूत्ररुचि जाननी । ४ । जीवादि किसी एक पदकरके जीवादि अनेकपदोंमें सम्यक्त्ववान् आत्मा पसरेही है, कैसें पसरे है ? जैसें पानीके एकदेशगत तेलका बिंदु समस्त जलको
...क्रमण करता है, तैसें एकदेशउत्पन्नरुचि भी, तथाविध क्षयोप
...मानसें शेषतत्त्वोंमें भी रुचिमान् होता है, ऐसें बीजरुचि जा...
... । जिसने आचारादि एकादश (११) अंग, उत्तराध्ययनादि
...बारमा अंग, और उपांगरूप श्रुतज्ञान, अर्थमें देखा
...गम करी है, तिसको अधिगमरुचि कहते हैं । ६ ।
...
धर्मास्ति... ...भाव (पर्यायों) को यथायोग्य प्रत्यक्षादि
सर्व प्रमाणोंकर... ...नमादि नयोंके भेदोंकरके जिसने जाना है,
सो विस्ताररुचि जान... ...पर्याय प्रपंचके जाननेकरके निम
रुचिको अविधिमल होनेसे । ७ । ...दर्शन, चारित्र, तपमें विनय
तथा इत्यादि सर्व समितियोंविषे और मनोगुप्तिप्रमुख सर्व गुप्तियोंविषे,
जो क्रियाभावरुचि अर्थात जिसको भावसे ज्ञानादि आचारोंमें अनुष्ठान

करनेकी रुचि है, उसका नाम क्रियारुचि है, ।८। जिसने कुदृष्टि मिथ्यामत ग्रहण नही करा है, और जो जिनप्रवचनमें कुशल नही है, और जिसने कपिलादि मत उपादेयकरके ग्रहण नही करे हैं, तथा जिसको परदर्शनमात्रका भी ज्ञान नही है, ऐसें संक्षेपरुचिवाला जानना. ।९। जो जीव धर्मास्तिकायादिके धर्म, गत्युपष्टंभकादि स्वभावको और श्रीजिनेंद्रके कहे श्रुतधर्म और चारित्रधर्मको श्रद्धे, सो धर्मरुचिवाला जानना. ।१०। ऐसें निसर्गादि दशप्रकारका रुचिरूप दर्शन कहा. ॥ अब जिनलिंगचिन्होंकरके, सम्यग्दर्शन उत्पन्न हुआ जानीये, निश्चय करीए, वे लिंगचिन्ह दिखाते हैं. ॥ बहुमानपुरस्सर जीवादि पदार्थोंके जाननेवास्ते अभ्यास करना; जिनोंने जीवादि पदार्थोंका स्वरूप अच्छीतरेंसें जाना है, उनकी सेवा करनी, अर्थात् यथाशक्ति उनकी वैयावृत करनी; जिनकी जैनेंद्र मार्गकी श्रद्धा भ्रष्ट हो गइ है, ऐसे जो निन्हवादि, और कुदर्शन मिथ्या श्रद्धावाले शाक्यादिक, उनको वर्जना, अर्थात् उनोंका संग परिचय न करना; इन लिंगोंकरके सम्यक्त्व है, ऐसा श्रद्धीये. ॥ इस दर्शनके आठ आचार हैं, वे सम्यक्प्रकारसें पालने योग्य हैं. यदि उनका उल्लंघन करे तो, दर्शन (सम्यक्त्व)का भी अतिक्रम उल्लंघन होवे हैं; वे आठ आचार येह हैं. । निःशंकित शंकारहित होवे. शंका दो तरेंकी है; एक देशशंका, और दुसरी सर्वशंका; देशशंका जैसें सर्व जीवके समान जीवत्वके हुए भी, फिर कैसें एक भव्य है, और दूसरा अभव्य है? और सर्व शंका, प्राकृतनिबद्ध होनेसें सकलही यह प्रवचनकल्पित होवेगा. । यह देश और सर्वशंका करनी उचित्त नही है; जिस कारणसें यहां शास्त्रोंमें दो प्रकारके पदार्थ कहे हैं. एक हेतुसें ग्रहण होते हैं, और दूसरे विनाहेतुके ग्रहण होते हैं. जीवास्तित्वादि जे हैं, उनके सिद्ध करनेवाले प्रमाणके सद्भाव होनेसें, वे हेतुग्राह्य हैं. और अभव्यत्वादि अहेतुग्राह्य हैं, अस्मदादिकोंकी अपेक्षाकरके उनके साधक हेतुयोंके अभाव होनेसें, उनके हेतु प्रकृष्ट ज्ञानगोचर होनेसें; और प्राकृतमें जो प्रवचनका निबंध है, सो बालादिकोंके अनुग्रहार्थ है. ॥

उक्तच ॥

बालस्त्रीमूढमुर्खाणा नृणा चारिकाक्षिणाम् ॥
अनुग्रहार्थं तत्त्वज्ञै सिद्धात प्राकृत कृत ॥ १ ॥

एक अन्यबात भी है कि, प्राकृतमें भी प्रवचनका निषभ दृष्टेष्ट अविरोधी है. तो फिर, कैसें अवातर परिकल्पनाकी शका उत्पन्न होवे? क्योंकि, सर्वज्ञके विना अन्य कोइ भी दृष्टेष्ट अविरोधवचन, नही कह सकता है यह नि शकित नामा प्रथम आचार है । १ । नि काक्षित, वाछा करनेका नाम काक्षा है, सो कांक्षा जिसथकी नीकल गइ है, सो कहिये नि काक्षित, अर्थात् देश, सर्व काक्षारहित होवे, तहा देशकाक्षा, एक दिगबरादि दर्शनकी वाछा करे, और सर्वकाक्षा, सर्वही दर्शन अच्छे हैं, ऐसें चिंतन करना, येह दोनों प्रकारकी कांक्षा करनी ठीक नही है क्योंकि, शेष दर्शनोंमें षट् जीवनिकायपीडासें, और असत् प्ररूपणाके होनेसें, इति नि काक्षितनामा दूसरा आचार । २ । विचिकित्सा, मतिभ्रम फलप्रति सशय करना, जिनशासनतो अच्छा है, किंतु प्रवृत्त हुए मुझको इस कर्त्तव्यसें फल होवेगा, वा नही? क्योंकि, कृषीकर्मादिक्रियामें दोनोंही देखनेमें आते हैं, इत्यादि विकल्परहित होवे क्योंकि, नही अविकल उपायके हुए उपेयकी प्राप्ति नही होती है, अ[illegible]पित होवेही है, ऐसा निश्चय जो होना, सो निर्विचिकित्स नामा तीसरा [illegible]गार जानना । ३ । अमूढदृष्टि, बाल तपस्वीके तप, विद्या, अतिशय [illegible] मढस्वभावसें चलचित्त न होवे, सुलसा श्राविकावत्, सो [illegible] चौथा आचार । ४ । समानधार्मिक जनोंके गुणोंकी प्र[illegible] [illegible] करनी, सो उपबृहणानामा पाचमा आचार । ५ । धम[illegible] [illegible]) को फिर धर्ममेंही स्थापन करना, सो स्थिरीकरणनामा [illegible] । ६ । समानधार्मिक जनोंको अन्नपाणी वस्त्रादिकोंसें उपकार [illegible] [illegible]यतानामा सातमा आचार । ७ । प्रभावना, धर्मकथा, धर्मव[illegible] [illegible]के तीर्थका प्रकाश करना, उन्नति करनी, सो प्रभावना नामा आठमा आचार । ८ । इन आठों आचारोंसहित सम्यग्दर्शनसयुक्त जो होवे सो दर्शनार्य ॥ ८ ॥

९. चारित्रार्य–इनके भेद श्रीप्रज्ञापनासूत्रमें अनेक प्रकारके करे हैं. परंतु सामान्य प्रकारसें जो अहिंसा १, अनृत २, अस्तेय ३, ब्रह्मचर्य ४, अकिंचिन्य ५, इन पांचों महाव्रतोंका पालक होवे, सो चारित्रार्य जानना.॥९॥

येह नवभेद आर्योंके हैं. यह आर्यपद जैनमतके शास्त्रोंमें हजारों जगे उच्चारनेमें आताहै.

जैसें ॥

"॥ अज्जसुहम्मे अज्जजंबू अज्जपभ्भव इत्यादि ॥"

एक कल्पाध्ययनमेंही सैंकडों जगे उच्चार हैं. और जैनमतकी साध्वीयोंका नाम भी, आर्या हैं; इसवास्ते यह आर्य शब्द श्रेष्ठताका वाचक है. सांप्रतिकालमें दयानंदिये (दयानंदमतानुयायी) भी, अपने आपको आर्य समाजी कहलाते हैं. परंतु जो अर्थ, आर्यपदका हम ऊपर लिख आए हैं, सो जिसमें घटे सोही आर्यपदवाच्य है, अन्य नही है. । इति संक्षेपतः कतिपय शंकानिराकरणं समाप्तम् ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे चतुस्त्रिंशः स्तम्भः ॥ ३४ ॥

॥ अथ पंचत्रिंशस्तम्भारम्भः ॥

विदित होवे कि, व्यास सूत्रोंमें जैनमतके कहे तत्त्वोंका तीन सूत्रोंमें खंडन किया है, उन सूत्रोंपर शंकरस्वामीने भाष्य रचके तिसमें विस्तारसें पूर्वोक्त तत्त्वोंका खंडन लिखा है. वहुतसें जैनमती यह भी नही जानते हैं कि, शंकरस्वामी कौन थे? कव हुए हैं? और उनोंने हमारे मतका किस रीतिसें खंडन किया है? और वहुत ब्राह्मण लोक शंकरस्वामीने जैनीयोंके बेडे जहाज भरवाके डुबवा दिये थे, इत्यादि अनेक मिथ्या बातें कर रहे हैं, वे सर्व मालुम हो जावेंगी. इसवास्ते इस पंचत्रिंश (३५) स्तंभमें हम शंकरस्वामीकी उत्पत्ति, शंकरस्वामीके शिष्य अनंतानंदगिरिकृत शंकरविजय, और माधवाचार्यकृत दूसरी शंकरविजय ग्रंथानुसार लिखते हैं. और जिन जैनमतके तत्त्वोंका खंडन जिस-

तरें व्यासजी, शंकरस्वामी आदिकोंने किया
तीस (३६) मे स्तममें लिखेंगे

केरलदेशके एक नगरमें सर्वज्ञनामा ब्राह्मण, तिसकी भार्या रहते थे, उनोंकी एक विशिष्टानामा हुई, तब तिसके पिताने विश्वजित्नामा ब्राह्मणके विशिष्टा, शिवके आराधनमें तत्पर, और विवेकवाली ष्टाको त्यागके तिसका पति विश्वजित्, अरण्यमें तप करता हुआ, तबसें विशिष्टा अकेली रहगई और फिरें अतिप्रसन्न करती भई तब महादेव सर्वव्यापी वदनकमलमें प्रवेश करके उसके उदरमें पुत्ररूप गर्भकालसें पीछे जन्म हुआ, पुत्रका नाम शंकर ~ भीजन्मवर्णनम् ॥

बाल्यावस्थामेंही शंकरने गुरुमुखसें सर्व विद्या पढकें मी माताकी आज्ञा लेके नर्मदा नदीके किनारेपर वनमें नाथ सन्यासीके शिष्य हुए, तहांसें चलके शंकरस्वामीने कितनेक दिन निवास किया, और अपनी ब्रह्मविद्याका उपदेश करते रहे, तहा उनके कितनेही शिष्य होते भये. हिमालयपर्वतके बदरीआश्रममें जा रहे, तहां वेदांत, [illegible] भाष्य रचते हुए, और शिष्योंको अपने रचे हुए [illegible] तत्पीछे शारीरिकसूत्रोंका भाष्य रचा, तत्पीछे पाम[illegible] [illegible]नेकी इच्छा उत्पन्न भई, तब दिशाका चल[illegible] प्रथम कुमारिलभट्टके जीतनेवास्ते प्रयाग आये. जीस्नान करके शिष्यसहित किनारेपर बैठे तब सुनी, "जिसने पर्वतसें छलांग (+[illegible])मार तो यह कुमारिल, सर्व वेदार्थोंका जाननेवाला अपना गुणानिकरके दग्ध होता है सर्व शरीर तो जलगया है, है"—यह सुनके शंकरस्वामी तुरत वहां गए, और तुषराशिमें बैठे,

को देखा, और प्रभाकरादि शिष्यवर्ग रुदन कर रहे हैं. कुमारिलने अदृष्ट, अश्रुतपूर्व, शंकरस्वामीको देखके बडा आनंद पाया. तव शंकरस्वामीने उसको अपना भाष्य दिखलाया, तव कुमारिलने कहा तुमारा भाष्य तो ठीक है, परंतु इस भाष्यके प्रथमाध्यायमें अष्टसहस्र (८०००) वार्त्तिका चाहिये. जेकर मैंने दीक्षा नही लि होती तो, मैं इसकी वार्त्तिका करता; परंतु प्रथम तो मैं, बौद्धोंसें वादमें हारा, और उनकाही शरण मैंनें लिया; तव मैं उनका सिद्धांत सुनता रहा. कुशाग्रीयबुद्धिवाले बौद्धोंने वैदिकमत खंडन करा, तव मेरी आंखोंसें आंसु गिरे, और पासवालोंने मुझे देखा. तवसें उनोंनें मेरेपरसें विश्वास छोड दीया कि, यह अपने मतके माननेवाला नही है, हमने विरोधीमतवाले ब्राह्मणको पढाया, और इसने हमारे मतका तत्त्व जान लिया, इसवास्ते इसको उपद्रव करना चाहिये. ऐसी सलाह करके बौद्धोंने मुझको उच्चप्रासादसें नीचे गिराया, तव मैं ऊपर चढ आया, और मुखसें कहा कि, यदि श्रुतियां सत्य है तो, मैं, गिरता हुआ भी, जीता रहूं. मेरे जीते रहनेसें श्रुतियां सत्य हो गई, परंतु गिरनेसें मेरी एक आंख फुट गई, सो तो, विधिकी कल्पना है. एक अक्षरका प्रदाता गुरु होता है, शास्त्र पढानेवालेका तो क्याही कहना है? मैंने सर्वज्ञ बुद्धगुरुपाससें शास्त्र पढके उसकाही बुरा किया, उसके कुलकाही प्रथम नाश किया, और जैमनिमत माननेसें मैंने ईश्वरका खंडन किया, अर्थात् ईश्वर जगत्कर्त्ता सर्वज्ञ नही है, ऐसा सिद्ध किया. इन दोनों दूषणोंके वास्ते, यह प्रायश्चित्त मैंने किया है, परंतु, तूं, मेरे बहनोइ, माहिष्मतिनगरनिवासी, मंडनमिश्रको जीत लेवेगा तो, तेरा मत सर्वजगे प्रचलित होवेगा. इतना कहकर भट्ट मृत्युको प्राप्त हुआ.*

---

* आनदगिरिकृत शकरविजयके ५५ प्रकरणमें लिखा है। तत्र परमगुरु, भट्टाचार्यको देखके कहता हुआ, हे द्विज! तूने अज्ञानकरके यह अवस्था प्राप्त करी है, हे मूढ! तू गूढ अर्थवाले व्याख्यानोंको नही जानता है यत।

हंता चेन्मन्यते हंतुं हतश्चेन्मन्यते हतम्॥
उभौ तौ न विजानीतो नायं हंति न हन्यते॥

इतिश्रुते। मारनेवालेको जो हता–हिंसक मानता है, और हतको मरा मानता है, वे दोनोंही [illegible]

शंकरस्वामीने माहिष्मति नगरीमें जाके मंडनमिश्रको पराजय करा, तब उसकी भार्याने शंकरस्वामीको कामशास्त्रकी वातें पूछी, शंकरस्वामीको उनका उत्तर नही आया तब शंकरस्वामी वहांसें चले जब किसी देशमें अमरक नामा राजेका मुरदा देखा, तब एक पर्वतकी गुफामें जाके अपने शिष्योंको कहा कि, जबतक में पीछा इस शरीरमें न आऊं तबतक तुमने इसकी रक्षा करनी, ऐसा कहकर योग महात्म्यसें शंकरक शरीरको छोडके शंकरका जीव, उस राजाके शरीरमें प्रवेश कर गया, तब राजाका शरीर धीरे धीरे अंग हिलाके जीता होगया तब सर्व राणीयां मंत्री आदि आनंदित हुए, बडे उत्सवसें राजमंदिरमें लेगए मंत्रियोंने परस्पर विचार किया कि, यह किसी योगीका जीव राजाके शरीरमें प्रवेश कर गया है, नही तो, राज्य करनेकी ऐसी कुशलता कहांसें होवे? यह गुण समुद्र, फिर तिस शरीरमें न चला जावे, इस वास्ते जो मृतक शरीर होवे, वे सर्व, जला दो, ऐसी अपने नोकरोंको आज्ञा दे दी॰

इधर परम निपुण शंकरस्वामी, अपने मंत्रियोंको राज्य चलाना सौंपके, आप, राजाकी राणीयोंमें भोग करने लगे कैसे भोग? जो अन्य राजाओंको मिलने दुर्लभ है, बहुत सुंदर महेलोंमें राणीयोंके साथ राआयकी द्यूतक्रीडा करते हुए, अधरदशन, बाहुउद्वहन, कमलके गतिविपयय ग्लहपण करते हुए, अधरमें उत्पन्न हुआ सुधा ग मनोहर सुगंध पवनके मध्यमें सुगंधी कांता-बिबोक समास्नर्ग अतिप्रिय मदका करनहारा, ऐसा मदिरा

(शराब) यथा इच्छासें आप पीपीकर, कांतायोंको भी पिलाते हुए; मंदाक्षर थोडेसें पसीनेयुक्त मनोहर भाषण है जिसमें, निभृतरोमांचित सीत्कारयुक्त कमलकीतरें सुगंधित प्रसरणशील मन्मथ है जहां, ऐसे कांतामुखको पीके शंकर राजा, कृत्यकृत्य होते हुये; आवरणरहित जघन है जिसमें, दश्या है तले (नीचे)का होठ जिसमें, अतिशयकरके मर्दन करे हैं स्तनयुगल जिसमें, रतिकूजितशब्द है जिसमें, पाया है उत्साह जिसमें, पाया है क्रियाभेद संवेशन वा जिसमें, नृत्य कर रहे हैं गात्र जिसमें, गइ है इतरकी भावना जिसमें, ऐसा वचनके अगोचर, अतिशायिक सुख, उत्पन्न हुआ है; वहां भी, ब्रह्मानंदही, अनुभव करते रहें, सोही दिखाते हैं. श्रद्धा प्रीति रति धृति कीर्ति कामसें उत्पन्न हुइ विमलामोदिनी घोरा मदनोत्पादिनी मदामोहिनी दीपनी वशकरी रंजनी इतनी कामकी कला स्त्रीके अंगोंमें सर्व है, और स्त्रीके अंगोंमें अमुक २ तिथिमें मदन वास करता है, ऐसी कामकी कलामें जानकार मनोज्ञ है चेष्टा जिसकी, सकल विषयोंमें व्यापारयुक्त इंद्रियां है जिसकी, सदा प्रमदा उत्तम करी है जो कुचलक्षणगुरुकी उपासना तिसकरके अत्यंत भला निर्वृत है अंतःकरण जिसका, सो निरर्गल निराबाध निधुवन मैथुन तिसमें जो प्रधान ब्रह्मानंद तिसको भोगते हुए. सो शंकररूप राजा पूर्वकीतरें राणीयोंके साथ भोगोंको भोगता हुआ, जैसें वात्स्यायनने कामशास्त्रमें मैथुन सेवनेकी विधि लिखी है, तैसें शंकरस्वामी मैथुन सेवते हुए. सो कामशास्त्र स्वयमेव साक्षात् देखते हुये, वात्स्यायनके कहे सूत्र, और उनकी भाष्यको सम्यग् देखके, एक अभिनवार्थ गर्भित निबंध कामशास्त्र, नृपवेशधारी शंकरस्वामीने रचा. शंकरस्वामी तो, विलासिनीयोंसें उक्त रीतिसें भोग करते रहे.

इधर शंकरस्वामीके शिष्य, आपसमें कहने लगे कि, गुरुजीने एक मासकी अवधि कीथी, सो भी पांच छ दिन अधिक हो गये है. तो भी, गुरु अपने शरीरमें आकर हमारी अनुकंपा नही करते हैं. हम क्या करे? कहां ढूंढें? कहां जावें? ऐसी चिंता करके किसी एकको शरीरका रक्षक

ठहराके, आप सर्व ढूंढनेको गये, वे पर्वतादि देखते हुए अमरकनृपके देशमें आए उनोंने यहा श्रवण किया कि, यहाका राजा मरके फिर जी उठा है तव शिष्योंको धैर्यता आइ, और जाना कि, यही हमारा गुरु है और जाना कि, यह राजा गीतका लोभी, और स्त्रीयोंमें आसक्त है, तब उनोंने गानेवालोंका वेष किया, तव नगरमें उनके गानेकी प्रसिद्धि हुइ, तब राजाने उनको गान सुननेकेवास्ते बुलवाये, तव उनोंने गानमें "तत्त्वमसि" का उपदेश किया, जो आनदगिरिकृत विजयमें, और माधवकृत विजयमें प्रकट है उनका उपदेश सुनके शकरस्वामी होशमें आये और राजाका शरीरको छोडकर अपने शरीरमें प्रवेश करगये परंतु तिस अवसरमें राजाके चाकर, शकरस्वामीके शरीरको अग्निसें दाह कर रहेथे, तव शरीरमें प्रवेश करके शकरस्वामीने अग्निको शात करनेकेवास्ते नरसिंहका स्तोत्र पढा, जो टीकामें लिखा है अग्नि शात हुआ, तब शकरस्वामी वहासें चलके शिष्योंके साथ जा मिले वहांसें मडनमिश्रके घरमें आये, और तिसकी भार्याके प्रश्नोंके उत्तर देके उनको जीते मंडनको अपना शिष्य किया, वहासें दक्षिण दिशाको चले, महाराष्ट्रादि देशोंमें अपने रचे ग्रथोंका प्रचार करते हुए, और अपने शिष्योंसें पाशुपत, वैष्णव, वीर, शैव, माहेश्वरादि मतोंकों खडन करवाते हुए, अनेक तीर्थोंकी यात्रा की, अपनी मातासें मिलने गये, तिसका अत्यसंस्कार [illegible] पीछे दक्षिणादि देशोंमें फिरे वहासे चलके विदर्भ देशके सुधन्वा [illegible] अपना शिष्य किया, सुधन्वाने मना भी किया तो भी, [illegible] देशोंमें कापालियोंका पराजय किया, वहासें विचर त [illegible] नगरमें आये सर्व जगे दिग्विजय करके जिन२ मत वालोंका [illegible] नाम आनदगिरिने अपने रचे शकरविजयमें लिखा है जैनमतका [illegible] ने जैसा किया है, सो आनदगिरिने ऐसा लिखा है

तिस लेखकी भाषा —सदर्पाछ [illegible]स्वामीके पास 'जैन' आया कैसा है जैन ? कौपीनमात्रधारी है, मलकरके जिसका अग भरा

स्थानमें लिखेंगे, वहांसें जानलेना. तदनंतर नैमिश, दरद, भरत, सूरसेन, कुरु, पंचालादि देशोंको जीतता हुआ, गुरु भट्ट उदयनादिसें अजीत, ऐसे खंडनकार श्री हर्षको शंकरस्वामीने जीता. पीछे कामरूप देशविशेषोंमें जाके शंकरस्वामी शाक्तभाष्यके कर्त्ता, अभिनवगुप्तको जीतते हुये. तब अभिनवगुप्तने शंकरको कार्मण करनेका विचार किया तब शिष्योंसहित शंकरस्वामीके साथ शिष्यकीतरें वर्त्तने लगा, और शंकरके बध करनेका उद्यम करने लगा, सो अभिनवगुप्त, शंकरस्वामीको अभिचारिक कर्म करता हुआ. कैसा अभिचारिक कर्म? जिसकी वैद्य भी चिकित्सा न कर सके, ऐसा. तिससें भगंदरनामा रोग उत्पन्न हुआ, तिस रोगसें झरते हुए लोहीके कीचडसें शंकरकी धोती भीज गइ. अजुगुप्सपरिशोधनादिरूप सेवा, तोटकाचार्यनामा शंकरस्वामीका शिष्य करता हुआ.* शंकरस्वामीको रोगकी उपेक्षा करते देखके शिष्योंने बहुत

---

* शंकरस्वामीका मृत्यु भी इसी रोगसे हुआ है, तथापि सन् १८८४ के सत्यार्थप्रकाशके २८७ पृष्टोपरि स्वामिदयानंदसरस्वतिजीने लिखा है "जब वेदमतका स्थापन हो चुका और विद्या प्रचार करनेका विचार करतेही थे इतनेमें दो जैन ऊपरसें कथनमात्रवेदमत और भीतरसे कट्टरजैन अर्थात् कपटमुनि थे, शंकराचार्य उनपर अति प्रसन्न थे, उन दोनोंने अवसर पाकर शंकराचार्यको ऐसी विषयुक्त वस्तु खिलाई कि उनकी क्षुधा मंद होगई, पश्चात् शरीरमें फोडे, फुन्सी होकर छ महीनेके भीतर शरीर छूट गया." इस लेखसें सिद्ध होता है कि, स्वामिजीने स्वमतकी प्रसिद्धिकेवास्ते असत्य २ लेख लिखके और निंदा करके भोले लोकोंको फसानेकेवास्ते जाल खडा किया है तथा दयानंदसरस्वतिको जैनमतका ज्ञातपणा भी नही था, यदि होता तो, पूर्वोक्त पुस्तकमेंही ४४७ पत्रोपरि ऐसें क्यों लिखते? कि "दिगंबरोंका श्वेतांबरोंकेसाथ इतनाही भेद है कि दिगंबरलोग स्त्रीका संसर्ग नहीं करते और श्वेतांबर करते है." अफसोस स्वामिजीके लिखनेपर कि जिसको इतना भी ज्ञात नही! जब जैनमतका यथार्थ ज्ञातपणाही नही था तो, उसका करा खंडन किसको प्रमाण होगा? किसीको भी नही जगत्में कहलावत भी है 'आहारसदृशोद्गार' जैसा आहार भोजन होवे वैसाही उद्गार (डकार) आता है. सो स्वामिजीके चित्तमें तो, एक स्त्रीको कइ पति करने ऐसा निश्चय वसा था, तो फिर, ब्रह्मचर्यके तरफ ख्याल कहांसें होवे? अथवा स्वामिजीने जानबूझकेही जैनीयोंकी निंदा करनेकेवास्ते ऐसा गपोडा ठोक दिया होगा! क्योंकि, स्वामिजीके लेखसेंही सिद्ध होता है कि, झूठ लिखके किसीका मत खंडन होवे तो, अच्छा है देखो सत्यार्थप्रकाश पत्र २८७ पंक्ति २९. "अब इसमें विचारना चाहिये कि जो जीवब्रह्मकी एकता जगत् मिथ्या शंकराचार्यका निजमत था तो वह अच्छामत नहीं और जो जैनियोंके खंडनके लिये उस मतका स्वीकार किया हो तो कुछ अच्छा है." वाहजी वाह! क्या सुंदर श्रद्धान है! यह कपट नही तो अन्य क्या है? यह तो ऐसे हुआ कि, दूसरेको अपशकुन करनेकेवास्ते अपना नाक कटवाना!!!

नही कहना चाहिये, जीवके निर्गमके हुये फिर प्राप्तिके अभावसें स्वांतरमेंही मरण प्रसक्ति है, चौवीस तत्वोंमेंही लिंगशरीका अंतर्भाव होनेसें उसकी कल्पना व्यर्थ है भूतजाति इंद्रियोंको तद्रूप होनेसें इसवास्ते इस क्लिष्ट कल्पनाके करनेसें कोइ प्रयोजन नही है, तिसवास्ते एकही देह भिन्न २ जीवोंके है, तिसके पातानतर जीवकी मुक्ति है

उत्तर —तब शंकरस्वामीने कहा हे जैन! तू मूढतर है, तूने तत्त नही सूना है, पचीकृतभूतोंकरके पच्चीस (२५) सम्प्या हुइ है, तिसकरके चौवीस (२४) तत्त्व हुए हैं, पचविंशति (२५) सख्याको ज्ञानरूप होनेसें, चौवीसी (२४) करकेही देह सिद्धि होवेगी, ऐसें नही है अपचीकृतपचभूतके अभावसें, इस कारणसें, पचीकृत और अपचीकृत भूतोंकरके देहकी सिद्धि कहनी चाहिये, इसवास्ते स्थूल अपेक्षाकरके लिंगशरीर अगीकार किया है स्थूलशरीरके पातानतर, जीव, सूक्ष्मशरीर आसक्त हुआ, परलोक गमनारभ होता है, और अरूढ पुरुषके लिंगशरीरके नाश हुए, सर्व मनमेंही अध्यस्त होवे है और सो शुद्ध मन तो जाग्रदादि अवस्था स्वामीयोंसें विश्व तैजस प्राज्ञोंसें भी ऊपरि विराजमान, अगुष्ठमात्र सर्व जगत् प्रभु मनोन्माख्यको प्राप्त होता है, सोही कारण शरीरका लय है ऐसा प्रसिद्ध है ऐसें तीनो शरीरोंके नष्ट हुए सगुण, निर्गुण, उभयात्मक, मनोन्मनपरमात्मामें लीन होता है, सोही मोक्ष है ऐसें सर्व [illegible]तद्रिय ज्ञानवानोंने कहा है ऐसा अत्यत दु साध्य मोक्षकी प्राप्ति [illegible]ननर नही सभव होती है, ऐसा सिद्धात है, ऐसा शकर [illegible] जैन, शिष्योंके साथ स्वपक्षभाषासें रहित होया हुआ। [illegible]नप्रति चावलादि वस्तु आकर्षणशील वणिग्जन (मोदी) [illegible] [illegible]ननानदगिरिकृतो जैनमत निवर्हण नाम सप्तविंश प्रकरणम ॥

और जो माधवन द्वारा [illegible] ।कामें जैनमतके सप्ततत्त्व, और सप्तभगीका खडन, अपने रच विजयमे लिखा है, सो व्यासकृत सूत्रकी शकरचित भाष्यके अनुसारे लिखा है, तिसका उत्तर आगे चलके स

सुनकर सरस्वतिने शंकरस्वामीका पूजन करा. शंकरस्वामीने भी शारदापीठमें कितनेक काल वास किया, वहांसें केदार गये, और मृत्युको प्राप्त हुए. ॥ इति संक्षेपतः शंकरविजयानुसारिशंकरस्वामिस्वरूपकथनम् ॥

अब हमको जो कछुक कहना है, सो लिखते हैं. जो ब्राह्मणादि लोक कहते हैं कि, शंकरस्वामीने जैन बौद्धोंके बेडे भरके डुबवा दीए थे, सो कहना मिथ्या है. क्योंकि, जब भगंदर हुआ पीछे शारदामठमें वास किया है, और मरनेके थोडेसें दिन बाकी (शेष) थे, तब तो, 'जैन' 'बौद्ध' 'पतंजलि' आदि वादी, विद्यमान लिखे हैं. और शंकरविजयोंमें भी, पूर्वोक्त लेख नही है. इसवास्ते पूर्वोक्त ब्राह्मणादिकोंका कहना, महामिथ्या है. निःकेवल मिथ्यामतको मिथ्या बोलके सच्चा करा चाहते हैं, स्वामी दयानंदसरस्वतिवत्.

और पतिकेसंगमविना, आनंदगिरिने शंकरस्वामीकी माताजीके गर्भमें शंकरस्वामीकी उत्पत्ति लिखी है, सो प्रमाण बाधित है. क्योंकि पुरुषवीर्यको स्त्रीकी योनिमें प्रवेश करेविना, कदापि गर्भकी उत्पत्ति नही होती है; यह कहना प्रमाणसिद्ध है. इस कालमें पाश्चात्य विद्वानोंने सायन्स (SCIENCE) विद्याके बलसें अनेक वस्तुयोंके संयोगसें अनेक कार्यकी उत्पत्ति कर दिखलाइ है, परंतु किसी भी पदार्थोंके मिलापसें मनवाले मनुष्यकी उत्पत्ति, स्त्री पुरुषके संयोग, वा पुरुषवीर्यको स्त्रीकी योनिमें प्रवेश करेविना, नही कर सकते हैं. ऐसा तो किसी कालमें भी नही हो सकता है कि, स्त्री पुरुषके संगमविना, वा पुरुषवीर्य स्त्रीकी योनिमें प्रवेश करेविना, स्त्रीको गर्भकी उत्पत्ति होवे. परंतु मतानुरागी पुरुष, अपने मताध्यक्षपुरुषको, विना पिताके वीर्यसें उत्पन्न होना लिखते हैं, सो, मूढोंको आश्चर्य करनेकेवास्ते, वा व्यभिचार छिपानेकेवास्ते, और अपने मताध्यक्षकी अन्य मनुष्योंसें उत्तमता जनानेकेवास्ते, और ईश्वरकी अत्यद्भुत शक्ति प्रसिद्ध करनेके वास्ते, लिखते हैं. परंतु यह नही जानते थे कि, ऐसें अप्रमाणिक लेखको प्रेक्षावान् कदापि नही मानेंगे, और ऐसें लेखसें उनकी मातुश्रीको

समझाया कि, तुम रोगकी चिकित्सा करो तब शंकरस्वामीने कहा कि रोग, जन्मांतरके पापोंसें होता है, सो भोगनेसेंही नाश होता है, इस वास्ते भोगनेसेंही नाश करने योग्य है जेकर न भोगा जावे तो, जन्मांतरमें भोगना पडता है, यह शास्त्रका कहना है शिष्योंके अतिआग्रहसें शंकरस्वामीने चिकित्सा करानी मान्य की, तब शिष्योंने हजारों वैद्योंसें चिकित्सा करवाइ, परंतु भगंदर तो बढ गया तब सर्व वैद्य, अपने २ घरोंको चले गए तब शंकरस्वामीने महादेवका स्मरण किया, तब अश्विनीकुमार वैद्यको ब्राह्मणके वेषमें महादेवने भेजे, अश्विनीकुमार भी हाथमें पुस्तक लेके शंकरस्वामीके पास आके बैठ गये, और कहने लगे कि, भो यतिवर! यह तेरा रोग दूर नही हो सकता है क्योंकि, अभिचारकरके यह उत्पन्न हुआ है, ऐसा कहके वे निजस्थानमें जाते रहे तब शंकरस्वामीके शिष्य पद्मपादने क्रोधमें आके ऐसा मंत्र जपा, जिससें अभिनवगुप्त मर गया शंकरस्वामी पीछे काश्मीरमें गये, वहा सरस्वतिका मंदिर चतुर्द्वारवाला, जिसके मध्यमें सर्वज्ञपीठ नामा चौंतरा है, तिसपर जो चढे, सो सज्जनोंमें सर्वज्ञ होता है, और सोही उस मंदिरमें प्रवेश करनेमें समर्थ होता है, अन्य नही शंकरस्वामी उस मंदिरके दक्षिण दरवाजेको खोलनेवास्ते वहा आये, और दक्षिणका दरवाजा खोला, अनेक वादीयोंके प्रश्नोंके उत्तर दीए, जब ...तर (अंदर) जानेको उत्सुक हुए, तब सरस्वतिने कहा कि, केवल ... ऊपर चढनेवालाही सर्वज्ञ नही होता है, परंतु चढनेवालेमें ... चाहिये सो शुद्धता तुमारेमें है, वा नही? क्योंकि यात... ...मने सम्यक्प्रकारसें स्त्री भोगी है और कामकलारहस्यप्र... ...पात्र हुए हो इसवास्ते ऐसे पदपर चढनेकी तुमारेमें किसी प्रकारसे भी योग्यता नही है

यह सुनकर शंकरस्वामीने ... अंबे! जो तूने कहा कि, अंगना (स्त्री) भोगी, सो इसका उत्तर यह है कि जिस देहांतरमें कर्म किया है, तिससें यह देह अन्य है, इसवास्ते इस देहको पाप नही लगता है यह

सुनकर सरस्वतिने शंकरस्वामीका पूजन करा. शंकरस्वामीने भी शारदापीठमें कितनेक काल वास किया, वहांसें केदार गये, और मृत्युको प्राप्त हुए. ॥ इति संक्षेपतः शंकरविजयानुसारिशंकरस्वामिस्वरूपकथनम् ॥

अब हमको जो कछुक कहना है, सो लिखते हैं. जो ब्राह्मणादि लोक कहते हैं कि, शंकरस्वामीने जैन बौद्धोंके बेडे भरके डुबवा दीए थे, सो कहना मिथ्या है. क्योंकि, जब भगंदर हुआ पीछे शारदामठमें वास किया है, और मरनेके थोडेसें दिन बाकी (शेष) थे, तब तो, 'जैन' 'बौद्ध' 'पतंजलि' आदि वादी, विद्यमान लिखे हैं. और शंकरविजयोंमें भी, पूर्वोक्त लेख नही है. इसवास्ते पूर्वोक्त ब्राह्मणादिकोंका कहना, महामिथ्या है. निःकेवल मिथ्यामतको मिथ्या बोलके सच्चा करा चाहते हैं, स्वामी दयानंदसरस्वतिवत्.

और पतिकेसंगमविना, आनंदगिरिने शंकरस्वामीकी माताजीके गर्भमें शंकरस्वामीकी उत्पत्ति लिखी है, सो प्रमाण बाधित है. क्योंकि पुरुषवीर्यको स्त्रीकी योनिमें प्रवेश करेविना, कदापि गर्भकी उत्पत्ति नही होती है; यह कहना प्रमाणसिद्ध है. इस कालमें पाश्चात्य विद्वानोंने सायन्स (SCIENCE) विद्याके बलसें अनेक वस्तुयोंके संयोगसें अनेक कार्यकी उत्पत्ति कर दिखलाइ है, परंतु किसी भी पदार्थोंके मिलापसें मनवाले मनुष्यकी उत्पत्ति, स्त्री पुरुषके संयोग, वा पुरुषवीर्यको स्त्रीकी योनिमें प्रवेश करेविना, नही कर सकते हैं. ऐसा तो किसी कालमें भी नही हो सकता है कि, स्त्री पुरुषके संगमविना, वा पुरुषवीर्य स्त्रीकी योनिमें प्रवेश करेविना, स्त्रीको गर्भकी उत्पत्ति होवे. परंतु मतानुरागी पुरुष, अपने मताध्यक्षपुरुषको, विना पिताके वीर्यसें उत्पन्न होना लिखते हैं, सो, मूढोंको आश्चर्य करनेकेवास्ते, वा व्यभिचार छिपानेकेवास्ते, और अपने मताध्यक्षकी अन्य मनुष्योंसें उत्तमता जनानेकेवास्ते, और ईश्वरकी अत्यद्भुत शक्ति प्रसिद्ध करनेके वास्ते, लिखते हैं. परंतु यह नही जानते थे कि, ऐसें अप्रमाणिक लेखको प्रेक्षावान् कदापि नही मानेंगे, और ऐसें लेखसें उनकी मातुश्रीको

व्यभिचारका कलंक उत्पन्न होवेगा क्योंकि, जब ईश्वरीय शक्तिसें उनका उत्पन्न होना मानते हैं तो, क्या ईश्वर स्त्रीके गर्भविना अपने आपको मनुष्यरूप नही बना सकता था? इसवास्ते प्रत्यक्ष अनुमान आगमसें विरुद्ध ऐसा लेख, प्रेक्षावान् तो कोई भी नही लिख सकता है यद्यपि परमागममें ऐसा लेख है कि, पांच कारणोंसें, स्त्री, पुरुषके संगमविना भी, गर्भ धारण कर सकती है वे कारण यह हैं ॥

" ॥ पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं असंवसमाणी वि गब्भ धरेज्जा तंजहा दुव्वियडा दुन्निसन्ना सुक्कपोग्गले अहिट्ठेज्जा ॥ १ ॥ सुक्कपोग्गलसंसिट्ठे से वत्थे अंतो जोणीए अणुपविसेज्जा ॥ २ ॥ सयं वा से सुक्कपोग्गले अणुपविसेज्जा ॥ ३ ॥ परो वा से सुक्कपोग्गले अणुपविसेज्जा ॥ ४ ॥ सीओदगवियडेण वा से आयममाणीए सुक्कपोग्गले अणुपविसेज्जा ॥ ५ ॥

भावार्थ—वस्त्ररहित विरूपताकरके गुह्यप्रदेशकरके कथंचित् पुरुषनिसृष्ट शुक्र (वीर्य) पुद्गलवाले भूमिपट्टादिक आसनको आक्रमण करके बैठी हुइ, तिस आसनपर स्थित हुए पुरुषनिसृष्ट शुक्रपुद्गलोंको कथंचित् [illegible]निसें आकर्षण करके ग्रहण करे ॥१॥ तथा शुक्रपुद्गलसें लिबडा (भीजा) [illegible] उपलक्षणसें तथाविध और भी केशादि, तिसकी योनिमें प्रवेश [illegible] अनजानपने तथाविध वस्त्रको पहिना हुआ योनिमें प्रवेश [illegible]को ग्रहण करे ॥ २ ॥ तथा आपही पुत्रार्थिनी होनेसें और शान [illegible] योनेमें शुक्रपुद्गलोंको योनिमें प्रवेश करवावे ॥ ३ ॥ तथा पर, सासु [illegible] वास्ते वहुके गुह्यप्रदेशमें वीर्यपुद्गलोंको प्रवेश करवावे ॥ ४ ॥ [illegible] गत जो शीतल जल, तिसमें स्नान करती हुइ स्त्रीकी योनिमें [illegible] पतित उदकमध्यवर्त्ती शुक्रपुद्गल प्रवेश करे ॥ ५ ॥ इन पांच कारणोंसें स्त्री पुरुषसंगमविना भी गर्भ धारण कर सकती है

इन पूर्वोक्त पांचों कारणोमें भी, स्त्रीकी योनिमें पुरुषवीर्यके प्रवेश होनेसेंही, गर्भोत्पत्ति कही है. इसीतरें अन्य किसी स्त्रीकी योनिमें पूर्वोक्त पांच कारणोंसें वीर्य प्रवेश करजावे, और तिससें उसके गर्भोत्पन्न हो जावे तो, विरुद्ध नही. परंतु इन पूर्वोक्त पांचो कारणोंविना, और अपने पतिकेसंगमविना, जेकर गर्भोत्पत्ति हो जावे तो, अवश्यमेव तिस स्त्रीने व्यभिचारसें गर्भ धारण किया, ऐसा सिद्ध होवेगा. इसवास्ते पुरुषका वीर्य, जबतक योनिद्वारा स्त्रीके गर्भाशयमें नही जावेगा, तबतक कदापि गर्भोत्पत्ति नही होवेगी. इसवास्ते आनंदगिरिका लेख, युक्तिप्रमाणसें बाधित है.

और जो शंकरस्वामीको महादेवका अवतार, और सर्वज्ञ लिखा है, सो भी मिथ्या है. क्योंकि, जब शंकरस्वामी मंडनमिश्रकेसाथ वाद करनेको गए हैं, तब मंडनमिश्रकी दासीको मंडनमिश्रका घर पूछा ! क्या सर्वज्ञ ऐसेको कहते हैं कि, जिसको मंडनमिश्रके घरकी भी खबर नही थी कि, कहां है ? मंडनकी भार्याके पूछे प्रश्नोंका उत्तर नही आया, क्या सर्वज्ञसें भी कोई बात छीपी है ? मंडनमिश्रके घरमें व्यासजी, और जैमनीने श्राद्धका भोजन करा, क्या वेदांतीयोंके मतका यही पर्यवसान फल है, कि मरे पीछे, वा वेदांतीयोंकी मुक्ति हुए पीछे, वा ब्रह्म हुए पीछे भी, लोकोंके घरमें श्राद्ध जीमते फिरते हैं ? क्या सर्व वेदांती भी, इसीतरें लोकोंके घरमें श्राद्ध जीमते फिरेंगे ? जब व्यासजीही भूखे, और भोजन जीमते फिरते हैं तो, यह जगत्‌ही सबके काममें आता है, फिर जगत्‌को मिथ्या कहते हैं तो, क्या मिथ्या कहनेवालेही मिथ्यावादी नही है ? बलहारि है वेदांतियों ! तुमारे सिद्धांतका कैसा रहस्य है कि, मरे पीछे भी वेदांती, लोकोंके घरमें रोटीयां खाते फिरते हैं!!!

पूर्वपक्षः—मंडनकी भार्याके प्रश्नोंका उत्तर शंकरस्वामीने यह विचारके नही दिया कि, मेरे उत्तर देनेसें मेरे यतिधर्मका क्षय हो जावेगा.

उत्तरपक्षः—जब राजाके मृतक शरीरमें प्रवेश करके मदिरापान किया, सैंकडों राणीयोंसें वात्स्यायनोक्त चौरासी (८४) आसनोंसें मैथुन सेवन

व्यभिचारका कलक उत्पन्न होवेगा क्योंकि, जब ईश्वरीय शक्तिसें उनका उत्पन्न होना मानते हैं तो, क्या ईश्वर स्त्रीके गर्भविना अपने आपको मनुष्यरूप नही बना सकता था? इसवास्ते प्रत्यक्ष अनुमान आगमसें विरुद्ध ऐसा लेख, प्रेक्षावान् तो कोई भी नही लिख सकता है यद्यपि परमाप्तागममें ऐसा लेख है कि, पांच कारणोंसें, स्त्री, पुरुषसंगमविना भी, गर्भ धारण कर सकती है वे कारण यह हैं ॥

" ॥ पचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं असवसमाणी वि गप्भ धरेज्जा तजहा दुव्वियडा दुन्निसन्ना सुक्कपोग्गले अहिट्ठेज्जा ॥ १ ॥ सुक्कपोग्गलससिट्ठे से वत्थे अतो जोणीए अणुपविसेज्जा ॥ २ ॥ सय वा से सुक्कपोग्गले अणुपविसेज्जा ॥ ३ ॥ परो वा से सुक्कपोग्गले अणुपविसेज्जा ॥ ४ ॥ सीओदगवियडेण वा से आयममाणीए सुक्कपोग्गले अणुपविसेज्जा ॥ ५ ॥

भापार्थ —वस्त्ररहित विरूपताकरके गुह्यप्रदेशकरके कथचित् पुरुपनिसृष्ट शुक्र (वीर्य) पुद्गलवाले भूमिपट्टादिक आसनको आक्रमण करके बैठी हुइ, तिस आसनपर स्थित हुए पुरुपनिसृष्ट शुक्रपुद्गलोंको कथचित् [illegible] निमें आकर्षण करके ग्रहण करे ॥१॥ तथा शुक्रपुद्गलसें लिबडा (भीजा) [illegible] उपलक्षणसें तथाविध और भी केशादि, स्त्रिकी योनिमें प्रवेश [illegible] अनजानपने तथाविध वस्त्रको पहिना हुआ योनिमें प्रवेश [illegible] को ग्रहण करे ॥ २ ॥ तथा आपही पुत्रार्थिनी होनेसें [illegible] नमें शुक्रपुद्गलोंको योनिमें प्रवेश करवावे ॥ ३ ॥ और [illegible] तथा पर, [illegible] म्ने वहुके गुह्यप्रदेशमें वीर्यपुद्गलोंको प्रवेश करवावे ॥ ४ ॥ [illegible] गत जो शीतल जल, तिसमें स्नान करती हुइ स्त्रीकी योनिमें [illegible] पतित उदकमध्यवर्त्ती शुक्रपुद्गल प्रवेश करे ॥ ५ ॥ इन पांच [illegible] पुरुषसंगमविना भी गर्भ धारण कर सकती है

इन पूर्वोक्त पांचों कारणोमें भी, स्त्रीकी योनिमें पुरुषवीर्यके प्रवेश होनेसेंही, गर्भोत्पत्ति कही है. इसीतरें अन्य किसी स्त्रीकी योनिमें पूर्वोक्त पांच कारणोंसें वीर्य प्रवेश करजावे, और तिससें उसके गर्भोत्पन्न हो जावे तो, विरुद्ध नही. परंतु इन पूर्वोक्त पांचो कारणोंविना, और अपने पतिकेसंगमविना, जेकर गर्भोत्पत्ति हो जावे तो, अवश्यमेव तिस स्त्रीने व्यभिचारसें गर्भ धारण किया, ऐसा सिद्ध होवेगा. इसवास्ते पुरुषका वीर्य, जबतक योनिद्वारा स्त्रीके गर्भाशयमें नही जावेगा, तबतक कदापि गर्भोत्पत्ति नही होवेगी. इसवास्ते आनंदगिरिका लेख, युक्तिप्रमाणसें बाधित है.

और जो शंकरस्वामीको महादेवका अवतार, और सर्वज्ञ लिखा है, सो भी मिथ्या है. क्योंकि, जब शंकरस्वामी मंडनमिश्रकेसाथ वाद करनेको गए हैं, तब मंडनमिश्रकी दासीको मंडनमिश्रका घर पूछा ! क्या सर्वज्ञ ऐसेको कहते हैं कि, जिसको मंडनमिश्रके घरकी भी खबर नही थी कि, कहां है ? मंडनकी भार्याके पूछे प्रश्नोंका उत्तर नही आया, क्या सर्वज्ञसें भी कोई बात छीपी है ? मंडनमिश्रके घरमें व्यासजी, और जैमनीने श्राद्धका भोजन करा, क्या वेदांतीयोंके मतका यही पर्यवसान फल है, कि मरे पीछे, वा वेदांतीयोंकी मुक्ति हुए पीछे, वा ब्रह्म हुए पीछे भी, लोकोंके घरमें श्राद्ध जीमते फिरते हैं ? क्या सर्व वेदांती भी, इसीतरें लोकोंके घरमें श्राद्ध जीमते फिरेंगे ? जब व्यासजीही भूखे, और भोजन जीमते फिरते हैं तो, यह जगत्‌ही सबके काममें आता है, फिर जगत्‌को मिथ्या कहते हैं तो, क्या मिथ्या कहनेवालेही मिथ्यावादी नही है ? बलहारि है वेदांतियों ! तुमारे सिद्धांतका कैसा रहस्य है कि, मरे पीछे भी वेदांती, लोकोंके घरमें रोटीयां खाते फिरते हैं!!!

पूर्वपक्षः—मंडनकी भार्याके प्रश्नोंका उत्तर शंकरस्वामीने यह विचारके नही दिया कि, मेरे उत्तर देनेसें मेरे यतिधर्मका क्षय हो जावेगा.

उत्तरपक्षः—जब राजाके मृतक शरीरमें प्रवेश करके मदिरापान किया, सैंकडों राणीयोंसें वात्स्यायनोक्त चौरासी (८४) आसनोंसें मैथुन सेवन

किया, और एकमाससें अधिक कालपर्यंत उन राणीयोंके मुखके थूकलालाको अमृतसमान मनोहर मानके चूसा–चाटा, और कामशास्त्र सीखा, तिस थूक चाटनेमें भी ब्रह्मानंदही भोगा! क्या ऐसा काम करनेसें तो यतिधर्म क्षय नही हुआ, और कामप्रश्नोंके उत्तर देनेसें यतिधर्म क्षय होता था? हा! इसके उपरात अन्य बडा आश्चर्य कौनसा है? और शंकर तो 'ऊर्द्धरेत' था, राणीयोंकेसाथ भोग करनेसें 'अधोरेत' किसतरें हो गया?

पूर्वपक्ष –शंकरस्वामीके शरीरमें यह व्यवस्था थी, परंतु देहांतरमें यह नही इसीवास्ते तो शंकरस्वामीने काश्मीरवासिनी सरस्वतीके प्रश्नोत्तरमें कहा है कि, देहातरका किया पाप, इस देहको नही लगता है

उत्तरपक्षः–हमारी समझमूजब तो, तुमारी मानी सरस्वती, तुमारे कहनेसेंही अज्ञानिनी सिद्ध होती है क्योंकि, पहिले तो उसने शंकरस्वामीको परस्त्रीयोंसें भोग करनेवाले जानके निर्दोष पुरुष नही जाने, और फिर शंकरस्वामीका उत्तर सुनके चुपकी होके शंकरस्वामीकी पूजा करने लग गई!! अब हम यहा यह प्रश्न पूछते हैं कि, पाप करने और पापके फल भोगनेवाला वोही देह है, वा अन्यदेह? जेकर वोही देह है, तब तो जन्मांतरमें पापका फल भोगनेवाला देह नही है, तो फिर [illegible]करस्वामीकी देहने जन्मातरके देहके किये पापसें भगंदरका भारी दुःख [illegible] भोगा? और जब देहही पापका करने और भोगनेवाला है, [illegible] सदा मुक्त होना चाहिये, पुण्यपापसें रहित होनेसें, और [illegible] न होनेसें जेकर कहोगे, जीवही पुण्यपापका कर्त्ता, और [illegible] शंकरस्वामीही परस्त्रीगमनरूप पापके कर्त्ता और भोक्ता, इस[illegible] कामशास्त्र पढनेसें असर्वज्ञ सिद्ध होवेंगे तथा देहातरमे प्रवेश [illegible] उनकी ब्रह्मविद्या जाती रही, तैसेंही सर्व वेदातीयोके मरे पीछे ब्रह्मविद्या नष्ट हो जावेगी क्योंकि, वेदातीयोंके कहने मूजब ब्रह्मविद्या, देहके साथही संबंधवाली है, नही तो, देह छोडनेसें शंकरस्वामीकी ब्रह्मविद्या, नष्ट क्या होती? जेकर शंकरस्वामीकी

ब्रह्मविद्या नष्ट न होती तो, उनके शिष्य उनको 'तत्त्वमसि' का उपदेश क्यों करते? और शंकरस्वामी यदि सर्वज्ञ होते तो, अपनी करी मासकी अवधिको क्यों भूल जाते? और देहांतरमें कामशास्त्र सीखनेको क्यों जाते? क्या सर्वज्ञसें कोई शास्त्र छीपा है? और उत्तर देनेसें मेरा यतिधर्म क्षय हो जायगा ऐसा विचार क्यों करते? क्योंकि, फिर भी तो उसीही शरीरमें प्रवेश करके मंडनमिश्रकी भार्याको उत्तर दिये; क्या उस वखत उत्तर देनेसें यतिधर्म क्षय न हुआ? और शंकरस्वामीको साक्षात् महादेव माने हैं तो, क्या पार्वतीजीसें भोग करनेसें तृप्त न हुए? जिससें मृतक शरीरमें प्रवेश करके परस्त्रीयोंसें भोग करके उनके ओष्ठपुटोंकों चूसके ब्रह्मानंदका स्वाद लिया!!! और महादेवको तो, तुमने सर्वव्यापी माना है तो, राजाके मृतक शरीरमें अन्य कौन प्रवेश कर गया? और कौन निकल आया? क्योंकि, शंकर तो, आगेही सर्व जगे व्यापक है. और शंकरस्वामीको जो भगंदरका रोग हुआ, सो पूर्व जन्मांतरके पापोंके फलसें लिखा है तो, क्या पूर्वजन्मांतरोंमें शंकरस्वामीने पाप करे मानते हो? तथा तुम तो, पुण्यपापके फलका प्रदाता, ईश्वरको मानते हो तो, फिर क्या शंकरने अपने किये पापके फल भोगनेवास्ते, आपही अपनी गुदामें भगंदररूप फोडा करलिया? और अभिनवगुप्तने, जो अभिचारक कर्म करके शंकरको भगंदर फोडा किया तो, क्या अभिनवगुप्त शंकरसें अधिक सामर्थ्यवान् था? वा, शंकर अपने बदलेके मंत्रसें उसको दूर नही कर सकता था? क्योंकि, शंकरको तो, तुम सर्वशक्तिमान् मानते हो.

और शंकरस्वामीके शिष्य पद्मपादने नरसिंहरूप करके, और मंत्रजाप करके, भैरव, कपाली, और अभिनवगुप्तको मार डाला. क्या पद्मपाद अज्ञानी, रागी, द्वेषी था, जो ऐसा काम किया? क्या ब्रह्मवित् नही था? यदि था तो, शंकरकीतरें समभाव क्यों नही किया? इसवास्ते यही सिद्ध होता है कि, शंकर, और शंकरके शिष्योंमेंसें कोइ भी, रागद्वेष अज्ञान मोहसें रहित, और सर्वज्ञ, नही था. और जो जो कल्पना करके,

आनदगिरि, और माधवने अपने २ रचे विजयोंमें शंकरकी बाबत अधिक चढाइ लिखी है, सो अपने गुरु, और अपने मतके आचार्यके अनुरागसें लिखी है जैसें दयानदसरस्वतिके शिष्योंने इस समयमें "दयानददिग्विजयार्क" रचा है परतु जैसी दयानदसरस्वतिने मतोंकी विजय करीहै, और जैसी उसके मतकी धूल अन्यमतोंवाले लोक उडा रहे हैं, सो हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं समत १९४७ में सरकारी गिनती मुजब चालीस हजार (४००००) के लगभग दयानदसरस्वतिके मतके माननेवाले आर्यसमाजी गिने गए हैं, उनमें भी प्राय बडा भाग पजाबीयोंका है ऐसीही शकरविजय होवेगी क्योंकि, थोडेसेंही वर्ष हुए हैं, पजाबदेशमें उदासी और निर्मले साधुयोंने, वृत्तिप्रभाकर, विचारसागर, निश्चलदासकृत भाषावेदांतके पुस्तक, और उपनिषदादिकोंके अनुसारे, वेदातमत, प्रचलित किया है और वेदातमत माननेवाले जितने पजाबी हैं, इतने अन्य लोक नही मालुम होते हैं, और दक्षिणमें प्राय रामानुजके मतवालोंने, मध्वर्क, निंबार्क आदि वैष्णवमतवालोंने, और तुकारामादि भक्तिमार्गवालोंने, शकरस्वामीके चलाये शुद्धाद्वैत मतकी बहुत हानि करी और गुजरात, कच्छ, मालवा, मेवपाट, हडौती, ढुढाड (जयपुर), अजमेर, मारवाड, दिल्ली मडलादि देशोंमें प्राय शकरस्वामीका मत, प्रचलित नही हुआ मालुम होता है, क्योंकि, पूर्वोक्त [illegible] प्राय जैनमतकाही प्रबल बहुत था और शकरस्वामीके मतके [illegible] रहस्य, असमें नास्तिकोंके समान महा अज्ञान, और मिथ्यात्व [illegible] मनना और प्राय सत्कर्मोंसें भ्रष्टता, आदि कुचलन देखनेमें

आन

और जो [illegible] शिष्य आनदगिरि, जिसने शकरविजय पुस्तक रचा है, उसको ना [illegible] किंचित् भी, खबर नही थी क्योंकि उसने लिखा है कि, [illegible])मात्रधारी, मस्तकमें बिंदु-तिलकका धरनेवाला, मलदिग्ध अग [illegible] जैनमती, शकरस्वामीके पास शिष्योंसहित आया यह लेख तो, आनदगिरिने अयउयमय किसी भगा

दिके नशे चढेमें लिखा मालुम होता है. क्योंकि, ऐसे वेषका धारक तो श्वेतांबर, दिगंबर, दोनों मतोंमें नही लिखा है. श्वेतांबरमतमें तो, रजोहरण, मुखवस्त्रिका, चोलपट्टक, आदि चतुर्दश (१४) औघिक उपकरण, और कितनेही औपग्राहिक उपकरणधारी मुनि लिखा है. और दिगंबरमतमें पीछी कमंडलू आदिका धारी मुनि लिखा है. परंतु मस्तकमें बिंदु—तिलक करना, दोनों जगे, मुनिको निषेध है. इसवास्ते जैनमतका साधु तो, शंकरके पास गया, कोइ भी सिद्ध नही होता है. और श्रावक भी, नही. क्योंकि, जैन—श्रावक तो, नित्य त्रिकाल जिनेंद्रकी स्नानपूर्वक पूजा करनेवाला, स्फटिकरत्नसमान, अभ्यंतर बाहिरसें निर्मल लिखा है. उसके शरीरमें तो, मलका होना, कौपीनमात्र धारन करना, संभवही नही है. और शिष्योंका होना असंभव है. और दिगंबरमतका क्षुल्लक भी, नही था. क्योंकि, उसका भी वेष उक्त प्रकारका नही है. और सांप्रतिकालमें (आजकल) जे स्नानरहित, मलदिग्धांग, परमेश्वरकी पूजारहित, ढुंढकमतके माननेवाले प्रसिद्ध हैं, वे तो शंकरस्वामीके समयमें थेही नही, तो फिर, आनंदगिरिका लिखना भंगादिके नशेके वशसें नही तो, अन्य क्या है ?

और जो आनंदगिरिने, ‘ जिनदेव ’ शब्दकी व्युत्पत्ति आदि पूर्वपक्ष लिखा है, सो सर्व, स्वकपोलकल्पित महामिथ्या लिखा है. क्योंकि, वैसा पक्ष जैनीयोंको सम्मतही नही है. और शंकरस्वामीने उसका खंडन किया लिखा है, सो ऐसा है, जैसा वंध्यासुतका शृंगार वर्णन करना. इस हेतुसें शंकरविजयोंमें जो कथन जैन बौद्धमतकी बाबत लिखा है, सो सर्व, स्वकपोलकल्पित होनेसें मिथ्या है.

वाचकवर्ग ! ऐसें न समझें कि, यह ग्रंथ लिखनेवालेने द्वेष बुद्धिसें शंकरस्वामीविषयक, और दोनों शंकरविजयोंविषयक लेख, लिखे हैं. परंतु जब तुम सर्व मतोंका पक्षपात छोडके मध्यस्थ होके विचारोगे, तब तुमको ग्रंथकारका लेख सत्य २ प्रतीत होजावेगा.

और कुमारिलभट्ट, और शंकरस्वामीकी बाबत, हिंदुस्थानका संक्षिप्त इतिहास लिखनेवाले डॉक्टर हंटर, सि, आई, इ; एल एल, डी,

आनंदगिरि, और माधवने अपने ग्र
थिक वराह लिखी है, सो अपने
अनुरागसें लिखी है जैसे
मैं "दयानंदतिमिरभास्कर" रचा है.
मतोंकी विजय करीहै, और जैसी
लोक उठा रहे हैं, सो इन प्रत्यक्ष देख
गिनती मुजब चालीस हजार (४००००)
मतके माननेवाले आर्यसमाजी जिसे बने हैं
पंजाबीलोक है ऐसीही शंकरविजय
हुए हैं, पंजाबदेशमें उदासी और निर्मले
चारसाधुर, निश्चलदासकृत ग्रन्थोंके पुस्तकों
अनुसारे, वेदान्तमत, प्रचलित किया है. और
सबे पंजाबी हैं, इनसे अन्य लोक नहीं [illegible]
प्राय रामानुजके मतवालोंने, वल्लभ, निम्बार्क
और तुकरामादि भक्तिमार्गवालोंने,
मतकी बहुत हानि करी और गुजरात, दक्षण,
मुंढाड (जयपुर), अजमेर, मारवाड, जिसे
स्वाभाविक मत, प्रचलित नहीं हुआ [illegible]
ग्राम प्राय जैनमतवाली अवश्य बहुत था, और
[illegible] जिनमें [illegible]
[illegible] और प्राय [illegible]

दिके नशे चढेमें लिखा मालुम होता है. क्योंकि, ऐसे वेषका धारक तो श्वेतांबर, दिगंबर, दोनों मतोंमें नही लिखा है. श्वेतांबरमतमें तो, रजोहरण, मुखवस्त्रिका, चौलपट्टक, आदि चतुर्दश (१४) औधिक उपकरण, और कितनेही औपग्राहिक उपकरणधारी मुनि लिखा है. और दिगंबरमतमें पीछी कमंडलू आदिका धारी मुनि लिखा है. परंतु मस्तकमें बिंदु–तिलक करना, दोनों जगे, मुनिको निषेध है. इसवास्ते जैनमतका साधु तो, शंकरके पास गया, कोइ भी सिद्ध नही होता है. और श्रावक भी, नही. क्योंकि, जैन–श्रावक तो, नित्य त्रिकाल जिनेंद्रकी स्नानपूर्वक पूजा करनेवाला, स्फटिकरत्नसमान, अभ्यंतर बाहिरसें निर्मल लिखा है. उसके शरीरमें तो, मलका होना, कौपीनमात्र धारन करना, संभवही नही है. और शिष्योंका होना असंभव है. और दिगंबरमतका क्षुल्लक भी, नही था. क्योंकि, उसका भी वेष उक्त प्रकारका नही है. और सांप्रतिकालमें (आजकल) जे स्नानरहित, मलदिग्धांग, परमेश्वरकी पूजारहित, ढुंढकमतके माननेवाले प्रसिद्ध हैं, वे तो शंकरस्वामीके समयमें थेही नही, तो फिर, आनंदगिरिका लिखना भंगादिके नशेके वशसें नही तो, अन्य क्या है ?

और जो आनंदगिरिने, 'जिनदेव' शब्दकी व्युत्पत्ति आदि पूर्वपक्ष लिखा है, सो सर्व, स्वकपोलकल्पित महामिथ्या लिखा है. क्योंकि, वैसा पक्ष जैनीयोंको सम्मतही नही है. और शंकरस्वामीने उसका खंडन किया लिखा है, सो ऐसा है, जैसा वंध्यासुतका शृंगार वर्णन करना. इस हेतुसें शंकरविजयोंमें जो कथन जैन बौद्धमतकी बावत लिखा है, सो सर्व, स्वकपोलकल्पित होनेसें मिथ्या है.

वाचकवर्ग ! ऐसें न समझें कि, यह ग्रंथ लिखनेवालेने द्वेष बुद्धिसें शंकरस्वामीविषयक, और दोनों शंकरविजयोंविषयक लेख, लिखे हैं. परंतु जब तुम सर्व मतोंका पक्षपात छोडके मध्यस्थ होके विचारोगे, तब तुमको ग्रंथकारका लेख सत्य २ प्रतीत होजावेगा.

और कुमारिलभट्ट, और शंकरस्वामीकी बावत, हिंदुस्थानका संक्षिप्त इतिहास लिखनेवाले डॉक्टर हंटर, सि, आई, इ; एल एल, डी,

(Dr. SIR WILLIAM HUNTER, C I E LL. D) ने लिखा है, उसका तरजूमा गुजराती भाषामें सरकारकी तरफसें हुआ है उसके सन १८८ के छपे पुस्तकके पृष्ठ १०९ में लिखा है कि, ईसवी सन ८०० में बिहारका वासी कुमारिल ब्राह्मण हुआ, और उक्त सन ९०० में, शंकरस्वामी हुआ लिखा है और पृष्ठ १०३ में लिखा है कि, ईसवी सनके ८०० में सैकेमें कुमारिलने उपदेश करनेका प्रारंभ किया, वेदानुसार पुराना मत यह है कि, सगुणस्रष्टा, और ईश्वर है ऐसे मतका उसने बोध किया बौद्धधर्ममें सगुण ईश्वर नही था, पीछेकी एक कथामें ऐसा लिखा है कि, कुमारिलने बौद्धमतके विरुद्ध उपदेश किया, इतनाही नही, बलकि उनके ऊपर बहुत जुलम करनेके वास्ते किसी दक्षिण हिंदके राजाके मनमें ऐसा निश्चय करवाया कि, उस राजाने अपने सेवकोंको आज्ञा दी कि, बौद्धमत माननेवाले वृद्ध, और बालकपर्यंत, सेतुबंधरामेश्वरसें लेके हिमालयपर्यंत, जहा होवे, तहा सर्वको मार दो, और जो न मारे, उसको भी मार दो तथापि, हिमालयसें लेके कन्याकुमारीतक, जुलम करनेकी सत्ता जिसके हाथमें होवे, सो उक्त काम कर सके, परंतु ऐसा भारी राजा, उसकालमें हिंदमें नही था हा, दक्षिणहिंदके बहुतसें राजाओंमेंसें किसीएक राजाने अपने राज्यमें ऐसा जुलम गुजारा होवे तो, होवे परंतु यह तो, एक छोटीसी बातको बडी करके दिखलाइ है

तथा प्रो० मणिलाल नभुभाई द्विवेदी, अपने बनाये सिद्धांतसारमें लेखे ... —सातमे आठमे सैकेमें शंकराचार्य कुमारिल विगेरेने, इस (बौद्ध) ... प्रयत्न किया है कदापि किसी स्थलमें लडाई झगडा भा... ... भी बौद्धधर्मको ब्राह्मणोंने, राजाओंके पास निकलवा दिये आ... ...यायी (माननेवालों) को कतल करवा दिये यह बात तो, कचल ... ... लगती है [स्वर्गवासी पंडित भगवान लालजीका भी यही मत ... बौद्धधर्म हिंदुस्थानमेंसें कैसें लोप हो गया ? तिसवास्ते उस धर्मका ... जवाबदार है प्रथमसेंही इस धर्मकी नीति बहुत सख्त थी, इसमें साधु होके रहना बहुत मुश्किल था,

और सर्वोपरि यह कसर (खामी) थी कि, यह धर्म, केवल अभावरूप था. तिससें सामान्य लोकोंको एकवार इसपर जो रुचि हुइ थी, तिसको कायम रखनेके साधन—अच्छे ग्रंथ—सामान्य लोकोंको, और विद्वान लोकोंको रुचे, ऐसें संग्रह इत्यादि—इस धर्ममें नही थे. इसवास्ते कालांतरमें लोकोने वेदांतादि धर्मका सार, शंकरद्वारा स्पष्ट होनेसें, इसको (बौद्धधर्मको) छोड दीया; आपही इस धर्मका नाश हो गया.

तथा सन १८९५ अकटोबर तारिख १३ मीके छपे गुजराती पत्रमें "प्राचीन गुजरातका एक चित्र (२१)" इस विषयमें लिखा है कि, ब्राह्मणोऊपरांत अन्नसत्रके निर्वाहवास्ते, देवालयके निर्वाहवास्ते, टूटे फूटेके बनानेवास्ते, मठोंके निर्वाहवास्ते, इत्यादि भी दानपत्र मिलते हैं, उसमें वल्लभीके वखतमें बौद्धविहारको दान दीयेका भी प्रमाण मिलता है, ताम्रपत्रोंके दान बहुतकरके स्मार्त्तधर्मके प्रवर्त्तनवास्ते मालुम होते हैं, परंतु बौद्धधर्म चलता था, उसका ऊपर लिखा प्रमाण मिलता है. इसके सिवाय हीवेनथ्संगके पुस्तकोंसें भी भरुच, खेडा, वल्लभी, सुराष्ट्र, मालवादिकोंमें बौद्धधर्मका प्रचार देखनेमें आता है. प्राचीन समयमें उसका जो राजकीय, और दूसरा प्रावल्य था, सो देखनेमें नही आता है. और वो शनैः शनैः (धीमे धीमे) निर्वल होगया होना चाहिये. तो भी, धारवाड जिल्लेके डंबलगाममें एक शिलालेख, इ. स. १०९५ का है. उसमें बुद्धके विहारको, और आर्यतारादेवीके विहारको दान दीये हैं. जिससें देखनेमें आता है कि, कर्नाटकतरफ, बौद्धधर्म, यावत् इग्यार (११) मे सैकेतक चलता था, और उसको दानादिकोंसें आश्रय मिलता था. कन्हेरीकी गुफामें शक ७७५, और ७९९, के लेख हैं. येह राष्ट्रकूट राजा असोघवर्षके खंडणी (सातहत) कोंकणके शिलारराजा कपर्दीके वखतके हैं. तिसमें भी, बौद्धगुफाको दान कियेका लेख मिलता है. अर्थात् पौराणिक, स्मार्त्तधर्म, और कापालिकमतका शैवधर्म, वहुत प्रवल था; तथापि, बौद्धमत, यावत् वारमे (१२) सैकेतक चालु—विद्यमान रहनेके प्रमाण मिलते हैं.

इन पूर्वोक्त लेखोंसें माधवरचित

आसेतुरातुसाद्रिभ्य बौद्धानां
न हंति यः स हंतव्यो

भावार्थ—सेतुबंधरामधरसें लेकर,
लेकर बालकपर्यंतको, जो न हणे, (न मारे)
अपने नोकरोंप्रति राजे लोक कथन करते हुए

और माधवने जहां बौद्ध लिखा है, वहां
लिखा है माधवकृत विजयके सर्ग ७ के पृष्ठ
गिरिकृत विजयके पृष्ठ २११ में देखो क्या जाने,
योंने बहुत सताया होगा, इसवास्ते, बौद्धोंकी
लिख दिये !!! परंतु हमारी समझमूजब तो,
बौद्धमतके पृथक् २ जाननेकी भी, बुद्धि नही थी.
मतोपरि कुमारिलवत्, जुल्म गुजारा, ऐसा तो,
नही लिखा है

ऐसे पूर्वोक्त स्वरूपवाले शंकरस्वामीने, वेदान्तमतके
रचा है उसमें व्यासजीके कथनानुसार, जैनमतका
सो खंडन खंडनपूर्वक, आगेके स्तंभमें लिखेंगे । इत्यलम्॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते
शंकरस्वामिस्वरूपवर्णनोनामपंचत्रिंशः स्तम्भः॥

॥ अथ षट्त्रिंशस्तम्भारम्भः ॥

पंचत्रिंश (३५) स्तम्भमें शंकरस्वामीका स्वरूप कथन
इस छत्तीस (३६) मे स्तम्भमें शंकरस्वामीने जैसें
गीका खंडन किया है सो, और उसके खंडनका खंडन लिखते हैं।
प्रथम जैनमतवाले जैसा सप्तभंगीका स्वरूप मानते हैं, तैसा
लिखते हैं, जिससें वाचकवर्गको मालुम हो जायगा कि,

जो सप्तभंगीका खंडन लिखा है, सो, जैनमतानुसार है, वा अन्यथा है? और शंकरस्वामीको जैनमतकी सप्तभंगीका बोध, यथार्थ था, वा अयथार्थ था?

जैनमत माननेवालोंको प्रथम सप्तभंगीका स्वरूप जानना चाहिये. क्योंकि, सप्तभंगीही, जैनीयोंके प्रमाणकी भूमिकाको रचती है. दुर्दम जो परवादीयोंके वादरूप हाथी है, उनके पकडने अर्थात् पराजय करनेवास्ते, और अपने सिद्धांतके रहस्य जाननेवास्ते, श्रेष्ठ जे वादी है, वे सम्यक् प्रकारसें सप्तभंगीका अभ्यास करते हैं. ।

यदुक्तं ॥

या प्रश्नाद्विधिपर्युदासभिदया बाधच्युता सप्तधा ।
धर्मं धर्ममपेक्ष्य वाक्यरचना नैकात्मके वस्तुनि ॥
निर्दोषा निरदेशि देव भवता सा सप्तभंगी यया ।
जल्पन् जल्परणांगणे विजयते वादी विपक्षं क्षणात् ॥१॥

भावार्थः—प्रश्नवशसें विधि, और पर्युदास, भेदकरके अनेकात्मक वस्तुमें, एक एक धर्मकी अपेक्षा, सातप्रकारकी सर्वप्रमाणोंसें अबाधित, और निर्दोष, जो वचनकी रचना है, सो सप्तभंगी है. हे अर्हन्! देव! ईश्वर! ऐसी सप्तभंगी, तुमने कथन करी है, जिस सप्तभंगीकरके, वादरूपी ये संग्राममें, वादी, प्रतिवादीयोंको एकक्षणमें जीत लेते हैं. ॥ १ ॥ तथा यह जो शब्द है, सो यत् किंचित् सदंश, असदंश, भंगकरके अपने अर्थको प्रतिपादन करता हुआ, सप्तभंगहीको प्राप्त होता है. सर्वजगे यह ध्वनि विधिनिषेधकरके अपने अर्थको कहता हुआ, सप्तभंगीको प्राप्त होता हैं; यह तात्पर्यार्थ है. सो सप्तभंगी, कैसे स्वरूपवाली है? उसका लक्षण कहते हैं.

"॥ एकत्र वस्तुनि एकैकधर्मपर्यनुयोगवशात् अविरोधेन व्यस्तयोः समस्तयोश्च विधिनिषेधयोः कल्पनया स्यात्कारांकितः सप्तधा वाक्प्रयोगः सप्तभंगीति ॥"

अर्थ —जीव, अजीव आदि एक पदार्थकेविषे, एक एक धर्ममें प्रश्नके करनेसें, सकल प्रमाणोंसें अबाधित, भिन्न भिन्न विधि प्रतिषेध और अभिन्न विधि प्रतिषेधके विभागकरके, कहा हुआ, 'स्यात्' शब्दकरके लांछित, जो सातप्रकारके वचनका उपन्यास, सो सप्तभंगी जाननी 'विधि-सदंश' विधि जो है, सो सत्अंश है 'प्रतिषेधो सदंश' और प्रतिषेध, निषेध जो है, सो, असत् अंश है पदार्थसमूहके सदंश असदंश धर्मादि अनेक प्रकारके विभाग करनेसें अनंतभंगीका प्रसंग होता है, जिसके दूर करनेकेवास्ते सूत्रकारने एकपद (एकत्र) का ग्रहण किया है अनंतधर्मसंयुक्त जीव अजीवादि एक एक वस्तुमें भी विधि निषेधकरके, अनंतधर्मके परिप्रश्नकालमें अनंतभंगका संभव है, उसकी व्यावृत्तिकेवास्ते एक एक धर्ममें पर्यनुयोग ऐसे पदका ग्रहण करा है इस कहनेसें अनंतधर्मसंयुक्त अनंत पदार्थोंके हुए भी, प्रतिपदार्थके प्रतिधर्मके परिप्रश्नकालमें एक एक धर्ममें एक एकही सप्तभंगी होती है, यह नियम कथन किया है और अनंतधर्मकी विवक्षाकरके सप्तभंगीयोंका भी, नाना कल्पना करना हमको अभीष्टही है यह बात सूत्रकारनेही कही है ।

तथाहि ॥

"॥ विधिनिषेधप्रकारापेक्षया प्रतिपर्यायं वस्तुन्यनंतानामपि सप्तभंगीनां संभवात् प्रतिपर्यायं प्रतिपाद्यपर्यनुयोगानां सप्तानामेव संभवादिति ॥"

[illegible] विधिनिषेधप्रकारकी अपेक्षाकरके वस्तुके प्रतिपर्यायमें सातही [illegible] किंतु अनंतोंका नही क्योंकि, एक एक पर्यायप्रति, [illegible] होनेसें ऐसे हुए, अनंत पर्यायात्मक पूर्ण वस्तुमें, [illegible] संभव होनेसें, अनंतसप्तभंगी हो सकती है,

शिष्य [illegible] अनंत स[illegible] किंतु अनंतभंग[illegible]

अथ सप्तभंगी स्वरूप [illegible] है ।

तथाहि ॥

"॥ स्यादस्त्येव सर्वमिति स[illegible] कल्पनाविभजनेन प्रथमो भंगः ॥ १ ॥"

"॥ स्यान्नास्त्येव सर्वमिति पर्युदासकल्पना विभजनेन द्वितीयो भंगः ॥ २ ॥"

"॥ स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येवेति क्रमेण सदंशासदंशकल्पनाविभजनेन तृतीयो भंगः ॥ ३ ॥"

"॥ स्यादवक्तव्यमेवेति समसमये विधिनिषेधयोरनिर्वचनीयकल्पनाविभजनया चतुर्थो भंगः ॥ ४ ॥"

"॥ स्यादस्त्येव स्यादवक्तव्यमेवेति विधिप्राधान्येन युगपद्विधिनिषेधानिर्वचनीयख्यापनाकल्पनाविभजनया पंचमो भंगः ॥ ५ ॥"

"॥ स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तमेवेति निषेधप्राधान्येन युगपन्निषेधविध्यनिर्वचनीयकल्पनाविभजनया षष्ठो भंगः ॥६॥"

"॥ स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेवेति क्रमात् सदंशासदंशप्राधान्यकल्पनया युगपद्विधिनिषेधानिर्वचनीयख्यापनाकल्पनाविभजया च सप्तमो भंगः ॥७॥"

अथ अर्थसें प्रथमभंग प्रगट करते हैंः—प्रथमभंग विधिकी प्रधानतामें है. 'स्यात्' ऐसा अनेकांतका द्योतक, अर्थात् अनेकांतका प्रकाशक, अव्यय है. स्यात् इस कहनेकरके कथंचित् किसीप्रकारसें अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप चतुष्टयकरके घटादिवस्तु, अस्तिरूपही है; और अन्यवस्तुसंबंधी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव चतुष्टयरूपकरके घटादिवस्तु, नास्तिरूपही है.—तथाहि—घट जो है, सो, द्रव्यसें पृथिवीरूपकरके तो है, जलादिरूपकरके नही; क्षेत्रसें पाटालिपुत्रके क्षेत्रसें है, कान्यकुब्जके क्षेत्रसें नही; कालसें शिशरऋतुका बना हुआ है, वसंतऋतुका नही; भावसें रक्तरंगसें है, पीतरंगसें नही. ऐसेंही अन्यपदार्थ भी जानने. कथंचित् अर्थात् अपने द्रव्यादिचारोंकी अपेक्षाकरके, विद्यमान होनेसें, कथंचित् अस्तिरुप, घट है, और परद्रव्यादिचारोंकी अपेक्षाकरके, अविद्यमान होनेसें कथंचित् नास्तिरूप, घट है, ऐ-

सा उल्लेख अर्थात् स्वरूप है, जेकर अन्यपदार्थको अन्यपदार्थके रूपकी प्राप्ति होवे तो, पदार्थके स्वरूपकी हानिकी प्रसक्ति होवे एवकारके पठन करनेसें ऐसे स्वरूपवाला भग है, ऐसा एवकारसें अवधारण होता है और अवधारण तो, अवश्य करना चाहिये नही तो, किसीजगे कथन करा हुआ भी नाकथनसरीखा होवेगा तथा जेकर 'अस्त्येव कुभ' इतनाही कथन करीये तबतो, कुभको स्तंभादिकपणे अस्तित्वकी प्राप्ति होनेसें प्रतिनियत स्वरूपकी अनुपपत्ति होवेगी, इसवास्ते उसके प्रतिनियत स्वरूपकी प्रतिपत्तिके वास्ते 'स्यात्' ऐसा अव्यय, जोडा जाता है कथंचित् रूपकरके स्वद्रव्यादिचतुष्ट यकी अपेक्षा अस्ति, और परद्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षा नास्ति है, ऐसे प्रयोगकी प्रतिपत्तिकेवास्ते तथा तिस 'स्यात्' अव्ययको व्यवच्छेदफल 'एवकार' कीतरें जहाकहीं शास्त्रमें 'स्यात्' पद प्रकट नही भी कहा है, वहा भी, 'स्यात्' पद अवश्यमेव जानना

तदुक्तम् ॥

सोप्यप्रयुक्तो वा तज्ज्ञैः सर्वत्रार्थात् प्रतीयते ।
यथैवकारो योगादिव्यवच्छेदप्रयोजन ॥ १ ॥

अर्थ —जिसजगे 'स्यात्' पद, नही कहा है, तहां भी, तिस स्यात अव्ययके जानने वालोंनेअर्थसें जान लेना, अयोगव्यवच्छेदादि प्रयोजन [illegible] एवकारवत् तिसवास्ते एवकार, और स्यात्कार ये दोनों सातोंही [illegible] ग्रहण करना विधिप्रधान होनेसें विधिरूपही प्रथम भग है ॥ १ ॥

[illegible] भग दिखाते हैं—स्यान्नास्त्येवेति निषेधप्रधानकल्पन याय भग ॥ [illegible] नही है, ऐसे निषेधप्रधानकल्पनाकरके यह दूसरा भग है [illegible] साध्यके सद्भावसें अस्तित्व है, सोही साध्यके अभावमें नास्ति [illegible] हैं जैसें, घट, स्वद्रव्यचतुष्टयकरके अस्तिरूप सिद्ध है, तैसे [illegible] नष्ट हुआ थका, वोही घट, नास्तिस्वरूपकरके सिद्ध होता है [illegible] नास्तित्वके अविनाभावि होनेसें, तथाच क्षणविनश्वरभावोंकी उत्पत्तिमें विनाशमें कारण मानते हैं

तदुक्तम् ॥

उत्पत्तिरेव भावानां विनाशे हेतुरिष्यते ॥
यो जातश्च न च ध्वस्तो नश्येत् पश्चात् स केन च ॥१॥

अर्थः—उत्पत्तिही, भावोंके विनाशमें हेतु है, जो उत्पन्न हुआ और नाश नही हुआ, सो पीछे किसकरके नाश होवेगा? उत्पत्ति अस्तित्वकी सिद्धिको करती है, सोही उत्पत्ति, विनाश अपरपर्याय नास्तित्वका मूल-कारण होनेसें अविनाभाव सिद्ध करती है.

पूर्वपक्षः—जिस स्वरूपसें अस्ति है, जेकर तिसही स्वरूपसें नास्ति है, तव अस्तिनास्ति दोनोंको एकजगे होनेसें भाव, अभाव, दोनोंकी एकतापत्तिरूप अनिष्टका प्रसंग होवेगा.

उत्तरपक्षः—अस्तिनास्ति दोनोंकी भिन्नभिन्न समयमें प्ररूपणा होनेसें पूर्वोक्त दूषण नही, पदार्थोंका प्रतिसमय नाश होनेसें. तथा हम ऐसें नही मानते हैं कि, जिस समयमें जिसका उत्पाद है, तिसही समयमें उसका विनाश है; तिसवास्ते अस्तित्वके अविनाभावि नास्तित्व सिद्ध हुआ. ऐसें सर्ववस्तु, स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षा अस्तिनास्तिरूपसें सिद्ध है. अस्तित्वकी प्रधानदशामें प्रथमभंग है और निषेधदशामें दूसरा भंग है. ॥ २ ॥

अथ अर्थसें तीसरा भंग प्रकट करते हैं:—स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येवेति ॥ सर्ववस्तु, क्रमकरकेही, स्वपरद्रव्यादि चतुष्टयके आधार अनाधारकी विवक्षासें, प्राप्त अप्राप्त पूर्वअपर भावोंकरके, विधि और प्रतिषेध-प्रधानकरके विशेषित तीसरे भंगको भजनेवाला होता है, घटवत्. जैसें, घट, अपने द्रव्यादिचारकी अपेक्षा कथंचित् अस्तिरूपही है, और कथंचित् परद्रव्यादिचारकी अपेक्षा नास्तिरूपही है. विधिप्रातिषेध दोनोंकी प्रधानता कथन करनेवाला, यह तीसरा भंग है. ॥ ३ ॥

अथ अर्थसें चौथा भंग प्रकट करते हैं:—स्यादवक्तव्यं युगपद्विधिनिषेधकल्पनया चतुर्थ इति ॥ सदंश असदंश इन दोनोंका समकाल प्ररूपणानिषेधप्रधान यह भंग है.

तथाहि ॥ विधिप्रतिषेध युगपत् प्रधानभूत दोनों धर्मोको एक पदार्थमें युगपत् विधिनिषेध दोनोंकी प्रधानविवक्षामें तैसें शब्दको अनिर्वचनीय होनेसें घटादिवस्तु अवक्तव्य है, विधिप्रतिषेध दोनों धर्मोकरके आक्रांत भी तिस पदार्थको युगपत् दो धर्मोको अवक्तव्यरूप होनेसें, युगपत् विरुद्ध दो धर्मका प्रयोग नही हो सकता है, शीतउष्णकीतरें, सुख दुःखकीतरें क्रमकरकेही शब्दमें अर्थ कथन करनेका सामर्थ्य होनेसें, युगपत् एककालमें नहीं क्तक्तवतुकरके संकेतित निष्ठाशब्दवत्, अथवा पुष्पदत शब्दकरके संकेतित सूर्यचंद्रवत् निष्ठाशब्दकरके, वा, पुष्पदतशब्दकरके क्रमसेंही क्तक्तवतुका, और सूर्यचंद्रका अर्थ प्रत्यय होता है, अर्थात् निश्चय होता है तिसकरके द्वंद्वादिपदोंका भी, युगपत् अर्थ प्रत्यायकपणा, खंडन किया 'धवखदिरौ स्त इति' यहा भी क्रमकरकेही ज्ञान होता है, युगपत् नही क्योंकि, तैसेंही ज्ञान प्रत्यय होनेसें, और समकालमें शब्दको अवाचकपणा होनेसें, अवक्तव्य है जीवादि वस्तु, युगपत् विधिप्रतिषेध विकल्पनाकरके सक्रांतही स्थित होता है, यद्यपि वस्तु, अस्तित्वनास्तित्वधर्मोकरके संयुक्त भी है, तो भी, अस्तित्वनास्तित्वधर्मोकरके एककालमें कहा नही जाता है, इसवास्ते अवक्तव्य, अर्थात् अनिर्वचनीय घट है ऐसें फलितार्थ चतुर्थ भंग हुआ ॥४॥

अथ अर्थसें पांचमा भंग लिखते हैं —स्यादस्त्येव स्यादवक्तव्यमिति ॥ म[illegible]शपूर्वक युगपत् सदंश असदंशकरके अनिर्वचनीय कल्पनाप्रधानरूप यह [illegible] अपने २ द्रव्यादिचतुष्टयकरके विद्यमान हुआ भी, सदंश असदंश [illegible]पणा इस भंगमें करनेकी सामर्थ्यता नही है, जीवादि सर्व [illegible]चतुष्टयकी अपेक्षाकरके है, परंतु विधिप्रतिषेधरूपोंकरके कहन[illegible] [illegible]य है 'अस्त्यत्र प्रदेशे घट' है, इस प्रदेशमें, घट सत्रूप असत्[illegible] [illegible]ककालमें उन दोनोंका स्वरूप कथन करनेकी सामर्थ्यता न[illegible] [illegible]रूप हुआ भी, अवक्तव्य है ऐसें फलितार्थ पांचमा भंग हुआ ॥

अथ अर्थसें छठा भंग प्रकट [illegible] —स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमिति ॥ निषेधपूर्वक युगपत् विधिनिष[illegible] अनिर्वचनीय प्रधान यह

भंग है. परद्रव्यादिचतुष्टयके अविद्यमानत्वके हुए भी, सदंश असदंश ऐसी प्ररूपणा करनेको यह भंग असमर्थ है. इस भंगमें सर्ववस्तु जीवादि, परद्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षाकरके नास्ति भी है, तो भी विधिप्रतिषेधरूपोंकरके कहनेको अनिर्वचनीय है. 'नास्त्यत्र प्रदेशे घटः' नही है, इस प्रदेशमें, घट, सत्रूप असत्रूपकरके युगपत्स्वरूपके कथन करनेमें असामर्थ्य होनेसें नास्तित्वके हुए भी, अवक्तव्य है. इतिफलितार्थः षष्ठो भंगः ॥ ६ ॥

अथ अर्थसें सातमा भंग प्रकट करते हैंः—स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमिति ॥ अनुक्रमकरके अस्तित्वनास्तित्वपूर्वक युगपत् विधिनिषेध प्ररूपणानिषेधप्रधान यह भंग है. इति शब्द सप्तभंगीकी समाप्तिमें है; स्वद्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षाकरके अस्तित्वके हुए भी, परद्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षा नास्तित्वके हुए भी, विधि वा प्रतिषेध कथन करनेको असमर्थ है. इस भंगमें सर्वजीवादिवस्तु, स्वद्रव्यादि अपेक्षा अस्ति है, परद्रव्यादि अपेक्षा नास्ति है, तो भी, एककालमें विधिनिषेधरूपोंके साथ युगपत् प्रतिपादन करनेको असमर्थ है. जैसें स्वद्रव्यादि अपेक्षासें है, इसप्रदेशमें, घट, परद्रव्यादि अपेक्षासें, नही है; यहां घट, विधिप्रतिषेधरूपोंकरके युगपत्स्वरूप कथन करनेको असमर्थ होनेसें अवक्तव्य है. इति प्रकटार्थ है. इसवास्ते स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यं कथंचित् है, कथंचित् नही, और कथंचित् अवक्तव्य, इसभंगकरके दिखलाया है. इतिसप्तमभंगः ॥ ७ ॥

तथा यह जो सप्तभंगी है, सो सकलादेश, विकलादेश, दोतरेंके भंगवाली है.

तदुक्तं प्रमाणनयतत्वालोकालंकारे. ॥

"॥ इयं सप्तभंगी प्रतिभंगं सकलादेशस्वभावा विकलादेशस्वभावा च ॥ ४३ ॥ प्रमाणप्रतिपन्नानंतधर्मात्मकवस्तुनः कालादिभिरभेदवृत्तिप्राधान्यादभेदोपचाराद्वा यौगपद्येन प्रतिपादकं वचः सकलादेशः ॥ ४४ ॥ तद्विपरीतस्तु विकलादेशः ॥ ४५ ॥ इतिचतुर्थपरिच्छेदे. ॥

अर्थ—यह सप्तभगी, प्रतिभगसकलादेशस्वभाववाली, और विकला देशस्वभाववाली है तिनमें प्रमाणकरके अगीकार करा, जो अनतध र्मात्मक वस्तु, उसको कालादि आठोंकरके अभेदकी प्राधान्यतासें अर्थात् धर्मधर्मीके अभेदकी मुख्यतासें, अथवा कालादि अष्टकरके भिन्नभिन्न स्वरूपवाले भी, धर्मधर्मी है, तो भी, अभेदके उपचारसें, एककालमें कथन करे, ऐसा जो वाक्य, सो सकलादेश है और इसीका नाम प्रमाणवाक्य है भावार्थ यह है कि, युगपत् अर्थात् एकहीवार सपूर्ण धर्मोंकरके युक्त वस्तुको कालादि अष्टकरके अभेदकी मुख्यता, अथवा अभेदके उपचारकरके प्रतिपादन करता है, सो सकलादेश प्रमाणके आधीन होनेसें है, और सकलादेशसें जो विपरीत है, सो विक लादेश है, अर्थात् क्रमकरके भेदके उपचारसें, अथवा भेदकी मुख्यतासें भेदहीको कहे, सो नयके आधीन होनेसें विकलादेश है

प्रश्न—क्रम क्या है? और युगपत् क्या है?

उत्तर—जब अस्तित्वादि धर्मोंकी, कालादि अष्टकरके भेदसें कथन करनेकी इच्छा होवे, तब एक शब्दको अनेक अर्थके बोधन करानेकी शक्ति न होनेसें क्रम होता है, और जब तिनही धर्मोका कालादि अष्ट [illegible]रके अभेदस्वरूप माने, तब एकही शब्दकरके एक धर्मके बोधन [illegible]द्वारा तिस धर्मसें अभेदरूप सपूर्णधर्मस्वरूप वस्तुका प्रतिपादन [illegible]गपद्य होता है

[illegible] अष्ट येह है काल १, आत्मरूप २, अर्थ ३, सबध ४, ५ [illegible] ससर्ग ७, और शब्द ८।

तदु[illegible]

का[illegible] [illegible]सर्गोपक्रिये तथा ॥
गुणिदेशा[illegible] [illegible]कालादयः स्मृता ॥ १ ॥

इसका अर्थ ऊपर लिख[illegible] [illegible]जीवादियस्त्वस्त्येयेति—कथंचि त् जीवादिवस्तु अस्तिरूपही है यहा [illegible] [illegible] अस्तित्व है, तिसही कालमें

अपर अनंत धर्म भी वस्तुमें है, इसवास्ते उन धर्मोंकी कालकरके अभेदवृत्ति है. ॥१॥ जौनसा अस्तित्वको वस्तुका गुण होना यह आत्मरूप है, वोही अन्य अनंत गुणोंका भी है, इति आत्मरूपकरके अभेदवृत्ति. ॥२॥ जो अर्थ (द्रव्याख्य), अस्तित्वका आधार आश्रय है, वोही अर्थ द्रव्य, अन्य धर्मोंका आधार है, इत्यर्थकरके अभेदवृत्ति. ॥ ३ ॥ जो अविष्वग्भाव अर्थात् कथंचित् वस्तुरूपसंबंध अस्तित्वका है, वोही अपर धर्मोंका है इतिसंबंधकरके अभेदवृत्ति. ॥ ४ ॥ जो उपकार स्वानुरक्तकरण अपनाकरके खचित करना अस्तित्वको करते हैं, वोही उपकार अपर संपूर्णधर्मोंको करा जाता है, इति उपकारके अभेदवृत्ति. ॥ ५ ॥ जो गुणिके संबंधी क्षेत्ररूप देश अस्तित्वका है, वोही गुणिदेश अपर धर्मोंका है, इतिगुणिदेशकरके अभेदवृत्ति. ॥ ६ ॥ जो एकवस्तुरूपकरके अस्तित्वका संसर्ग है, वोही संसर्ग अशेष धर्मोंका है, इति संसर्गकरके अभेदवृत्ति. ॥

प्रश्नः—पीछे कहे संबंधसें संसर्गका क्या विशेष है ?

उत्तरः—अभेदकी मुख्यता और भेदकी गौणताकरके पीछे संबंध कहा, भेदकी मुख्यता और अभेदकी गौणताकरके यह संसर्ग कहा. इति. ॥७॥ जो अस्तिशब्द अस्तित्व धर्मवाले वस्तुका वाचक है, वोही अस्तिशब्द शेष अनंत धर्मात्मक वस्तुका वाचक है, इतिशब्दकरके अभेदवृत्ति. ॥ ८ ॥

पर्यायार्थिक नयके गौण हुए, और द्रव्यार्थिकके प्राधान्य हुए, अभेद होता है. द्रव्यार्थिकके गौण हुए, और पर्यायार्थिकके प्राधान्य हुए, एककालमें एकवस्तुमें नाना गुण न होनेसें गुणोंका अभेद नही होता है, यदि होवें भी तो, उसके आश्रय भिन्नाभिन्न होजावेंगे. ॥ १ ॥ नानी गुणसंबंधी आत्मरूपको भिन्न २ होनेसें; यदि आत्मरूपका अभेद होवे, तो, उनका भेद विरुद्ध होजावेगा. ॥ २ ॥ अपने अपने धर्मके आश्रयभूत अर्थको भी नाना होनेसें; यदि नाना, न होवे तो, नाना गुणोंका आश्रय होना विरुद्ध है. ॥ ३ ॥ संबंधका भी संबंधियोंके भेदसें भेद देखनेसें; नानासंबंधियोंने एकवस्तुमें एकसंबंध नही रचनेसें. ॥ ४ ॥ नानासंबंधियोंने करा जो भिन्न २ स्वरूपवाला उपकार तिसको नाना होनेसें; अनेक

उपकारियोंने एक उपकार करना विरोध है ॥ ५ ॥ गुणिके देशको एक एक गुणप्रति, भिन्नभिन्न होनेसें, यदि गुणिदेश भिन्नभिन्न, न होवे तो, पृथक् २ (जूदे २) अर्थोंके गुणोंका भी गुणिदेश एक होना चाहिये ॥६॥ संसर्गको भी एक एक संसर्गवाले साथ जूदाजूदा होनेसें, यदि संसर्ग एक होवे तो, संसर्गवालोंका भेद न होना चाहिये ॥ ७ ॥ शब्दको भी विषयविषयप्रति भिन्नभिन्न होनेसें, यदि सर्वगुण एकशब्दके वाच्य होवे तो, सर्व अर्थोंको एकशब्दके वाच्य होने चाहिये और अन्य सर्वशब्द निष्फल होने चाहिये ॥ ८ ॥ वास्तवसें अस्तित्वादिधर्मोंका एक वस्तुमें इस पूर्वोक्त रीतिसें अभेद न होनेसें कालादिकोंकरके भिन्न २ स्वरूपवाले धर्मोंका अभेदोपचार होवे है सो पूर्वोक्त अभेद अथवा अभेदोपचार, इन दोनोंकरके प्रमाणसिद्ध अनंतधर्मात्मक वस्तुको एककालमें कथन करे, ऐसा जो वाक्य सो सकलादेश है प्रमाणवाक्य यह इसीका दूसरा नाम है ॥ इतिसप्तभंगीस्वरूपवर्णनम् ॥

अथ इस पूर्वोक्त सप्तभंगीका खंडन, चार वेदके संग्रहकर्त्ता व्यास जीने, अपने रचे व्याससूत्रके दूसरे अध्यायके दूसरे पादके ३३।३४।३५। ३६। मे सूत्रोंमें जैनमतका खंडन किया है तिनमें तेतीसमे सूत्रमें "सप्तभंगी" का खंडन लिखा है, सो दिखाते हैं

तथाहि सूत्रम् ॥ " ॥ नैकस्मिन्नसंभवात् ॥ ३३ ॥ "

–कवस्तुमें सप्तभंग नही हो सकते हैं, असंभव होनेसें ॥

भाष्य शंकरस्वामीने किया है तिसका खुलासा भा

षाम

शंकर –जैनी सात पदार्थ मानते हैं, जीव १, अजीव २, आस्रव ३, संवर ... बंध ६, मोक्ष ७, और संक्षेपसें, जैनी, दोही पदार्थ मानते हैं ... २ पूर्वोक्त सातों पदार्थोंको इन जीव अजीव दोनोंहीके अंतर्भाव मा... और पूर्वोक्त दोनोंका प्रपंच पंचास्तिकायनाम मानते हैं, जीवास्तिकाय १, पुद्गलास्तिकाय २, धर्मा

स्तिकाय ३, अधर्मास्तिकाय ४, आकाशास्तिकाय ५. और इनके मतिकल्पनासें अनेक भेद कहते हैं. और सर्व पदार्थोंमें इस सप्तभंगीका समवतार करते हैं. स्यादस्ति, स्यान्नास्ति २, स्यादस्ति च नास्ति ३, स्यादवक्तव्यः ४, स्यादस्ति चावक्तव्यश्च ५, स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्च ६, स्यादस्तिच नास्तिचावक्तव्यश्च ७. ऐसेंही एकत्वनित्यत्वादिकोंमें भी सप्तभंगी जोड लेनी.

शंकरस्वामीः–यह पूर्वोक्त जैनीयोंका मानना ठीक नही है. क्योंकि, एक धर्मिमें युगपत् अर्थात् समकालमें सत् असत् आदि विरुद्ध धर्मोंका समावेश नही हो सकता है, शीतउष्णकीतरें. और जो येह सात पदार्थ निश्चित करे हैं, येह इतनेही हैं, और ऐसेंही स्वरूपवाले हैं, वे पदार्थ तथा अतथारूपकरके होने चाहिये. तब तो, अनिश्चयरूप ज्ञानके होनेसें संशयज्ञानवत् अप्रमाणरूप हुआ.

पूर्वपक्षी जैनीः–अनेकात्मक जो वस्तु है, सो निश्चितरूपही है; और उत्पद्यमानज्ञान, संशयज्ञानवत् अप्रमाणिक भी नही होसकता है.

उत्तरपक्षी शंकरस्वामीः–पूर्वोक्त कहना ठीक नही है. क्योंकि, निरंकुशही अनेकांतपणे सर्व वस्तु माननेसें जो निश्चय करना है, सो भी, वस्तुसें बाहिर न होनेसें स्यात् अस्ति स्यात् नास्ति इत्यादि विकल्पोंके होनेसें अनिर्धारितरूपही होजावेगा. ऐसेंही निर्धारण करनेवाला, और निर्धारण करनेका फल भी होजावेगा. पक्षमें अस्ति और पक्षमें नास्ति होजावेगी. जब ऐसें हुआ, तब, कैसें प्रमाणभूत वो तीर्थकर अनिर्धारित प्रमाण प्रमेय प्रमाता प्रमिति विषय उपदेशक होसकता है ? और कैसें तीर्थकरके अभिप्रायानुसारी पुरुष तिसके कहे अनिश्चितरूप अर्थमें प्रवर्त्तमान होवे ? क्योंकि, एकांतिक फलके निश्चित होनेसेंही तिसके साधनोंके अनुष्ठानोंमें सर्व लोक अनाकुल प्रवर्त्तते हैं, अन्यथा नही. इसवास्ते अनिश्चितार्थ शास्त्रका कहना उन्मत्तके वचनकीतरें उपादेय नही है. तथा पंचास्तिकायका संख्यारूप पंचत्व है, वा नही? एकपक्षमें है, दूसरेमें नही; तव तो, संख्या भी हीन वा, अधिक हो जावेगी. तथा पूर्वोक्त पदार्थ अवक्तव्य नही; जेकर अवक्तव्य होवे तव तो, कहने न चाहिये, परंतु कहते हैं.

तब अवक्तव्य कैसें हुए? और कहता थका तिसही तरें अवधारते हैं, वा नही भी अवधारते हैं? तथा तिनके अवधारणका फल सम्यग्दर्शन, है, वा नही? ऐसेंही उससें विपरीत असम्यग्दर्शन भी हे, वा नही? ऐसें कहता हुआ मत्तोन्मत्तपक्षकीतरें होवेगा, परंतु प्रवृत्तियोग्य नही होवेगा स्वर्गमोक्षपक्षमें भी भावपक्षमें अभाव, नित्यपक्षमें अनित्य, ऐसें अनवधारित वस्तुयोंमें प्रवृत्ति नही हो सकती है अनादिसिद्ध जीवादिपदार्थोंके निश्चितरूपोंको अनिश्चितरूपका प्रसग है ऐसें जीवादिपदार्थोंमें एकधर्मीमें सत्त्व असत्त्व विरुद्ध धर्मोंका सभव नही क्योंकि, जेकर असत् है तो, सत् नही होवेंगे इसवास्ते आर्हत्मत ठीक नही इस कहनेसें एक अनेक, नित्य अनित्य, व्यतिरिक्त अव्यतिरिक्तादि अनेकातका खडन जानना

॥ इतिव्यासाभिप्रायानुसारिशकरकृतसप्तभगीखडनम् ॥

अथ व्यासजी, और शकरस्वामीके खडनका खडन लिखते हैं—व्यासजी, और शकरस्वामी, जेनमतके तत्त्वके जाननेवाले नही थे, नही तो, ऐसे अयौक्तिक असमजस वचनोंसें सप्तभगीअनेकातवादका खडन कदापि नही लिखते, इनोंके पूर्वोक्त खडनको देखके, सर्व विद्वान् जेनी, उपहास्य करते हैं, और करेंगे क्योंकि, जिसतरें जेनी पदार्थोंका स्वरूप स्याद्वाद सप्तभगीसें मानते हैं, उनके माननेमुजब जेकर खडन ... नत तो, जेनीयोंके मनमें भी चमत्कार उत्पन्न होता, परंतु ... और शकरस्वामीने तो, भैंसकी जगे, भैंसे (झोटे—पाडे)को दोह ... नत तो, जेनीयोंका मत किंचित्मात्र भी खडन नही होता है ... जेनी सप्तभगीका स्वरूप मानते हैं, सो उपर लिख आये है

अथ भव्य ... किंचित्मात्र, शकरस्वामीकी उन्मत्तता, प्रकट करते हैं शकरस्वामी ... जेनी जीवादि सात पदार्थ मानते हैं तथा सक्षेपसें जीव, और ... मानते हैं और पृथक् सात पदार्थोंको जीवाजीवके अनभूत मानते ... पृथक् जीव अजीवकाही

प्रपंचरूप पंचास्तिकाय मानते हैं, इन पांचोंके अनेक भेद मानते हैं; और सर्व पदार्थोंमें सप्तभंगीका समवतार करते हैं. स्यादस्तिइत्यादि सप्तभंगी एकत्वनित्यत्वादिकोंमें भी जोडलेनी." यहां तक तो शंकरस्वामीका कहना ठीक है. क्योंकि, जैनी भी इसीतरें मानते हैं. परंतु जो शंकर कहता है, कि एकधर्मीमें युगपत् सत् असत् आदिधर्मोंका समावेश नही हो सकता है, सो कहना महामिथ्यात्वके उदयसें झूठ है. क्योंकि, जैसें जैनी मानते हैं, तैसें तो सत्य है. यथा घट, अपने मृत्तिकाद्रव्यका १, क्षेत्रसें पाटलिपुत्रक क्षेत्रका २, कालसें वसंतऋतुका बना हुआ ३, और भावसें जलधारणजलहरणक्रियाका करनेवाला ४, इन अपने स्वचतुष्टयकी अपेक्षा, घट, 'अस्ति' और 'सतूरूप' है. और पटके द्रव्यक्षेत्रकालभावकी अपेक्षा, घट, 'नास्ति' और 'असतूरूप' है. पटके स्वरूपकी नास्तिरूप घट है, और घटके स्वरूपकी नास्तिरूप पट है. सर्व पदार्थ अपने स्वरूपकरके अस्तिरूप है, और परस्वरूपकी अपेक्षा नास्तिरूप है. जेकर सर्व पदार्थ स्वपरस्वरूपकरके अस्तिरूप होवें, तब तो, सर्व जगत् एकरूप हो जावेगा. तब तो, विद्या, अविद्या, जड, चैतन्य, द्वैत, सत्, असत्, एक, अनेक, नित्य, अनित्य, समल, विमल, साध्य, साधन, प्रमाण, प्रमेय, प्रमुख सर्व पदार्थ एकरूप होजावेंगे. यह तो, महाप्रत्यक्षरूपविरोधकरके ग्रस्त है. क्योंकि, जब शंकरस्वामी ब्रह्मको 'सतूरूप' मानेगा, तब तो, ब्रह्मको पररूपकरके 'असत्' माननाही पडेगा. जेकर पररूपकरके ब्रह्मको असत् नही मानेंगे. तब तो पर जो अविद्या माया तिसके स्वरूपकी ब्रह्मको प्राप्ति हुई, तब तो ब्रह्महीके स्वरूपका नाश हो जावेगा. वाह रे शंकरस्वामी! आपने तो अपनीही आंखमें कंकर मारा!!!

तथा शंकरस्वामी लिखते है, 'जो येह सातपदार्थ निश्चित करे हैं, ये इतनेही हैं, और ऐसें स्वरूपवाले हैं, वे पदार्थ तथा अतथारूपकरके होने चाहियें. तब तो, अनिश्चितरूप ज्ञानके होनेसें संशयज्ञानवत् अप्रमाणरूप हुए.'

इसका उत्तर —सातों पदार्थ स्वस्वरूपकरके तथा रूपवाले है, और परस्वरूपकरके अतथारूप हैं जेकर ऐसें न माने, तब तो, ब्रह्म स्वस्वरूपकरके तथारूप है, सो परमायारूपकरके जेकर अतथारूप न माने, तब तो, ब्रह्म मायारूपकरके भी तथारूप सिद्ध हुआ, तब तो, वेदांतकी जडही सड गई परंतु विचारे शंकरस्वामीको ऐसा स्वमतका नाश होना कहांसे दीख पडे? अतत्त्ववित् होनेसें इसवास्ते जैनीयोंका माननाही ठीक है इसीवास्ते संशय ज्ञानकीतरें अप्रमाणिक ज्ञान भी, नही होता है

पुन शंकरस्वामी लिखते हैं, 'निरंकुश अनेकांतपणे सर्व वस्तुके माननेसें जो निश्चय करना है, सो भी वस्तुसें बाहिर न होनेसें अनिर्धारितरूपही होजावेगा ऐसेंही निर्धारण करनेवाला, और निर्धारण करनेका फल भी होजावेगा, पक्षमें अस्ति, और पक्षमें नास्ति होजावेगा जब ऐसें हुआ तब कैसें प्रमाणभूत वो तीर्थंकर अनिर्धारित प्रमाण प्रमेय प्रमाता प्रमितिविषय उपदेशक होसकता है? और कैसें तिस तीर्थंकरके अभिप्रायानुसारि पुरुषके कहे अनिश्चितरूप अर्थमें प्रवर्त्तमान होवे? क्योंकि, ऐकांतिक फलके निश्चित होनेसें तिसके साधन अनुष्ठानोंमें सर्वलोक अनाकुल प्रवर्त्तते हैं, अन्यथा नही इसवास्ते अनिश्चितार्थशास्त्रका कहना उन्मत्तके वचनकीतरें उपादेय नही

इसका उत्तर —हमने जो निश्चय किया है, सो, अनिर्धारितरूप नही [illegible] क्योंकि, हमने (जैनीयोंने) जो वस्तु माना है, सो, स्वस्वरूपकरके [illegible] र परस्वरूपकरके असत् है, और यह जो हमने निश्चय किया [illegible] ी अपने स्वरूपकरके निश्चित है, और परस्वरूपकरके न[illegible] करनेवाला, और निर्धारणका फल भी, अपने स्वरूप[illegible] और परस्वरूपकरके नास्तिरूपही है जैसें ब्रह्म, स्वस्व[illegible] और परस्वरूपकरके नास्तिरूप है, जेकर ऐसा न मा[illegible] स्वरूप परस्वरूपदोनोंही करके अस्तिरूपही होनेसें मत[illegible]नादि सर्व एकरूपही होजावेंगे, तब तो, ब्रह्म स्वरूपकाही ना[illegible] उसवास्ते उपर लिखेमुजब

माननेसें अर्हन् तीर्थकर, यथार्थ वक्ता सिद्ध हुआ. उनके कथनमें पुरुषोंको निःशंक प्रवर्त्तना चाहिये. उनके साधन अनुष्ठानोंमें भी अनाकुल प्रवृत्ति सिद्ध होगई. इसवास्ते तीर्थकरोंका कहनाही, सत्य और उपादेय है, नतु अन्योंका, अयौक्तिक होनेसें.

पुनरपि शंकरस्वामी लिखते हैं, "पंचास्तिकायके संख्यारूप पंचत्व है वा नही ? इत्यादि समाप्तिपर्यंत."

इसका उत्तरः—पचत्वसंख्या पंचत्वरूपकरके अस्तिरूप है, और अन्य संख्यायोंके स्वरूपकरके नास्तिरूप है; इसवास्ते संख्या, हीनाधिकरूपवाली नही है. तथा पूर्वोक्त सात पदार्थ एकांत अवक्तव्यरूप नही है, किंतु कथंचित् अवक्तव्यरूप है. युगपत् उच्चारणकी अपेक्षा-अवक्तव्य है, परंतु क्रमकी अपेक्षा अवक्तव्य नही है. इसवास्ते पूर्वोक्त लिखना शंकरस्वामीकी वेसमझीसें है. तथा जो पदार्थ स्वचतुष्टय और परचतुष्टयकी अपेक्षा जैसा है, तिसको वैसाही अस्तिनास्तिरूपसें कथन करना, और मानना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है; और इससें विपरीत असम्यग्दर्शन है. सम्यग्दर्शन, अपने स्वरूपकरके अस्तिरूप है; मिथ्यारूपकरके नही. और असम्यग्दर्शन भी, अपने स्वरूपकरके अस्तिरूप है, परस्वरूपकरके नही. स्वर्ग मोक्ष भी, अपने २ स्वरूपकरके अस्तिरूप है, और नरकादिरूपकी अपेक्षा नास्तिरूप है. तथा नित्य जो है, सो द्रव्यकी अपेक्षा है; और अनित्य जो है, सो पर्यायरूपकी अपेक्षा है. इसवास्ते हमारे जैनमतमें अवधारितही वस्तु है, इसवास्ते प्रवृत्ति है. अनादिसिद्ध-जीवादिपदार्थ भी अपने २ स्वचतुष्टयकी अपेक्षा अस्तिरूप है, और परचतुष्टयकी अपेक्षा नास्तिरूप है. इसवास्ते अनिश्चितरूपका प्रसंग नही है, ऐसेंही एकधर्मीमें स्वरूप अपेक्षा सत्, पररूप अपेक्षा असत् धर्मोंका संभव है. स्वरूपकरके वस्तुमात्र सत् है, और पररूपकरके असत् है. इसवास्ते आर्हतमत ठीक सत्य है. इसकहनेकरके एक अनेक, नित्य अनित्य, व्यतिरिक्त अव्यतिरिक्तादि धर्मधर्मीमें द्रव्यपर्याय भेदाभेदनयमतसें सर्व सत्य है. परंतु शंकरस्वामीने जो कुछ जैनमतके खंडनवास्ते खंडन

लिखा है, तिससें जैनमत तो खडन नही होता है, परतु वेदातमत खंडन होता है, सोही दिखाते हैं

शंकरस्वामी कहते हैं, " तुमने (जैनोने) जे सात पदार्थ माने हैं, वे अनेकात माननेसें निश्चित अनिश्चित होजावेंगे "

इसका उत्तर —तुमने वेदातीयोंने जो ब्रह्म माना है, सो एकांतनिश्चित है, वा अनिश्चित है ? जेकर एकांतनिश्चित है तो, जैसें सत्‌रूपकरके निश्चित है, तैसें असत्‌रूपकरके भी, निश्चित होना चाहिये, तिसको सर्वप्रकारसें निश्चित होनेसें जेकर अनिश्चित है, तो जैसें असत्‌रूपकरके अनिश्चित है, वैसेंही सत्‌रूपकरके भी, अनिश्चित होना चाहिये, तिसको सर्वथाप्रकार अनिश्चित होनेसें जब ऐसें हुआ, तब तो, ब्रह्मका नियतरूप न रहा, सत् असत्‌का सकर होनेसें जेकर कहोगे सत्‌करके निश्चित है, और असत्‌करके अनिश्चित है, तब तो, तुमने अपनेही हाथसें अपने शिरमें प्रहार दीया, अनेकांतवादके सिद्ध होनेसें तथा जैसें ब्रह्म सत्‌रूपकरके निश्चित है, और असत्‌रूपकरके अनिश्चित है, ऐसेंही सात पदार्थ, अपने स्वरूपकरके निश्चित है, और परस्वरूपकरके अनिश्चित है

पुन शकरस्वामी कहते हैं, " निरकुश अनेकातके माननेसें जो निश्चय करना है, सो भी, वस्तुसें वाहिर न होनेसें स्यात् अस्ति, नास्ति, होना चाहिये इत्यादि "

इसका उत्तरः—निश्चयस्वरूपकरके अस्ति है, सशय विपर्ययरूपकरके [illegible] है जेकर एकात अस्ति होवे, तव तो सशय विपर्ययरूपकरके भी, [illegible]ना चाहिये, जेकर एकात नास्ति होवे, तव निश्चयरूपकरके [illegible] ना चाहिये, इससें सिद्ध हुआ कि, कोई भी वस्तु एकांत नहीं [illegible] निर्धारण करनेवाला, और निर्धारणके फलको भी, स्वपर रूपकरके [illegible] मानना जेकर स्वपररूपकरके अस्तिनास्तिरूप वस्तु न मानीय, तव [illegible] नियतरूपके नाश होनेसें सर्व जगत् सर्वरूप होजावेगा तव [illegible] भी, नियतरूप नही रहेगा वाहरे ! शकरस्वामी ! अच्छा अनेकातका खडन किया अनेकात तो खडन नही हुआ, परतु ब्रह्मके स्वरूपका नाश कर दिया ! ! ! इतिशकरदृष्टतखडनस्य खडनम् ॥

अथ प्रसंगसें व्याससूत्रके ३४ मे सूत्रके भाष्यका खंडन लिखते हैं. ॥

तथाहि सूत्रम् ॥ "॥ एवञ्चात्माऽकार्त्स्न्यम् ॥ ३४ ॥"

शंकरभाष्यकी भाषाः—जैसें एकधर्मिविषे, विरुद्धधर्मका असंभवरूप दोष, स्याद्वादमें प्राप्त है, ऐसें आत्माको भी अर्थात् जीवको असर्वव्यापी मानना, यह अपर दोषका प्रसंग है. कैसें? शरीरपरिमाणही जीव है, ऐसें आर्हतमतके माननेवाले मानते हैं. और शरीरपरिमाण आत्माके हुए, आत्मा, अकृत्स्न असर्वगत है; जब मध्यमपरिमाणवाला आत्मा हुआ, तब घटादिवत्, अनित्यता आत्माको प्राप्त होवेगी; और शरीरोंको अनवस्थित-परिमाणवाले होनेसें मनुष्यजीव मनुष्यशरीरपरिमाण होके फिर किसी कर्मविपाक करके हाथीका जन्म प्राप्त हुए, संपूर्णहस्तिके शरीरमें व्याप्त नही होवेगा; और सूक्ष्म मक्खीका जन्म प्राप्त हुए संपूर्ण सूक्ष्म मक्खीके शरीरमें मावेगा नही. जेकर समानही यह जीव है, तब तो एकही जन्मविषे कुमारयौवनवृद्धअवस्थाओंविषे दोष होवेगा; शरीरकी सर्व अवस्थाओंमें शरीर व्यापक नही होवेगा, यह दोष होवेगा. जेकर कहोगे अनंत अवयव जीवके हैं, तिसके वेही अवयव अल्पशरीरमें संकुचित होजाते हैं, और महान् शरीरमें विकाश होजाते हैं.

उत्तरः—उन अनंतजीवअवयवोंका समानदेशत्व प्रतिहन्यत है, वा नही? जेकर प्रतिघात है, तब तो परिच्छिन्नदेशमें अनंतअवयव नही मावेंगे; जेकर अप्रातिघात है, तब तो अप्रतिघातके हुए एकअवयवदेशत्वकी उपपत्तिसें, सर्वअवयव विस्तारवाले न होनेसें, जीवको अणुमात्रका प्रसंग होवेगा. अपिच शरीरपरिच्छिन्न जीवके अनंत अवयवोंकी अनंतता भी, नही होसकती है. इति ॥ ३४ ॥

इस पूर्वोक्त व्याससूत्रकी भाष्यका उत्तर लिखते हैं. ॥

तथाहि सूत्रम् ॥

"॥ चैतन्यस्वरूपः परिणामी कर्त्ता साक्षाद्भोक्ता स्वदेहपरिमाणः प्रतिक्षेत्रं भिन्नः पौद्गलिकादृष्टवांश्चायमिति ॥ "

श्रीवादिदेवसूरिकृत प्रमाणनयतत्वालोकालकारे ॥

इस सूत्रके 'स्वदेहपरिमाण' इस पदकी और 'प्रतिक्षेत्रं भिन्न' इस पदकी टीकाकी भाषामें व्याख्या लिखते हैं। स्वदेहपरिमाण, इसकरके, आत्माका नैयायिकादि परिकल्पित सर्वगतपणा, निषेध करते हैं आत्माको सर्वगत मानिये, तब तो, जीवतत्त्वके प्रभेद, जे प्रत्यक्ष दिखलाइ देते हैं, उनकी प्रसिद्धि न होनेका प्रसग आवेगा, सर्वगत एकही आत्मा विषे नानात्मकार्योंकी समाप्ति होनेसें एककालमें नाना मनोका सयोग जो है, सो नानात्मकार्य है सो नानात्मकार्य एक आत्मामें भी होसकता है आकाशमें नानाघटादिसयोगवत इसकरके युगपत्, नानाशरीर इंद्रियोंका सयोग कथन किया

पूर्वपक्ष —युगपत् नानाशरीरोंविषे, आत्मसमवायिसुखदु खादिकोंकी उपपत्ति नही होवेगी, विरोध होनेसें

उत्तरपक्ष —यह तुमारा कहना ठीक नही है क्योंकि, युगपत् नाना भेरीआदिकोंविषे, आकाशसमवायि विततादिशब्दोंकी अनुपपत्ति होनेके प्रसगसें, पूर्वोक्त विरोधको अविशेष होनेसें

पूर्वपक्ष —तथाविध शब्दोंके कारणभेद होनेसें, विततादि नानाशब्दोंकी अनुपपत्ति नही है

उत्तरपक्ष —सुखादिकारणभेदसें, उस सुखादिकी अनुपपत्ति भी, एक मा विषे न होनी चाहिये, विशेषके अभाव होनेसें

—विरुद्धधर्मके अध्याससें, आत्माका नानात्व है

निम विरुद्धधर्मके अध्याससेंही, आकाशका भी नानात्व होवे

गम आकाशके प्रदेशोंका भेद माननेसें पूर्वोक्त दोष

पू

नही है

उत्तरपक्ष—प्र [illegible] आत्महो आत्माविषे भी, दोष नही है और जन्ममरणादि प्रा [illegible] सर्वगत आत्मवादीयोंके मतमें आत्मबहुत्वको नही साधता [illegible] भी, जन्ममरणादिकी उपपत्ति होनेसें घटाकाशादिके उत्पत्ति विनाशादिवत् नही घटाकाशकी

उत्पत्तिके हुए, पटादि आकाशकी उत्पत्तिही है, तिस समयमें विनाशके भी देखनेसें. और ऐसा भी नही है कि, विनाशके हुए, विनाशही है, उत्पत्तिका भी तिस समयमें उपलंभ होनेसें. और स्थितिके हुए, स्थितिही है, ऐसा भी नही है, विनाश, उत्पाद, दोनोंको भी तिस कालमें देखनेसें.

पूर्वपक्षः—बंधके हुए मोक्ष नही, और मोक्षके हुए बंध नही होवेगा, एक आत्मामें बंध मोक्ष दोनोंका विरोध होनेसें.

उत्तरपक्षः—ऐसा मानना ठीक नही है. क्योंकि, आकाशमें भी एक घटके संबंध हुए, घटांतरके मोक्षके अभावका प्रसंग होनेसें. और एक घटके विश्लेष हुए, घंटातरके विश्लेषका प्रसंग होनेसें.

पूर्वपक्षः—प्रदेशभेदउपचारसें, पूर्वोक्त प्रसंग नही है.

उत्तरपक्षः—तब तो आत्मामें भी तिसका प्रसंग नही है. आकाशके प्रदेशभेद माने हुए, एक जीवका भी प्रदेशभेद होवो; ऐसें कहांसें जीव-तत्त्व प्रदेशभेद व्यवस्था, जिससें आत्मा व्यापक होवे ?

पूर्वपक्षः—आत्माके व्यापकत्वके अभाव हुए, दिग्देशांतरवर्त्ति परमाणुओंके साथ युगपत्संयोगके अभावसें, आद्यकर्मका अभाव है; तिसके अभावसें अंत्यसंयोगका अभाव है, तिस निमित्तक शरीरका अभाव और तिसकरके उसके संबंधका अभाव है. तब तो विनाही उपायके सिद्ध हुआ, सर्वदा सर्व जीवोको मोक्ष होवे. अथवा होवे जैसें तैसेंकरी शरीरकी उत्पत्ति, तो भी, सावयव शरीरके प्रतिअवयवमें प्रवेश करता हुआ आत्मा, सावयव होवेगा; तैसें हुए इस आत्माको पटादिवत् कार्यत्वका प्रसंग है. और कार्यत्वके हुए, इस आत्माके विजातिकारण आरंभक है, वा सजातिकारण आरंभक है ? पूर्वपक्ष तो नही. क्योंकि, विजातियोंको अनारंभक होनेसें. दूसरा पक्ष भी नही. जिसवास्ते सजातिपणा, उनको आत्मत्वअभिसंबंधसेंही होवे हैं, तैसें हुए एक आत्माके अनेक आत्मा, आरंभक ऐसें सिद्ध हुआ, यह तो, अयुक्त है. क्योंकि, एक शरीरमें आत्माके आरंभक, अनेक आत्माका असंभव होनेसें. और संभवके हुए भी स्मरणकी अनुपपत्ति है. क्योंकि, नही अन्यने देखा हुआ,

अन्य स्मरण करनेको समर्थ होता है, अतिप्रसग होनेसें तिसकरके अर भ्यस्त्वके हुए, इस आत्माका, घटवत्, अवयवक्रियासें विभाग होनेसें सयोगविनाशसें विनाश होवेगा और शरीरपरिमाणत्व आत्माके हुए, आत्माको मूर्त्तत्वकी प्राप्ति होनेसें आत्माका शरीरमें प्रवेश नही होवेगा, मूर्त्तमें मूर्त्तके प्रवेशका विरोध होनेसें तब तो, निरात्मकही, संपूर्ण शरीर, होवेगा अथवा आत्माको शरीरपरिमाणत्वके हुए, बालशरीर परिमाणवाले आत्माको, युवशरीरपरिमाण अगीकार कैसें होवे? बाल परिमाणको त्यागके, वा न त्यागके? जेकर त्यागके, तब तो, शरीरवत्, आत्माको अनित्यत्वका प्रसग होनेसें, परलोकादिकके अभावका प्रसग होवेगा जेकर विनाही त्यागनेसें, तब तो, पूर्वपरिमाणके न त्यागनेसें, शरीरवत्, आत्माको उत्तरपरिमाणकी उपपत्ति नही होवेगी तथा हे जैन! तू आत्माको शरीरपरिमाण कहता है, तब तो, शरीरके खडन करनेसें, तिस आत्माका खडन, क्यों नही होता है? सो कहो

उत्तरपक्ष —हे वादिन्! जो तूने कहा कि, आत्माके सर्वव्यापीके अभावसें इत्यादि—सो असत्य है क्योंकि, जो जिसकरके सयुक्त है, सोही तिसप्रति उपसर्पण करता है, ऐसा नियम नही है चमकपाषाणकरके लोहा सयुक्त नही भी है, तो भी तिसके आकर्षण करनेकी उपलब्धिसें

पूर्वपक्ष —जेकर असयुक्तका भी आकर्षण होवे, तब तो, तिसके [illegible]रीरारभप्रति, एकमुखी हुए, त्रिभुवन उदरविवरवर्त्ति परमाणुओंका उप[illegible] प्रसग होनेसें, न जाने कितने परिमाणवाला तिसका शरीर होवेगा?

[illegible] —सयुक्तके भी, आकर्षणमें यही दोष, क्यों नही होवेगा? [illegible] होनेकरके, सकलपरमाणुओंका तिस आत्माके साथ सयाग

पूर्वपक्ष —[illegible]मेँ अदृष्टके वशसें विवक्षितशरीरके उत्पादन करनेमें, योग्य [illegible] उपसर्पण करते हैं

उतरपक्ष —तब तो हमार [illegible] नन्य है।

सावयवशरीरके, प्रतिअवयवनम, प्रवे[illegible] करना आ

कथनमात्रही है. क्योंकि, सावयवपणा, और कार्यपणा, कथंचित् आत्मा-विषे हम मानतेही हैं. परंतु ऐसें माननेसें, घटादिवत्, पहिले प्रसिद्ध समानजातीयअवयवोंकरके आरभ्यत्वकी प्रसक्ति नही है. क्योंकि, नही निश्चयसें, घटादिकोंविषे भी, कार्यसें प्रथम प्रसिद्ध समानजातीय कपालसंयोगकरके आरभ्यत्व देखा है. कुंभकारादि व्यापारसंयुक्त माटीके पिंडसें, प्रथमही, घटके पृथुबुध्नोदरादि आकारकी उत्पत्ति प्रतीत होनेसें. द्रव्यकाही, पूर्वाकार परित्यागनेसें, उत्तराकार परिणाम होना, सोही, कार्यत्व है. सो कार्यत्व, बाहिरकीतरें अभ्यंतर भी अनुभूतही है. और पटादिकोंविषे स्वअवयवसंयोगपूर्वक कार्यत्वके देखनेसें सर्वजगे तैसें होना चाहिये, यह युक्त नही है. क्योंकि, नही तो, काष्ठविषे लोहलेख्यत्वके उपलंभ होनेसें, वज्रमें भी लोहलेख्यत्वका प्रसंग होवेगा. और प्रमाणबाधन तो दोनोंजगे तुल्य है. और उक्तलक्षणकार्यत्व अंगीकार करें भी, आत्माको, अनित्यत्वके प्रसंगसें, प्रतिसंधान (स्मरण)के अभाव-की प्राप्ति नही होती है. क्योंकि, कथंचित् अनित्यत्वके हुएही, इस संधानको, उपपद्यमान होनेसें. और जो यह कहा कि, शरीरपरिमाण आत्माके हुए, आत्माको मूर्त्तत्वकी प्राप्ति होवेगी इत्यादि— तहां मूर्त्तत्व किसको कहते हो ? असर्वगतद्रव्यपरिमाणको, वा रूपा-दिमत्वको ? तिनमें आद्य पक्ष तो, दोषपोषकेतांइ नही है, संमत होनेसें. और दूसरा पक्ष तो, अयुक्त है, व्याप्तिके अभावसें. क्योंकि, जो असर्वगत है, सो नियमकरके रूपादिमत् है, ऐसा अविनाभाव नही है. क्योंकि, मनको असर्वगत होनेसें भी, रूपादिमत्वके अभावसें. इसवास्ते आत्माकी, शरीरविषे अनुप्रवेशकी अनुपपत्ति नही है, जिसवास्ते शरीर निरात्मक होजावे. असर्वगत द्रव्यपरिमाणलक्षणमूर्त्तत्वको, मनोवत् प्रवेशका अप्रतिबंधक होनेसें, रूपादिमत्वलक्षण मूर्त्तत्वसहित जला-दिकोंका भी, भस्मादिविषे अनुप्रवेश नही निषेधीये हैं, और मूर्त्तत्वसें रहित भी आत्माका प्रवेश शरीरमें प्रतिषेध करते हो तो, इससें अधिक और कौनसा आश्चर्य है ?

और जो यह कहा कि, देहपरिमाणत्वके हुए, आत्माको बालशरीर परिमाण त्यागके, इत्यादि—सो भी, अयुक्त है क्योंकि, युवशरीरपरिमाण अवस्थाके विषे, आत्माको बालशरीरपरिमाणके परित्यागे हुए, आत्माका सर्वथा विनाशके असंभव होनेसें, विफण अवस्थाके उत्पाद हुए सर्पवत् तब तो, कैसें परलोकके अभावका अनुषंग होवे? पर्यायसें आत्माके अनित्यत्वके हुए भी, द्रव्यसें नित्यत्व होनेसें। और जो यह कहा कि, यदि आत्माको शरीरपरिमाणता है, तब तो शरीरके खंडन करनेसें इत्यादि—सो भी, ठीक नही है क्योंकि, शरीरके खंडनेसें कथंचित् आत्माका खंडन भी इष्ट होनेसें शरीरसंबद्ध आत्मप्रदेशोंसेंही, कितनेक आत्मप्रदेशोंका खंडितशरीरप्रदेशविषे अवस्थान है, सोही, आत्माका किसी प्रकारसें खंडन है, नतु सर्व प्रकारसें सो यहां विद्यमानही है अन्यथा तो, शरीरसें पृथग्भूत अवयवके कंपनकी उपलब्धि नही होवेगी और यह भी नही है कि, खंडित अवयव प्रविष्टआत्मप्रदेशको पृथग् आत्मतत्वका प्रसंग है, उन आत्मप्रदेशोंका खंडित अवयवसें निकलके पुन तिसही शरीरमें प्रवेश होनेसें और यह भी नही है कि, एकत्र संतानविषे अनेकात्माका प्रसंग होवेगा क्योंकि, अनेकार्थप्रतिभासि ज्ञानोंका एक प्रमाताके आधारकरके प्रतिभासके अभावका प्रसंग होनेसें, शरीरांतर [illegible] हुए, अनेक ज्ञानावसेय अर्थ संवित्तिवत्

[illegible] —किसतरें खंडिताखंडित अवयवोंका पीछेसें फिर संघट्टन

[illegible] सर्वथाछेदके अनंगीकारसें, पद्मनालतंतुवत्, कथंचित् [illegible] कारसें और तथाविध अदृष्टके वशसें उनका संघट्टन भी [illegible] इसवास्ते शरीरपरिमाणही आत्मा अंगीकार करनेयोग्य है [illegible] प्रयोग ऐसें है आत्मा व्यापक नही है, चेतनत्व होनेसें [illegible] है, सो चेतन नही है, जैसें आकाश, और आत्मा चेतन है, [illegible] व्यापक नही आत्माके अन्या

पकत्वका होना, आत्माके गुणोंका शरीरमेंही उपलभ्यमान होनेसें सिद्ध हुआ, आत्माका शरीरपरिमाणपणा.*

तथा शंकरभाष्यमें और टीकामें जो लिखा है कि, देहपरिमाण परिच्छिन्न आत्माके माने, आत्मा अनित्य सिद्ध होता है,

तथाचानुमानं—"॥देहपरिमाणपरिछिन्न आत्मा अनित्यः मध्यमपरिमाणवत्त्वात् घटवत् ॥"

देहपरिमाणपरिछिन्न आत्मा अनित्य है, मध्यमपरिमाणवाला होनेसें, घटकीतरें. और जो नित्य है, सो, मध्यमपरिमाणवाला भी नही; यथा आकाश, वा अणुपरिमाणवाला परमाणु. इसवास्ते आत्मा, देहपरिमाणव्यापक नही, किंतु सर्वव्यापक है. इत्यादि—यह पूर्वोक्त कहना ठीक नही है. क्योंकि, पूर्वोक्त अनुमान तो, नैयायिकोंका है, परंतु वेदांतियोंका नही है. वेदांतियोंके मतमें तो, ऐसे अनुमानका उत्थानही नही होता है. क्योंकि, वेदांतियोंने सर्वसें अणुप्रमाणवाले परमाणु, और सर्वसें महाप्रमाणवाला आकाश, यह दोनों मानेही नही है, द्वैतापत्ति होनेसें. तो फिर पूर्वोक्त अनुमान, उनके मतमें कैसें संभवे? अपितु नही संभवे. जब कल्पितवस्तु अनुमानका विषयही नही है, तो फिर, ऐसा अनुमान, वेदांती आत्माकी अनित्यता सिद्ध करनेवास्ते कैसें कह सकते हैं? इसवास्ते व्यासजी, और शंकरस्वामीका जो कथन है, सो स्वमतविरुद्ध, और प्रमाणयुक्तिसें बाधित है. तथा पूर्वोक्त अनुमान भी, व्यभिचारि है. यथा॥

"॥ वल्मीकं कुंभकारकर्तृजन्यं मृद्विकारत्वात् घटवत्॥"

जैसें यह अनुमान व्यभिचारि है, जो जो मृद्विकार है, सो सर्व कुंभकारकर्तृजन्य, न होनेसें. ऐसेंही 'मध्यमपरिमाणवत्त्वात्' यह भी हेतु असिद्ध है. क्योंकि, मध्यमपरिमाणवाले चंद्रसूर्यादि, कथंचित् नित्य है; और 'मध्यमपरिमाणवत्त्वात्' यह हेतु, प्रतिवादिजैनोंके मतमें सम्मत

* तैत्तिरीय आरण्यकके दशमे प्रपाठकके अडतीसमे अनुवाकमें भी, 'आपादमस्तकव्यापी' पैरसें लेके मस्तकपर्यंत व्यापी जीव लिखा है.

नही है और तो हेतु, वादीप्रतिवादी दोनोंको सम्मत होना चाहिये, सोतो, हैही नही इसवास्ते व्यासजी और शकरस्वामीका कहना, असमजस है

और जो शकरस्वामी लिखते हैं कि, शरीरोंको अनवस्थितपरिमाणवाले इत्यादि

तिसका उत्तर —जीवमें सकोच विकाश होनेकी शक्ति है, कर्मोदयसें जब जीव, स्थूलशरीरको छोडके सूक्ष्मशरीरको धारण करता है, तब जीवके असख्य प्रवेश सकुचित होके सूक्ष्मशरीरमें समा जाते हैं, जैसें एक कोठेमेंसें प्रकाशक दीपकको लेके एक प्यालेके नीचे रख दिया जावे तो, उस दीपकका प्रकाश उस प्यालेमेंही प्रकाश करेगा, ऐसेंही सूक्ष्मशरीर छोडके महान् शरीरमें जान लेना और जो शकरस्वामीने लिखा है, जीवके अनत अवयव, सो लेख, मिथ्या है अनत अवयव नही, किंतु, असख्य प्रदेश हैं प्रदेश उसको कहते हैं, जो, आत्माका निरश अश होवे, और आत्माके, वे सर्वप्रदेश एकसरीखे हैं, इसवास्ते आत्माकाही सकोच विकाश होता है, प्रदेशोंका नही जैसें वस्त्रकी तह लगानेसें वस्त्रकाही सकोच है, परतु तिसके ततुयोंमें न्युनाधिक्यता नही है इसवास्ते आत्माही, सकोच विकाश धर्मके होनेसें सुक्ष्मसें स्थूल, और स्थूलसें सूक्ष्मशरीरमें व्यापक होता है इसवास्ते शकरस्वामीकी कल्पनामें शकरस्वामीकी जैनमतकी अनभिज्ञताही, कारण है इति।

अथ प्रसगमें 'प्रतिक्षेत्र भिन्न' सूत्रके इस अवयवरूप विशेषणक- ात्मअद्वेतवाद खडन किया, सो ऐसें है

न्ी कहते हैं कि, हम तो एकही परमब्रह्म पारमार्थिक सद्रूप

र एकही परमब्रह्म सद्रूप है, तो फिर, यह जो सरल रसाल । ाल तमाल प्रवाल प्रमुख पदार्थ अग्रगामिपणे करके प्रतीत ा ाकर सत्स्वरूप नही हैं?

पूर्वपक्ष —येह पूा ा प्रतीत होते है, वे सर्व मिथ्या है तथाचानुमान—'प्रपचा म ा ा मिथ्या है, प्रतीयमान होनेसें, जो ऐसा है, सो ऐसा है, यथा सापक ुर म चादी तैसाही यह प्रपच है,

तिसवास्ते मिथ्या है. इस अनुमानसें प्रपंचमिथ्यारूप है, और एक ब्रह्म-ही, पारमामर्थिक सद्रूप है.

उत्तरपक्षः–हे पूर्वपक्षिन्! इस अनुमानके कहनेसें तुमारा तर्कवितर्क-कार्कश्यसूचन नही होता है। तथाहि। यह जो प्रपंच तुमने मिथ्यारूप माना है, सो मिथ्या, तीन तरेंका होता है. अत्यंत असद्रूप (१) है तो, कुच्छ और और प्रतीत होवे और तरें (२) और तीसरा अनिर्वाच्य (३) इन तीनोंमेंसें कौनसा मिथ्यारूप प्रपंचको माना है?

पूर्वपक्षः–इन पूर्वोक्त तीनों पक्षोंमेंसें प्रथमके दो पक्ष तो हमको स्वीकारही नही है, इसवास्ते हम तो तीसरा अनिर्वाच्य पक्ष मानते हैं, सो यह प्रपंच अनिर्वाच्य मिथ्यारूप है.

उत्तरपक्षः–प्रथम तो तुम यह कहो कि, अनिर्वाच्य क्या वस्तु है? एतावता तुम अनिर्वाच्य किसको कहते हो? क्या वस्तुका कहनेवाला शब्द नही है? वा शब्दका निमित्त नही है? वा निःस्वभावत्व है? प्रथम विकल्प तो कल्पनाकरनेयोग्यही नही है. क्योंकि, यह सरल है, यह रसाल है, ऐसा शब्द तो प्रत्यक्ष सिद्ध है. अथ दूसरा पक्ष है तो, शब्दका निमित्तज्ञान नही है? वा पदार्थ नही है? प्रथम पक्ष तो समीचीन नही है, सरल रसाल ताल तमाल प्रमुखका ज्ञान प्राणीप्राणी प्रति प्रतीत होनेसें, देखनेवाले सर्व जीव जानते हैं; जो सरल रसाल ताल तमाल प्रमुखका ज्ञान हमको है. अथ दूसरा पक्ष तो, पदार्थ, भावरूप नही है? वा अभावरूप नही है? प्रथम कल्पनामें तो, असत्ख्याति अभ्युपगमप्रसंग है, अर्थात् जेकर कहोगे पदार्थ भावरूप नही है, और प्रतीत होता है तो, तुमको असत्ख्याति माननी पडी; और अद्वैतवादीयोंके मतमें असत्ख्याति माननी महादूषण है. अथ दूसरा पक्ष, जो पदार्थ, अभावरूप नही तो भावरूप सिद्ध हुआ. तब तो, सत्ख्याति माननी पडी. और जब अद्वैतवादमत अंगीकार कीया, और सत्ख्याति माननी पडी, तब तो सत्ख्यातिके माननेसें अद्वैतमतकी जडको कूहाडेसें काटा. कदापि अद्वैतमत नही सिद्ध होगा.

पूर्वपक्ष-—भावरूप, तथा अभावरूप, येह दोनोंही प्रकारें वस्तु नही

उत्तरपक्षः—हम तुमको पूछते हैं कि, भाव, और अभाव, इन दोनों का अर्थ, जो लौकिकमें प्रसिद्ध है, वोही, तुमने माना है ? वा इससें विपरीत और तरेंका माना है ? जेकर प्रथम पक्ष मानोगे तो, जहां भाव का निषेध करोगे, तहां अवश्यमेव अभाव कहना पडेगा, और जहां अभावका निषेध करोगे तहा अवश्यमेव भाव कहना पडेगा जो परस्पर विरोधी है, उनमें एकका निषेध करोगे तो, दूसरेका विधि, अवश्य कहना ही पडेगा अथ दूसरा पक्ष मानोगे, तव तो हमारी कुच्छ हानी नही है क्योंकि, अलौकिक एतावता तुमारे मन कल्पित शब्द, और शब्दका निमित्त, जेकर नष्ट होजावेगा तो, लौकिकशब्द, और लौकिशब्दका निमित्त, कदापि नष्ट नही होगा, तो फिर, अनिर्वाच्य प्रपच किसतरें सिद्ध होगा ? जब अनिर्वाच्यही सिद्ध नही होगा तो, प्रपच मिथ्या कैसें सिद्ध होगा ? और एकही अद्वैत ब्रह्म कैसें सिद्ध होवेगा ? निःस्वभावत्व पक्षमें भी, निस् शब्दको निषेधार्थके हुए, और स्वभावशब्दको भी भाव अभाव दोनोंमेंसें अन्यतर किसी एक अर्थके अर्थात् भावके, वा अभावके वाचक हुए, पूर्ववत् प्रसग होवेगा

पूर्वपक्ष —हम तो जो प्रतीत न होवे, उसको नि स्वभावत्व कहते हैं

उत्तरपक्ष—इस तुमारे कहनेमें विरोध आता है, जेकर प्रपच प्रतीत ना होना तो, तुमने अपने प्रथम अनुमानमें प्रपचको प्रतीयमान हेतु [illegible] क्योंकर ग्रहण किया ? और प्रपचको अनुमान करनेके समय [illegible] ग्रहण किया ? तथा धर्मीपणे ग्रहण करे हुए, वो कैसें

प्रता [illegible]

पूर्वपक्ष [illegible] होना है, तेसा है नही

उत्तरपक्षः—त [illegible] गीनख्याति, तुमने अगीकार करी सिद्ध होयेगी तथा हम तुम [illegible] यह जो तुम इस प्रपचको अनिर्वाच्य मानते हो, सो प्रत्य [illegible] मानते हो ? वा अनुमानप्रमाणसें मानते हो ? प्रत्यक्षप्रमाण तो, इस प्र [illegible] सत्स्वरूपही सिद्ध करता है

जैसा जैसा पदार्थ है, तैसा तैसाही प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होनेसें. और प्रपंच जो है, सो परस्पर, न्यारी न्यारी, जो वस्तु है, सो अपने अपने स्वरूपमें भावरूप है; और दूसरे पदार्थके स्वरूपकी अपेक्षा अभावरूप है. इस इतरेतरविविक्त वस्तुयोंकोही प्रपंचरूप माना है. तो फिर, प्रत्यक्षप्रमाण, प्रपंचको अनिर्वाच्य कैसें सिद्ध कर सकता है?

पूर्वपक्षः—यह प्रत्यक्ष, हमारे पक्षको प्रतिक्षेप नही कर सकता है. क्योंकि, प्रत्यक्ष तो विधायकही है, तैसें तैसें प्रत्यक्ष ब्रह्मकोही कथन करता है, न कि, प्रपंच सत्यताको कथन करता है; प्रपंच सत्यता तो, तब कथन करी सिद्ध होवे, जेकर प्रत्यक्ष इतर वस्तुमें इतर वस्तुयोंके स्वरूपका निषेध करे; परंतु प्रत्यक्षप्रमाण तो ऐसा है नही, प्रत्यक्षको निषेध करनेमें कुंठ होनेसें.

उत्तरपक्षः—प्रथम तुम विधायक किसको कहते हो?

पूर्वपक्षः—यह ऐसे वस्तुस्वरूपको ग्रहण करे, और अन्यस्वरूपको निषेध न करे, ऐसा प्रत्यक्षही विधायक है.

उत्तरपक्षः—यह तुमारा कहना असत्य है. अन्यवस्तुके स्वरूपके विना निषेध्यां, वस्तुके यथार्थ स्वरूपका कदापि बोध न होनेसें; पीतादिक वर्णोंकरी रहित जब बोध होगा, तबही नील ऐसे रूपका बोध होवेगा, अन्यथा नही. तथा जब प्रत्यक्षप्रमाणकरेक यथार्थ वस्तुस्वरूप ग्रहण किया जायगा, तब तो अवश्य अपर वस्तुका निषेध भी तहां जाना जायगा. जेकर प्रत्यक्ष, अन्यवस्तुमें अन्यवस्तुके निषेधको नही जानेगा तो, तिसवस्तुके इदमिति यह ऐसे विधिस्वरूपको भी जान सकेगा. क्योंकि, केवल जो वस्तुके स्वरूपको ग्रहण करना है, सोही अन्यवस्तुके स्वरूपका निषेध करना है. जब प्रत्यक्षप्रमाणविधि, और निषेध, दोनोंहीको ग्रहण करता है, तब तो, प्रपंच, मिथ्यारूप कदापि सिद्ध न होगा. जब प्रत्यक्षप्रमाणसें प्रपंचही मिथ्यारूप सिद्ध न हुआ तो, परम ब्रह्मरूप एकही अद्वैत तत्त्व कैसें सिद्ध होगा? तथा जो तुम प्रत्यक्षको नियमकरके विधायकही मानोगे, तब तो, विद्यावत् अविद्याका भी विधान तुमको मानना पडेगा; सो यह ब्रह्म, अविद्यारहित होनेकरके सन्मात्र

है, प्रत्यक्ष प्रमाणसें ऐसे जानते हुए भी, फिर, प्रत्यक्ष, निषेधक नही है, ऐसे कथन करनेवालेको क्यों नही उन्मत्त कहने चाहिये? इति सिद्ध हुआ प्रत्यक्षबाधित तुमारा पक्ष । और अनुमानकरके बाधित, ऐसें है प्रपच मिथ्या नही है, असत्‌सें विलक्षण होनेसें, जो असत्‌सें विलक्षण है, सो, मिथ्या नही है यथा आत्मा तैसाही यह प्रपच है, तिसवास्ते, प्रपच, मिथ्या नही । तथा प्रतीयमान जो तुमारा हेतु है, सो ब्रह्मात्माके साथ व्यभिचारी है, क्योंकि, ब्रह्मात्मा प्रतीयमान तो है, परतु मिथ्यारूप नही है जेकर कहोगे ब्रह्मात्मा अप्रतीयमान है, तब तो, ब्रह्मात्मा वचनोंका गोचर न होगा, जब वचनगोचर नही, तवतो, तुमको गुगे बननाही ठीक है क्योंकि, ब्रह्मविना अपर तो कुच्छ हैही नही, और जो ब्रह्मात्मा है, सो प्रतीयमान नही है, तो फिर तुमको हम गुगेके विना और क्या कहें? और प्रथम अनुमानमें जो तुमने सीपका दृष्टात दिया, सो साध्य विकल है क्योंकि, जो सीप है, सो भी प्रपचके अतर्गतही है, और तुम तो, प्रपचको मिथ्यारूप सिद्ध करा चाहते हो। यह कदापि नही हो सकता है कि, जो साध्य होवे, सोही, दृष्टातमें कहा जावे जब सीपकाही अबतक सत्‌असत्‌पणा सिद्ध नहीं तो, उसको दृष्टांतमें कैसें ग्रहण किया?

तथा प्रथम जो तुमने प्रपचको मिथ्या सिद्ध करनेवास्ते अनुमान ि या था, सो अनुमान, इस प्रपचसें भिन्न है? वा अभिन्न है? जेकर भिन्न है, तो फिर सत्य है? वा असत्य है? जेकर कहोगे सत्य ... सत्य अनुमानकीतरें प्रपचको भी सत्यपणा होवे जेकर कह। ... नो फिर क्या शून्य है? वा अन्यथा ...यात है! वा अनि... ...म दोनों पक्ष तो, कदापि साध्यके साधक नही है मनुष्य... ...) तथा सीपके रूपेकीतरें (२) और तीसरा जो अनिर्वचन... ...मा भी, असमर्थ है अर्थात् साध्यको साध नही सक्ता ह... ...को असमर्थपणेकरके कथन करनेसें

पूर्वपक्षः—हमारा जो अनुमान है, सो व्यवहारसत्य है; इसवास्ते असत्यत्वके अभावसें अपने साध्यका साधकही है!

उत्तरपक्षः—हम तुमसें पूछते हैं कि, यह 'व्यवहारसत्य' क्या है? व्यवहृतिर्व्यवहारः तब तो, ज्ञानकाही नाम व्यवहार ठहरा. जेकर तिस ज्ञानरूप व्यवहारकरके सत्य है, तब तो, सो अनुमान, पारमार्थिकही है. यदि व्यवहारसत्यकरके अनुमान सत्य है, तब तो व्यवहारसत्यकरके प्रपंच भी सत्य होवे. ऐसे इस पक्षमें सत्ख्यातिरूप प्रपंच सिद्ध हुआ, जब प्रपंच सत् सिद्ध हुवा, तब तो, एकही परमब्रह्म सद्रूप अद्वैततत्त्व किसीतरह भी सिद्ध नही हो सकता है. जेकर कहोगे, व्यवहार नाम शब्दका है, तिसकरके जो सत्य, सो व्यहार सत्य है; तो, हम पूछते हैं कि शब्द सत्यस्वरूप है? वा असत्य है? जेकर कहोगे, शब्द सत्यस्वरूप है, तब तिसकरके जो सत्य है, सो पारमार्थिकही है. तब तो, अनुमाकीतरें प्रपंच भी सत्य सिद्ध हुआ. जेकर कहोगे शब्द असत्यस्वरूप है, तो तिस शब्दसें अनुमानको सत्यपणा कैसें होवेगा? तथा शब्दसें कहे हुए ब्रह्मादि कैसें सत्स्वरूप हो सकेंगे? क्योंकि, जो आपही असत्यस्वरूप है, सो परकी व्यवस्था करने, वा कहनेका हेतु कदापि नही हो सकता है, अतिप्रसंग होनेसें.

पूर्वपक्षः—जैसें खोटा रूप्यक, सत्यरूप्यकके क्रयविक्रयादिक व्यवहारका जनक होनेसें सत्यरूप्यक माना जाता है, तैसेंही हमारा अनुमान, यद्यपि असत्यस्वरूप है, तोभी जगतमें सत्व्यवहारकरके प्रवर्तक होनेसें, व्यवहार सत्य है; इसवास्ते अपने साध्यका साधक है.

उत्तरपक्षः—इस तुमारे कहनेसें तो, तुमारा अनुमान, असत्यस्वरूपही सिद्ध हुआ. तब तो, जो दूषण, असत्य पक्षमें कथन करे, सो सर्व, यहां पडेंगे. इसवास्ते प्रपंचसें भिन्न, अनुमान, उपपत्ति पदवीको नही प्राप्त होता है. जेकर कहोगे कि, हम अनुमानको प्रपंचसें अभेद मानते हैं, तब तो, प्रपंचकीतरें अनुमान भी, मिथ्यारूप ठहरा. तब तो, अपने साध्यको कैसें साध सकेगा? इस पूर्वोक्त विचारसें प्रपंच मिथ्यारूप नहीं, किंतु

आत्माकीतरें सद्रूप है, तो फिर, एकही ब्रह्म अद्वैततत्त्व है, यह तुमारा कहना क्योंकर सत्य हो सकता है? कदापि नही हो सकता है

पूर्वपक्ष–हमारी उपनिषदोंमें, तथा शंकरस्वामिके शिष्य आनंदगिरिकृत शंकरदिग्विजयके तीसरे प्रकरणमें लिखा है कि, "परमात्मा जगदुपादानकारणमिति" परमात्माही, इस सर्व जगत्का उपादान कारण है उपादान कारण उसको कहते हैं कि, जो कारण होवे, सोही कार्यरूप होजावे इस कहनेसें यह सिद्ध हुआ कि, जो कुच्छ जगत्में है, सो सर्व, परमात्माही आप बन गया है, इसवास्ते जगत् परमात्मा रूपही है

उत्तरपक्ष–वाहरे नास्तिकशिरोमणे! तुम अपने वचनको कभी सोच विचार कर कहते हो, वा नही? क्योंकि, इस तुमारे कहनेसें तो, पूर्ण नास्तिकपणा, तुमारे मतमें सिद्ध होता है यथा, जब सर्व कुच्छ जगत्स्वरूप परमात्मारुपही है, तब तो, न कोई पापी है, न कोई धर्मी है, न कोई ज्ञानी है, न कोई अज्ञानी है, न तो नरक है, न तो स्वर्ग है, न कोई साधु है, न कोई चोर है, सत् शास्त्र भी नही, असत् शास्त्र भी नही, तथा जैसा गोमासभक्षी, तैसाही अन्नभक्षी, जैसा स्वभार्यासें कामभोग सेवन किया, तैसाही माता बहिन बेटीसें किया, जैसा ब्रह्मचारी, तैसा कामी, जैसा चंडाल, तैसा ब्राह्मण, जैसा गर्दभ, तैसा सन्यासी, क्योंकि, जब सर्व वस्तुका कारण ईश्वर परमात्माही ठहरा, तब तो सर्व जगत् [illegible] एकस्वरूप है, दूसरा तो कोई हैही नही

[illegible] –हम एक ब्रह्म मानते हैं, और एक माया मानते हैं, सो, तुम [illegible] कहनेसें आलजजाल लिखे हैं, सो सर्व, मायाजन्य है, ब्रह्म तो [illegible] एकही शुद्ध स्वरूप है

उत्तरपक्ष– [illegible] ! यह जो तुमने पक्ष माना है, सो बहुत असमीचीन है यथा–मा[illegible] सो ब्रह्मसें भेद है, वा अभेद है? जेकर भेद है तो, जड है [illegible]? जेकर जड है तो फिर, नित्य है, वा अनित्य है? जेकर कहोगे नित्य [illegible] तब तो, अद्वैतमतके मूलहीको

दाह करती है. क्योंकि, जब माया, ब्रह्मसें भेदरूप हुई, और जडरूप भई, और नित्य हुई, फिर तो, तुमने आपही अपने कहनेसें द्वैतपंथ सिद्ध करा; और अद्वैतपंथको जड मूलसें काट गेरा. जेकर कहोगे, माया, ब्रह्मसें भेद, जडरूप, और अनित्य है, तो भी, द्वैतता तो कदापि दूर नही होवेगी. क्योंकि, जो नाश होनेवाला है, सो कार्यरूप है; और जो कार्य है, सो कारणजन्य है. तो फिर, उस मायाका उपादानकारण कौन है? सो कहना चाहिये. जेकर कहोगे, अपरमाया, तब तो अनवस्थादूषण है; और अद्वैत तीनों कालोंमें कदापि सिद्ध नही होगा. जेकर ब्रह्महीको उपादानकारण मानोगे, तब तो ब्रह्मही आप सर्वकुछ बन गया; तब तो पूर्वोक्त दूषण आया. जेकर मायाको चैतन्य मानोगे, तो भी, यही पूर्वोक्त दूषण होगा. जेकर कहोगे, माया ब्रह्मसें अभेद है. तब तो ब्रह्मही कहना चाहिये, माया नही कहनी चाहिये.

पूर्वपक्षः—हम तो मायाको अनिर्वचनीय मानते हैं.

उत्तरपक्षः—इस अनिर्वचनीय पक्षको ऊपर खंडन कर आये हैं, इसवास्ते अनिर्वचनीय जो शब्द है, सो, दंभी पुरुषोंने छलरूप रचा प्रतीत होता है; तो भी, द्वैतही सिद्ध होता है, अद्वैत नही.

पूर्वपक्षः—यह जो अद्वैतमत है, इसके मुख्य आचार्य शंकरस्वामी है, जिनोंने सर्व मतोंको खंडन करके अद्वैतमत सिद्ध किया है; तो फिर ऐसे शंकरस्वामी, साक्षात् शिवका अवतार, सर्वज्ञ, ब्रह्मज्ञानी, शीलवान्, सर्वसामर्थ्ययुक्त, उनोंके अद्वैत मतको खंडनेवाला कौन है?

उत्तरपक्षः—हे वल्लभमित्र? तुमारी समझमूजब तो जरूर जैसें तुम कहते हो, तैसेंही है; परंतु शंकरस्वामीके शिष्य आनंदगिरिकृत शंकरदिग्विजयमें जो शंकरस्वामीका वृत्तांत लिखा है, उसके पढनेसें तो ऐसा प्रतीत होता है कि, शंकरस्वामी असर्वज्ञ, कामी, अज्ञानी, और असमर्थ थे. तथा तिस वृत्तांतसें ऐसा भी प्रतीत होता है कि, वेदांतियोंका अद्वैत ब्रह्मज्ञान, जबतक यह स्थूल शरीर रहेगा, तबतकही रहेगा; परंतु इस शरीरके पात हुए पीछे वेदांतियोंका ब्रह्मज्ञान, नही रहेगा. जो कि,

पैंतीसमें स्तभमें सक्षेपसें हम लिखही आये हे इसवास्ते हे भव्य! जव शकरस्वामीका चरित्रही असमजस हे, तो फिर, उनके कहे हुए मतको सयौक्तिक कौन समझ सकता है?

पूर्वपक्ष –"पुरुपएवेद" इत्यादि श्रुतियोंसें अद्वैतही सिद्ध होता है

उत्तरपक्ष –यह भी तुमारा कहना असत् है क्योंकि, जो पुरुषमात्र रूप अद्वैततत्त्व होवे, तब तो, यह जो दिखलाइ देता है, कोई सुखी, कोई दु खी, इत्यादि सर्व परमार्थसें असत् होजावेंगे, जब ऐसे होगा, तब तो, यह जो कहना है,

"॥ प्रमाणतोधिगम्य ससारनैर्गुण्य तद्विमुखया प्र-
ज्ञया तदुच्छेदाय प्रवृत्तिरित्यादि ॥"

इसका अर्थ ससारका निर्गुणपणा प्रमाणसें जानकर तिस ससारसें विमुखबुद्धि होकरके तिस ससारके उच्छेदवास्ते प्रवृत्ति करे इत्यादि–सो आकाशके फूलकी सुगधिका वर्णन करनेसरीखा है क्योंकि, जब अद्वैतरूपही तत्त्व है, तब नरकतिर्यचादिभवभ्रमणरूप ससार कहा रहा? जिस ससारको निर्गुण जानकर तिसके उच्छेद करनेकी प्रवृत्ति होवे!

पूर्वपक्ष –तत्त्वसें पुरुष अद्वैतमात्रही है, और यह जो ससार निर्गुण वर्णन किया है, और पदार्थोंके भेदका दर्शन, सदा सर्व जीवोंका जो प्रतिभासन हो रहा है सो, सर्व चित्रामकी स्त्रीके अंगोपाग उच्चनीचकीतरें, भ्रातिरूप है

[illegible] पक्ष –यह जो तुमारा कहना है, सो असत् है क्योंकि, इस [illegible] यथार्थ प्रमाण नही है तथाथा–जेकर अद्वैत सिद्ध कर[illegible] पृथग्भूत प्रमाण मानोगे, तब तो, द्वैतापत्ति होवेगी, और [illegible] ना किसीका भी मत सिद्ध नही हो सकता है यदि प्र[illegible] सिद्ध मानोगे, तब तो, सर्ववादी अपने अपने अभिमतका [illegible] रखेंगे तथा भ्रांति भी, तुमको प्रमाणभूत अद्वैतसें भिन्न [illegible] हिये अन्यथा तो, प्रमाणभूत अद्वैतही अप्रमाण होजावेगा जब भ्रांति अद्वैतकाही रूप हुई, तब तो,

पुरुषकाही रूप हुई. जब भ्रांतिस्वरूपवाला पुरुषही है, तब तो तत्त्व-व्यवस्था कुछ भी सिद्ध न हुई. जेकर भ्रांति भिन्न मानोगे, तब तो द्वैतापत्ति हो जावेगी; और अद्वैतमतकी हानी होजावेगी. तथा जो यह स्तंभ, इभ कुंभ, अंभोरुह आदि पदार्थोंका भेद दिखता है, सो भ्रांत है, ऐसे कहो तो, नियमसें सोही पदार्थभेददर्शन, किसी जगे सत्य मानना चाहिये, अभ्रांतिके देखे विना कदापि भ्रांति देखनेमें नही आनेसें. पूर्वे जिसने सच्चा सर्प्प नही देखा है, तिसको रज्जुमें सर्प्पकी भ्रांति कदापि नही होवेगी.

तदुक्तम् ॥

नादृष्टपूर्वसर्पस्य रज्ज्वां सर्प्पमतिः क्वचित् ॥
ततः पूर्वानुसारित्वाद् भ्रांतिरभ्रांतिपूर्विका ॥ १ ॥

इस कहनेसें भी, भेद सिद्ध होगया. तथा पुरुष अद्वैतरूपतत्त्व, अवश्यकरके दूसरेको निवेदन करने योग्य है, अपने आपको नही, अपनेमें व्यामोहना होनेसें. जेकर कहनेवालेमें व्यामोह होवे, तब तो अद्वैतकी प्रतिपत्ति कभी भी नही होवेगी.

पूर्वपक्षः—जिसवास्ते अपने आपको व्यामोह है, इसीवास्ते तिस व्यामोहकी निवृत्तिवास्ते, अपने आपको, अद्वैतकी प्रतिपत्ति, करने योग्य है.

उत्तरपक्षः—यह कहना अयुक्त है. क्योंकि, ऐसे हुए, अद्वैतकी प्रतिपत्ति होनेकरके, अपने आपके व्यामोहके दूर होयाहुआ, अवश्यमेव पूर्वरूपका त्याग, और असूढतालक्षण उत्तररूपकी उत्पत्ति कहनी पडेगी. तब तो अवश्य द्वैतापत्ति होजावेगी. तथा जब अद्वैततत्त्वका उपदेशक पुरुष परको उपदेश करेगा, तब तो, परका अवश्य मानेगा; फिर अद्वैततत्त्वपरको निवेदन करना, और अद्वैततत्त्व मानना, यह तो ऐसें हुआ जैसें मेरा पिता, कुमारब्रह्मचारी है. इसवचनके कहनेसें जरूर वो पुरुष उन्मत्त है; जेकर अपनेको और परको, इन दोनोंको मानेगा, तब तो अवश्य द्वैतापत्ति होवेगी; इसवास्ते जो अद्वैत मानना है, सो युक्तिविकल है.

पूर्वपक्ष—परब्रह्मरूपकी सिद्धिही,
पणेकी सिद्धि है

उत्तरपक्ष—यह कथन भी तुमारा ठीक नही
न होनेसें, जेकर है तो, स्वतःसिद्धि है, वा
सिद्धि तो है नही, जेकर होवे, तब तो,
जेकर कहोगे परतःसिद्धि है तो, क्या
जेकर कहोगे, अनुमानसें है तो, वो अनुमान

पूर्वपक्ष—सो अनुमान यह है विवादरूप कों
भासांतःप्रविष्ट है, अर्थात् प्रतिभासके अंदर है,
जो जो प्रतिभासमान है, सो सो
ब्रह्म प्रतिभास स्वरूप प्रतिभासमान है, तथा
विवादरूप, तिसकारणसें प्रतिभासांतःप्रविष्ट है.

उत्तरपक्ष—यह तुमारा अनुमान, सम्यक् नही
हेतु, (३) दृष्टांत, इन तीनोंके प्रतिभासांतःप्रविष्ट
हुए तब तो (१) धर्मी, (२) हेतु, (३)
अनुमानही नही बनसक्ता है जेकर कहोगे कि (१
(३) दृष्टांत, येह तीनों, प्रतिभासांतःप्रविष्ट नही है
साथ हेतु व्यभिचारी होगा

पूर्वपक्ष—अनादि अविद्यावासनाके वशसें, हेतु
प्रतिभासके बाहिरकीतरें निश्चय करते हैं, जैसें
सभा सभापतिजनकीतरें तिस कारणसें अनुमान भी,
जब मकर अनादि अविद्याका विलास दूर होजावेगा, तब
सांतःप्रविष्टही प्रतिभास होगा, विवाद भी न रहेगा
बाधक, साध्य, साधन भाव भी नही रहेगा, तब तो अनुमान
भी कुछ फल नही आपही अनुभयमान परब्रह्मके होते हुए
सकल अव्यभिचारित स्वरूपके साधक, निर्व्यभिचार सकल अवस्था
करनेवालेसें, अनुमानका कुछ प्रयोग भी नहीं चाहिये हैं.

उत्तरपक्षः—जो अनादि अविद्या, प्रतिभासांतःप्रविष्ट है, तब तो विद्याही होगई; तब तो असद्रूप (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत, आदिक भेद, कैसें दिखा सके? जेकर कहोगे, प्रतिभासके बाहिरभूत है, तब तो अविद्या प्रतिभासमान है, वा अप्रतिभासमान है? तिस अविद्याको प्रतिभासमानरूप होनेसें, अप्रतिभासमान तो नही; जेकर कहोगे, प्रतिभासमान है तो, तिसहीके साथ हेतु व्यभिचारी है. तथा प्रतिभासके बाहिरभूत होनेसें, तिसके प्रतिभाससमान होनेसें जेकर तुमारे मनसें ऐसा होवे कि, अविद्या जो है, सो न तो प्रतिभासमान है, न अप्रतिभासमान है, न प्रतिभासके बाहिर है, न प्रतिभासांतःप्रविष्ट है, न एक है, न अनेक है, न नित्य है, न अनित्य है, न व्यभिचारिणी है. न अव्यभिचारीणी है, सर्वथा विचारके योग्य नही, सकल विचारांतर अतिक्रांतस्वरूप है, रूपांतरके अभावसें, अविद्या, जो है, सो निरूपतालक्षण है. यह भी तुमारी बडी अज्ञानताका विस्तार है. तैसी निरूपतास्वभाववालीको यह अविद्या है, यह अप्रतिभासमान है, ऐसें कथन करनेको कौन समर्थ है? जेकर कहोगे, यह अविद्या प्रतिभासमान है, तो फिर, क्योंकर अविद्या, नीरूप सिद्ध होगी? क्योंकि, जो वस्तु जिस स्वरूपकरके प्रतिभासमान है, सो तिसही वस्तुका रूप है. तथा अविद्या जो है, सो विचारगोचर है, वा विचारगोचररहित है? जेकर कहोगे, विचारगोचर है, तब तो नीरूप नही; जेकर विचारगोचर नही, तब तो तिसके माननेवाले महामूर्ख सिद्ध होवेंगे. जब विद्या, अविद्या, दोनोंही सिद्ध है, तब तो, एक परमब्रह्म, अनुमानसें कैसें सिद्ध हुआ? इस कहनेसें जो उपनिषद्में एकब्रह्मके कहनेवाली श्रुति है, सो भी खंडन होगई. तथा "सर्वं वै खल्विदं ब्रह्मेत्यादि" वचनको परमात्मासें अर्थांतर होनेसें, द्वैतापत्ति होजावेगी. जेकर कहोगे, अनादि अविद्यासें ऐसा प्रतीत होता है, तब तो पूर्वोक्त दूषणोंका प्रसंग होगा; तिसवास्ते अद्वैतकी सिद्धि वंध्याके पुत्रकी शोभावत् है. इस कारणसें अद्वैतमत, युक्तिविकल है; इसवास्ते सुज्ञजनोंको अनुपादेय है. । इत्यद्वैतमतखंडनम् ॥

पूर्वपक्ष —परब्रह्मरूपकी सिद्धिही, सकलभेदज्ञान प्रत्ययोंके निरालंब पणेकी सिद्धि है

उत्तरपक्ष —यह कथन भी तुमारा ठीक नही है, परम ब्रह्महीकी सिद्धि न होनेसें, जेकर है तो, स्वत सिद्धि है, वा परत सिद्धि है? तहां स्वत सिद्धि तो है नही, जेकर होवे, तब तो, किसीका भी विवाद न रहे, जेकर कहोगे परत सिद्धि है तो, क्या अनुमानसें है, वा आगमसें है! जेकर कहोगे, अनुमानसें है तो, वो अनुमान कौनसा है?

पूर्वपक्ष —सो अनुमान यह है विवादरूप जो अर्थ है, सो प्रतिभासात प्रविष्ट है, अर्थात् ब्रह्मभासके अदर है, प्रतिभासमान होनेसें, जो जो प्रतिभासमान है, सो सो प्रतिभासात-प्रविष्टही देखा है जैसें ब्रह्म प्रतिभास स्वरूप प्रतिभासमान है, सकल अर्थ सचेतनअचेतन विवादरूप, तिसकारणसें प्रातिभासांत प्रविष्ट है

उत्तरपक्ष —यह तुमारा अनुमान, सम्यक् नही है (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टात, इन तीनोंके प्रतिभासात प्रविष्ट होनेसें, साध्यरूपही हुए तब तो (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टात,इन तीनोंके न होनेसें, अनुमानही नही बनसकता है जेकर कहोगे कि (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टात, येह तीनों, प्रतिभासांत प्रविष्ट नही है, तब तो इनोंहीके साथ हेतु व्यभिचारी होगा

पूर्वपक्ष —अनादि अविद्यावासनाके बलसें, हेतु दृष्टात जो है, सो [illegible] बाहिरकीतरें निश्चय करते हैं, जैसें प्रतिपाद्य, प्रतिपादक, [illegible] जनकीतरें तिस कारणसें अनुमान भी, होसकता है, और जब [illegible] विद्याका विलास दूर होजावेगा, तब तो प्रातिभासात प्रा[illegible] होगा, विवाद भी न रहेगा प्रतिपाद्य, प्रतिपादक, साध्य, [illegible] नही रहेगा, तब तो अनुमान करनेका भी कुछ फल नही [illegible] परमब्रह्मके होते हुए, देश काल अव्यवच्छिन्न स्वरूप [illegible] व्यभिचार सकल अवस्था व्याप कपणेवालेमें, अनुमानका कुछ प्रयोग [illegible] चाहिये है

आत्मामें नर, नारक, तिर्यग्, अमर, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, ऊंच, नीच, रंक, राजा, धनी, निर्धन, दुःखी, सुखी, इत्यादि जो जो अवस्था संसारमें जीवोंकी पीछे हुइ है, जो अब होरही है, और आगेको होवेगी, सो सर्व, मुख्यकरके कर्मोंके निमित्तसें है; वास्तवमें शुद्धद्रव्यार्थिकनयके मतसें तो आत्मामें लोक तीन, थापना, उच्छेद, पाप, पुण्य, क्रिया, करणीय, राग, द्वेष, बंध, मोक्ष, स्वामी, दास, पृथिवीरूप, अप्कायरूप, तेजस्कायरूप, वायुकायरूप, वनस्पतिकायरूप, द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचेंद्रिय, कुलधर्मकी रीति, शिष्य, गुरु, हार, जीत, सेव्य, सेवक, इत्यादि उपाधी नही हैं; परंतु इस कथनको एकांत वेदांतियोंकीतरें माननेसें पुरुष अतिपरिणामी होके सत्स्वरूपसें भ्रष्ट होकर मिथ्यादृष्टि होजाता है, इसवास्ते पुरुषको चाहिये, अंतरंग वृत्तिमें तो शुद्धद्रव्यार्थिकनयके मतको मानें, और व्यवहारसें जो साधन, अष्टादश दूषणवर्जित परमेश्वरने कर्मोपाधि दूर करनेवास्ते कहे हैं, तिनमे प्रवर्त्ते. यही स्याद्वादमतका सार है.

तथा यह जो आत्मा है, सो शरीरमात्रव्यापक है; और गिणतीमें आत्मा भिन्न भिन्न अनंत है, परंतु स्वरूपमें सर्व चैतन्यस्वरूपादिककरके एकसदृश है; परंतु एकही आत्मा नही तथा सर्वव्यापी भी नही. जो आत्माको सर्वव्यापी, और एक मानते हैं, वे प्रमाणके अनभिज्ञ हैं. क्योंकि, ऐसे आत्माके माननेसें बंध मोक्ष क्रियादिकोंका अभाव सिद्ध होता है, जो, प्रथम लिखही आये हैं, और जैनमतवाले तो, आत्माका लक्षण ऐसें मानते हैं.

तदुक्तम् ॥

यः कर्त्ता कर्मभेदानां भोक्ता कर्मफलस्य च ॥
संसर्त्ता परिनिर्वाता सह्याऽऽत्मा नान्यलक्षणः ॥ १ ॥

अर्थः—जो शुभाशुभ कर्मभेदोंका कर्त्ता है, जो करे कर्मका फल भोगनेवाला है, जो कर्माधिन होके नानागतिमें भ्रमण करनेवाला है, और जो साधनद्वारा सर्व उपाधियां दग्धकरके निर्वाण मोक्षको प्राप्त होता है, सोही

तथा (३५) और (३६) इन सूत्रोंमें, और भाष्यमें, जो पक्ष जेनीयोंके तर्फसें किया है, तेसें जेनी मानते नही है, इसवास्ते, अनभ्युपगमसेंही निरस्त हे ॥ ३३॥३४॥३५॥३६॥

इति वेदव्यासशंकरस्वामिकृत जैनमतखंडनस्य खंडन अद्वैतमतखंडन जेनमतमंडन च समाप्त तत्समाप्तौ च समाप्तेयं वेदव्यासशंकरस्वा मिलीला ॥ ॐसत् ॥

अथ इससे आगे जैनमतका संक्षेपसें किंचिन्मात्र स्वरूप लिखते हैं प्रथम तो आत्माका स्वरूप जानना चाहिये, यह जो आत्मा है, सोही जीव है, यह आत्मा स्वयंभू है, परंतु किसीका रचा हुआ नही, अनादि अनंत है, (५) वर्ण, (५) रस, (२) गंध, (८) स्पर्श, इनकरके रहित है, अरूपी है, आकाशवत, असंख्यप्रदेशी है प्रदेश उसको कहते है, जो, आत्माका अत्यंत सूक्ष्म अंश, जिसका फिर अन्य अंश न होवे, ऐसे असंख्य अंश कथंचित् भेदाभेदरूपकरके एकस्वरूपमें रहे हैं, तिसका नाम आत्मा है सर्व आत्मप्रदेश ज्ञानस्वरूप है, परंतु आत्माके एकएक प्रदेशऊपर (१) ज्ञानावरण, (२) दर्शनावरण, (३) सुखदु स्वरूपवेदनीय, (४) मोह नीय (५) आयु, (६) नाम, (७) गोत्र, (८) अंतराय, इन आठ कर्मकी अनंत अनंत कर्मवर्गणा आच्छादित है, जैसें दर्पणकेऊपर छाया आ जाती है जब ज्ञानावरणादि कर्मोंका क्षयोपशम होता है तब इंद्रिय, [illegible] मनोद्वारा आत्माको शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्शका ज्ञान, और मान [illegible] उत्पन्न होता है कर्मोंका क्षय, और क्षयोपशमका स्वरूप [illegible] [illegible] कर्मग्रंथ, कर्मप्रकृति, और नंदिकी [illegible] टीकादिसें देखलेना [illegible] प्रदेशमें अनंत अनंत शक्तियां है, कोई ज्ञानरूप [illegible] कोई [illegible] [illegible] अव्याबाधरूप, कोई चारित्ररूप, कोई स्थिररूप, कोई अटल [illegible] [illegible] अनंतशक्तिसामर्थ्यरूप, परंतु [illegible] [illegible] रणमें सर्व [illegible] [illegible] सर्व कर्म आत्मासे [illegible] दूर होंगे है तब [illegible] [illegible] [illegible] निरंजन, [illegible] है और जो [illegible] परमात्मादिरूप [illegible] है ॥

दि नानाप्रकारके दुःख जीवने भोगे हैं, वे सर्व, ईश्वरकी निर्दयतासें हुए. (१) विना अपराधके दुःख देनेसें अन्यायी, (२) एकको सुखी, एकको दुःखी करनेसें पक्षपाती, (३) पीछे, पुण्यपापके दूर करनेका उपदेश देनेसें अज्ञानी, (४). इत्यादि अनेक दूषण होनेसें दूसरा पक्ष भी असिद्ध है. ॥ २ ॥

अथ तीसरा पक्षः—जीव, और कर्म, एकही कालमें उत्पन्न हुए; यह भी पक्ष मिथ्या है. क्योंकि, जो वस्तु साथ उत्पन्न होती है, उनमें कर्त्ता कर्म नही होते हैं. (१) उस कर्मका फल जीवको न होना चाहिये. (२) जीव और कर्मोंका, उपादानकारण नही. (३) जेकर एक ईश्वरही, जीव और कर्मका उपादानकारण मानीये तो, असिद्ध है. क्योंकि, एक ईश्वर जड चेतनका उपादानकारण नही होसकता है. (४) ईश्वरको जगत् रचनेसें कुछ लाभ नही. (५) न रचनेसें कुछ हानि नही. (६) जब जीव, और जड, नही थे तब ईश्वर किसका था? (७) जीव कर्म स्वयमेव उत्पन्न नही होसकते हैं. (८) इसवास्ते तीसरा पक्ष भी मिथ्या है. ॥ ३ ॥

अथ चौथा पक्षः—जीवही सच्चिदानंदरूप अकेला है, पुण्यपाप नही; यह भी पक्ष मिथ्या है. क्योंकि, विनापुण्यपापके जगत्की विचित्रता कदापि सिद्ध नही होवेगी. इसवास्ते चौथा पक्ष भी मिथ्या है. ॥ ४ ॥

अथ पांचमा पक्षः—जीव, और पुण्य पाप, येह हैही नही; यह भी कहना मिथ्या है. क्योंकि, जब जीवही नही है, तब यह ज्ञान किसको हुआ? कि कुछ हैही नही! इसवास्ते पांचमा पक्ष भी असिद्ध है. ॥ ५॥

इन पूर्वोक्त पांचों पक्षोंके असिद्ध होनेसें, छठा यही पक्ष सिद्ध हुआ कि, जीव और कर्मोंका संयोगसंबंध, प्रवाहसें अनादि है. तथा यह आत्मा कर्मोंके संबंधसें त्रसथावररूप होरहा है. थावरके पांच भेद हैं. पृथिवी (१), जल (२), अग्नि (३), पवन (४), और वनस्पति (५). इन पांचों थावरोंको एकेंद्रिय जीव कहते हैं. त्रसके चार भेद हैं. द्वींद्रिय (१), त्रींद्रिय (२), चतुरिंद्रिय (३), पंचेंद्रिय (४), तथा नारक,

आत्मा है, अन्यलक्षणवाला नही यादि इन पूर्वोक्त वातोंमेंसें एक वात भी, न माने तो, सर्व शास्त्र, झूठे ठहरेंगे, और शास्त्रोंके कथन करनेवाले अज्ञानी सिद्ध होवेंगे तथा पूर्वोक्त आत्मा पुण्यपापकेसाथ प्रवाहसें अनादिसंबधवाला है, जेकर आत्माकेसाथ पुण्यपापका प्रवाहसें अनादिसंबंध, न माने, तब तो, बहुत दूषण मतधारीयोंके मतमें आते हैं, वे येह हैं जेकर आत्माको पहिला माने, और पुण्यपापकी उत्पत्ति आत्मामें पीछे माने, तब तो, पुण्यपापसें रहित निर्मल आत्मा प्रथम सिद्ध हुआ (१) निर्मल आत्मा ससारमें उत्पन्न नही होसकता है (२) विनाकरे पुण्यपापका फल भोगना असभव है (३) जेकर विनाकरे पुण्यपापका फल भोगनेमें आवे, तब तो, सिद्ध मुक्तरूप परमात्मा भी पुण्यपापका फल भोगेंगे (४) करेका नाश, और विनाकरेका आगमन, यह दूषण होवेगा (५) निर्मल आत्माके शरीर उत्पन्न नही होवेगा (६) जेकर विनापुण्यपापके करे ईश्वर जीवको अच्छी बुरी शरीरादिककी सामग्री देवेगा, तब तो, ईश्वर अज्ञानी, अन्यायी, पूर्वापरविचाररहित, निर्दयी, पक्षपाती, इत्यादि दूषणोंसहित सिद्ध होवेगा, तब ईश्वर काहेका? (७) इत्यादि अनेक दूषणोंके होनेसें प्रथम पक्ष असिद्ध है ॥ १ ॥

अथ दूसरा पक्षः—कर्म पहिले उत्पन्न हुए, और जीव पीछे बना, यह भी पक्ष मिथ्या है क्योंकि, प्रथम तो जीवका उपादानकारण कोई नही (१) अरूपी वस्तुके बनानेमें कर्त्ताका व्यापार नही (२) जीवने कर्म [illegible] इसवास्ते जीवको फल न होना चाहिये (३) जीवकर्त्ताके विना [illegible] नही होसकते हैं (४) जेकर कर्म ईश्वरने करे हैं, तब तो, [illegible] ईश्वरको भोगना चाहिये (५) जब कर्मका फल भोगेगा, तब ई[illegible] जेकर ईश्वर कर्मकरके अन्य जीवोंको लगावेगा तब तो ई[illegible] [illegible]यायी, पक्षपाती, अज्ञानी, इत्यादि दूषणयुक्त सिद्ध होवेगा (८ [illegible] [illegible] कर्म जीवके विनाकरे जीवको लगाए, तब जो जो नरकगति [illegible] [illegible] नियें दु ख, दुर्भग, दु स्वर, अयश, अकीर्त्ति, अनादेय, दु ख, राग [illegible] [illegible]न भूख, प्यास, शीत, उष्ण

दि नानाप्रकारके दुःख जीवने भोगे हैं, वे सर्व, ईश्वरकी
(१) विना अपराधके दुःख देनेसें अन्यायी, (२) एकक
दुःखी करनेसें पक्षपाती, (३) पीछे, पुण्यपापके [illegible]
देनेसें अज्ञानी, (४) इत्यादि अनेक दूषण होनेसें
असिद्ध है. ॥ २ ॥

अथ तीसरा पक्षः—जीव, और कर्म, एकही कालमें उ[illegible]
पक्ष मिथ्या है. क्योंकि, जो वस्तु साथ उत्पन्न होने [illegible]
कर्म नही होते हैं. (१) उस कर्मका फल [illegible]
(२) जीव और कर्मोंका, उपादानकारण नहीं. (३ [illegible]
रही, जीव और कर्मका उपादानकारण [illegible]
कि, एक ईश्वर जड चेतनका उपादानकारण नहीं [illegible]
ईश्वरको जगत् रचनेसें कुछ लाभ नहीं. (५ [illegible]
नहीं. (६) जब जीव, और जड, नहीं [illegible]
(७) जीव कर्म स्वयमेव उत्पन्न नही होन[illegible]
रा पक्ष भी मिथ्या है. ॥ ३ ॥

अथ चौथा पक्षः—जीवही सच्चिदानंद[illegible]
यह भी पक्ष मिथ्या है. क्योंकि, [illegible]
कदापि सिद्ध नही होवेगी. इसवा[illegible]

अथ पांचमा पक्षः—जीव, और [illegible]
कहना मिथ्या है. क्योंकि, [illegible]
हुआ? कि कुछ हैही नहीं! इसवा[illegible]

इन पूर्वोक्त पांचों पक्षोंके [illegible]
कि, जीव और कर्मोंका [illegible]
आत्मा कर्मोंके संबंधसें [illegible]
पृथिवी (१), जल (२ [illegible]
पांचों थावरोंको [illegible]
(१), त्रींद्रिय [illegible]

तिर्यंच, मनुष्य, देवता, उनमें नरकवासीयोंके (१४) भेद, तिर्यचगतिके (४८) भेद, मनुष्यगतिके (३०३) भेद, और देवगतिके (१९८) भेद हैं येह सर्व मिलाके जीवोंके (५६३) भेद हैं

तथा यह आत्मा कथंचित् रूपी, और कथंचित् अरूपी है जबतक संसारी आत्मा कर्मकर संयुक्त है, तबतक कथंचित् रूपी है; और कर्मरहित शुद्ध आत्माकी विवक्षा करीये, तब कथंचित् अरूपी है जेकर आत्माको एकांत रूपी मानीये, तब तो, आत्मा जडरूप सिद्ध होवेगा, और काटनेसें कट जावेगा, और जेकर आत्माको एकांत अरूपी मानीये, तब तो, आत्मा, क्रियारहित सिद्ध होवेगा, तब तो बंध मोक्ष दोनोंका अभाव होवेगा, जब बंध मोक्षका अभाव होवेगा, तब शास्त्र, और शास्त्रके वक्ता झूठे ठहरेंगे, और दीक्षा दानादि सर्व निष्फल होवेंगे इसवास्ते आत्मा कथंचित् रूपी, कथंचित् अरूपी है ।

तथा प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकारसूत्रमें आत्माका स्वरूप ऐसा लिखा है ।

"॥ चैतन्यस्वरूपः परिणामी कर्त्ता साक्षाद्भोक्ता स्वदेहपरिमाणः । प्रतिक्षेत्रं भिन्नः पौद्गलिकादृष्टवांश्चायमिति ॥ "

भावार्थ —साकार निराकार उपयोगस्वरूप है जिसका, सो चैतन्यस्वरूप (१) समयसमयप्रति, पर अपर पर्यायोंमें गमन करना, अर्थात् प्राप्त [illegible]ना, सो परिणाम, सो नित्य है इसके, सो परिणामी (२) इन दोनों [illegible]पणोंकरके आत्माको जडस्वरूप कूटस्थ नित्य माननेवाले नैयायिक [illegible] [illegible]न किया, सो देखना होवे तो, प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकारकी [illegible] [illegible]रत्नाकरावतारिकासें देख लेना कर्त्ता, अदृष्टादिकका (३) साक्षात् [illegible] [illegible]न सुखादिकका भोक्ता, सो साक्षाद्भोक्ता (४) इन दोनों विशेषणा[illegible] [illegible]मतका निराकरण किया, सो भी, पूर्वोक्त ग्रंथसें जानलेना [illegible] [illegible] अपने ग्रहण करे शरीरमात्रमें व्यापक (५) इस विशेषणकरके [illegible] परिकल्पित आत्माका सर्वव्यापिपणा निषेध किया, जो पूर्वसंक्षेपसे [illegible] आये हैं शरीरशरीरप्रति भिन्न

भिन्न (६). इस विशेषणकरके आत्माद्वैतवाद परास्त किया, सो भी संक्षेपसें पूर्व लिख आये हैं. और अलग अलग अपने अपने करे कर्मोंके अधीन (७). इस विशेषणकरके नास्तिकमतका पराजय किया, सो पूर्वोक्त ग्रंथसें जान लेना. इन पूर्वोक्त विशेषणाविशिष्ट यह आत्मा है. तथा यह आत्मा, संख्यामें अनंतानंत है. जितने तीनकालके समय, तथा आकाशके सर्व प्रदेश हैं, उतने हैं. इसवास्ते मुक्ति होनेसें संसार, सर्वथा कदापि खाली नही होवेगा. जैसें आकाशके मापनेसें कदापि अंत नही आवेगा. तथा येह अनंतानंत आत्मा, जिस लोकमें रहते हैं, सो लोक, असंख्यासंख्य कोडाकोडी योजनप्रमाण लंबा चौडा उंचा नीचा है.

तथा इन आत्माके तीन भेद है. बहिरात्मा (१), अंतरात्मा (२), और परमात्मा (३). तहां जो जीव, मिथ्यात्वके उदयसें तनु, धन, स्त्री, पुत्र, पुत्र्यादि परिवार, मंदिर (महलगृहादि), नगर, देश, शत्रु, मित्रादि इष्ट अनिष्ट वस्तुयोंमें रागद्वेषरूप बुद्धि धारण करता है, सो बहिरात्मा है; अर्थात् वो पुरुष भवाभिनंदी है. सांसारिक वस्तुयोंमेंही आनंद मानता है. तथा स्त्री, धन, यौवन, विषयभोगादि जो असार वस्तु है, उन सर्वको सार पदार्थ समझता है; तबतकही पंडिताईसें वैराग्यरस घोंटता है, और परमब्रह्मका स्वरूप बताता है, और संत महंत योगी ऋषि बना फिरता है, जबतक सुंदर उद्भटयौवनवंती स्त्री नही मिलती है, और धन नही मिलता है. जब येह दोनों मिले, तत्काल अद्वैतब्रह्मका द्वैतब्रह्म बन जाता है, और अन्य लोकोंको कहने लगजाता है कि, भइया ! हम जो स्त्री भोगते हैं, इंद्रियोंके रसमें मगन रहते हैं, धन रखते हैं, डेरा बांधते हैं, इत्यादि काम करते हैं, वे सर्व मायाका प्रपंच है; हम तो सदाही अलिप्त हैं. ऐसे २ ब्रह्मज्ञानीयोंका मुंह काला करके, गर्दभपर चढाके देशनिकाला करदेना चाहिये !!! क्योंकि, ऐसे ऐसे भ्रष्टाचारी ब्रह्मज्ञानी, कितनेक मूर्ख लोकोंको ऐसे भ्रष्ट करते हैं कि, उनका चित्त कदापि सन्मार्गमें नही लगसकता है. और कितनीक कुलवंती स्त्रियोंको ऐसे बिगाडते हैं कि, वे कुलमर्यादाको भी लोप कर, इन भंगीजंगी फकीरोंकेसाथ दुराचार

करती है और येह जो विषयके भिखारी, धनके लोभी, संतमहंत भंगी-जगी ब्रह्मज्ञानी बने रहते हैं, वे सर्व, दुर्गतिके अधिकारी होते हैं क्योंकि इनके मनमें स्त्री, धन, कामभोग, सुंदरशय्या, आसन, स्नान, पानादि पर अत्यंत राग रहता है, और दुःखके आये हीनदीन होके विलाप करते हैं, जैसें कगाल धनीया धनवानोंको देखके झूरता है, तैसें येह पंडित सतमहंत भंगीजगी लोकोंकी सुंदर स्त्रियोंको और धनादिसामग्रीको देखकर झूरते हैं, मनमें चाहते हैं, येह हमको मिले तो ठीक है इस बातमें इनोंका मनही साक्षीदाता है इसवास्ते जो जीव बाह्यवस्तुकोही तत्त्व समझता है, और तिसहीके भोगविलासमें आनंद मानता है, सो प्रथम गुणस्थानवाला जीव, बाह्यदृष्टि होनेसें बहिरात्मा कहा जाता है ॥ १ ॥

अथ जो पुरुष, तत्त्वश्रद्धानकरके संयुक्त होता है, और कर्मोंके बंधन होनेका हेतु अच्छितरें जानता है, जिसवास्ते यह जो जीव इस संसारावस्थामें है, सो जीव, मिथ्यात्व (१), अविरति (२), कषाय (३), प्रमाद (४), और योग (५), इन पांचों कर्मबंधके हेतुयोंकरके निरंतर कर्मोंको बांधता है, जब वे कर्मउदयमें आते हैं, तब यह जीव, स्वयमेवही भोगता है, अन्य जन कोई भी तिसमें साहाय्य नही करसकता है इत्यादि जो जानता है, तथा किंचित् किसी द्रव्यादिवस्तुके नष्ट हुए मनमें ऐसें विचारता [illegible] कि, इस परवस्तुके साथ मेरा संबंध नष्ट होगया है, परंतु मेरा द्रव्य
[illegible] मप्रदेशमें अविष्वग्भावसंबंधकरके समवेत, ज्ञानादिलक्षण है,
[illegible] भी नही जासकता है तथा किंचित् द्रव्यादि वस्तुके लाभ
ह [illegible] ना है कि, मेरा इस पौद्गलिकवस्तुकेसाथ संबंध हुआ है,
इसस [illegible] क्या प्रमोद करना चाहिये! और वेदनीय
कर्मके उद [illegible] न होवे, तब समभाव धारण करे, आत्माको
परभावोंसें भिन्न [illegible] गनेका उपाय करे, चित्तमें परमात्माके
स्वरूपका ध्यान कर, [illegible] र्मक्रियोंमें विशेष उद्यम करे, सो
चौथे गुणस्थानसें लेके [illegible] नपर्यंतवर्ती जीव, अंतर्दृष्टिमान्
होनेसें अंतरात्मा कहे जाते हैं ॥

अथ पुनः, जे शुद्धात्मस्वभावके प्रतिबंधक कर्मशत्रुयोंको हणके निरुपमोत्तम केवलज्ञानादि स्वसंपद् पाकरके करतलामलकवत् समस्त वस्तुके समूहको विशेष जानते, और देखते हैं, और परमानंदसंदोह-संपन्न होते हैं, वे तेरमे चौदमे गुणस्थानवर्त्ती जीव, और सिद्धात्मा, शुद्ध स्वरूपमें रहनेसें परमात्मा कहे जाते हैं. ॥ ३ ॥

अथ बहिरात्मपणा छोडके अंतरात्माके होनेवास्ते तत्त्वज्ञान करना चाहिये; वे तत्त्व जीवाजीवादि नवतत्त्वके हैं. अथवा देव, गुरु, और धर्म येह तीन तत्त्व हैं. इनका स्वरूप जैनतत्त्वादर्शमें लिखा है, इसवास्ते यहां नही लिखते हैं. * अथवा धर्मास्तिकाय (१), अधर्मास्तिकाय (२), आकाशास्तिकाय (३), काल (४), पुद्गलास्तिकाय (५), और जीवास्तिकाय (६), येह षट् द्रव्यतत्त्व है. इन छहोंही द्रव्योंको जैनमतमें द्रव्य कहते हैं. जेजे अवस्था द्रव्यकी पीछे होगइ है, जेजे वर्त्तमानमें होरही है, और जेजे आगेकों होवेगी, उनहीको जैनमतमें द्रव्यत्वशक्ति कहते हैं. यह द्रव्यत्वशक्ति, द्रव्यसें कथंचित् भेदाभेदरूप है. जैसें सुवर्णमें कटक कुंडलादि हैं. इस द्रव्यत्वशक्तिहीको, लोकोंने ईश्वर, जगत्स्रष्टा, कल्पन किया है; इसवास्ते भव्यजीवोंके बोधार्थ, किंचिन्मात्र, द्रव्यगुणपर्यायका स्वरूप, लिखते हैं. इस कथनमें जो आवेगी, सोही द्रव्यत्वशक्ति जान लेनी.

तहां प्रथम द्रव्यका स्वरूप लिखते हैं.।

"॥ सद्द्रव्यलक्षणम् ॥" 'सत्' जो है, सोही द्रव्यका लक्षण है. 'सत्' किसको कहते हैं? "॥ सीदति स्वकीयान् गुणपर्यायान् व्याप्नोतीति सत् ॥" अपने गुणपर्यायको, जो व्याप्तहोवे, सो 'सत्' है. अथवा "॥ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥" जो उत्पति, विनाश, और स्थिरता, इन तीनोंकरी संयुक्त होवे, सो 'सत्' है. अथवा "॥ अर्थक्रियाकारि सत् ॥" जो अर्थक्रिया करनेवाला है, सो 'सत्' है.

* देखो जैनतत्त्वादर्शके १ । २ । ५ । मे परिच्छेदमें

तदुक्तम् ॥

यदेवार्थक्रियाकारि तदेव परमार्थसत् ॥
यच्च नार्थक्रियाकारि तदेव परतोप्यसत् ॥ १ ॥

भावार्थः—जो अर्थक्रियाकारि है, सोही, परमार्थसें सत् है, और जो अर्थक्रियाकारि नही है, सो परत भी असत् है इति ॥

अथवा अन्यप्रकारसें द्रव्यका लक्षण कहते हैं ।

"॥ निज निज प्रदेशसमूहैरखंडवृत्त्या । स्वभावविभावपर्यायान् द्रवति द्रोष्यति अदुद्रुवदितिद्रव्यम् ॥"

भावार्थ—अपने अपने प्रदेशसमूहोंकरके अखंडवृत्तिसें स्वभावविभावपर्यायोंको प्राप्त होता है, होगा, और पीछे हुआ, सो द्रव्य है

अथवा "॥ गुणपर्यायवद् द्रव्यम् ॥" गुणपर्यायवाला द्रव्य होता है

यदुक्तं विशेषावश्यकवृत्तौ ॥

दवए दुयए दोरवयवो विगारो गुणाण सद्दावो ॥
दव्वं भव्वं भावस्स भूयभावं च जं जोग्गं ॥ १ ॥

व्याख्या—तिनतिन पर्यायोंको प्राप्त होता है, वा छोडता है, अथवा अपने पर्यायोंकरकेही प्राप्त होवे, वा छूटे, अथवा द्रुसत्ता तिसकाही अवयव, वा विकार, सो द्रव्य, अवांतरसत्तारूपद्रव्य, महासत्ताके अवयव, वा विकारही होते हैं अथवा रूपरसादि गुण तिनोंका सद्भावसमूह, घटादि ... सो द्रव्य तथा भाविपर्यायके योग्य जो होनेवाला, सो भी, द्रव्य, ... योग्य कुमारवत् तथा पश्चात्कृतभावपर्याय जिसका, सो भी, द्र... ...नाधारत्वपर्यायरहित घृतघटवत् च शब्दसें भूतभविष्यत् पर्याय ... भविष्यत घृताधारत्वपर्यायरहित घृतघटवत् भूतभावके भाविभावक, ... भविष्यत् भावोंके, इस समय न हुए भी, उन भावोंके जो योग्य ... ...व्य है, अन्य नही अन्यथा तो, सर्वपर्यायोंको भी, अनुभूतत्व ... ...नभविष्यमाणत्व होनेसें, पुद्गलादि सर्वको भी द्रव्यत्वका प्रसंग होवेगा ... ...ति गाथार्थ ।इतिद्रव्याधिकार ॥

अथ प्रसंगप्राप्त स्वभावविभावपर्याय, कथन करते हैं. तहां अगुरुलघुद्रव्यके जे विकार हैं, वे स्वभावपर्याय हैं; उससें विपरीत, अर्थात् स्वभावसें अन्यथा होनेवाले, विभाव हैं. तहां अगुरुलघुद्रव्य स्थिर है, यथा सिद्धिक्षेत्रं, जो कहा है समवायांगवृत्तिमें. गुरुलघुद्रव्य सो है, जो तिर्यग्गामि, तिरछा चलनेवाला है, यथा वायु आदि. अगुरुलघु सो है, जो स्थिर है; यथा सिद्धिक्षेत्र, तथा घंटाकारव्यवस्थित ज्योतिष्कविमानादि. गुणके जे विकार हैं, वे पर्याय हैं; और वे बारां प्रकारके हैं. अनंतभागवृद्धि (१), असंख्यातभागवृद्धि (२), संख्यातभागवृद्धि (३), अनंतगुणवृद्धि (४), असंख्यातगुणवृद्धि (५), संख्यातगुणवृद्धि (६), अनंतभागहानि (७), असंख्यातभागहानि (८), संख्यातभागहानि (९), अनंतगुणहानि (१०), असंख्यातगुणहानि (११), संख्यातगुणहानि (१२), इति.। नरनारकादि चतुर्गतिरूप, अथवा चौराशी लक्ष (८४०००००) योनिरूप, विभावपर्याय है. इति. ॥

अथ गुण लिखते हैं. अस्तित्व (१), वस्तुत्व (२), द्रव्यत्व (३), प्रमेयत्व (४), अगुरुलघुत्व (५), प्रदेशत्व (६), चेतनत्व (७), अचेतनत्व (८), मूर्त्तत्व (९), अमूर्त्तत्व (१०). येह द्रव्योंके सामान्य गुण हैं. प्रत्येक द्रव्यमें आठ आठ गुण, पाते हैं. अब इनका अर्थ लिखते हैं. अस्तित्व, सद्रूपपणा, नित्यत्वादिउत्तरसामान्योंका, और विशेषस्वभावोंका आधारभूत. । १ । वस्तुत्व, सामान्यविशेषात्मकपणा. । २ । द्रव्यत्व, द्रव्याधिकारोक्त 'सत्' और सत् द्रव्यका लक्षण है. । ३ । प्रमाणकरके, जो मापनेयोग्य है, सो प्रमेय है. । ४ । अगुरुलघुत्व, जो सूक्ष्म, और वचनके अगोचर है; और प्रतिसमय षट्षट्गुणी हानि, और वृद्धि, जो द्रव्यमें होरही है, जो केवल आगमप्रमाणसेंही ग्राह्य है, सो अगुरुलघुगुण है. ।

यतः ॥

सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं हेतुभिर्नैव हन्यते ॥
आज्ञासिद्धं तु तद् ग्राह्यं नान्यथावादिनो जिनाः ॥ १ ॥

भावार्थः—सूक्ष्म, जिनोक्त तत्त्व, जो हेतुयोंसें खंडित नही होता है,

सो तो जिनाज्ञासेंही माननेयोग्य है क्योंकि, जे रागद्वेषसें रहित है, वे जिन, भगवान्, सर्वज्ञ, अन्यथा नही कहते हैं । ५ । प्रदेशत्व, क्षेत्रपना जो अविभागीपरमाणुपुद्गल जितना है । ६ । चेतनत्व, जिससें वस्तुका अनुभव होता है ।

यत ॥

चैतन्यमनुभूति स्यात् सत्क्रियारूपमेव च ॥
क्रिया मनोवच कायेष्वन्विता वर्त्तते ध्रुवम् ॥ १ ॥

भावार्थ—चैतन्य जो है, सो अनुभूति है, और सत्क्रियारूप है, और क्रिया निश्चयकरके मनवचनकायामें अन्वित होके वर्त्ते है । ७ । अचेतनत्व, ज्ञानरहितवस्तु । ८ । मूर्त्तत्व, रूपरसगंधस्पर्शवाला । ९ । अमूर्त्तत्व, रूपादिरहित । १० ।

अथ द्रव्योंके विशेष गुण लिखते हैं ज्ञान (१), दर्शन (२), सुख (३), वीर्य (४), स्पर्श (५), रस (६), गंध (७), वर्ण (८), गतिहेतुत्व (९), स्थितिहेतुत्व (१०), अवगाहनहेतुत्व (११), वर्त्तनाहेतुत्व (१२), चेतनत्व (१३), अचेतनत्व (१४), मूर्त्तत्व (१५), अमूर्त्तत्व (१६) येह सोलां विशेष गुण हैं इनमेंसें जीवके १।२।३।४।१३।१६। येह ६ गुण है पुद्गलके ५।६।७।८।१४।१५। येह ६ गुण है धर्मास्तिकायके ९।१४।१६। येह ३ गुण है अधर्मास्थिकायके १० ।१४।१६। येह ३ गुण है आका ...स्तिकायके ११।१४।१६। येह ३ गुण है कालके १२।१४।१६। येह ... है अतके जे चार गुण है, वे स्वजातिकी अपेक्षा तो सामान्य गुण ...जातिकी अपेक्षा विशेष गुण हैं इनका अर्थ प्रकट है, इस वास्त ... है

अथ द्र... द्रव्योंके स्वभाव लिखते हैं अस्तिस्वभाव (१), नास्तिस्वभाव (... (३), अनित्यस्वभाव (४), एकस्वभाव (५), अनेकस्वभाव (... (७), अभेदस्वभाव (८), भव्य स्वभाव (९), अभव्यस्वभाव ... परमस्वभाव (११), यह इग्यारें

(११) द्रव्योंके सामान्य स्वभाव है. तथा चेतनस्वभाव (१), अचेतनस्वभाव (२), मूर्त्तस्वभाव (३), अमूर्त्तस्वभाव (४), एकप्रदेशस्वभाव (५), अनेकप्रदेशस्वभाव (६), विभावस्वभाव (७), शुद्धस्वभाव (८), अशुद्ध स्वभाव (९), उपचरितस्वभाव (१०), येह दश द्रव्योंके विशेषस्वभाव है. एतावता दोनों मिलाके एकवीस (२१) स्वभाव हुए. तिनमें जीवपुद्गलके एकवीस (२१) स्वभाव; धर्मास्तिकाय १. अधर्मास्तिकाय २, आकाशास्तिकाय ३, इन तीनोंके चेतनस्वभाव १, मूर्त्तस्वभाव २, विभावस्वभाव ३, अशुद्धस्वभाव ४, उपचरितस्वभाव [प्रत्यंतरमें–एकप्रदेशस्वभाव–द्रव्यगुणपर्यायके रासमें शुद्धस्वभाव] ५, इन पांचोंको वर्जके सोला स्वभाव. कालके पूर्वोक्त पांच, और बहुप्रदेशस्वभाव, एवं छ (६) स्वभावको वर्जके पंचदश (१५), स्वभाव जानने.

तदुक्तम् ॥

एकविंशति भावाः स्युर्जीवपुद्गलयोर्मताः ॥
धर्मादीनां षोडश स्युः काले पञ्चदश स्मृताः ॥ १ ॥

इति स्वभाव भी, गुणपर्यायके अंतर्भूतही जानने; पृथक् नहीं. परंतु इतना विशेष है कि, 'गुण' तो गुणीमेंही रहता है, और 'स्वभाव' गुण गुणी दोनोंमें रहता है. क्योंकि, गुण गुणी अपनी अपनी परिणतिको परिणमता है; और जो परिणति है, सो ही, स्वभाव है.

अथ स्वभावोंके अर्थ लिखते हैं. अस्तिस्वभाव, स्वभावलाभसें कदापि दूर न होना. । १ । नास्तिस्वभाव, पररूपकरके न होना. । २ । अपने अपने क्रमभावी नानाप्रकारके पर्याय, श्यामत्वरक्तत्वादिक, वे, भेदक हैं; उनके हुए भी, यह द्रव्य, वोही है, जो पूर्व अनुभव किया था; ऐसा ज्ञान जिससें होता है, सो नित्यस्वभाव. । ३ । द्रव्यका जो पर्याय परिणामीपणा, सो अनित्यस्वभाव. अर्थात् जिस रूपसें उत्पादव्यय है, तिस रूपसें अनित्यस्वभाव है. । ४ । सहभावीस्वभावोंका जो एकरूपकरके आधार होवे, सो एकस्वभाव. जैसें रूपरसगंधस्पर्शका एक आधार, घट है, तैसें नानाप्रकारके धर्माधारत्वकरके एकस्वभावता. । ५ ।

एकमें जो अनेक स्वभाव उपलभ होवे, सो अनेकस्वभाव. अर्थात् मृदादिद्रव्यका स्थास कोस कुशूलादिक अनेक द्रव्य प्रवाह है, तिसैं अनेकस्वभाव कहीये, पर्यायपणे आदिष्ट द्रव्य करिये, तब आकाशादिक द्रव्यमें भी, घटाकाशादिक भेदकरके यह स्वभाव दुर्लभ नहीं है ।६। गुणगुणी, पर्यायपर्यायी, आदिका सज्ञासख्यालक्षणादिक भेदकरके सातमा भेदस्वभाव जानना ।७। सज्ञा सख्या लक्षण प्रयोजन गुणगुणी आदिका एक स्वभाव होनेसें, अभेदवृत्तिद्वारा अभेदस्वभाव ।८। अनेक कार्यकारणशक्तिक जो अवस्थित द्रव्य है, तिसको क्रमिकविशेषता आविर्भावकरके अतिव्यग्य होना, अर्थात् आगामिकालमें परस्वरूपाकार होना, सो भव्यस्वभाव ।९। तीनों कालमें परद्रव्यमें मिले हुए भी, परस्वरूपाकार न होना, सो अभव्यस्वभाव ॥

यदुक्तम् ॥

अन्नोन्न पविसता देंता ओगासमण्णमण्णस्स ॥
मेलताविय णिच्च सगसगभाव णविजहंति ॥१॥ इति ॥१०॥

स्वलक्षणीभूत परिणामिक भावप्रधानताकरके परम भावस्वभाव कहिये, तात्पर्य यह है कि, जिस जिस द्रव्यमें जो जो परिणामिकभाव प्रधान है, सो सो, परमभावस्वभाव है यथा ज्ञानस्वरूप आत्मा ।११। यह सामान्यस्वभावोंका सक्षेपार्थ है विशेषार्थ देखना होवे तो, बृहत्नय चक्रसें देखलेना

जिससें चेतनपणाका व्यवहार होवे, सो चेतनस्वभाव ।१। चेतन [illegible] उलटा, अचेतनस्वभाव ।२। रूपरसगधस्पर्शादिक जिससें ध। [illegible] सो मूर्त्तस्वभाव ।३। मूर्त्तस्वभावसें उलटा, अमूर्त्तस्वभाव । [illegible] परिणति अखडाकारसन्निवेशका जो भाजनपणा, सो एकप्रदेशस्व[illegible] [illegible]ना भिन्नप्रदेशयोगकरके तथा भिन्नप्रदेशकल्पनाकरके अनेकप्रदेश [illegible] [illegible]पणा होवे, सो अनेकप्रदेशस्वभाव ।६। स्वभावसें अन्यथा जा [illegible] विभावस्वभाव ।७। जो केवल शुद्ध होवे, अर्थात् उपाधिभावरहित [illegible] परिणमन, सो शुद्धस्वभाव ।८।

इससें विपरीत, अर्थात् उपाधिजनित वहिर्भावपरिणमन योग्यता, सो अशुद्धस्वभाव. । ९ । नियमितस्वभावका जो अन्यत्र अपरस्थानमें उपचार करना सो, उपचरितस्वभाव. । १० । उपचरितस्वभाव दो प्रकारका है; एक कर्मजन्य, और दूसरा स्वाभाविक. तहां पुद्गलसंवंधसें जीवको मूर्त्तपणा, और अचेतनपणा, जो कहते हैं, सो 'गौर्वाहीकः' इसतरें उपचार है; सो कर्मजनित है; इसवास्ते कर्म, सोही उपचरितस्वभाव है. और दूसरा जैसें सिद्धात्माको परज्ञातृत्व, परदर्शकत्व, मानना.

अव जो कोई वादी इन पूर्वोक्त स्वभावोंको न माने, तिसके मतमें जो दूषण आवे है सो, लिखते हैं. जेकर एकांत अस्तिस्वभावही माने, तव तो, नास्तिस्वभाव, न मानेगा, तव तो, सर्वपदार्थकी भिन्नभिन्न नियत स्वरूपावस्था नही होवेगी; तव संकरादि दूषण होवेंगे; जगत् एकरूप होजायगा. और सो तो, सर्वशास्त्रव्यवहारविरुद्ध है. इसवास्ते परपदार्थकी अपेक्षा, नास्तिस्वभाव भी, माननाही पडेगा; । १ ।

जेकर एकांत नास्तिस्वभाव माने, तव सर्व जगत् शून्य सिद्ध होवेगा. । २ ।

जेकर एकांत नित्यही मानेगा, तव नित्यको एकरूप होनेसें अर्थक्रियाकारित्वका अभाव होवेगा, अर्थक्रियाकारित्वके अभावसें द्रव्यकाही अभाव होवेगा. । ३ ।

जेकर एकांत अनित्य मानेगा, तव द्रव्य निरन्वय नाश होवेगा; तव तो, पूर्वोक्तही दूषण होगा. । ४ ।

जेकर एकांत एक स्वभाव माने, तव विशेषका अभाव होवेगा; जव विशेषका अभाव होवेगा, तव अनेकस्वभावविना मूलसत्तारूप सामान्यका भी अभाव होवेगा.

तदुक्तं ॥

निर्विशेषं सामान्यं भवेत् खरविषाणवत् ॥
सामान्यरहितत्वाच्च विशेषस्तद्वदेवहि ॥ १ ॥

भाषार्थः—विशेषविना सामान्य गर्दभके सींगसमान असद्रूप है, और सामान्यविना विशेष भी असद्रूप है, खरशृंगवत्. ॥ ५ ॥ जेकर एकांत

अनेकरूप माने, तब द्रव्यका अभाव होवेगा, निराधार होनेसें; और आधाराधेयके अभावसें वस्तुकाही अभाव होवेगा ।६।

जेकर एकांत भेदही माने, तब विशेषोंके निराधार होनेसें, निरवलंब गुणपर्यायका बोध न होना चाहिये क्योंकि, आधाराधेयके अभेदविना दूसरा संबंध, घटही नही सकता है, एसे हुए अर्थक्रियाकारित्वका अभाव होवेगा, और तिसके अभावसें द्रव्यका भी अभाव होवेगा । ७।

जेकर एकांत अभेदपक्ष माने, तब सर्व पदार्थ एकरूप होजावेंगे; तिसकरके 'इदं द्रव्यं' यह द्रव्य 'अयं गुणः' यह गुण 'अयं पर्यायः' यह पर्याय, इत्यादि व्यवहारका विरोध होवेगा, और अर्थक्रियाका अभाव होवेगा, अर्थक्रियाके अभावसें द्रव्यकाभी अभाव होवेगा ।८।

जेकर एकांत भव्यस्वभावही माने, तब सर्वद्रव्य परिणामी होके द्रव्यांतरके रूपको प्राप्त होवेंगे, तब संकरादि दूषण होवेंगे संकरादि दूषण येह हैं संकर (१), व्यतिकर (२), विरोध (३), वैयधिकरण (४), अनवस्था (५), संशय (६), अप्रतिपत्ति (७), अभाव (८)।

इनका अर्थः—सर्ववस्तुकी एकवस्तु होजावे, तब संकरदूषण होवे १ जिस वस्तुकी किसीप्रकारसें भी स्थिति न होवे, सो व्यतिकरदूषण २. जडका स्वभाव चेतन होवे, और चेतनका स्वभाव जड होवे, सो विरोधदूषण ३ जो अनेकवस्तुकी एककेविषे विषमताकरके स्थिति होवे, सो वैयधिकरणदूषण ४ एकसें दूसरा उत्पन्न होगा, दूसरेसें तीसरा, तीसरेसे चौथा उत्पन्न होगा, इससरें जडसें चेतन, चेतनसें जड, सो [illegible]दूषण ५ इसको चेतन कहें कि, जड कहें? ऐसा जो संदेह स[illegible]दूषण ६ जिसका किसही कालमें निश्चय न होवे कि, यह जड है [illegible] है सो अप्रतिपत्तिदूषण ७ सर्वथा वस्तुका नाशही होवे, सो अभा[illegible] ८ इसवास्ते इन पूर्वोक्त दूषणोंके दूर करने वास्ते, कथंचित् अभ[illegible] भी माननाही योग्य है ।९।

जेकर एकांत अभव्य[illegible] माने, तब सर्वथा शून्यताकाही प्रसंग होवेगा ।१०।

यादि परमभावस्वभाव न माने तो, द्रव्यमें प्रसिद्धरूप कैसें दिया जाय? क्योंकि, अनंतधर्मात्मक वस्तुको एकधर्मपुरुषकारकरके बुलाना कथन करना, सोही परमभावस्वभावका लक्षण है. । ११ ।

जेकर एकांतचैतन्यस्वभाव माने तो, सर्व वस्तु चैतन्यरूप होजावेगी; तब ध्यान, ध्येय, ज्ञान, ज्ञेय, गुरु, शिष्यादिकका अभाव होवेगा. क्योंकि, जब जीवको सर्वथा चेतनस्वभावही कहें, अचेतनस्वभाव न कहें तो, अचेतनकर्मका जो कर्मद्रव्योपश्लेष तिसकरके जनित चेतनके विकार विना, जीवको शुद्ध सिद्धसदृशपणा होगा; तब तो, ध्यान ध्येय गुरु शिष्य इनकी क्या जरूर है? ऐसें तो सर्वशास्त्रव्यवहार निष्फल होजायगा. शुद्धको अविद्यानिवृतिपणे, क्या उपकार होवे? इसवास्ते 'अलवणा यवागूः' इस वचनवत्, अचेतन आत्मा, ऐसा भी कथंचित् कहना योग्य है. । १२ ।

जेकर एकांत अचेतनस्वभाव माने, तब सकलचैतन्यका उच्छेद होवेगा. । १३ ।

जेकर एकांत मूर्त्त माने, तब आत्माकी मुक्तिकेसाथ व्याप्ति न होवेगी. । १४ ।

जेकर एकांत अमूर्त्त माने, तब आत्मा संसारी कदापि न होवेगा. । १५ ।

जेकर एकांत एकप्रदेशस्वभाव माने, तब अखंड परिपूर्ण आत्माको अनेककार्यकारित्वकी हानि होवेगी. जैसें घटादिक अवयवी, देशसें सकंप, और देशसें निष्कंप देखते हैं; सो द्रव्यको अनेकप्रदेशी न माननेसें कैसें सिद्ध होवेगा? यदि अवयव कंपते हुए भी, अवयवी निष्कंप है, ऐसे कहो तो 'चलती' यह प्रयोग कैसें सिद्ध होगा? प्रदेशवृत्तिकंपका जैसें परंपरासंबंध है, तैसें देशवृत्तिकंपाभावका भी परंपरासंबंध है, तिसवास्ते देशसें चलता है, और देशसें नही चलता है, इस अस्खलित व्यवहारमें अनेक प्रदेश मानना; तथा अनेक प्रदेश स्वभाव न मानीये तो, आकाशादि द्रव्यमें परमाणुसंयोग कैसें घट सके? क्योंकि, एकवृत्ति तो देशसें है, जैसें कुंडल इंद्रको, यहां

कुडल तो कानमें प्रसृत है, और कान इद्रका एक देश है, तो भी, इंद्र कहके बुलाया जाता है और दूसरी वृत्ति सर्वसें है, जैसें सामान्य द्रव्यकी, अर्थात् जामा अगरखा सर्वअगमें पहिरा है, सो देवदत्त, सर्वसें वृत्ति जाननी तिहां प्रत्येकमें दूषण, सम्मति वृत्तिमें कहे हैं यथा— परमाणुकी आकाशादिकके साथ देशसें वृत्ति माने तो, आकाशादिकके प्रदेश नही इच्छते भी मानने पडेंगे, और सर्वसें वृत्ति माने तो, परमाणु आकाशादि प्रमाण होजायगा, और उभयाभाव माने तो, परमाणुको अवृत्तिपणा होजायगा, इसवास्ते द्रव्यको कथचित् अनेक प्रदेशस्वभाव भी मानना ठीक है । १६ ।

जेकर एकात अनेक प्रदेशस्वभाव माने तो, अर्थ क्रियाकारित्वाभाव, और स्वस्वभावशून्यताका प्रसग होवेगा ।१७।

जेकर एकात विभावस्वभाव माने, तो मुक्तिका अभाव होजावेगा।१८

जेकर एकात शुद्धस्वभाव माने, तव तो, आत्माको कर्मलेप न लगेगा और ससारकी विचित्रताका अभाव होवेगा । १९ ।

जेकर एकात अशुद्धस्वभाव माने तो, आत्मा कदापि शुद्ध न होवेगा । २० ।

जेकर एकात उपचरितस्वभाव माने, तब आत्मा कदापि ज्ञाता नही होवेगा जेकर एकातअनुपचरित माने तो, स्वपरव्यवसायीज्ञानवत आत्मा नही होसकेगा क्योंकि, ज्ञानको स्वविषयत्व तो अनुपचरित है, परंतु [illegible]विषयत्व परापेक्षासें प्रतीयमानपणे, तथा परनिरूपित सबधको [illegible] न है । २१ ।

[illegible]मतकरके सर्वही स्वभाव, कथचित् द्रव्यमें मानने चाहिये

उक्तच ॥

नानास्वभा[illegible] [illegible]व्य ज्ञात्वा प्रमाणत ॥
तच्च सापेक्षसिद्ध्य[illegible] [illegible] मश्रित कुरु ॥ १ ॥

भाषार्थः—नानास्वभावसंयुक्त द्रव्यको प्रमाणसें जानके, तिस द्रव्यको सापेक्ष स्वद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षा अस्तिरूप, परद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षा नास्तिरूप, इत्यादि सिद्धिकेवास्ते 'स्यात्' शब्द और 'नय' इनसें मिश्रित करो. ॥

इसवास्ते नयके मतद्वारा स्वभावोंका अधिगम संक्षेपमात्रसें द्रव्योंमें दिखाते हैं.

द्रव्यका जो अस्तिस्वभाव है, सो, स्वद्रव्यादिचतुष्टयके ग्रहणसें, द्रव्यार्थिक नयके मतसें, जानना. । १ ।

परद्रव्यादिचतुष्टयके ग्रहणसें, द्रव्यार्थिक नयके मतसें, नास्तिस्वभाव है. । २ ।

उक्तंच ॥

"॥ सर्वमस्तिस्वरूपेण पररूपेण नास्ति च ॥"

उत्पादव्ययकी गौणताकरके सत्तामात्रके ग्रहणसें, द्रव्यार्थिकनयके मतसें, नित्यस्वभाव है. । ३ ।

उत्पादव्ययकी मुख्यतासें, और सत्ताकी गौणतासें, ऐसें पर्यायार्थिक नयके मतसें अनित्यस्वभाव है. । ४ ।

भेदकल्पनाकी निरपेक्षतासें, शुद्धद्रव्यार्थिकनयके मतसें, एक स्वभाव है. । ५ ।

अन्वयद्रव्यार्थिकसें, अनेकस्वभाव है. कालान्वयमें सत्ताग्राहक, और देशान्वयमें अन्वयग्राहक नय, प्रवर्त्तता है. । ६ ।

सद्भुतव्यवहारनयसें, गुणगुणी, पर्यायपर्यायीका भेदस्वभाव है. । ७ ।

गुणगुण्यादिभेदनिरपेक्षतासें, शुद्धद्रव्यार्थिकनयके मतसें, अभेदस्वभाव है. । ८ ।

परमभावग्राहकनयके मतसें, भव्य, अभव्य, स्वभाव जानने, भव्यता, सो स्वभावनिरूपित है; और अभव्यता, सो उत्पन्नस्वभावकी तथा परभावकी साधारण है; इसवास्ते यहां अस्तिनास्तिस्वभावकीतरें स्वपरद्रव्यादिग्राहकनयोंकी प्रवृत्ति, नही होसक्ती है. । ९ । १० ।

परिणामिक प्राधान्यतासें, परमस्वभाव, ग्रंथोंमें है परिणाम स्वरूप ऐसा है

सर्वथा न गमो यस्मात् सर्वथा न च आगमः ॥
परिणाम प्रमासिद्ध इष्टश्च खलु पंडितै ॥ १ ॥

भावार्थ —सर्वथा जिससें जाना न होवे, और सर्वथा आगमन होवे, सो परिणाम, प्रमाणसिद्ध है, ऐसा पंडितोंको इष्ट है जैसें सु र्णके कटक कुंडल कंकणादि । ११ ।

शुद्धाशुद्धपरमभावग्राहक नयके मतस, चेतनस्वभाव जीवको, और अस ्भूतव्यवहारनयसें, ज्ञानावरणादि कर्म, तथा नोकर्म मनवचनकायपुद्ग इनको चेतन कहिये चेतनसयोगकृतपर्याय वहां है, इसवास्ते 'इ शरीरमावश्यकं जानाति ' यह शरीर आवश्यक जानता है, इत्यादि व्यवहार इसीवास्ते होता है घृत वहतीतिवत् । १२ ।

परमभावग्राहकनयके मतसें कर्म नोकर्मको, अचेतनस्वभाव, यथ घृत अनुष्णस्वभाव और असद्भूतव्यवहारनयसें जीवको भी, अचेतन स्वभाव इसीवास्ते ' जडोयमचेतनोयम् ' इत्यादि व्यवहार है । १३ ।

परमभावग्राहकनयके मतसें कर्म नोकर्मको मूर्त्तस्वभाव असद्भूतव्य वहारनयसें जीवको भी मूर्त्तस्वभाव, इसीवास्ते ' अयमात्मा दृश्यते ' यह आत्मा दिखता है, ' असुमात्मान पश्यामि ' इस आत्माको मैं ...ता हू, इत्यादि व्यवहार है तथा ' रक्तौ च पद्मप्रभवासुपूज्यौ ' इत्यादि ...नी इसी स्वभावसें है । १४ ।

...ग्राहकनयसें, पुद्गलवर्जके अन्योंको अमूर्त स्वभाव, और पुद्गल... ...स भी, अमूर्त्तस्वभाव नही, तो एकवीसमा भाव नही होग... ...विंशतिभावा स्युर्जीवपुद्गलयोर्मता ' इस वचनके व्याघातसें अप... ...ा जिसको दूर करनेवास्ते, असद्भूतव्यवहारन यसें परोक्ष, पुद्गलपरम... ...सका अमूर्त्त कहिये व्यवहारिकप्रत्यक्षके अगोचरपणा, सोही, परमाणु... ...पणा, अंगिकार करिये हैं.

तदुक्तम् ॥

"॥ व्यावहारिकप्रत्यक्षागोचरत्वममूर्त्तत्वं परमाणोर्भाक्तं स्वीक्रियतइत्यर्थः ॥" ।१५।

कालाणु, और पुद्गलाणुको परमभावग्राहकनयके मतसें, एकप्रदेशस्वभाव; और भेदकल्पनानिरपेक्षतासें शुद्धद्रव्यार्थिकनयसें एकप्रदेशस्वभाव, कालपुद्गलसें इतर धर्माधर्माकाशजीवोंको भी, अखंड होनेसें है. । १६ ।

भेदकल्पनासापेक्षसें शुद्ध द्रव्यार्थिकनयसें, एक छूटे परमाणुविना सर्वद्रव्यको अनेकप्रदेशस्वभाव; और पुद्गलपरमाणुको भी अनेकप्रदेश होनेकी योग्यता है, तिसवास्ते उपचारसें तिसको भी अनेकप्रदेशस्वभाव कहिये. और कालाणुमें सो उपचार कारण नही है, तिसवास्ते तिसको सर्वथा यह स्वभाव नही है. । १७ ।

शुद्धाशुद्धद्रव्यार्थिकनयके मतसें, विभावस्वभाव है. । १८ ।

शुद्धद्रव्यार्थिकनयके मतसें, शुद्धस्वभाव है. । १९ ।

अशुद्धद्रव्यार्थिकनयके मतसें, अशुद्धस्वभाव है. । २० ।

असद्भूतव्यवहारनयके मतसें, उपचरितस्वभाव है. । २१ ।

येह नयोंके मतसें स्वभावोंका वर्णन कथन किया. अथ किंचिन्मात्र नयका स्वरूप लिखते हैं.

"॥ नानास्वभावेभ्यो व्यावृत्त्यैकस्मिन् स्वभावे वस्तुनयनं नयः ॥"

भावार्थः—नाना स्वभावसें हटाके, वस्तुको एक स्वभावमें प्राप्त करनां, सो नय है.

अथवा । "॥ प्रमाणेन संगृहीतार्थैकांशो नयः ॥"

भावार्थः—प्रमाणकरके जो संगृहीतार्थ है, तिसका जो एक अंश, सो नय.

अथवा । "॥ ज्ञातुरभिप्रायः श्रुतविकल्पो वा इत्येके ॥"

भावार्थः—ज्ञाताका जो अभिप्राय, वा श्रुतविकल्प, सो नय. ।

अथवा । "॥ सर्वत्रानंतधर्माध्यासिते वस्तुनि एकांशग्राहको बोधो नयः ॥"

भावार्थ—सर्वत्र अनंतधर्माध्यासितवस्तुमें एक अंशका ग्राहक जो बोध है, सो नय है—इत्यनुयोगद्वारवृत्तौ ॥

अथवा। "॥ अनंतधर्मात्मके वस्तुन्येकधर्मोन्नयन ज्ञान नय ॥" इति नयचक्रसारे ॥

भावार्थ—अनंतधर्मात्मक जो वस्तु अर्थात् जीवादिक एक पदार्थमें अनंतधर्म है, उसका जो एक धर्म ग्रहण करना, और दूसरे अनंतधर्म उसमें रहे है, उनका उच्छेद नही, और ग्रहण भी नही, केवल किसी एक धर्मकी मुख्यता करनी, सो नय कहिये

अथवा। " ॥ नीयते येन श्रुताख्यप्रमाणविषयीकृतस्यार्थस्यांशस्तदितरांशौदासीन्यत सप्रतिपत्तुरभिप्रायविशेषो नय ॥ "

अर्थ—यह सूत्र स्याद्वादरत्नाकरका है। प्रत्यक्षादि प्रमाणसें निश्चित किया जो अर्थ, तिसके अंशको, अंशोंको, वा ग्रहण करें, और इतर अंशोमें औदासीन रहे, अर्थात् इतर अंशोंका निषेध न करे, सो नय, कहिये हैं यदि मानें अंशके सिवाय तदितर दूसरे अंशोंका निषेध करे तो, नयाभास हो जावे जैनमतमें जो कथन है, सो नयविना नही है

यदुक्त विशेषावश्यके ॥

णत्थि णएहिं विहुण सुत्त अत्थो य जिणमए किंचि ॥
आसज्जउ सोआर नए नयविसारओ बूआ ॥ १ ॥

[illegible]—जिनमतमें नयविना कोई भी सूत्र, और अर्थ, नही है, इसवास्ते [illegible] नयका जानकार गुरु, योग्य श्रोताको प्राप्त होकर, विविध [illegible]नि ॥

अब [illegible] [illegible]भासका लक्षण कहते हैं

" ॥ [illegible]न्तिरांशापलापी नयाभास ॥ "

भावार्थ—अपने [illegible] [illegible]अर्थके अन्य अंशको जो निषेध करे, और नयकीतरें भासन हो [illegible] [illegible]स है परंतु नय नही जैसें अन्य

तीर्थीयोंके मतमें एकांत नित्यअनित्यादिके कथन करनेवाले वाक्य है. इति. ॥

वे नय, विस्तारविवक्षामें अनेक प्रकारके हैं. क्योंकि, नानावस्तुमें अनंत अंशोंके एकएक अंशको कथन करनेवाले जे वक्ताके उपन्यास है, वे सर्व, नय हैं.।

यदुक्तं सम्मतौ अनुयोगद्वारवृत्तौ च ॥

जावइया वयणपहा तावइया चेव हुंति नयवाया ॥
जावइया नयवाया तावइया चेव परसमया ॥ १ ॥

अर्थः-जितने वचनके पथ-रस्ते हैं, उतनेही नयोंके वचन हैं, और जितने नयोंके वचन है, उतनेही परमत हैं, एकांत माननेसें. इसवास्ते विस्तारसें सर्व नयोंके स्वरूप लिख नही सकते हैं, संक्षेपसें लिखते हैं.

सो, पूर्वोक्तस्वरूप नय, दो तरेंके हैं. द्रव्यार्थिकनय (१), और पर्यायार्थिकनय (२).

यदुक्तं ॥

णिच्छयववहारणया मूलिमभेदा णयाण सव्वाणं ॥
णिच्छयसाहणहेऊ दव्व पज्जात्थिया मुणह ॥ १ ॥

अर्थः-निश्चयनय, और व्यवहारनय, येह सर्व नयोंके मूल भेद हैं. और निश्चयनयके साधनहेतु, द्रव्यार्थिक, और पर्यायार्थिक, जानो. इति. ॥

इनमें पूर्वोक्त द्रव्यही अर्थ प्रयोजन है, जिसका, सो द्रव्यार्थिक. उसके युक्तिकल्पनासें दश भेद हैं.

तथाहि ॥

अन्वयद्रव्यार्थिक-जो एकस्वभाव कहिये; जैसें एकही द्रव्य गुणपर्यायस्वभाव कहिये, अर्थात् गुणपर्यायके विषे द्रव्यका अन्वय है, जैसें द्रव्यके जाननेसें द्रव्यार्थादेशसें तदनुगत सर्वगुणपर्याय जाने कहिये; जैसें सामान्यप्रत्यासत्ति परवादीकी सर्वव्यक्ति जानी कहै, तैसें यहां जानना. यह अन्वयद्रव्यार्थिकः। १।

स्वद्रव्यादिग्राहक—जैसें अर्थ, जो घटादिकद्रव्य सो स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र स्वकाल, स्वभाव, इन चारोंकी अपेक्षा सत् है, स्वद्रव्य मृत्तिका, स्वक्षेत्र पाटलिपुरादि, स्वकाल विवक्षितहेमतादि, स्वभाव रक्तादि, इनोंसें जो घटादिककी सत्ता, सो प्रमाण है, सिद्ध है इति स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिक ।२।

परद्रव्यादिग्राहक—जैसें अर्थ जो घटादिक, सो, परद्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षा सत् नही है, यथा परद्रव्य तंतुप्रमुख, परक्षेत्र काशीप्रमुख, परकाल अतीत अनागतादि, परभाव श्यामतादि, इन चारोंकी अपेक्षा, घट, असत् है, इति परद्रव्यादिग्राहकद्रव्यार्थिक ।३।

परमभावग्राहक—जिस नयानुसार आत्माको ज्ञानस्वरूप कहते हैं, यद्यपि दर्शन, चारित्र, वीर्य, लेश्यादिक आत्माके अनंत गुण है, तो भी, सर्वमें ज्ञानस्वभाव सार उत्कृष्ट है क्योंकि, अन्य द्रव्यसें आत्माका भेद ज्ञानस्वभाव दिखाता है, तिसवास्ते शीघ्रोपस्थितिकपणे आत्माका ज्ञानही परमभाव है, इसवास्ते 'ज्ञानमय आत्मा' यहां अनेक स्वभावोंके बीचसें ज्ञानाख्यपरमभाव ग्रहण किया ऐसें दूसरे द्रव्योंके भी परमभाव, असाधारण गुण लेने इति परमभावग्राहकद्रव्यार्थिक ।४।

कर्मोपाधिनिरपेक्ष शुद्धद्रव्यार्थिक—जैसें सर्वसंसारी प्राणीमात्रको सिद्धसमान शुद्धात्मा गिणीयें कहियें, अर्थात् सहजभाव जो शुद्धात्म स्वरूप उसको अग्रगामी करिये, और भवपर्याय जो संसारके भाव नको गिणिये नही, अर्थात् उनकी विवक्षा न करिये इति ।

न द्रव्यसमहे ॥

गाठाणेहिं चउदसहिं हवंति तह असु द्धणया ॥

विप०, गी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया ॥ १ ॥

चतुर्दशमागण ानकरके अशुद्ध नय होते हैं, ऐसे जानना, और सर्वसंसारी, शुद्धन द्ध है ऐसे जानना इति कर्मोपाधिनिरपेक्षशुद्धद्रव्यार्थिक ।५।

उत्पादव्ययकी गौणतासें, और सत्ताकी मुख्यतासें, शुद्धद्रव्यार्थिक-जैसें द्रव्य नित्य है, यहां तीनोंही कालमें अविचलितरूपसत्ताका मुख्यपणे ग्रहण करनेसें, यह भाव संभव होता है. क्योंकि, यद्यपि पर्याय, प्रतिक्षण परिणामी है, तो भी, जीवपुद्गलादिकद्रव्यसत्ता कदापि चलती नही है. इति उत्पादव्ययगौणत्वे सत्ताग्राहकः शुद्धद्रव्यार्थिकः। ६।

भेदकल्पनानिरपेक्ष शुद्धद्रव्यार्थिक-जैसें निजगुणपर्यायस्वभावसें, द्रव्य, अभिन्न है.। ७।

कर्मोपाधिसापेक्ष अशुद्धद्रव्यार्थिक-जैसें क्रोधादिकर्मभावमय आत्मा, जिस समय जो द्रव्य जिस भावे परिणमे, तिस समय सो द्रव्य तन्मय जानना; यथा लोहपिंड अग्निपणे परिणत हुआ तिस कालमें अग्निरूप जानना, ऐसेंही क्रोधमोहादि कर्मोदयकेसमय क्रोधादिभाव परिणत आत्मा क्रोधादिरूप जानना. इसी वास्ते आत्माके आठ भेद सिद्धांतमें प्रसिद्ध है. इति। ८।

उत्पादव्ययसापेक्ष सत्ताग्राहक अशुद्धद्रव्यार्थिक-जैसें एकसमयमें द्रव्य को उत्पादव्ययध्रुवयुक्त कहना, यथा जो कटकादिका उत्पादसमय, सोही केयूरादिका विनाशसमय, और कनकसत्ता तो, अवर्जनीयही है. इति। ९।

भेदकल्पनासापेक्ष अशुद्धद्रव्यार्थिक-जैसें ज्ञानदर्शनादिक शुद्ध गुण आत्माके हैं. यहां षष्ठी विभक्ति, भेद कथन करती है. 'भिक्षोः पात्रमितिवत्' भिक्षुसाधुका पात्र; यहां साधु, और पात्रका भेद है. इसीतरें आत्मा, और गुणका भेद षष्ठी विभक्ति कहती है; और गुणगुणीका भेद है नही, तो भी, भेदकल्पनाकी अपेक्षासें अशुद्धद्रव्यार्थिकनयके मतसें ऐसें कथन करनेमें आता है. इति। १०।

येह द्रव्यार्थिकके दश भेद हुए.॥

अथ पर्यायार्थिकनयके भेद लिखते हैंः-पर्यायनाम, जो उत्पत्ति, और विनाशको प्राप्त होवे.

यदुक्तम्॥

अनादिनिधने द्रव्ये स्वपर्यायाः प्रतिक्षणम्॥
उन्मज्जंति निमज्जंति जलकल्लोलवज्जले॥ १॥

भावार्थ—अनादि अनतद्रव्यमें स्वपर्याय समयसमयमें उत्पन्न होते हैं, और विनाश होते हैं, जैसें जलमें जलकल्लोल, तरग इत्यर्थ ।

पूर्वोक्त षट् २ हानिवृद्धिरूप, और नरनारकादिरूप, यहा पर्यायशब्दकरके ग्रहण करिये हैं पर्याय दो प्रकारके हैं, सहभावी पर्याय (१) क्रमभावी पर्याय (२) जो सहभावीपर्याय हे, तिसको गुण कहते हैं पर्यायशब्दसें पर्यायसामान्य स्वव्यक्तिव्यापीको कथन करनेसें दोष नही तहा सहभावीपर्यायोंको गुण कहते हैं, जैसें आत्माका विज्ञान व्यक्तिशक्तिआदिक और क्रमभावीको पर्याय कहते हैं, जैसें आत्माके सुख दुःख शोकहर्षादि

पर्याय भी, स्वभाव (१) विभाव (२) और द्रव्य (१) गुण (२) करके चार प्रकारके हैं । तथाहि—स्वभावद्रव्यव्यजनपर्याय, यथा चरमशरीरसें किंचित् न्यूनसिद्धपर्याय ।१। स्वभावगुणव्यजनपर्याय, यथा जीवके अनत ज्ञानदर्शन सुखवीर्य आदि गुण ।२। विभावद्रव्यव्यजनपर्याय, यथा चोरासीलाख योनि आदि भेद ।३। विभावगुणव्यजनपर्याय, यथा मति आदि ।४। पुद्गलके भी द्व्यणुकादि विभावद्रव्यव्यजन पर्याय है ।५। रससें रसातर, गधसें गधातर, इत्यादिकका होना, सो पुद्गलके विभावगुणव्यजन पर्याय है ।६। अविभागी पुद्गलपरमाणु जे हैं, ये स्वभावद्रव्यव्यंजन पर्याय हैं ।७। एकाक वर्ण गध रस और अविरुद्ध दो स्पर्श ये स्वभाव गुणव्यजनपर्याय है ।८। तैसें एकत्वपृथक्त्वादि भी पर्याय हैं

उक्तंच ॥

एगत्त च पहुत्त च संखा सठाणमेवय ॥
सजोगो य विभागो य पज्जयाण तु लक्खण ॥ १ ॥

एकपणा जो भाव, सो एकत्व, भिन्न भी परमाणुआदिकमें
अ एकी प्रतीतिका हेतु, सो एकत्व पृथक्त्व यह इससें
पृथक् ... म ज्ञानका हेतु सख्या, सस्थान, सयोग, विभाग,
म शब्दसें न ... सब पर्यायके लक्षण हैं
पूर्वोक्तस्वरूप, ... प्रयोजन जिसका सो पर्यायार्थिक
नय सो ७ (६) प्रकारका

तद्यथा ॥

अनादि नित्य शुद्धपर्यायार्थिक—जैसें पुद्गलपर्याय मेरुप्रमुख प्रवाहसें अनादि, और नित्य है. असंख्याते कालमें अन्योन्य पुद्गलसंक्रम हुए भी, संस्थान वोही है, ऐसेंही रत्नप्रभादिक पृथिवीपर्याय जानने. ।१।

सादि नित्य शुद्धपर्यायार्थिक—जैसें सिद्धके पर्यायकी आदि है. क्योंकि, सर्व कर्म क्षय हुए, तब सिद्धपर्याय उत्पन्न हुआ, तिससें आदि हुइ; परंतु तिसका नाश अंत नही है, इसवास्ते नित्य है. एतावता सिद्धपर्याय सादिनित्य सिद्ध हुआ. । २ ।

सत्ताकी गौणतासें, उत्पादव्ययग्राहक अनित्य शुद्धपर्यायार्थिक—जैसें समयसमयमें पर्याय विनाशी है. यहां विनाशी कहनेसें विनाशका प्रतिपक्षी उत्पाद भी, आगया; परंतु ध्रुवताको गौणकरके दिखाइ नही. ।३।

सत्तासापेक्ष नित्यअशुद्धपर्यायार्थिक—जैसें एकसमयमें, पर्याय, उत्पाद व्यय ध्रुव तीनोंकरके रुद्ध है, ऐसा कहना. परंतु पर्यायका शुद्ध रूप तो, तिसकोही कहिये, जो सत्ता न दिखलानी. परंतु यहां तो, मूलसत्ता भी दिखाइ, इसवास्ते अशुद्ध भेद हुआ. । ४।

कर्मोपाधिनिरपेक्ष नित्य शुद्धपर्यायार्थिक—जैसें संसारीजीवके पर्याय, सिद्धके जीवसदृश है. यद्यपि कर्मोपाधि है, तथापि तिसकी विवक्षा न करिये; और ज्ञानदर्शनचारित्रादिक शुद्धपर्यायकीही विवक्षा करिये, तबही पूर्वोक्त कहना बनसकता है. । ५ ।

कर्मोपाधिसापेक्ष अनित्य अशुद्धपर्यायार्थिक—जैसें संसारवासी जीवोंको जन्ममरणका व्याधि है. यहां जन्मादिक जीवके जे पयार्य कर्मसंयोगसें है, वे अनित्य और अशुद्ध है, तिसवास्तेही जन्मादिपर्यायके नाश करनेके वास्ते, मोक्षार्थी जीव, प्रवृत्तमान होता है. । ६ ।

येह पर्यायार्थिकके षट् (६) भेद कथन किये. ॥

अथ इन पूर्वोक्त दोनों नयोंके स्थानप्रधान कहते हैंः—

द्रव्यार्थिक जो नय है, सो, नित्यही स्थानको कहता है; द्रव्यको नित्य, और सकल कालमें होनेसें. पर्यायार्थिक जो नय है, सो, अनित्यही स्थानको कहता है, प्रायः पर्यायोंको अनित्य होनेसें.

तदुक्त राजप्रश्नीयवृत्तौ ॥

"॥ द्रव्यार्थिकनये नित्य पर्यायार्थिकनयेत्वनित्य द्रव्यार्थिकनयो द्रव्यमेव तात्त्विकमभिमन्यते नतु पर्यायान् द्रव्यं चान्वयि परिणामित्वात् सकलकालभावि भवति ॥"

भावार्थ—द्रव्यार्थिकनयसें नित्य और पर्यायार्थिकनयसें अनित्य वस्तु है द्रव्यार्थिकनय द्रव्यहीको तात्त्विक वस्तु माने हैं, परंतु पर्यायोंको नही. क्योंकि, द्रव्य अन्वयि है, परिणामी होनेसें, तीनों कालमें सद्रूप है

पूर्वपक्षः—गुणप्रधान, तीसरा गुणार्थिक नय, क्यों नही कहा?

उत्तरपक्ष—पर्यायोंके ग्रहण करनेसें साथ गुणका भी ग्रहण हो गया, इसवास्ते गुणार्थिक नय, पृथक् नही कहा

प्रश्न—पर्याय तो द्रव्यहीके हैं, तब द्रव्यार्थिक, और पर्यायार्थिक, येह दो नय कैसें होसकते हैं?

उत्तरः—द्रव्य और पर्यायके स्वरूपकी विवक्षासें कुछक विशेष है तथाहि—पर्याय, द्रव्यसें भी सूक्ष्म है एक द्रव्यमें अनंत पर्यायोंके संभव होनेसें द्रव्यकी वृद्धिके हुए, पर्यायोंकी निश्चयही वृद्धि होती है प्रतिद्रव्यमें सख्याते असंख्याते पर्याय, अवधिज्ञानसें परिच्छेद होनेसें और पर्यायोंकी वृद्धि हुए, द्रव्यवृद्धिकी भजना

तदुक्त ॥

भयणाए खेत्तकाला परिवड्ढंतेसु दव्वभावेसु ॥
दव्वे वट्टइ भावो भावे दव्व तु भयणिज्ज ॥ १ ॥

भावार्थ—द्रव्यभावकी वृद्धिमें क्षेत्रकालकी वृद्धिकी भजना है, द्रव्यकी ... भावकी वृद्धि अवश्यमेव होती है, और भावकी वृद्धिमें द्रव्य... द्धिव ... तथा क्षेत्रसें द्रव्य अनतगुणे हैं, और द्रव्यसें अवधिज्ञानके वि... याय सखेयगुणे असखेयगुणे हैं

तदुक्त ॥

खित्तविससाह ... मणतगुणियं पएसेहिं ॥
दव्वेहिंतो भावा ... अमखगुणिओ वा ॥ १ ॥

भावार्थः–क्षेत्रप्रदेशोंसें द्रव्य अनंतगुणा है, द्रव्यसें भाव संख्यातगुणा, वा, असंख्यातगुणा है; इत्यादि नंदिटीकामें विस्तारसहित कहा है. इसवास्ते द्रव्यपर्यायोंका स्वरूपाविवक्षासें भिन्न होनेसें, नय भी दो तरेके है. यद्यपि दोनों नय, परस्पर मिलते भी है, तो भी, पृथक्भावको नही त्यागते हैं. इनका स्वभावभेद आगे कहेंगे.

प्रश्नः–द्रव्यपर्यायसें व्यतिरिक्त सामान्य विशेष है, तो फिर, सामान्यार्थिक, और विशेषार्थिक, नय क्यों नही ?

उत्तरः–द्रव्यपर्यायसें व्यतिरिक्त सामान्यविशेष है नही, इसवास्ते सामान्यार्थिक विशेषार्थिक नय नही कहे.

तद्यथा। तहां प्रसंगसें सामान्यका स्वरूप लिखते हैं. सामान्य दो प्रकारके हैं. तिर्यक्सामान्य (१) और ऊर्द्धतासामान्य (२).

प्रथमका लक्षण कहते हैं.।

"॥ प्रतिव्यक्तितुल्यापरिणतिः तिर्यक्सामान्यं यथा शवलशावलेयपिंडेषु गोत्वमिति ॥"

गवादिकमें गोत्वादिस्वरूप तुल्यपरिणतिरूप तिर्यक्सामान्य हैं; उदाहरण जैसें, तिसही जातिवाला यह गोपिंड है, अथवा गोसदृश गवय है.॥ १ ॥

दूसरे सामान्यका लक्षण.।

"॥ पूर्वापरपरिणामसाधारणद्रव्यमूर्द्धतासामान्यम् यथा कटककंकणाद्यनुगामिकांचनमिति ॥"

उर्द्धतासामान्य सो है, जो, पूर्वापरविवर्त्तव्यापि मृदादिद्रव्य यह त्रिकालगामि है.

तदुक्तं ॥

"॥ पूर्वापरपर्याययोरनुगतमेकं द्रवति तांस्तान् पर्यायान् गच्छतीति व्युत्पत्त्या त्रिकालानुयायी यो वस्त्वंशस्तदूर्द्धतासामान्यमित्यभिधीयते ॥"

तदुक्त राजप्रश्नीयवृत्तौ ॥

" ॥ द्रव्यार्थिकनये नित्य पर्यायार्थिकनयेत्वनित्यं द्रव्यार्थिकनयो द्रव्यमेव तात्त्विकमभिमन्यते नतु पर्यायान् द्रव्यं चान्वयि परिणामित्वात् सकलकालभावि भवति ॥ "

भावार्थ –द्रव्यार्थिकनयसें नित्य और पर्यायार्थिकनयसें अनित्य वस्तु है द्रव्यार्थिकनय द्रव्यहीको तात्विक वस्तु माने हैं, परंतु पर्यायोंको नही. क्योंकि, द्रव्य अन्वयि है, परिणामी होनेसें, तीनों कालमें सद्रूप है

पूर्वपक्ष –गुणप्रधान, तीसरा गुणार्थिक नय, क्यों नही कहा ?

उत्तरपक्ष –पर्यायोंके ग्रहण करनेसें साथ गुणका भी ग्रहण हो गया, इसवास्ते गुणार्थिक नय, पृथक् नही कहा

प्रश्न –पर्याय तो द्रव्यहीके हैं, तब द्रव्यार्थिक, और पर्यायार्थिक, येह दो नय कैसें होसकते हैं ?

उत्तरः–द्रव्य और पर्यायके स्वरूपकी विवक्षासें कुछक विशेष है तथाहि–पर्याय, द्रव्यसें भी सूक्ष्म है एक द्रव्यमें अनंत पर्यायोंके संभव होनेसें द्रव्यकी वृद्धिके हुए, पर्यायोंकी निश्चयही वृद्धि होती है प्रति द्रव्यमें सख्याते असंख्याते पर्याय, अवधिज्ञानसें परिच्छेद होनेसें और पर्यायोंकी वृद्धि हुए, द्रव्यवृद्धिकी भजना

तदुक्त ॥

भयणाए खेत्तकाला परिवड्ढंतेसु दव्वभावेसु ॥
दव्वे वट्टइ भावो भावे दव्व तु भयणिज्ज ॥ १ ॥

भावार्थ –द्रव्यभावकी वृद्धिमें क्षेत्रकालकी वृद्धिकी भजना है, द्रव्यकी [illegible] मात्रकी वृद्धि अवश्यमेव होती है, और भावकी वृद्धिमें द्रव्य[illegible] द्धिव। [illegible] तथा क्षेत्रसें द्रव्य अनतगुणे हैं, और द्रव्यसें अवधिज्ञानके [illegible] याय सखेयगुणे असखेयगुणे हैं

तदुक्त ॥

खित्तविससा[illegible]त्वमणतगुणियं पएसेहिं ॥
दव्वेहिंतो भावा [illegible] असखगुणिओ वा ॥ १ ॥

भावार्थः—क्षेत्रप्रदेशोंसें द्रव्य अनंतगुणा है, द्रव्यसें भाव संख्यातगुणा, वा, असंख्यातगुणा है; इत्यादि नंदिटीकामें विस्तारसहित कहा है. इसवास्ते द्रव्यपर्यायोंका स्वरूपाविवक्षासें भिन्न होनेसें, नय भी दो तरेके हैं. यद्यपि दोनों नय, परस्पर मिलते भी है, तो भी, पृथक्भावको नही त्यागते हैं. इनका स्वभावभेद आगे कहेंगे.

प्रश्नः—द्रव्यपर्यायसें व्यतिरिक्त सामान्य विशेष है, तो फिर, सामान्यार्थिक, और विशेषार्थिक, नय क्यों नही ?

उत्तरः—द्रव्यपर्यायसें व्यतिरिक्त सामान्यविशेष है नहीं, इसवास्ते सामान्यार्थिक विशेषार्थिक नय नही कहे.

तद्यथा। तहां प्रसंगसें सामान्यका स्वरूप लिखते हैं. सामान्य दो प्रकारके हैं. तिर्यक्सामान्य (१) और ऊर्द्धतासामान्य (२).

प्रथमका लक्षण कहते हैं.।

"॥ प्रतिव्यक्तितुल्यापरिणातिः तिर्यक्सामान्यं यथा शबलशाबलेयपिंडेषु गोत्वमिति ॥"

गवादिकमें गोत्वादिस्वरूप तुल्यपरिणतिरूप तिर्यक्सामान्य हैं; उदाहरण जैसें, तिसही जातिवाला यह गोपिंड है, अथवा गोसदृश गवय है.॥ १ ॥

दूसरे सामान्यका लक्षण.।

"॥ पूर्वापरपरिणामसाधारणद्रव्यमूर्द्धतासामान्यम् यथा कटककंकणाद्यनुगामिकांचनमिति ॥"

उर्द्धतासामान्य सो है, जो, पूर्वापरविवर्त्तव्यापि मृदादिद्रव्य यह त्रिकालगामि है.

तदुक्तं ॥

"॥ पूर्वापरपर्याययोरनुगतमेकं द्रवति तांस्तान् पर्यायान् गच्छतीति व्युत्पत्त्या त्रिकालानुयायी यो वस्त्वंशस्तदूर्द्धतासामान्यमित्यभिधीयते ॥"

पूर्वापरपर्यायोंमें एक अनुगत उन उन पर्यायोंको प्राप्त होवे, इस व्युत्पत्तिसें त्रिकालानुयायी, जो वस्त्वंश है, सो उर्द्ध्वतासामान्य कहा जाता है उदाहरण जैसें कटककंकनमें सोही सोना है अथवा सोही नर जिनदत्त है तहा तिर्यक्सामान्य तो, प्रतिव्यक्तिमें सादृश्यपरिणति लक्षण व्यंजनपर्यायही है क्योंकि, व्यंजनपर्याय, स्थूल है, कालांतर स्थायी है, शब्दोंके संकेतके विषय है, ऐसें प्रावचनिकोंमें अर्थात् जैनाचार्योंमें प्रसिद्ध होनेसें और उर्द्ध्वतासामान्य तो, द्रव्यहीको विवक्षासें कहता है और विशेष भी, सामान्यसें विसदृश विवर्त्तलक्षण व्यक्तिरूप पर्यायोंके अंतर्भूतही कहे हैं इसवास्ते द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नयोंसें, अधिक नयोंका अवकाश नही है

अथ सात नयकी संख्या कहते हैः—द्रव्यार्थिकनयके तीन भेद हैं नैगम (१) संग्रह (२) व्यवहार (३) पर्यायार्थिकनयके चार भेद हैं ऋजुसूत्र (१) शब्द (२) समभिरूढ (३) एवंभूत (४) येह सर्व सात नय हुए पांच भी नयभेद होते हैं, षट् भेद भी हैं, चार भेद भी हैं, यह कथन प्रवचनसारोद्धारवृत्तिमें विस्तारसहित है, सो आगें कहेंगे

यदुक्तमनुयोगतद्वृत्त्यादिषु ॥

णेगेहिं माणेहिं मिणइ इति णेगमस्स य निरुत्ती सेसाणपि णयाण लक्खणमिण सुणह वोच्छ ॥ १ ॥

सगहियपिंडियत्थ सगहवयण समासओ विंति वच्चइ विणि-
[illegible]त्थ ववहारो सव्वदव्वेसु ॥ २ ॥

[illegible]पन्नग्गाही उज्जुसुओ णयविही मुणेयव्वो इच्छइ विसेसि
य [illegible]नओ सद्दो ॥ ३ ॥

वत्थू [illegible] ण होइ अवत्थू णए समभिरूढे वजणअत्थत-
दुभय एवभू[illegible]ति ॥ ४ ॥

णायमि गि[illegible]ण्हियव्वे य इत्थ अत्थमि जइयव्वमेव
इइ जो उवएसो सो न[illegible] ॥

अर्थः—जो एक मान महासत्ता सामान्यविशेषादि ज्ञानोंकरके वस्तु, न मापे, न परिच्छेद करे, किंतु सामान्यविशेषादि अनेक रूपसें वस्तुको माने, सो नैगम; यह नैगमकी निरुक्ति व्युत्पत्ति है. अथवा निगम, लोकमें वसता हूं, तिर्यग्लोकमें वसता हूं, इत्यादि जो सिद्धांतोक्तही बहुत परिच्छेदरूपही निगम है, उनमें जो होवे, सो नैगम. । १ ।

सम्यक्प्रकारसें जो ग्रहण करा है पिंडित एक जातिको प्राप्त हुआ अर्थविषय जिसने, सो गृहितपिंडितार्थ संग्रहका वचन, संक्षेपसें तीर्थंकर गणधर कहते हैं. यह नय, सामान्यही मानता है, विशेष नही. इसवास्ते इसका वचन सामान्यार्थही है. और सामान्यरूपकरके सर्ववस्तुको क्रोडी-करता है, अर्थात् सामान्यज्ञान विषय करता है. । २ ।

वच्चइइत्यादि—'चयनं चयः' पिंडरूप होना, सो चय है. 'निराधिक्येन' अधिक जो चय सो कहिये निश्चय. ऐसा सामान्य है. सो, सामान्य, गया है जिससें, सो विनिश्चय, अर्थात् सामान्याभाव, तिसके अर्थे जो सदा प्रवर्ते, सो व्यवहारनय है. यह व्यवहार, सर्वद्रव्यमें प्रवर्त्ते है. क्योंकि, जगत्में घट स्तंभ कमलप्रमुख विशेषही प्रायः जलहरणादि क्रियामें काम आते हैं, परंतु तिससें अतिरिक्त सामान्य नही; इसवास्ते यह नय सामान्य नही मानता है. इसवास्तेही लोकव्यवहारप्रधान जो नय, सो व्यवहारनय.। अथवा विशेषकरके जो निश्चय, विनिश्चय, गोपालस्त्रीबालकादि भी जिस अर्थको जानते हैं, तिस अर्थमें जो प्रवर्त्ते, सो व्यवहारनय है. यद्यपि निश्चयसें घटादिवस्तुयोंमें पांच (५) वर्ण, दो (२) गंध, पांच (५) रस, आठ (८) स्पर्श, है; तो भी, गोपालांगनादि जिसमें जिस वर्णादिककी अधिकता देखते हैं, तिसही नीलादि वर्णवाली वस्तु कहते हैं; शेष नही मानते हैं. इतिव्यवहारनय. । ३ ।

वर्त्तमान कालमें जो वस्तु होवे, तिसको ग्रहण करनेका शील है जिसका, सो प्रत्युत्पन्नग्राही ऋजुसूत्रनय है. सो, अतीत अनागतको कुटिल जानके त्याग देता है, और ऋजु सरल वर्त्तमानकालभावीवस्तुको जो माने, सो ऋजुसूत्रनय, अतीत अनागत दोनों, नष्ट अनुत्पन्न होनेसें असत् है. और असत्का जो मानना है, सोही कुटिलता है, इस-

वास्ते नही मानता] है अथवा ऋजु अवक्र श्रुत है इसका, सो ऋजुश्रुत, शेष ज्ञानोंमें मुख्य होनेसें तथाविध परोपकार साधनसें, श्रुतज्ञानहीको ज्ञान मानता है परकी वस्तुसें अपना कार्य सिद्ध नही होता, इसवास्ते परकी जो वस्तु है, सो वस्तु नही तथा भिन्नलिंग भिन्नवचनवाले शब्दोंकरके एकही वस्तु कहता है, 'तट तटी तटं' इत्यादि; 'गुरु गुरू गुरव' इत्यादि तथा इन्द्रादिके नामस्थापनादि जे निक्षेप भेद हे, उनको पृथक् २ मानता है आगे जे नय कहेंगे, सो अतिशुद्ध होनेसें लिंगवचनके भेदसें वस्तुका भेद मानते हैं, और नाम स्थापना द्रव्य इन तीनों निक्षेपोंको नही मानते हैं इति ऋजुसूत्र ।४।

अर्थको गौणपणे, और शब्दको मुख्यपणे जो माने, सो नय भी, उपचारसें शब्दनय कहा जाता है यह नय, वर्त्तमान वस्तुको ऋजुसूत्रसें विशेषतर मानता है तथाहि । 'तट तटी तटं' इत्यादि शब्दोंके भिन्नही वाच्य मानता हे, भिन्नलिंगवृत्ति होनेसें, स्त्रीपुरुष नपुंसक शब्दवत् ऐसें यह नय मानता हे तथा 'गुरु गुरू गुरव' यहा भी अभिधेयका भेद है, वचनका भेद होनेसें 'पुरुष पुरुषौ पुरुषा' इत्यादिवत् तथा नाम १, स्थापना २ द्रव्य ३, निक्षेप नही मानता है, कार्यसाधक न होनेसें, आकाशपुष्पवत् पिछले नयसें विशुद्ध होनेसें इसका मानना विशेषतर है, समानलिंगवचनवाले बहुतसें शब्दोंका एक अभिधेय शब्दनय मानता है, जैसें इन्द्र शक्र परंदरइत्यादि इति शब्दनय ।५।

...इत्यादि—वस्तु, इन्द्रादि, तिसका संक्रमण अन्यत्र शक्रादिमें जब ...वस्तु होवे, समभिरूढनयके मतमें यह नय, वाचकशब्दके ...र्थका भी भेद मानता है शब्दनय तो, इन्द्रशक्रपुरंदरादि शब्द। ...कही मानता है, परंतु यह समभिरूढनय, वाचकके भेदसें वा... मानता हे 'इंदतीति इंद्रः, शक्नोतीति शक्रः, पुरं दारयतीति पु... र्यादिक भिन्नही यहां प्रवृत्तिके निमित्त है जेकर एकार्थिक मान... ...प्रसंगदूषण होता है घटपटादि शब्दोंको भी पर्यायिनाका प्रसंग है। ...गा, जब इन्द्रशब्द शक्रशब्दके साथ

एकार्थी हुआ, तब वस्तु परमैश्वर्यका, शकनलक्षणवस्तुमें संक्रमण करा, तब वे दोनोंको एकरूप कर दीया, तिसका संभव है नही. क्योंकि, जो परमैश्वर्यरूप पर्याय है, सोही, शकनपर्याय नही हो सकता है. जेकर होवे तो, सर्व पर्यायोंको संकरताकी आपत्ति होनेसें अतिप्रसंगदूषण होवे. इति समभिरूढनयः । ६ ।

वंजणइत्यादि—जो पदार्थ, क्रियाविशिष्टपदसें कहा जाता है, तिसही क्रियाको करता हुआ, वस्तु, एवंभूत कहा जाता है. एवंशब्दकरके, चेष्टा क्रियादिकप्रकार कहते हैं; तिस 'एवं' को 'भूतं' अर्थात् प्राप्त होवे जो वस्तु, तिसको 'एवंभूत' कहते हैं. तिस एवंभूत वस्तुका प्रतिपादक नय भी, उपचारसें एवंभूत कहा जाता है. अथवा 'एवं' शब्दसें कहिये, चेष्टा-क्रियादिकप्रकार; तद्विशिष्टही वस्तुको स्वीकार करनेसें, तिस 'एवं' को, 'भूतं' प्राप्त हुआ जो नय, सो एवंभूत. उपचारविना भी ऐसें एवंभूत-नयका व्याख्यान है. प्रकट करिये अर्थ इसकरके, सो व्यंजन अर्थात् शब्द. अर्थ जो है, सो शब्दका अभिधेयवस्तुरूप है. व्यंजन, अर्थ, और व्यंजन अर्थ दोनोंको, जो नैयत्यसें स्थापन करे. तात्पर्य यह है कि, शब्द-को अर्थकरके और अर्थको शब्दकरके जो, स्थापन करे. जैसें 'घटचेष्टायां घटते' स्त्रीके मस्तकादिऊपर आरूढ हुआ चेष्टा करे, सो घट; जो चेष्टा न करे, सो घटपदका वाच्य नही. चेष्टारहित घटपदका वाचक शब्द भी, नही. इति एवंभूत. । ७ ।

जब यह सातोंही नय, सावधारण होवे, तब दुर्नय है; और अवधार-णरहित, सुनय है. जब सर्व सुनय मिलें, तब स्याद्वाद जैनमत है. इन सर्व नयोंका संग्रह करिये तो, द्रव्यार्थिक (१) पर्यायार्थिक (२) येह दो नय होते हैं. तथा ज्ञाननय (१) क्रियानय (२) होते हैं. तथा निश्चयनय (१) व्यवहारनय (२) होते हैं. क्योंकि, सप्तशतारनामा नय-चक्राध्ययन पूर्वकालमें था, तिसमें एक एक नयके सौ सौ (१००) भेद कथन करे थे; सो तो व्यवच्छेद गया, परंतु इस कालमें द्वादशारनय-चक्र है, तिसमें एक एक नयके द्वादश (१२) भेद कथन करे हैं. यदि किसीको विस्तारसें देखना होवे तो; पूर्वोक्त पुस्तक देख लेना: जिसकी श्लोकसंख्या

अनुमान अष्टादशसहस्र (१८०००) प्रमाण है यहां तो, विस्तारके भयसें ज्ञाननय क्रियानयका किंचिन्मात्र स्वरूप लिखते हैं

नायमित्यादिव्याख्या—सम्यक्प्रकारसें उपादेय हेयके स्वरूपको जानके पीछे, इस लोकमें उपादेय, फूलमाला स्त्री चदनादि, हेय त्यागनेयोग्य, सर्प विष कंटकादि, और उपेक्षा करनेयोग्य, तृणादि, परलोकमें ग्रहण करनेयोग्य, सम्यग्दर्शन चारित्रादि, नही ग्रहण करनेयोग्य, मिथ्यात्वादि, उपेक्षणीय, स्वर्गलक्ष्म्यादि, ऐसे अर्थमें यत्न करना, अर्थात् ज्ञानसें इन वस्तुयोंको यथार्थ जानना, ऐसा जो उपदेश, सो ज्ञाननय जानना इत्यक्षरार्थ ॥

भावार्थ यह है कि ज्ञाननय, ज्ञानको प्रधान करनेवास्ते कहता है इस लोक परलोकमें जिसको फलकी इच्छा होवे, तिसको प्रथम सम्यग्ज्ञान हुएही अर्थमें प्रवर्त्तना चाहिये, अन्यथा प्रवृत्ति करे फलमें विसंवाद होनेसें, अयुक्त है

यदुक्तमागमे ॥

"॥ पढमं नाणं तओ दया इत्यादि ॥" प्रथम ज्ञान पीछे दया ।

तथा । "॥ जअन्नाणीत्यादि ॥"—जितने कर्म, अज्ञानी कोडों वर्षोंमें जपतपादिकसें क्षय करता है, उतने कर्म, ज्ञानवान्, त्रिगुप्त हुआ, एक उस्स्वासमें क्षय करता है

तथा ॥

पावाओ विणिउत्ति पवत्तणा तहय कुसलपक्खमि ॥
िणयस्स य पडिवत्ती तिन्निवि नाणे विसप्पति ॥ १ ॥

भ पापमें निवर्त्तना—हटजाना, कुशलकाममें प्रवृत्त होना, विनयकी प्रा तीनोंही ज्ञानके आधीन हैं ।

अन्योंने भा

विज्ञाति फ न क्रिया फलदा मता ॥
मिथ्याज्ञानप्रवृत्त गादर्शनात् ॥ १ ॥

भावार्थः—पुरुषोंको ज्ञानही फल देता है, क्रिया फल नही देती है. क्योंकि, विनाज्ञानके क्रिया करे तो, यथार्थ फल नही होता है. इसवास्ते ज्ञानहीको प्राधान्यता है. तीर्थंकर गणधरोंने भी, एकले अगीतार्थको विहार करना निषेध करा है.

तथाच तद्वचनम् ॥

गीयत्थो य विहारो बीओ गीयत्थमीसिओ भणिओ ॥
इत्तो तइओ विहारो नाणुन्नाओ जिणवरिंदेहिं ॥ १ ॥

भावार्थः—गीतार्थ विहार करे, वा गीतार्थके साथ विहार करे, इन दोनों विहारोंके विना, अन्य तीसरा विहार, तीर्थकरोंका अननुज्ञात है, अर्थात् तीसरे विहारकी तीर्थंकरोंने आज्ञा नही दीनी है. अंधा अंधेको रस्ता नही बता सक्ता है, इति. यह तो क्षायोपशम ज्ञानकी अपेक्षा कथन है. क्षायिकज्ञानकी अपेक्षासें भी, विशिष्टफलका साधन ज्ञानही है. क्योंकि, अर्हन्‌भगवान्‌को भवसमुद्रके कांठे रहे दीक्षा लेके उत्कृष्ट तप चारित्रवान् होनेसें भी, मुक्तिकी प्राप्ति नही होती है, जबतक केवलज्ञान नही होता है. इसवास्ते ज्ञानही, पुरुषार्थका हेतु होनेसें, प्रधान है. । इति ज्ञाननयमतम् ॥

अथ क्रियानय । नायम्मीत्यादि—यहां ज्ञान ग्रहण करने योग्य अर्थमें, और न ग्रहण करने योग्य अर्थमें, सर्व पुरुषार्थकी सिद्धिवास्ते यत्न करना. यहां प्रवृत्तिनिवृत्तिलक्षण क्रियाहीकी मुख्यता है. और ज्ञान, क्रियाका उपकरण होनेसें गौण हैं. इसवास्ते सकल पुरुषार्थकी सिद्धिवास्तें क्रियाही, प्रधान कारण है. ऐसा जो उपदेश, सो क्रियानय जानना. यह नय भी, अपने मतकी सिद्धिवास्ते युक्ति कहता है. क्रियाही, प्रधान पुरुषार्थकी सिद्धिमें कारण है. क्योंकि, आगममें तीर्थंकर गणधरोंने क्रिया रहितोंका ज्ञान भी, निष्फल कहा है.

तदुक्तम् ॥

सुबहुंपि सुयमहीयं किं काही चरणविप्पमुक्कस ॥
अंधस्स जह पलित्ता दीवसयसहस्सकोडीवि ॥

भावार्थ —चारित्ररहितको बहुत पढया भी ज्ञान क्या करेगा? जैसें अंधेको लाख क्रोड दीवे भी प्रकाश नही कर सकते हैं तथा कोई पुरुष रस्ता तो जानता है, परंतु चलता नही तो, क्या वो मजलसिर इच्छित ग्राम वा नगरको पहुंचेगा? कदापि नही तथा जो, तरना जानता है, परंतु नदीमें हाथ पग नही हिलाता है तो, क्या वो पार हो जायगा! नहीं डूब जायगा? ऐसेंही क्रियाहीन ज्ञानी, जानना ॥

तथा॥"जहा खरो चंदनभारवाही इत्यादि"—जैसें गदहे ऊपर चंदन लादा, परंतु गर्दभको चंदनका सुख नही, ऐसेंही क्रियाहीन ज्ञानवान्‌को सुगति नही अन्योंने भी कहा है ॥

क्रियैव फलदा पुंसां न ज्ञानं फलदं मतं ॥
यतः स्त्रीभक्ष्यभोगज्ञो न ज्ञानात् सुखितो भवेत् ॥ १ ॥

भावार्थ —क्रियाही पुरुषोंको फलदात्री है, ज्ञान नही क्योंकि, स्त्री और मोदकादिके ज्ञानसें कामी और भूखे, तृप्त नही होते हैं

यह तो क्षायोपशम चारित्रक्रियाकी अपेक्षा प्राधान्यपणा कहा अब क्षायिकी क्रियापेक्षा कहते हैं अर्हन् भगवान्‌को केवलज्ञान भी होगया है, तो भी, जबतक सर्वसंवररूप पूर्णचारित्र चतुर्दशगुणस्थान नही आता है, तबतक मुक्तिकी प्राप्ति नही होती है इस वास्ते क्रियाही प्रधान है। इति क्रियानयमतम्॥

इन पूर्वोक्त दोनों नयोंको पृथक् २ एकांत माने तो, मिथ्यात्व है, और स्याद्वादसंयुक्त माने तो, सम्यग्दृष्ट है ऐसेंही सर्वनयभेदमें निष्कर्ष ना

[illegible]र्थिक पर्यायार्थिकका थोडासा विस्तार लिखते हैं उनमें नै[illegible]य धर्मधर्मी द्रव्यपर्यायादि प्रधानअप्रधानादि गोचर करके [illegible]म्नसे समूहार्थको कहता है। १।

संग्रहद्र० [illegible]रूपकरके वस्तुजातको एकीभावकरके ग्रहण करता है। २।

व्यवहारद्रव्यार्थिक० [illegible]ग्रहण किया जो अर्थ, तिसके भेदरूप करके जो वस्तुका व्यवहार [illegible]हार द्रव्यार्थिकनय है। ३।

नैगम, और व्यवहार, अशुद्ध द्रव्यार्थिक है. और संग्रह शुद्ध द्रव्यको कहता है, इसवास्ते, शुद्धद्रव्यार्थिकनय है.

तदुक्तमनुयोगवृत्तौ ॥

" ॥ नैगमव्यवहाररूपोऽविशुद्धः कथं यतो नैगमव्यवहारौ अनंतद्व्यणुकाद्यनेकव्यक्तात्मकंकृष्णाद्यनेकगुणाधारं त्रिकालविषयं चाविशुद्धं द्रव्यमिच्छतःसंग्रहश्च परमाण्वादिसामान्यादेकं तिरोभूतगुणकलापमविद्यमानपूर्वापरविभागं नित्यं सामान्यमेव द्रव्यमिच्छत्येव तच्च किलानेकताभ्युपगमकलंकेनाकलंकितत्वात् शुद्धं ततः शुद्धद्रव्याभ्युपगमपरत्वात् शुध्धमेवायमिति ॥"

भाषार्थः—नैगमव्यवहाररूपनय, अविशुद्ध है. क्योंकि, नैगमव्यवहार, अनंतद्व्यणुकादि, अनेकव्यक्तात्मक. कृष्णादि अनेक गुणोंका आधार, त्रिकालविषय, ऐसें अशुद्ध द्रव्यको द्रव्य मानते हैं. और संग्रहनय, परमाणुआदि सामान्यसें एक तिरोभूत गुणसमूह अविद्यमान पूर्वापरविभाग नित्यसामान्यही द्रव्य मानता है. सो संग्रहनय, अनेकता माननेरूप कलंकसें अकलंकित होनेसें और शुद्ध द्रव्य माननेसें शुद्धद्रव्यार्थिक है.

अथ नैगमनयकी प्ररूपणा करते हैंः—नही है एक गम, बोधमार्ग, जिसका, सो नैगमनय है. पृषोदरादि होनेसें ककारका लोप जानना. तिस नैगमनयके तीन भेद हैं. धर्मद्वयगोचर (१) धर्मिद्वयगोचर (२) धर्मधर्मिगोचर (३). यहां धर्मीधर्म शब्दकरके, द्रव्य और व्यंजनपर्यायोंको कहते हैं. अथ प्रथमभेदमें उदाहरण कहते हैं. "। सच्चैतन्यमात्मनि इति।" आत्मामें सत् चैतन्य धर्म है, यहां चैतन्य नाम व्यंजनपर्यायको, विशेष्य होनेसें, तिसकी मुख्यताकरके विवक्षा करी; और सत्ताख्यव्यंजनपर्यायको, विशेषण होनेसें, तिसकी अमुख्यता, गौणताकरके, विवक्षा करी है. । इतिधर्मद्वयगोचरोनैगमः प्रथमः । १ ।

अथ दूसरे नैगमका उदाहरण कहते हैं:—"। वस्तु पर्यायवद्द्रव्यम्।" पर्यायवाला द्रव्य, वस्तु है यहा पर्यायवाले द्रव्यारव्यधर्मिको विशेष्य होनेसें, प्रधानपणा है, और वस्तुनामक धर्मिको, विशेषण होनेसें, अप्रधानपणा है अथवा 'किं वस्तु' वस्तु क्या है? 'पर्यायवद् द्रव्यम्' पर्यायवाला द्रव्य ऐसी विवक्षामें, वस्तुको, विशेष्य होनेसें प्रधानपणा है और पर्यायवद् द्रव्यको, विशेषण होनेसें, गौणपणा है इतिधर्मिद्वयगोचरोनैगमो द्वितीय ।२।

अथ तीसरे भेदका उदाहरण कहते हैं—।"।क्षणमेकं सुखी विषयासक्तजीव इति।" एक क्षणमात्र सुखी विषयासक्त जीव है यहां विषयासक्त जीव द्रव्यको, विशेष्य होनेसें, प्रधानपणा है, और सुखलक्षण पर्यायको, विशेषण होनेसें, अप्रधानपणा है इति धर्मिधर्मालंबनोनैगमस्तृतीय ।३।

अथवा निगम, विकल्प, तिसमें जो होवे, सो नैगम तिसके तीन भेद हैं भूत (१) भविष्यत् (२) वर्त्तमान (३) जिसमें अतीत वस्तुको वर्त्तमानवत् कथन करना, सो भूतनैगम यथा। आज सोही दीपोत्सव (दीवाली) पर्व है, जिसमें श्रीवर्द्धमानस्वामी मुक्ति गये ।१। भाविनि अर्थात् होनहारमें, होगईकीतरें उपचार करना, सो भविष्यत् नैगम जैसें अर्हंत सिद्धपणेको प्राप्तही होगये हैं।२। करनेका आरंभ करा, वा थोडासा निष्पन्न हुआ, तिसको हुआ वस्तु, जिसमें कहना, सो [illegible]माननैगम जैसें, 'ओदन पच्यते'।३।

[illegible] गमाभासका स्वरूप कहते हैं—वो आदिधर्मोको एकांत पृथक्२ [illegible]ज। [illegible] नगमाभास, इति आक्षिपदकरके दो द्रव्य, और द्रव्य पर्याय। [illegible]ण है उदाहरण जैसें, आत्मामें सत्, और चैतन्य, परस्पर अत्य[illegible] है इत्यादि आदिशब्दसें वस्तुपर्यायवाले द्रव्य दोका, और क्षण[illegible] नि सुखजीवलक्षण द्रव्यपर्याय दोनोंका ग्रहण है इन दोनोंकी सव[illegible] प्ररूपणा करनेसें, नैगमाभास दुर्नय है नैयायिक, वैशेषिक, येह द[illegible] गमाभाससें उत्पन्न हुए हैं, इति ॥

अथ द्रव्यार्थिकनयका दूसरा भेद संग्रह नामा, तिसका वर्णन करते हैं:-"सामान्यमात्रग्राही परामर्शः संग्रहः" सामान्यमात्रग्राही जो ज्ञान, सो संग्रह 'मात्रं कात्स्न्र्येऽवधारणे च' मात्रशब्द संपूर्णका और अवधारणका वाचक है, 'सामान्यमशेषविशेषरहितं' सामान्य संपूर्णविशेषरहित सत्त्व द्रव्यत्वादिक ग्रहण करनेका शील है 'सं' एकीभावकरके पिंडीभूत विशेष राशिको ग्रहण करे, सो संग्रह. तात्पर्य यह है "स्वजातेर्दृष्टेष्टाभ्यामविरोधेन विशेषाणामेकरूपतया यद्ग्रहणं स संग्रहः इति" स्वजातिके दृष्टेष्टकरके अविरोध विशेषोंको एकरूपकरके जो ग्रहण करे, सो संग्रह, अर्थात् विशेषरहित पिंडीभूत सामान्यविशेषवाले वस्तुको शुद्ध अनुभव करनेवाला ज्ञान विशेष, संग्रहकरके कहा जाता है. सो संग्रह दो प्रकारका है. परसंग्रह (१) अपरसंग्रह (२). संपूर्ण विशेषोंमें उदासीनता भजता हुआ, शुद्धद्रव्यसन्मात्रको, जो माने, सो परसंग्रह है. जैसें विश्व एक है, सत्सें अविशेष होनेसें.

अथ परसंग्रहाभासका लक्षण कहते हैं:-सत्ता अद्वैतको स्वीकार करता हुआ, सकलविशेषोंका निषेध करे, सो परसंग्रहाभास. जैसें उदाहरण, सत्ताही तत्त्व है, तिससें पृथग्भूत विशेषोंके न देखनेसें, इति. अद्वैतवादियोंके जितने मत है, वे सर्व, परसंग्रहाभासकरके जानने; और सांख्यदर्शन भी ऐसेंही जानना.

अथ दूसरे अपरसंग्रहका लक्षण कहते हैं:-द्रव्यत्वादि अवांतरसामान्योंको मानता हुआ, और तिसके भेदोंमें उदासीनताको अवलंबन करता हुआ, अपरसंग्रह है. जैसें धर्म अधर्म आकाश काल पुद्गल जीवद्रव्योंको द्रव्यत्वके अभेदसें एक मानना. यहां द्रव्यसामान्यज्ञानकरके अभेदरूप छहोंही द्रव्योंको एकपणे ग्रहण करना, और धर्मादि विशेष भेदोंमें गजनिमिलिकावत् उपेक्षा करनी. ऐसेंही चैतन्याचैतन्य पर्यायोंका एकपणा मानना, पर्यायसाधर्म्यतासें.

प्रश्नः-चैतन्यज्ञान, और तद्विपरीत अचैतन्य, येह दोनों एक कैसें होसकते हैं?

उत्तर —चैतन्याचैतन्यकी विशेष विवक्षा न करनेसें, और द्रव्यत्वकरके अभेदबुद्धि माननेसें

अथ अपरसग्रहाभासका लक्षण कहते हैं —द्रव्यत्वको एकात तत्व जो मानता है, और तिसके विशेषोंको निषेध करता है, सो अपरसग्रहाभास है जैसें द्रव्यत्वही तत्व है, और धर्मादि द्रव्य नही है यथा वस्तु है, परतु सामान्यविशेषत्व कहा वर्ते हैं? ऐसेंही सामान्यविशेषात्मक वस्तुको जानना

अथवा सग्रहनय दो प्रकारका है सामान्यसग्रह (१) विशेषसग्रह (२)· सामान्यसग्रहका उदाहरण जैसें, सर्वद्रव्य आपसमें अविरोधी है ।१। विशेषसग्रहका उदाहरण जैसें, जीव आपसमें अविरोधी है ।इतिसग्रहद्र व्यार्थिकनय ।२।

अथ व्यवहारद्रव्यार्थिक नयका स्वरूप लिखते हैं —

"॥ सग्रहेण गृहीताना गोचरीकृतानामर्थाना विधिपूर्वकमवह· रण येनाभिसधिना क्रियते सव्यवहारइति ॥"

भावार्थ —सग्रहने ग्रहण किया जो सत्वादि अर्थ, तिसका, विधिसें जो विवेचन करे, सो अभिप्राय विशेष, व्यवहारनामा नय है उदाहरण जैसें, जो सत् है, सो द्रव्य है, अथवा पर्याय है आदिशब्दसें अपरसग्रहगृहीतार्थ [illegible]रका भी उदाहरण जानना जैसें जो द्रव्य है, सो जीवादि षड्विध [illegible] पर्यायके दो भेद है क्रमभावी (१) और सहभावी (२), इति [illegible] मुक्त (१) और ससारी (२) जे क्रमभावी पर्याय हैं, वे दो प्रकार [illegible]प (१) और अक्रियारूप (२), इति ॥

अथ व्य[illegible]ते हैं—जो अपारमार्थिक द्रव्यपर्यायविभागको मानता है, सो [illegible] है जैसें चार्वाकमत क्योंकि, नास्तिक जीवद्रव्यादि नही [illegible]ल्दृष्टिसें चारभूत यावत् जितना दृष्टिगोचर आवे, उतनाही [illegible] है ऐसें स्वकल्पित होनेकरके झूठ होनेसें चार्वाकमत व्यवहार।

तथा अन्यग्रंथसें व्यवहारनयका कितनाक स्वरूप लिखते हैंः—भेदोपचारकरके जो वस्तुका व्यवहार करे, सो व्यवहारनय. गुणगुणिका (१) द्रव्यपर्यायका (२) संज्ञासंज्ञिका (३) स्वभावस्वभाववालेका (४) कारककारकवालेका (५) क्रियाक्रियावालेका (६) भेदसें जो भेद करे, सो सद्भूतव्यवहार. । १ ।

शुद्धगुणगुणिका, और शुद्धपर्यायद्रव्यका भेद कथन करना, सो शुद्धसद्भूतव्यवहार. । २ ।

उपचरित सद्भूतव्यवहार. तहां सोपाधिक अर्थात् उपाधिसहित गुणगुणिका जो भेदविषय, सो उपचरितसद्भूतव्यवहार. जैसें जीवके मतिज्ञानादिक गुण है. । ३ ।

निरुपाधिक गुणगुणिकाभेदक, अनुपचरितसद्भूतव्यवहार. जैसें, जीवके केवलज्ञानादि गुण है. । ४ ।

अशुद्ध गुणगुणिका, और अशुद्ध द्रव्यपर्यायका भेद कहना, सो अशुद्धसद्भूतव्यवहार. । ५ ।

स्वजातिअसद्भूतव्यवहार. जैसें, परमाणुको बहुप्रदेशी कथन करना. ।६।

विजातिअसद्भूतव्यवहार. जैसें, मतिज्ञान मूर्त्तिवाला है, मूर्त्तिद्रव्यसें उत्पन्न होनेसें. । ७ ।

उभयअसद्भूतव्यवहार. जैसें, जीव अजीव ज्ञेयमें ज्ञान है, जीव अजीवको ज्ञानके विषय होनेसें. । ८ ।

स्वजातिउपचरितासद्भूतव्हवयार. जैसें, पुत्र भार्यादि मेरे हैं. । ९ ।

विजातिउपचरित असद्भूतव्यवहार. जैसें, वस्त्र भूषण हेम रत्नादि मेरे हैं. । १० ।

तदुभयउपचरित असद्भूतव्यवहार. जैसें, देश राज्य कीर्त्ति गढादि मेरे हैं. । ११ ।

अन्यत्र प्रसिद्ध धर्मका अन्यत्र समारोप करना, सो असद्भूतव्यवहार. । १२ ।

उत्तर —चैतन्याचैतन्यकी विशेष विवक्षा न करनेसें, और द्रव्यत्वकरके अभेदबुद्धि माननेसें

अथ अपरसग्रहाभासका लक्षण कहते हैं —द्रव्यत्वको एकांत तत्व जो मानता है, और तिसके विशेषोंको निषेध करता है, सो अपरसग्रहाभास है जैसें द्रव्यत्वही तत्व है, और धर्मादि द्रव्य नही है यथा वस्तु है, परतु सामान्यविशेषत्व कहा वर्ते हैं ? ऐसेंही सामान्यविशेषात्मक वस्तुको जानना

अथवा सग्रहनय दो प्रकारका है सामान्यसग्रह (१) विशेषसंग्रह (२). सामान्यसग्रहका उदाहरण जैसें, सर्वद्रव्य आपसमें अविरोधी है । १ । विशेषसग्रहका उदाहरण जैसें, जीव आपसमें अविरोधी है । इतिसग्रहद्र व्यार्थिकनय । २ ।

अथ व्यवहारद्रव्यार्थिक नयका स्वरूप लिखते हैं —

"॥ सग्रहेण गृहीताना गोचरीकृतानामर्थाना विधिपूर्वकमवहरण येनाभिसंधिना क्रियते सव्यवहारइति ॥ "

भावार्थ —सग्रहने ग्रहण किया जो सत्वादि अर्थ, तिसका, विधिसें जो विवेचन करे, सो अभिप्राय विशेष, व्यवहारनामा नय है उदाहरण जैसें, जो सत् है, सो द्रव्य है, अथवा पर्याय है आदिशब्दसें अपरसग्रहगृहीतार्थ ...रका भी उदाहरण जानना जैसें जो द्रव्य है, सो जीवादि षड्विध ... पर्यायके दो भेद है क्रमभावी (१) और सहभावी (२), इति ... मुक्त (१) और ससारी (२) जे क्रमभावी पर्याय है, वे दो प्रकार ... (१) और अक्रियारूप (२), इति ॥

अथ व्य... ...ते हैं —जो अपारमार्थिक द्रव्यपर्यायविभागको मानता है, सो ... है जैसें चार्वाकमत क्योंकि, नास्तिक जीवद्रव्यादि नही • ... ...दृष्टिसें चारभूत यावत् जितना दृष्टिगोचर आवे, उतनाही ... है ऐसें स्वकल्पित होनेकरके ... ...र्वाकमत व्यवहार।

तथा अन्यग्रंथसें व्यवहारनयका कितनाक स्वरूप लिखते हैं:—भेदोपचारकरके जो वस्तुका व्यवहार करे, सो व्यवहारनय. गुणगुणिका (१) द्रव्यपर्यायका (२) संज्ञासंज्ञिका (३) स्वभावस्वभाववालेका (४) कारककारकवालेका (५) क्रियाक्रियावालेका (६) भेदसें जो भेद करे, सो सद्भूतव्यवहार. । १ ।

शुद्धगुणगुणिका, और शुद्धपर्यायद्रव्यका भेद कथन करना, सो शुद्धसद्भूतव्यवहार. । २ ।

उपचरित सद्भूतव्यवहार. तहां सोपाधिक अर्थात् उपाधिसहित गुणगुणिका जो भेदविषय, सो उपचरितसद्भूतव्यवहार. जैसें जीवके मतिज्ञानादिक गुण है. । ३ ।

निरुपाधिक गुणगुणिकाभेदक, अनुपचरितसद्भूतव्यवहार. जैसें, जीवके केवलज्ञानादि गुण है. । ४ ।

अशुद्ध गुणगुणिका, और अशुद्ध द्रव्यपर्यायका भेद कहना, सो अशुद्धसद्भूतव्यवहार. । ५ ।

स्वजातिअसद्भूतव्यवहार. जैसें, परमाणुको बहुप्रदेशी कथन करना. ।६।

विजातिअसद्भूतव्यवहार. जैसें, मतिज्ञान मूर्त्तिवाला है, मूर्त्तिद्रव्यसें उत्पन्न होनेसें. । ७ ।

उभयअसद्भूतव्यवहार. जैसें, जीव अजीव ज्ञेयमें ज्ञान है, जीव अजीवको ज्ञानके विषय होनेसें. । ८ ।

स्वजातिउपचरितासद्भूतव्हवयार. जैसें, पुत्र भार्यादि मेरे हैं. । ९ ।

विजातिउपचरित असद्भूतव्यवहार. जैसें, वस्त्र भूषण हेम रत्नादि मेरे हैं. । १० ।

तदुभयउपचरित असद्भूतव्यवहार. जैसें, देश राज्य कीर्ति गढादि मेरे हैं. । ११ ।

अन्यत्र प्रसिद्ध धर्मका अन्यत्र समारोप करना, सो असद्भूतव्यवहार. । १२ ।

असद्भूत व्यवहारही उपचार है, जो उपचारसें भी उपचार करे, सो उपचरित असद्भूतव्यवहार जैसें, देवदत्तका धन यहा सम्श्लेषरहित वस्तुसबध विषय है । १३ ।

सम्श्लेषसहित वस्तुसबधविषय, अनुपचरित असद्भूतव्यवहार जैसें, जीवका शरीर । १४ ।

उपचार भी नव प्रकारका है द्रव्यमें द्रव्यका उपचार (१) गुणमें गुणका उपचार (२) पर्यायमें पर्यायका उपचार (३) द्रव्यमें गुणका उपचार (४) द्रव्यमें पर्यायका उपचार (५) गुणमें द्रव्यका उपचार (६) गुणमें पर्यायका उपचार (७) पर्यायमें द्रव्यका उपचार (८) पर्यायमें गुणका उपचार (९) यह सर्व भी, असद्भूतव्यवहारका अर्थ जानना इसीवास्ते उपचारनय, पृथक् नही है, इति ।

मुख्याभावके हुए, प्रयोजन, और निमित्तमें उपचार वर्त्तता है, सो भी सबधके विना नही होता है सबध चार प्रकारका है सम्श्लेषसम्श्लेषीसबध (१) परिणामपरिणामिसबध (२) श्रद्धाश्रद्धेयसबध (३) ज्ञानज्ञेयसबध (४) उपचरित असद्भूतव्यवहारके तीन भेद है सत्यार्थ (१) असत्यार्थ (२) सत्यासत्यार्थ (३) इति येह १४ भेद व्यवहार नयके जानने यही व्यवहारनयका अर्थ है व्यवहारनय भेदविषय है ॥ इतिद्रव्यार्थिकस्य तृतीयोभेदः ॥ ३ ॥

अथ पर्यायार्थिकनयके चार भेद लिखते हैं उनमें प्रथम ऋजुसूत्रका [illegible] लिखते हैं –

ऋजुवर्त्तमानक्षणस्थायिपर्यायमात्रप्राधान्यत सूत्रयन्न भि [illegible] नय इति ॥ "

अथ [illegible] नक्षणलवविशिष्ट कुटिलतासें विमुक्त होनेसें, ऋजु सरलही, द्रव्य [illegible] ननाकरके, और क्षणक्षयीपर्यायोंकी प्रधानताकरके, जो कथन कर, [illegible] नय है उदाहरण जैसें, सप्रति सुख विवर्त्त हैं इस वचनसें क्षणिक [illegible] पर्यायमात्रको मुख्यताकरके कहता है, [illegible] के नही मानता है, इति

अथ ऋजुसूत्राभास कहते हैंः—सर्वथा द्रव्यका जो निषेध करता है, सो ऋजुसूत्राभास है. उदाहरण जैसें, तथागतमत. क्योंकि, बौद्ध क्षणक्षयिपर्यायोंकोही प्रधानतासें कथन करते हैं, और ततुतत्‌आधारभूत द्रव्योंको नही मानते हैं; इसवास्ते बौद्धमत, ऋजुसूत्राभासकरके जानना.

ऋजुसूत्रके दो भेद है. सूक्ष्मऋजुसूत्र, जैसें पर्याय एकसमयमात्र रहनेवाला है (१) स्थूलऋजुसूत्र, जैसें मनुष्यादिपर्याय, अपने २ आयुःप्रमाणकालतक रहते हैं. । इतिपर्यायार्थिकस्य प्रथमोभेदः ॥ १ ॥

अथ दूसरा भेद लिखते हैंः—

"॥ कालादिभेदेन ध्वनेरर्थभेदं प्रतिपद्यमानः शब्दइति ॥"

अर्थः—व्याकरणके संकेतसें प्रकृतिप्रत्ययके समुदायकरके सिद्ध हुआ काल कारक लिंग संख्या पुरुष उपसर्गके भेदकरके ध्वनिके अर्थ भेदको जो कथन करे, सो शब्दनय है. कालभेदमें उदाहरण जैसें, 'वभूव भवति भविष्यति सुमेरुरिति' हुआ, है, होवेगा, सुमेरु. यहां कालत्रयके भेदसें सुमेरुका भी भेद, शब्दनयकरके प्रतिपादन करीये हैं. द्रव्यत्वकरके तो, अभेद इसके मतमें उपेक्षा करीये हैं. । कारकभेदमें उदाहरण जैसें, 'करोति क्रियते कुंभ इति.'। लिंगभेदमें 'तटस्तटीतटमिति'। संख्याभेदमें 'दाराः कलत्रं'। पुरुषभेदमें 'एहि मन्ये रथेन यास्यसि नहि यास्यति यातस्ते पिताइत्यादि'। उपसर्गभेदमें 'संतिष्ठते अवतिष्ठते.'। इति ।

अथ शब्दनयाभास लिखते हैंः—कालादिभेदकरके विभिन्नशब्दके अर्थको भी, भिन्न मानता हुआ, शब्दाभास होता है. उदाहरण जैसें, 'बभूव भवति भविष्यति सुमेरुः' इत्यादिक भिन्नकालके शब्द, तिनका भिन्नही अर्थ कहता है, भिन्नकालशब्द होनेसें. तैसें सिद्ध अन्यशब्दवत्, इति. । 'बभूव भवति भविष्यति सुमेरुः' इसवचनकरके शब्दभेदसें अर्थका एकांत भेद मानना, शब्दाभास है. ॥ इतिपर्यायार्थिकस्य द्वितीयोभेदः ॥ २ ॥

अथ पर्यायार्थिकका तीसरा भेद समभिरूढनयका स्वरूप लिखते हैंः—

"॥ पर्यायशब्देषु निरुक्तिभेदेन भिन्नमर्थं समभिरोहन् समभिरूढइति ॥"

असद्भूत व्यवहारही उपचार है, जो उपचारसें भी उपचार करे, सो उपचरित असद्भूतव्यवहार जैसें, देवदत्तका धन यहा सश्लेषरहित वस्तुसबध विषय है । १३ ।

सश्लेषसहित वस्तुसबधविषय, अनुपचरित असद्भूतव्यवहार जैसें, जीवका शरीर । १४ ।

उपचार भी नव प्रकारका है द्रव्यमें द्रव्यका उपचार (१) गुणमें गुणका उपचार (२) पर्यायमें पर्यायका उपचार (३) द्रव्यमें गुणका उपचार (४) द्रव्यमें पर्यायका उपचार (५) गुणमें द्रव्यका उपचार (६) गुणमें पर्यायका उपचार (७) पर्यायमें द्रव्यका उपचार (८) पर्यायमें गुणका उपचार (९) यह सर्व भी, असद्भूतव्यवहारका अर्थ जानना इसीवास्ते उपचारनय, पृथक् नही है, इति ।

मुख्याभावके हुए, प्रयोजन, और निमित्तमें उपचार वर्त्तता है, सो भी सबधके विना नही होता है संबध चार प्रकारका है सश्लेषसश्लेषीसबध (१) परिणामपरिणामिसबध (२) श्रद्धाश्रद्धेयसबंध (३) ज्ञानज्ञेयसबध (४) उपचरित असद्भूतव्यवहारके तीन भेद है सत्यार्थ (१) असत्यार्थ (२) सत्यासत्यार्थ (३) इति येह १४ भेद व्यवहार नयके जानने यही व्यवहारनयका अर्थ है व्यवहारनय भेदविषय है ॥ इतिद्रव्यार्थिकस्य तृतीयोभेद ॥ ३ ॥

अथ पर्यायार्थिकनयके चार भेद लिखते हैं उनमें प्रथम ऋजुसूत्रका ... लिखते हैं –

ऋजुवर्त्तमानक्षणस्थायिपर्यायमात्रप्राधान्यत सूत्रयन्
भि ... त्रनय इति ॥ ”

अथ ... यतनभणलवविशिष्ट कुटिलतासें विमुक्त होनेसें, ऋजु सरलही, द्रव्य ... माननाकरके, और क्षणक्षयीपर्यायोंकी प्रधानताकरके, जो कथन कर, ... त्रनय है उदाहरण जैसें, सप्रति सुख विवर्त है इस वचनसें क्षणिक ... पर्यायमात्रको मुख्यताकरके कहता है, परतु सदधिकरण जीव द्रव्य ... करके नही मानता है, इति

व्यवहारमात्रसें जाननी; परंतु निश्चयसें नही. ऐसें यह नय, स्वीकार करता है. जातिशब्द जे हैं, वे क्रियाशब्दही हैं. 'गच्छतीति गौः' जो गमन करे सो गौ. 'आशुगामित्वादश्वः' आशु—शीघ्रगामी होनेसें अश्व. गुणशब्द जैसें 'शुचिर्भवतीति शुक्लः' शुचि होवे, सो शुक्ल. 'नीलभवनान्नीलः' नील होनेसें नील.। यदृच्छाशब्द जैसें 'देव एनं देयात् यज्ञ एनं देयात्'। संयोगी समवायीशब्द जैसें 'दंडोस्यास्तीति दंडी, विषाणमस्यास्तीति विषाणी' अस्ति क्रियाको प्रधान होनेसें अस्तिअर्थमें प्रत्यय है. येह सर्व क्रियाशब्दही हैं. अस्ति भू इत्यादि क्रियासामान्यको सर्वव्यापी होनेसें. उदाहरण जैसें, इंदनके अनुभवनसें इंद्र, शकनक्रियापरिणत शक्र, पूर्दारणप्रवृत्तको पुरंदर कहते हैं, इति.

अथ एवंभूताभास कहते हैंः—अपनी क्रियारहित, सो वस्तु भी, शब्दका वाच्य नही. तत्शब्दवाच्य यह नही है, ऐसा एवंभूताभास है. उदाहरण जैसें, विशिष्टचेष्टाशून्य घटनामक वस्तु, घटशब्दका वाच्य नहीं. घटशब्दप्रवृत्तिनिमित्तभूत क्रियासें शून्य होनेसें, पटवत्. इस वाक्यसें अपनी क्रियारहित घटादिवस्तुको घटादिशब्दवाच्यताका निषेध करना प्रमाणबाधित है. ऐसें एवंभूताभास कहा है, इति.

इन सातों नयोंमेंसें आदिके चार नय, अर्थ निरूपणेमें प्रवीण होनेसें, अर्थनय हैं. अगले तीन नय, शब्दवाच्यार्थगोचर होनेसें, शब्दनय हैं.

अथ इन पूर्वोक्त नयोंके कितने भेद हैं, सो लिखते हैंः—

गाथा ॥

इक्केक्को य सयविहो सत्त नयसया हवंति एमेव ॥
अन्नो वि य आएसो पंचेव सया नयाणं तु ॥ १ ॥

अर्थः—नैगमादि सातों नयोंके एकैकके प्रभेदसें सौ सौ भेद हैं, सर्व मिलाके सातसौ (७००) भेद होते हैं. प्रकारांतरसें पांचही नय होते हैं. सो यदा शब्दादि तीनोंको एकही शब्दनय, विवक्षा करीये, और एकैकके सौ सौ भेद करीये, तब पांचसौ भेद नयोंके होते हैं. ऐसेंही

अर्थः—शब्दनय, शब्दपर्यायके भिन्न भी हुए, द्रव्यार्थका अभेद मानता है और समभिरूढनय, शब्दपर्यायके भेद हुए, द्रव्यार्थका भी, भेद मानता है पर्यायशब्दोंके अर्थत एकत्वकी उपेक्षा करता है उदाहरण जैसें, 'इंदनादिंद्रः, शकनात् शक्र, पूर्दारणात् पुरंदरइत्यादिः' इस वाक्य करके इंद्र शक्र पुरंदर इत्यादि एकार्थ पर्यायशब्दमें भी, व्युत्पत्तिभेदसें इसके अर्थका भी, भेद मानता है शब्दके भेदसें, अर्थका भेद, यह नय मानता है इतितात्पर्यार्थ । ऐसेंही अन्यत्र कलश घट कुट कुंभादिकोंमें जानना

अथ समभिरूढाभास कहते हैं—पर्यायध्वनियोंके अभिधेयको एकांत नानाही मानना, सो समभिरूढाभास है उदाहरण जैसें, इंद्रशक्रपुरंदर इत्यादि शब्दोंके भिन्नही अभिधेय हैं, भिन्नशब्द होनेसें करिकुरंग तुरंग करभशब्दवत् यहां इंद्रशक्रपुरंदर नाम एक भी है, तो भी भिन्नशब्द होनेसें वाच्यार्थ भी, भिन्न है जैसें हाथी हिरण घोडा ऊंट आदि भिन्नवाच्य है, तैसें यह भी है यह समभिरूढाभास है। इतिपर्यायार्थिकस्य तृतीयोभेद ॥ ३॥

अथ चौथा भेद लिखते हैं—

॥ " शब्दानां स्वप्रवृत्तिनिमित्तभूतक्रियाविशिष्टमर्थं वाच्यत्वेनाभ्युपगच्छन्नेवंभूतइति ॥ "

[illegible] —समभिरूढनयसें इंदनादि क्रियाविशिष्ट इंद्रका पिंड होवे,अथवा न [illegible]द्रादिकका व्यपदेश लोकमें, तथा व्याकरणमें,तैसेंही रूढी होनेसें, सम। [illegible] [illegible]च रूढशब्दोंकी व्युत्पत्ति शोभामात्रही है 'व्युत्पत्तिरहिता शब्दा रू[illegible] [illegible]चनात्' एवंभूतनय, जिस समयमें इंदनादिक्रियाविशिष्ट अर्थको द[illegible] [illegible]निमकालमेंही इंद्रशब्दका वाच्य मानता है, परंतु तिससें रहित [illegible] [illegible]नी मानता है इस नयके मतमें तो सर्वक्रिया शब्दही है यद्यपि भाष्य। [illegible] [illegible]ानि (१) गुण (२) क्रिया (३) संबंध (४) यदृच्छा (५) लक्षण [illegible] [illegible]कारकी शब्दप्रवृत्ति कही है, सो

तदुक्तम् ॥

सत्थे समिति सम्मं वेगवसाओ नया विरुद्धावि ॥
णिच्चवूवहरिणो इव राओ दासाण वसवत्ती ॥ १ ॥

इति. ॥

पूर्वोक्त नयोंमें पूर्व पूर्व नय बहुविषयवाले हैं, और उत्तर उत्तर नय अल्पविषयवाले हैं. यह नयका स्वरूप, नयप्रदीपादिकसें किंचिन्मात्र लिखा है. विशेष देखनेकी इच्छा होवे तो, शब्दांभोनिधिगंधहस्तिमहाभाष्यवृत्ति, (विशेषावश्यक), द्वादशारनयचक्रादि शास्त्रोंसें देख लेना.

इति नयस्वरूपवर्णनम् ॥

तत्समासौ च समासोयं षट्त्रिंशः स्तंभः ॥ ३६ ॥

दृष्टिदोषान्मतेर्मांद्यादनाभोगात्प्रमादतः ॥
यज्जिनाज्ञाविरुद्धं तच्छोधनीयं मनीषिभिः ॥ १ ॥

यदशुद्धमिह निरूपितमार्यैस्तत्क्षम्यतां प्रसादं मे ॥
कृत्वा विशोध्यतां यत् को न स्खलति प्रमादविवशो हि ॥ २ ॥

यद्यपि बहुभिः पूर्वा—चार्यैरचितानि विविधशास्त्राणि ॥
प्राकृतसंस्कृतभाषा-मयानि नयतर्कयुक्तानि ॥ ३ ॥
तदपि मयेदं शास्त्रं, पूर्वमुनेः पद्धतिं समाश्रित्य ॥
भव्यजनबोधनार्थं, रचितं सम्यक् स्वदेशगिरा ॥ ४ ॥

युग्मम् ॥

श्रीमन्मोहनपार्श्वनाथविमले पट्टीपुरे प्रस्तुतः ॥
श्रीचिंतामणिपार्श्वनाथनिरघे जीरेतिनाम्ना पुरे ॥
ग्रंथोऽयं परिपूर्णतां च गमितश्चंद्रेषुनंदैणभृ-
द्वर्षे (१९५१) भाद्रपदे च शुक्लदशमीघस्रे गभस्तौ शुभे ॥५॥

छसौ, चारसौ, दोसौ भी, भेद नयोंके होते हैं तथाहि—जब सामान्यग्राही नैगमकी संग्रहके अंतर्भूत, और विशेषग्राही नैगमकी व्यवहारके अंतर्भूत विवक्षा करीये, तब मूल नय छ होते हैं एक एकके सौ सौ भेद होनेसें, छसौ भेद होते हैं । जब नैगम १ संग्रह २ व्यवहार ३, तीन तो अर्थनय और एक शब्दनय, ऐसी विवक्षा करीये, तब चार ४ नय, एकैकके सौ सौ भेद होनेसें चारसौ भेद होते हैं । और द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक, इन दोनोंके सौ सौ भेद होनेसें, दोसौ भेद होते हैं यदि उत्कृष्ट भेद गिणीये तो, असंख्य भेद होते हैं

यदुक्तम् ॥

जावंतो वयणपहा तावंतो वा नया वि सद्दाओ ॥
ते चेव परसमया सम्मत्त समुदिआ सव्वे ॥ १॥

व्याख्या —जितने वचनके प्रकार हैं शब्दात्मक ग्रहण किया हैं साव धारणपणा जिनोंने, वे सर्व नय, परसमय अन्य तीर्थियोंके मत हैं और जो अवधारणरहित 'स्यात्' पदकरी लांछित है, वे सर्व नय, इकठे करें, सम्यक्त्व जैनमत है

प्रश्न —सर्वनय प्रत्येक अवस्थामें मिथ्यात्वका हेतु है तो, सर्व एकठे मिले महामिथ्यात्वका हेतु क्यों नही होवेंगे? जैसें कण कणमात्र विष एकठा करे तो, घृहद्विष हो जावे है

उत्तर—परस्पर विरुद्ध भी सर्व नय, एकत्र हुए, सम्यक्त्व होते हैं, एक जनमत साधुके वशवर्त्ति होनेसें जैसें नाना अभिप्रायवाले राजाके नौकर, [illegible] धन धान्य भूमि आदिकके वास्ते लडते भी हैं, तो भी, सम्यग् न्या[illegible] पास जावें, तब पक्षपातरहित न्यायाधीश, युक्तिसें झगडा मिटायके [illegible] देता है, तैसेंही यहां परस्पर विरोधी नय, स्याद्वादन्यायाधीशके [illegible] परस्पर एकत्र मिलजाते हैं तथा बहुते जहरके टुकडे घडे मंत्रवादी[illegible] निर्विष हुए कुष्ठादिरोगीको दीए अमृतरूप होके परिणमते हैं, तैसे न[illegible]रूप भी जानलेना

अथ प्रस्तावना शुद्धिपत्रम्.

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	१०-१४	पाणिनी	पाणिनि
,,	१२	ग्योर्ळेवु	ग्योर्लेवु
४	२	श्वद्रकाश	श्वद्र काश
,,	२३	श्वद्रकाश	श्वद्रःकाश
,,	,,	शाकटायन	शाकटायन.
,,	,,	न्यगर जैनें.	न्यगरजैनें.
५	१९	श्रेष्टोत्तम	श्रेष्ठोत्तम
६	२२	सत्यानिष्ट	सत्यनिष्ठ
,,	२७	सम्यकवो.	सम्यक्त्वो
७	३९	सुक्ष्म	सूक्ष्म
८	१०	ग्रथोसें	ग्रथोंसें
,,	१२	सद्ग्रथेोके	सद्ग्रथोंके
,,	२२	महाम्त	माहात्म्य
,,	३३	निष्टावान	निष्टावान्
९	९	अग्रेजी	अंग्रेजी
१०	१४	ऋग	ऋग्
,,	,,	यजुस्	यजुस्,
,,	२६	वौधकी	वैाद्धकी
,,	३१	विनयत्रीपी	विनयत्रयीपी
११	२	ऐक	एक
,,	२१-२९	ऋषभ	ऋषभ
१२	३	ऋषि	ऋषि
१३	२	(तीर्थोंकी स्थापन करने वाले हैं)	(तीर्थों) की स्थापना करनेवाले है
,,	९	प्रमाण	प्रणाम
,,	१०	स्वस्तिन	स्वस्तिन
,,	,,	वृद्धश्रवा	वृद्धश्रवा.
,,	११	स्तार्क्षो	स्तार्क्ष्यो
,,	१२	वलायु	बलायु
,,	१३	वामदेव सात्यर्थम	वामदेवशात्यर्थम
,,	,,	सोऽस्माक अरि	सोऽस्माकमरि
,,	,,	पुरुहुँत	पुरुहूत
,,	२७	शिष्टान्नपि	शिष्टानपि
,,	२८	महामुनीना	महामुनीनां
१४	२	उनक	उनके
,,	२९	होनसे	होनेसे
१५	११	ऋषिकृत	ऋषिकृत
,,	१६	वेस भी	वे सभी
,,	३०	कुण्डसना	कण्डासना
,,	३१	जिनेद्रा	जिनेंद्रा
१६	२	सरस्वती हस,	सरस्वती, हस
,,	९	तत्व·	तत्वतः
,,	१२	विप्रैः य	विप्रैर्य
,,	१४	ब्राह्मणोंको	ब्राह्मणोंको
,,	१९	मरूदेवी	मरुदेवी
,,	,,	भरते·	भरत
,,	२०	मरूदेव्यां	मरुदेव्या
२०	१७	मूल	मूलक
,,	१८	मूलके	मूलकके
,,	२३	धर्मकी	धर्मको
,,	२७	पडितोमें	पडितोंमें
२२	२१	कचा	काचा
,,	२४	जीज्ञासु	जिज्ञासु
२३	१	हें	है
,,	२	कीसी	किसी

इति प्रस्तावना शुद्धिपत्रम्

सुनक्षत्रपुरे रम्ये धर्मनाथप्रतिष्ठिते ॥
घर्स्रेजनशलाकाया पादोनद्विशतार्हताम् ॥ ६ ॥
शिखिबाणार्कचंद्राब्दे (१९५३) वल्लभेन मुमुक्षुणा ॥
राकाया प्रथमादर्शेऽलेखि माधवमासके ॥ ७ ॥
युग्मम् ॥
सूर्याचद्रमसौ यावद् यावच्छ्रीवीरशासनम् ॥
ग्रंथोऽय नदतात्तावत् परोपकृतिहेतवे ॥ ८ ॥
कियानप्यस्य शास्त्रस्य श्राद्धे पट्टीनिवासिभि ॥
पंडितामृतचद्राह्वैर्भागोऽस्ति परिशोधित ॥ ९ ॥

॥ इति शुभ भूयात् ॥

॥ इतिश्रीमद्बुद्धिविजयगणिशिष्यश्रीमद्विजयानंद-
सूरिविरचिततत्त्वनिर्णयप्रासादग्रथः समाप्तः ॥

यह ग्रथ मरुदेशवासी (हाल मुंबई निवासी) ओसवाल बालफेना (बाफणा) परमार गोत्रीय जैन (श्वेतांबरी–तपगच्छीय) अमरचद पी० (पद्माजी) परमारने स्वमत्यनुसार पदच्छेद प्रूफ आदि शोधन करके प्रसिद्ध किया याचना है कि पाठक वर्ग दृष्टिदोषकी क्षमा करे

श्रेयासि सन्ति बहुविघ्नहतानि लोके ।
कस्येदमस्त्यविदितं भुवि मानवस्य ॥
श्रेयस्तरोऽयमिति य समयात्ययोऽभूत् ।
न [illegible]न्तु मर्हति सदा विदुषा समूह ॥ १ ॥

अथ [illegible] विदित नही है कि “ अच्छे कार्योमें बहुत विघ्न होते हैं ” यह ग्र[illegible] सत्कार्य है, जिससें (कीतनीक आफत–मुश्केलीके सबबसें) प्रसि[illegible] विलम्ब हुवा जिसकी सुज्ञ साक्षरवर्ग क्षमा करेंगे

भंवरदीपिका अगम व[illegible] नपत दन मान जीन ।
पकर क्षमाधर [illegible] तन तलीन ॥

॥ [illegible]

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
,,	१६	ओर	और
,,	२४	करे	का
७४	२६	[illegible]	[illegible]
७६	२६	-[illegible]	-[illegible]
७७	१२-२७	[illegible]	[illegible]
७९	१२	[illegible]	[illegible]
,,	२२	[illegible]	[illegible]
८०	७	[illegible]	[illegible]
,,	१७	[illegible]	[illegible]
८३	२३	[illegible]	[illegible]
८५	१	[illegible]	[illegible]
८६	१७	[illegible]	[illegible]
८७	९	[illegible]	[illegible]
८८	२५	[illegible]	[illegible]
८९	२०	[illegible] आ-	[illegible] आ-
९०	१९	पर्यायोंकी	पर्यायोंको
९०-९१	२४ २६ २-२	श्रृंग	शृंग
९१	२	प्रवत्तन	प्रवर्त्तन
,,	१२	पाच ज्ञानेंद्रिय, (पाच-	(पाच ज्ञानेंद्रिय, पाच-
९२	५	योग्य	योग
,,	१९	(भगवतु)	(भवत्सु)
,,	२१	अथात्	अर्थात्
,,	२९	प्रवर्त्त	प्रवृत्त
९३	१७	मसूयान्धा	मसूययान्धा
,,	१८	करको	करके
९९	२७	(स्वादौ अत्यत)	(स्वादौ) अत्यत
१००	१७	नही क्या? खद्योत	नहीं क्या खद्योत
१०१	११	ऐसे	सूत्र
१०५	१९	करता है	कराता है.
१०७	१९	-स्वामी फेर अयोग्य	-स्वामीमें फेर अयोग्य
१०९	११८	जितना चिरयोगीनाथ	जितनाचिर योगीनाथ
,,	१९	जितना चिरयोगी जनोंको	जितनाचिर योगीजनोंको
११०	९	[illegible]	[illegible],
१११	३	[illegible]	[illegible]
,,	४	[illegible]	[illegible]
,,	१२	[illegible] जाना,	[illegible] जाना,
,,	१६-१८	[illegible]	[illegible]
,,	२०	(तत्र)	(तत्र)
११२	२	-[illegible]-	-[illegible]-
,,	१७	-[illegible]	-वचा:
११६	१९	[illegible]	हरिभद्रसूरिपादै
,,	२४	चन्द्राशु	चन्द्रांशु
,,	२६	(तमस्पृशाम)	(तम स्पृशाम)
११८	१	राग	रागसे
११९	१	जिनोत्तमरूप	जिनोत्तमरूप
,,	२९	मुक्तमौक्तवत	मुक्तमौक्तवत्
१२४	१	येव नया	ये वैनया
,,	८-९ १०-१७	सुवर्ण	सुवर्ण
,,	१३	वात	प्राप्त
१२६	२४	ऋषभदेव	ऋषभदेव
१२७	६	समुक्त-	समुत्त-
,,	७	-पाली	-माली
,,	१८	पूर्वोक्त	पूर्वोक्त
,,	२९	श्रीमहावीर	श्रीमहावीर
१३०	१८	त्राछगया	त्राछागया
१३८	५	गोतमक्षपिने	गोतमक्षपिने
१३९	१०	निरच्छयमवच्छय	निरत्ययमवत्यय
,,	१५	अच्छावत्ती	अत्यावत्ती
,,	१६	पदच्छ	पदत्य
,,	२९	डिच्छादिवत्	डित्यादिवत्
१४३	१८	चन्द्रास्तेप्यागरी	चन्द्रास्तेप्यामरी
१४५	१	एकात	एकात
१४७	१६	जगन्मनुप्याद्यम्	जगन्मनूपाद्यम्
१४९	२७	आपके	आपको
१५१	१९	कालक्कत्	कालकृत
१५२	९	एको	एकोऽहं
१५४	५	छद्मासि	छद्मासि

अथ तत्वनिणयप्रासादस्य शुद्धिपत्रम् ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१२	जीन	जिन
”	२२	समकित	सम्यक्त्व
२	१	पारगामी	पारगामी
”	३	ऋषभदेष	ऋषभदेव
”	१९	जान	जिस
”	”	देवप्रधान	देवार्प
”	१	चिन्ताविता	चिन्ताचिता
३	९	रुपमद	रूपमद
”	२०	मुद्रामूर्तिको	मुद्रा मूर्तिको
”	२८	[illegible]की	देवोंकी
४	१०	ससारिक	सांसारिक
५	२५	भद्रबाहू	भद्रबाहु
६	१५	आर ओ	और
”	१९	प्रमख	प्रमुख
”	२०	अनपांगादि	अंग उपांगादि
८	८	काठे कीतने	कोठेकी तरें
९	६	काठेमें आचारादि	काममें आचारादि
”	२७	उपासक	उपाशक
१०	१०	पाणिनी	पाणिनि
१२	२५	छिपत	छिपते
”	२८	कोइ अजाण	केई अनजान
१४	६	आचार्य	आचार्मे
	२४	पुन शेपादि	पुन शेपादि
		रत्नस्नानमें	रत्नस्नानमें
		तदन	तदनु
		[illegible]चार्मे	आचार्मे
			[illegible]
१६			दृग
२४	५		[illegible]मनीपा पुम
”	६		
”	१९	जम	
”		जगमरा[illegible]	
२५	५	के[illegible]	
”	२१	सरि	सर

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२७	७	पृच्छकके	पृच्छकके
”	१२	एकानिष्ट	एकनिष्ठ
”	१९	परवादियोंकी	परवादियोंके
”	२३	पहां	वहां
२८	७	मास	मास
”	१	अश्वकारक	अंचकारक
”	१८	अनित्यता	अनित्य
”	१९	द्रव्य	द्रव्य
२९	४	स्वमानसें	स्वभावसें
”	९	के	•
३२	४	कयीये	करीये
३५	४	जीवनमोक्षावस्थामें	•
३६	२	द्रव्यार्थक	द्रव्यार्थिक
३९	७	ओर	और
४	४	कारण	क्रियाकारण
४१	१	प्रम	प्रमा
”	२१ २१	सम्यक्त	सम्यक्त्व
”	२६	गुणमयी अर्हमकी	गुणमय अर्हनका
४२	२१	परन्तप	परन्तप
४३	१०	सूक्ष्मपर्य	सूक्ष्मपर्य
”	२१	यान्यद्यर्थ	यावद्द्रव्य
४४	२८	अप्पाय	•
४७	६	सवासों	सर्वासों
” ४८	२१ १५	क्रियायोंकेको	क्रियोंकेको
५०	१९	भृकुटी	भृकुटी
५७	१०	मृत्य	मृत्यु
६१	१९	पुण्या	पण्या
६३	१	मुग्धतगर	मुग्धरठ
”	१९	चामरता	चामरतम
६६	११	[illegible]	[illegible]
६७	२१	योजम्	योजनम्
६०	१९	प्रमाग	प्रगम
”	१९ १७	अन्त	अनुन
	१	प्रममम्	प्रापम्

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२७०	१४	सर्वोंकी	सर्पोंकी
२७० २७१	२९-१	नमस्कारहै ?	नमस्कार करताहै ?
२७२	१९	मेऽअस्तु	मेऽस्तु
२७५	२६	सुरात् 'पिवेइति श्रुतिः	सुरा पिवेत्'इति श्रुतिः
२७९	१४	रचे	रच
२८१	१	(ॐम्)	(ॐम्)
,,	८	भूर्भव.	भूर्भुवः
,,	२३	उवब्भाया	उवझ्झाया
,,	,,	पचरकर	पचक्ख
,,	,,	परमेट्ठी	परमिट्ठी
२८४	५	ब्रह्माका भी	ब्रह्मा कामी
२८६	५	इद्रिया	इद्रिया
२८७	१७	अमर्त्त	अमूर्त्त
२९२	२७	साक्षाद्द्राष्टा	साक्षाद्द्रष्टा
२९३	१९	ताइ	ताई
,,	२४	किंविष्टे	किंविशिष्टे
२९४	१६	प्रर्यायमेंही	पर्यायमेंही
२९४	२७	जिसवेद	जिस वेदमें
२९६	१९	वद्द	वट्ट
३००	२	वेदाश्छदासि	वेदाश्छदासि
३०४	१०-१२	करैं	करें
,,	१५	१८८९	१८८४
३०७	२५	धर्महो है	ही धर्म है.
३१२	११	तमसा	तपसा
,,	१९	॥४२॥	॥१४२॥
३१३	२७	हिंसको	हिंसाके
३१८	१४	चौसष्ट	चौसठ
३२०	१	स्वच्छ	सवृत्थ
,,	११	सावज्झ	सावज्ज
,,	,,	वज्झणाओ	वज्जणाओ
,,	१८	परकपहो	पक्खपहो
,,	२५	गिहच्छ	गिहत्थ
,,	२६	सविग्न	सविग्न
३२१	८	खद्योय	खज्जोय
,,	९	गिहच्छ	गिहत्थ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
,,	२५	व्यवहारो	ववहारो
,,	,,	छनुमच्छं	छउमत्थ
३२३	३	विचय	विज्जय
,,	४	विद्या	विज्जा
३२४	६	श्लोकः	श्लोक
३२५	१८	स्वति	स्वस्ति
३२८	७	श्रीमदिजिन	श्रीमदादिजिन
३२८	१५	करता	कराता
३२९	४	विस्सुऊ	विस्सुओ
,,	५-६	च्छ—च्छे	त्थ—त्थे
,,	१५	कौसुभसुत्र	कौसुभसूत्र
३३२	१९	यश च	यश॰ सुखच
,,	२५	श्रुक्र.सूर्यसतो	शुक्रःसूर्यसुतो
३३३	७	ध्दा	द्धा
,,	१०	वृद्धै	वृद्धयै
३३७	१५	सौष्टव । वर्द्धतां	सौष्ठव वर्द्धता ।
३३८	२	स्तभमें	स्तंभमें
३४०	२१	ददता	ददता
३४२	१३	पर्यन्त	पर्यन्तं
३४३	२०	जातकर्म	नामकर्म
३४५	२	वस्त्रस्त	वस्त्रहस्त
,,	६	वासरकेवकरेह	वासक्खेवकरेह
,,	१९	ऽष्ट	ऽष्टम
३,४६	१७	पट्विकृयोंको त्याग करे	पट्विकृतियोंको एकत्र करे
३४८	२७	भयात्	भूयात्
३४९	१६	बुध,	बुध, गुरु,
३५०	१४	ध्रव	ध्रुव
३५१	७	सवच्छ	सव्वत्थ
३५१	७	साङ्घाण	सट्ठाणं
,,	१३	उम्मग्रेण	उम्मग्गेण
,,	,,	जणवऊव्व	जणवओव्व
,,	२१	भिरकाग	भिक्खाग
३५२	१	उग्रकुलेसु	उग्गकुलेसु
,,	२	ईरकाग	इक्खाग
,,	४	ईति	इति
,,	,,	अच्छि	अत्थि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५९	१२	स्थलरूप	स्थूलरूप
१५८	१२	प्राणीयोह	प्राणीयोह्
"	१	काधिवृक्ष	कश्चिवृक्ष
"	१४	स्तम्योदिवि	स्तयोदिवि
१६०	१	अमरणमव	अमरणमात्र
१६२	१७	क्विविश्रिता	विविश्रुता
१६३	९	क्षरका	०
१६६	१८	श्रीहरी	श्रीहरि
१७१	१४	नहीं है '	नहीं है
१७६	"	अस्वत्रिम	अकृत्रिमः
"	"	शास्वत	शाश्वतः
१७७	१	निर्मितनेका	निर्मितानेका
"	१२	और !	अरे,
"	२०	दिखे	दख
१८९	१२	बह्मादि	ब्रह्मादि
१८९	१२	बतलाई	बतलाओ
१९१	१८	तदानीमम्	तदानीम्
१९९	१	सौ	सो
१९७	२१	द्दिर	धिरा
२००	९	यद	यह
२००	१८	आत्मान्	आत्मान्
२०४	१८	साम्येद	सौम्येद
२०५	१७	अनित्यं	अनित्य
२०८	९	या अमात्रका	या अमात्रका
"	९	या असत्	या असत्
	१२	सो–जो	जो–सो
	१७	एकात	एकांत
	०	पचरूप	प्रपंच
		[illegible]	जाता
२१८		[illegible]के	जीवोंके करे
"	१		[illegible]
	२५		[illegible]
		क्ष५	
२११	१४	सपान्न	
"	२१	विचारोंकेही	विच
"	२६	जिसमें	जिसमे

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२१५	४	आपना	अपना
"	१४	करेनसें	करनेसें
२१७	१	सीमोसीत्-सीमोस्दस्मीत्	
"	२	ठहरेगी	ठहरेगा
२१८	२	होवेगी,	न होवेगी,
२२१	१६	इत्यदि	इत्यादि
"	१८	चक्षु	चक्षु
२२४	११	शूद्रणी	शूद्री
"	१६	ब्राम्हणी	ब्राह्मणी
२२५	७	कोंकी	कोंकी
२२९	४	अधार	आधार
"	९	तदएकम	तदेकम
२२९–२३०		सर्वोध } अगुणी }	सर्वाध } अगुणी }
२३२	९	ऋगूवेग	ऋगूवेद
"	१६	भागानुसार	भाग्यानुसार
२३४	१७	हुआ, था,	हुआ था,
२३५	२१	इसमें	इससें
२३८	६	हैं	है
२३८	१७	भसपक्षाकि	भसपक्षमनि
२३९	२२	सर्वशक्तिमान	सर्वशक्तिमान्
२४१	२१	विवस्वान	विवस्वान्
२४३	६	स्कम्मन्ताम्	स्कम्भन्ताम्
२४४९–१२		उत्स्वास	नि श्वास
२४९	१२	(आजापत)	(अज्ञापत)
२४६	४	करता	कयता
२४७	१	दुसरा	दूसरा
"	१७	ऋग्वेदं	ऋग्वेद
२५७	८	ष्टृ	घृ
२५८	१७	पटण	पटम
२५९	७	प्रगित	प्रगीत
२६	१०	बसिष्टके	वसिष्ठके
२६१	१	उद्दपके	उद्दिपके
"	८	इसमें	इसमें
२६६	१२	गौचके	गौचके
	१	बर्गमें	बग६में

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
„	११	गहेण	ग्गहेण
४२२	६	„	„
„	१९	स माइय	सामाइय
„	२१	वदित्तु	वदित्ता
„	२२	तुञ्झेहिं	तुब्भेहिं
„	२३	च्छे	त्थे
„	२४	निच्छा	नित्था
४२३	१	पएवेमि	पवेएमि
„	७	च्छ, च्छ	त्थ, त्थ
„	१२	च त्रिगईअणाय	चउ त्रिगईअण्णाय
„	२३	पस्तकातरमें	पुस्तकातरमें
४२४	३	जिणपणत्त	जिणपण्णत्त
„	२६	पचम	पचम
४२६	१३	देवके	देवके विषे
४२८	९	वह	यह
„	१२	जिवोंको	जीवोंको
४२९	२२	देवके	अदेवके
४३२	१८	यहि	यदि
४३४	१२	सम्पक्त्वो	सम्यक्त्वकों
४३५	१२	मासायिक	सामायिक
४३५	७	अहण	अहण्ण
„	२१	उरालिय	ओरालिय
४३६	„	अहण	अहण्ण
४३९	१९	मत्ताण	मित्ताण
४४०	२४	तित्थि	तिथि
४४१	७	वुरु	गुरु
४४५	४	।४९।	।४७।
४४५	१८	जोग	जोग
„	१४	च्छम्मास	छम्मास
४४६	३	सम्यक्त्वारो	सामायिकारो
४४७	१०	अहण	अहण्ण
„	१२	उत्थिए	उत्थिए
„	२२	गहेण	ग्गहेण
४४८	२६	रोपणवि	रोपणविधि
४४९	६	सुवारोपण	श्रुतारोपण
४५३	१९	देसियाण	दसयाण
„	२४	विअट्टथउमाण	विअट्टछउमाणं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४५५	१६	विहुरयमला	विहूरयमला
४५६	१०	देवदाणत्र	देवदाणव
४५७		एकोर्त्रिंश	एकोनत्रिंश
„	१०	सक्कच्छयमि	सक्कत्थयमि
„	२३	एगेए	एगेण
४५८	८	गिएहओ उवहाण होओ	गिण्ह उ उवहाण होऊ
„	१४	अगिएहमाणोण	अगिण्हमाणाण
४५९		एकोत्रिंश	एकोनत्रिंश
„	१	मुहुत्तनरकत्त	मुहुत्तनक्खत्त
„	७	मललकेण	मलकलकेण
४६१-४६३		एकोत्रिंश	एकोनत्रिंश
„	१४	निव्त्रिण	निव्त्रिण्ण
४६५	१५	इधनकौ	इधनको
४६६	२३	पुव्त्रएहे	पुव्वण्हे
४६६	२६	वादऊण निअमेण	वदिऊण निअमेण
४६८	३	अयकनी	अयसनी
„	५	भोवत्रओ	पभावओ
„	६	रूवागग	रूवारुग्ग
„	१२	अन्निरमेउ	अभिरमेउ
„	१३	उत्तभ	उत्तम
„	„	सुदरा	सुदरा
„	१६	निव्त्रिण	निव्त्रिण्ण
४६९	१३	श्रचि	शुचि
४७०	१४ १५	भुयास	भूयास
„	१६	नि.पापा भूयासुः॥	नि.पापा भूयासु. निरुपद्रवा भूयासुः॥
„	२४	वतु ॥	वतु ॥
„	२०	पृथिव्यप्	पृथिव्यप
४७१	४	सुखीत्रवतु	सुखीभवतु
४७२	६	सर्वोपचारे	सर्वोपचारैः
„	११	मिषेक	अभिषेक
४७२	१३	बृहण	बृहणं
४७३	१५	वुपोस्तु	धुपोस्तु
४७४	१४	वुपोस्तु	वुपोस्तु
४७५	२४	शत	शत
४७७	७	सतभीतिर्निवाताई	सतभीतिनिवाताई

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
,,	,,	छोगाच्छेय	छोगच्छेरय
,,	९	उसप्पिणि	ओसप्पिणि
,,	,,	समुपघाइ	समप्पज्जइ
,,	६	अरकीणस्स	अक्खीणस्स
,,	,,	अणिघिणस्स उदर्ण्ण	आणिजिण्णस्स उदएण
,,	८	मिरकाग	मिक्खाग
,,	,,	आयाईसु वा	आयाईसु वा
,,	९	निरकमणेणं	निक्खमणेण
,,	,,	निरकमिसु	निक्खमिसु
,,	१२	कुछ	कुले
,	१३	उम	उग्ग
,,	,,	इरकाग	इक्खाग
३९४	६	शूद्रोंको	शूद्रोंको
३९७	२४	पितृतिथि	पितृतिथि
३९९	१८	रत्नकरकारणा	रत्नफरणकारणा
३६०	१९	अरकरेसु	अक्खरेसु
,,	१६	हिव	हिओ
,,	१७	चिंतियमचोइ	चिंतियमित्तोवि
३६१	१४	सापाने मंत्रे	सोपाने मंत्रे
३६२	१	मंत्रत्यागे	मंत्रत्यागे
,,	१०	वेद	वेदा
३६३	१९	समादिष्ट	समादिष्टे
,,	२७	भगवत्	भगवन्
३६४	१२	सामायिक	सामायिक
३६९	१६	परमेष्टि	परमष्टि
३१	२-२०	दश	एकादश
	१	पर्णानुज्ञा	पूर्णानुज्ञा
		वेदिकरण	वेदीकरण
		,,	चतुर्विंश
३७०			गगन
३८७	९		
३८८	८	५	
३९०		स्मर	
		स्तति १०	
,,	१	राजाभों	राजे
,,	१३	द्रने	मूप
३९१	२०	पूर्ववत्	पूर्ववत्
३९१	९	पीपकी	पीपलकी
३९६	१	स्वासकयोप	स्वासकास्योप
४००	१२	निवेश	निविशो
४०१	१४	निभिड	निबिड
४०४	९	निभिडेन	निबिडेन
४०७	१४	बिसेयस हिया	बिसेयसहिय
४०८	२	समच्छे	सम्मच्छे
,,	६	संमहसलिो अभिमह	संमइसीलो अभिग्गह
,,	७	अविकच्छणो	अविकत्थणो
४१०	१४	उ, हो, च्छो, दहे, सू, सुराज	
	१६	ओ वो, त्थो हां, ण्ण्, सुरा, त्थ	
४११	१	गर्हितं	गर्हिते
४१२	१९	क्षामाश्रवण	क्षमाश्रमण
४१३	१७	स्वपरमें	स्वपरमें
४१२	२९	वायणच्छ	वायणत्थं
४१३	२४	ठयपाइ	ठयाइ
,,	२९	मुरख	मुक्ख
४१४	९	मयच्छएण	मत्थएण
,,	१६	सम्म	सम्म
,,	१७	वदामेहं	वदामेइ
,	२१ २२	वचियाण	वचियार
४१५	७ २०	अकच्छ	अकरण
,,	१४	खरत	गरत
४१६	८ १६	अकाच्छ	अकाथ
,,	१३	युवानां	युवानां
,,	२०	शासने	शासनं
४१७	१०	निद्द	निद्दू
४१९	१९	मिराविम	मिराविय
४२०	८	महच्छ पुच्छच्छ परमच्छ	महत्थ पुमत्थ परमत्थो
,,	१९	अकच्छ	अनत्थ
४२१	२ १०	अहण	अरण्णं
,,	९	अन	अन्न
,,	६		
	१		त्थ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
,,	११	गहेण	ग्गहेण
४२२	६	,,	,,
,,	१९	स माइय	सामाइय
,,	२१	वदित्तु	वदित्ता
,,	२२	तुज्झेहिं	तुब्भेहिं
,,	२३	च्छे	त्थे
,,	२४	निच्छा	नित्था
४२३	१	पएवेमि	पवेएमि
,,	७	च्छ, च्छ	त्थ, त्थ
,	१२	च विगईअणाय	चउ विगईअण्णाय
,,	२३	पस्तकातरमें	पुस्तकातरमें
४२४	३	जिणपणत्त	जिणपण्णत्त
,,	२६	पचम	पचम
४२६	१३	देवके	देवके विषे
४२८	९	वह	यह
,,	१२	जिवोंको	जीवोंको
४२९	२२	देवके	अदेवके
४३२	१८	यहि	यदि
४३४	१२	सम्यक्त्वो	सम्यक्त्वको
४३५	१२	मासायिक	सामायिक
४३५	७	अहण	अहण्ण
,,	२१	उरालिय	ओरालिय
४३६	,,	अहण	अहण्ण
४३९	१९	मत्ताण	मित्ताण
४४०	२४	तित्थि	तिथि
४४१	७	वुरु	गुरु
४४५	४	|४९|	|४७|
४४५	१८	जोग	जोग
,,	१४	च्छम्मास	छम्मास
४४६	२	सम्यक्त्वारो	सामायिकारो
४४७	१०	अहण	अहण्ण
,,	१२	उत्थिए	उत्थिए
,,	२२	गहेण	ग्गहेण
४४८	२६	रोपणवि	रोपणविधि
४४९	६	सुधारोपण	श्रुतारोपण
४५३	१९	देसियाण	दसयाण
,,	२४	विभङ्ग्थउमाण	विअद्दछउमाण
४५५	१६	विहुरयमला	विहूयरयमला
४५६	१०	देवदाणव	देवदाणव
४५७		एकोत्रिंश	एकोनत्रिंश
,,	१०	सक्कच्छयमि	सक्कत्थयमि
,,	२३	एगेए	एगेण
४५८	८	गिएहओ उवहाण	होओ
		गिण्ह उ उवहाण	होऊ
,,	१४	अगिएहमाणोण	अगिण्हमाणाण
४५९		एकोत्रिंश	एकोनत्रिंश
,,	१	मुहुत्तनरकत्त	मुहुत्तनक्खत्त
,,	७	मललकेण	मलकलकेण
४६१-४६३		एकोत्रिंश	एकोनत्रिंश
,,	१४	निव्विण	निव्विण्ण
४६५	१५	इधनको	इधनको
४६६	२३	पुव्वएहे	पुव्वण्हे
४६६	२६	वादऊण निअमेण	वदिऊण निअमेण
४६८	३	अयकती	अयसनी
,,	५	भोवओ	पभावओ
,,	६	रूवागग	रूवारुग
,,	१२	अनिरमेउ	अभिरमेउं
,,	१३	उत्तभ	उत्तम
,,	,,	सुदरा	सुदरा
,,	१६	निव्विण	निव्विण्ण
४६९	१३	श्रुचि	शुचि
४७०	१४ १९	भुयासं	भूयास
,,	१६	नि पापा भूयासुः॥	
		नि पापा भूयासु.	निरुपद्रवा भूयासुः॥
,,	२४	वतु ॥	वतु ॥
,,	२०	पृथिव्यप्	पृथिव्यप
४७१	४	सुखीत्रवतु	सुखीभवतु
४७२	६	सर्वोपचारै	सर्वोपचारैः
,,	११	भिषेक	अभिषेक
४७२	१३	बृहण	बृहणं
४७३	१५	वुपोस्तु	वृपोस्तु
४७४	१४	वपोस्तु	वृपोस्तु
४७५	२४	शत	शत
४७७	७	सतभीतिर्निवाताहँ	सतभीतिविद्याताहँ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४७८	२९	धान	ध्यान
४८०	६	क्षितिर्नि	क्षतिर्नि
,,	१२	श्रेयकां संनिधान	श्रेयसां संनिधान
,,	१९	जगत्रयगुरोस्सौभाग्य	जगत्त्रयगुरोस्सौभाग्य
४८१	६	दूसरी बेर छपी है	
,,	१७	दया	क्या
४८४	७	जगत्रय	जगत्त्रय
४८५	६	विघ्न	विघ्न
४८६	६	ई१०	ई१०
,,	२१	विघ्न	विघ्न
४८७	१	दिकपाल	दिक्पाल
,,	१९	जगत्रयस्य	जगत्त्रयस्य
४८८	२२	जगत्रयी	जगत्त्रयी
४८९	२४	शाक्रस्तव	शक्रस्तव
४९०	४	जगत्रय	जगत्त्रय
,,	९	पूष्पां	पुष्पां
,,	११	पूष्पादि	पुष्पादि
४९१	२०	पडावश्यक	षडावश्यक
४९१	२१	परमेष्टि	परमेष्ठि
४९१	२१	छाहेण	पंचिदिओहेण
		छेहेण वा	पंचिदिओहेण
५९४	१२	मय	भय
५९९	७	रिमवस्तु	रिमसुय
	२१	गिरिहामि	गरिहामि
५०७	१६	परमेष्टि	परमेष्ठि
	२४	मसोहेण	मसोहेणं
		किंचि नाम ॥	किंचि ॥ नाम
४		,,	देसण
५०१			पुष्प
,,	८		त्रयाणां
५०२	१०		
५०३	२०	प्रिय	
५०४	१२	कृत	
५०६	११	व्यवण	
५०७	१२	वापसे	वापस

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५२०	६	इति	ईति
५२१	४	धारासामान	धारासमान
५२९	२१	(स्तैत्येवैनमेतत्)	(स्तैत्यैवैनमेतत्)
५२६	११	श्रीमु	श्रीमन्मु
३१	२२	स्वंडके	खडके
५३३	१४	तिनको	तिनके
,,	१६	समाचारी	सामाचारी
५३४	२	२१ के	२१ वें
५३९	७	बौवमपसें	बौद्धमतसें
	९	Jocabi	Jacobi
,,	२४	करमें	करनेमें
५३९	२९	तिस विश्यतक हकीकातसें	तिस विषयकी सहकी करनेसें
५४१	१६	मोरको	मोक्षको
५४१	१७	केवक्ष	केवल
५४२	१४	सिधि	सिद्धि
५४४	९	उपाधि	उपधि
५४५	२	श्रीजिनमद्रणि	श्रीजिनभद्रगणि
,,	२१	जैनमामा	जैनामासा
,,	२२	मरपानु—	मरणनु
५४९	१२	भठ	भट्ट
५५५	१०	प्रतिके	प्रतिके
५५६	१	सेवना	सेवना
५५८	८	मुत्तिका	मुक्तिका
,,	१२	केवल	कवल
५७१	१	सकुल	सकुल
,,	२१	केवली	केवलि
५७२	१०	करमेसें।	करनेसें। (१)
५७४	२४	संसारक	सांसारिक
५८०	१४	अनेकातिक	अनेकांतिक
५८२	१	एणहिऊग	ण्हविऊण
५८३	२२	मोक्षका मानके	मोक्षका हेतु मानके
५८४	१०	महाचारी	ब्रह्मचारी
५९३	१२	१२सो महाभिषेक	
		सो मान्य महाभिषेकका	
५९९	१६	पुजन	पूजन
	२१	नैवेद	नैवेद्य

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६००	८	कपित्य	कपित्थ
६०१	८	देशापरत्न	देशरत्न
६०७	२६	इरखु	इक्खु
६०८	२	वण्णेया	विण्णेया
६१३	३	यता.	यत.
,,	२५	साध	सानु
६१६	१४	निषध्या	निषद्या
६२७	२२	चम्रावाला	चाठियावाला
६२९	२४	दिसला	दिखला
६३०	७	सहस्त्र	सहस्र
,,	१२	उपरात	उपरात
६३१	१	चलनेमें	चलनेसें
६३८	२	चारिकाक्षिणाम्	चारित्रकाक्षिणाम
६५०	२१	शीतल	शील
६५८	४	रामश्वर	रामेश्वर
६६१	१०	वक्तमें	वक्तव्यमें
,,	१४	त्रिभजया	त्रिभजनया
६६२	१८	वास्ये	वास्ते
६६७	९	उपकारके	उपकार करके
,,	२१	नानी	नाना
६७५	२५	–मितिः ॥”	–मिति ॥”
६७७	९	घटातरके	घटातरके
,,	१५	सयोंगके	सयोगके
६८२	१	तो हेतु	हेतु तो
,,	१९	प्रसगमें	प्रसगसें
६८५	२१	जान सकेगा	न जान सकेगा
६८७	१२	अनुमा-	अनुमान
६९०	१७	जीवोंका	जीवोंको
६९१	२३	परका	परको
६९८	१५	भेक्ताद्	साक्षाद्
७०५	१३	जर्वि	जींव
,,	१५	इति	०
७०७	२४	निर्विशेष	निर्विशेष हि
७०८	१६	वतुस्की	वस्तुकी
७०९	१	यादि	यदि
,,	२२	‘ चलती ’	‘ चलति ’
७१२	८	मतस	मतसे
७१८	२२	विभावद्रव्यजन	विभावद्रव्यव्यजन
,,	१३	गुणा	गुण
,,	१५	गधातर	गधातर
७२८	६	नहीं डूब जायगा?	नहीं, डूबजायगा.
७३०	४२	तृताय.	तृतीय
७३३	२०	व्हवयार	व्यवहार
७३५	३	दूव्योंकों	द्रव्योंको
७३६	३	मेद	भेद

इति तत्त्वनिर्णयप्रासादस्य शुद्धिपत्रम् ।

रा. ब. शेठ माणेकचंद कपूरचंद और स्व. शेठ मगनभाई कपूरचंद.

ये दोनों भाई जिनका गभीर, संयुक्त फोटो सामने दृष्टिगोचर हो रहा है, वीसा ओसवाल जैन ज्ञातिके हैं, और पूना तथा मुंबईमे निवास करते हैं. असलमें ये अहमदाबादके हैं, और इनके पूर्वजोंमेंसे शेठ दीपचंदके पुत्र, शेठ कीकाचंदको लालभाई और वजेचंद दो पुत्र थे. लालभाईका वंश अहमदाबादमें है, और लगभग सो वर्ष पहिले शेठ वजेचंद पूनामें जाकर आबाद हुवे. जवाहरातके धंधेमें अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त करके ये पेश्वा सरकारके जवहरी नियत किये गये, और उन्हींकी सहायतासे एक वडा मकान शनिवार पेठमें बनवाया.

पूनामें सवाई माधवराव पेश्वाके समयमें जब किलेका काम आरंभ हुवा, तब नाना फडनवीसकी ईच्छानुसार इन्होंने किलेके बाहर जवहरीवाडा बसाकर व्यापारकी बडी उन्नति की. ये प्रत्येक जैनकार्यमें अग्रणी बनते थे, और बहुतसें जैन मंदिर बनवानेमें इन्होंने सहाय दीथी. सवत १९०१ मे ८८ वर्षकी वयमें इन्होंने स्वर्गवास किया. इसी समयसें यह दूकान शा वजेचंद कीकाचंदके नामसे आजपर्यंत चल रही है. वह दूकान कई वार मरहठाओंसे लूटी गई थी.

उक्त शेठ वजेचदको कपूरचद, वमलचंद उपनाम बापूभाई और उत्तमभाई तीन पुत्र थे. शेठ कपूरचद बहुतही शांत प्रकृतिके महाशय थे. वे सांसारिक कार्यसें बहुधा विरक्त रहते थे; उनको एकांतवास बहुत पसंद था और वे धर्ममें दृढ श्रद्धावान थे.

शेठ बापुभाईने व्यापारादि भली प्रकार चलाकर अच्छा धन और प्रतिष्ठा प्राप्त किया. पूनाकी पींजरापोल पहलेही बनानेमें और उसके निर्वाहके लिये अच्छा प्रबंध करानेमें इन्होंने बहुतही परिश्रम उठाया था, और अंत समयतक उसके ट्रस्टी थे.

उक्त शेठ कपूरचंदके बडे पुत्र शेठ मगनभाईका जन्म संवत १८९३ में हुवाथा. वह पूनाहीमें रहकर सराफी और जवहरातका काम करते थे. मंदिरोंका कारवार जो पहलेसें इनके घरानेमें है, वह अच्छी तरह चल रहा है, और वह पींजरापोलके ट्रस्टी थे. इनके छोटे भाई शेठ माणेकचदका जन्म संवत १८९८ में हुआ था. संवत १९१६ में इनकी दूकान बंबईमें भी स्थापित हुई और दूसरेही वर्ष शेठ माणेकचंद अपनी दूकानपर किल्लीदारीका काम करने लगे. शेठ बापुभाईकी शिक्षासें इस छोटीही अवस्थासें इन्होंने बडे होसलेके साथ धन और मान प्राप्त करना प्रारंभ किया

सन १८७६ में सोलापुरके दुष्कालके समयमें हजारों जानवरोंकी प्राण-रक्षा करनेमें इन्होंने बहुत परिश्रम कर सब कार्यका भार अपने हाथमें लेकर बहुतही अच्छा प्रबंध किया. वणिकबुद्धि, कार्यकुशलता और दीर्घदृष्टीसें जो काम ये हाथमें लेते हैं, उसे आप अच्छी तरह पूरा करनेमें कभी कमी नहीं रखते हैं.

ये दावुद सासून मिल और पायोनीयर मिलकी एजंसी, आढत, जवाहरात, सराफी, इस्टेट, रुई आदिका धंधा सफलतासें करते आये हैं. अपनी मीठी जवान, उद्योग और बुद्धिबलसें इन्होंने अनेक मित्र करलिये. किसीके बीचमें टंटा बखेडा पडता है तो ये मिटा देते हैं.

संवत १९४८ में यहांके श्री गोडीजी पार्श्वनाथजीके जैनमंदिरमें ये मेनेजींग ट्रस्टी हुवे ये मंदिर अव्वल गिना जाता है और वह देवसूर-तप गच्छकी मालकीका है यहांसे बाहरगांवके बहुतसें मंदिरोंको सहायता पहुचती रहती है आप यहांका कार्य बहुत भली प्रकार चला रहे हैं और खातिश्रम करके मंदिरका देवद्रव्य और इस्टेटकी अच्छी उन्नति करते हैं इन्हींके समयमें भगवानके मुकुट आदि आभूषण सुंदर बनवाय गये, मंदिरका हिसाब छपाकर प्रसिद्ध करनेका सुधारा अवश्य ये शेठ अंगीकार करेंगे ऐसी आशा है

सं० १९५२ में जब मुंबईमें प्लेगकी बीमारी हुई तब अगुआ होकर इन्होंने एक चंदा करके पहलेही पहले जैन हॉस्पीटल स्थापन किया और सेक्रेटरी मी० अमरचंद पी० परमारकी स्तुतिपात्र सहायतासे सेग्रेगेशन, हास्पीटल आदिका अच्छा प्रबंध प्लेग कमीटीको भी जोर शोर दे कराकर लाखोंकी नासभाग, छिपछिपी, धर्मभ्रष्ट होने आदिकी आपत्ति दूर करा दिया इनको इस सेवाके उपलक्षमें ता० २१ जुलाइ सन १८९७ को जैनबंधु और कपोलकोमकी ओरसें प्लेगकमीटीके चेअरमेन जनरल डबल्यु गेटेकरके हाथसें माधवबागमें एक महती सभामें मानपत्र दिया गया मान्यवर गवरमेन्टने भी आपको दिसंबर सन १८९८ में रावबहादुरकी उपाधि प्रदान की सं० १९५६ के भीषण दुकालमें जब पंचमहालवाले घरानेके जैन लोग भी अन्नको तरसते थे तो आपने उनकी सहायता अमेरिकन कौंसल मि० विल्डिंग टी० फीके उद्योगसें माल तथा यहांपर फंडद्वारा तथा निजके धनसें बहुत अच्छी तरह की थी

शेठ बापुभाईका स्वर्गवास सवत १९११ में हुवा उनको एक पुत्र और एक पुत्री है पुत्र मी० अबालालका जन्म सं० १९११ में, शेठ माणकचंदके पुत्र मी० नेमचंदका सं० १९३२ में, और शेठ मगनभाईके पुत्र बापुभाईका स० १९५६ में हुवा शेठमगनभाईको दो पुत्री भी हैं शेठ मगनभाईका स्वर्गवास पूनामें स० १९५० के श्रावण सुदि १४ का हुवा

आशा की जाती है कि भविष्यत्में मी० अंबालाल एक अच्छे अर्थशास्त्री और मी० नेमचंद एक नामी जवहरी होंगे मी० अंबालाल जैन कॉन्फरन्सकी इटलीजंस डेप्ट और वॉलंटीयर कमिटीके अध्यक्ष नियत किये गये व जो कार्य उन्होंने कुशलतासे किया

यद्यपि ये पूनानिवासी हो गये हैं, तो भी राह रसम अहमदाबादकी रखकर अपनी पुत्रियोंका विवाह वहांही करते हैं सात पीढीतक इनकी प्रतिष्ठा एक समान चली आई है जैनोंके मुकदमें आदि धर्मकार्यमें ये अच्छा लक्ष देते हैं गुप्त द्रव्यद्वारा गरीब जैन [illegible]ोंको और पुस्तकद्वारा मुनिराज और विद्यालयोंको सदा सहायता करते रहते हैं [illegible]हमदाबादमें इनके पूर्वजोंका बनाया हुआ जैनमंदिर है उसके जीर्णोद्धारके लिये [illegible] कर रहे हैं, और इनके पूना तथा मुंबईके दोनों निवासस्थानमें शोभनीय

घर [illegible] [illegible]नोवर) कॉन्फरन्सकी "मंडप कमिटी" के आप अध्यक्ष नियत किये गये थे [illegible] [illegible]र स्थायी फंडके कार्यमें इन्होंने स्तुतिपात्र मदद दी थी

शेठ माण[illegible] [illegible] नम्र, विचारशील, निराभिमानी, कुटुम्बप्रेमी, भद्रालु, वचनके पूरे, विनयी [illegible] और मित्रोंका सहायता करन, दीनोंकी रक्षा तथा परोपकारमें सदा तत्पर र[illegible]

हम इस कुटुम्बकी सदा [illegible] चाहते हैं !!

रावसाहेब शेठ वसनजी त्रीकमजी मूलजी, जे. पी. मुंबई.

अगले पृष्ठके उपर सुंदर चित्र उन महाशयका है कि जिन्होंने बहुत छोटी उमरसेंही ज्ञानवृद्धि और परोपकार वृत्तीमे अपना दिल लगाना आरंभ किया है.

शेठ वसनजी कच्छके दशा ओसवाल ज्ञातिके जैन गृहस्थ हैं. कच्छमें सूंथरी ग्राम इनकी जन्मभूमि है; परंतु बहुत कालसें ये मुंबईके रहनेवाले हो गये है. इनका जन्म विक्रम संवत १९२२ के द्वीतीय ज्येष्ट वदि ११ के दिन हुवाथा. भाग्यवान पुत्रके उत्पन्न होनेसें पिताका व्यापार बहुत बढ गया. अंतराय कर्मके उदयसें माता इनको चार दिनका छोडके कालका ग्रास बन गई. इनके पिता और पितामह (दादा) शेठ मूलजी देवजीने बडी होशिआरीके साथ इनका पालन किया. जन्मसेही पिताके प्रेममें पूर्ण रीतिसें रहनेसें माताका वियोग मालूम न हुआ. दुर्भाग्यसें ८ वर्षकी उमरमे इनके पिता भी स्वर्गवासी हो गये. वृद्ध पितामहके ऊपर पौत्रकी लालन पालनकी चिंता आपडी. पितामहका इनपर प्यार बढत गया. अभाग्यवश पितामह भी संवत १९३२ में इनको १० वर्षका छोडके देवलोकको प्राप्त हो गये, परंतु जन्मसेही इष्ट वियोगका दुःख सहन करनेका अभ्यास होनेसे दुःखको इन्होंने वश कर लिया. इनका धंधा सत्यवादी, निमकहलाल, और अनुभवी मुनीम शा. लखमसी गोविंदजीके हाथमें होनेसें बहुत अच्छी तरह चलता रहा. शेठ वसनजीने जैनशालामें गुजराती भाषाका और कुछ अंग्रेजीका भी अभ्यास कर लिया. कई श्रीमंतके लडके लाडसें और मातापिताके अभावसें अभिमानी, स्वेच्छाचारी, उद्धत और दुर्व्यसनी बन जाते हैं, वैसा हाल इनके मुनीमके पूर्ण अंकुशसें और निजकी बुद्धिसें न होन पाया, बरन बालक सोदागर बने रहे.

संवत १९३४ की सालमें ज्ञातिनायक शेठ नरसी नाथाके कुलकी कन्या खेतबाईसें इनका लग्न हुवा, और प्रेमाबाई और लीलबाई दो पुत्री उत्पन्न हुई. इनकी प्रथम स्त्रीके कालवश होनेसें उक्त नरसी शेठकी पौत्री रतनबाईसें संवत १९४६ में इनका दूसरा विवाह हुवा. और संवत १९५१ में मेघजी उपनाम काकुभाई नामक पुत्र उत्पन्न हुवा.

शेठ वसनजी अपने रोजगारमें पूरी उन्नति करते रहें. इनके चेहरे और वर्तावसें नम्रता, सादापन, विनय, गुण, शांति, धर्मप्रेम, निराभिमान, सत्यता, शुद्धांतःकरण और नीति स्पष्ट प्रकट होती है. इन गुणोंसें अलंकृत होकर इन्होंने अपनी प्रतिष्ठा अपनी ज्ञातिमेंही नहीं बरन मुंबईके नामी सोदागरोंमें बहुत बढा ली है. हुबली, बारसी, अहमदनगर, खंडवा, धुलीया, आकोला, खानगाम, आकोट, बढवाण आदि नगरोंमें इनकी दुकाने हैं; और सेंकडों मनुष्य इनकी बदोलत उदरपोषण कर रहे हैं. इनके मुनीम गोविंदजी शामजीकी नेकी प्रसंशनीय होनेसें भी शेठ वसनजीको बडा सुविधा रहा. वह मुनीम अब कालवश हो गये.

यह महाशय बडे उदार है, और इस छोटी उमरमें भी आजपर्यंत अनुमान रु. चार लाख सुकृत और धर्मकार्यमें लगा चुके हैं, और आगेके लिये भी धर्मकार्यमें कटिबद्ध है. धर्ममें ऐसें दृढ हैं कि, हुबलीके जैन मंदिरका प्रबंध स्वयं करते हैं, और इनके सुप्रबंधसें बहुत रुपैया भंडारमें जमा होगया है. संवत १९३४ में इनके पिताने सायेरा—कच्छमें जो जैन

मंदिर बनवाया था, उसकी प्रतिष्ठा महोत्सव आपने मुंबईमें संघ ले जाकर बडी धूमधामसे कियाया और रु १२ हजार खरच कर दक्षिणमें पारसी नगरमें एक जैन मंदिर बनवाया है।

संवत १९४९ में ब्राह्मणोंको भोजन कराने न करानेके विषयमें इनकी ज्ञातिमें दो पक्ष पडगयेथे, उस समय शेठ वसनजी पुरानी रीति भांति और प्रणाली अच्छी समझकर ज्ञाति शेठ नरसीनाथाके पक्षमें रहे थे दोनों पक्षके इसमें लाखों रुपये व्यय हो गये इस बातको बहुत बुरी समझके इस रगडेको मिटानेके लिये आप ऐसा उद्यम करने लगे कि दूसरे पक्षके समझदार पुरुष भी इनकी प्रशंसा कर रहे हैं अब झगडा मिट गया

संवत १९५२ में अपनी ज्येष्ठ पुत्रीका लग्न इन्होने बडी धूमधामसे किया उसी सालमें इतनी छोटी उमरमें इनके शुभ गुणों और परोपकार वृत्तीको देखकर ब्रिटिश सरकारने इनको जस्टीस आफ धी पीस (J P) की सुप्रतिष्ठित उपाधि दी इनकी सादगीकी जितनी प्रशंसा की जाय इतनी थोडी है यात्रासे वापस आनेपर मानपत्र देनेकी तयारी देखकर इन्होंने यही कहा कि, जो पैसा आप इस कार्यमें लगावें, वो कोई अच्छा कार्यमें लगावें तो उचित है जनहितमें प्रवृत्तिको प्रवर्त करना मनुष्यमात्रका कर्तव्य है

अपने ज्ञातिभाईओंका श्रेय करनेके लिये यह सदा तत्पर रहते हैं सुना जाता है कि, इनका विचार एक जैन सेनिटेरियम (आरोग्य भवन) बनानेका है

संवत १९५२ में जब हिंदुस्थानभरमें दुर्भिक्ष पडा था, तब इन परोपकारी शेठने दुकालके फंदेमें अच्छी सहायता की, इतनाही नहीं वरन गरीबोंको सस्ते भावसे अनाज बेचनेके लिये, आपने दुकानें खोल दी और खरीद भावसे भी बहुत कम दामोंमें अनाज बिकवाते रहे इसी सालमें जब बंबईमें प्लेगका प्रकोप भयंकर रुपसे फैला हुआ था, लोगोंमें भागाभूगी तथा धरपकड हो रही थी और सरकारी " प्लेग कमिटी " बीमारोंको सरकारी होस्पीटलमें लेजा रहीथी, उस समय आपने ज्ञातिबंधुओंको ऐसी दु खी हालतमें देखकर अपने खरचसे ता २७ मार्च १८९७ को एक "कच्छी दशा ओसवाल जैन हास्पीटल" स्थापन की जिससे रोगी सरकारी होस्पीटलमें जानेके बदले अपनी ज्ञाति होस्पीटलमें जाने लगे जहांपर बहुतसे आरोग्य होगये, और शेठ वसनजीको धन्यवाद देने लगे धनका सदुपयोग एसेही सत्कार्यमें करना उचित है होस्पीटलका प्रबंध एसा उमदा रहा कि, प्लेग कमिटी और समाचार पत्रोंमें बडी प्रशंसा की थी अनुमान ६००० रुपये ...ोने जिनके खरच किये कच्छ मांडवीकी प्लेगमें और सैकडों फंडोमें आपने अच्छा ...िया और प्रत्येक अच्छे कार्यमें सहायक होना आप अपना कर्तव्य समझते हैं

...ादिके प्रत्येक कार्यमें शेठ वसनजी मदद देते है "साक्षर सहायक-प्रभावोत्पक ...ेन है और गरीब विद्यार्थीयोंको, स्कूल फी व दूसरी मदद देते रहते हैं ...
शेठ ... नाथीवास वरजदास मित्र" कहीरेक्टर हैं और हरेक सार्वजनिक
कार्यमें भा... ...मिल होते हैं इनकी उदार वृत्तीसे प्रसन्न होकर ब्रिटिश
सरकारने इनप... । उपाधि प्रदान की
सहायताके । ... ...ी १२५ प्रति इन्होंने मुनिराज और पुस्तकालय आदिको
भेट देनेके लिये खरीदी ...
इम शेठ वसनजीको ध... ... और दशाहित, धर्महित और ज्ञातिहितके
और भी अच्छे कार्य आप सदा कर... भारी अभिलाषा है तथास्तु !!

स्वर्गवासी शेठ तलकचंद माणेकचंद, जे. पी. मुंबई.

शेठ तलकचंद जिनकी सुंदर तस्वीर अगले पृष्टपर है, असलमें सूरतके रहनेवाले थ. डच, फ्रेंच, फिरंगी, इंग्रेज आदिने प्रथम सूरत बंदरमेही आकर अपनी कोठीएं की थी.

इनके पूर्वज शेठ नानाभाई गलालचंद डचोंके सराफ थे. उक्त नानाभाईके पौत्र शेठ माणेकचंदके ये पुत्र थे. इनकी माता बाई विजयकुवर वडीही धर्मात्मा थी. इनका जन्म सं १८९९ के वैशाख सुदि १३ को हुवा था. उनके चार भाई और तीन वहनोमेंसे दो भाई और दो वहन विद्यमान हैं, सो भी अच्छे सुखी हैं.

छोटी उमरसेंही इनको विद्यापर भारी प्रिति थी, और उस समयमें भी इंग्रेजी आपने पढ लिया था. इनका प्रथम विवाह सं० १९१५ मे बाई जीवकोरके साथ हुवाथा. वारह वर्ष पीछे वह कालको प्राप्त हो गई. उनसे एक पुत्र मि० सोभागचंद और एक पुत्री हुई. इनका दूसरा विवाह सं. १९२८ में चदनबाईके साथ हुवा था.

शेठ तलकचंद मुंबईमे आतेही रुई, जवाहरात, शेर और वेंककी हुंडीकी दलाली आदिमें अच्छा धन और मान, प्रतिष्ठा प्राप्त करने लगे. मेसर्स तलकचंद शापुरजीके नामसें धंधा करके इन्होंने लाखों रुपये पैदा किया. मि० शापुरजी एक लायक पारसी महाशय हैं.

पालीताणाके जुलम केसमें, मक्षीजी आदि केसोंमें इन्होने अपने समय और धनका भोग देके जैन धर्मकी अच्छी सेवा कीथी.

बंबईकी " धी जैन एसोसिएशन आफ इडिया " के ये सेक्रेटरी, वाइस प्रेसिडंट और अध्यक्ष भी थे. महुवा रीलीफ फंड, गुजरात फीवर रिलीफ फंड आदिके भी ये अध्यक्ष थे, और बंबईकी प्रत्येक कमेटीमें ये मेम्बर नियत किये जाते थे. जैन पंचायत फडका बीज भी इनहीके उद्योगसें रुपाया; और कई जैन मंदिरके ये टूस्टी भी थे

शेठ तलकचंदने बडी वीरतासें Society for the Prevention of Cruelty towards Animals (प्राणि रक्षक मंडली) की स्थापना करवाके उसके खरचेके लिये लागें लगाकर अच्छा प्रबंध करवाया "लेडी साकरबाई दीनशा पीटीट हॉस्पिटल" के यह टूस्टी थे. बहुतसी कंपनीओंके ये डीरेक्टर थे और मरकंटाईल प्रेस, कुकावाव प्रेस आदिके एजंट थे. वेंक संबंधी कार्यमें इनका अनुभव बहुत ठीक था और अच्छे मनुष्य इनकी सलाहसें चलते थे.

इन्होंने लगभग एक लाख रुपैया धर्मकार्यमें व्यय किया होगा. जैन निराश्रित फंडमें रु. पांच हजार दिए थे और सूरतमें अपनी वाडीमें एक जैन मंदिर बनवाया. श्री पालीताणामें एक जैन लायब्रेरी और मुंबईमें अपनी धर्मपत्नीके नामसें " चंदनबाई कन्याशाला " स्थापन की; जैन विद्यार्थीओंको स्कॉलरशीप देते थे और कुलीन गरीब जैन कुटुंबोकी गुप्त सहायता भी करते थे. ये मुंबईके जस्टीस आफ धी पीस थे. लगभग पचीस लाख रुपैया इन्होंने प्राप्त किया और धर्मकार्यमें अच्छा धन व्यय करनेके कांक्षी थे. परंतु दैवकी गति विचित्र है नया विल करते करतेही आप ता. १२ फरवरी सन १८९७ को प्लेगसें चोपाटीके अपने बंगलेमें स्वर्गवासी हो गये. मरण समय इनका वय ५६ वर्षका था. इनको दूसरी स्त्रीसें नानाभाई और रतनचंद २ पुत्र और ३ पुत्री हुई. मी. शापुरजीकी संभालमें ये पुत्र अच्छा विद्याभ्यास कर रहेहैं, और मी. नानाभाई इस छोटी उमरसें भी धर्मकार्यमें अच्छा लक्ष देने लगे हैं.

ऐसे धर्मात्मा पुरुषको धन्य है, इनकी आत्माको शांति हो! यह हमारी प्रार्थना है!!!

स्व० मी वीरचंद राघवजी गाधी, बी ए, एम आर ए. एस.

इन वीर पुरुषका जन्म महुवा–काठीआवाडमें ता २५ अगस्त सन १८६४ ई को हुव था इनके पिता बडे धर्मात्मा थे इन्होंने भावनगरमें सन १८८० में पोहेल नंबर "मेट्रिकुलेशन" में पास होकर सर जसवंतसिंहजी स्कालरशिप प्राप्त की, ये एल्फिन्स्टन कॉलेजमें बी ए पास करके सरकारी स्कालरशीपके भी भागी बने

सन १८८५ में जैन एसोसिएशन ऑफ इंडियाके ये सेक्रेटरी हुवे सरकारी सोलीसीटरके यहां ये आरटीकल्ड कलार्क हुवे इन्होंने पालीताणा मुंडका कसमें और मक्सीजी कसमें भी अच्छा मदद दी थी

सन १८९१ में समेतसीखरके तीर्थपर चरबीके कारखानेके मुकदमेकी अपीलमें युक्तिके साथ रायबहादूर बद्रीदासजीको सहायता देकर जीत लिया

सन १८९३ में चीकागो–अमेरिकामें जब विश्व प्रदर्शनी हुअयी और वहांकी धर्मसभा (World's Parliament of Religeons) में श्रीमद् आत्मारामजीको निमंत्रण आया तब जैन धर्मके प्रतिनीधि होकर आप चिकागो गये और अध्यक्ष डा० बॅरोझ आदिकी ओरसे अच्छा मान पाया धर्मसमाजमें जैनधर्मपर एक सार गर्भित व्याख्यान दिया अमेरिकामें दो वर्ष रहकर बोस्टन, वॉशींगटन, न्युयोर्क रोचेस्टर, क्लीवलॅंड, कसाडेगा, बटेवीया, आदि नगरोंमें फिरकर आपने ५३५ भाषण दिये किसी २ भाषणमें दस २ हजार मनुष्य एकत्र हो जाते थे कई जगह जैन धर्मके अभ्यासके लिये क्लास खोले गये चिकागो और कसाडेगासमाजकी ओरसे इनको पदक दिये गये थे वॉशींगटनमें "गांधी फीलासोफीकल सोसायटी" इन्होंने स्थापित की जिसके अध्यक्ष वहांके पोस्टमास्टर जनरल मी जोसफ स्टुअर्ट हुए इनके उपदेशसे हजारों मनुष्य मांसाहार त्यागी (वजीटेरीयन) हो गये, कई लोग ब्रह्मचर्यव्रत पालने और नवकार मंत्रका ध्यान धरने लगे

सन १८९५ में साऊथ प्लेस चापल और रोयल एशियाटिक सोसायटीमें इन्होंने लंडनमें सोर्टरेके अध्यक्षपणेम भाषण दिये, और ये सोसायटीके मेंबर नियत हुवे फ्रांस, जर्मनी होते हुए, आप जुलाइ मासमें मुंबई आये विलायतादि विदेशमें ये शुद्ध आहार लेते रहे हजारों विद्वानोंके साथ परिचय करके बडा अनुभव कियाथा बंबईमें पीछा आनपर एक बडे वीर पुरुषके समान इनका आदर हुआ जैनोंकी ओरसे सेठ प्रेमचंद रायचंदके सभापतित्वमें एक भारी सभामें ता २०–७–९६ को एक "मानपत्र" दिया गया था

यहां आनेपर इन्होंने सोलीसीटरका अभ्यास पीछा आरंभ किया था परंतु अमरिकनोंने इनको वापस बुलाया सो जैनभाईयोंकी ओरसे अच्छा सत्कार और विदाई पाकर व अपनी ... पुत्र मोहनको साथ लेकर गये पंडित फतहचंद लालन भी इनका सदनमें जा मिले

... सन १८९८ में ये वापस आये स्व० मी जस्टीस महादेव गोविंद रानाडेके

सभापति ... गीनेसरको इनको मानपत्र दिया गया दूसरी दिन आप अमरिकाको

प्रयाण कर ... दुर्भिक्ष पीडित भारतके फोर्स पर दण्ड इस तरफ यहांके भारतोंको भेजना

करके आपने ... स्थानको भिजवाई थी हिंदकी स्त्रियोंको शिक्षा सिखानेकी

और भी इन्होंने बहा ... आरंभ किया था आपने कई पुस्तकें भी बनवाये हैं

आप वारीष्टरकी प ... सन १९०१ में मुंबई पधारे आपकी बीमार हो

गये और इन्द्र भेषा पाना, ... था और समग्र जैन समुदायका भाक्यागरमें

डुबा गये हाय ! धन्य है प वीरत्न ... सदा अमर हैं !]

मी० अमरचंद पी० परमार. (सिरोही–सूरत–मुंबई.)

इनका जन्म स. १९२० के महा सुदी ८ को हुवा था. ये मूल इलाके सिरोहीके झाडोली ग्रामके रहनेवाले है इनके पूर्वज उदेपुरसे आये थे और ये दसा ओसवाल वालफेना (बाफणा) परमार गोत्रके है. सर्पके फनसे वालकका रक्षण हुवाजिससे वाफणा कहलाये. कि इस गोत्रमें सर्पके काटनेसे कोई नही मरा.

मी. अमरचदके परदादा शा. वजाजी राजाजीको चार पुत्र शा. पन्नाजी, ठाकरसी, दुर्लभजी ,रणछोडजी और देवजी हुए. शा. पन्नाजी और रणछोडजीका परिवार सूरतजिल्हेमें है और ठाकरसीका नाणा, मारवाडमें है. शा. दुर्लभजीके पाच पुत्र शा. डाह्याभाई, परागजी, पदमाजी, गोविदजी और हीराचद थे. उनमेंसे तीन भाईयोंके कुटुंबमें हरजी, पानाचद, रामचद, भगवान, उमेदचद, पुनमचद, माणेकचद, मगन, दलीचद आदि विद्यमान है.

पदमाजीको झवेरचद, नरसई, मूलचद, अमरचद, गुलाबचद ये पुत्र और रामकोर और ककुबाई नामक पुत्री हुई थी. उनमेंसे झवेरचद, अमरचद और वाई रामकोर विद्यमान है. झवेरचदके तीन पुत्र धनराज, रायचद और तलकचद तथा तीन पुत्री है.

मी. अमरचदके दादाने मारवाडसे आकर सूरतके पास वडोद, भेस्तान आदि ग्रामोंमें निवास करके अच्छा धन प्राप्त किया था. इनके पिता वहुतही भोले स्वभावके थे इसालिये उनके दूसरे भाईओंने उनको घरसें कुछ भी दिये विना निकाल दिये थे, और उनको फेरी आदिसे अपना निर्वाह करना पडाथा. एकवार ऐसा भी कठिन समय इनपर आ पडा था कि एक पुत्रके जन्मके समय खर्चेके रुपयेके लिये उनको घर घर फिरना पडाथा. परतु ईश्वर कृपासे फिर उनकी स्थिति अच्छी होगई थी उनके भाई झवेरचदने पिताको अच्छी मदद देकर उनके धधेको ठीक जमा दिया था और लघुभाईको पिताकी इच्छानुसार सूरतमें जाकर पढाना आरभ किया था. वडोद–गुजरातके रहनेवाले स्व० दलपतराम नथुराम व्यास इनके वालस्नेही थे, दोनों एकही साथ पढते थे. दोनोंमें ऐसी गाढी मित्रता थी कि साधारणत: ऐसा स्नेह देखनेमें आताही नही है. वह मित्ररत्न सन १८९९ में इन्हींके मकानपर कालवश हुए, जिसका इनको पूरा रज रहा

इनकी वहन रामकोर छोटी अवस्थाहींसे विधवा होगई थी, परतु उसी समयसे उन्होंने धर्मविद्याका अभ्यास कर धर्मकार्यमें रुचि लगाई और समय २ पर भीड पडनेके समय अपने भाईयोंको अभीतक मदद करती रही मी अमरचद दस वर्षकी अवस्थामें प्रथम गोपीपुरा ब्राच स्कूलमें भरती हुए और चढते नबर पास होकर पारितोषिक और मास्टरोंकी कृपा सपादन करते रहें. पढनेमे इनका ऐसा अनुराग था कि एक समय इनके भाई किसी सबधीके विवाहमें जानेके लिये छुट्टी लेनेको मास्टरके पास जाने लगे परतु इस बातकी इनको खबर मिलतेही इन्होंने अपने मास्टरसे खानगीमें कह दिया कि मेरी छुट्टी स्वीकार मत करना. हुनरका इनको बहुत अनुराग था, इसलिये इसी छोटी वयमें पुस्तकोंकी जिल्द बाधनी, सा[illegible]न बोर्ड लिखना, ऊन और रेशमके बढिया फूल–वृक्ष बनाना, एनग्रेविंग, ड्राइग, प्लास्टर, घडी बनाना आदि कई काम देख २ कर सीखलिये थे, और स्कूलके साथी इनको वहुत चाहते थे. ये गरीबी और बहुत सादगीसे पढते रहे, यहातक कि पढनेकी पुस्तकें भी उधार लेकर अपना काम चलाते थे. थोडा विद्याभ्यास होजानेपर इन्होंने एक रात्रिशाला खोली और दूसरे लडकोंको खानगीमें पढाकर अपने खरचेका बोझा पितापर नहीं पडने दिया. इनके मातापिताको सुख भोगनेका समय नहीं आया. सोला बरसकी उमरमें इनकी माताका स्वर्गवास होगया और वादमें इनके पिता भी इस ससारको छोड गये

सन १८८२ में सूरत हायस्कूलसें इन्होने मट्रीक्युलेशनकी परिक्षा पास की. मेसर्स पाठक, मोदक, वाडीआ आदि मास्टरोंकी पूरी प्रीति सपादान की थी. स्कूलमें कृषिशास्त्रका भी अभ्यास करलिया. छोटी उमरसें इनको हिंदुस्तानी कवित्त याद करने और नये वनानेका बडा भारी प्रेम था. स्कूलके प्राईज-एक्झीविशनमे सारा हॉल गुजा देते थे, इन्होंने सूरतके डीस्ट्रीक्ट जज (बादमें होईकोर्टके जज और कौंसलर) ऑन० डा. वर्डवुडकी और मुबईके ना. गवर्नर सर जेम्स फरग्युसनकी शीघ्र कवितासे विशेष कृपा प्राप्त की थी

केवल इनके विद्याभ्याससे प्रसन्न होकर सर्वोनके एक सद्गृहस्थ श्रेष्ठ मानाजीने कार्योंमें विशेष ध्यान देने पर भी अपना पुत्री केसरबाईका विवाह स० १९३४ में इनस करादिया तदनंतर ये बडोदा कालेजमें भरती हुए, बादमें प्रीविअसकी परीक्षा देकर इनको अपने साहबकी आज्ञानुसार उनके दूसरे विवाहका मन करनेके लिये पहला प्रथम सिरोहा जाना पडा व प्रथम रु० ४ महावारके नोकर हुवे अपने बुद्धिबल और कार्यकुशलतासे इन्होंने सिरोही दरबारकी पूरी कृपा प्राप्त की महकमे महालमें नोकरी करके पो० एजंट कर्नल पाउलेट साहबके पास ये सिरोहीके एजंसी वकील मुकरर हुए जोधपुर, आबु, जेसलमेर आदिके दौरेमें इन्होंने एजंट, दरबार आदिकी अच्छी कृपा संपादन की सन १८८९ में सफल कर्नल पाउलेट साहबने इनको घाणेरावके ठाकुरके टयुटर मुकरर किये इन्होंने मेवा कालेजमें कर्नल लाक साहबसे अच्छी कृपा पाइ और राजकुमारोंसे मेलजोल पैदा किया इसके बाद जोधपुरके महाराजाधिराज कर्नल सर प्रतापसिंहजीके पास रहकर इन्होंने अच्छा नाम पाया और उनकी पूरा कृपा प्राप्त की उनके आर श्री जोधपुर दरबारके विश्वाससे आनेपर मुंबईमें उनके सम्मानार्थ बडी सभाका प्रबंध करके मानपत्र दिये थ रायबहादुर मुनशी हरदयालसिंहजी इनको एक उच्च प्रेमपात्र गिनते थे व जोधपुरमें कइ बार इनको अच्छे पद भी देने लगे थे परंतु घाणेरावके ठाकुरके नाराजी लेनाजी नरसागाजी उनके साथमें इन्होंने सन १८८९ में "धी इंडीयन एंड फारन एजेंसी कंपनी" खोली जो विलायती माल और रजवाडोंका काम करके अच्छी तरह चल निकली.

बाद इनके सयोगसे "धी रीपन प्रींटींग प्रेस कं० ली०" स्थापित हुए बहुतसे धार अपने मित्र सम्मिलित किये, परंतु देखरेखकी कमी, और एजंट डीरेक्टरोंके कुसपसे वह टूटगइ, जिससे इनको बडा खेद हुआ और नुकसानभी पूरा हुआ.

मुंबईमें आनेके बाद ये धर्मसभा और सभा आदि कामोंमें व्यस्त रहने लगे और हरेक धर्मकार्यमें अगुआ बनते हैं इनकी वक्तृत्व और शीघ्र कविता बनानेकी शक्ति प्रसिद्ध है नेशनल कोंग्रेसमें, प्रोवीन्स्यल कॉन्फरन्स आदि सभाओंमें ये बहुधा हिंदी कविता सुनाते हैं जैन युनीयन क्लब, हेमचन्द्राचार्य अभ्यास वर्ग, मेवाड मंदिर जीर्णोद्धार सभा, मुंबईकी जैन प्लेग हॉसपीटल, एन्टार्कीसारान साहबकी और कइ कमीटीयोंके ये सेक्रेटरी, और जैन तथा दूसरी सभाके मेंबर रहे हैं, और सन १९ २ में "गुजरात फेमिन रिलीफ फंड" का प्रबंध सक्रेटरी बनके इन्होंने बहुत सफलतासे चलाके सुवर्णपदक (चांद) प्राप्त किया है. जैन कॉन्फ्रेंसमें और हॉसपीटलके संबंधी इन्होंने बहुत परिश्रम उठाया था. गुरु अध्यक्षता पद्ये ये एडीटर थे और परमार्थध्यनीक समुद्री उनको याद करते हैं मुंबई समाचार और जैन पत्रोंके ये लेखक हैं, तथा भाभलव, आत्मारामजी चरित्र, अमरकाव्य जैन तीर्थोंकी नियमावली आदि कई पुस्तक भी इन्होंने लिखी हैं श्री वीरचंद गांधीके साथ अमेरिका जानेकी इनकी भी तैयारी हुई थी परंतु सांसारिक गिरास हुए थे.

सन १८९९ में इनकी धर्मपत्नि जा पढी लिखी और धर्मिष्ठ थी कालवश होगई जिसमें इनको दो पुत्र और दो पुत्री हुए थे परंतु अभी एकही पुत्री हीरालक्ष्मी है. इनका दूसरा विवाह सिरोहीमें हुआ.

इन्होंने मद्रास कलकत्ता, दक्षिण, आगरा, उत्तर हिंदुस्तान, पंजाब काश्मीर कांगडा, हिमालय, [illegible] आदि प्रदेशोंमें बहुत मुसाफरी की है और राजपुरुषों तथा बुद्धिमानोंसे हजारोंही मित्र इनके बनावे हैं.

[illegible] तरहकी आशाएं आनेसे तत्वनिर्णयप्रासाद ग्रंथ इसके प्रसिद्ध हो सका परंतु इन [illegible] इन्होंने बडा परिश्रम किया है, और ग्रंथकी एक अच्छी प्रस्तावना लिखी है [illegible] ग्रंथ है और इनका अनुमान हरेक ग्रामभी इनका यश हुआ है, कि वैसाही [illegible] पता चलती है परंतु प्रायश इनकी तरफ कुछ देरी सवारीसे देख रहा है [illegible] में हमारी जैन (श्वेतांबर) कॉन्फरन्स जो भरी गई उसकी [illegible] सेक्रेटरी मुकरर हुए थे कॉन्फरन्सका काम करती अपनी [illegible] की रिपोर्टसे जाहर होता है. प्रेसिडेंट [illegible] पूरे प्रेमपूर्वक बन [illegible] और ९०० मेंबरोंकी कोन्फ्रेंसमें [illegible] कार्य, [illegible] चाहते हैं कि ये धर्मकार्यमें सदा कटिबद्ध रहे [illegible] (- हर, प्रीतरम.) — एक सच्चा मित्र मित्र.

वटिन प

सन १

लिखेस, देख, दर [illegible]

ताह इन्होंने बनाया [illegible]

बडी [illegible] राजाओंके [illegible]

प्रेम, और [illegible] सरदार [illegible]

समय—भाग प्रमाण.

तत्वनिर्णयप्रासादग्रंथके प्रथम सहायक ग्राहकोंके नाम.

गुजरांवाला—पंजाब

लाला नानकचद दोलतराम ... ५
लाला रामेशाह चेतराम ... ४
लाला करमचद मथुरादास ... २
लाला भवानीयामल्ल ठाकरदास ... २
लाला गणामल्ल जगन्नाथ ... २
लाला मेलुमल्ल भागुमल्ल ... १
लाला जयदयाल लभुराम ... १
लाला हुकमचद फगुमल्ल ... १
लाला कहानचद हरीचद ... १
लाला इश्वरदास दीवानचद ... १
श्री मुनि आत्मारामजी जैनगायनसभा
हा. लाला कहानचद प्रभयाआल १
लाला बेलीराम चुनीलाल ... १
लाला मुलराज कालुमल्ल ... १
लाला गणेशदास जवींदामल्ल ... १
लाला गडामल्ल माणेकचद ... १
लाला गडामल्ल तीर्थराम ... १

रामनगर-पंजाब.

लाला अर्जुनमल्ल भीमामल्ल ... २
लाला हेमराज हरदयाल ... २

रावलपींडी—पंजाब.

श्री जैनधर्म भास्कर सभा हा
लाला उत्तमचद पींडीदास ... ५
बाबु हरभगवानदास ... १

जंबु—पंजाब.

लाला देशराज हेमराज ... १
लाला रामचद जमीतराय ... १
लाला हेमराज जीवणमल्ल... ... १
लाला बधावामल्ल बोधामल्ल ... १

हुशीआरपुर—पंजाब.

लाला गुज्जरमल मेहरचद दौलामल्ल ४
भक्तजी नथ्थुमल्ल फतुमल्ल सुदरदास २
लाला गोकलमल्ल मवारमल्ल मेहेरचद २
लाला मानामल्ल सुदरदास ... १
लाला नथ्थुमल्ल कान्मामल्ल... ... १

लाला छज्जुमल्ल गुजरमल्ल ... १
लाला विल्लुमल हुकमचद... ... १
लाला वसतामल्ल मेहरचद ... १
लाला श्रावणमल्ल गारामल्ल ... १
लाला पालामल्ल अमरनाथ ... १
लाला जसवतराय फेरुमल्ल, टाडा १
लाला रुपलाल भावडा—गडदीवाला १
लाला रामचद खरायतीराम,
मीआणी १

जीरा—पंजाब.

लाला राधामल्ल इश्वरदास ... २
लाला लालुमल्ल मेलामल्ल १
लाला जयदयाल लभुराम ... १
लाला दयाराम प्रभुदयाल ... १
लाला वशाखिमल्ल हरदयाल ... १
लाला टेकचद दीनानाथ १
लाला सुदरमल्ल देवीदीयाल ... १
लाला कीरपाराम माधीराम ... १
लाला मताबमल्ल शिव्वुमल्ल ... १
लाला कीरपाराम खुशीराम ... १
लाला मामराज गणपतराम ... १
लाला गुलाबमल्ल गडामल्ल ... १
लाला मिलखीराम वशवरदास ... १

शहर अंबाला—पंजाब.

लाला नानकचद गोंदामल्ल ... २
लाला गगाराम बनारसीदास ... २
लाला वसतामल्ल उत्तमचद ... २
लाला वजीरमल्ल भक्त १
लाला पन्नालाल शीढोरेवाला ... १
लाला शिव्वुमल्ल भाबडा १
लाला जकतुमल्ल सदाराम ... १
लाला जातिमल्ल सुबामल अग्रवाल १

अमृतसर—पंजाब.

लाला फगुमल्ल महाराजमल्ल ... ५
लाला राधाकिसन पन्नालाल ... ५
लाला मूलचद मोतीराम १
लाला दित्तामल्ल चनीलाल ... १

लुधीआना-पंजाब.

लाला घोलमल्ल गोपीमल्ल ४
लाला शिव्वुमल्ल सादीराम हुकमचद २
लाला प्रभदियाल सभुमल्ल ... २
लाला नदलाल मिलखीमल्ल ... १
लाला श्रावनमल्ल गोपीमल्ल ... १
लाला राधामल्ल गणपतमल्ल ... १
लाला रामदित्तामल्ल क्षत्री १
लाला विहारीमल्ल माधीराम ... १

नारोवाल—पंजाब.

लाला रुलदुमल्ल जगन्नाथ... ... ४
जीवणमामा फगुहजारी १
लाला ठाकरदास खरायतीमल्ल ... १
लाला मथुरदास गुरादत्ता उत्तमचद १
लाला पालामल्ल पजुमल्ल १

जडीआला—पंजाब.

श्री सघ जडीआला ज्ञानखाता ...१५

शनखतरा—पंजाब.

लाला गोपीनाथ अनतराम ... १
लाला प्रेमचद नीकोदरीयामल्ल ... २
लाला ताराचंद बेलीराम २
लाला नहालचंद रामलाल टाडेवाले १

मालेर कोटला-पंजाब.

श्री भडारजी १
लाला बस्तीराम शिवचद ... १
लाला गैंडेराय भगवानदास ... १
लाला देवीचद रामप्रसाद ... १
लाला भगतराय दिलाराम ... १
लाला मुनसीराम पन्नालाल ... १
पूज्य मोहनरिषजी १
लाला भगतराम मुनसीमल्ल ... १
लाला अनंतराम उमरावचंद ... १
लाला फग्गुमल्ल पूरनचंद... ... १
लाला सरमामल्ल कैंथलीमल्ल ... १
लाला प्रद्युमन मेहेरचद १

मुतफरकात—पंजाब.

लाला हीरालाल फग्गुमल्ल, लाहोर २
लाला रामरतन हरनाममल्ल, शंकर
जिल्हा जलधर... ... ... १

सुराजी मयाचंद मापि केशर मापि
मकंमर ... १
लाला बनारसीराम वेणीलाल, माना ... १

खंभात–गुजरात

श्री खंभात जैनशाळा ... ४
शा अमरचंद प्रेमचंद ... ४
शा. पोपटचंद मुळचंद दीपचंद ... १
शा हीरचंद पानाचंद ... १
शा. सारामाइ सोमचंद ... १
शा छगनलाल सुरचंद ... १
गांधी गुलाबचंद कालीदास ... १
शा. बापुलाल सुरचंद ... १

पालणपुर–गुजरात.

रा. रा मेताजी मंगळजी इश्वरभाइ ... २
पारीख अमुलखभाइ सुरचंद ... २
रा. रा मेता माणेकचंद अमेरचंद ... १
रा. रा मेता वाहाल कसजी ... १
शा. मोतीभाई कचरा ... १
पारीख मनसुखलाल पानाचंद ... १
शेठ गांधी महालचंद रायचंद ... १

सुरत–गुजरात

शेठ मगनलाल मलुकचंद ... ५
शा कपुरचंद लालभाइ ... १
शा पुनमचंद धीरचंद ... १
शा. प्रेमचंद अभेचंद ... १
शेठ नानचंद रायचंद ... १

मुंबई

शेठ लालचंद माणेकचंद ... ५१
बाबु पनालाल पुनमचंद ... १५
शेठ देवजी नरसंग ... १५
शेठ बापसी परवत ... १
शेठ फकीरचंद प्रेमचंद ... १
झवेरी धर्मचंद उदयचंद ... ५
शेठ जमनाभाई भगुभाइ ... ५
शेठ मनसुखभाई भगुभाइ ... ५
शेठ श्रीमोहनदास पुरुषोत्तम ... १
शा मोतीचंद नथमल ... १
शा वीरचंद कायाचंद ... १
शा मनरूपलाल मळतचंद ... १
शा दुर्गादासदास मुळचंद ... १
शा कलमचंद नरसीमजी ... १
शा. जेठाभाई कल्याणजी ... १

माणसा—गुजरात

शा हाथीभाइ मुळचंद सराफ ... ५

मांडल—गुजरात

बोरा भायचंद सोमाचंद ... १
शा अभेराज उमरजी ... १

मुजफ्फराबाद

शेठ गाभजी हीरजी–लश्कर ... ४
श्री हरजी जैनशाळा–बोरसद ... १
शेठ मनीलाल वनमालीदास–सुरत ... ४
शेठ मनोरदास डुंगरजी–पाटन ... १
लाला सुखदयाल ... –दीलवा ... १
लाला जवाहिरलाल मोतीलाल–दीवे-
हराबाद ... १
शेठ नाथीलाल मानलाल अबीरपुर-
सीतापुर ... १
शेठ मोतीलाल नाथरचंद पानपूर ... १
मेता हीरचंद पुनमचंद–... ... १
झवेरी बालूभाइ छोटालाल–पाटण ... १
महेता शांतिलाल केशवभाई–सामर ... १
शा हीरालाल श्रीमोहनदास–रंगुन ... १
शा गोरधनदास पीतांबरदास
बंधुमर ... १
शा पुनमचंद रामाजी–अहमदपूर ... १
मुनिराज अमरविजयजी मुनिराज
विजयजी पाठशाला–पुस्तकालय
हा. बालजी सुखाल त्रीलोकचंद ... १
मुनि महाराज वृद्धिचंदजी पुस्तका
लय हा. शा पुनमचंद
मोतीभाई महेता–भावनगर ... १

प्रथम ग्राहकोंके नाम

मुंबई.

... ... १
... ... ५
शेठ २
शेठ चतुर्भुज ... २
श्री मोदीजी ...
शेठ हीराचंद माणेकचंद
शेठ मोहनलाल ...
शेठ मुरलीधर मेघजी ...
शेठ केशवजी भीमजी ... १
शेठ त्रिकमजी केशवजी ... १
शेठ १
शेठ धनजी चतुर्भुज ... १
शेठ सागरचंद गुमानचंद ... १
शेठ रायचंद केसरीचंद ... १
झवेरी बालचंद कालीदास ... १
शेठ रायचंद मगनचंद ... १
शेठ रतनचंद मगनलाल ... १
... गरबड ... १
... ... १
... ... १
... ... १
... ... १
शा १
शेठ हीरजी देवराज ... १
मुनीम मगनलाल जमनादास ... १
शा छगनभाई गुलाबचंद ... १
झवेरी मोतीलाल लालभाइ ... १
झवेरी मोहनलाल लल्लुभाई ... १
मुनिम केशवलाल १
शेठ हरचंद १
श्री १
श्री देवचंद अमरचंद ... १
शेठ अभेचंद गुलाबचंद ... १

अमदावाद—गुजरात

शेठ १

शेठ बालाभाइ मुलचंद वखतचंद... ४
शेठ केशवलाल चुनीलाल ... १
डाक्टर जमनादास प्रेमचंद .. १
शेठ केशवलाल परशोत्तम .. १
श्री. मोहनलाल मगनलाल... ... १
शा. प्रेमचंद परशोत्तमदास . १
सोदागर फुलचंद हेमचंद... ... १
शा. हरजचंद रायचंद .. १
श्री मोतीलाल दोलतराम... .. १
शा परशोत्तमदास जेठाभाइ ... १
शा गीरधरलाल हीराभाइ... ... १
शा शाकलचंद १
शा. त्रिकमभाइ आलमचंद ... १
शा मनसुखराम नाहानचंद ... १
शा. हीराचंद ककलभाइ ... १

सुरत—गुजरात.

सुरत जैन विद्याशाला ... २
झवेरी मोतीचंद रुपचंद .. १
श्री नेमीश्वर पुस्तकालय . . १
शा. गेलाभाइ वखतचंद ... १

भरुच—गुजरात

शा अनुपचंद मलुकचंद ... १
शा. दलपत दुलभ... ... १
शा धोलदास लालजी १
शा. मगनलाल मेलापचंद. १
शा माणेकचंद परभुदास १
शा लखमीचंद मेलापचंद. १
शा नगीनदास वमलचंद १
शा नगीनदास उदेचंद .. १
शा. बापुभाइ अमरचंद .. १
शा. गुलाबचंद हरीभाइ १
शा लखमीचंद मोहनलाल .. . १
शा. मोहनलाल नेमचंद १
शा. मगनलाल धमलचंद .. १
शा. गुलाबचंद केशवजी ... १
शा. अमरचंद देवचंद १
शा रुपचंद जवेरचंद १
शा रतनचंद मगमैलाल १
शा खुबचंद कशळचंद १
शा. चुनीलाल परशोत्तम १
शा मोथा वखतचंद १

पादरा—वडोदरा—गुजरात.

आचार्य श्री आत्मारामजी जैनशाला १
शा. ललुभाइ शीवजी... ... ... १

शा. देवचंद गगनभाइ १
शा. नगजदास मीनचंद १
शा. बापुभाइ हीमचंद १
शा दीपचंद पीताम्बरदास ... १
शा छगनलाल हीमचंद १
शा मोहनलाल हीमचंद १
शा. अमरतलाल वनमालीदास ... १
शा. अमरलाल भाटचंद १
शा हरगोवनदास भाइचंद .. १
शा भीभोवनदास बापुभाइ... १
शा ललुभाइ वीरचंद १
शा ललुभाइ शाकरचंद १
शा वरजलाल शाकरचंद... . . १
शा कालीदास सुरचंद १
शा कालीदास मुळचंद १
शा पानाचंद नानचंद १
शा शिवलाल सोभागचंद... १
शा मुलचंद जयचंद १
शा छोटालाल नाहालचंद... . १
शा जेयचंद पुजाभाइ १
शा गीरधरभाइ वीरचंद १
डाक्टर सैयद आदम . १
वकील नंदलाल ललुभाइ ... १
तपशीजी उत्तमचंद धनजी... ... १
शा हीराचंद नथुभाइ १

पालणपूर—गुजरात.

पारीख नगीनदास ललुभाई २
दोशी गगल ऊमेदचंद ... १
रा रा कोठारी शोभागचंद वेलचंद १
रा मेता चेला हीराचंद ... १
रा मेता गोदड परथीराज . १
पारीख मोकमभाइ लवजीभाइ ... १

राधनपुर—गुजरात.

शा. कुवरजी धनजी १
शा भुदर वछराज १
शा कमलशी गुलाबचंद (खास) १

एडन—अरेबीआ.

शेठ मेगजी चांपशी भणशाली ... १
,, प्रेमजी हरजीवन महेता ... १
,, प्रागजी अदरजी १
,, ठाकरशी प्रेमजी भणशाली... १
,, माणेकचंद लालजी महेता ... १

पुना—दक्षिण.

शेठ गगलभाइ हाथीभाइ ... ५

शा. माणेकचंद नानचंद १
श्री जैन पाठशाला—तलेगाम ... १
शा शामचंद केवलचंद—तलेगाम... १

अहमदनगर—दक्षिण.

शा पुनमचंद नवलमल १
शा. अभेचंद रायचंद १
शा वहालचंद अमुलख १

भावनगर—काठिआवाड.

जैनधर्मप्रसारक सभा १००
मेसर्स. आर एम. पी. की कुंपनी १
रा. रा माधवजी पदमशी १
भावनगर देवकरण नथुभाइ ... १
भावनगर जैनसभा १

वलसाड—गुजरात.

शा. पुनमचंद केसुरजी २
शेट रायचंद मोटाजी १

साणंद—गुजरात.

श्री जैन बोध बुद्धि प्रकाश सभा ... १
महेता देवकरणभाइ अदेकरण ... १
महेता चुनीलाल कालीदास ... १

माणसा—गुजरात.

श्री माणसा ज्ञानखाता हा शा. हाथीभाई मुलचंद १
शा. वीरचंद कृष्णाजी . . . १
शा नथुभाइ वहेचरदास १

पेथापुर—गुजरात.

वकील डाह्याभाई हकमचंद ... १
शा नहालचंद सागरदास ... १

मांडल—गुजरात.

शा. मगनलाल परशोत्तम ... १

शादरा—गुजरात.

वकील छोटालाल ललुभाइ ... १
मी रणछोडलाल छगनलाल ... १
वकील फतेहचंद रामचंद ... १

जलालपोर—गुजरात.

शा. पेमा लालाजी १
शा माधाजी कशामाजी—भाट ... २

कलकत्ता.

राय बद्रीदास बहादूर काली कोल कार्तीसजी १०
शा. जेठाभाई जेचंद १

आग्रा—हिंदुस्तान.

लाला रामलाल छोटेलाल जौहरी ५
शेठ चुनीलालजी खजानची ... ३

धुलीआ-दक्षिण-खानदेश

शा सखाराम दुल्लभदास १
शा धीवजी मेगजी ... १

दोसा—गुजरात

शा सोमचंद पानाचंद ... १
शेठ रतनजी हरगोवनदास १

गामअ—गुजरात

शा धीमलाल रणछोड ... १
शा हरगोवनदास अमथाभाई १

दिल्ली

लाला केसरीचंद बालमुकुंद २
शा खूबचंद लखमीराम जवेरी १
शा. अमरदास छगनचंद १

जीयागंज

महाराज बाहादुर सिंघराय धन पतसिंघजी बाहादुर ५
बाबु इंद्रचंद नाहटा १

पेटलाद—गुजरात

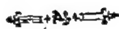
श्री जैन विद्याशाला ... १
शा. मोतीचंद पुंजाचंद १
शा चुनीलाल फतेचंद १

मुलफरकात

शा नथमलजी धनराज, अजमेर ५
शा हरजीभाई दीपचंद, मोरच ५
श्री जैन पाठशाला उदेपुर ४
मी. करमचंद गुलाबचंद दढा, जेपुर ४
शा मेहेरचंद कीरदास, आसोल २
शा धारसीचंद मानचंद मोरबाड २
श्री ज्ञानभंडार बडवाण १
सेठजी नथमलजी छगनचंदजी पाली ... २
सराफ भवानीराम रतनलालजी सिकंदराबाद २
दोसी जवेर हीराचंद जैनविद्याशाला, धोलेरा १
सेठ मगन चतुर धोलपुर १
शा. मोती पदमाजी बेगाम १
शा. मोती नरमाणजी योग्रम १
शा हीराजी मनरूपजी, अंघाव १
शा पराग वनजी वस कामरेज १
शा. केसुरजी पानाजी पदीसा १
शा. प्रेमचंद कल्याणचंद, उमरगाम १

मुलफरकात

शा पेमच ... जी, कलकत्ता ...
शा मारा ... ...
शा. मोतीजी ... ...
शा पदमजी ... ...
शेठ भगाराम पुरुषोत्तम ... महुवा ...
श्री धाकणा जैन बाला, ...
शा. बालचंद हेमचंद, पाटण, ...
बाई रतन हरपे नथी ... बाबुलाल चीमन, ...
शा. पानाचंद कीशोरदास
शा. केशवजी कल्याणजी, ...
शा प्रेमल रायजी, ...
शा इश्वर पानाचंद, ...
शा संघ ... ...
श्री जैन विद्याशाला ... ...
शा केशवजी कल्याणजी ... ...
शा मेगजी वि. पुरुषोत्तम ... कलकत्ता ... ...
शा केसरमल अमथाभाई ...
शा. मुलचंद ... नेमराज, ...



इन सब महाशयोंका मैं पूरा धन्यवाद मानता हुं

अमरचंद पी० परमार.